वराहमिहिरविरचिता

बृहत्संहिता

व्याख्याकार

पं. अच्युतानन्द झा

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१५६

वराहमिहिरकृता

बृहत्संहिता

'भट्टोत्पलविवृति' समन्वित 'विमला' हिन्दीव्याख्यायुता

(पूर्वार्द्ध)

व्याख्याकारः

शर्मोपाह्व पं० अच्युतानन्द झा

ज्योतिषाचार्य-साहित्याचार्य-पोष्टाचार्याद्युपाधिविभूषितः

प्राक्कथनलेखकः

प्रो० रामचन्द्रपाण्डेयः

सङ्कायप्रमुखचरः

संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 0542-2420404

E-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

प्राक्कथन

बृहत्संहिता : एक दृष्टि

वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम्।

यह सूक्ति ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व एवं उसके निर्दुष्ट स्वरूप को पारिभाषित करती है। ज्योतिष वेदपुरुष का निर्मल चक्षु है। यहाँ केवल चक्षु ही नहीं; अपितु 'निर्मल चक्षु' कहा गया है। साधारण चक्षु की दृष्टि भी सामान्य होती है तथा मलिन चक्षु की दृष्टि अस्पष्ट एवं धूमिल होती है। निर्मल (दोषरहित) चक्षु ही किसी भी वस्तु को यथार्थ रूप में देख सकता है तथा उसका यथार्थ प्रतिपादन कर सकता है। इसीलिये इसे वेदपुरुष का निर्मल चक्षु कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र भी देखने का ही कार्य करता है। 'गणित' और 'वेध' नामक इसकी दो आँखें हैं। गणितागत परिणाम भी दृश्य होते हैं एवं वेधोपलब्ध परिणाम भी दृश्य होते हैं। जब दोनों दृष्टियों से प्राप्त परिणामों में साम्यता हो जाती है तो ज्योतिष शास्त्र का आकल्मषत्व तथा नेत्रों का निर्मलत्व—दोनों ही प्रमाणित हो जाता है। सर्वविदित है कि ज्योतिष वेध द्वारा गणितागत परिणामों का परीक्षण कर उसे पुष्ट करता है; इसीलिये कमलाकर भट्ट ने निःसङ्कोच यह उद्घोष कर दिया कि 'इस शास्त्र में दृष्ट विरुद्ध मुनि द्वारा कहा गया सिद्धान्त मान्य नहीं है।'[१] ज्योतिष अपनी प्रामाणिकता के लिये स्वयं को ही उत्तरदायी मानता है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में आचार्य लगध ने इसे 'कालविधान' शास्त्र कहा है।[२] काल की अवधारणा एवं उनके भेदों का प्रतिपादन ज्योतिष शास्त्र ने ही किया है। काल के प्रमुख नियामक सूर्य और चन्द्रमा हैं, जो ज्योतिष शास्त्र के साक्षी माने जाते हैं।[३]

इनकी गतियों के परिणामस्वरूप या इनसे उत्पन्न काल ही हमारे उपयोग में आते हैं। यद्यपि इनके अतिरिक्त पृथ्वी, बृहस्पति और नक्षत्रों के आधार पर भी कालगणना की जाती है, जो कि हमारे दैनिक व्यवहार में हैं। इन सभी कालमानकों, इनसे उत्पन्न कालमानों तथा उनके भेदोपभेदों को पारिभाषित करने का एकमात्र श्रेय ज्योतिष शास्त्र को ही जाता है। वेदाङ्ग होने के कारण इसकी प्राथमिकता एवं प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध है। यह वेदविज्ञान है; अतः जब हम विज्ञान की चर्चा करते हैं तो सर्वप्रथम दृष्टि के

---

१. सुयुक्ता न मुन्युक्तिरप्यत्र शास्त्रे भवेत् कार्यवर्षस्य या हग्निरुद्धा। (सि० त० वि०)

२. वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।। (वे० ज्यो०)

३. अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तत्र केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।।

समक्ष ज्योतिष शास्त्र ही आता है। यद्यपि आज 'विज्ञान' शब्द कुछ विशिष्ट विषयों का ही परिचायक-मात्र रह गया है। भारतीय विद्याओं में विशिष्ट ज्ञान-प्रतिपादक शास्त्र को 'विज्ञान' कहा गया है। दोनों में से हम किसी भी अर्थ को ग्रहण करें तो ज्योतिष शास्त्र ही कनिष्ठिकाधिष्ठित होगा। आज का 'विज्ञान' शब्द इंगलिश के 'साइन्स' (Science) शब्द का रूपान्तर है। आधुनिक विज्ञान के अन्तर्गत—गणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, ऋतु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिकी, रसायन आदि विषय परिगणित हैं। इन विज्ञानों के विकास का इतिहास सत्रहवीं शताब्दी के बाद का ही है; किन्तु आज से सहस्राब्दी पूर्व भारतीय विद्याओं में गणित, भूगोल, खगोल, कृषि आदि विषयों का विवेचन देखने को मिलता है। यह भी सत्य है कि आज आधुनिक विज्ञान की सभी शाखायें अनुसन्धान एवं विविध प्रयोगों द्वारा अहर्निश विकासोन्मुख हैं तथा भारतीय ज्ञान-विज्ञान का विकास समुचित अनुसन्धान एवं प्रयोगों के अभाव के कारण शताब्दियों से अवरुद्ध है। सिद्धान्त के क्षेत्र में तो कुछ कार्य हुये भी; किन्तु संहिता के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। ग्यारहवीं शताब्दी के बाद भी ज्योतिष के खगोल-विज्ञान में प्रगति हुई है; किन्तु वह भी विगत शताब्दी से अवरुद्धप्राय है। खगोल के साथ-साथ अन्य विज्ञान की शाखाओं का भी अवलोकन करना चाहें तो हमें एकमात्र अन्तिम प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में आचार्य वराहमिहिर-विरचित 'बृहत्संहिता' ही उपलब्ध होती है। आचार्य वराहमिहिर ने १०७ प्रकरणों में अतिसंक्षेप में लगभग ९८ विषयों का प्रतिपादन किया है, जो अपने-आपमें अद्वितीय संकलन है, जो कि त्रिस्कन्ध ज्योतिष के मर्मज्ञ आचार्य वराहमिहिर-जैसे दैवज्ञ से ही सम्भव था। उसके बाद इस स्तर की कोई अन्य रचना प्रकाश में नहीं आई। यद्यपि आचार्य वल्लालसेन ने भी इसी प्रकार के संकलन का एक सराहनीय प्रयास अपने ग्रन्थ 'अद्भुतसागर' में किया है; परन्तु बृहत्संहिता की महत्ता आज भी अद्वितीय है। संहिता स्कन्ध के प्रतिनिध ग्रन्थ के रूप में बृहत्संहिता की ही प्रतिष्ठा है। इस ग्रन्थ के महत्त्व-प्रतिपादन के पूर्व ज्योतिष शास्त्र का संक्षिप्त परिचय उन जिज्ञासु पाठकों के लिये देना उचित समझता हूँ, जो कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र को यथार्थ रूप में जानना चाहते हैं।

भारतीय ज्योतिष (जिसे आज 'वैदिक ज्योतिष' के नाम से जाना जाता है) मुख्यत: तीन भागों में विभक्त है—सिद्धान्त, संहिता एवं होरा।

सिद्धान्त ज्योतिष—काल की सूक्ष्मतम इकाई त्रुटि से लेकर महत्तम इकाई (प्रलयकाल) तक कालगणना, विभिन्न प्रकार (सौर-चान्द्र-सावन आदि) के कालों के भेद, ग्रहों की गतियों का निरूपण, पृथ्वी एवं ग्रहों की अन्तरिक्ष में स्थिति का विवेचन, अङ्कगणित, बीजगणित, दिक्-देश-काल का विवेचन तथा इनके साधनोपयोगी यन्त्रों का वर्णन, ग्रहगणित से सम्बन्धित उदय-अस्त-युति-ग्रहण आदि का विवेचन सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत आता है।

संहिता—संहिता का परिचय देते हुये आचार्य वराहमिहिर ने लिखा है कि 'अनेक प्रकार के विषयों से परिपूर्ण ज्योतिष तीन स्कन्धों में प्रतिष्ठत है, जिसमें (सिद्धान्त और होरा के विषयों को छोड़कर शेष) समग्र विषयों का विवेचन किया गया हो, उसे 'संहिता' कहते हैं।' वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुये 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है।

संहिता का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

होरा—जनसामान्य से सम्बन्धित होने के कारण यह लोकप्रिय स्कन्ध है। प्राणी के आधानकाल से प्रसवकाल तक तथा प्रसव से अवसानकाल तक जीवन के सभी शुभाशुभ पक्षों का विवेचन इस स्कन्ध के अन्दर किया गया है। आधानकालिक अथवा जन्मकालिक ग्रहों की स्थिति के आधार पर उनके परिणामों का विवेचन किया गया है।

इस प्रकार त्रिस्कन्ध ज्योतिष ब्रह्माण्डीय तथा मानवसम्बन्धी अनेक समस्याओं का विश्लेषण करता है। कुछ आचार्यों ने मुहूर्त्त और शकुन को पृथक् स्कन्ध कहकर पञ्च स्कन्धात्मक ज्योतिष शास्त्र बतलाया है; किन्तु यह समीचीन नहीं है; क्योंकि विभिन्न शकुन और पशु-पक्षियों की चेष्टाओं का निरूपण, अङ्गविद्या तथा वास्तु आदि का निरूपण संहिताओं में उपलब्ध है; अत: इनकी पृथक् सत्ता को स्वीकार करना संहिता को खण्डित करना होगा।

इन तीनों स्कन्धों के प्रतिपाद्य विषय आज के विज्ञान की अनेक आवश्यकताओं की पूर्त्ति पुराकाल से करते आ रहे हैं। आज विज्ञान के विकास ने इन भारतीय विद्याओं की महत्ता को परिपुष्ट किया है।

विगत कुछ वर्षों से जनमानस वास्तुशास्त्र की ओर उन्मुख हुआ है; जबकि संहिताओं में वास्तुशास्त्र का विशद विवेचन किया गया है। शास्त्रों की रचना मानवमात्र के कल्याण की दृष्टि से होती है। आवश्यकता है, उनके अवलोकन एवं मनन की। संहिताओं के अन्तर्गत अनेक विषय ऐसे हैं, जिनकी आवश्यकता जनसामान्य को होती है। उदाहरण के रूप में मौसम विज्ञान को ही लिया जा सकता है। आज करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद भी मौसम विज्ञान २४-३६ घण्टे पूर्व ही वृष्टि, आँधी और तूफान की पूर्व-सूचना दे पाता है; जबकि भारतीय ज्योतिष ग्रह-नक्षत्रों की गति-स्थिति के आधार पर लगभग वर्ष भर की मौसमसम्बन्धी भविष्यवाणी कर देता है। त्रुटियाँ दोनों ही पक्षों में होती हैं। दोनों ही विधाओं में भविष्यवाणियाँ शत-प्रतिशत सत्य नहीं होती हैं। इस त्रुटि का कारण संहिता शास्त्र बतलाता है—सद्य: होने वाले परिवर्तनों को। इन परिवर्तनों को 'सद्यो वृष्टिलक्षण' के नाम से प्रतिपादित किया है। आधुनिक विज्ञान भी इन तात्कालिक

परिवर्तनों के आधार पर अपनी भविष्यवाणियों में सुधार करते रहते हैं। आचार्य वराह-मिहिर ने कहा है कि 'यदि दैवज्ञ प्रतिदिन आकाशलक्षण तथा वृष्टिलक्षण का अवलोकन सावधान चित्त से करता रहे तो उसकी भविष्यवाणी मुनियों की वाणी की तरह सदैव सत्य होगी।'[१]

यद्यपि मौसम विज्ञान अत्यन्त दुरूह है; फिर भी संहिताओं से इसे अत्यन्त सरल ढंग से सामान्य कृषक के भी समझने-योग्य बतलाया गया है; ताकि कृषक मौसम के ज्ञान से अपनी कृषि को सुरक्षित रख सके। भारतीय मनीषियों ने कृषि को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। कृषि के साथ वायु-वृष्टि का सम्बन्ध होने से दोनों पर गहन विचार किया है। कृषि के लिये वृष्टि आवश्यक होती है; इसलिये दोनों का महत्त्व बतलाते हुये कहा है कि—

'समस्त कृषि वृष्टि के आधीन है। प्राणी मात्र का जीवन भी वृष्टि (जल) पर ही आश्रित है। अत: सर्वप्रथम वृष्टि का ज्ञान करना चाहिये।'[२]

इतना ही नहीं; कृषि की प्रशंसा में अन्न के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया है कि—कानों में, गलें में तथा हाथों में भले ही रत्नजटित स्वर्ण आभूषण हों; किन्तु यदि अन्न नहीं होगा तो उपवास ही करना पड़ेगा।'[३] अर्थात् क्षुधा की शान्ति केवल अन्न से ही होगी, स्वर्ण और रत्नों से नहीं। अन्न का साधन एकमात्र कृषि है। इसीलिये शास्त्रकारों ने कृषि तथा गाय और बैलों के संरक्षण पर विशेष बल दिया है। कृषि की गुणवत्ता, बीज का संरक्षण, फलों का उत्पादन, वृक्षों और फसलों के रोगों का निदान और चिकित्सा आदि ऐसे अनेक विषय हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध प्राणीमात्र से है और संहिताओं में उनका विशद् प्रतिपादन किया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्तरिक्षसम्बन्धी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का भी विवेचन संहिताग्रन्थों में मिलता है। कभी-कभी कुछ घटनायें आज के वैज्ञानिकों को भी आश्चर्य-चकित कर देती हैं। इस प्रकार की अनुत्तरित जिज्ञासाओं की भी चर्चा संहिताओं में यत्र-तत्र मिल जाती है। उदाहरण के रूप में एक घटना का उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। जब अन्तरिक्षयात्री 'नील आर्मस्ट्रांग' चन्द्रतल पर अवतरण करने जा रहा

---

१. दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे।। (बृ० सं०, गर्भल०-३)

२. वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलञ्च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।। (कृ० पा०-२.१)

३. कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि।
उपवासस्तथापि स्यादन्नाभावेन देहिनाम्।। (कृ० पा०-१.५)
अन्नं हि धान्यसञ्जातं धान्यं कृष्या विना न च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्।। (कृ० पा०-१.७)

था तो उस समय चन्द्रमण्डल पर क्षणिक प्रकाश दिखलाई दिया, जिसको देखकर आश्चर्यचकित नील आर्मस्ट्रांग ने पृथिवी पर स्थित अन्तरिक्ष अनुसन्धान केन्द्र को इसकी सूचना दी। सभी के लिये लिए यह क्षणिक प्रकाश एक रहस्य था। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख पैट्रिक मूरे ने भी अपनी पुस्तक Guide to the Moon में किया है कि 'जब मैंने अपने दूरदर्शक से चन्द्रमा को देखा तो कुछ क्षण के लिए चन्द्रविम्ब नीले प्रकाश से युक्त दिखाई दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे नीले बल्ब के प्रकाश में चन्द्रमा को देख रहा हूँ; किन्तु यह दृश्य कुछ ही क्षणों के बाद समाप्त हो गया तथा चन्द्रमा अपने वास्तविक स्वरूप में दिखाई देने लगा।'[१]

इस तरह के क्षणिक परिवर्त्तन निश्चय ही आश्चर्योत्पादक हैं; किन्तु इन विचित्र घटनाओं से संहिताकार भी अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने बड़े ही सहज भाव में लिख दिया है कि 'चन्द्रविम्ब पर कभी पीला, कभी नीला, कभी हरा क्षणिक प्रकाश होता रहता है।'[२] इन प्रकाश-परिवर्तनों के प्रभावों का भी उल्लेख किया है; परन्तु इस प्रकार के प्रकाशों का कारण आज भी एक रहस्य ही बना हुआ है। संहिताग्रन्थों को देखने से प्रतीत होता है कि आधुनिक युग में भी अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर गहन शोध के अपार अवसर उपलब्ध हैं। इनके उल्लेख की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है; यत: संहिताग्रन्थ स्वयं में ही प्रमाण हैं।

वराहमिहिर

आचार्य वराहमिहिर ज्योतिष शास्त्र के प्रतिनिधि आचार्य हैं। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों पर अद्वितीय कार्य किया है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिस प्रकार भगवान् वराह ने रसातल से पृथ्वी को उबार कर बाहर लाया, उसी प्रकार कालप्रवाह में निमग्न ज्योतिष के सिद्धान्त स्कन्ध को इन्होंने उबारा। अपने मानक ग्रन्थ 'पञ्च-सिद्धान्तिका' में इन्होंने सौर, पैतामह, वसिष्ठ, रोमक और पौलिश सिद्धान्तों का संग्रह किया तथा उनकी गुणवत्ता को परख कर उन पर अपनी टिप्पणी भी दी; जो इस प्रकार है—'पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है। उसी के आसन्न रोमक भी है; किन्तु सौर सिद्धान्त इससे भी शुद्ध (स्पष्टतर) है। अन्य दो (पैतामह और वसिष्ठ) अत्यन्त (प्राचीन होने से) भ्रष्ट हो गये हैं।

---

१. The Moon is shining down from a slightly misty sky with a lovely shimmering blueness like an electric glimmes, utterly unlike anything I have never seen before.

२. विलग्नमध्यो नीलाभो वज्रसंस्थानसंस्थित:।
मध्यच्छिद्रविलीनाभो भयं कारयते महत्।।
हरितो पीतये विद्यात् पशूनां चाप्युपद्रवम्।
पीतवर्णो गजान् हन्ति पीतो व्याधिकरस्तथा।। (अद्भुतसागर)

संहिता स्कन्ध में बृहत्संहिता या वाराही संहिता उल्लेखनीय है। अद्यावधि उपलब्ध संहिताओं में बृहत्संहिता की अप्रतिम प्रतिष्ठा है। संक्षेप में अधिकाधिक विषयों का समावेश इस ग्रन्थ में आचार्य ने किया है।

इसी प्रकार होरास्कन्ध में वराहविरचित 'बृहज्जातक' की प्रतिष्ठा है। आचार्य भट्टोत्पल ने वराह की दोनों कृतियों—बृहत्संहिता और बृहज्जातक पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका लिखी है, जो 'भट्टोत्पल' के नाम से ही जानी जाती है।

आचार्य वराहमिहिर का जन्म अवन्ती (उज्जैन) के पास कापित्थक नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता कर नाम आदित्य दास था। ये सूर्य के उपासक थे। इसके आधार पर ये मगद्विज कुल में उत्पन्न थे। ये सभी सूचनायें वराहमिहिर द्वारा लिखित बृहज्जातक के एक पद्य[१] के आधार पर प्राप्त होती हैं। आज के पुरातात्त्विक साक्ष्य भी अवन्ती के पास ही इनके जन्मस्थान की पुष्टि करते हैं। इन्होंने अपने कुल एवं जन्म-स्थान का तो उल्लेख किया है; किन्तु जन्मकाल का उल्लेख नहीं किया है। अत: पञ्चसिद्धान्तिका[२] में उल्लिखित शक ४२७ के आधार पर इनका जन्मसमय शक ४०७-४१२ (सन् ४८५-४९०) के बीच माना जाता है। ज्योतिर्विदाभरण में जिस वराहमिहिर का उल्लेख है, वे कोई अन्य हो सकते हैं अथवा काल्पनिक भी हो सकते हैं; क्योंकि विक्रमादित्य के नवरत्नों में जिन आचार्यों के नाम हैं, उनकी एक कालावधि में उपस्थिति सम्भव नहीं है। स्वयं ज्योतिर्विदाभरण के लेखक ने अपनी ही लेखनी से अपने-आपको सन्देह के घेरे में डाल दिया है। अत: नि:संशय ही पञ्चसिद्धान्तिका के वराहमिहिर ज्योतिर्विदाभरण में उल्लिखित वराहमिहिर से सर्वथा भिन्न हैं।

इनके तिरोधान का काल सन्दिग्ध है। एक अज्ञात लेखक के आयुष्य विवरण के आधार पर इनका देहावसान शक ५०९ में हुआ।[३] निश्चित तिथि ज्ञात न होने पर भी कृतियों के आधार पर यह निश्चित ही है कि पाँचवी शताब्दी के ये मूर्धन्य खगोलशास्त्री थे। इनके ज्ञान तथा इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों के आधार पर इनके विषय में श्रुति है कि इन्होंने विदेशों में भ्रमण करके भी ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ये विदेशों में भ्रमण नहीं किये थे; अपितु इनके समय तक देश और विदेशों में ज्ञान का आदान-प्रदान हो चुका था। इनके

पूर्ववर्ती साहित्य में भी विदेशी शब्दों के उल्लेख मिलते हैं।[४] आचार्य वराहमिहिर

१. आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोध: कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसाद:।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार।।
(बृ० जा० उप०, अ०-९)

२. सप्ताश्वि वेदसङ्ख्यम्।

३. नवाधिकपञ्चशतङ्ख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवङ्गत:।। (भारतीय ज्योतिष)

४. द्रष्टव्य—भारतीय ज्योतिषं।

विदेश गये थे या नहीं? यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्त्वपूर्ण यह है कि वे खुले मस्तिष्क वाले, उदार दृष्टिकोण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत मनीषी थे। उनकी यह उदारता एक पद्य से ज्ञात होती है, जिसका भाव यह है कि 'जिसके पास सम्यक् (संशयरहित पुष्ट) ज्ञान होता है, वह ऋषि के समान पूज्य होता है (वहाँ जाति का पन्थ बाधक नहीं होता) और इस प्रकार का ज्ञान यदि किसी विप्र में हो तो फिर कहना ही क्या है?'[१] यहाँ 'म्लेच्छ' शब्द का प्रयोग हीनार्थ-बोधक नहीं है; अपितु शास्त्रों में वैदिक (आर्य) संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृति के अनुयायियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि आचार्य वराहमिहिर किसी भी देश, किसी भी जाति एवं किसी भी व्यक्ति से ज्ञानार्जन में परहेज के पक्षधर नहीं थे।

बृहत्संहिता

उपलब्ध संहिताओं में बृहत्संहिता सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं सुव्यस्थित है। इसमें संगृहीत विषयों को देखने से प्रतीत होता है कि आचार्य वराहमिहिर ने यत्र-तत्र से महत्त्वपूर्ण विषयों का सङ्कलन कर भावी पीढ़ी के लिये गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान की प्रभूत सामग्री प्रदान की है। आज आवश्यकता है—बृहत्संहिता के प्रत्येक अध्याय पर पृथक्-पृथक् कार्य (अनुसन्धान) करने की; तभी इस ग्रन्थ की सार्थकता अद्यतन के युग में सिद्ध होगी तथा ज्योतिष शास्त्र को एक नया आयाम प्राप्त हो सकेगा। आचार्य अत्यन्त दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने काल में ही अनुमान लगा लिया था कि भविष्यत् काल में ज्योतिष शास्त्र अल्पज्ञों एवं पाखण्डियों के हाथों में जाकर अपनी प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिह्न लगा सकता है। इसीलिये उन्होंने इस शास्त्र के अध्येताओं की अर्हता का प्रतिपादन किया है।

सांवत्सर सूत्राध्याय के १५ पद्यों में आचार्य ने केवल दैवज्ञों का लक्षण निरूपित किया है। उन लक्षणों से युक्त व्यक्ति को ही ज्योतिष शास्त्र पढ़ना चाहिये अथवा जिसे ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन की जिज्ञासा हो, उस व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने अन्दर उन गुणों को धारण करना चाहिये।

दैवज्ञ-लक्षण बताने के बाद २२-३९ पद्यों में दैवज्ञों की प्रशंसा तथा पाखण्डियों की निन्दा की गई है। किसी भी शास्त्र को उपयुक्त, जिज्ञासु एवं प्रबुद्ध व्यक्ति के हाथ में देने से उसका विस्तार होता है; अन्यथा शास्त्र की हानि होती है। आचार्य ने लिखा है—'संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।' विना संहिताओं के सम्यग् अध्ययन के व्यक्ति दैवचिन्तक नहीं हो सकता। प्रकृति और भावी घटनाओं को जानने के लिये अन्तरिक्ष में प्रतिक्षण हो रहे परिवर्तनों पर दृष्टि रखना आवश्यक है। अत: आचार्य ने सर्वप्रथम पात्रता-निर्धारण के अनन्तर सूर्यादि ग्रहों, अगस्त्य तारा तथा सप्तर्षि मण्डल

१. म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यग् ज्ञानं प्रतिष्ठितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।। (बृ० सं०-२.३०)

के चार (सञ्चरण) एवं उनके परिणामों को पारिभाषित किया। तदनन्तर पृथ्वी का (भूगोल का) वर्णन 'कूर्मचक्र' के अन्तर्गत किया है, जिसके आधार पर भूमण्डल पर किसी प्रकार के प्रकृतोत्पातों के क्षेत्रों का निर्धारण किया जाता है। तदनन्तर 'नक्षत्रव्यूह' नामक अध्याय में नक्षत्रों के प्रभावक्षेत्र का उल्लेख किया, जो अपने-आपमें अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण है। जैसे कि यदि मृगशिरा नक्षत्र पर कोई दुष्प्रभाव ग्रहचार अथवा अन्तरिक्षोत्पात द्वारा पड़ता है तो उसके प्रभावक्षेत्र में आने वाले सभी प्रभावित होंगे। मृगशिरा का प्रभावक्षेत्र बृहत्संहिता के आधार पर इस प्रकार है—सुगन्धियुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न पदार्थ, पुष्प, फल, रत्न, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस पीने वाले, गायक (सङ्गीतज्ञ) का भी तथा सन्देहवाहक।[1]

इसी प्रकार सभी नक्षत्रों के प्रभावक्षेत्रों का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर 'ग्रहभक्ति' अध्याय में ग्रहों से सम्बन्धित भूभाग का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार प्रारम्भिक अध्यायों में प्राकृत उत्पातों से प्रभावित होने वाले पदार्थों तथा क्षेत्रों का उल्लेख करने के अनन्तर भूस्थ एवं आन्तरिक्ष उत्पातों तथा आकाशीय परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है। २१वें अध्याय से २८वें अध्याय तक वायु और वृष्टि का विवेचन किया गया है, जो अपने-आपमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं कृषि की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। २९ से ३९ अध्यायों तक भूमि एवं आन्तरिक्षोत्पातों का उल्लेख है। ३८वाँ अध्याय 'रजोवर्षणाध्याय' नाम से निर्दिष्ट है। यद्यपि यह अध्याय सभी संस्करणों में नहीं है; किन्तु है महत्त्वपूर्ण। 'रजोवर्षण' नाम ही इसके वास्तविक अर्थ को व्यक्त कर रहा है। इसमें आकाश से धूलि की वृष्टि का वर्णन है। कुछ लोगों ने भ्रमवश इसमें भूमि से उड़ने वाली धूलि का वर्णन ही मान लिया है, जो कि उपयुक्त नहीं है। आज आधुनिक विज्ञान के समक्ष भी यह धूलि (Cosmic dust) रहस्य बनी हुई है। ४० से ५२ अध्याय तक प्रकीर्ण विषय हैं, जिनमें ५१वाँ अध्याय अङ्गविद्या का है। इसमें शरीर के अवयवों के लक्षणों का निरूपण किया गया है।

५३वें अध्याय से बृहत्संहिता का उत्तरार्ध माना जाता है। सम्भवत: पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का विभाजन आदरणीय गुरुवर्य स्व० पं० अवधविहारी त्रिपाठी जी द्वारा सम्पादित एवं वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित बृहत्संहिता के गवेषणापूर्ण संस्करण के आधार पर ही माना गया है। उत्तरार्ध वास्तुविद्या से प्रारम्भ होता है। ५३ से ६० अध्याय तक वास्तुविद्या का विवेचन है, जिसमें प्रासाद-निर्माण तथा उन पर वज्रलेप (प्लास्टर) की भी महत्त्वपूर्ण चर्चा की गई है। साथ ही ५४वें अध्याय में भूगर्भस्थ जल के स्रोत का भी उल्लेख किया गया है, जो 'दकार्गल' या 'उदकार्गल' नाम से जाना जाता है। आवासीय क्षेत्र में जल के स्रोत तथा पर्यावरण की दृष्टि से वृक्ष

---

१. मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहङ्गाः।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुकाः लेखहराश्च ।। (बृ० सं०-१५.३)

की आवश्यकता होती है। इसीलिये वास्तुविद्या के साथ इनका भी उल्लेख है। विशेषता यह है कि 'वृक्षायुर्वेद' नाम से वृक्षों में होने वाली व्याधियों एवं उनके उपचार की विधि भी उक्त अध्याय में बताई गई है। ६२ से ६७ अध्याय तक पशु-पक्षियों के लक्षण, ६८ से ७० तक स्त्री-पुरुषों के लक्षण एवं ७१ से ७९ तक स्त्री-पुरुषों एवं राजचिह्नों से सम्बन्धित विविध विषयों का निरूपण किया गया है।

८० से ८३ तक रत्नों के लक्षण, ८४ में दीपज्वाला-लक्षण, ८५वें में दन्तकाष्ठलक्षण तथा ८६ से ९६ तक शकुन एवं पशु-पक्षियों की चेष्टाओं का विवेचन है। ९७ से १०५ अध्यायों तक ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्धित परिणामों के उल्लेख के अनन्तर १०६ तथा १०७ अध्यायों में ग्रन्थ का उपसंहार किया गया है।

यदि हम इन विषयों का सूक्ष्मेक्षण करते हैं तो पाते हैं कि प्रत्येक अध्याय एक स्वतन्त्र एवं अनुसन्धानयोग्य विषय को स्वयं में समाविष्ट किये हुये है। एक ग्रन्थ में इतने विषयों का संकलन वस्तुत: गागर में सागर के समान ही है। आचार्य वराहमिहिर ने इतने विषयों को संगृहीत कर आगे कार्य करने के लिये सामग्री उपलब्ध कराई है। आज आवश्यकता है—बृहत्संहिता को भाषान्तर के साथ सर्वसुलभ कराने की; ताकि आधुनिक वैज्ञानिकों के साथ संयुक्त रूप से इस दिशा में शोधकार्य को प्रोत्साहित किया जा सके। बृहत्संहिता का वास्तविक उपयोग तभी सम्भव है, जब पारम्परिक और आधुनिक विज्ञानवेत्ता समवेत प्रयास कर इसमें निहित विज्ञान को प्रयोग के आधार पर परिवर्धित कर प्रकाशित करें और व्यवहार में लायें।

आचार्य भट्टोत्पलकृत विवृति से समन्वित बृहत्संहिता के हिन्दी रूपान्तरणसहित पुन: प्रकाशन पर अतिशय प्रसन्नता का अनुभव करते हुये आशा करता हूँ कि आधुनिक वैज्ञानिक भी बृहत्संहिता के मनन में अभिरुचि लेंगे तथा सम्बन्धित विषयों में शोध एवं परीक्षणों द्वारा प्राचीन ज्ञान-परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना सक्रिय योगदान करेंगे।

अन्त में पुन: श्री अच्युतानन्द झाकृत हिन्दी टीका से समन्वित बृहत्संहिता के वर्त्तमान प्रकाश्यमान संस्करण के प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के स्वत्वाधिकारी गुप्तबन्धुओं को मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाओं से विभूषित करते हुये कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार अनवरत रूप से माँ भारती की सेवा में सतत प्रयत्नशील रहेंगे एवं जिज्ञासुओं को लाभान्वित कराते रहेंगे।

वैशाख शुक्ल-३
संवत्-२०६२

प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय
सङ्कायप्रमुखचर:
संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्काय:
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय:

भूमिका

तिष्ठन्तीं शववक्षसि स्मितमुखीं हस्ताम्बुजैर्बिभ्रतीं
मुण्डं खड्गवराभयानि विजितारातिव्रजां भीषणाम्।
मुण्डस्रक्प्रविकाशमानविपुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनीं
नत्वेमां किल भूमिकां वितनुते नन्दोऽच्युतादिः कृती।।

परमेश्वर के सम्बन्ध में शास्त्रों में प्रतिपादित है कि 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' अर्थात् यह परमात्मा छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है। इस अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक परमात्मा के निःश्वासभूत, प्राणियों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक—इन तीनों प्रकार के दुःखों का अपहरण करने वाला और चतुर्वर्ग-प्राप्ति का अतिशय सुन्दर मार्गप्रदर्शक वेद है।

प्राचीन तथा आधुनिक इतिहासों के द्वारा यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि उपलब्ध पुस्तकों में सबसे प्राचीन वेद है। इसको अपौरुषेय कहते हैं अर्थात् किसी मनुष्य ने इसको नहीं बनाया, किन्तु प्राणियों के हित के लिये सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने त्रिकालज्ञ महर्षियों के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में इसे प्रकाशित किया।

यहाँ पर मनु—

वेदोऽखिलो कर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।

श्लोकवार्त्तिक में—

श्रेयःसाधनता ह्येषा नित्यं वेदात्प्रतीयते।
ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्नेन्द्रियगोचरः।।

और भी—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।

ब्राह्मणों को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

यहाँ पर मनु—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।

इसके व्याकरण आदि छः अङ्ग हैं, जैसे—व्याकरण मुख, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कान, कल्प हाथ, शिक्षा नासिका और छन्द पैर है।

श्रीमान् भाष्कराचार्य—

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पं करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

वेदपुरुष का नेत्ररूप होने के कारण ज्यौतिष शास्त्र सभी अङ्गों में उत्तम गिना जाता है, क्योंकि अन्य सभी अङ्गों से समन्वित प्राणी भी नेत्ररहित होने पर कुछ नहीं कर सकता।

यहाँ पर भास्कराचार्य—

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः।।

काश्यप के मत से इस शास्त्र के सूर्य आदि अट्ठारह महर्षि प्रणेता हैं—

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिराः।।

लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तकाः।।

किन्तु पराशर के मत से ज्यौतिःशास्त्रप्रवर्त्तक उन्नीस हैं—

विश्वसृड् नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः।।

पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्यौतिःप्रवर्त्तकाः।।

पराशर के मत से ज्यौतिश्शास्त्र में गुरु और शिष्य की सम्बन्ध-परम्परा इस प्रकार है—

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम्।।

नारायणो वसिष्ठाय रोमेशायोऽपि चोक्तवान्।
व्यासो शिष्याय सूर्योऽपि मयारुणकृते स्फुटम्।।

पुलस्त्याचार्यगर्गोऽत्रिरोमकादिभिरीरितम् ।
विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे।।

मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम्।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यच्चातिदुर्लभम्।।

इस वेद के नेत्ररूप ज्यौतिष शास्त्र के सिद्धान्त, गणित, फलित—ये तीन स्कन्ध हैं।

सिद्धान्त उसको कहते हैं, जिसमें त्रुटिकाल से लेकर प्रलय के अन्त तक के काल की गणना हो; सौर, सावन, चान्द्र, नक्षत्र आदि मानों का भेद प्रतिपादित हो, ग्रहों के

सञ्चार का ज्ञान-प्रकार हो, दो प्रकार का (व्यक्त-अव्यक्त) गणित हो, उत्तरसहित प्रश्न हो; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का वर्णन हो और यन्त्रादि का वर्णन हो। सिद्धान्तशिरोमणि द्वारा यही परिभाषा मान्य है—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा
चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधः।।

'गणितस्कन्ध' उसको कहते हैं, जिसमें व्यक्त-अव्यक्त आदि अनेक प्रकार के गणित वर्णित हों। यह स्कन्ध सिद्धान्तस्कन्ध के अन्तर्गत ही पाया जाता है।

'फलितस्कन्ध' के मुख्य पाँच भेद हैं—जातक, ताजिक, मुहूर्त्त, प्रश्न एवं संहिता।

जिसमें जन्मकाल के द्वारा प्राणियों के जीवनसम्बन्धी सब तरह के फल कहे गये हैं, उसको 'जातक' कहते हैं। वस्तुतः जन्मकाल के ज्ञान के विना प्राणियों का जीवन अन्धकार में रहता है—

यस्य नास्ति किल जन्मपत्रिका या शुभाशुभफलप्रदायिनी।
अन्धकं भवति तस्य जीवितं दीपहीनमिव मन्दिरं निशि।।

ताजिकविभाग से वर्षफल, मासफल आदि का ज्ञान होता है।

पूर्वापर सन्दर्भ देखने से यह निश्चित होता है कि यवनों ने ताजिक शास्त्र में विशेष उन्नति की; अतः ज्यौतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों में यवनाचार्य का भी नाम आता है। ऐसा जान पड़ता है कि पूर्व समय में अत्रत्य ज्यौतिषी लोग वर्षफल आदि अन्य प्रकार से बनाते थे। नीलकण्ठाचार्य ने यवनों से ताजिक शास्त्र का अध्ययन करके 'ताजिकनीलकण्ठी' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें योगों के नाम फारसी शब्दों में इक्कवाल, इन्दुवार आदि हैं। इन शब्दों को बदल कर संस्कृत शब्दों के द्वारा योगों के नाम नहीं लिखे; अतः यह भी सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में विद्वानों में गुणग्राहकता अत्यधिक थी।

मुहूर्तविभाग में जातकर्म, अन्नप्राशन आदि सकल मुहूर्तों का वर्णन है।

प्रश्नविभाग में मूकप्रश्न आदि का वर्णन है।

संहिताविभाग फलित ज्यौतिष का प्रधान अङ्ग है। इसमें ग्रहचार आदि फलों के अतिरिक्त वायसविरुत, शिवारुत, मृगचेष्टित, श्वचेष्टित, गवेङ्गित, अश्वेङ्गित, हस्तिचेष्टित, शाकुन आदि विषयों का फल भी लिखा है; अतः इसको फलित का एक प्रधान अङ्ग मानना पड़ेगा।

इस विभाग के अन्तर्गत यह 'बृहत्संहिता' नामक ग्रन्थ अनुपम है, जिसको आदित्यदास के पुत्र, त्रिस्कन्ध ज्यौतिष शास्त्र में पारङ्गत श्री वराहमिहिराचार्य ने बनाया।

इस समय एतद्देशीय सम्पूर्ण संस्कृत विद्यालयों में यह बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ

परीक्षा में पाठ्यत्वेन निर्धारित है; परन्तु इसके मूल श्लोकों के अत्यन्त कठिन होने के कारण अर्थज्ञान के लिये विशेष प्रतिभा की आवश्यकता है। इसकी संस्कृत में भट्टोत्पल्लीय टीका बहुत अच्छी है; किन्तु इस टीका द्वारा सर्वसाधारण के लिए मूल श्लोकों का अर्थ जानना कठिन था; अत: जनसाधारण के उपकारार्थ मैंने इस ग्रन्थ की सरल परिशुद्ध हिन्दी टीका की है। आशा है कि पण्डितगण इस 'विमला' हिन्दी टीकायुत अनुपम ग्रन्थ को देखकर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

काशी के प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थान चौखम्बा संस्कृत सीरीज एवं 'चौखम्बा विद्याभवन' के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू जयकृष्णदास जी ने तत्परतापूर्वक शीघ्र ही इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया; अत: वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अवसान में सविनय करबद्ध प्रार्थना यही है कि अनवधानवश अथवा मुद्रणदोष से कहीं त्रुटि रह गई हो तो पक्षपातरहित बुद्धि से पण्डितगण उसे सुधार कर मुझे भी सूचित करें, जिससे कि पुन: अग्रिम संस्करण में उसको ठीक कर उन सज्जनों के सामने उपस्थित कर सकूँ। कहा भी है—

गच्छत: स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादत:।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जना:।।

दुर्जनगण अनेक प्रकार से प्रार्थना करने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ सकते हैं, अत: उनसे प्रार्थना करना व्यर्थ है; क्योंकि—

खलो मृगयते दोषं गुणपूर्णेषु वस्तुषु।
वने पुष्पफलाकीर्णे पुरीषमिव सूकर:।।

संवत्-२०१५
वसन्तपञ्चमी

विदुषां वशंवद:
श्री अच्युतानन्द झा

विषयानुक्रमणी

४. चन्द्रचाराध्यायः

५. राहुचाराध्यायः

विषयाः पृष्ठाङ्काः

४४. नीराजनाध्यायः

४५. खञ्जनकलक्षणाध्यायः

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

वराहमिहिरकृता

बृहत्संहिता

(पूर्वार्द्धा)

॥ श्रीः॥

वराहमिहिरकृता

बृहत्संहिता

'भट्टोत्पलविवृति' समन्वित 'विमला' हिन्दीव्याख्यायुता

अथ शास्त्रोपनयनाध्यायः

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः ।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥१॥

विमला

संसार की उत्पत्ति का कारण—'अग्नौ हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।' (मनु)। विश्व की आत्मा—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (श्रुति)। आकाश का स्वाभाविक आभूषण और द्रवित सुवर्ण के समान अनेक किरणों से शोभायमान श्री सूर्य भगवान् सर्वोत्कृष्टता से वर्त्तमान हैं।।१।।

भट्टोत्पलविवृति

ब्रह्माजशङ्कररवीन्दुकुजज्ञजीवशुक्रार्कपुत्रगणनाथगुरून् प्रणम्य।
यः संग्रहोऽर्कवरलाभविवृद्धबुद्धेरावन्तिकस्य तमहं विवृणोमि कृत्स्नम्।।१।।

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषं
तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-
दित्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते।।२।।

वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले
ग्रहर्क्षगणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले।
भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धास्ततः
करोमि विवृतिप्लवं निजधियाऽहमत्रोत्पलः।।३।।

कानीह शास्त्रे सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते—वाच्यवाचकलक्षणः सम्बन्धः। वाच्योऽर्थो वाचकः शब्दः। अथवोपायोपेयलक्षणः सम्बन्धः। उपायस्त्विदं

शास्त्रमुपेयं ज्ञानम्। अथवा आब्रह्मादिविनिःसृतं वेदाङ्गमिति सम्बन्धः। अनेन शास्त्रेण च यद्ग्रहनक्षत्रोत्थानां शुभाशुभानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां फलज्ञानं तदभिधेयम्। जगतः शुभाशुभकथनं प्रयोजनं सम्यग्ज्ञानान्मोक्षावाप्तिरिति च प्रयोजनम्। किमेभिरुक्तै-रित्यत्रोच्यते—श्रोतृणां सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनकथनाच्छास्त्रविषये श्रद्धा जायत इति। तथा चोक्तमत्रार्थे—

सिद्धिः श्रोतृप्रभृतीनां सम्बन्धकथनाद्यतः।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बन्धः पूर्वमुच्यते।।
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित्।
यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं तु तद्भवेत्।।
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते।।

तस्मात् सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि वक्तव्यानि। कस्याऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकार इत्युच्यते—द्विजस्यैव। यतस्तेन षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च। कानि तान्यङ्गानीत्युच्यते—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः।
छन्दसां लक्षणं चैव षडङ्गो वेद उच्यते।।

सतामयमाचारो यच्छास्त्रप्रारम्भेष्वभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति। तदयमप्यावन्तिकाचार्य-मगधद्विजवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिःशास्त्रसंग्रहकृद् गणितस्कन्धहोरास्कन्धौ संक्षिप्तौ कृत्वा संहितास्कन्धं संक्षिप्तं चिकीर्षुरशेषविघ्नोपशान्तये भगवन्तं तत्प्रधानं सूर्य-मादावेव प्रणनाम—जयतीति।

भगवान् सविता श्रीसूर्यो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कीदृशः? जगतः प्रसूतिः। प्रसूयते उत्पद्यतेऽस्माज्जगदिति जगतः प्रसूतिः। यतस्तद्वशाद् वृष्टेः सम्भवस्ततोऽन्नं ततः प्रजा इति। तथा च भगवान्मनुः—

अग्नौ हुताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा।। इति।

विश्वात्मा विश्वस्य जङ्गमस्य स्थावररूपस्य चात्मा प्राणरूपेण हृदयान्तरस्थितः। तथा च श्रुतिः—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चे'ति।

जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य सूर्य एवात्मा। सहजभूषणं नभसः। नभस आका-शस्य सहजभूषणमकृत्रिममलङ्करणम्। यतो दृश्याकाशभागस्थेऽर्के सुतरां तस्य विराजनात् सहजं भूषणम्। **द्रुतकनकसदृशेति**। द्रुतं गलितं कनकं सुवर्णं द्रुतकनकस्य सदृशास्तत्तुल्या दशशतसंख्या ये मयूखाः किरणास्तेषां या माला प्रचयस्तयार्चितो व्याप्त इति। एवमिष्ट-देवतासङ्कीर्तनात् कायवाङ्मनोभिः प्राधान्याद्धर्मः, धर्मेण चाधर्मनिवृत्तिः, तन्निवृत्तौ विघ्नो-पशमस्तदुपशमादविघ्नेन शास्त्रपरिसमाप्तिरिति।।१।।

नन्वन्येषु ज्योतिःशास्त्रेषु सत्सु किमिदं प्रारब्धमिति पौनरुक्त्यपरिहारार्थमाह—

प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ।।२।।

प्रथम मुनि (ब्रह्माजी) द्वारा कहे गये विस्तृत ग्रन्थ का सत्य अर्थ देख कर उसको ही संक्षेप और विस्तार से रहित रचना के द्वारा स्पष्ट रूप से कहने के लिए प्रस्तुत हुआ हूँ।।२।।

मननाद् ज्ञानान्मुनिः। प्रथमश्चासौ मुनिश्च प्रथममुनिर्ब्रह्मा, तेन यत्कथितमुक्तमवितथं सत्यरूपं विस्तरग्रन्थमतिविस्तीर्णशास्त्रं तस्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थमभिधेयमवलोक्य विचार्याहं नातिलघ्वीभिः स्वल्पाभिर्न चातिविपुलाभिर्विस्तीर्णाभी रचनाभिर्वाच्यपदसन्निवेशैर्मध्यरचनाभिः स्पष्टं स्फुटतरमभिधातुं वक्तुं समुद्यतः प्रवृत्त इति। यतः संक्षिप्तस्य ग्रन्थस्य ग्रहणधारणे सुखम्। तथा च हस्तिवैद्यककारो वीरसोमः—

समासोक्तस्य शास्त्रस्य सुखं ग्रहणधारणे।। इति।।२।।

अधुना मुनिविरचितस्य स्वरचितस्य च शास्त्रस्य साम्यमाह—

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ।।३।।

जो प्राचीन मुनि के द्वारा विरचित है, वही यथार्थ है; मनुष्य का लिखा हुआ नहीं—ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; यतः मन्त्रात्मक से भिन्न शास्त्र में अर्थ की तुल्यता रहने के कारण केवल अक्षरमात्र का भेद रहने पर क्या विशेषता हो सकती है? अर्थात् कुछ भी नहीं।।३।।

इदं यच्छास्त्रं मुनिभिर्ब्रह्मादिभिर्विरचितं निबद्धं तत्साधु श्रेष्ठमिति। इतिशब्दो निश्चयार्थे। मुनीनामतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षादविशिष्टमाविर्भूतप्रकाशत्वात्। यतस्तच्चिरन्तनं मुनिभिः प्रागेव विरचितं तेन साधु न मनुजग्रथितं मनुष्यरचितत्वान्न साधु साम्प्रतं रचितत्वान्न शोभनमिति। एवमाशङ्क्याह—**तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रक इति** । तुल्ये सदृशेऽर्थेऽभिधेयेऽक्षराणां वर्णानां भेदादन्यत्वात्। तत्रामन्त्रक इति मन्त्रवर्जिते का विशेषोक्तिः किं विशेषवचनम्। एतदुक्तं भवति—मुनिकृतान्येव शास्त्राणि दृष्ट्वा तदर्थ एव नात्यल्पैर्नातिबहुभिः पदसन्निवेशैरुच्यत इत्यक्षराणां मात्राभेदो नार्थानाम्। मन्त्रार्थो वेदार्थोऽन्यैः शब्दैस्तदर्थप्रतिपादकैर्निबद्धो वेदवत्कार्यकरो न भवतीत्यत उक्तममन्त्रक इति।।३।।

अधुना मुनिकृतानां महत्त्वं च स्वशास्त्रस्य चाल्पत्वं प्रदर्शयितुमाह—

क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति पितामहप्रोक्ते ।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृतेः ।।४।।

जैसे ब्रह्माजी द्वारा रचित ग्रन्थ में 'क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृत्' और मनुष्यकृत ग्रन्थ में 'कुजदिनमनिष्टम्' ऐसा लिखा है। इसमें मात्र पाठभेद के अतिरिक्त मनुष्यकृत से मुनिकृत में क्या विशेषता है? अर्थात् कुछ भी नहीं।।४।।

क्षितितनयस्याङ्गारकस्य दिवसः वारः। दिवसे वारो दिवसवारः। पितामहप्रोक्ते कमलजकथिते शास्त्रे न शुभकृदित्युक्तिः। न शुभं फलं करोतीति न शुभकृत्। भौमवारः सर्वकर्मणामशुभकृदिति कमलजकथिते शास्त्र उक्तिः। मदीये पुनः कुजदिनमनिष्टम्। 'कु'शब्देन भूरित्युच्यते; ततो जातः कुजस्तस्य दिनं वारस्तच्चानिष्टमशोभनं सर्वकर्मणामित्युक्तिः। तस्मान्नृकृतेर्मनुष्यरचितस्य शास्त्रस्य दिव्यकृतेर्देवरचितस्यार्थस्यात्रास्मिन्नर्थे को विशेषः किमन्तरमिति भवन्त एव विचारयन्तु। अनेनर्षिकृतानां महत्त्वं स्वशास्त्रस्य संक्षिप्तत्वं प्रकाशितं भवतीति। अथवा नृदिव्यकृते इति पाठे नृकृते दिव्यकृतेऽत्रास्मिन् शास्त्रे को विशेष इति।।४।।

एवं स्वग्रन्थकरणे निर्दोषतां संस्थाप्य सकलमुनिनिबद्धशास्त्रसंग्रहकरणहेतुं दर्शयितुमाह—

आब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः।
क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः ।।५।।

ब्रह्मा आदि मुनियों के द्वारा कहे गये शास्त्रों में अतिविस्तार देखकर क्रम से संक्षेप में इस शास्त्र को बनाने के लिये यह मेरा उत्साह है।।५।।

ब्रह्मादिभ्यो यद्विनिःसृतं निर्गतं ग्रन्थविस्तरं विस्तीर्णशास्त्रं तच्चालोक्य दृष्ट्वा। अथवा तस्माद् ग्रन्थविस्तरादालक्ष्य क्रमशः क्रमेण समासतः संक्षेपेणैतच्छास्त्रं क्रियमाणम्। एवशब्दो निश्चयार्थे। मुनिभिः पारम्पर्येण संक्षिप्तीकृतमहमपि संक्षिप्तीकरोम्यतोऽस्माद्धेतोर्ममोत्साहः श्रृङ्गार इति। तथा च भगवान् गर्गः—

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं चक्षुर्भूतं द्विजन्मनाम्।
वेदाङ्गं ज्योतिषं ब्रह्मपरं यज्ञहितावहम्।।
मया स्वयम्भुवः प्राप्तं क्रियाकालप्रसाधनम्।
वेदानामुत्तमं शास्त्रं त्रैलोक्यहितकारकम्।।
मत्तश्चान्यानृषीन् प्राप्तं पारम्पर्येण पुष्कलम्।
तैस्तदा स्रष्टृभिर्भूयो ग्रन्थैः स्वैः स्वैरुदाहृतम्।। इति।।५।।

अस्मिन् शास्त्रे जगतः शुभाशुभकथनं तात्पर्यं तस्य च जगतः कुत उत्पत्तिरस्त्येतत्प्रदर्शयितुमाह—

आसीत्तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्धैमे।
स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ।।६।।

यह सम्पूर्ण जगत् पहले अन्धकारमय था। वहाँ अन्धकार के विषयभूत जल में तेजोमय एक सुवर्ण का अण्ड उत्पन्न हुआ। उसके दो टुकड़े स्वर्ग और पृथ्वीरूप हुये। इन टुकड़ों में से सूर्य-चन्द्ररूप दो नेत्र वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुये।।६।।

किलशब्दोऽत्रागमप्रदर्शनार्थः। इदं जगत्किल तम आसीत्। अन्धकारमभूत् तस्मिं-

स्तमस्यपां मध्ये हैमे सौवर्णेऽण्डे तैजसे तेजोमये स्वर्भूशकले यस्याण्डस्यैकं शकलमेकं खण्डं स्वर्गो द्वितीयं भूः। तथाभूते ब्रह्मा पितामहोऽभवद् जज्ञे। कीदृशो ब्रह्मा? अर्क-शशिनयनः। अर्क आदित्यः शशी चन्द्रः। एतौ नयने नेत्रे यस्य स विश्वकृद्विश्वस्रष्टा। एतदुक्तं भवति—तमोभूतेऽस्मिन् जगति भगवानव्यक्तः प्रजासिसृक्षुरादावपः ससर्ज, तासु च वीर्यमुदसृजत्। ततस्तदण्डं सौवर्णं सहस्रांशुसन्निभमभवत्, तस्मिन्नभ्यन्तरे ब्रह्मा जज्ञे, ततः स भगवांस्तत्र परिवत्सरमुषित्वा स्वयमेव ध्यानात्तदण्डं द्विधाऽकरोत्। ताभ्यां शकला-भ्यामेकं स्वर्गो द्वितीयं भूरिति निर्ममे। स ब्रह्मा सोमसूर्यनेत्रः सर्वलोकपितामहो विश्वकृदिति स्मृतिकाराः। तथा च भगवान्मनुः—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तं व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः।।
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ।।
सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्।।
तदण्डमभवद् हैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते।।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्।। इति।।६।।

अत्रैव पक्षान्तराण्याह—

कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य।
कालं कारणमेके स्वभावमपरे परे जगुः कर्म।।७।।

जगत् की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं; जैसे कि कपिल मुनि प्रधान (मूलप्रकृति), कणाद द्रव्य आदि पदार्थ, कोई काल, दूसरे स्वभाव और मीमांसक कार्य को जगत् की उत्पत्ति का कारण मानते हैं।।७।।

कपिलः सांख्याचार्यो जगतः कारणं प्रधानमाह कथयति। सत्त्वरजस्तमसां त्रयाणां

गुणानां सुखदु:खमोहलक्षणानां प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थानां साम्यावस्था प्रधानमुच्यते। प्रधानमव्यक्तं प्रकृतिरिति पर्याया: प्रकृतेर्महान् भवति महान् बुद्धिरध्यवसाय इति पर्याया:। तस्या बुद्धे: सत्त्वाधिकाया धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति धर्मा:। तस्या एव तमोऽधिकाया अधर्मोऽज्ञानमवैराग्यमनैश्वर्यमित्यध्यवसायो निश्चय: यथा पुरुष एवायं गौरेवायमश्व एवायमिति। ततो महत्तत्त्वादहङ्कारो भवति। अभिमान इत्यर्थ:। यथाहं कुलजोऽहं सुरूपोऽहमीश्वर इत्यादि। अहङ्कारात् षोडशको गणो भवति। तद्यथा—एकादश करणानि सत्त्वाधिकादहङ्कारात्। तानि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि। श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिकेति। पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। वाक्पाणिपादपायूपस्थं चेति। एकादशं मनस्तच्च सङ्कल्पात्मकम्। सङ्कल्पोऽभिलाष: स्पृहेति पर्याया:। तमोऽधिकादहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राणि भवन्ति। तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। एभ्य: पञ्चभ्य: पञ्च महाभूतानि भवन्ति आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि। तेभ्य: शरीरिणां शरीराणि। यत: पञ्चमहाभूतमयानि शरीराणि। एवं प्रधानं चिद्रूपस्य पुरुषस्य विश्वं भोगार्थं मोक्षार्थं च सृजति। भुक्तभोगस्य वैराग्योत्पादनं मोक्षावाप्तिरिति। तथा च कपिलाचार्य:—

प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशक:।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्य: पञ्च भूतानि।।
अध्यवसायो धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद् रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।।
अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविध: प्रवर्तते सर्ग:।
ऐन्द्रियमेकादशकं तन्मात्रपञ्चकश्चैव।।
सात्त्विक एकादशक: प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्र: स तामसस्तैजसादुभयम्।।
बुद्धीन्द्रियाणि कर्णत्वक्चक्षूरसननासिकाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थं कर्मेन्द्रियाण्याह।।
सङ्कल्पकमत्र मनस्तच्चेन्द्रियमुभयथा समाख्यातम्।
अन्तस्त्रिकालविषयं तस्मादुभयप्रचारं तत्।।
रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्ति:।
वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दास्तु पञ्चानाम्।।
स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्ति: प्राणाद्या वायव: पञ्च।।
युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्ति: क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्ति:।। इति।

द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्येति। कणभुक् कणादोऽस्य विश्वस्य द्रव्यादीन् पदार्थान् कारणमाह। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्या: षट्पदार्था:। तत्र द्रव्यं नवविधम्।

तद्यथा—आकाशवाय्वग्निजलपृथिव्याख्यानि पञ्च महाभूतानि। आत्मा मनः कालो दिक् चेति। तथा च तद्वाक्यम्—

खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः। इति।

द्रव्याश्रिताश्चतुर्विंशतिर्गुणाः। के ते? उच्यन्ते। तत्रात्मगुणा नव विशेषगुणाः। तद्यथा—बुद्धिरिच्छा सुखं दुःखं प्रयत्नः संस्कारः पुण्यं पापं द्वेषश्चेति। तथा च—

'बुद्धीच्छासुखदुःखप्रयत्नसंस्कारपुण्यपापानि। द्वेषश्चे'ति।

नवामी गुणास्त्वनित्याः सुखदुःखादिभुजां कदाचिद् भवन्ति कदाचिन्न भवन्ति। एते विशेषगुणाः। महाभूतानां खादीनां पञ्च यथाक्रमं शब्दादयो गुणाः समाश्रिताः। तथा संख्या परिमाणं पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे स्नेहो द्रवत्वं गुरुत्वं च। एते चतुर्विंशतिर्गुणाः। पञ्चविधं कर्म। उत्क्षेपणमधिक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनं चेति। सामान्यं जातिः। सा च द्विविधा परमपरं च। सामान्यं परं सत्ताख्यं महाविषयत्वात्। यतो द्रव्यादयस्त्रयः पदार्थाः सत्तया व्याप्ताः। अपरं द्रव्यगुणकर्मत्वादि। नित्यद्रव्यवृत्तय उक्ता विशेषाः। नित्यानि द्रव्याण्यात्माकाशपरमाणुप्रभृतीनि। अपृथक्सिद्धानामाधाराधेयभावः सम्बन्धः समवाय इति। एतेषां षण्णां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसस्य मोक्षस्य हेतुः। साधर्म्यं सादृश्यं वैधर्म्यं वैलक्षण्यं भेदो विशेष इति साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानमवबोधो निःश्रेयसस्य मोक्षस्य हेतुः। एवमेते द्व्यणुकादिक्रमेण कार्यं निर्वर्तयन्ति। चतुर्विधाः परमाणवः क्षितिजलाग्निवायूनाम्। द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकमारभ्यते त्रिभिः परमाणुभिस्त्र्यणुकमारभ्यत इति क्रमेण स्थूलकार्यस्य द्रव्यस्योत्पत्तिः। एवं जगत्सम्भवः।

कालं कारणमेक इति च। केऽपि कालकारणिकाः पौराणिकाः कालं कारणमाहुरुक्तवन्तः। कालस्य लक्षणम्—

नित्यमेकं विभुं द्रव्यं परिमाणं क्रियावताम्।
व्यापारव्यतिरेकेण कालमेके प्रचक्षते।।
आदित्यग्रहतारादिपरिस्पन्दमथापरे ।
भिन्नमावृत्तिभेदेन कालं कालविदो विदुः।। इति।

एवं जगतः कालः कारणं प्रजाः सृजति स एव संहरति। तथा च तद्वाक्यम्—

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।। इति।

यथा कालेन बलिरिन्द्रः कृतः कालेन ततो निवर्तितः काल एव पुनरेवं कर्तेति।

स्वभावमपर इति। अपरे अन्ये लौकायतिकाः स्वभावं जगतः कारणमाहुः। स्वभावादेव जगद्विचित्रमुत्पद्यते स्वभावतो विलयं याति। तथा च तद्वाक्यम्—

कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां च।
माधुर्यमिक्षोः कटुतां च निम्बे स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तम्।। इति।

परे जगुः कर्मेति । परे अन्ये मीमांसका जगतः कर्म कारणं जगुरुक्तवन्तः। शुभाशुभकर्म प्राणिनां पुण्यापुण्यरूपं जगतः कारणं शुभेन कर्मणा शुभफलभोगी जायते अशुभेन विपरीतमिति। तथा च—

पूर्वजन्मार्जितं यच्च कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
तदेव सर्वजन्तूनां सृष्टिसंहारकारणम्।। इति।।७।।

एवमनेकजन्मकारणेषूक्तेषु किं जगत्कारणं निश्चितमित्यत्र निषेधमाह—

तदलमतिविस्तरेण प्रसङ्गवादार्थनिर्णयोऽतिमहान् ।
ज्योतिःशास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयोऽत्र मया ॥८॥

जगत् की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत रूप से विचार करना व्यर्थ है; क्योंकि इस विषय का वर्णन करने में भी अनेक अन्य अतिविस्तृत विषयों की आवश्यकता होगी। अतः इस प्रसङ्ग को छोड़ कर प्रस्तुत ज्योतिष शास्त्र के अङ्गों का वर्णन करने का ही यहाँ मैने निर्णय किया है।।८।।

अलमिति वारणपक्षहेतुर्दृष्टान्तैर्दर्शनान्तराणि निवर्त्य कारणनिश्चयः। स चेह प्रस्तुतः, कुतो जगदुत्पत्तिरिति। प्रसङ्गादतिविस्तरेण वादः प्रसङ्गवादः, प्रसङ्गवादे अतिमहानतीवार्थस्य निर्णयो विचारो य आरब्धस्तस्यालं भवतु। अनेनास्माकं न किञ्चित् प्रयोजनम्। यतो मया एतस्मिन् शास्त्रे ज्योतिःशास्त्राङ्गानां निर्णयो वक्तव्यः। ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्योतिःशास्त्रं ग्रहनक्षत्रयोगेन जगतः शुभाशुभसम्भवात्। ज्योतिःशास्त्रे यान्यङ्गानि गणितहोराशाखाख्यानि तेषां निर्णयो निश्चयो वक्तव्यः कथनीयः। यद्यपि गणितहोरास्कन्धौ प्रागेवोक्तौ तथाप्यत्राङ्गत्वेनोदाहृतौ। पुरुषलक्षणादौ जातकं समागमादिषु गणितमिति। अथवा तदुक्तस्यात्र फलकथनं क्रियत इति।।८।।

अथ ज्योतिःशास्त्रस्वरूपं तत्र संज्ञान्तराण्याह—

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं
तत्कार्त्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता ।
स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः ॥९॥

अनेक भेदों से युत ज्यौतिष शास्त्र के तीन स्कन्ध (संहिता, तन्त्र, होरा) हैं। इनमें से जिसमें सम्पूर्ण ज्यौतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको 'संहिता' कहते हैं। जिसमें गणित द्वारा ग्रहगति का निर्माण किया गया हो, उसको 'तन्त्र' कहते हैं। इनके अतिरिक्त जातक, फल, मुहूर्त आदि का निर्णय जिसमें हो, उसको 'होरा' स्कन्ध कहते हैं।।९।।

ज्योतिःशास्त्रं कीदृशम्। अनेकभेदविषयम्। भेदो विशेषः। अनेको बहुप्रकारो भेदोऽनेकभेदः। अनेकभेदो विषयो यस्य तद्भिद्यतेऽस्मादिति भेदः। यथा श्वेतवर्णयोगात् कृष्णो वर्णो भिद्यते। एवं बहुप्रकारो भेदः स्कन्धत्रयमध्यनिर्दिष्टस्तस्य विषयं गोचरं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं

स्कन्धत्रयेण गणितहोराशाखाख्येनाधिष्ठितं व्याप्तम्। **तत्कार्त्स्न्योपनयस्येति**। तस्य ज्योतिःशास्त्रस्य कार्त्स्न्येन निरवशेषेणोपनयः कथनं यस्मिन् शास्त्रे तच्छास्त्रं संहितेति मुनिभिर्गर्गादिभिर्नाम सङ्कीर्त्यते कथ्यते। तथा च भगवान् गर्गः—

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः। त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः।।

स्कन्धेऽस्मिन्निति। अस्मिन् ज्योतिःशास्त्रे ग्रहाणामादित्यादीनां या गतिर्गमनं प्रतिराशौ सञ्चरणं सा येन ज्ञायते तद् गणितं तस्य च तन्त्रमिति संज्ञा। असौ गणितस्कन्धस्तन्त्राभिधानः। **होराऽन्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथित इति**। प्रतिष्ठायात्राविवाहादीनां लग्नग्रहवशेन च शुभाशुभफलं जगति यया निश्चीयते सा होरा। अन्यो द्वितीयोऽङ्गविनिश्चयः। होराख्यः कथित इति। होरास्कन्धो द्वितीयः। **स्कन्धस्तृतीयोऽपर इति**। अपरस्तृतीयोऽयं स्कन्धो वक्ष्यमाणः शाखाख्य इति।।९।।

अथ स्कन्धत्रयविभागमाह—

वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः।
होरागतं विस्तरशश्च जन्म यात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम्।।१०।।

मैंने करण ग्रन्थ (पञ्चसिद्धान्तिका) में ताराग्रहों (भौमादि पञ्च ग्रहों) के वक्र, मार्ग, उदय आदि का वर्णन किया है तथा होरा (बृहज्जातक, बृहद्विवाहपटल आदि) ग्रन्थों में जन्म, यात्रा, विवाह आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।।१०।।

ताराग्रहा भौमादयस्तेषां वक्रं प्रतीपगमनम्। यथा भौमादिको ग्रहो मेषस्थो मीनं याति स प्रतीपगतित्वाद्वक्रित इत्युच्यते। अनुवक्रं स्पष्टगतित्वम्। वक्रां गतिं त्यक्त्वा पुनः स्पष्टां गतिमाश्रितोऽनुवक्रित इत्युच्यते। अस्तमयस्तेषामेव ग्रहाणां सूर्यवशेन भवति। यः कश्चिच्चन्द्रादिको ग्रहः सूर्यसमीपवर्ती भवति स च रविकरनिकराभिभूतो गगने लोकानामालोकं नायाति तदास्तमित इत्युच्यते। तथा च स एव ग्रह आदित्यमण्डलाद्विप्रकृष्टो यदा भवति तदा नभसि दृश्यते स चोदित इत्युच्यते। एवं वक्राऽनुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणाम्। आदिग्रहणात् परस्परं ग्रहाणां युद्धं चन्द्रेण नक्षत्रैश्च सह समागमो ज्ञेयः। एतदप्युपलक्षणार्थम्। मध्यगतिस्तिथिनक्षत्रच्छेदः स्फुटगतिस्त्रिप्रश्नश्चन्द्रार्कग्रहणे उदयास्तमयौ शृङ्गोन्नतिः समागमस्ताराग्रहसंयोग इत्येते मया करणे पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्ताः कथिताः सर्व एव। तथा **होरागतं विस्तरशश्च जन्मेति**। विस्तरशो विस्तरेण प्रदर्शनेन जन्म जातकं होरागतं होराशास्त्रसम्बन्धं यात्राविवाहैः सह पूर्वमादावेवोक्तं कथितम्। एतदुक्तं भवति—बृहज्जातकं बृहद्यात्रा बृहद्विवाहपटलं च मयादावेव विरचितमिति।।१०।।

अथात्र वक्ष्यमाणे स्कन्धेऽनुपयोगिकं त्यक्त्वा यत्सारं तद्वक्ष्यामीत्येतदाह—

प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च।
सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये।।११।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः।।१।।

शिष्यों के द्वारा किये गये प्रश्नों के प्राचीन मुनियों के द्वारा दिये गये उत्तर, अनेक प्रकार के कथाप्रसङ्ग, सूर्य आदि ग्रहों की उत्पत्ति आदि थोड़े उपयोगी विषयों को छोड़कर प्राणियों के हित के लिये समस्त प्रयोजनों से युत साररूप विषयों का इस ग्रन्थ में वर्णन करता हूँ।।११।।

इति 'विमला'टीकायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ।।१।।

प्रश्नो यथा। हिमवदादौ स्थितो गर्गादिको मुनिः शिष्येण क्रौष्टुकिपूर्वेण पृष्टः— भगवन्! ज्योतिःशास्त्रं ज्ञातुमिच्छामि किं स्वरूपं केनोत्पादितं किं तेन करणमित्यादि। प्रतिप्रश्नो यथा। गर्गादिको मुनिः शिष्यवचनं श्रुत्वाह—यत्त्वयाऽहं पृष्टस्तत्ते वक्ष्यामीति। तथा च प्रश्नः—

हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानातीर्थसमाश्रिते।।
हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराजिते ।
सिद्धगन्धर्वसङ्कीर्णे देवर्षिगणसेविते।।
हुताग्निहोत्रमासीनमाश्रमे देवदर्शनम्।
वृद्धगर्गं द्विजश्रेष्ठं मुनिभिः परिवारितम्।।
अभिगम्य समीपस्थो विनयात् संश्रितव्रतः।
क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ प्रश्नं लोकानुकम्पया।।
भगवन् मुनिशार्दूल सर्वज्ञानविशारद।
ज्यौतिषं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि नः।।
ज्यौतिषं ज्ञानमुत्पन्नं कथमेतदनुत्तमम्।
केन वा पूर्वमेवोक्तमृषिणा दैवतेन वा।।
किमस्य कारणं लोके परिज्ञानाच्च किं फलम्।
नामतश्चानुपूर्वेण ब्रूहि मे मुनिसत्तम।।

इति मुनिप्रश्नः। तथा च प्रतिप्रश्नः—

एवमुक्तस्तु मुनिना वृद्धगर्गो महातपाः।
प्रोवाच तानृषीन् सर्वान् क्रौष्टुकिप्रमुखस्थितान्।।
श्रूयतां स्वर्ग्यमायुष्यं धर्म्यं पुण्यं यशस्करम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं द्विजानां पावनं परम्।।
कालज्ञानमिदं पुण्यमाद्यं हि ज्ञानमुत्तमम्।
सिसृक्षुणा पुरा वेदानेतत्सृष्टं स्वयम्भुवा।।
वेदाङ्गमाद्यं वेदानां क्रियाणां च प्रसाधकम्।
ज्योतिर्ज्ञानं द्विजेन्द्राणामतो वेद्यं विदुर्बुधाः।।

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाशुभम् ।
ज्योतिर्ज्ञानं च यो वेत्ति स तु वेत्ति परां गतिम्।।
चन्द्रनक्षत्रताराणां ग्रहाणां भास्करस्य च।
ज्योतिषामपि यज्ज्योतिर्ज्योतिषामपि पावनम्।।
तद्भावभाविनं युक्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
तस्मात्पूर्वमधीयीत ज्योतिर्ज्ञानं द्विजोत्तमः।।
धर्मसूत्रं ततः पश्चाद्यज्ञकर्मविधिक्रियाम्।
यज्ञाश्चायुष्यहोमाश्च चूडोपनयनादि च।।

साम्राज्यं पौर्णमास्यं च पितृदैवततर्पणम्।
सर्वारम्भाश्च जगतो लोके च विविधाः क्रियाः।।

न ज्यौतिषं विना तासां प्रवृत्तिरुपलभ्यते।
आप्यायनं च देवानां यज्ञाः प्रोक्ताः क्रियाश्रयाः।।

यज्ञार्थमपि च प्रोक्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
न ते च सम्प्रवर्तन्ते कालाज्ञानात् कथञ्चन।।

यज्ञक्रिया अहोरात्रं क्रियाश्चान्या जगद्धिताः।
तस्मात् पुण्यं समं वेदैर्यज्ञचक्षुः सनातनम्।।

स्वर्ग्यमध्येयमव्यग्रैर्ब्राह्मणैः शंसितव्रतैः।
ततः कालप्रसिद्ध्यर्थं राशयः पूर्वमीरिताः।।

अहोरात्रविभागश्च तिथीनां च क्रियाविधिः।
सोमसूर्यविलग्नानामृक्षाणां चापि निश्चयः।।

आदानयोगभोगाश्च विसर्गाश्चार्कसोमयोः।
दिनर्तुपक्षमासानां चन्द्रार्काणां विनिश्चयः।।

कर्मोपभोगमानानां लेख्यप्रश्नविधिस्तथा।
एवमाद्याः समस्ताश्च क्रिया ज्यौतिषसंश्रिताः।। इति।

एवमादिकाः प्रतिप्रश्नाः। तथान्यान् **कथाप्रसङ्गानिति**। आख्यायिका कथा तत्र प्रसङ्गः प्रसक्तिः। यथा भगवता पराशरेण पुष्करस्थाने कथा कृता। पुरा खलु सुरासुराणां महति महायुद्धे विग्रहे विपरीतविग्रहे भार्गवप्रयुक्ताभिचारोपहतवीर्यप्रभावाः सुराः शत्रुविक्रमोपहततेजसः स्वयम्भुवं शरणमभिजग्मुः। शुक्र एव वो गतिरित्यादिष्टाः सुराः शुक्रमभिसमेत्याऽऽनतास्ते देवाः पवित्रैर्मन्त्रैराद्यैरभिष्टुतवन्तः। सर्वरत्नधनधान्याधिपत्यं यज्ञभागं चास्मै दत्त्वा पैतामहा ऋषयो देवताश्च वरमभियाचयाम्बभूवुः। अनेकविधप्रयुक्तस्याद्यधर्मस्य परन्तपस्य यथा न स्यान्नाशस्तथा भगवान्नो विधत्ताम्। यथा च नो बृहस्पतिरुपाध्यायस्तथा भगवानपि भवत्विति। शुक्रः परमपीत्युक्त्वा देवान् शान्तिस्वस्त्ययनादिभिः पुनस्तेजसाभिवर-

यामास। न हि वेदमन्त्रकर्मणां यथावत्प्रयुक्तानां किञ्चिदप्यसाध्यं पश्यामस्तेषां शुद्धाशुद्ध-मन्त्राचार्यप्रतिग्रहीतृदेशकालकरणद्रव्यसाधनसामग्र्यम्। इतरथा हि मिथ्या हीनमन्त्रप्रयोगा यजमानस्यैवाभिचाराय भवन्ति। पुरा खलु सुराधिपत्यमाजिहीर्षुरतिप्रवृद्धवीर्योत्सेकाद्वृत्रः पुरन्दरमभिचचार। अथैनं कर्मविधिसमाप्ताविन्द्रशत्रुवृद्धिवचनसुरापराधिनमिन्द्र एव शत्रु-मभिवृद्धो वृत्रमभिजघान। एवमनियतकर्मारम्भाः शतशः सुरा विलयं जग्मुः। अतो विधिहीन-कर्मारम्भादनारम्भ एव श्रेयान्। तत्राऽभिचारकर्माऽथर्ववेदमन्त्रोपदिष्टैरुपकल्पयेदित्यादि।

एवमादिकाः प्रश्नाः प्रतिप्रश्नाः कथाप्रसङ्गाः स्वल्पोपयोगाः प्रायो न कुत्रचिदुपयुज्यन्ते। आचार्येण यद्यपि रोहिणीयोगादिष्वीषत्कथाप्रसङ्गः प्रदर्शितस्तथापि न दोषः। यत आचार्येण सहृदयहृदयाह्लादकं शास्त्रं कृतं तावन्मात्रेण तेषां चित्तरञ्जनं भवति।

तथा **ग्रहसम्भवांश्चेति**। ग्रहाणामादित्यादीनां सम्भवा उत्पत्तयः। कुतः सूर्यादय उत्पन्ना इति। तथा च भगवान् पराशरः—

'हिमवति हिमावदातेऽवनिधरवरशिखरविपरिवर्तितमिव विवस्वन्तं भगवन्तं पराशरमभिसङ्गम्य विनयावनतः कौशिकोऽभ्युवाच—भगवन् ! सर्वात्मा कालगतिविधाता सूर्यस्तस्य चरितमभिशुश्रूषामहे। द्वादश च श्रूयन्ते। एक एव तपन् दृश्यते। शीतोष्णवर्षा-भ्रानिलानां कथमस्मात् प्रादुर्भावः। कथं चर्त्तवस्तन्मानमनुवर्तते। मार्गप्रमाणवर्णसंस्थानादि शुभाशुभफलमखिलमभिव्याहर्तुमर्हसी'ति।

तमुवाच भगवान् पराशरः—पुरा खल्वपरिमितशक्तिप्रभाववीर्यायुरारोग्यसुखैश्वर्यधर्म-सत्त्वशुद्धतेजसः पुरुषा बभूवुः। तेषां क्रमादपचीयमानसत्त्वानामुपचीयमानरजस्तमस्कानां लोभः प्रादुरभवत्। लोभात् परिग्रहं परिग्रहाद् गौरवं गौरवादालस्यमालस्यात्तेजोऽन्तर्दधे। अथ भगवान् परमर्षिरचिन्त्यः पुरुषो नारायणः स्ववेद्यमाद्यमात्मानं द्वादशधा कश्यपाददिते-र्जनयामास। येनानन्तं पुनर्जगदभवत्। यान् द्वादशादित्यानाचक्षते। इन्द्रो विष्णुर्विवस्वा-न्मित्रोंऽशुमान् धाता त्वष्टा पूषा वरुणोऽर्यमा भगः सवितेति। अथ सवितारं पितामहोऽतितुष्टाव वरार्हं चैनं वरयाञ्चकार। यथा द्वादशादित्येभ्यस्त्वामुपस्थास्यतीति। मत्तो योगस्तेजो रुद्रात् स्वयमग्नीषोमौ वायुरमृतं मर्त्यं चेति। चन्द्रस्य पराशरमुनिना सम्भवो नोक्तः।

राहोर्यथा—अथ भगवन्तमनिलबलसमीरितप्रोद्धतहुतवहप्रभाभासुरमवितथदर्शनमु-दासीनमाश्रमस्थमभिसंक्रम्य कौशिको विनयात् पराशरमुवाच—भगवन् ! सकलभुवन-विलयोद्भवस्थितिविकरणौ कथमुपरज्येते सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति को वा ग्रहो ग्रहणप्रयोजनं फलं वा किमस्य ग्रहणे नियतमनियतं चेति।

तमुवाच भगवान् पराशरः—पुरा पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिरकालयाञ्चाकोपाद्दारुणं यमकालान्तकोपमं सुतमदात्। यं राहुरित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्गरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधा-द्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजय-

मर्कचन्द्रसम्भक्षणं च वरमभिवरयामास। तस्मै भगवानमरगुरु: स्वयम्भू: प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्तस्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वाऽन्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहु:। ततो हरिररिविमथनं चक्रमुपरि परिक्षिप्यास्य शिरश्छित्त्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं कुर्वन् जगत: शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसीति।

भौमस्य यथा—अथ भगवान् जगदादिसर्ग एव प्राक् प्रजापति: सिसृक्षयेश्वर: करेण क्रोधात् स्वतेजसोऽभिनिष्यन्दमग्निं तेजस एव जुहाव। अथ तदग्नितोऽवनिमुपसृतमुर्व्यग्निसर्वतेजोभि: सम्भृतमुदतिष्ठद्यं प्रजापतिं प्राजापत्यं भौममिति मन्यन्ते। स स्वयम्भुवो नियोगादृक्षचक्रमनुचरन्नशेषग्रहसामान्यचाराद्वक्रानुवक्राभ्यां चराचरं जगद्विशिष्टाविशिष्टेन कर्मणा युनक्तीति।

बुधस्य यथा—प्रागसुरसुरसन्निपातेऽसुरगुरुमाययाभिमुह्यन्त: सुरा: स्वयम्भुवमभिसङ्गम्योचु:। भगवन्निद्राभिभूता: स्म:। स्वपतां नो द्विषद्विघातहेतुमभिध्यायस्वेति। स्वयम्भुवा ग्रहपतिरपां तेज: सोमोऽभिध्यायोक्त:। सुतस्ते त्रिभुवनोद्भावनविलयनगोपायनप्रजापतिर्भविता। सकलविबुधगणान् बुधोऽभिरक्षते। ततो जगदभिगुप्त्यर्थं गतिवर्णचारमार्गास्तमनोदयप्रवासैर्जगत: शुभाशुभकरो भवतीति।

बृहस्पतेर्यथा—अथामरवरगुरुमधिकृत्य गुरुर्भगवान् पराशर: शिष्येणाभिनन्दित: सुरगुरुचरितमखिलमभिप्रणम्य गुरुमेवोवाच। आदिसर्ग एव पितामहोऽङ्गिरसं मनसाभिजज्ञे। अङ्गिरसोऽभिमुखाद् ब्रह्मधामैव त्रिभुवनगोप्ता प्रजापतिर्भगवान् बृहस्पतिरजायत। तमुत्पन्नमात्रमेव स त्रैलोक्याधिपति: पिनाकभृत् सुरवरगुप्तर्थं वराहं वरयामास। पितामहमिव त्वां प्रभाप्रभावर्द्धिसिद्धियोगज्ञानमन्त्रब्रह्मकर्माण्युपस्थास्यन्ति। गुरुरपि च सुराणां जगति शुभाशुभकारी त्वमेव भवितेति।

शुक्रस्य यथा—प्राग्भगवन्तममलतपसमनेकर्षिगणपरिवृतमशक्तदृशमपगतसंशयमुपेत्य संशयात् कौशिक: पराशरं विनयादवोचत्। भगवन्! दितिसुतगुरुचरितमिति यदग्रे भगवानुवाच तत्संशयो न: कथममरवरवपुषस्तस्यायत्ता: प्रजाभावाभावास्तमुवाच भगवान् पराशर:। प्रागादिसर्गे च भगवतस्त्रिलोचनस्य शम्भो रोरूयमाणस्य पितामहो भव इति यन्नामाकरोत्तस्यापो मूर्ति: सा भृगुकन्यका यस्यामुशना यं शुक्रं जनयामास स पुराऽयुतवर्षकेण कणधूम्रव्रतेन त्रिभुवनगुरुं पिनाकिनमाराध्य सकलधनपतित्वममरवरवपु: प्रज्ञाप्रभावतप:श्रुततेजोऽधिकत्वमसुरगुरुमर्कवर्षनिग्रहं प्रजापतित्वं च लेभे। तस्य भगवतश्चरितमुदयास्तमयर्क्षमार्गवर्णवीथीमण्डलैरुपदिशन्तीति।

सौरस्य यथा—अथ भगवत: पुरा आदियुग एवातिभासुरमभितपतो विवस्वतस्तेजसाऽभिव्यथ्यमानेषु भूतेषु स्वयं स्वयम्भूर्भगवन्तं विवस्वन्तमुवाच। अलमतितेजसा। न देवदेवा अपि तत्तेजस: परमं बलमतिसोढुं समर्था:। किमङ्ग पुन: प्रजा:। प्रजापतिनेत्यादिष्टो रविरतितेजोनिवारणादतिक्रुद्ध: स्वभावात् क्रोधमेवापत्यं जनयामास यं शनैश्चरमित्याचक्षत इति।

अगस्त्यस्य यथा—अथ भगवन्तममितयशसं पराशरं कौशिकोऽभ्युवाच। भगवन्! याम्यायां दिशि ज्योतिष्मद्ग्रहरूपमुदितमालक्ष्यते नक्षत्रग्रहमार्गव्युत्क्रान्तचरितं न वेद्मि। किं तत्किमर्थं वा प्राचीं दिशमपहाय दक्षिणेन प्रावृट्कालान्तोदितं शरत्कालान्तोदितं वा कतिपयाहान्यदृश्यं भवति। तन्नो भगवन्! वक्तुमर्हसीत्येवमुक्तो भगवानुवाच—श्रुतपूर्वस्ते पृथिव्यां मेरुमन्दरातिरिक्तप्रभावः शैलराड् विन्ध्यो नाम। स स्ववीर्यबलसमुच्छ्रायविशेषमन्विष्यमाणो दिव्यं वर्षसहस्रमुग्रं तपस्तेपे। स पितामहादहन्यहनीषुपातप्रमाणमुच्छ्रायेण वर्द्धस्वेतीप्सितं वरं लेभे। तस्यातिवृद्ध्या दिवसकर आवृतस्तेनान्धमिव जगदभवत्। ततो देवर्षिगन्धर्वोरगयक्षरक्षांसि पितामहमभिजग्मुः। भगवन्! विन्ध्यवृद्ध्या जगदवसीदत इत्यूचुः। ततः स्वयम्भुवा अगस्त्यनामा महर्षिरनेकवर्षसहस्रसम्भृततया ध्यात उक्तश्च। त्वमेकः शक्तो विन्ध्यातिवृद्धिनिवर्तनं कर्तुं कृते चास्मिन् कर्मणि नभसि विराजिष्यसे। दर्शनादेव ते जगति सर्वविघ्नविनाशो भविष्यति। एवमस्त्विति कृत्वा महर्षिरगमद्विन्ध्यसकाशम्। उवाचैनमनन्तरं मे प्रयच्छ तीर्थयात्रां करिष्यामि। अनागते च मयि त्वया न वर्द्धितव्यम्। इत्येवमुपश्रुत्य तपःप्रभावविस्तरस्याभिज्ञो महर्षेर्विन्ध्याचलश्चलच्छिखरपादो भयविषादविक्लवमतिरुवाच। भगवन्! बृहदसङ्कीर्णमविषममनेकतरुगणोदकमेकदेशमार्गमायोजयिष्यामि येन भगवान् यास्यतीत्येवमुक्तो महर्षिश्चुकोप। क्रोधरक्तान्तनेत्रोऽवदत्। ममाज्ञाक्षोभात् कदाचित् सर्वथैव न भविष्यसीति। ततः शैलस्तत्प्रभावभयभीतः स्वभावमुपगतोऽनागते भगवति न वृद्धिं यास्यामीति। ततो महर्षिर्दक्षिणां दिशमगमत्। स एषोऽगस्त्यः शैलवृद्धिव्याघातनिमित्तं न प्रत्येति दक्षिणस्यामुदेति तस्यामेवास्तं गच्छतीति।

केतोः केतुचारोक्ता एवोत्पत्तिः। तथा च भगवान् गर्गः—

जातस्तूशनसः शुक्रः सूर्यपुत्रः शनैश्चरः।
पुत्रः सोमस्य तु बुधो भूमेरङ्गारकः स्मृतः।।
पुत्रमङ्गिरसः प्राहुर्बृहद्वाक्यं बृहस्पतिम्।
राहुः स्वर्भानुपुत्रः स्यात् पुत्रः केतुर्विभावसोः।।
मनसा ब्रह्मणा ख्यातावुभौ सोमदिवाकरौ। इति।

ग्रहसम्भवानेतानपि स्वल्पोपयोगान् सन्त्यज्य त्यक्त्वा। तथा अन्यान्यपि फल्गून्यसाराणि यान्ययुक्तिमद्भिर्गणितगोलबाह्यैर्विरुद्धान्यभिहितानि। यथा भुवनप्रविभागे भूमेर्महाप्रमाणत्वं दर्पणोदराकारतां च कथयन्ति। मेरोश्च महाप्रमाणं वृत्तत्वं तत्पृष्ठासक्तो ध्रुवश्च ग्रहनक्षत्राणि चावलम्बमानानि। तथा च भगवान् पराशरः—

सप्तषष्टिसहस्राण्यशीतियोजनकोट्यो भूर्यत्पृथिवीमण्डलं परमस्मादगम्यं तमः। तन्मध्ये हिरण्मयो मेरुश्चतुरशीतियोजनसहस्रोच्छ्रितः षोडश चाधस्तात् त्रिगुणविस्तारायामो यं स्वर्गमाचक्षते। तन्मध्येनार्कचन्द्रौ ज्योतिश्चक्रं च पर्येति। तथा च—

मेरोरर्धविभागे सूर्यश्चन्द्रो द्वितीयके त्वटते।
ग्रहनक्षत्रतारकासहितौ द्वौ कृतैककालविभागौ।।

इति गोलकशास्त्रे निश्चयः। तस्य छायां निशामिच्छन्ति कुशलाः। एवमादिकं बहुप्रकारमस्माकं गोलज्ञानेन सिद्ध्यति। तथा च—

मेरोरर्धप्रमाणेन सूर्यस्य गतिरुच्यते।
भगणस्याथ पञ्चाशदादित्यादुपरि स्थिता।।
भगणात् सप्तषष्टिस्तु सोमस्य गतिरुच्यते।
अध्यर्धं तु गतेः सोमाद्भार्गवस्य गतिः स्मृता।।
बृहस्पतिर्बुधश्चैव प्राजापत्यः शनैश्चरः।
केतवश्च ग्रहाः सर्वे ज्ञेयाः सोमसमा गतौ।।
निमेषान्तरमात्रेण योजनानां शतं शतम्।
पर्येति भगवानर्को भावयन् भूतभावनः।।
अन्ते निम्नोन्नता मध्ये कूर्मपृष्ठोपमा मही।
त्रिगुणाद् भूपरीणाहादष्टभागो दिगन्तरम्।।

एवमादिकानि वाक्यानि निरुपपत्तिकानि गोलविरुद्धान्यसाराणि सन्त्यज्य यत्सारभूतं श्रेष्ठं लोकप्रत्यक्षजननं भूतार्थं सत्यार्थं दृष्टप्रत्ययं सकलैः समग्रैः परिपूर्णैरर्थैरनाकाङ्क्षैः प्रवक्ष्ये कथयिष्य इति।।११।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ॥१॥

अथ सांवत्सरसूत्राध्यायः

एवं स्वशास्त्रस्य स्वरूपप्रदर्शनेनोत्कर्षं प्रदर्श्याधुना कीदृग् ज्योतिःशास्त्रेऽधिकारीत्यतोऽधिकारिस्वरूपं प्रदर्शयितुमाह—

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः ॥१॥

इसके बाद इस अध्याय में सांवत्सरसूत्र (ज्यौतिषी का लक्षण) कहते हैं।।१।।

अथात इत्ययं समुदायः। अथातोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः कथयिष्यामः। अथवाऽथशब्दो मङ्गलार्थः। अतोऽस्माच्छास्त्रोपनयनादनन्तरं सांवत्सरसूत्रं विविधैरर्थैरा शास्त्रपरिसमाप्तेर्व्याख्यास्यामः कथयिष्यामः। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सरः। सूत्र्यते अर्थो येन तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थः।।१।।

तच्चाह—

तत्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयकः समः सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः। प्रायः शरीरकारानुवर्त्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति ॥२॥

कुलीन, देखने में प्रिय, नम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग-द्वेष से रहित, दृढ़ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वाङ्गपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त ज्यौतिषी होना चाहिये; क्योंकि शरीर की आकृति के अनुरूप ही दोष-गुण होते हैं।।२।।

तत्र सांवत्सर इति। तत्र तस्मिन् ज्योतिःशास्त्रे सांवत्सरो दैवज्ञः कीदृशः। संवत्सरो वर्षं तत्र शुभाशुभज्ञानार्थं यः कृतो ग्रन्थः स सांवत्सरस्तमधीते वेद वा यः सोऽपि सांवत्सरः। स चाभिजातः कुलीनः सांवत्सरकुलप्रसूत इति केचित्। यदि तत्कुलेऽपि जातो वक्ष्यमाणगुणलक्षणयुक्तो न भवति तत्किं तेन। तस्मात् सांवत्सरकुले निरवद्ये जातेनाऽन्यस्मिन् प्रधानकुले वा सांवत्सरकुलाच्च येन विद्या सागमा अधीता सोऽत्राभिजातो विवक्षितः। प्रियदर्शनो दृश्यमानः सुखजनको विनीतवेष उद्भटो वेषः शरीरालङ्करणं यस्य। आचार्येणान्यत्राप्युक्तम्—'सांवत्सरस्तस्य विनीतवेषः' इति।

सत्यवाक् अवितथभाषी। अनसूयकः अनिन्दकः। गुणेषु दोषाविष्करणमसूया। असूया कुत्सा। न असूयकोऽनसूयकः। समो रागद्वेषरहितः। शत्रौ मित्रे च तुल्यस्नेह इत्यर्थः। सुसंहतोपचितगात्रसन्धिः सुसंहता अतिसंलग्ना उपचिता मांसला गात्रेषु बाहु-

हस्तोरुजानुगुल्फपादेषु सन्धयो यस्य। अविकलोऽव्यङ्गः परिपूर्णावयवः। चारुकरचरण-नखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गः। करौ हस्तौ। चरणौ पादौ। नखाः कररुहाः। नयने चक्षुषी। चिबुकमधराधोभागः। दशना दन्ताः। श्रवणौ कर्णौ। ललाटं मुखपृष्ठभागः। भ्रुवौ नयनोपरि रोमलेखे। उत्तमाङ्गं शिरः। एतानि चारूणि दर्शनीयानि यस्य। प्रशस्त-लक्षणयुक्तानीत्यर्थः। वपुष्मान् वपुः शरीरं शोभनं विद्यते यस्य। रूपवानित्यर्थः। गम्भीरो-दात्तघोषः गम्भीरः सानुनाद उदात्त उद्भटो घोषः शब्दो यस्य। मेघमृदङ्गसमध्वनिरित्यर्थः। हि यस्मादर्थे। प्रायो बाहुल्येन शरीराकारानुवर्तिनः। शरीरस्याकारः शरीराकारस्तमनुवर्तन्ते शरीराकारानुवर्तिनः। के ते गुणा दोषाश्च भवन्ति। शरीरस्य सादृश्यं गुणा दोषाश्चानुवर्तन्ते। निर्दोषं शरीरं गुणा अनुवर्तन्ते। सदोषं शरीरं दोषाश्चानुवर्तन्त इति। तथा चोक्तम्—

'यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति' इति।।२।।

अथ गुणानाह—

तत्र गुणाः—शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतः स्व-तन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभावः पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिता-होराग्रन्थार्थवेत्तेति ॥३॥

दैवज्ञों के गुण कहते हैं—पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, निर्मल चित्त वाला, सभी में निर्भय, सहपाठियों से पराजय को नहीं पाने वाला, चेष्टाओं को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र-पाठ-विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या)—इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ विना पूछे भी शान्तिकर्म बताने वाला और ग्रहों की गणित, संहिता, होरा—इनके ग्रन्थों के अर्थ को जानने वाला दैवज्ञ होना चाहिए।।३।।

तत्र गुणा इति। तत्र तस्मिन् सांवत्सरे शरीरे वा गुणाः। के ते? तद्यथा शुचिः शास्त्रोक्तशौचानुष्ठाता परस्वदेवधनाद्यलुब्धश्च। दक्षश्चतुरः शीघ्रकारी। प्रगल्भः सभायां वक्तुं शक्तः। वाग्मी प्रशस्ता शास्त्रार्थानुसारिणी वाग्यस्य। प्रतिभानवान् प्रतिभा एव प्रतिभानम्, तद्विद्यते यस्यासौ प्रतिभानवान्। पृष्टः सन् पौर्वापर्येण शास्त्रं स्मृत्वोत्तरं ददातीत्यर्थः। देशकालवित् देशवित्सर्वदेशेषु व्यवहारज्ञः। मध्यदेशादिष्वार्यदेशेषु यच्चेष्टितं तज्जानाति। कालस्वरूपज्ञः पूर्वाह्णमध्याह्नाऽपराह्णादिषु कालेषु घर्मवर्षशीतसाधारणकालेषु चेदं क्रियते इदं न क्रियत इति जानाति। अथवा देशमानूपजाङ्गलमरुभूमीत्यादिकं

हस्त्यश्वखरोष्ट्रनावादिषु मनुष्यगम्यं जानाति। कालं यात्रादाविदं योग्यमिदमयोग्यमिति जानाति। अथवा देशविद्यथा—कश्मीरादिषु हिमप्रधानेषु बहुव्रीहिसम्भवं दृष्ट्वोत्पातं न वक्ति मध्यदेशादौ वक्ति। कालविद्यथा—

चित्रगर्भोद्भवा: स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।
पत्राङ्कुरलतानां च विकारा: शिशिरे शुभा:।। इति।

सात्त्विको निर्मलचित्त:। भयहर्षशोकादिभिरनभिभवनीय:। न पर्षद्भीरु:। परिषदि सभायामभीरुस्त्यक्तभय:। सहाध्यायिभिरनभिभवनीया। सह सार्द्धमध्ययनं पठनं कृतं यैस्ते सहाध्यायिनस्तै: सहाध्यायिभि: समानतन्त्रैरनभिभवनीयो ज्ञेय:। कुशल: शिक्षित इङ्गितज्ञ:। अव्यसनी गीतवाद्यनृत्यस्त्रीद्यूतद्युनिद्रादिषु व्यसनेष्वसक्त:। शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञ:। उत्पातप्रतीकारार्थं वेदोक्तमन्त्रपाठविनियोगानुष्ठाता शान्तिकविद्याभिज्ञ:। आयुर्धनादिष्वधिकरणं पौष्टिकविद्या तदभिज्ञ:। कृत्यावेतालोत्थापनमारणोच्चाटनविद्वेषणवशीकरणस्तम्भनचालनादिकमभिचारविद्या तदभिज्ञ:। स्नानविद्यासु नित्यनैमित्तिककाम्यक्रियाङ्गास्वभिज्ञ:। पुष्यस्नानादिषु वेत्ता। आभिमुख्येन जानातीत्यभिज्ञ:। विबुधार्चनव्रतोपवासनिरत:। विबुधा देवास्तेषामर्चनं पूजा आवाहनस्नानमाल्यानुलेपनधूपोपहारवाद्यगेयनृत्यस्तोत्रपाठादिका तस्यामभिज्ञ:। व्रतानि कृच्छ्रपराकचान्द्रायणप्रभृतीनि। उपवास: अभोजनम्। यथा—एकादश्यां न भुञ्जीतेत्यादि, एतेषु निरत: सक्त:। स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभाव:। स्वतन्त्रं ग्रहगणितं तत्रार्कचन्द्रग्रहणग्रहसमागमयुद्धानामनागताभिधायकत्वाद्यन्त्राणां कूर्ममयूरचापशङ्खघण्टापुरुषादीनां काष्ठादिविरचितानां स्वयमेव कालव्यञ्जकत्वाद्यदाश्चर्यं कुतूहलं तेनोत्पादितो जनित आत्मन: प्रभाव उत्कर्षो येन। पृष्टाभिधायी परिपृष्टस्यार्थस्याभिधायको वक्ता। नापृष्टस्य किन्त्वन्यत्र देवात्ययात्। दिव्यान्तरिक्षभौमेषूत्पातेषु यद्भाव्यशुभं स दैवात्ययस्तन्निवारणाय शान्त्यादिकमपृष्टेनाप्यभिधातव्यं वक्तव्यम्। ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवेत्ता। ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्तिकायां संहितायां फलग्रन्थे होरायां जातकादौ ग्रन्थार्थवेत्ता ग्रन्थज्ञोऽर्थज्ञश्च। सूत्रार्थपाठकस्तदर्थविदित्यर्थ:।।३।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्तनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता ॥४॥

ग्रहगणित के प्रसंग में पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर, पैतामह—इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घटी, पला, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता ज्यौतिषी को होना चाहिये।

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में युगों का प्रमाण—तैंतालीस लाख बीस हजार सौरवर्ष (४३२००००) सन्ध्या सन्ध्यांशसहित चारो युग (एक महायुग) का मान है। इसके

दशमांश ४३२००० को चार से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित कृतयुग का मान = १७२८०००, तीन से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित त्रेता का मान = १२९६०००, दो से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित द्वापर का मान = ८६४००० और एक से गुणा करने पर सन्ध्या-सन्ध्यांशसहित कलियुग का मान = ४३२००० होता है।

सौरवर्ष-प्रमाण—मेष से लेकर मीनपर्यन्त जितने सायनकाल में रवि भोग करता है, वह सौरवर्षकाल होता है। यह वर्षादि ३६५/१५/३०/२२/३० होते हैं।

अयनज्ञान-प्रमाण—मकरादि छः राशियों में यदि सूर्य हो तो उत्तरायण और कर्क आदि छः राशियों में हो तो दक्षिणायन होता है।

मकर-कुम्भ के सूर्य में शिशिर ऋतु, मीन-मेष के सूर्य में वसन्त ऋतु, वृष-मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म ऋतु, कर्क-सिंह के सूर्य में वर्षा ऋतु, कन्या-तुला के सूर्य में शरत् ऋतु और वृश्चिक-धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है।।४।।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् ग्रहगणिते पञ्चसिद्धान्ता भवन्ति। के ते? पौलिशरोमकवासिष्ठ-सौरपैतामहा:, पुलिशसिद्धान्त:, रोमकसिद्धान्त:, वासिष्ठसिद्धान्त:, सूर्यसिद्धान्त:, ब्रह्म-सिद्धान्त इति। एतेषु सिद्धान्तेषु पञ्चसु वेत्ताऽभिज्ञ:। युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाम-मुहूर्तनाडीविनाडीप्राणत्रुटित्रुट्याद्यवयवस्य कालस्य वेत्ता। युगानां कृतत्रेताद्वापरकलीनां प्रमाणज्ञ:। यथैतावद्भि: सौरैर्वर्षै: कृतयुगं भवति, एतावद्भिस्त्रेता, एतावद्भिर्द्वापरम्, एता-वद्भि: कलिरिति। तद्यथा—खखखदन्ताब्धय: कलियुगपरिमाणं तदेव द्विगुणं द्वापरप्रमाणं त्रिगुणं त्रेताप्रमाणं चतुर्गुणं कृतयुगप्रमाणं भवति। एतै: सर्वैरेकीकृत्य चतुर्युगप्रमाणं भवति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

> खचतुष्टयरदवेदा ४३२०००० रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
> सन्ध्यासन्ध्यांशै: सह चत्वारि पृथक् कृतादीनि।।
> युगदशभागो गुणित: कृतं चतुर्भिस्त्रिभिर्गुणस्त्रेता।
> द्विगुणो द्वापरमेकेन सङ्गुण: कलियुगं भवति।।

तथा च पुलिशसिद्धान्ते दिव्येन मानेन पठ्यन्ते—

> अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात् कृतादीनाम्।
> अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्ययुगं तदेकत्वम्।। इति।

तद्यथा—४८००। ३६००। २४००। १२००। एते दिव्येन मानेनात: षष्टिस-मधिकशतत्रयेण गुणिता जाता: १७२८००० कृतम्। १२९६००० त्रेता। ८६४००० द्वापरम्। ४३२००० कलि:। एवं युगानां वेत्ता।

यावता कालेनार्को द्वादशराशिकं भचक्रं मेषादिमीनान्तं भुङ्क्ते, तद्वर्षं तेन सौरवर्षप्रमा-णेन युगसंख्यानम्। एवं रविराशिभोगो मास:। द्वादशभिर्मासैर्वर्षमिति। तथा च ब्रह्म-सिद्धान्ते—'नृवत्सरोऽर्काब्द:' इति।

अयने दक्षिणोत्तरे षड्भिः सूर्यमासैरुत्तरमयनं षड्भिर्दक्षिणमिति। तत्र मकरादिराशिषट्कस्थेऽर्क उत्तरमयनं कर्क्यादिराशिषट्कस्थे दक्षिणमिति।

ऋतवः षड् भवन्ति शिशिरादयः। ते च मासद्वयात्मकाः। तद्यथा—मकरकुम्भस्थेऽर्के शिशिरः। मीनमेषस्थे वसन्तः। वृषमिथुनस्थे ग्रीष्मः। कर्कटसिंहस्थे वर्षाः। कन्यातुलास्थे शरत्। वृश्चिकधन्विस्थिते हेमन्त इति। तथा चाचार्यः—

उदयगयनं मकरादावृतवः शिशिरादयश्च सूर्यवशात्।
द्विभवनकालसमाना दक्षिणमयनं च कर्कटकात्।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

द्वौ द्वौ राशी मकरादृतवः षट् सूर्यगतिवशाद्योज्याः।
शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरदः सहेमन्ताः।। इति।

मासश्चैत्रादिकः। स च रविराशिभोगस्त्रिंशद्दिनात्मकः। पक्षो मासार्धं पञ्चदश दिनानि। अहोरात्रं षष्टिर्घटिकाः। यामोऽहोरात्राष्टमभागः। दिनस्य चतुर्थभागो रात्रेश्च। मुहूर्तोऽह्नः पञ्चदशांशः, रात्रेश्च पञ्चदशभागः। नाडी घटिकाऽहोरात्रषष्ट्यंशः। विनाडी विघटिका घटिकाषष्ट्यंशः। प्राणः श्वासनिर्गमप्रवेशौ। त्रुटिश्चक्षुर्निमेषद्वयम्। त्रुट्याद्यवयवस्तदर्धम्। आदिग्रहणात् त्रुटिचतुर्थभागमपि। एवमादिकस्य वेत्ता।

तथा च भगवान् पराशरः—यावता कालेन विकृतमक्षरमुच्चार्यते स निमेषः। निमेषद्वयं त्रुटिः। त्रुटिद्वयं लवः। लवद्वयं क्षणः। दश क्षणाः काष्ठा। दश काष्ठाः कला। दश कला नाडिका। नाडिकाद्वयं मुहूर्तः। त्रिंशन्मुहूर्ता दिनमिति। एवं कालस्य वेत्ता। तथा क्षेत्रस्य वेत्ता। तत्र कालक्षेत्रयोः साम्यम्। तद्यथ—काले षट् प्राणा विघटिका। विघटिकानां षष्ट्या घटिका। घटिकानां षष्ट्या दिनम्। दिनानां त्रिंशता मासः। मासैर्द्वादशभिर्वर्षं भवति। अथ क्षेत्रे। षष्ट्या तत्पराणां विलिप्ता भवति। विलिप्तानां षष्ट्या लिप्ता। लिप्तानां षष्ट्या भागः। भागानां त्रिंशता राशिः। राशिद्वादशकं भगण इति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

प्राणैर्विनाडिका षड्भिर्घटिकैका विनाडिकाषष्ट्या।
घटिकाषष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता मासः।।
मासा द्वादश वर्षं विकलालिप्तांशराशिभगणान्तः।
क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन।।

तथा च पौलिशे—

षट् प्राणास्तु विनाडी तत्षष्ट्या नाडिका दिनं षष्ट्या।
एतासां तत्त्रिंशन्मासस्तैर्द्वादशभिरब्दः।।
षष्ट्या तु तत्पराणां विकला तत्षष्टिरपि कला तासाम्।
षष्ट्यांशस्ते त्रिंशद्राशिस्ते द्वादश भचक्रम्।।

तथा चार्यभटः—

> वर्षं द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत् स मासस्तु।
> षष्टिर्नाड्यो दिवसः षष्टिश्च विनाडिका नाडी।।
> गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः।
> एवं कालविभागः क्षेत्रविभागस्तथा भगणात्।।४।।

अन्यदप्याह—

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।।५।।

सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र—इन चारो मासों को और अधिकमास, क्षयमास—इनके उत्पत्ति-कारणों को जानने वाला ज्यौतिषी होना चाहिये।।५।।

विशेष—सूर्य के एक अंश भोग्य काल को एक सौर दिन, सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक एक सावन दिन, नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय तक एक नाक्षत्र दिन और एक तिथि भोग्य काल को चान्द्र दिन कहते हैं।

अधिमास और क्षयमास का लक्षण—शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमा तक एक चान्द्र मास होता है। यदि इस चान्द्र मास में रवि की संक्रान्ति न हो तो अधिक मास एवं दो संक्रान्ति हो तो क्षयमास होता है। क्षयमास कार्तिक आदि तीन महीने में ही होता है तथा जिस वर्ष में क्षयमास होता है, उस वर्ष में दो अधिमास पतित होते हैं।

चतुर्णां च मानानामिति। त्रिंशद्भागपरिकल्पनया यावता कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते तत्सौरं दिनम्। तत्त्रिंशता मासः। एवं राशिभोगेन संक्रान्त्यवधिर्यो मास एतत्सौरं मानम्। सर्वेषां ग्रहनक्षत्राणां स्वोदयात् पुनः स्वोदयं यावत्तत्सावनं दिनम्। तत्त्रिंशता मास इति। एवं सावनं मानम्। नाक्षत्रं मानं चन्द्रनक्षत्रभोगः। यावता कालेन नक्षत्रमेकं चन्द्रमा भुङ्क्ते तन्नाक्षत्रं दिनम्। तत्र च दिनानां सप्तविंशत्या मासो भवति। एवं नाक्षत्रं मानम्। अमावास्यान्तात् प्रतिपत्प्रभृत्यर्काच्चन्द्रः प्रतिदिनमग्रगो भूत्वा प्रतिपदाद्यान् पञ्चदश तिथीन् निर्वर्तयति यावत्पौर्णमास्यन्तम्। तथा च कृष्णपक्षप्रतिपत्प्रभृत्यर्कसमीपं क्रमेण गत्वा अमाबास्यान्तं निर्वर्तयतीति चान्द्रं मानम्। एवं तिथिरेव चन्द्रदिनम्। त्रिंशत्तिथयो मास इति। तथा च पुलिशसिद्धान्ते—

> सावनमकृतं चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य।
> सौरं भूदिनराशिं शशिभगणदिनानि नाक्षत्रम्।।

सावनमकृतं स्वयमेव सिद्धं यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्त एव सौरमानेनाब्दाः। यदस्माकं सौरमानं तत्पुलिशाचार्यसावनम्। तत्र चतुर्युगाब्दाः ४३२००००। एत एव द्वादशहताः सावनमासाः ५१८४००००। एतावत्यश्चतुर्युगेणार्कसंक्रान्तयः। एतास्त्रिंशद्गुणाः सावनमानदिनानि १५५५२००००००। एतावतश्चतुर्युगेणार्को भागान् भुङ्क्ते, तत्र यावता

कालेनार्को भागमेकं भुङ्क्ते स सावनमानदिवसः सिद्धः—'चान्द्रं सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्ये'ति। तद्यथा—

परिवर्तैरयुतगुणैर्द्विद्वित्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते।

इति रविभगणाः ४३२००००।

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियैश्चन्द्रः।

इति चन्द्रभगणाः ५७७५३३३६।

अर्कचन्द्रभगणानामन्तरम् ५३४३३३३६।

एतान् सूर्येन्दुसमागमान् दिनीकृत्य त्रिंशता सङ्गुण्य दिनरूपा भवन्ति। ते च दिनीकृत्य जाताः १६०३०००००८० चतुर्युगेणैतावन्तश्चान्द्रेण मानेन दिवसा भवन्ति। यदेव चान्द्रं मानं सैव तिथिः।

सौरं भूदिनराशिमिति। भूदिनराशिश्चतुर्युगभगणाः। तस्यानयनमहर्गणविधिनैव। तच्च प्रदर्श्यते। सावनमासानामेतेषां ५१८४०००० चतुर्युगाधिमासका उच्यन्ते—

अधिमासकाः षडग्नित्रिकदहनच्छिद्रशररूपाः।

न्यासः १५९३३३६ एतान् संयोज्य जाताः ५३४३३३३६। एत एव रविचन्द्रसमागमा उत्पन्नाः। यत उक्तम्—

भगणान्तरशेषं यत्समागमास्ते द्वयोर्ग्रहयोः।। इति।

अत एव त्रिंशता गुणिता जाताः १६०३०००००८०। एते चन्द्रमानदिवसा उत्पन्नाः। एतेषां चतुर्युगोनरात्राः के ते उच्यन्ते—

तिथिलोपाः खवसुद्विकदस्राष्टकशून्यशरपक्षाः २५०८२२८०।

एतान् संशोध्य जातम् १५७७९१७८००। एष भूदिनराशिश्चतुर्युगाहर्गणः। तावन्तश्चतुर्युगेण दिवसाः सौरेण मानेन भवन्ति। अस्माकं सावनं तत्पुलिशाचार्यस्य सौरमानम्। अर्द्धरात्रादर्द्धरात्रं यावत्सौरेण मानेन दिनमुदयादुदयं वा।

शशिभगणदिनानि नाक्षत्रमिति। तत्र शशिभगणाः ५७७५३३३६। एते त्रिंशद्गुणिताः सन्तो दिनीकृताः १७३२६०००८०। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसाः। अत्र नक्षत्रभोगदिनं चन्द्रभगणत्रिंशद्भागो दिनम्। एवं यावता कालेन चन्द्रो द्वादश भागान् भुङ्क्ते तावता कालेन नाक्षत्रं दिनम्। भगवद्वसिष्ठादिभिश्चन्द्रनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रदिनमभिहितम्, किन्तु तैर्नक्षत्रमानैः सप्तविंशत्या दिनैर्मासोऽभिहितः। एवं पुलिशाचार्यस्य नाक्षत्रं मानं वसिष्ठादिभिः सह भिन्नम्। अस्य सर्वमानेषु त्रिंशद्दिनात्मको मास इति प्रतिज्ञा। पराशरादीनां यत्सौरं मानं तस्यानेन सावनमिति संज्ञा कृता सावनस्य सौर इति। अथैतानेव पठति—

दस्रार्थबाणतिथयो लक्षहताः १५५५२००००० सावनेन ते दिवसाः।
वियदष्टखचतुष्कत्रिखषोडश १६०३०००००८० चान्द्रमानेन।।

वसुसप्तरूपनवमुनिनगतिथयः शतगुणाश्च १५७७९१७८०० सौरेण।
आर्क्षेण खाष्टखत्रयषड्दस्रगुणानिलशशाङ्काः १७३२६०००८०।।

अथ चन्द्रभगणाः सप्तविंशत्या गुणिता वसिष्ठादिमतेन नाक्षत्रं मानम्—

पक्षसप्तखशून्याब्धिगुणगोऽर्थशरेन्दवः १५५९३४००७२।
चतुर्युगार्क्षाण्येतानि कथितानि पुरातनैः।। इति।

तथा च भट्टबलभद्रः—

रव्यंशभोगोऽहोरात्रः सौरश्चान्द्रमसस्तिथिः।
चन्द्रनक्षत्रभोगश्च नाक्षत्रः परिकीर्तितः।।
स्वसावनो ग्रहर्क्षाणामुदयादुदयावधिः।
नक्षत्रमाने मासः स्यात् सप्तविंशतिवासरैः।।
शेषमानेषु निर्दिष्टो मासस्त्रिंशद्दिनात्मकः।
इष्टाः सर्वेषु मानेषु समा द्वादशमासिकाः।। इति।

अन्यच्च नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यतो नक्षत्रपरिवर्त्ता नियता एव, एषा-मगतित्वात्। नक्षत्रपरिवर्तेभ्यो ग्रहभगणान् संशोध्य प्रत्येकस्य ग्रहस्य सावनं मानं भवति। यतो नक्षत्रग्रहौ यदैकत्र स्थितौ भवतस्तदा नक्षत्रमगतित्वात्तत्रैव तिष्ठति। ग्रहः स्वस्वगतिवशेन प्रतिदिनं नक्षत्रादग्रगो भूत्वोदयास्तमयौ करोति। भूम्यासन्नो दृष्टिपथं यातीति यावत्। तेन नाक्षत्रं मानं सावनसाधकम्। तथा च पुलिशसिद्धान्ते पठ्यन्ते नक्षत्रपरिवर्त्ताः—

खखाष्टमुनिरामाश्विनेत्राष्टशररात्रिपाः १५८२२३७८००।
भानां चतुर्युगेणैते परिवर्त्ताः प्रकीर्तिताः।।

एभ्यः सूर्यभगणान् संशोध्य जाताः सावनदिवसा इति १५७७९१७८००। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

रविभगणोना भानां सावनदिवसाः कुदिवसा वा।

तथा च—

नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।। इति।

अधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः। अधिमासकसम्भवः सौरमासचान्द्रमास-योरन्तरात्। यथाऽहर्गणे क्रियमाणे पूर्वं सौरो वर्षगणो भवति। तस्मिन् मासीकृते वर्त्तमान-वर्षगतमाससंयुक्ते त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य चान्द्रो मासगणो भवति। तेन सौरमासचान्द्रमासानामन्तरमधिमासकाः। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—'शशिमासाः सूर्य-मासोना अधिमासाः' इति।

अथावमसम्भवः प्रदर्श्यते—शशिमानसावनमानयोरन्तरादवमोत्पत्तिः। चान्द्रं मानं

यावत्सावनमानेन मीयते तावत्प्रतिवर्षं षड्दिनान्यधिकतराणि न पूर्यन्ते तान्येवोनरात्रवाच्यानि तिथीनां न्यूनताऽवमानि तत्र तिथ्यानयने कर्म। अर्कोनस्य चन्द्रस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य खयमस्वरै७२०र्भागे हृते भुक्ततिथयो लभ्यन्ते। शिष्टस्य षष्टिगुणस्य चन्द्रार्कस्फुटभुक्त्यन्तरं भागहारः। तच्च कदाचिन्न्यूनं कदाचिदधिकं भवति। तेन मध्यमभुक्त्योरन्तरेणोत्पत्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा—अर्कमध्यमभुक्तिः ५९। चन्द्रमध्यमभुक्तिः ७९०। अनयोरन्तरं सप्तशतमेकत्रिंशदधिकम् ७३१। अत्र खयमस्वरान् ७२० विशोध्यैकादश ११ अवशिष्यन्ते, तान्यवमशब्दवाच्यानि। तानि चानुदिनं तिथिप्रमाणादधिकमग्रतोऽर्काच्चन्द्रो भूत्वा तिथिलोपं करोति तदेवावमरात्रसंज्ञम्। एवं शशिदिवसानां सावनदिवसानां चान्तरमवमानि। तथा च ब्राह्मे—'शशिसावनदिवसान्तरमवमानि' इति। एवमत्र ज्ञानं यथा—सौरचान्द्रमानयोरन्तरमधिमासकाः शशिसावनयोरन्तरमवमानि। अत्र पुलिशाचार्यः—

चान्द्रैः सावनवियुतैः प्रचयस्तैरपचयोऽर्कदिनहीनैः।

चतुर्युगचन्द्रदिवसानां सावनदिवसान् संशोध्य चतुर्युगाधिमासकदिवसा भवन्ति। तेषां त्रिंशता भागमपहृत्य चतुर्युगाधिमासकाः। तैरेव चन्द्रदिवसैरर्कसावनदिनहीनैर्यदवशिष्यते तावन्ति चतुर्युगेणापचयदिनानि भवन्ति। ऊनरात्रा इत्यर्थः। सावनमासस्य चन्द्रमानेन सहान्तरे कृते यदतिरिच्यते तदधिमासकाख्यः। चन्द्रमानात्सौरं यदूनं तदूनरात्राः। तद्यथा—चतुर्युगे चन्द्रदिवसानामेतेषां १६०३०००८० सावनमानाहानीमानि १५५५२००००० संशोध्य जातं ४७८०००८० सावनमानादेतावन्ति चतुर्युगे चन्द्रदिनान्यतिरिच्यन्ते। एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तं १५९३३३६ एतावन्तश्चतुर्युगेणाधिमासकाः। अथवा सावनदिनानां चन्द्रदिनानां च त्रिंशता भागमपहृत्य मासाः कार्यास्तेषामन्तरेऽधिकमासकाः।

अथोनरात्रार्थं चान्द्रमानदिवसानामेतेषां १६०३०००८० सौरमानदिनान्येतानि १५७७९१७८०० संशोध्य जातं २५०८२२८० एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्राः। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिताः।

अथ संवत्सरस्य प्रदर्श्यते। तत्र सावनमानेन स्वानि संवत्सरदिनानि ३६०। अस्मिन्नेव सावनसंवत्सरे चन्द्रदिनानि ३७१/२८००८०/४३२००००। एतेषामुत्पत्तिमग्रतः प्रदर्शयिष्यामः। अत्र सावनमानाहानीमानि ३६० संशोध्य जातं ११/२८००८०/४३२००००। एतावन्ति दिनानि प्रतिसंवत्सरे प्रचयो भवति।

अथ संवत्सरप्रचयदिनानि प्रकारान्तरेणानीयन्ते त्रैराशिकेन। न्यासः ४३२००००। ४७८०००८०। १। अतः फलं तदेव।

अथ कियता कालेनाधिमासकः पततीति त्रैराशिकेन प्रदर्श्यते। न्यासः—११/२८००८०/४३२००००। ३६०। ३०। अत्राद्यो राशिः सवर्णीकृतो जातः ४७८०००८०। यस्मादाद्यो राशिश्चतुर्युगाब्दैर्गुणितः सवर्णीभूतस्तस्मादन्त्योऽपि राशिश्चतुर्युगाब्दैरेवं गुणितो जातः १२९६००००००। अथ भागहारराशिशेषः ४७८०००८०। गुण्यराशिना

षष्ट्यधिकैस्त्रिभि: शतैरपवर्तित: १३२७७८। एष भागहारराशि:। अथ भाज्यभाजकराशी जातौ १२९६०००००। १३२७७८। एतौ पुनरपि द्वाभ्यामपवर्तितौ जातौ ६४८०० ०००। ६६३८९। भाज्यस्य भाजकराशिना भागमपहृत्यावाप्तम् ९७६/४३३६/६६ ३८९। एतावद्भि: सावनदिवसैर्गतैरधिमास: पतति। वर्षद्वयं मासाष्टकं षोडशदिवसा दर्शिताऽवशेषसहिता:। अनेन कालेन भवति। एतेषामेव दिवसानां प्रकारान्तरेणानयनं त्रैराशिकेन १५९३३३६। १५५५२०००००। १। फलम् ९७६/१०४०६४/१५९३३३६। अत्रावशेषच्छेदौ चतुर्विंशत्याऽपवर्तितौ जातौ ४३३६/६६३८९। एवमधिमासकोत्पत्ति: प्रदर्शिता।

अथापचया: प्रदशर्यन्ते। तत्र चतुर्युगचन्द्रदिनानामेतेषां १६०३०००८०। सूर्यदिवसानेतान् १५७७९१७८०० संशोध्य जातम् २५०८२२८०। एतावन्तश्चतुर्युगेणोनरात्रा:। एवं चतुर्युगस्य प्रदर्शिता:।

अथ संवत्सरस्य प्रदशर्यन्ते। तत्र वक्ष्यमाणविधिना चन्द्रसंवत्सरे सौरमानदिनानि ३५४/१६३४३८८/४४५२७७८। एतानि चन्द्रसंवत्सरस्वदिनेभ्य: ३६० संशोध्य जातम् ५/२८१८३९०/४४५२७७८। अत्रावमशेषच्छेदौ द्वाभ्यामपवर्तितौ। एतावन्त: संवत्सरेणोनरात्रा भवन्ति। एतेषां त्रैराशिकेन प्रकारान्तरेणानयनम्। न्यास:—१६०३ ०००८०। २५०८२२८०। ३६०। अत्राद्यो भागहारराशिर्गुणकारराशिना षष्ट्यधिकैस्त्रिभि: शतैरपवर्तितो जात: ४४५२७७८। अनेन राशिना चतुर्युगोनरात्राणां भागमपहृत्यावाप्तम् ५/२८१८३९०/४४५३७७८। एतावन्त ऊनरात्रा: संवत्सरेण भवन्ति पूर्वानीतेषु संविदिता इति। अथ कतिभिर्दिवसैरूनरात्रपातो भवतीति तथा त्रैराशिकेन तत्प्रदशर्यते। न्यास:—५/२८१८३९०/४४५२७७८। ३६०। १। अत्राद्यो राशि: सवर्णीकृत: २५० ८२२८०। यस्मादनेन ४४५२७७८ राशिना गुणितो आद्यो राशि: सवर्णीभूतस्तस्मादनेनैव राशिनान्त्यो राशिरेष १ गुणितो जात: ४४५२७७८। एष भाज्यो राशि:। अथास्य भाजकराशे: २५०८२२८० गुण्यराशिनानेन ३६० भागमपहृत्यावाप्तम् ६९६ ७३। अनेन भाज्यस्याऽस्य राशे: ४४५२७७८ भागमपहृत्यावाप्तम् ६३/६३२७९/ ६९६७३। एतावद्भिश्चान्द्रमानदिवसैरूनरात्र: पतति। अस्यैवोनरात्रस्यानयने त्रैराशिकेनापर: प्रकार:। २५०८२२८०। १६०३०००८०। १। अत: फलम् ६३। अत्रावशेषच्छेदौ षष्ट्यधिकैस्त्रिभि: शतैरपवर्तितौ जातौ ६३२७९/६९६७३। एतावन्त एव ऊनरात्रदिवसा: पूर्वानीतेषु संविदिता इति। तथा चाचार्य:—

युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रम्।
अवमविहीनं सावनमैन्दवभब्दान्वितं त्वार्क्षम्।। इति।

एवमधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञ:।। इति।।५।।

अन्यत् कीदृशो दैवविदित्याह—

षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित् ।।६।।

प्रभव आदि साठ संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा—इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति (प्रवर्तन) और छेद (निवृत्ति) का ज्ञान भी दैवज्ञ को होना चाहिये।।६।।

षष्टिवर्षाणि षष्ट्यब्दः। स च पुनः पुनर्भवति। तस्य प्रतिपत्तिः प्रवर्तनं कस्मिन् काले षष्ट्यब्दस्य प्रारम्भो भविष्यति। एतच्च बृहस्पतिचारे वक्ष्यत्याचार्यः—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रवृत्तो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः।। इति।

छेदस्तस्यैव षष्ट्यब्दस्य निवृत्तिः। तज्जानातीति छेदवित्। तन्मध्ये च तत्र द्वादशयुगानि भवन्ति।

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्टपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः।। इति।

एतेषामाचार्यो बृहस्पतिचारे गणितविधानं वक्ष्यति। वयमपि तत्रैव व्याख्यास्यामः। एषामपि प्रतिपत्तिच्छेदवित्। अत्र च सावनमानेन वर्षपतिर्भवति। तत्र चानयनमाचार्येणोक्तम्। तथाऽहर्गणानयनम्—

सप्ताश्विवेदसंख्यं शक्रकालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सोमदिवसाद्ये।।
मासीकृते समासे द्विष्ठे सप्ताहतेऽष्टयमपक्षैः २२८।
लब्धैर्युतोऽधिमासैस्त्रिंशद्घ्नस्तिथियुतोऽधःस्थः ।।
रुद्रघ्नः समनुशरो ५१४ लब्धोनो गुणखसप्तभि७०३र्द्युगणः।
रोमकसिद्धान्तेऽयं नातिचिरे पौलिशेऽप्येवम्।। इति।

अतो वर्षाधिपानयनम्—

मुनियमयमद्वि२२२७युक्ते द्युगणे शून्यद्विपञ्चयमभक्ते २५२०।
प्रतिराशि खर्त्तुदहनैर्लब्धं वर्षाणि यातानि।।
तानि प्रपन्नसहितान्यग्निगुणान्यश्विवर्जितानि हरेत्।
सप्तभिरेवं शेषो वर्षाधिपतिः क्रमात् सूर्यात्।।

तत्राहर्गणस्य षष्टिशतत्रयेण भागे हृते यच्छेषं तानि दिनानि प्रवृत्तस्याब्दपतेर्गतानि तान्येव षष्ट्यधिकाच्छतत्रयात् संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनान्येवाब्दपतिर्भविष्यति।

एवमब्दपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ। मासपतेरपि सावनेनैव मानेन प्रवृत्तिनिवृत्ती भवतः। तस्य चानयनमाचार्येण तत्रैवोक्तम्। तथा च—

त्रिंशद्भक्ते मासाः प्रतिपत्सहिता द्विसंगुणा व्येकाः।
सप्तोद्धृतावशेषो मासाधिपतिस्तथैवार्कात्।।

तत्र त्रिंशता भागे हृते यदवशिष्यते तावन्त्येव दिनानि तस्य मासपतेः प्रवृत्तस्य

गतानि। तानि च त्रिंशत: संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति दिनानि स एव मासपतिर्भवति। एवं मासाधिपते: प्रतिपत्तिच्छेदौ जातौ। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

षष्टिशतत्रयभक्तात् कल्पगताहर्गणतात्फलं त्रिगुणम्।
सैकं सप्तविभक्तं सावनवर्षाधिपोऽर्कादि:।।
द्युगणात्त्रिंशद्भक्ताद्यल्लब्धं द्विगुणितं सरूपं तत्।
सप्तविभक्ते शेष: सावनमासाधिपोऽर्कादि:।।

दिनपतिहोराधिपत्योराचार्याणां निश्चयो नास्ति। केषाञ्चिदौदयिको वारपति:। अन्येषां माध्याह्निकोऽन्येषामास्तमयिकोऽन्येषामार्द्धरात्रिक इति। तथा चाचार्य:—

द्युगणाद्दिनवाराप्तिर्द्युगणोऽपि हि देशकालसम्बन्ध:।
लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये।।
रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहित:।
यवनानां निशि दशभिर्गतैर्मुहूर्तैश्च तद्गुरुणा।।
लङ्कार्द्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभट:।
भूय: स एव चार्कोदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्।।
देशान्तरसंशुद्धिं कृत्वा चेन्न घटते तथा तस्मिन्।
कालस्यास्मिन् साम्यं तैरेवोक्तं यथा शास्त्रम्।।
मध्याह्नं भद्राश्वेष्वस्तमयं कुरुषु केतुमालानाम्।
कुरुतेऽर्द्धरात्रमुद्यन् भारतवर्षे युगपदर्क:।।
उदयो यो लङ्कायां योऽस्तमय: सवितुरेव सिद्धपुरे।
यमकोट्यां मध्याह्नं रोमकविषयेऽर्द्धरात्रं च।।
अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्का: ।
अयनर्त्वार्क्षगतिनिशा: समं प्रवृत्ता युगस्यादौ।।
अन्यद्रोमकविषयाद् देशान्तरमन्यदेव यवनपुरात्।
लङ्कार्द्धरात्रसमयादन्यत् सूर्योदयाच्चैव।।
सूर्यस्यार्द्धास्तमयात् प्रतिविषयं यदि दिनाधिपं ब्रूम:।
तत्रापि नाप्तवाक्यं न च युक्ति: काचिदप्यस्ति।।
सन्ध्या क्वचित्क्वचिदह: क्वचिन्निशा दिवसपते: क्वचित्क्वचित्।
स्वल्पे स्वल्पे स्थाने व्याकुलमेवं दिनपतित्वम्।।
होरावार्त्ताप्येवं यस्माद्धोरा दिनाधिपस्याद्या।
तस्यापरिनिष्ठाने होराधिपति: कथं भवति।।
अविदित्वैवं प्रायो दिनवारे जनपद: प्रवृत्तोऽयम्।
स्फुटतिथिविच्छेदसमं युक्तमिदं प्राहुराचार्या:।। इति।

एवं स्थिते सति दिनवार औदयिक इत्यस्माकं मतम्। यस्माद्भट्टब्रह्मगुप्तेनोक्तम्—

जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्ट्यादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्माद् दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात्।।

तत्र च विशेषः—

दिनवारादिः पश्चादुज्जयिनीदक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
देशान्तरघटिकाभिः प्राक् पश्चाद्भवति रव्युदयात्।। इति।

दिनाधिपस्तु सावनेनैव मानेन भवति, किन्तु देशे देशे स्वदेशान्तरघटिकाभिश्चरार्द्ध-कालयुक्ताभिर्वियुक्ताभिर्वा क्वचित्सूर्योदयाद्दिवागते काले क्वचित्सूर्योदयात्पूर्वं दिनप्रवृत्तिः।

तद्यथा—उज्जयिनीयाम्योत्तररेखायाः प्राग्भागे स्वदेशान्तरघटिकाभिः सूर्योदयात्परतो वारप्रवृत्तिर्भवति। रेखापश्चिमभागे स्वदेशान्तरतुल्याभिर्घटिकाभी रात्रिशेषाभिर्वारप्रवृत्तिरिति। एवं विषुवद्दिने चरदलाभावादन्यकाले चरदलं स्वधिया योज्यं यथासम्भवम्। तत्रायं प्रयोगः—स्वदेशमध्याह्नघटिकाः पञ्चदशभ्यो विशोध्यावशेषघटिकाभिस्ताभी रेखाप्राग्भागे मध्याह्नात् प्राग् वारादिः स्वदेशे नित्यं वक्तव्यः। रेखापश्चिमभागे मध्याह्नादूर्ध्वं तावतीभिरेव घटिका-भिरिति। तथा च भट्टबलभद्रः—

उज्जयिनीतस्तु गता या रेखा दक्षिणेन लङ्कायाम्।
उत्तरतस्तु सुमेरोर्ज्ञेया देशान्तराख्या सा।।
स्वदेशरेखान्तरयोजनानां षष्ट्या हतानां स्फुटभूहृतानाम्।
ज्ञेयः स लब्ध्या घटिकादिकालो देशान्तराख्यः सततं स्वदेशे।।
चरार्द्धतत्कालयुतौ गतायां दिवा सुराहे दिनपादिवेला।
रेखादिभागे च परे निशायां कालेन शेषेण महेन्द्ररात्रौ।।
रेखादिभागे त्रिदिवेशरात्रौ कालान्तरोनश्चरखण्डशेषः।
काले नते तत्क्षणदावशेषे न्यूने चरार्द्धे तु दिवागते स्यात्।।
रेखापरार्द्धे तु कृतान्तराले चरार्द्धकालाभ्यधिके दिनस्य।
काले प्रयाते त्रिदशाह्नि वेला तदूनतायां क्षणदावशेषे।।

एवं यस्मिन् काले वर्तमानस्य दिनपतेः प्रवृत्तिस्तस्मिन् कालेऽतीतस्य निवृत्तिरिति। एवं दिनपतेः प्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ।

अथ होराधिपत्यानयने तत्र यावतीनां घटीनां वारपतेरारम्भात्प्रभृति दिनगतानां रात्रि-गतानां वा कालहोरा ज्ञातुमिष्यते ता घटिका अभीष्टकाले गता एकीकृत्य यावत्यो भवन्ति ता द्विगुणाः कार्याः। ततस्तासां पञ्चभिर्भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमो दिनपात्प्रभृतीष्टे काले होराधिपो भवति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदधः पञ्चभ्यो विशोधयेत्। ततो द्वावप्यूर्ध्वाधः-स्थितावङ्कावर्द्धीकृत्योर्ध्वस्थो वर्तमानहोरापतेर्गतः कालः। अधःस्थितो यस्तावत्कालः स एव होराधिपतिः। तथा च भट्टबलभद्रः—

प्रारम्भकालाद्दिनपस्य याते काले यमघ्नेऽर्थहृते तु लब्धिः।
शराहता चन्द्रयुताद्रिभक्ता शेषस्तु होराधिपतिर्द्युपादेः।।

तथा चास्मदीयवचनम्—

वारपतेरारम्भात्कालाद्द्विगुणाच्छरैर्हताल्लब्धम्।
पञ्चघ्नं रूपयुतं मुनिभक्तं वारपात् स होरेश:।।

तत्र होराधिपतेर्नाडिकाद्वयं सार्द्धभागं परिकल्प्य प्रवृत्तिनिवृत्त्यो: परिकल्पना कार्या। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

दिनगतघटिका द्विगुणा: पञ्चहृता वान्यमतमेतत्।। इति।

तथा चाऽऽचार्य:—

सप्तोद्धृते दिनेशस्त्रिगुणो व्येको युतश्च होराभि:।
पञ्चघ्न: सप्तहृतो विज्ञेय: कालहोरेश:।। इति।

अत्राऽहर्गणाद्यो दिनपतिस्ततोऽस्यानयनं कार्यम्। एवं वर्षाधिपादीनामयं गणनाक्रम:। वर्तमानवर्षाधिपाच्चतुर्थोऽन्यस्मिन् वर्षे भवति। मासाधिपाद् मासपतिस्तृतीय:। होराधिपाद्धोरापति: षष्ठ:। दिनपतिर्निरन्तर इति। तथा चाऽऽचार्य: कक्षाक्रममुक्त्वाऽऽह—

मासाधिपा यथोर्ध्वं चन्द्रात् सौरादधश्च होरेशा:।
ऊर्ध्वक्रमेण दिनपाश्च पञ्चमा वर्षपा: स्पष्टा:।। इति।

तथा च—

वर्षाधिपश्चतुर्थो मासाधिपतिस्तथा तृतीयोऽन्य:।
होराधिपश्च षष्ठो निरन्तरं दिवसनाथ: स्यात्।।

एवं होराधिपतिप्रतिपत्तिच्छेदौ ज्ञातौ।।६।।

अथान्यदप्याह—

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटु: ।।७।।

दैवज्ञ को अनेक शास्त्रों में कहे गये सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में कुशल होना चाहिये अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है? कौ नहीं? इसका विचार करने में योग्य होना चाहिये।।७।।

सौरमानं रविराशिभोग:। अनया कल्पनया यावता कालेनार्को राशिद्वादशकं भचक्रं भुङ्क्ते तावान् कालो रविमानेन वर्षं भवति। द्वादश राशयो द्वादशमासा एव। एतच्च सौरं मानं सावनदिनानां पञ्चषष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति घटिकापञ्चदशकेन सार्द्धेनाधिकम्।

सावनं मानं स्वोदयात् स्वोदयं यावत् षष्ट्यधिकेन दिनशतत्रयेण भवति। नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रभोग:। तच्च कदाचित् षट्षष्टिघटिका भवन्ति कदाचिच्चतुष्पञ्चाशत्। अत्रापि मध्ये सञ्चरति।

चान्द्रं तिथिभोग:। तस्यापि नक्षत्रवदूनाधिकता। एतदसदृशत्वं मानानाम्। सदृशत्वं

चैककार्यकरणद्वारेण। तच्चैककार्यकरणं ग्रहगतिसाधनं नाम। तद्यथा—प्रथमं तावन्नक्षत्र-परिवर्त्ता इष्टग्रहभगणोना यावत्क्रियन्ते तावदिष्टग्रहस्य सावनदिवसा भवन्ति। ते च नक्षत्र-परिवर्त्ताः सूर्यभगणोना भूदिनसंज्ञास्तावत् स्थाप्याः। तत्रेष्टकाले कल्पाब्दा ये गता रवि-परिवर्ताः सौरमानोत्पन्नास्ते च द्वादशगुणिता वर्त्तमानकाले चैत्रसिताद्यतीतमाससंयुक्ता रविमानेनैव मासा भवन्ति। ततस्तस्मिन् मासगणे त्रैराशिकोपलब्धान् गताधिमासकान् संयोज्य त्रिंशता सङ्गुण्य वर्त्तमानमासगततिथीः संयोज्य चान्द्रो दिनगणो भवति। स च त्रैराशिकोपलब्धैस्तिथिलोपैर्विहीनः सावनोऽहर्गणो भवति। स चेष्टग्रहभगणगुणः सावनदिन-हृतः फलं भगणादिको ग्रहः। स च स्फुटीकृतो जातकादावुपयुज्यत इति।

एवं सर्वमानानामेककार्यत्वं नाम सादृश्यम्। अथवा पुलिशसिद्धान्तानुसारेण प्रद-र्श्यते। तत्र सदृशत्वविज्ञाने सूत्रम्—

युगवत्सरैः प्रयच्छति यदि मानचतुष्टयं किमेकेन।
यदवाप्तं ते दिवसा विज्ञेयाः सावनादीनाम्।।

युगवत्सरैः यदि माने माने पठितदिवसा लभ्यन्ते तदैकस्मिन् संवत्सरे कियन्तः स्युरिति त्रैराशिके न्यासः ४३२००००। १५५५२०००००। १। अतः फलम् ३६०। एवं ज्ञातं यथा सावनमानवर्षे एतावद्भिः सावनमानदिवसैर्वर्षमिति।

न्यासः ४३२००००। १६०३००००८०। १। अतः फलम् ३७१/२८००८०/४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्तश्चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४२२००००। १५७७९१७८००। १। फलम् ३६५/१११७८००/४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्तः सौरमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३२००००। १७३२६००८०। १। फलम् ४०१/२८००८०/४३२ ०००० सावनवर्षेणैतावन्तो नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४३२००००। १५५९३४००७२। १। फलम् ३६०/४१४००७२/४३२००००। सावनवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चान्द्रमानेन चातुर्युगदिवसानाम् १६०३००००८० एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्या-वाप्तम् ५३४३३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण चान्द्रमानेन मासा भवन्ति। एतेषां द्वादश-भिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४४५२७७८। एतावन्ति चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन वर्षाणि भवन्ति। तत्र न्यासः ४४५२७७८।१६०३००००८०। १। फलम् ३६०। एतावन्तश्चान्द्रमानवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १५५५२०००००। १। फलम् ३४९/११८०४०८/४४५२७७८। चान्द्रवर्षेणैतावन्तः सावनमानदिवसा भवन्ति।

न्यासः ४४५२७७८। १५७७९१७८००। १। फलम् ३५४/१६३४३८८/४४५२७७८। एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण सौरदिवसा भवन्ति।

न्यास: ४४५२७७८। १७३२६०००८०। १। फलम् ३८९/४६९४३८/४४ ५२७७८। एतावन्तश्चान्द्रवर्षेण नाक्षत्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यास: ४४५२७७८। १५५९३४००७२। १। फलम् ३५०/८६७७७२/४४ ५२७७८। एतावन्ति चान्द्रवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगसौरमानदिवसानामेतेषां १५७७९१७८०० त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५२५९७२६०। एतावन्तश्चतुर्युगेण सौरमानमासा भवन्ति। तेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४३८३१०५। एतेषां चतुर्युगेण वर्षाणि भवन्ति।

न्यास: ४३८३१०५। १५७७९१७८००। १। फलम् ३६०। एतावन्त: सौरेण वर्षेण सौरमानदिवसा भवन्ति।

न्यास: ४३८३१०५। १५५५२०००००। १। फलम् ३५४/३५८०८३०/४३८३१०५। सौरवर्षेणैतावन्त: सावनमानदिवसा भवन्ति।

न्यास: ४३८३१०५। १६०३०००८०। १। फलम् ३६५/३१६६७५५/४३८३१०५। एतावन्त: सौरवर्षेण चान्द्रमानदिवसा भवन्ति।

न्यास: ४३८३१०५। १७३२६०००८०। १। फलम् ३९५/१२७३६०५/४३८३१०५। एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यास: ४३८३१०५। १५५९३४००७२। १। फलम् ३५५/३३३७७९७/४३८३१०५। एतावन्ति सौरवर्षेण नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिवसा: १७३२६०००८०। एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासा:। एतेषां द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४८१२७७८। एतावन्ति चतुर्युगनाक्षत्रमानवर्षाणि भवन्ति।

न्यास: ४८१२७७८। १७३२६०००८०। १। फलम् ३६०। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यास: ४८१२७७८। १६०३०००८०। १। फलम् ३३३/३४५००६/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति चान्द्रमानदिनानि भवन्ति।

न्यास: ४८१२७७८। १५५५२०००००। १। फलम् ३२३/६७२७०६/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सावनमानदिनानि भवन्ति।

न्यास: ४८१२७७८। १५७७९१७८००। १। फलम् ३२७/४१३९३९४/४८१२७७८। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति सौरमानदिनानि भवन्ति।

न्यास: ४८१२७७८। १५५९३४००७२। १। फलम् ३२४। नाक्षत्रमानवर्षेणैतावन्ति नाक्षत्राणि भवन्ति।

अथ चतुर्युगेण नाक्षत्राणामेतेषां १५५९३००७२ सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमासा: पूर्वानीतेषु नाक्षत्रमानमासेषु संविदिता:। एतेषां तुल्यत्वाद्वर्षाणि तुल्यान्येव। वर्षाणां तुल्यत्वात्सर्वमानेषु त्रैराशिकमपि तुल्यम्। अत्र तात्पर्यार्थ:—सौरमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव वर्षे चान्द्राणि त्रीणि शतानि एकसप्तत्यधिकानि किञ्चिदधिकदिनानि आयान्ति। तस्मिन्नेव सावनदिनानि त्रीणि शतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि सपादान्यायान्ति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानि चत्वारि शतान्येकाधिकानि किञ्चिदधिकान्यायान्ति।

तथा चान्द्रमानं स्वमानेन षष्ट्यधिकं दिनशतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां शतत्रयमेकान्नपञ्चाशदधिकं सपादं भवति। तस्मिन्नेव सावनदिनानां शतत्रयं चतुष्पञ्चाशदधिकं सावशेषं भवति। तस्मिन्नेव नाक्षत्रदिनानां शतत्रयमेकान्ननवत्यधिकं भवति।

तथा सावनं वर्षं स्वमानेन षष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां भवति। तस्मिन्नेव रविदिनानां चतुष्पञ्चाशदधिकं शतत्रयमेकान्नपञ्चाशद्घटिकाधिकं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रं पञ्चषष्ट्यधिकं शतत्रयं दिनानां त्रिचत्वारिंशद्घटिकाधिकं भवन्ति। तस्मिन्नेव शतत्रयं पञ्चनवत्यधिकं दिनानां नाक्षत्रमानं भवति।

तथा नाक्षत्रं वर्षं स्वमानेन दिनानां षष्ट्यधिकं शतत्रयं भवति। तस्मिन्नेव चान्द्रदिनानां शतत्रयं त्रयस्त्रिंशदधिकं भवति। तस्मिन्नेव शतत्रयं त्रयोविंशत्यधिकं दिनानां सौरं मानं भवति। तस्मिन्नेव सावनं दिनं दिनानां शतत्रयं सप्तविंशत्यधिकं भवति। एवं प्रत्येकं स्वमानेन षष्टिशतत्रयं दिनानां भवत्येव तत्सदृशत्वम्। एवं सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशत्वं च ज्ञातम्।

अथ योग्यायोग्यत्वं प्रतिपाद्यते। सौरं मानं क्व योग्यं क्व वाऽयोग्यं तेन यन्निश्चीयते तदुच्यते। तद्यथा—युगानि कृतयुगादीनि तथा वर्षाणि विषुवद्द्वयमयनद्वयमृतवो दिनप्रमाणं चेति। अत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा चान्द्रेण तिथय: करणान्यधिमासकोनरात्रामावस्यान्तं पौर्णमास्यन्तम्। तत्र तद्योग्यं नान्यत्र। तथा सावनं यज्ञव्रतोपवासचिकित्सांसूतकप्रायश्चित्त-ग्रहगतौ योग्यत्वं नान्यत्र। नाक्षत्रं मानं सावनमानस्य मूलभूतं यद्वशात् क्रियते तत्तत्र योग्यं नान्यत्र। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

> सौरेणाब्दा मासास्तिथयश्चान्द्रेण सावनैर्दिवसा:।
> दिनमासाब्दपमध्या न तद्विनाऽर्केन्दुमानाभ्याम्।।
> मानानि सौरचान्द्रार्क्षसावनानि ग्रहानयनमेभि:।
> चारै: पृथक् चतुर्भि: संव्यवहारश्च लोकस्य।।
> युगवर्षविषुवदयनर्त्वहर्निशावृद्धिहानय: सौरात्।
> तिथिकरणाधिकमासोनरात्रपूर्वक्रियाश्चान्द्रात् ।।
> यज्ञसवनप्रमाणग्रहगत्युपवाससूतकचिकित्सा: ।
> सावनमानाज्ज्ञेया: प्रायश्चित्ता: क्रियाश्चान्या:।।

नक्षत्रसावनदिनात् सूर्यादीनां स्वसावनदिनानि।
यस्मात्तस्मादार्क्षं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।। इति।

केचित्तु चन्द्रनक्षत्रभोगेण रूपसत्राख्यो यो व्रतविशेषस्तत्रोपयोगित्वमाहुर्नाक्षत्रमानस्य। तथा च भगवान् गर्गः—

सावनैन्दवसावित्रैर्दिनमाससमात्मकैः ।
व्यवहारो भसत्रेषु भमानेन प्रकीर्तितः।। इति।

एवं सौरादीनां मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादने पटुः कुशलः।।७।।

अन्यदप्याह—

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितां-शकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः।।८।।

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य—इनको जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।८।।

सिद्धान्तभेदेऽपीति। सिद्धान्ताः पौलिशादयः, तेषां भेदः असादृश्यम्, तस्मिन्नपि प्रति-पादने कुशलः शक्तः। अतिगणितपटुत्वात्। यथा—अमुकसिद्धान्तस्याऽमुकसिद्धान्तेन सह ग्रहाणामेतावदन्तरममुकेनापि सहैतावदन्तरमिति।

एवं ग्रहणसमागमादीनामपि। तथा चाऽऽचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायामेव प्रदर्शितम्। तथा च—

खार्कघ्नेऽग्निहुताशनमपास्य रूपाग्निवसुहुताशकृतैः।
हत्वा क्रमाद्दिनेशो मध्यः केन्द्रं सविंशांशम्।।

इति पौलिशे। तथा च—

रोमकसूर्यो द्युगणात् खतिथिघ्नात्पञ्चकर्तुपरिहीणात्।
सप्ताष्टकसप्तकृतेन्द्रियोद्धृतात् मध्यमः सूर्यः।।

तथा—

द्युगणेऽर्कोऽष्टशतघ्ने विपक्षवेदार्णवेऽर्कसिद्धान्ते।
स्वरखाश्विद्विनवयमोद्धते क्रमाद्दिनदलेऽवन्त्याम्।। इत्यादि।

एवं सिद्धान्तत्रयेणार्कमानीयान्तरं बोद्धव्यमिति। तथायनयोर्दक्षिणोत्तरयोर्या निवृत्ति-र्निवर्तनं तस्यामपि प्रतिपादने कुशलः। यथा—अमुकसिद्धान्तेऽर्कस्यैतावद्भिर्दिनैरेतावती-भिर्घटिकाभिरयनचलनममुकसिद्धान्ते एतावतीभिर्दृष्ट्याऽमुकस्मिन् दिने एतावतीभिर्घटिकाभिश्च दृश्यते तत्प्रतिपादने च कुशलः। एतच्चाऽऽचार्येणैव प्रतिपादितम्। तथा च पञ्चसिद्धान्ति-कायाम्—

आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदाऽऽसीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः।।

तथा च वक्ष्यति—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।।
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः।।

तथा च दृष्टिवेधमाचार्य एव वक्ष्यति—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमये सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति।। इति।

कथं प्रतिपादने कुशलः। प्रत्यक्षं दृश्यमानं पीठयन्त्रादिभिः कालयन्त्रैर्यथा लोकाः प्रतिपद्यन्ते। अपिशब्दः समुच्चये। तथा सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानां च प्रतिपादने कुशलः। यथा स्वदेशसममण्डलाख्या लेखा विषुवल्लेखेत्यर्थः। तया योऽसौ ग्रहाणां सम्प्रयोगः सम्प्रवेशस्तत्र येऽभ्युदितांशका अभिमुखेनोद्गताः शेषा वांशकाः। स्वाहोरात्रवृत्ते ये दिनभागा दिनगतघटिकाः शेषघटिका वेत्यर्थः। यथास्मिन्निष्टदिने भगवतो भास्करस्य एतावतीभिर्दिनगतघटिकाभिः सममण्डलप्रवेशो भवति तावतीभिश्च शेषाभिः। तासां प्रतिपादने कुशलः।

अर्कस्य सममण्डलप्रवेशकाल आचार्येण तत्रोक्तः। तथा च—

इष्टोत्तरगोलापक्रमांशकज्यां खभास्कराभ्यस्ताम्।
हृत्वाक्षजीवया तच्चापादुदयेन तत्कालः।।
तस्मिन् दिनकृत् कुरुते सममण्डलसंश्रयं दिनाद्ये वा।
तावच्छेषे परतो न तुलादिषु विद्यते चैतत्।।

मेषस्थः सूर्यः प्रथमेऽह्नि सममण्डलरेखायामेवोदितस्तस्यामेवास्तमयं याति, क्रान्त्यभावात्। ततः प्रतिदिनं यथा यथाऽर्कस्य क्रान्तिसम्भवो भवति, तथा तथा दिनगते काले सममण्डलप्रवेशो भवति। यावति दिनगते काले तावति दिनशेषेऽपि भवति। एवं यावत्कन्यान्तं तावद्भवति सममण्डलप्रवेशो राशिषट्केऽर्कस्य। तुलादिष्वेतन्न सम्भवति। एवं मेषादिराशिषट्के स्थितस्य सममण्डलप्रवेशो भवति, न तुलादिराशिषट्के स्थितस्य। तत्र प्रविष्टस्याभिज्ञानमिदम्—

कृतदिग्ग्रहणे वृत्ते रेखां पूर्वापरां यदा छाया।
प्रविशति सम्यक् शङ्कोः सममण्डलगस्तदा सूर्यः।।

तत्र च काले शङ्क्वानयनम्—

उत्तरगोलेऽर्कज्या काष्ठान्तगुणा ध्रुवज्यया भक्ता।
ताः शङ्कुलिप्तिकाख्यास्ताभिः सममण्डले छाया।।

सममण्डलज्ञस्य फलम्—

सममण्डललेखासम्प्रवेशवेलां करोति योऽर्कस्य।
तत्प्रत्ययं च जनयति जानाति स भास्करं सम्यक्।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विषुवत्कर्णेन गुणा विषुवच्छायोद्धृतोत्तरा क्रान्तिः।
यद्यूनाक्षज्याभ्यः शङ्कुः सममण्डलस्थेऽर्के।।

एवमेतेषां सर्वेषां सिद्धान्तभेदादीनां छायया तात्कालिकया यन्त्रैश्च चक्रधनुस्तुयगोलयष्टिशङ्कुघटिकाकपालकर्तरीपीठैः कालपरिच्छेदकैस्तथा दृग्गणितसाम्येन दृष्टेर्गणितस्य च यत्साम्यं सादृश्यमेकरूपता तेन प्रतिपादने कुशलः शक्तः। गणितेनोपलभ्यच्छायां यन्त्रैर्दृष्ट्या समीकरोतीत्यर्थः।।८।।

तथाऽन्यदप्याह—

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः ।।९।।

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।९।।

सूर्योदय आदित्यादयो ग्रहाः। आदित्यचन्द्रभौमबुधजीवशुक्रसौराः। तेषां कः शीघ्रः को मन्द इत्यस्मिन् कारणेऽभिज्ञः। तत्र च सर्वग्रहेभ्यश्चन्द्रमाः शीघ्रस्ततो मन्दो बुधस्ततः शुक्रस्ततोऽर्कस्ततः कुजस्ततो गुरुस्ततः शनिरिति। तथा सर्वग्रहेभ्यो मन्दः शनैश्चरस्ततो गुरुः शीघ्रस्ततः शुक्रस्ततो बुधस्ततश्चन्द्रमा इति। यस्य तु भूमेरासन्नो भ्रमः सोऽन्यस्माच्छीघ्रः। यस्य दूरः स मन्दः। यस्य च महती भुक्तिः स शीघ्रो यस्याल्पा स मन्द इति। तथा चाऽऽचार्यः—

चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवार्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भगणस्याधःशनिगुरुभूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्राः।
कक्ष्याक्रमेण शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्त्या।।

तथा चाऽऽचार्यभटः—

भानामधःशनैश्चरबृहस्पतिकुजार्कशुक्रबुधचन्द्राः।
तेषामधश्च भूमिर्मेढीभूता खमध्यस्था।।

तत्र यस्य भूमिनिकटभ्रमः सोऽल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयत्यतः शीघ्रः। यस्य दूरे

स महता कालेनातो मन्दः। यतो भूम्यासन्नस्याल्पो भ्रमस्तत्र च राशिभागा अल्पा एव भवन्ति। दूरस्थितस्य च महान् भ्रमस्तत्र च राशिभागा एव महान्तस्तेन चन्द्रमाः स्वल्पेन कालेन भगणभोगं पूरयति महता कालेन सौरः। तथा चाऽऽचार्यः—

तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेम्यां महदेवं संस्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्।।
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलाधःस्थः।
ऊर्ध्वस्थस्तुल्यजवोऽपि संस्थितस्तथा न महदर्कसुतः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पमल्पेन।
पूरयतीन्दुर्महता कालेन महाशनैश्चारी।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

मण्डलमल्पमधःस्थात् कालेनाल्पेन पूरयति चन्द्रः।
उपरिष्टात् सर्वेषां महच्च महता शनैश्चारी।।
अल्पे हि मण्डलेऽल्पा महति महान्तश्च राशयो ज्ञेयाः।
अंशाः कलास्तथैव विभागतुल्याः स्वकक्ष्यासु।। इति।

तथा च याम्योत्तरादिगतिः। मेषादितः कन्यान्तं यावद्यो ग्रहो याति स उत्तरां गति-माश्रितो भवति। तुलादितो मीनान्तं यावद्यो ग्रहो याति स दक्षिणां गतिमाश्रितो भवति। तथा चाऽऽचार्यभटः—

मेषादेः कन्यान्तं समुदगयनमण्डलार्धमुपयातम्।
तौल्यादेर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैव।।

एतत्सूर्यस्य दक्षिणोत्तरगतिकारणमुक्तम्। चन्द्रादिकस्तु पुनः सूर्यभ्रमणप्रदेशानुसारेण स्वभ्रमप्रदेशात् स्वविक्षेपवशेन दक्षिणेनोत्तरेण वा याति। एतदुक्तं भवति—आदित्यस्य विक्षेपाभावात् क्रान्तिरेव स्वक्रान्तिः। चन्द्रादीनामर्कवत्क्रान्तिं कृत्वा तस्या विक्षेपेण सहैकदिक्केन योगः कार्यो भिन्नदिक्केन वियोगः। एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति यस्य च क्रान्तिरुत्तरा स उत्तरां गतिमाश्रितो भवति, यस्य दक्षिणा स दक्षिणाम्। अथवा मकरादौ राशिषट्के स्थित उत्तरां गतिमाश्रितो भवति कर्कटादौ राशिषट्के दक्षिणाम्। यस्मा-दुत्तरायणस्थो ग्रहः प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति दक्षिणायनस्थो दक्षिणाम्। एवं ग्रहाणां याम्योत्तरा गतिः।

अथ नीचोच्चा ग्रहाणां गतिः। तत्र स्वभ्रमणप्रदेशात् कदाचिद् ग्रह उपरि स्थितो भवति कदाचिदधःस्थः। यत्र मध्यमो ग्रहो भवति तत्कक्ष्यामण्डलम्। यत्र स्फुटग्रहो भवति तत्प्रतिमण्डलम्। अर्कचन्द्रौ मन्दप्रतिमण्डले भ्रमतः। ताराग्रहाः शीघ्रप्रतिमण्डले भ्रमन्ति। तत्र कक्ष्यामण्डलादुपरि स्थितो ग्रहो यदा भवति तदा द्रष्टुरतिदूरस्थो भवत्य-तिदूरत्वात्

स्वल्पबिम्बो दृश्यते स चोच्चां गतिमाश्रितो भवति। यदा कक्ष्यामण्डलादधःस्थितो भवति तदा भूमेरासन्नत्वान्महान् प्रमाणो दृश्यते स नीचां गतिमाश्रितो भवति। तत्र च ग्रहे स्फुटीक्रियमाणेऽन्त्यकर्णः प्रथमे केन्द्रपदे भवति चतुर्थे वा तदा ग्रह उच्चां गतिमाश्रितो भवति। अथ यदा द्वितीयतृतीयपदस्थो भवति तदा नीचां गतिमाश्रितोऽत एव त्रिज्यायां कोटिफलं धनमृणं वा क्रियते येन प्रतिमण्डलप्रापी स्फुटकर्णो भवति। तथा चाऽऽचार्यः—

शीघ्रान्मध्यविहीनाद्राशित्रितये गतैष्यदंशज्या।
भुजकोटी तत्परतः षड्भ्यः पतिते स एव विधिः।।
स्वपरिधिगुणिते भाज्ये खर्तुगुणैस्ते विपरिणते तच्च।
कोटिफलं व्यासार्धे मृगकर्क्यादौ चयापचयः।।

तद्भुजकृतियोगपदैरिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

तद्गुणिते ज्ये भांशैर्हृते फले कोटिफलयुता त्रिज्या।
आद्यन्तयोर्विहीना पदयोर्द्वितृतीययोः कोटिः।।
तद्भुजफलकृतियोगान्मूलं कर्ण.............................. इति।।

एवमादिषु कारणज्ञाने अभिज्ञः। अभि मुख्येन जानातीत्यभिज्ञः।।९।।

अन्यदप्याह—

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्णादेशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा ।।१०।।

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को बताने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।।१०।।

सूर्याचन्द्रमसोरर्कशशिनोर्ग्रहणे उपरागे ग्रहणादि ग्रहणप्रारम्भं जानाति। एतावति स्वदिनगते काले ग्राह्यग्राहकबिम्बसम्पर्कः। तथा मोक्षकालं जानाति। एतावति गते काले मोक्षः। ग्राह्यमण्डलं सकलं ग्राहकस्त्यजति। तथा कालं जानाति। प्रग्रहणमोक्षयोरन्तर एतावान् कालः। तथा दिक्। अमुकस्यां दिशि प्रग्रहणममुकस्यां निमीलनममुकस्यां मध्यग्रहणममुकस्यामुन्मीलनममुकस्यां मोक्ष इति। प्रमाणं यथा—खण्डग्रहण एतावद्बिम्बं छिन्नं भवति। मध्यग्रहणकालिके तिथ्यन्ते स्फुटप्रग्रहणस्थित्यर्धं विशोध्य ग्रहणादिर्भवति, तत्रैव मोक्षकालिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। स्थित्यर्धद्वयस्य योगः स्थितिकालः। विमर्दो निमीलनोन्मीलनयोर्मध्यकालः। तावन्तं कालं ग्राह्यबिम्बं सकलं ग्राहकः सञ्छाद्य तिष्ठति स विमर्दकालः। तथा वर्णो ग्रहणे ग्राहकगृहीतस्य बिम्बस्य। स धूम्रकृष्णताम्रकपिल इति। एतत्सर्वं गणितस्कन्धनिर्दिष्टम्। वलनविक्षेपवशेन परिलेखेन प्रग्रहणादीनां दिग्ज्ञानम्। मध्यग्रहणपरिलेखकरणात् प्रमाणज्ञानम्। निमीलिनोन्मीलनविमर्दार्द्धयोर्योगे विमर्दकालः। वर्णो तथा—

आद्यन्तयोः स धूम्रः कृष्णः खण्डग्रहेऽर्धतोऽभ्यधिके।
ग्रासे स कृष्णताम्रः सर्वग्रहणे कपिलवर्णः।। इति।

एवमादिकानामादेशानामनागतानामेष्याणामादेष्टा कथयिता। तथा अनागतानां ग्रहसमागमानां ग्रहयुद्धानां चादेष्टा। समागमस्ताराग्रहाणां चन्द्रमसा सहैकराशिगतानां भवति। भौमादीनामेकराशिगतानां दक्षिणोत्तरसंस्थानवशेन युद्धं भवति।

तत्र समागमे युद्धे चैतत्परिज्ञानम्। यथा—अमुको ग्रह उत्तरे। अमुको दक्षिणे भविष्यति। तयोश्चान्तरमेतावन्तो हस्ता एवमेतावन्त्यङ्गुलानि वा भेदः समागमो वा भविष्यतीति। एतदपि गणितसिद्धम्। ग्रहयोर्विक्षेपौ कृत्वा ततस्तयोर्विक्षेपयोरेकदिक्कयोरन्तरं कार्यं भिन्नदिक्कयोर्योगः। ततस्तस्मादन्तराद्योगाद्वा ग्रहमानैक्यार्धं विशोधयेत्। यदि न शुद्ध्यति तदा भेदसमागमः। अधःस्थेन ऊर्ध्वस्थो ग्रहश्छाद्यते। अथ शुद्ध्यति तदा संशोध्य यदवशिष्यते तद्ग्रहान्तरं स्फुटं भवति। तच्च लिप्तारूपं तस्य षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं भागास्त एव हस्ताः शेषं चतुर्विंशत्यां सङ्गुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तान्यङ्गुलानि। तत्र यस्य दक्षिणो विक्षेपः स दक्षिणभागस्थो यस्योत्तरः स उत्तरविभागस्थः। द्वयोरेकदिक्कयोर्यस्याधिकः स तत्रस्थः। इतरोऽन्यत्र स्थितः। तत्र फलानि वक्ष्यत्याचार्यः। तथा चोक्तम्—

भागैः कराः परस्परमेषां युद्धं समागमः शशिना।
रविणास्तमय उदक्स्थो ग्रहो जयी दक्षिणे शुक्रः।। इति।

एतेषामप्यनागतानामादेष्टा।।१०।।

अन्यदप्याह—

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः ।।११।।

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।।११।।

एकमेकं प्रत्येकं प्रत्येकस्य ग्रहस्य भ्रमणयोजनानि प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनानि तेषां परिच्छेदे परिच्छितौ विज्ञाने कुशलः शक्तः। यथा—अमुको ग्रह एतावद्भिर्योजनैर्भूगोलादुपरि भ्रमति। ग्रहयोजनकर्णं जानातीत्यर्थः। तथा कक्ष्याप्रमाणपरिच्छेदकुशलः। अमुकस्य ग्रहस्यैतावन्ति कक्ष्यायोजनानि। मध्यमो ग्रहो यत्र भ्रमति तद्वृत्तपरिज्ञानमित्यर्थः।

तच्च कक्ष्याकर्णपरिज्ञानं पुलिशादिषु पठ्यते। तत आनीयास्माभिरिह प्रदर्श्यते। तत्र तावद्योजनप्रमाणज्ञानम्—

योजनमष्टौ क्रोशाः क्रोशश्चत्वारि करसहस्राणि।
हस्तः शङ्कुद्वितयं द्वादशभिः सोऽङ्गुलैः शङ्कुः।।

अथ ग्रहाणां चतुर्युगाध्वयोजनप्रमाणम्—

युगमासाधिकमासाः सभमासा योजनीकृताः सोऽध्वा।
प्राग्यायिनां ग्रहाणां तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ताः।।

यावन्तश्चतुर्युगेणार्कभगणास्तावन्ति सावनमानेन चतुर्युगवर्षाणि भवन्ति। तानि च—

परिवर्तैरयुतगुणैर्द्विर्त्रिकृतैर्भास्करो युगं भुङ्क्ते ४३२००००।

एतानि चतुर्युगवर्षाणि द्वादशगुणानि ५१८४००००। एते सावनेन चतुर्युगमासा:। एत एव साधिमासका: कर्तव्या:।

अधिमासका: षडग्नित्रिकदहनच्छिद्रशररूपा: १५९३३३६।

एतैर्युक्ता जाता: ५३४३३३३६। एते चतुर्युगेण चान्द्रेण मानेन मासा भवन्ति। एते भमाससहिता: कर्तव्या:। भमासाश्चात्राधिका ग्रहीतव्या:। चतुर्युगेण चान्द्रमासेभ्यो यावन्तोऽतिरिच्यन्त इति। तत्र चतुर्युगेण नाक्षत्रमानदिनानि।

आर्क्षेण खाष्टखत्रयरसयुग्मगुणानिलशशाङ्का: १७३२६०००८०।

एतेषां त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ५७७५३३३६। एतावन्तश्चतुर्युगेण नाक्षत्रमानमासा भवन्ति। एत एव चन्द्रभगणा:। चन्द्रभगणेनैकेन नाक्षत्रमानमासो भवति। तस्मान्नाक्षत्रमानमासानां चन्द्रमासा: संशोध्या:। संशोध्य जाता: ४३२००००। एतावन्तश्चतुर्युगेण चन्द्रमासेभ्यो नक्षत्रमासा अतिरिच्यन्त इति। तस्मादेतान् भमासान् सूर्यमासाधिमाससंयोगेऽस्मिन् ५३४३३३३६ संयोज्य जाता: ५७७५३३३६। एवं युगमासाधिकमासभमासयोगतश्चन्द्रभगणा उत्पन्ना:। तस्माद्वक्ष्यति—

रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै५७७५३३३६श्चन्द्र:।

अथैते चन्द्रभगणा योजनीकार्या:। कथमित्यत्रोच्यते—चन्द्रकक्ष्यायां पञ्चदशभिर्योजनैरेकैका लिप्ता भवत्यतश्चन्द्रभगणानां लिप्ता: कृत्वा पञ्चदशभिर्गुणयित्वा योजनसंख्यात्वमाप्नुवन्ति। वक्ष्यति च—'पञ्चदशहता योजनसंख्ये'ति।

तत्र युगमासाधिकमासभमासयोगोऽयं ५७७५३३३६ द्वादशहतो जात: ६९३०४००३२। एते चतुर्युगेण चन्द्रराशय:। एते त्रिंशद्गुणा: २०७९१२००९६०। एते चतुर्युगेण चन्द्रभागा: षष्ट्या गुणिता: १२४७४७२०५७६००। एताश्चतुर्युगेण चन्द्रलिप्ता:। एता: पञ्चदशहता जाता: १८७१२०८०८६४०००। एतावन्ति योजनानि प्रत्येकस्य ग्रहस्य चतुर्युगाध्वा। आचार्य: पठिष्यति च—

वेदरसाष्टवियद्वसुखरविनगाष्टेन्दव: सहस्रघ्ना: १८७१२०८०८६४०००।

एतावन्ति योजनान्येकेन ग्रहेण स्वकक्ष्यास्थेन पूर्वां दिशमाक्रमता चतुर्युगेण गन्तव्यानीति। तद्युक्तम्—'प्राग्यायिनां ग्रहाणामि'ति।

तस्मात् कक्ष्या भगणभक्ता:। अत्र तावदाकाशकक्ष्याप्रमाणं क्रियते। तत्र चतुर्युगाध्वयोजनानीमानि १८७१२०८०८६४०००। एतान्यष्टाधिकेन चतुर्युगसहस्रेण कल्प इत्यष्टाधिकेन सहस्रेण गुणितानि जातानि १८८६१७७७५१०९१२०००। इयमाकाशकक्ष्या। अस्या अभ्यन्तरं सविता वितमस्कं करोति। एषा च पठ्यते—

खत्रयसूर्यनवाम्बरचन्द्रवाणमहीधरसप्तमहीध्राः ।
चन्द्ररसाष्टकमङ्गलचन्द्रा मार्गमिदं नभसः प्रवदन्ति।।

अथ ग्रहभगणाः—

परिवर्त्तैरयुतगुणैर्द्वित्रिकृतै४३२००००भास्करो युगं भुङ्क्ते।
रसदहनहुतवहानलशरमुनिपवनेन्द्रियै५७७५३३३६श्चन्द्रः।।
वेदाश्विवसुरसाङ्कलोचनदस्रै२२९६८२४रवनिसूनुः।
अम्बरगगनवियन्मुनिगुणविवरनगेन्दुभिः १७९३७००० शशिसुतश्च।।
आकाशलोचनेक्षणसमुद्रषट्कानलै३६४२२०र्जीवः ।
अष्टवसुहुतवहानलयमखनगै७०२३३८८र्भार्गवश्चापि।।
कृतरसशरर्त्तुमनुभिः १४६५६४ सौरो बुधभार्गवौ दिवाकरवत्। इति।

एतैर्भागमपहृत्य यथाक्रमं कक्ष्याप्रमाणानि। तद्यथा—

रविकक्ष्या खखार्थरूपाग्निगुणाब्धयः ४३३१५००
चन्द्रकक्ष्या शून्यखखजिनाग्नयः ३२४०००
भौमकक्ष्या मुन्यग्निनन्दषट्काब्धिरूपवसवः ८१३६९३७
बुधशीघ्रकक्ष्या भवरदाब्धिदिशः १०४३२११।
बृहस्पतिकक्ष्या वेदर्त्वगार्थमुनिविश्वार्थाः ५१३७५७६४
शुक्रशीघ्रकक्ष्या रदर्त्वब्धिषडङ्गाश्विनः २६६४६३२
सौरकक्ष्या गोऽग्न्यगशशिमुनिरसागार्काः १२७६७१७३९
रविकक्ष्या सविकला षष्ठिहता नक्षत्रकक्ष्या।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—अर्को भषष्ट्यंश इति। सा च रविखखगोऽष्टनवतत्त्वानि २५९८९००१२। तथा च पुलिशाचार्यः—

आकाशशून्यतिथिगुणदहनसमुद्रै४३३१५००र्बुधार्कशुक्राणाम्।
इन्दोः सहस्रगुणितैः समुद्रनेत्राग्निभि३२४०००श्च स्यात्।।
भूसूनोर्मुनिरामच्छिद्रर्त्तुसमुद्रशशिवसुभिः ८१४६९३७।
रुद्रयमाग्निचतुष्कव्योमशशाङ्कै१०४३२११र्बुधोच्चस्य।।
जीवस्य वेदषट्कस्वरविषयनगाग्निशीतकिरणार्थैः ५१३७५७६४।
शुक्रोच्चस्य यमानलषट्कसमुद्रर्त्तुरसदस्रैः २६६४६३२।।
भ्रमणोऽर्कजस्य नवशिखिमुनीन्दुनगषट्कमुनिसूर्यैः १२७६७१७३९।
रविखवियन्नववसुनवविषयेक्षणयोजनै२५९८९००१२र्भकक्ष्यायाः।।

अथ कर्णानयनम्

तत्रादौ तदुपयोगिनीनां चान्द्रीणां कलानामानयनमाह—

इष्टग्रहकक्ष्याभ्यो यल्लब्धं चन्द्रकक्ष्यया भक्त्वा।
ता मध्यमा ग्रहाणां सौरादीनां कलाश्चान्द्र्यः।।

इष्टग्रहकक्ष्यायोजनानां चन्द्रकक्ष्यायोजनैर्भागमपहृत्यावाप्तं लिप्तास्तस्यैव ग्रहस्य चान्द्र्यो भवन्ति। कक्ष्यामहत्त्वविवक्षया सौरादीनामित्युक्तम्। सौरादीनां मध्यमग्रहाणां चान्द्र्य: कला भवन्ति। तत्र कर्मणो लाघवार्थं सर्वग्रहाणां भाज्यभाजकराशी चन्द्रकक्ष्यायोजनैर-पवर्त्तनीयौ तत्र सर्वग्रहस्य भाज्यो राशिश्चन्द्रभगणा भवन्ति। भाजकराशि: स्वभगणा इति। तत्रैतत्कर्म जातम्। चन्द्रभगणानां यस्यैव ग्रहस्य सम्बन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कलाश्चान्द्र्यो भवन्ति। एवं दर्शितविधिना सर्वग्रहाणामागताश्चान्द्र्य: कला लिख्यन्ते।

रवे: १३/१५९३३३६/४३२००००।
चन्द्रस्य १।
भौमस्य २५/३३२७३६/२२९६८२४।
बुधस्य ३/३९४२३३६/१७९३७०००।
जीवस्य १५८/२०६५७६/३६४२२०।
शुक्रस्य ८/१५७४२३२/७०२२३८८।
शने: ३९४/७१२०/१४६५६४।

(खकक्षाया: ५८२१५३६२६८८)।

अथ चान्द्रीभि: कलाभिर्ग्रहकक्ष्याकर्णानयनमाह—

पञ्चदशहता योजनसङ्ख्या तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भ:।
योजनकर्णोऽध: स्याद्भूयोजनकर्णविधिना वा।।

एताश्चान्द्र्य: कला: पञ्चदशगुणिता योजनत्वं गच्छन्ति योजनभूताश्च क्रमेण लिख्यन्ते।

रवे: २००/२३०००४०/४३२००००।
चन्द्रस्य १५।
भौमस्य ३३७/३९७३६२/२२९६८२४।
बुधस्य ४८/५३२४०४०/१७९३७०००।
गुरो: २३७८/१८४८८०/३६४२२०।
शुक्रस्य १२३/२५४६३१६/७०२२३८८।
शने: ५९१०/१०६८००/१४६५६४।
नक्षत्राणाम् १२०३१/२०४१२/२१६००।

(खकक्षाया: ८७३२३०४४०३२०)।

एतानि प्रतिकक्ष्यं ग्रहाणां लिप्तायोजनानि। तत्सङ्गुणोऽर्द्धविष्कम्भ इति। एतै: सर्वकक्ष्यायोजनैरर्द्धविष्कम्भो व्यासार्द्धं ३४३७/९६७/१३०९ गुणित: प्रतिकक्ष्यं कर्णार्द्ध-योजनानि भवन्ति। तत्र व्यासार्द्धं ३४३७/९६७/१३०९ पूर्वानीतैराकाशकक्ष्यालिप्तायो-जनैरेतै: ८७३२३०४४०३२० गुणितं जाता: ३००१९३८१०६५२४०६४। एतदा-काशकक्ष्याकर्णार्द्धम्। भूवृत्तयोजनाष्टशतीं खनित्वा य: प्रदेशो भवति तस्मात्प्रदेशादेतावत्सु

योजनेष्वाकाशकक्ष्योपरि भवति। सर्वेषामेव कक्ष्याकर्णार्द्धानां तस्मादेव प्रदेशात् प्रवृत्तिर्ज्ञातव्या। एतत्पुलिशसिद्धान्ते पठ्यते—

कृतर्त्तुशून्यवेदाश्विपञ्चर्त्तुखनिशाकराः।
वस्वग्निरन्ध्रेन्दुखखगुणाः ३००१९३८१०६५२४०६४ कर्णार्द्धमाम्बरम्।।

अथ तदेव व्यासार्द्धं पूर्वानीतैर्नक्षत्रकक्ष्यालिप्तायोजनैरेतैः १२०३१/२०४१२/२१६०० गुण्यम्। तत्र गुण्यो राशिर्गुणकारश्च सवर्णीकृतो नक्षत्रकक्ष्यां जाता रविखवियन्नवसुनवविषयेक्षणयोजनानीति २५९८९००१२।

इयं नक्षत्रकक्ष्या व्यासार्द्धेन सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणनीया व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ खखषड्भूयम २१६०० हतेनानेन २८२७४४०० विभज्यते यस्मात् परस्परच्छेदवधो भागोपहारो भवति। तदर्थं गुणकारभागहारराश्योरनयोः ४५०००००। २८२७४४००। परस्परं वर्तने कृते जातम् ७२००। अनेनाप्तं गुणकारम् ६२५। अनेन नक्षत्रकक्ष्या गुणिता। एवं जाताः १६२४३१२५७५००।

अथ छेदेनानेन ७२०० छिन्नाद्भागोपहाराल्लब्धेनानेन ३९२७ भागो हर्तव्यः। लब्धम् ४१३६२६८३। एतन्नक्षत्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

अथ शनैश्चरकक्ष्यालिप्तायोजनानि ५९१०/१०६८००/१४६५६४ सवर्णीकृतानि ८६६३०००४० व्यासार्द्धेन च सवर्णीकृतेनानेन ४५००००० गुणितानि ३८९८३५० १८०००००००० सर्वग्रहाणां भाज्यो राशिः। अयं व्यासार्द्धच्छेदेनानेन १३०९ गुणितैर्यस्यैव ग्रहसम्बन्धिभिर्भगणैर्भागो ह्रियते तस्यैव कक्ष्याकर्णार्द्धं लभ्यते तस्मात् सर्वग्रहाणां कक्ष्यालिप्तायोजनानि सवर्णीकृतान्ययमेव ८६६३०००४० राशिर्भवति।

अस्य राशेः सर्वेषामेव सवर्णीकृतं व्यासार्द्धं गुणकारो ग्रहभगणहतो व्यासार्द्धच्छेदोऽयं १३०९ भागोपहारः। १३०९ अनेन गुणिता भगणाः सर्वेषां लिख्यन्ते यस्मात्ते भागोपहारा भविष्यन्ति। तद्यथा—रवेः ५३५४८८००००।

चन्द्रमसो नोपयुज्यते तत्कक्षायाः सविकलायाः पञ्चदशयोजनानि यस्माल्लिप्ता।

भौमस्य ३००६५४२६१६।

बुधस्य २३४७९५३३०००।

गुरोः ४७६७६३९८०।

शुक्रस्य ९१९२३०५८९२।

सौरस्य १९१८५२२७६।

अत्र भाज्यराशेरस्य सर्वग्रहाणाम् ३८९८३५०१८०००००००० आदित्यभागोपहारेणानेन ५३५४८८०००० भागमपहृत्यावाप्तम् ६८९३७८। एतदादित्यकर्णार्द्धम्।

व्यासार्द्धमेतत् ३४३७/९६७/१३०९। कक्ष्यालिप्तायोजनैः पञ्चदशभिर्गुणितम् ५१५६६। एतच्चन्द्रकक्ष्याकर्णार्द्धम्।

एवं सर्वेषां भाज्यराशेः स्वभाजकेन भागमपहृत्यानीताः सर्व एव। तद्यथा—

अर्ककर्णो वस्वागाग्निनन्दाष्टरसा: ६८९३७८।
चन्द्रकर्ण: षडर्तुशरैकार्था: ५१५६६।
भौमकर्णो नेत्रनेत्रर्त्वङ्गनन्दार्का: १२९६६२२।
बुधशीघ्रकर्ण: शशिगुणखाङ्गाष्टय: १६६०३१।
बृहस्पतिकर्णो वस्वष्टषट्षण्मुनिरूपवसव: ८१७६६८८।
शुक्रशीघ्रकर्णो वस्वष्टखाब्धिनेत्राऽब्धय: ४२४०८८।
सौरकर्णो रूपाब्धिशरनन्दैकगुणनखा: २०३१९५४१।
नक्षत्रकर्णो रामाष्टर्त्वश्विरसविश्वेवेदा: ४१३६२६८३।

तथा च पुलिशाचार्य:—

वसुमुनिगुणान्तराष्टकषट्कै६८९३७८र्दिननाथशुक्रसौम्यानाम्।
द्वादशदलषट्केन्द्रियशशाङ्कभूतै५१५६६रजनिकर्तु:।।
दस्राश्विषट्करसनवलोचनचन्द्रै१२९६६२२र्धरणिसूनो:।
रूपत्रिशून्यषट्काष्टि१६६०३१भिर्मितं तद्बुधोच्चस्य।।
अष्टवसुरसषण्मुनिशशाङ्कवसुभि८१७६६८८स्तु जीवस्य।
वसुवसुशून्याब्धिद्विकवेदै४२४०८८रपि भार्गवोच्चस्य।।
एकार्णवार्थनवशशिदहनखदस्रै २०३१९५४१ रविसुतस्य।
त्रिवसुरसद्विरसानलशशिवेदैर्ऋक्षकर्णार्द्धम् ४१३६२६८३।। इति।

भूयोजनकर्णविधिना वैतत्सूत्रखण्डकं प्रकारान्तरप्रदर्शनायातो न व्याख्यातम्।

एवं कर्णकक्ष्याप्रमाणेष्वभिज्ञ:। तथा प्रतिविषयं प्रतिदेशं योजनपरिच्छेदकुशल:। परिच्छेदो ज्ञानम्। यथा—इत: समुद्र एतावद्योजनसङ्ख्यस्तस्माद्देशादयं देश एतावन्ति योजनानि तत्र कुशल: शक्त:। तद्यथा—अभीष्टदेशद्वयाक्षभागानामन्तरं कृत्वा यद्भवति तेन स्वराश्विखशरान् ५०२७ सङ्गुण्य खर्त्वग्नि३६०भिर्विभजेत्, लब्धमिष्टदेशयोरन्तरयोजनानि। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

अक्षांशकुपरिधिबधान्मण्डलभागाप्तयोजनैर्विषुवति।
नतभागयोजनै: ख उपरि सूर्योऽन्यदनुपातात्।।

अथवाक्षद्वयान्तरभागैस्त्रैराशिकेन योजनानयनम्। यद्येकेन भागेन नवयोजनानि नवभागोनानि भवन्ति, तदाभीष्टभागै: किमिति लब्धं योजनानि। एतदेवाचार्यो 'दृश्ये चक्रस्यार्द्धे' इत्यादिना ग्रन्थेन वक्ष्यति। एवं प्रतिविषयं योजनपरिच्छेदकुशल:।।११।।

अथान्यदप्याह—

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञ: ॥१२॥

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चरखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।।१२।।

भूभगणेति। भूमेः संस्थानाभिज्ञः। भूमेः संस्थानं जानाति। यथा—भूर्गोलकाकारा खमध्यस्थिता नक्षत्रपञ्जरमध्यगता च ध्रुवतारकद्वयप्रतिबद्धा तिष्ठति। अयस्कान्तद्वया-कृष्टोऽन्तरे लोहपिण्ड इव। स च भूगोलः समन्तात्तरुनगनगरसरित्समुद्रादिभिर्व्याप्तः। तस्यो-परि मध्यभागे मेरौ देवास्तले दैत्या इति। एवमियं भूर्गोलकाकारा खमध्यगा तिष्ठति।

नन्विदमत्याश्चर्यमुच्यते यथा खस्थो भूगोल इति यावदल्पस्यापि मूर्तिमत्पदार्थस्याऽऽ-काशे स्थितिर्न दृश्यते किमिति पुनर्महाप्रमाणया भुवो नगनगरद्वीपगजरथतुरङ्गाद्यनेकाश्चर्या-कुलीकृतायाः। नैतद्योग्यं स्वरूपत्वात्। यथाऽग्निर्दहनात्मको वायुश्च प्रेरणात्मकः। उदकं च क्लेदनात्मकम्। न विषयेण कश्चित्प्रयोजकः। एवमियं भूर्धारणात्मिका न धारणा तस्मात् खेऽस्थिरा नेयं सर्वं धारयति। अथ पतत्येव तिष्ठतु का नः क्षतिरिति चेत् तदपि न। यतो लोष्टादयः शिशुभिरुपरि क्षिप्ता भुवमासादयन्तो दृश्यन्ते। मन्दं क्षितिः पतति चेद् मान्द्यमेवैतदतिगुरुत्वाद् भूमेः। अथावश्यं तथापि क्व पततु। अध इत्याह—किमिदमधो नाम? प्रतियोगिसापेक्षश्चाधःशब्दः। यथा स च विशेषाणामपादानं चाधो भूरुपरि वियदेव-मस्याः सर्वाधोभूताया भुवः किमधः। खमिति चेत्, तर्हि सर्वतो युगपत्प्रसङ्गः। तत्रोपरि-पार्श्वपतने निरस्ते दृष्टिविरोधात्। अधश्च निरस्तमेव। अधःपतनाद्यदाधारविशेषः प्रकल्प्य इत्यभिप्रायेण तदपि न शक्यते वक्तुं तस्यापि मूर्तिमत्त्वादन्योऽन्यस्तस्याथ इत्यनवस्था-प्रसङ्गः। अत्रोच्यते—स्वशक्त्याऽसौ तिष्ठति तत्प्राथम्यादेव स्वशक्तिः कथं भुवो न परि-कल्प्यते। भूमेश्चावश्यं शक्तिः परिकल्पयितुं बुध्यते। अन्यथा सर्वतोऽपि परस्परमधोभावेन सत्त्वानामवस्थितिरेव न स्यात् समुद्रादीनां च। तस्मान्मूर्तिमदाधाररहितो विशिष्टशक्तियुक्तो भूगोलः खे तिष्ठतीत्युपपन्नम्। तथा चाऽऽचार्य एवाऽऽह—

पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितो वृत्तः।।
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिश्चितः सर्वः।
विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधःस्थिता दैत्याः।।
सलिलतटासन्नानामवाङ्मुखी दृश्यते यथा छाया।
तद्वद्गतिरसुराणां मन्यन्ते तेऽप्यधो विबुधान्।।
गगनमुपैति शिखिशिखा क्षिप्तमपि क्षितिमुपैति गुरु किञ्चित्।
यद्वदिह मानवानामसुराणां तद्वदेवाधः।।

तथा च पौलिशे—

वृत्ता चक्रवदचला नभस्यपारे विनिर्मिता धात्रा।
पञ्चमहाभूतमयी तन्मध्ये मेरुरमराणाम्।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

शशिबुधसिताककुजगुरुशनिकक्ष्यावेष्टितो भकक्ष्यान्तः।
भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपातः।।
खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः।
खे भगणर्क्षाग्रस्थावुपर्यधश्च ध्रुवौ तेषाम्।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्ष्यापरिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतो वृत्तः।।
यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितः समन्ततः कुसुमैः।
तद्वद्विविधैः सत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च भूगोलः।।
मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयः सर्वतो वृत्तः।।
स्वर्मेरुस्थलमध्ये नरको बडवामुखं च जलमध्ये।
असुरसुरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थिता नियताः।।

तथा च वसिष्ठसिद्धान्ते—

जगदण्डखमध्यस्था महाभूतमयी क्षितिः।
भावाय सर्वसत्त्वानां वृत्तगोल इव स्थिता।। इति।

एवं भूमेः संस्थानं जानाति।

तथा च भगणस्य नक्षत्रचक्रस्य भ्रमणसंस्थानं च जानाति। यथा भपञ्जरो ध्रुवयोर्नियमितः प्रवहाऽनिलेन भ्राम्यमाणो लङ्कास्थानामुपरिष्टाद् भूलग्नो देवासुराणां परिभ्रमति इति च। देवानां प्रदक्षिणगो दैत्यानामप्रदक्षिणगोऽन्येषां भूस्थानामक्षवशादुन्नमति ध्रुव उत्तरेण नमति। तथा चाऽऽचार्यः—

मेरेः सममुपरि वियत्यक्षो व्योम्नि स्थितो ध्रुवोऽधोऽन्यः।
तत्र निबद्धो मरुता प्रवहेण भ्राम्यते भगणः।।

यदुक्तमाचार्याऽऽर्यभटेन—

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्।। इति।

अत्रायं परिहारः—

भ्रमति भ्रमस्थितेव स्थितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या न खात् पुनः स्वनिलयमुपेयुः।।
अन्यच्च भवेदभूमेरह्ना भ्रमरहंसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति।।

अर्हत्प्रोक्तेऽर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरोदयौ किल तौ।
यद्येवमर्कसूत्रात् किं ध्रुवसूत्रं भ्रमत्यह्ना।।

तथा च पौलिशे—

तस्योपरि ध्रुवः खे तद्बद्धं पवनरश्मिभिश्चक्रम्।
पवनक्षिप्तं भानामुदयास्तमयं परिभ्रमति।।

तथा चाऽऽचार्यभटः—

उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुना क्षिप्तम्।
लङ्कासमपश्चिमगं भमण्डलं सग्रहं भ्रमति।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

ध्रुवयोर्मध्ये सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्।।
अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपञ्जरो ध्रुवो नमति।
लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगं ध्रुवौ क्षितिजे।।

एवं भगणभ्रमः।

संस्थानं तथा। नक्षत्रध्रुवकात् क्रान्तिज्यां कृत्वा तस्याश्चापभागाः कार्यास्तेषां विक्षेपेणैकदिक्केन सह योगो भिन्नदिक्केन सह वियोगः कार्यः। एवं कृते स्वक्रान्तिर्भवति भागरूपा। तावद्भिर्भागैर्विषुवल्लेखातो याम्येनोत्तरेण वा नक्षत्रयोगतारकः क्रान्तिवशेन संस्थितः। एवं भगणं भ्रमणसंस्थानज्ञः। आदिग्रहणादर्कसंस्थानमन्यदेशानां भ्रमणव्यस्तत्वं च जानाति। एतच्चाऽऽचार्येणैवोक्तम्। तथा च—

प्रोद्यतरविरमराणां भ्रमत्यजादौ कुवृत्तगः सव्यम्।
उपरिष्टाल्लङ्कायां प्रतिलोमश्चामरारीणाम्।।
मिथुनान्ते च कुवृत्तादंशचतुर्विंशतिं विहायोच्चैः।
भ्रमति हि रविरमराणां समोपरिष्टात्तदाऽवन्त्याम्।।
नष्टच्छायाप्येवं छायोदक् तत्प्रभृत्युदक्स्थानाम्।
तद्वद्दक्षिणगानां मध्याह्ने दक्षिणा छाया।।
मेषवृषमिथुनसंस्थे दिनं रवौ कर्कटादिगे रात्रिः।
यैरुक्ता विबुधानां मेरुस्थानां नमस्तेभ्यः।।
येष्वेवोदङ्मेषाद्याति स्थानेषु सन्निवृत्तोऽपि।
तेष्वेव कथं दृश्यः पुनर्न दृश्यश्च तत्रस्थः।।
दृश्ये चक्रस्यार्धे त्रयः खमध्यात्तु राशयस्तेषाम्।
नवतिस्तानि च खण्डान्युदयात् परिकल्पनीयानि।।

एकैकांशो नवभिर्नवभागोनैश्च योजनैर्भवति।
स च दक्षिणोत्तराणां प्रत्यक्षः खेऽप्ययं मध्यात्॥
एवं च नवत्यंशैरष्टौ दृष्टानि योजनशतानि।
तत्प्रामाण्यादेशे मध्याह्ने द्रष्टुरुदयो यः॥
उज्जयिनी लङ्कायाः सन्निहिता योत्तरेण समसूत्रे।
तन्मध्याह्नो युगपद्विषमो दिवसो विषुवतोऽन्यः॥
योजनशतानि भूमेः परिमाणं षोडश द्विगुणितानि।
एतापयति मेरुमध्याद्विषुवस्थोऽर्कः क्षितिं चैवम्॥
षडशीतिं पञ्चशतीं त्रिभागहीनं च योजनं भित्वा।
क्षितिमध्यमुदगवन्त्या लङ्काया योजनाष्टशतीम्॥
प्रतिविषयमुदक्तुङ्गो हरिजाद्यावद्ध्रुवः खमध्यात्तु।
दिनकृदपि नमति विषुवति दक्षिणतस्तावदेवांशैः॥
त्रिशतीं त्रिसप्ततियुतां गत्वोदग्योजनत्रिभागं च।
उज्जयिनीतो विघटति पर्याप्तोऽयं भगणगोलः॥
षष्टिर्नाड्यस्तस्मिन् सकृदुदितो दृश्यते दिवसनाथः।
परतः परतो बहुतरमाषण्मासादिति सुमेरौ॥
योजनपञ्चनवांशान् त्र्यधिकां च चतुःशतीमुदगवन्त्याम्।
गत्वा न धनुर्मकरौ कदाचिदपि दर्शनं व्रजतः॥
तस्मादेव स्थानाद्द्व्यशीतियुक्तां चतुःशतीं गत्वा।
दृष्टिपथं नो यान्त्यलिमृगघटचापधराः कदाचित्॥
षडशीतिं पञ्चशतीं त्र्यंशोनं योजनं च तत एव।
गत्वाऽन्त्यं चक्रार्द्धं नोदेत्याद्यं न यात्यस्तम्॥
लङ्कास्था भूलग्ना नभसो मध्यस्थितां च मेरुगताः।
ध्रुवतारामीक्षन्ते तदन्तरालेऽन्तरोपगताः॥
सकृदुदितः षण्मासान् दृश्योऽर्को मेरुपृष्ठसंस्थानाम्।
मेषादिषु षट्सु चरन् परतो दृश्यः स दैत्यानाम्॥
मेषस्तेषां नित्यं लग्नं त्र्यंशश्च भूमिपुत्रस्य।
त्रिंशद्भागनवांशद्वादशभागाश्च तस्यैव॥
विषुवल्लेखाधस्ताल्लङ्का तस्यां समो भगणगोलः।
त्रिंशन्नाड्यो दिवसस्त्रिंशत्तस्यां सदा च निशा॥
सलिलेन समं कृत्वा तुङ्गं फलकं यथादिशं दृष्ट्या।
दक्षिणकोट्यां शङ्कुं फलकप्रमितं व्यवस्थाप्य॥
ऋजुशङ्कुबुध्नविन्यस्तलोचनो नामयेत्तथा शङ्कुम्।
भवति यथा शङ्क्वग्रं ध्रुवतारादृष्टिमध्यस्थम्॥

पतितेन भवति वेधो लङ्कायामूर्ध्वगेन तु सुमेरौ ।
विनतेन चान्तराले फलकच्छेदार्धसूत्रसमे।।
तत्रावलम्बको यः सोऽक्षज्या तस्य शङ्कुविवरं स्यात्।
विषुवदवलम्बकोऽसौ याम्योत्तरदिक्प्रसिद्धिकरः।।
स्वप्रत्ययेन सन्तो विज्ञायैवं वदन्ति भूमध्यम्।
सकलमहीमानं वा रसमिव लवणाम्भसाल्पेन।। इति।

एवमादिग्रहणाज्ज्ञेयम्।

तथाक्षावलम्बाभितः। अक्षो ध्रुवोन्नतिः। एतावद्भिर्भागैः स्वदेशे हरिजादुच्छ्रितो ध्रुवो दृश्यते। अथवेष्टदिने कीदृशोऽक्षः। तत्र गणितविधिना स्वदेशाक्षभागानुत्पाद्य तेषु क्रान्तिभागानुत्तरान् शोधयेत्। दक्षिणान् क्षिपेत्। एवमिष्टदिनाक्षो भवति। तथा चाऽऽचार्यः—

विषुवद्दिनसममध्यच्छायावर्गात्सवेदकृतरूपात् ।
मूलेन शतं विंशं विषुवच्छायाहतं छिन्द्यात्।।
लब्धं विषुवज्जीवा चापमतोऽक्षोऽथवैवमिष्टदिने।
मेषाद्यपक्रमयतस्तुलादिषु विवर्जितः स्वाक्षः।।

अवलम्बकः। यावद्भिर्भागैः स्वदेशसममण्डलरेखातो ध्रुव उत्तरेण नमति सोऽवलम्बकः, इष्टदिनावलम्बको वा, तत्राभीष्टाक्षभागा नवतेः संशोध्याः शेषा अवलम्बकांशा भवन्ति। तथा चाऽऽचार्यः—

विषुवज्ज्यायामार्धवर्गविश्लेषमूलमवलम्बकः।

तथा—

चरखण्डकपक्षांशज्याघ्नमहर्व्यासमुद्धरेत्खजिनैः ।
द्विःकृत्वा तद्वर्गात्क्रान्तिज्याकृतियुतान्मूलम्।।
तेन विभजेत् स्थितज्यां व्यासार्द्धगुणामवाप्तमक्षज्या।
नवतेरक्षोनायाः क्रमशो ज्या लम्बको भवति।।

अहर्व्यासो द्युव्यासः स्वाहोरात्रविष्कम्भः। ग्रहस्येष्टक्रान्तित्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणमित्यर्थः। तथा चाऽऽचार्यः—

क्रान्तित्रिज्याकृत्योरन्तरपदं द्विगुणं दिनव्यासः।। इति।

चरदलकालः। राशीनां मेषादीनां चरखण्डकालः। स्वदेशनिरक्षदेशदिनरात्र्योरन्तरमित्यर्थः।

विंशतिरष्टिः सार्द्धपादोनाः सप्त चाजपूर्वाणाम्।
विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्चरविनाड्योऽर्द्धैः।।

एवं चरदलज्ञानम्। एतैर्गणितविधिना स्फुटरवेरिष्टदिनचरदलसाधनं कार्यम्। राश्युदया

राशीनां मेषादीनां निरक्षदेशे स्वदेशेष्वेवोदयप्रमाणचषकाः। तथा चाऽऽचार्यः—

वसुमुनिपक्षा व्येकं शतत्रयं चिद्विकाग्नयश्चाङ्काः।
परतस्त एव वामाः षडुत्क्रमात्ते तुलाद्यर्द्धे।।
चरदलकालक्षीणास्त्रयस्त्रयः संयुताः प्रतीपैस्तैः।
उदयर्क्षतुल्यकालेन यान्ति तत्सप्तमाश्चास्तम्।।

छाया। स्वदेशे विषुवति द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोरिष्टकाले वा। सलिलकृतसमायामवनौ विषुवद्दिवसमध्याह्ने द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोश्छाया विषुवती भवति इष्टदिने गणितविधिना सिद्ध्यति। तथा चाऽऽचार्यः—

अपमोनयुताक्षज्यां त्रिज्यातत्कृतिविशेषमूलेन।
छिन्द्याद्द्वादशगुणितां लब्धा माध्याह्निकी छाया।।

इष्टच्छायानयनम्—

तत्कालचरविनाडीद्विदशांशं द्विष्ठमजतुलाद्येषु।
षड्घ्नीभ्यो नाडीभ्यो जह्यात् संयोजयेच्चापि।।
तज्ज्या स्थितज्यया संयुता विसंयोजिताजतुलाद्येषु।
अविशोधनेन जीवा षड्घ्नीनामेव कर्तव्या।।
एवं कृत्वा हन्याद्द्युव्यासेनावलम्बघ्नेन।
छिन्द्यात् खखाष्टवस्वश्विभिः फलं शङ्कुलिप्ताख्यम्।।
तत्कृतिविनाकृतानां खखवेदसमुद्रशीतरश्मीनाम्।
पदमर्कघ्नं शङ्क्वङ्गुलाख्यलिप्तोद्धृतं छाया।।

नाडीकरणम्। इष्टकाले शङ्कुच्छायां दृष्ट्वा कालानयनं छायातो जानाति कालाच्च छायानयनम्। तथा चाऽऽचार्यः—

षड्घ्नेऽथ स्वद्युमिते छिन्ने सद्वादशैर्विमध्याह्नैः।
छायाङ्गुलैर्गतास्ता नाड्यः प्राक् पृष्ठतः शेषाः।।
छायाऽऽर्की नाडीभिर्दिनमानं षड्घ्नमुद्धरेत्तत्र।
लब्धं द्वादशहीनं मध्याह्नच्छायया सहितम्।।

सा विज्ञेया छायेति च। तत्क्षेत्रं कालाज्जानाति क्षेत्राच्च कालम्। यथैतावतीनां दिनगतघटिकानां रात्रिगतानां वा किं लग्नं तस्य लग्नस्य कियत्यो राशिभागलिप्ता इति। एतत्कालात् क्षेत्रम्। तथा चास्मदीयवचनम्—

तात्कालिकार्कराशेर्भोगकलास्तत्प्रमाणसङ्गुणिताः।
खखवसुशशिभिर्लब्धं विशोधयेत् प्रश्नचषकेभ्यः।।
संयोज्यं भुक्तमिते तत्परतः शोधयेत् स्वराश्युदयान्।
यावन्तः संशुद्धास्तावन्तो राशयः क्षेप्याः।।

सूर्ये शेषं विभजेदशुद्धचषकैः खरामसङ्गुणितम्।
लब्धं भागादि रवौ प्रक्षिप्य तथा कृते लग्नम्।।
रात्रिगते षड्भयुतादर्काद्दिनवत्प्रसाधयेल्लग्नम्।
दिनलग्ने यद्विहितं तद्विपरीतं निशाशेषे।।

एतत्कालात् क्षेत्रम्। क्षेत्राच्च कालम्। इष्टकाले तात्कालिकं लग्नं दृष्ट्वार्कं च इदं लग्नं कियतीनां घटिकानां दिनगतानां रात्रिगतानां रात्रिशेषाणां वा। एतज्जानाति लग्नार्कयोरन्तराद् घटिकानयनं करोति। तथा चास्मदीयवचनम्—

सूर्यादभुक्तभागैर्लग्नाद्भुक्तैः प्रसाधयेल्लब्धिम्।
तद्योगे राश्युदयान् तदन्तरस्थान् क्षिपेत्कालः।।

तथा—

ऊनो लब्धेः कालस्तमेव भक्त्वार्कराशिमानेन।
प्राग्वल्लब्धं सूर्ये दत्त्वा लग्नं भवेत्तदन्तरकम्।।
तद्राशिमानगुणितं खखाष्टरूपैर्विभाजितं कृत्वा।
लब्धं कालं विन्द्यादिति.............................।।

एवं क्षेत्रकालकरणमेवमादिष्वभिज्ञ इति।।१२।।

अथ तन्त्रज्ञस्य विशेषलक्षणमाह—

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति ॥१३॥

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार के चोद्य (सयुक्तिक) प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये।।१३।।

इत्थम्भूतस्य शास्त्रस्य यो वक्ता प्रतिपादकः स तन्त्रज्ञो भवति गणितज्ञ इत्यर्थः। कीदृशस्य शास्त्रस्य निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य। यथा कनकं स्वर्णं स्वभावनिर्मलं भवति। तच्च निकषसन्तापाभिनिवेशैरधिकतरं निर्मलं भवति। निकषं निर्घर्षणं पाषाणतले। सन्तापोऽग्नौ परितापनम्। अभिनिवेशो यन्त्रच्छेदनसङ्घट्टनमेतैः सुवर्णमधिकतरममलं भवति। शास्त्रस्य निकषं निर्घर्षणं भूयोभूयोऽन्वेषणम्। सन्तापश्चित्तपरितापश्चमत्कारस्तत्रैवैकाग्रता। अभिनिवेशो यत्नो व्यासक्तिः। एतैरमलीकृतस्य निःसन्देहभूतस्य कीदृशो वक्ता नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारः। नानाप्रकाराश्च ते चोद्याः, प्रश्नानां भेदाः प्रश्नभेदाः। अभिधेयस्यार्थस्य प्रतिपक्षोद्भवेनानुपपत्त्योपपादनं चोद्यम्। यथा केनचिच्चोद्यः कृतः। यथा यो दक्षिणस्यां दिशि कन्यास्थे सवितर्यतीवस्फुटरूपस्तारको दृश्यते स ध्रुवः। उत्तरस्यां दिशि योऽतिसूक्ष्मरूपः सोऽगस्त्यः। तस्य गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा भूगोलमध्ये मेरुस्तत्र चाक्षभागा नुवतिर्ध्रुवो-

न्नतिरेवाक्षोऽतो दक्षिणस्यां दिशि ध्रुवो न दृश्यते यतस्तत्र भूगोलमध्यम्। अगस्त्य उत्तरस्यां न दृश्यते यतः स खमध्यात् स्वक्रान्त्या दक्षिणे गतो ध्रुवकविक्षेपवशात्। अनधिगतस्यार्थस्याधिगमतापवचनम्। प्रश्नो यथा—नक्षत्रगणनया चित्रा प्रथमतः स्थिता तत्पश्चात् स्वाती कथं स्वाती पूर्वमुदयं याति पश्चाच्चित्रा। चित्रायामस्तमितायां पश्चात्स्वातिरस्तमेति। तस्या अपि गोलवासनया तन्त्रज्ञेन परिहारो दीयते। यथा चित्रा दक्षिणविक्षिप्ता स्वातिरुत्तरतश्चित्राया अल्पमहःप्रमाणं स्वातेरतिमहत्। तेनैतत् सम्भवति। एवं नानाचोद्यप्रश्नभेदानामुपलब्धिर्नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिः। उपलब्धिरुपलम्भनं ज्ञानं वादिकृतप्रश्नानां परिहारः। तयोपलब्ध्या जनित उत्पन्नो वाक्सारो निश्चयो यस्य स तथाभूतः। अन्य एवं व्याचक्षते; यथा—नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्ध्या जनितो वाक्सारो यस्य कैर्निकषसन्तापाभिनिवेशैः कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्येति।।१३।।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा किं तदित्याह—

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः ।
निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ज्ञेयः ॥१४॥

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को भी नहीं पढ़ाता; वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं।।१४।।

यो नरः प्रतिबद्धं शास्त्रोपनिबद्धमर्थं न गमयति न प्रतिपादयति सूत्राक्षराणां योऽर्थस्तं विहायाऽसारार्थं प्रतिपादयति। तथा हि—केनचित् सन्देहव्युदासार्थं पृष्टः सन्नेकमपि प्रश्नं न वक्ति न कथयति। तथा च शिष्येभ्यश्छात्रेभ्यो न निगदति न पाठयति। स कथं केन प्रकारेण शास्त्रार्थविद् ग्रन्थसद्भावो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एतदुक्तं भवति। एवंविधः स मूर्ख इति ज्ञेयो न पण्डितः।।१४।।

अथ मूर्खोपहासार्थमाह—

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं करणं यश्चान्यथा करोत्यबुधः ।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम् ॥१५॥

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है, उसको नहीं समझकर जो मूर्ख उसका विरुद्ध अर्थ करता है, वह मानो ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उनकी स्तुति करता है।

यो नरो मनुष्योऽन्यथाऽन्येन प्रकारेण ग्रन्थसंस्थितोऽन्यथार्थं करोति। करणं गणितकर्म्म गुणकारभागहारादिकमन्यथास्थितमन्यथा करोति। यथा—

दिनकरवसिष्ठपूर्वान् विबुधमुनीन् भावतः प्रणम्यादौ।
जनकं गुरुं च शास्त्रे येनास्मिन्नः कृतो बोधः।। इति।

अत्र व्याख्या—दिनं सर्वत्र मानैर्यद्गण्यते। करौ हस्तौ। याभ्यां गणितकर्म क्रियते। वसिष्ठो धनधान्यतोऽर्थः प्रार्थयते। पूर्वा आद्यपुरुषाः। पितामहप्रभृतयो य एतान् दिनकरवसिष्ठपूर्वान्। विशेषेण बुधाः पण्डिता ये मुनयः ऋषयो ये तान्। तथा भावतो भा कान्ति-

र्विद्यते येषु ते भावन्तो द्वादशादित्यास्तानपि भावतः। यतस्तदालोकात् सर्वेषामेव कर्म्मणां प्रवृत्तिः आदौ प्रथमतः प्रणम्य नमस्कृत्य। तथा जनानां लोकानां कं शिरो जनकं कीदृशं गुरुं च गौरवयुक्तं सर्वाङ्गप्राधान्यात्। येन केन नोऽस्माकमस्मिन् शास्त्रे बोधः कृत उत्पादितः। मूर्ध्ना विना सत्सु विद्यमानेष्ववयवेषु न किञ्चित् कर्तुं शक्यत इति।

तथा करणे। द्युगणेऽहर्गणे अष्टशतघ्ने अष्टौ च शतं चाष्टशतं तेन हते गुणिते। किं भूतेऽहर्गणे विपक्षा वेदार्णवाः प्रमाणं यस्य द्वाभ्यां हीना चतुश्चत्वारिंशदित्यर्थः। तथा तस्मिन् अर्कसिद्धान्ते। अर्का द्वादश। सिद्धाश्चतुर्विंशतिरन्तेऽवसाने यस्य। यथासङ्ख्यं स्व-रखाश्विद्विनवयमाभ्यां क्रमादुद्धृते विभक्ते भगणादिविलिप्तान्तोऽर्को लभ्यते। एवमवन्त्या-मुज्जयिन्यां दिनदले मध्याह्ने नान्यदेशेष्वित्यर्थः।

सोऽबुधो मूर्खः पितामहं पितुः पितरमुपागम्य तत्समीपं गत्वा वैशिकेन वैश्यात्वेन नखदशनक्षतसीत्कारादिभिर्गुणैरार्यां मातरं स्तौति श्लाघयति। मूर्खोपहासमेतत्।।१५।।

अथ त्रिस्कन्धस्य वाक्प्रशंसार्थमाह—

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते ।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या ।।१६।।

जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो; छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो; ऐसे गुणसम्पन्न बताने वाले की वाणी कभी भी वन्ध्या (निष्फल) नहीं होती।।१६।।

तन्त्रे गणितस्कन्धे सुपरिज्ञाते सुष्ठु सवासनिके विदिते। तथा लग्ने तात्कालिके उदये छायायाः शङ्कोः सम्बन्धिन्या अम्बुयन्त्रेण घटिकादिकेन च संविदिते सम्यग्ज्ञाते। कालं ज्ञात्वा स्फुटतरे कृत इत्यर्थः।

तथा होरार्थे जातकार्थे सुरूढे सुस्थिरे सति। आदेष्टुरुपदेशकर्तुर्भारती वाग् वन्ध्या निष्फला न भवति। तस्य वाग् मुनेरिव सत्या भवतीत्यर्थः।।१६।।

उक्तं चाऽऽचार्यविष्णुगुप्तेन। तथाऽऽह—

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचि-
दासादयेदनिलवेगवशेन पारम् ।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य
गच्छेत्कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ।।१७।।

तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है; पर काल-पुरुष संज्ञक ज्यौतिषशास्त्ररूप महासमुद्र को ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता।।१७।।

अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। अर्णवस्य समुद्रस्य दुस्तरस्यापि पुरुषो मनुष्यः

प्रतरन्नुल्लङ्घयन्ननिलवेगवशेन वायुरयहेतुना परं पारमासादयेत्प्राप्नुयात्। अस्य पुनः काल-पुरुषाख्यमहार्णवस्य कालरूपः पुरुषः स चाख्या नाम यस्यासौ कालपुरुषाख्यः, स च महार्णवस्तस्य ज्योतिःशास्त्रविस्तीर्णसमुद्रस्यानृषिरमुनिर्मनसा चित्तेनापि पारं नासादयेत्। अनेन ज्योतिःशास्त्राऽऽनन्त्यं प्रदर्शितं भवति।। १७।।

अथ स्कन्धद्वये के भेदास्तदर्थमाह—

होराशास्त्रेऽपि च राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबल-परिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृति-धातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्ययादेशसद्यो-मरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसा-दीनां च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्यनूकानि तत्काल-प्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनां च कर्मणां करणम् ।।१८।।

होराशास्त्र में भी राशि (मेष, वृष, मिथुन आदि—इनके स्वरूप), होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, राशियों के बलाबल-परिग्रह। सूर्य आदि ग्रहों के दिग्बल, स्थानबल, कालबल, चेष्टाबल—इनके द्वारा बल का विचार। गर्भाधान, जन्मकाल—इनमें विस्मयजनक विश्वास का आदेश अर्थात् नालवेष्टित, कोशवेष्टित, यमल आदि सन्तान हुई है—यह बताकर शास्त्रों में विश्वास पैदा कराना। शीघ्र मरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहयोग, नाभसयोग—इन सबों का फल। आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति, अनूक (पूर्वजन्म)—इनका विचार। तात्कालिक प्रश्नों के शुभ-अशुभ कारण। लग्न के आश्रित शुभ-अशुभ सूचक कारण। विवाह आदि (उपनयन, चूड़ाकरण, गृहप्रवेश) कर्मों के ज्ञान के कारण—ये सब विषय होते हैं। इन पूर्वोक्त विषयों का विचार वराहमिहिर-विरचित बृहज्जातक और विवाहपटल—इन दोनों पुस्तकों में अच्छी तरह वर्णित है।।१८।।

होराशास्त्रे जातकशास्त्रे के भेदाः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। चशब्दः प्रकारार्थे। न केवलं तन्त्रे वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्या उक्ताः। यावद्धोराशास्त्रेऽपि तथा भेदाः। तद्यथा—राशिर्मेषादिकस्तस्य स्वरूपं मत्स्यो घटीत्यादि स चाष्टादशशतलिप्तात्मकः। होरा तदर्द्धं तस्या मार्तण्डेन्द्वोरिति लक्षणमुक्तम्। द्रेष्काणस्त्रिभागस्तस्य द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवाधि-पानामिति लक्षणमुक्तम्। नवांशको नवभागस्तस्याजमृगेति लक्षणमुक्तम्। द्वादशभागो द्वादशांशस्तस्य भवनसमांशकेति लक्षणमुक्तम्। त्रिंशद्भागस्त्रिंशांशस्तस्य कुजरविजेत्यादि लक्षण-मुक्तम्। बलाबलपरिग्रहो राशीनामेव होरास्वामिगुरुज्ञेत्यादिनोक्तः। तथा ग्रहाणामादित्यादीनां दिग्बलं दिक्षु बुधाङ्गिरसाविति। स्थानबलं स्वोच्चसुहृदिति। कालबलं निशि शशिकुजसौरा इति। चेष्टाबलमुदगयने रविशीतमयूखाविति। एताभिर्दिक्स्थानकालचेष्टाभिः। अनेकप्रकाराणां बहुविधानां बलानां वीर्याणां निर्धारणं विचारः। यथा चन्द्रसितौ क्षेत्र इति शुभग्रहदर्शनं नैसर्गिकबलमित्येवमादिकानाम्। प्रकृतिर्वातपित्तश्लेष्मात्मकत्वम्। मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः

पित्तप्रकृतिरित्यादि । धातुः वसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवस्ते चोक्ताः स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगित्यादि। द्रव्यं ताम्रादि। ताम्रं स्यान्मणिहेम इत्याद्युक्तम्। जातिर्ब्रह्मणादिर्विप्रादितः शुक्रगुरू इत्युक्ता। चेष्टा विनियोगः। राजानौ रविशीतगू इति । आदिग्रहणात् सत्त्वादिगुणत्रयं चन्द्रार्कजीवा इति। कटुकादिरसषट्कं देवादिस्थानानि वस्त्राणि देवाम्ब्वग्नीत्यादिनोक्तानि। एवमादिकः। परिग्रहः स्वामित्वम्। तथा निषेको गर्भाधानं यथास्तराशिर्मिथुनं समेतीत्यादि। जन्मकालो गर्भमोक्षसमयः पितुर्जातः परोक्षस्येत्यादिकः। तत्र च विस्मापनप्रत्ययादेशः। विस्मयजननानां प्रत्ययानां नालवेष्टितकोशवेष्टितानां द्वित्रादीनां भुजांघ्रिशिरसां जन्मकथनं तदीयस्य पितुश्च सन्निधानमसन्निधानं गर्भमोक्षलक्षणं द्वारदिक्परिज्ञानं गृहशय्यासूतिकासहजव्रणादिपरिज्ञानम्। सद्योमरणमरिष्टाध्यायः सन्ध्यायामित्यादि। आयुर्दायो जीवितप्रमाणम्। मययवनमणित्थमिति। दशा ग्रहाणामायुषं आधिपत्यम्। उदयरविशशाङ्केत्यादि। अन्तर्दशा मध्यवर्तिनो दशा एकर्क्षगोऽर्द्धमिति। अष्टकवर्ग औत्पादिकानां फलानां परिज्ञानं स्वादर्क इत्यादि। राजयोगाः प्राहुर्यवना इति। चन्द्रयोगाः सुनफादुरुधुराख्याः। हित्वार्कं सुनफानफेति। द्विग्रहयोगाः। तिग्मांशुर्जनयतीत्यादि। तथैककस्थैश्चतुरादिभिरिति। नाभसयोगा नवदिग्वसव इति। आदिग्रहणात् कर्माजीवाराशिशीलानि प्रकीर्णाध्यायानिष्टयोगाः। अर्थाप्तिः पितृमातृपत्नीति कर्माजीवाः। वृत्ता तामदृगिति राशिशीलानि। स्वर्क्षतुङ्गेति प्रकीर्णकः। लग्नात् पुत्रकलत्र इत्यनिष्टयोगाः। एतेषां फलानि तथा क्रियाश्रयाध्यायः। कुसलमकुलमुख्य इत्यादि। भावाध्यायः शूरस्तब्धेति। अवलोकनं दृष्टिफलाध्यायः। चन्द्रे भूपबुधाविति। निर्याणं मरणनिमित्तं मृत्युर्मृत्युगृहेक्षणेनेति। गतिर्देवलोकादिः। गतिरपि रिपुरन्ध्रेत्यादि। अनूकं प्राग्जन्म गुरुरुडुपतिशुक्राविति। तत्कालप्रश्ने पृच्छायां शुभाऽशुभानि। लग्नाश्रितानि निमित्तानि शुभाशुभफलसूचकानि। तथा चोक्तम्—

अपृच्छतः पृच्छतो वा जिज्ञासोर्यस्य कस्यचित्।
होराकेन्द्रत्रिकोणेभ्यस्तस्य विन्द्याच्छुभाशुभम्।।

इत्यादि तत्कालप्रश्नः।

विवाहादीनां च कर्मणां विवाहोपनयनचूडाकरणगृहप्रवेशानां करणं अज्ञातेत्यादि विवाहपटलम्। तत्रैव सप्तैते शशियोगाः सौम्यैः सह सर्वकर्मसिद्धिकरा इत्याद्युपनयादीनामतिदेशः कृत इति।।१८।।

अथ यात्रायां के भेदा इत्याह—

यात्रायां तु तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्त्तविलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्योपायमङ्गलामङ्गलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णानां मन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गोपलम्भोपायश्चेत्युक्तं चाचार्यैः ।।१९।।

यात्रा में तिथि, दिन, करण, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न, योग, अङ्गस्फुरण, स्वप्न, विजय,

जीतने की इच्छा रखने वाले राजा का विजयनिमित्तक स्नान, ग्रहों के यज्ञ, गणयाग (गुह्यकपूजन = यात्रा के सात दिन पूर्व से गुह्यकपूजन), अग्निलिङ्ग (हवनकालिक अग्नि का लक्षण), हाथी-घोड़े की चेष्टा, सेनाओं (प्रधान राजपुरुषों) के बोलने से उनकी चेष्टा (उत्साह-अनुत्साह), वायु, मेघ, वृष्टि आदि के लक्षण, षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, संश्रय)—इनके ग्रहों के वश सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, उपाय (साम, दाम, भेद, दण्ड) की भी सिद्धि-असिद्धि का ज्ञान, मंगल-अमंगल, शकुन, सेनाओं के निकास की भूमि, अग्नि का वर्ण, मन्त्री, चर, दूत, वनवासियों का कालानुसार प्रयोग, शत्रु के किले का लाभ—इन सबों का विवरण होता है।।१९।।

यात्रायां यज्ञेऽश्वमेधिकायां देवपुरुषाकारावन्यमतेनोक्तावतः सोऽध्यायो न गृहीतः। तिथयो नन्दादिकास्तासां शुभाशुभं नन्दाभद्राजयेत्यादि। दिवसग्रहणेन वार उच्यते। उदगयने रोगेत्यादि तत्फलमुक्तम्। करणानि ववादीनि तेषां फलं गरवणिजेत्यादि। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि तेषां गमने फलं दिशि बहुलाद्या इत्यादि। मुहूर्त्तास्त्रिंशच्छिवादिकास्तेषां लक्षणं फलानि च शिवभुजगेति लक्षणं नक्षत्रफलवदिति फलानि। विलग्नं तात्कालिकं यात्रालग्नं द्विपदवशगाः सर्व इत्याद्युक्तम्। योगा योगाध्यायोक्ता देहः कोश इत्यादि। अथात्रैव पृच्छाकाले उक्ताः। तस्मान्नृपः कुसुमरत्नफलाग्रह इति। अथवा शुभाशुभफलयोगा जातके उदाहृता इति। यथा होरागतः स्वभवने यदि सूर्यपुत्र इति। तेषामपि फलानि तत्रैव। देहस्पन्दनलक्षणं दक्षिणपार्श्वं स्पन्दनमिति। स्वप्नं स्वप्नाध्याये दुकूलमुक्तामणिस्तदिति। विजयस्नानं विजिगीषोर्नृपस्य विजयार्थं स्नानं क्षीरैकतरुनगार्णवेत्यादि। ग्रहयज्ञो ग्रहाणां यागः। ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये इति। गणयागो गुह्यकपूजनं यात्रार्वाक्सप्ताहादिति। अग्निलिङ्गान्यग्निलक्षणानि होमकाले उच्छ्रायः स्वयमुज्ज्वलार्चिरिति। हस्तिनां गजानामिङ्गितं चेष्टितं दन्तमूलपरिणाहदीर्घतामित्यादि। अश्वानां तुरगाणां चेङ्गितं बलावकिरणेति। सेनाप्रवादः सैनिकानां प्रधानराजपुरुषाणां प्रवदनं व्याहरणं संग्रामे वयममरद्विजप्रसादादित्यादि। चेष्टा उत्साहोऽनुत्साहो वा विद्विष्टप्रवरनरा इति। आदिग्रहणाद्वातमेघवृष्ट्यादीनां लक्षणानि। प्रोत्क्षिप्तेत्यादि वातलक्षणम्। पृथुघनमनुलोममित्यादि मेघलक्षणम्। सप्ताहान्तर्बलभयकरीत्यादि वृष्टिलक्षणम्। एवमन्येषामपि। तथा ग्रहाणां बलाबलवशात् षाड्गुण्यं सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावसंश्रयाणां पण्णां गुणानां भावः षाड्गुण्यं तेषां ग्रहवशात् सिद्ध्यसिद्धी ज्ञातव्ये स्वर्क्षेशदशापयोरित्याद्युक्ताः। उपायाश्चत्वारः सामदामभेददण्डाख्याः। तेषामपि सिद्ध्यसिद्धी साम्नः शुक्रबृहस्पती इत्याद्युक्ताः। मङ्गलामङ्गलानि सिद्धार्थकादर्शेत्यादिमङ्गलानि, कर्पासौषधादीन्यमङ्गलानि, प्रस्थानसमये शुभाशुभसूचकानि तथा शकुनमन्यजन्मान्तरकृतमिति। तथा सैन्यनिवेशभूमयः सैन्ये सेनायां निवेशार्थं शुभाऽशुभभूमयस्तासां लक्षणानि स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मेति शुद्धाः। नेष्टा विपर्ययगुणेत्यशुभाः। अशुभा अग्निवर्णा उपस्थाग्निकर्मणि शुभाशुभाः शुक्लेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरा इति। तथा अन्याश्रितान्यपि शुभाशुभनिमित्तानि सर्वाणि सन्ति। चरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः। प्रयोगः प्रयुञ्जनं; कस्मिन् काले मन्त्री रिपोः सकाशं प्रयुज्यते। तथा च शत्रोर्वधाय सचिवं शुभदैवयुक्तमाज्ञापयेदिति।

कस्मिन् काले चराणां गूढपुरुषाणां प्रयोगाः कस्मिन् काले दूतादेः। बुद्ध्वा शक्तिं स्वपर-बलयोरित्यत्र प्रयोजनमुक्तम्। कस्मिन् काले आटविकादेर्बलस्य प्रयोगः। अर्कादाट-विकमित्यादि प्रयोजनमुक्तम्। एतेषां यथाकालं प्रयोगाः। परदुर्गोपलम्भोपायः परस्य शत्रोर्दुर्गे उपलम्भनं लाभो ग्रहणमित्यर्थः। तत्रोपायो यथा लभ्यते दुर्गस्तस्य च केतूल्कार्कज इत्यु-पलम्भनमुक्तम्। इत्येवं प्रकारः उक्तमाचार्यैः।।१९।।

किं तदित्याह—

जगति प्रसारितमिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये।
शास्त्रं यस्य सभगणं नादेशा निष्फलास्तस्य ॥२०॥

भगणों से युक्त होराशास्त्र (स्कन्धत्रयात्मक ज्यौतिषशास्त्र) लोक में विस्तृत की तरह, बुद्धि में अङ्कित की तरह और हृदय में खचित की तरह है। उसका आदेश कभी भी निष्फल नहीं होता।।२०।।

यस्य शास्त्रं ग्रन्थं सभगणं भगणज्ञानेन सहितं संयुक्तं गणितेनेत्यर्थः। अनेन स्कन्ध-त्रयं प्रतिपादितं भवति। कीदृशं शास्त्रं जगति लोके प्रसारितं विस्तारितमिव मतौ बुद्धा-वालिखितं चित्रितमिव हृदये निषिक्तं प्रक्षिप्तमिव तस्य दैवज्ञस्याऽऽदेशा उक्तयो निष्फला न भवन्ति, सत्यरूपा भवन्तीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति—त्रिस्कन्धज्ञस्य मुनिरिव वाणी सत्य-रूपा भवति।।२०।।

अथ संहिताप्रशंसार्थमाह—

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति ॥२१॥

संहितासम्बन्धी निःशेष तत्त्वार्थ को जानने वाला दैवचिन्तक (पूर्वकृत कर्म को जानने वाला) होता है।।२१।।

संहितापारगो निःशेषज्ञाततत्त्वार्थः। स दैवचिन्तको भवति। दैवस्य प्राक्तनकर्मविपाकस्य शुभाऽशुभस्य चिन्तको भवति स्मरणशील इत्यर्थः।।२१।।

यत्रैते संहितापदार्थाः ॥२२॥

जिसमें वक्ष्यमाण विषय का वर्णन होता है, उसका नाम 'संहिता' है।।२२।।

यत्र यस्यां संहितायामेते वक्ष्यमाणाः पदार्थाः।।२२।।

के त इत्याह—

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरण-द्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणी-स्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्का-

दिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखञ्जनकोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वारः कर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति। तस्याश्चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभिः फलानि भवन्ति ॥२३॥

सूर्य आदि ग्रहों के सञ्चार, उस सञ्चार में होने वाला ग्रहों का स्वभाव, विकार, प्रमाण (विम्ब का परिमाण), वर्ण, किरण, द्युति (किरणकान्ति), संस्थान (ऊर्ध्वाधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान), अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, चार (नक्षत्र में चलन)—इनके फल, नक्षत्र-विभाग द्वारा बने हुये कूर्मचक्र से देशों का शुभाशुभ फल, अगस्त्य मुनि का सञ्चार; सप्तर्षियों (वशिष्ठ आदि सात ऋषियों) के सञ्चार, ग्रहों की भक्ति (देश, द्रव्य, प्राणियों के आधिपत्य), नक्षत्रों के व्यूह (द्रव्य, जनों के आधिपत्य), ग्रह-शृङ्गाटक (एकर्क्षस्थित तारा-ग्रहों के शृङ्गाटक आदि स्थितिवश शुभाशुभ फल), ग्रहयुद्ध, ग्रह-समागम, ग्रह के वर्षपति होने पर उसका फल, गर्भ-लक्षण, रोहिणी योग, स्वाती योग, आषाढ़ी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता का लक्षण, वृक्षों के फल-फूल की उत्पत्ति के द्वारा सांसारिक शुभाशुभ का ज्ञान, परिधि (प्रतिसूर्य का लक्षण), परिवेष, परिघ (सूर्य के उदय-अस्तकाल में तिर्यक् स्थित मेघ-रेखा का लक्षण), वायु, उल्कापात, दिग्दाह का लक्षण, भूकम्प, सन्ध्या की लालिमा, गन्धर्व-नगर का लक्षण, धूलि का लक्षण, निर्घात-लक्षण, अर्घकाण्ड, अन्न की उत्पत्ति, इन्द्रध्वज और इन्द्रधनुष का लक्षण, वास्तुविद्या, अङ्गविद्या (अङ्गस्पर्श से प्राणियों के शुभाशुभ फल जानने वाली विद्या), वायसविद्या (काकचेष्टित), अन्तरचक्र, मृगचक्र (मृगचेष्टित), श्वचक्र (घोड़ों की चेष्टा), वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, वृक्षायुर्वेद (वृक्षों की चिकित्सा), उदकार्गल (जल की उपलब्धि), नीराजन (मन्त्रों के द्वारा शुद्ध जल से पवित्र करना), खञ्जन-लक्षण, उत्पातों की शान्ति, मयूरचित्रक, घृत, कम्बल, खड्ग, पट्ट, मुर्गा, कूर्म, गौ, अजा, कुत्ता, अश्व, हरित, पुरुष, स्त्री, अन्तःपुर की चिन्ता,

पिटक, मोती, वस्त्रच्छेद, चामर, दण्ड, शय्या, आसन—इनका लक्षण, रत्नपरीक्षा, दीप-लक्षण, दन्त-काष्ठ आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का लक्षण, संसार के प्रत्येक पुरुष और राजाओं में पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षण का विचार एकाग्र चित्त होकर दैवज्ञ को करना चाहिये। अकेला दैवज्ञ सदा शुभाशुभ फल का निर्णय करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता; अतः प्रचुर धन देकर सन्तुष्ट किये हुये दैवज्ञ के साथ इस शास्त्र को जानने वाले और चार दैवज्ञों की नियुक्ति राजा को करनी चाहिये। उन चार दैवज्ञों में से एक को पूर्व और अग्निकोण की, दूसरे को दक्षिण और नैर्ऋत्य कोण की, तीसरे को पश्चिम और वायव्य कोण की तथा चौथे को उत्तर और ईशान कोण की परीक्षा करनी चाहिये; क्योंकि उल्कापात आदि (उल्कापात, गन्धर्वनगर, केतु) निमित्त दिखाई देने के साथ ही लुप्त हो जाते हैं। इनके आकार, वर्ण, स्निग्धता, प्रमाण (हस्त आदि प्रमाण), ग्रह-नक्षत्रों के अभिघात आदि के द्वारा शुभाशुभ फलज्ञात होते हैं।।२३।।

एतत्सुबोधं तथापि मन्दबुद्धिहिताय व्याख्यायते। **दिनकरादीनामिति**। दिनकर आदित्यस्तदादीनां ग्रहाणां रविशशिराहुभौमज्ञगुरुसितसौरिकेतूनां चाराः। चरणं चारः। गति-वशेन शुभाशुभकथनम्।

तेषु चारेषु च तेषामेव ग्रहाणां प्रकृतिः स्वभावः। विकृतिर्विकारः। प्रमाणं बिम्बस्य। वर्णः सितादिकः। किरणा रश्मयः। तेषामेव द्युतिः कान्तिः। संस्थानमाकारः। ऊर्ध्वाधोगामित्वं तोरणदण्डादिसंस्थानम्। अस्तमनोदयौ रविसन्निकर्षविप्रकर्षाभ्याम्। मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमाः शुक्रचारोक्ताः। मार्गान्तरं मार्गमध्यम्। वक्रं प्रतीपगतित्वं ताराग्रहाणाम्। अनुवक्रं पुनः स्पष्ट-गतित्वम्। ऋक्षग्रहसमागमो नक्षत्रैः सह ग्रहाणां संयोगः। चारो नक्षत्रेषु विचरणं संस्थिति। आदिग्रहणाद्दक्षिणोत्तरमध्यगमनम्। योगतारकाशकटभेदश्च नक्षत्राणाम्। एवमादिभिस्तेषां तेषु चारेषु फलानि भवन्ति। तथा नक्षत्रकूर्मविभागेन नक्षत्रसप्तविंशत्या कूर्माकारस्थित्या भारतवर्षे नवधा विभक्तेन नक्षत्रत्रयेण देशेषु फलानि। अगस्त्यस्य मुनेश्चारः। सप्तर्षीणां वसिष्ठपूर्वाणां चारः। ग्रहाणां भक्तयो देशद्रव्यप्राणिनामाधिपत्यम्। नक्षत्राणां व्यूहो द्रव्य-जनाधिपत्यम्। ग्रहशृङ्गाटकं ताराग्रहाणामेकर्क्षगतानां शृङ्गाटकादिसंस्थानैः शुभाशुभज्ञानम्। ग्रहयुद्धम्। ऊर्ध्वाधोभावेन दक्षिणोत्तरसंस्थानेन च ग्रहाणाम्। समागमश्चन्द्रेण सह संयोगः। ग्रहाणां वर्षाधिपतित्वेन फलानि। गर्भाणां प्रावृट्कालपरिज्ञानार्थं लक्षणम्। रोहिण्याश्चन्द्रमसा सह संयोगः समागमः। एवं स्वातियोगः पूर्वाषाढायोगश्च। सद्योवर्षलक्षणम्। कुसुमलतानां लक्षणं वृक्षादीनां फलकुसुमप्रवृद्ध्या लोके शुभाऽशुभज्ञानम्।

तथा परिधेः प्रतिसूर्यस्य च लक्षणम्। परिघस्य सूर्योदयास्तमययोस्तिर्यक्स्थितताया मेघरेखाया लक्षणम्। पवनस्य वायोरुल्कापातदिग्दाहलक्षणानि। क्षितिचलनं भूकम्पः। सन्ध्यारागः सन्ध्ययो रक्तत्वम्। गन्धर्वनगरं खपुरं तल्लक्षणम्। रजसां पांशूनां लक्षणम्। निर्घातलक्षणम्। अर्घकाण्डं राशिवशेन द्रव्याणां समर्घत्वं महार्घत्वं च। क्रीत्वा स्थापितानां येन विक्रयकाले लाभालाभौ ज्ञायेते तदर्घकाण्डम्। सस्यजन्म सस्यजातकम्। इन्द्रध्वजस्य

शक्रकेतोस्तथा इन्द्रचापस्येन्द्रधनुषो लक्षणम्। वास्तुविद्या गृहाणां लक्षणम्। अङ्गविद्या यया प्राणिनामङ्गस्पर्शनेन शुभाऽशुभं ज्ञायते। वायसविद्या काकचेष्टितम्। अन्तरचक्रं शाकुने। मृगचक्रं मृगचेष्टितम्। तत्रैव श्वचक्रं श्वचेष्टितम्। वातचक्रमष्टासु दिक्षु प्रवहतो वातस्य लक्षणम्। प्रासादलक्षणं देवगृहाणां रचना। प्रतिमालक्षणं सुरस्थानादिप्रमाणम्। प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा सुरप्रतिमानामेव। वृक्षायुर्वेदस्तरूणां चिकित्सा। उदगार्गलं जलोपलब्धि:। नीराजनं नीरेण जलेन मन्त्रपूतेनाजनं क्षेपणस्पर्शनमिति नीराजनम्। खञ्जनकानां पक्षिणां लक्षणा-लक्षणम्। उत्पातशान्ति:। उत्पातानां दिव्यान्तरिक्षभौमानामुपशमनम्। घृतकम्बलं पुष्यस्नानम्। मयूरचित्रकं यस्मिन्नध्याये नि:शेषसंहितार्थं संक्षेपेणाभिधीयते तन्मयूरचित्रकम्। खड्गपरीक्षा खड्गलक्षणम्। पट्टपरीक्षा पट्टानां नृपमुकुटादीनां लक्षणम्। कृकवाकु: कुक्कुट:। कूर्म: प्रसिद्धजलप्राणी। गौ: प्रसिद्धा। अजश्छाग:। अश्वस्तुरग:। इभो हस्ती। एतेषां लक्षणानि। पुरुषस्त्रीलक्षणानि। अन्त:पुरचिन्ता अन्त:पुरे स्त्रीणां रक्तानां विरक्तानां च चेष्टितम्। पिट-कानां लक्षणम्। उपानच्छेदो मूषकादिभक्षणेनोपानहां छेददर्शनाच्छुभाशुभफलम्। एवं वस्त्राणामम्बराणां छेद:। चामराणां बालव्यजनानां दण्डानां यष्टीनां च द्विजातिक्रमेण लक्षणं परीक्ष्योच्यते। शयनाऽऽसनलक्षणम्। रत्नानां वज्रादीनां परीक्षा। दीपस्य लक्षणम्। दन्त-काष्ठादीनां यान्याश्रितानि तदायत्तानि शुभाशुभानि निमित्तानि चिह्नानि। आदिग्रहणात् कर्तुरपि यानि शुभाशुभानि फलानि। जगत: सर्वजनानां सामान्यानि साधारणानि। यथा रोहिणीशकट-मर्कनन्दन:। प्राजापत्ये शकटे भिन्न इत्यादिकानि। तथा प्रतिपुरुषं पुरुषे पुरुषे प्रतिपुरुषं यानि शुभाशुभानि। तद्यथा—

चापं मघोन: कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम्।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात् सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च।। इत्यादि।

पार्थिवे राजनि च शुभाशुभानि। यथा कृष्णा रेखा सवितरीति तानि च प्रतिक्षणं क्षणं क्षणम्। न अन्यकर्मा अनन्यकर्मा तेनानन्यकर्मणा एकचित्तेनाभियुक्तेन तत्परेण दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण चिन्तयितव्यानि। न तानि निमित्तान्येकाकिना केवलेनावधारयितुं लक्षयितुं शक्यानि। तस्मात् सुभृतेन दैवज्ञेन सुष्ठु कृत्वा यो नृपेण भृत:, अतिप्रभूतार्थदानेन परितो-षित:। तेन दैवज्ञेनान्ये परे तद्विद: कालविदो यथानिर्दिष्टा: कर्त्तव्या अवधार्या:। तत्र तस्मिन्नि-मित्तज्ञाने ऐन्द्री पूर्वा। आग्नेयी च पूर्वदक्षिणदिगाशा। एकेनावलोकयितव्या द्रष्टव्या। याम्या दक्षिणा नैर्ऋती दक्षिणपश्चिमाऽन्येन द्वितीयेनावलोकयितव्या। एवमनेन प्रकारेण वारुणी पश्चिमा। वायव्या पश्चिमोत्तरा। तृतीयेनावलोकयितव्या। उत्तरा सौम्या। ऐशानी पूर्वोत्तरा चान्येन चतुर्थेनावलोकयितव्या। इतिशब्द: प्रकाराय। यस्माद्धेतोरुल्कापातादीनि निमित्तानि, आदिग्रहणादुल्कागन्धर्वनगरकेतुदर्शनानि गम्यन्ते। एतान्युल्कापातादीनि निमि-त्तानि शीघ्रमाश्वेवापगच्छन्त्यदर्शनं यान्ति। तस्याश्चोल्काया आकार आकृति:। यथा प्रेत-प्रहरणेति। वर्ण: श्वेतादि:। स्नेह: सुस्निग्धता। प्रमाणं हस्तादि। दिगुत्तरादिका ग्रहर्क्षोपघात:, ग्रहाणामर्कादीनामृक्षाणामश्विन्यादीनां चोपघात उपहननम्। आदिग्रहणात् कस्मिंस्थाने केनाव-

यवेन पतिता:। एवमादिभिस्तस्या: फलानि शुभाशुभानि भवन्तीति।।२३।।

उक्तं च गर्गेण महर्षिणा तच्चाह—

कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् ।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥२४॥

सब प्रकार से कुशल, होराशास्त्र और गणित में प्रवीण ज्यौतिषी की पूजा जो राजा नहीं करता, वह नाश को प्राप्त होता है।।२४।।

कृत्स्नानि निरवशेषाणि यानि ज्योति:शास्त्राङ्गानि तथोपाङ्गानि तत्रैव पठितानि पुरुषलक्षणस्त्रीलक्षणवस्त्रोपानच्छेदरत्नलक्षणदीपदन्तकाष्ठलक्षणादीनि। एतदुक्तं भवति—ग्रहनक्षत्रराशीनाश्रित्य यदुक्तम्—'तान्यङ्गानि परिशिष्टान्युपाङ्गानि' इति। तथा च भगवान् गर्ग:—

अधिकृत्य ग्रहर्क्षादि जगतो येन निश्चय:।
तदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्गं शेषमुच्यते।। इति।

एतेषां कृत्स्नानां निरवशेषाणामङ्गानामुपाङ्गानां कुशलस्तज्ज्ञ:। तथा च होरायां जातके गणिते ग्रहगणिते च नैष्ठिकं निष्ठालग्नं षडङ्गं तत्पारगन्तारमित्यर्थ:। एवंविधं दैवज्ञं यो राजा नृपो न पूजयते नार्चयति स नाशं विनाशमुपगच्छति प्राप्नोति।।२४।।

अन्यद्दैववित्प्रशंसार्थमाह—

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहा: ।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥२५॥

वन में रहने वाले, ममत्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले भी ग्रह-नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञों से पूछते हैं।।२५।।

येऽपि तपस्विनो वनमरण्यं समाश्रिता वसन्ति। निर्ममा निरहङ्कारा:। निष्परिग्रहा दारवर्जिता:। निर्गत: परिग्रहो येभ्यस्तेऽपि तथाभूता ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां गतौ गमने कोविदं तज्ज्ञं परिपृच्छन्ति शुभाशुभं ज्ञातुमिच्छन्ति च। अपिशब्द: सम्भावनायां यतस्तेषां ज्योति:शास्त्रेण न किञ्चित्प्रयोजनं तापसत्वात्।।२५।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभ: ।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥२६॥

दीपहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाश की तरह ज्यौतिषी से हीन राजा शोभित नहीं होता हुआ अन्धे की तरह मार्ग में घूमता रहता है।।२६।।

यथा रात्रिर्निशाऽप्रदीपा प्रदीपरहिता न शोभामाप्नोति तमसावृतत्वात्। यथा नभ आकाशमनादित्यं सूर्यरहितं सान्धकारं न शोभामाप्नोति। तथा तेन प्रकारेण सांवत्सरो दैवज्ञ-

रहितो राजा न शोभते। न केवलं यावत्सर्वत्र च संशयत्वाद्भ्रमति यथान्धो नेत्रहीनोऽध्वनि पथि परिभ्रमति।।२६।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥२७॥

यदि ज्यौतिषी न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि समस्त विषय उलट-पलट हो जायँ।।२७।।

मुहूर्त्ता: शिवादिका:। तिथय: प्रतिपदादिका:। नक्षत्रमश्विन्यादि। ऋतव: शिशिरादय:। अयने उत्तरदक्षिणे। तथा तेनैव प्रकारेण एतानि सर्वाणि आकुलानि अज्ञातानि। स्युर्भवेयु:। अथवाऽऽकुलानि नष्टागमानि स्युर्यदि सांवत्सरो दैवविन्न स्यान्न भवेत्।।२७।।

अन्यत्प्रशंसार्थमाह—

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणी:।
जयं यश: श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥२८॥

अत: जय, यश, श्री, भोग और मङ्गल की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्यौतिषि के पास जाकर अपना भविष्य पूछे।।२८।।

तस्मात् पूर्वोक्ताद्धेतो राज्ञा नृपेणाधिगन्तव्योऽधिगमनीय:। विद्वान् पण्डित:। सांवत्सरो दैववित्। अग्रणी: प्रधान:। कीदृशेन राज्ञा। जयं शत्रुविजयं यश: कीर्तिं श्रियं लक्ष्मीं भोगान् उपभोगान् श्रेय आरोग्यं समभीप्सता आप्राप्तुमिच्छता।।२८।।

अन्यदप्याह—

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥२९॥

सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दैवज्ञहीन देश में निवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जहाँ पर नेत्रस्वरूप दैवज्ञ निवास करते हैं, वहाँ पाप का निवास नहीं होता।।२९।।

भूतिं समृद्धिमिच्छता प्रार्थयता नरेण पुंसा। असांवत्सरिके देशे दैवज्ञवर्जिते देशे स्थाने न वस्तव्यं न निवसनीयम्। हि यस्माद्यत्र यस्मिन् देशे एष दैवविच्चक्षुर्भूत: प्रकाशक: स्यात् तस्मिन् देशे पापमेनो न विद्यते न भवति, तत्पुण्यशरीरावृतत्वात्।।२९।।

अथ दैववित्प्रशंसार्थमाह—

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तक: ॥३०॥

ज्यौतिष शास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता एवं ज्यौतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।।३०।।

संवत्सरमधिकृत्य कृतं शास्त्रं सांवत्सरं तत्पठनशीलः सांवत्सरपाठी। दैवविद् नरकेषु नोपपद्यते, नरकान् न प्राप्नोति। यतो दैवचिन्तकः कालविद् ब्रह्मलोके धातृभवने प्रतिष्ठां स्थितिं लभते।।३०।।

अन्यत्रप्रशंसार्थमाह—

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विजः ।
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः ।।३१।।

जो द्विज ज्यौतिषशास्त्र-सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है, वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला तथा आदरणीय होता है।।३१।।

एतज्ज्योतिःशास्त्रं ग्रन्थतः पाठेनार्थतो व्याख्यानात् कृत्स्नं निरवशेषं यो द्विजो ब्राह्मणो जानाति वेत्ति स श्राद्धे पितृतर्पणे अग्रभुक् प्रथमभोजी भवति। स च पूजितोऽर्चितः। पङ्क्ति-पावनः। यस्यां पङ्क्त्यामुपविशति तां पवित्रीं करोति।।३१।।

अन्यदप्याह—

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ।।३२।।

जिन म्लेच्छ यवनों के पास यह शास्त्र रहता है, वे भी जब ऋषि की तरह पूजित होते है, तब दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात? अर्थात् उनकी पूजा तो निश्चित ही होती है।।३२।।

हि यस्मादर्थे यवनाः किल म्लेच्छजातयस्तेषु यवनेष्विदं ज्योतिःशास्त्रं सम्यक् स्फुटतरमागमतः स्थितं यतः पूर्वाचार्येभ्यस्तैः प्राप्तम्। तथा च—

यद्दानवेन्द्राय मयाय सूर्यः शास्त्रं ददौ सम्प्रणताय पूर्वम्।
विष्णोर्वसिष्ठश्च महर्षिमुख्यो ज्ञानामृतं यत्परमाससाद।।
पराशरश्चाप्यधिगम्य सोमाद् गुह्यं सुराणां परमाद्भुतं यत्।
प्रकाशयाञ्चक्रुरनुक्रमेण महर्द्धिसन्तो यवनेषु तत्ते।। इति।

तेऽपि ऋषिवन्मुनिवत्पूज्यन्ते अभ्यर्च्यन्ते किं पुनर्यो द्विजो ब्राह्मणो दैवविद्दैवज्ञ इति।

अथाप्रष्टव्यानाह—

कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः ।
कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ।।३३।।

इन्द्रजाल विद्या से अपने शरीर को छिपाकर गुप्त रूप से प्रश्नकर्ता का अभिप्राय समझकर बताने वाले और कर्णपिशाची-सिद्धि से प्रश्न आदि बताने वाले ज्यौतिषी को सब जगह नहीं पूछना चाहिये, क्योंकि वह दैवज्ञ नहीं होता है।।३३।।

कुहकेनेन्द्रजालेन प्रसेनादिकेन आवेशेन देवतादिदेहप्रवेशेन पिहितः प्रच्छन्नोऽदृश्यशरीरः। कुत्रचित्सुषिरे भित्त्यादिके अभ्यन्तरस्थितयाऽव्यक्तया वाचा सम्भाषते। एतैः कुहकावेशपिहितैः। तथा कर्णोपश्रुत्या कश्चिन्मन्त्रविशेषं जपतः कर्णे यथेष्टं कथयति लोके कर्णपिशाचिकेति प्रसिद्धा। अथवा प्रष्टारो यत्रोपविष्टाः स्थितास्तन्मध्ये आत्मीयं शिशुं विसृज्य तेषां कथां परस्परं क्रियमाणामाकर्ण्य पितुर्वक्ति। यथा यस्येदमभिज्ञानं तस्य भवता इदं वक्तव्यमिति हेतुना तर्केणाशयं बुद्ध्वा।

केचित् कुहकावेशपिहितकर्णोपश्रुतिहेतुभिरिति पठन्ति तथापि न कश्चिद्दोषः। एवमादिभिर्यः कृतादेशः। आदेशः कृतो येन। सर्वत्र न क्वचित्प्रष्टव्यो यतः स दैवविज्ज्योतिःशास्त्रवेत्ता न भवति।।३३।।

अथाज्ञं प्रत्याह—

अविदित्वैव यच्छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ।।३४।।

जो मनुष्य ज्यौतिष-शास्त्र को विना जाने अपने-आपको दैवज्ञ कहकर व्रत, उपवास आदि बताता है; उस पङ्क्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूचक जानना चाहिये।।३४।।

यः शास्त्रमविदित्वा अज्ञात्वैव दैवज्ञत्वं ज्यौतिषिकत्वं प्रपद्यते अङ्गीकरोति दैवज्ञत्वमाख्यापयति। स पङ्क्तिदूषकः पंक्तिं दूषयति अपवित्रीं करोति। पापः पापात्मा। नक्षत्रसूचको नक्षत्रपिशुनः। ज्ञेयो ज्ञातव्य इति।।३४।।

([1]नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः।
स व्रजन्त्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिना ।।

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत, उपवास आदि को जो मनुष्य करता है, वह उस ऋक्षविडम्बी (नक्षत्रसूचक) के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है।)

यद्येतेषां कदाचिदज्ञानां वचनं सत्यरूपं भवति तान् प्रत्याह—

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम्।
आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ।।३५।।

जिस तरह पुरद्वार में स्थित मृत्खण्ड के समीप की हुई याचना कभी-कभी पूरी हो जाती है, उसी तरह मूर्खों का आदेश भी कभी-कभी सत्य हो जाता है; परमार्थतः कभी भी सत्य नहीं होता।।३५।।

नगरद्वारे पुरद्वारे यो लोष्टो मृत्खण्डस्तस्योपयाचितं प्रार्थितं यद्वद्यथा सत्यं स्यात्। सत्यरूपं भवेत्। तथा कदाचित्काकतालन्यायेन तद्वदज्ञानां मूर्खाणां य आदेशो वार्ताकथनं सत्यमिव विभाव्यते प्रतिभाति।।३५।।

१. शलोकोऽयं प्रक्षिप्त इव प्रतिभाति, भट्टोत्पलविवृतावव्याख्यातत्वात्।

अविदग्धसांवत्सरं प्रत्याह—

सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः ।
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ्महीक्षिता ॥३६॥

सम्पत्ति पाने के लोभ से जो आदेश करता है और ज्यौतिष-शास्त्र से भिन्न कथा में जिसका स्नेह है (ज्यौतिष-शास्त्र को ठीक तरह से न जानने के कारण अन्य कथा में प्रेम रखता है) ऐसे शास्त्र के एकदेश को जानने से मत्त ज्यौतिषी का राजा द्वारा त्याग कर देना चाहिये।।३६।।

यो दैववित्सम्पत्त्या योजितादेशः। सम्पत्त्या अर्थदानेन योजित आदेशो येन। यथा पूर्वमेवं मया अमुकस्य कथितमेतत्स देववदैश्वर्यं प्राप्स्यति। तदिति ज्योतिःशास्त्रमुच्यते। तद्विच्छिन्ना ज्योतिःशास्त्रवर्जिता अन्या कथा प्रिया यस्य सः। यतस्तत्र तस्याज्ञानत्वम्। शास्त्रैकदेशमेकं प्रकरणं ज्ञात्वा तेनैव मत्तः सदर्पस्तादृग्भूतो दैवविन्महीक्षिता राज्ञा त्याज्यस्त्यक्तव्यः।।३६।।

नैवंविधमात्मसात्कुर्यादित्याह—

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः ।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥३७॥

जय की इच्छा रखने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता—इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा माननी चाहिये।।३७।।

यस्तु सम्यक् स्फुटतराः सागमाश्च। होरागणितसंहिताः। त्रिस्कन्धं ज्योतिःशास्त्रं विजानाति। स च नरेन्द्रेण राज्ञा जयैषिणा विजयमाकाङ्क्षता प्राप्तुमिच्छताऽभ्यर्च्यः सम्पूज्यः। स्वीकर्त्तव्य आत्मसात्कार्य इति ।।३७।।

विदग्धसांवत्सरिको हितकृद्भवतीत्याह—

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम् ।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः ॥३८॥

देश-काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े भी नहीं कर सकते।।३८।।

राज्ञः करिणां हस्तिनां सहस्रं दशशतानि न तत्कार्यं कुर्वन्ति तथा वाजिनामश्वानां चतुर्गुणं चत्वारि सहस्राणि न तत् कार्यं कुर्वन्ति यथा देशकालज्ञो दैवचिन्तकः सांवत्सरिक एक एव कार्यं करोति। देशकाललक्षणं प्रागेव व्याख्यातम्। तथा च भगवान् पराशरः—

'यथा मन्त्रमुखोऽग्निरग्निमुखा देवास्तथा दैवज्ञमुखो राजा राजमुखाश्च प्रजाः। तस्मात्तद्विज्ञानाद्यत्नत्वाच्छ्रेयसो नरपतिरिहामुत्र च श्रेयोऽर्थी विजिगीषुरेनमधिगच्छेत्। कुलीनमनहंकृतमस्तब्धमशठमप्रमत्तमविषयमव्यङ्गमविहतप्रशस्तलक्षणं वेदवेदाङ्गेतिहासपुराणधर्म-

शास्त्रावदातं शुचिं शरण्यं सत्यवादिनमक्रोधिनमग्निदेवद्विजगुरुवृद्धाचार्यपूजाभिरतमनुगामिनमाचार्यं शिष्य इवाभ्युपेत्य नावजानीयाद्रहसि चैनं पृच्छेद्यथास्य दैवं परे न विद्युः। नास्य पृष्टानर्थान्नतिक्रमेदि'ति।

तथा च—

हिंसादम्भानृतस्तेयद्विष्टानिष्टविवर्जितम् ।
नरेन्द्रहितमक्रोधं श्रेष्ठं कालविदं विदुः।।
भूतभव्यभविष्यस्य कालस्य ज्ञानपारगम्।
अहीनाङ्गगुणोपेतं गुरुभक्तं प्रियंवदम्।।
यथाङ्गिरसमाचार्यमधिगम्य शतक्रतुः।
त्रैलोक्यराज्यं कृतवांस्तद्वत्कालविदं नृपः।। इति।।३८।।

अथाधुना तिथिनक्षत्रश्रवणात् फलमाह—

दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ।।३९।।

चन्द्र के नक्षत्र संवाद सुनने से बुरे स्वप्न, बुरे चिन्तन, बुरे दर्शन, बुरे कर्म—इन सबों का शीघ्र नाश होता है।।३९।।

दुःस्वप्नं दुष्टस्वप्नम्। दुर्विचिन्तितमनभिमतमध्यातम्। दुष्प्रेक्षितममङ्गलं यद्दृष्टम्। दुष्कृतानि दुष्टानि च यानि कर्माणि कृतानि। एतानि सर्वाणि शशिनश्चन्द्रमसो भसंवादं भेन नक्षत्रेण सह संवादं श्रुत्वा क्षिद्रमाश्वेव विनाशं क्षयं व्रजन्ति। तिथिनक्षत्रं श्रुत्वा सर्वपापानि नश्यन्तीत्यर्थः। तथा चोक्तम्—

श्रुत्वा तिथिं भग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम्।
आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च दुःस्वप्नघातं प्रियतां च लोके।। इति।।३९।।

आप्तज्यौतिषिकं प्रत्याह—

न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ।।४०।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सर-
सूत्रं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिये दैवज्ञ जिस तरह राजा का हित करता है, उस तरह उसके माता-पिता, स्वजन और मित्र भी नहीं करते।।४०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां सांवत्सरसूत्रनामाध्यायो द्वितीयः ।।२।।

भूपते राज्ञः। सबलस्य बलसहितस्य। स्वयशोऽभिविवृद्धये आत्मीयकीर्तिवृद्ध्यर्थम्। आप्तः शास्त्रज्ञाततत्त्वार्थः। दैवविद्दैवज्ञो यथा हितमिच्छति श्रेय आकाङ्क्षते। तथा न पिता जनक इच्छति न जननी माता न स्वजनो बन्धुजनो न सुहृन्मित्रं तथा हितमिच्छतीति।।४०।।

आवन्तरचित्ते सांवत्सरसूत्रमहोदधौ।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रे स्वाप्तये विवृतिप्लवम्।। इति।।४०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
सांवत्सरसूत्रनामाध्यायो द्वितीयः ॥२॥

अथादित्यचाराध्यायः

अथादित्यचारो व्याख्यायते। तत्र तावत्परमतेनायनयोर्लक्षणमाह—

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥१॥

यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी; नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती।।१।।

यदुक्तं पराशरतन्त्रे—'श्रविष्ठाद्यात् पौष्णान्तं चरतः शिशिरः। वसन्तः पौष्णान्ता-द्रोहिण्यन्तम्। सौम्याद्यात् सार्पार्द्धं ग्रीष्मः। प्रावृट् सार्पार्द्धाद्धस्तान्तम्। चित्राद्यादिन्द्रार्द्धं शरद्धेमन्तो ज्येष्ठार्द्धाद्वैष्णवान्तमि'ति।

तत्र रवेरादित्यस्याश्लेषार्द्धात् सार्पान्त्यपादद्वयाद्दक्षिणमयनं तथा धनिष्ठाद्यं वासव-प्रारम्भमुत्तरमयनं नूनं निश्चितं कदाचिदुत्पातवशादासीदभूत्। येन पूर्वशास्त्रेषु पाराशरादिषूक्तं कथितम्। नूनमनुमाने वा।।१।।

अधुना स्वमतमाह—

साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥

इस समय कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम 'विकार' है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते हैं।।२।।

साम्प्रतमिदानीं युक्तं वा। सवितुरादित्यस्य। कर्कटकाद्यं कुलीरप्रथममेकमयनं मृगादितो मकरादितश्चान्यद् द्वितीयमुत्तरमयनम्। एवं कथितस्यार्थस्य यद्यभावोऽन्यथात्वं स्यात्तद्वि-कृतिर्विकारः। तत्र च प्रत्यक्षपरीक्षणैर्दृश्यमानैर्व्यक्तिः स्पष्टता भवति। विकृतेरुपलम्भन-मित्यर्थः।।२।।

तत्र च परीक्षणमाह—

दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥३॥

सूर्य के उदय-अस्तकाल में दूरस्थ चिह्न के वेध से अयन-गति की परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् दूर स्थित वृक्ष आदि के सामने सूर्य के उदय-अस्त देखकर परीक्षा करनी

चाहिये। फिर दूसरे दिन वहाँ ही स्थित होकर परीक्षा करे कि सूर्य वृक्ष से दक्षिण या उत्तर तरफ जा रहा है। जिस तरफ सूर्य खिसकता हो उसी अयन में सूर्य को कहना चाहिये अथवा महामण्डल में छायाप्रवेश और निर्गमचिह्न से अयन जानना चाहिये।

उदाहरण—जल से समान की हुई भूमि पर इष्ट त्रिज्या व्यासार्ध से एक वृत्त बनाकर उसमें दिग्ज्ञान करके पूर्वापरा रेखा अंकित करे और वृत्तमध्य में शङ्कु-स्थापन करे। जिस दिन मेषादि में रवि स्थित होता है, उस दिन उदय-अस्तकाल में शङ्कु की छाया ठीक पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद में मिथुनान्त कालपर्यन्त शङ्कु की छाया धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से दक्षिण तरफ पड़ेगी। कर्कादि से कन्यान्त कालपर्यन्त धीरे-धीरे शङ्कु की छाया उत्तर तरफ जायगी। फिर तुलादि स्थित रवि में शङ्कु की छाया ठीक मेषादि में स्थित रवि की तरह पूर्वापर रेखा पर पड़ेगी। बाद में धन्वन्त बिन्दुपर्यन्त धीरे-धीरे पूर्वापर रेखा से शङ्कु की छाया उत्तर तरफ पड़ेगी। फिर वहाँ से लौटकर मकरादि से मीनान्त तक शङ्कु की छाया धीरे-धीरे दक्षिण तरफ पड़ेगी। जिस समय दो दिन की वृत्तपरिधिस्थ छायाग्रबिन्दु एक जगह पड़े, उस दिन अयन की निवृत्ति समझनी चाहिये।।३।।

दूरे तिष्ठतीति दूरस्थम्। दूरस्थं तच्चिह्नं दूरस्थचिह्नं तेन वेधो दूरस्थचिह्नवेधस्तस्माद् दूरस्थचिह्नवेधात् सहस्रांशोरादित्यस्योदये उदयकालेऽप्ययनचलनमन्वेष्यं यतो मकरादावादित्यः प्रतिदिनमुत्तरां दिशं याति तथा कर्कटादिस्थितः प्रतिदिनं दक्षिणां दिशं यानि तेन दूरस्थितं वृक्षादिकमुदयेऽस्तमयेऽथवा सवितुश्चिह्नं कृत्वा द्वितीयेऽपि दिने तत्रैव स्थित्वा पुनरपि विचारः कार्यः किमयनचलननिवृत्तिर्जाता न वेति। एवं दिनसप्तकं यावद्गणितागतसंक्रान्तिकालाद्यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो बलात् प्राक् पश्चाच्चान्वेष्य किं स्फुटगणितागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या जाता किमादौ किं पश्चाद्वेति। तथा महत्यतिबृहन्मण्डले उदयास्तमयसमीप इत्यर्थः। छायाप्रवेशनिर्गमनेन वा यानि चिह्नानि उपलक्षणानि तैरपि। वाशब्दः प्रकाराय। एतदुक्तं भवति—समायावमनौ वृत्तमुत्पाद्य दिगङ्कितं कृत्वा शङ्कुं तन्मध्ये विन्यसेत्। तत्र विषुवद्दिने सूर्योदयास्तमययोः प्राच्यपररेखायां तस्य शङ्कोश्छाया पतति ततो यथायथाऽर्को मिथुनान्तं यावद्याति तथातथाऽर्कोदयकाले छाया दक्षिणेन याति प्राच्यपररेखायाः। अस्तमयेऽप्येवम्। ततः कर्कटादौ स्थितेऽर्के प्रतिदिनं छायोत्तरेण याति यावत्कन्यान्तम्। तुलादौ पुनः प्राच्यपररेखायां पतति ततो धनुरन्तं यावत् प्रतिदिनमुत्तरेण याति ततो मकरादौ पुनः प्रतिदिनं दक्षिणेन याति यावन्मीनान्तम्। एवं मत्वा ततोऽयननिवृत्तावासन्नायां तस्मिन् मण्डले यस्मिन् प्रदेशे पूर्वाह्णे छाया प्रवशिति तत्र चिह्नं कार्यम्। यत्र चापराह्णे निर्गच्छति चिह्नं कार्यम्। पुनरपि द्वितीयदिने तथास्थितस्य शङ्कोश्छायाप्रवेशनिर्गमचिह्ने कार्ये। एवमन्वेष्यं प्रतिदिनं दिनसप्तकं यावत्। प्रथमदिनचिह्नकृतद्वितीयदिनचिह्नयोर्यदि साम्यमुत्पन्नं तदा तस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिरेवं तस्यां ज्ञातायां विचारयेत् किमयननिवृत्तिः करणागतसङ्क्रान्तिकालतुल्या किमादौ किं पश्चाद्वेति। एवं प्राकृतायां वैकृतायां वायननिवृत्तावन्वेषणं कार्यमिति।।३।।

इदानीं वैकृते फलमाह—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम्॥४॥

यदि मकर में नहीं प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौट जाय तो पश्चिम और दक्षिण दिशा में स्थित जनों का नाश करता है। यदि कर्क में प्रविष्ट नहीं होकर सूर्य उत्तर तरफ लौट जाय तो पूर्व और उत्तर दिशा में स्थित जनों का नाश करता है।।४।।

अर्क आदित्यो मकरमप्राप्य मकरमगत्वा यदि विनिवृत्तो व्यावृत्तस्तदा सापरां याम्यामपरया पश्चिमया सह दक्षिणां दिशं हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा कर्कटकं कुलीरमसम्प्राप्तोऽगतो यदि निवृत्तो भवति तदोत्तरामुदीचीं दिशं सैन्द्रीं सपूर्वां हन्ति। तत्स्थान् जनान्नाशयतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

यदा निवर्ततेऽप्राप्तो धनिष्ठामुत्तरायणे।
आश्लेषां दक्षिणेऽप्राप्तस्तदा विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

तथा च पराशरः—'यद्यप्राप्तो वैष्णवमुदग्मार्गं प्रपद्यते। दक्षिणमाश्लेषां वा महाभयाय।' इति।।४।।

अथाधिकतायां शुभमाह—

उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः॥५॥

यदि सूर्य उत्तर अयन को अतिक्रमण करके (मकर में प्रविष्ट होकर) उत्तर तरफ लौटे तो लोगों का कल्याण और धान्य की वृद्धि करता है। यहाँ पर उत्तरायण का ग्रहण उपलक्षण है; किन्तु दक्षिणायन में भी इसी तरह का फल कहना चाहिये अर्थात् कर्क में प्रविष्ट होकर सूर्य दक्षिण तरफ लौटे तो भी लोगों का कल्याण और सत्य की वृद्धि करता है। प्रकृतिस्थित (गणितागत अयननिवृत्ति और पूर्वकथित वेधीय अयननिवृत्ति एक काल में) होने पर ही पूर्वकथित फल ठीक घटता है तथा विकारयुक्त गति होने पर सूर्य लोगों में भय उत्पन्न करता है।।५।।

उष्णांशुरादित्य उत्तरमयनमतीत्यातिक्रम्य मकरं प्राप्य पश्चाद्यदि व्यावृत्तो निवर्तितस्तदा क्षेमसस्यवृद्धिकरो भवति। लब्धपालनं क्षेमं करोति, लोके सस्यानां च वृद्धिकरो भवति। तस्य च दिनाधिक्यादुत्तरायणग्रहणमुपलक्षणार्थम्। दक्षिणमयनमप्येवं ज्ञेयम्। तथा प्रकृतिस्थः स्वभावस्थश्चाप्येवं क्षेमसस्यवृद्धिकृद्भवति। एतदुक्तं भवति—स्फुटगणितेन यस्मिन् दिनेऽयननिवृत्तिर्ज्ञाता तस्मिन्नेव दिने यदि छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्महति मण्डले दृष्ट्या दृश्यते तदा प्रकृतिस्थः। तथा च भगवान् वृद्धगर्गः—

अयने सुप्रभः स्निग्धः सेवते यदि भास्करः।
सुवृष्टिं च सुभिक्षं च योगक्षेमं च निर्दिशेत्।।

अनिवृत्ते समे वापि निवृत्तः शस्यते रविः।
हीने भयावहो लोके दुर्भिक्षमकरप्रदः।।

विकृतगतिर्भयकृदिति। विकृता सविकारा गतिर्यस्यासौ विकृतगतिः। तथाभूतो भयकृल्लोके भयं भीतिं करोति। अयननिवृत्तौ दृष्टायां पुनर्यदि प्रतीपगतित्वमर्कस्य दृश्यते तदा विकृतगतिर्ज्ञातव्या।

पराशरतन्त्रेऽर्कस्य पञ्चधा गतिरुक्ता। तथा च—

पञ्चविधां गतिमुदयास्तमययोरन्तरे भजत्यूर्ध्वाम्।
तिर्यङ्मण्डलमधो नक्षत्रानुयायिनीमपि च।।
तिर्यग्गच्छति काष्ठायामूर्ध्वं गच्छति चोदये।
प्रातराशामनुक्रम्य मध्यं गच्छति भास्करः।।
मध्याह्ने तापयंल्लोकान्मण्डलं कुरुते गतिम्।
भ्रष्टस्त्वपि च मध्याह्नादधो गच्छति भास्करः।।
अस्तं गच्छन्नपि रविर्नक्षत्रमनुगच्छति।
एषापि यदि सविकारा दृश्यते तथापि भयकृत्।। इति।।५।।

त्वष्टा नाम ग्रहस्तेनाच्छादनादर्कस्य यदशुभफलं तदाह—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ।।६।।

पर्व से भिन्न काल में त्वष्टा नाम का ग्रह सूर्यमण्डल को अन्धकारयुक्त करता हो तो सात (१५वें अध्याय में नक्षत्र-कूर्म के विभाग से नव देशों के नव राजाओं में से सात) राजाओं का नाश करता है और शस्त्र, अग्नि, दुर्भिक्ष—इनसे लोगों का नाश करता है।।६।।

त्वष्टा नाम ग्रहोऽर्कमण्डलं सूर्यबिम्बं पर्व विनाऽपर्वण्येव सतमस्कं तमसान्धकारेण संयुक्तं कुरुते स तु दृष्टः सप्त भूपान्नक्षत्रकूर्मोक्तानां नवानां नृपाणां मध्यात् सप्तसङ्ख्यान् भूपान् नृपान् निहन्ति घातयति। तथा शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः शस्त्रेण सङ्ग्रामेणाग्निना हुतवहेन दुर्भिक्षेण च जनांल्लोकान् निहन्ति। तथा च भगवान् पराशरः—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रहः।
आवृणोति तमः श्यामः सर्वलोकविपत्तये।। इति।।६।।

अथ तामसकीलकानामर्कमण्डलगतानां फलमाह—

तामसकीलकसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत्।
वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वाऽर्के फलं ब्रूयात् ।।७।।

राहु के पुत्र तैंतीस संख्यक केतु हैं। ये तामस, कीलक आदि नाम से प्रसिद्ध हैं। इनको सूर्य (ग्रहणकालिक सूर्य) में देखकर वर्ण, स्थान और आकृति से फल कहना चाहिये।।७।।

राहुसुता: स्वर्भानुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत्केतवस्तामसकीलकसञ्ज्ञास्तामसकीलक इति तेषां नाम। तान् तामसकीलकानर्केऽर्कमण्डले वर्णस्थानाकारै:, वर्णा: श्वेतादय:, स्थानं प्रवेशो बिम्बैकभाग:, आकार आकृतिर्ध्वाङ्क्षादिसदृशी, एतैर्वर्णस्थानाकारैर्दृष्ट्वा अवलोक्य लोके जनपदे शुभाऽशुभफलं ब्रूयाद् वदेत्।।७।।

अथ तेषां शुभाऽशुभलक्षणमाह—

ते चार्कमण्डलगता: पापफलाश्चन्द्रमण्डले सौम्या: ।
ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपा: पापा: शशाङ्केऽपि ।।८।।

ये तामस-कीलकसंज्ञक राहुपुत्र सूर्यमण्डल में अशुभ और चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर शुभ फल देते हैं। पर ध्वांक्ष (काक), कबन्ध (छिन्नमस्तक पुरुष) या प्रहरण (खड्गादि) के समान उनकी आकृति दिखाई दे तो चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होने पर भी वे पाप फल देते हैं।।८।।

ते तामसकीलकाश्चार्कमण्डले सूर्यबिम्बे गता: प्राप्ता: पापफला दुष्टफलप्रदा भवन्ति। चन्द्रमण्डले शशिबिम्बे गता: सौम्या: शुभफलप्रदा भवन्ति। ध्वाङ्क्ष: काक:। कबन्धश्छिन्नशिरा: पुरुष:। प्रहरणं खड्गादि। ध्वाङ्क्षकबन्धप्रहरणरूपास्तदाकृतय:। शशाङ्केऽपि चन्द्रमण्डलेऽपि दृष्टा: पापा: पापफला भवन्ति। अनिष्टदानेतान् वर्जयित्वा अन्यरूपाश्चन्द्रमण्डले शुभदा:। अपिशब्द: सम्भावनायाम्। चन्द्रमण्डले येऽशुभास्ते सूर्यमण्डलेऽतीवाऽशुभदा इति।।८।।

अथ तेषामुदयनिमित्तान्याह—

तेषामुदये रूपाण्यम्भ: कलुषं रजोवृतं व्योम ।
नगतरुशिखरामर्दी सशर्करो मारुतश्चण्ड: ।।९।।

ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहा:।
निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र चोत्पाता:।।१०।।

इन तामस-कीलक आदि के उदय होने से पहले विकारयुक्त जल, धूलि से व्याप्त आकाशमण्डल, पर्वत, वृक्ष, शिखर—इन सबों का नाश करने वाला मिट्टी के कणों से युक्त भयङ्कर वायु, ऋतु के विपरीत वृक्षों में फल-फूल, सूर्य की गर्मी से पशु-पक्षी आदि जानवरों में व्याकुलता, दिशाओं में जलन, निर्घात (पवन: पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति भवति तदा निर्घात इति), भूकम्प—ये उत्पात होते हैं।।९-१०।।

तेषामिति। तेषां तामसकीलकानामुदये दर्शने रूपाण्येतानि लक्षणानि दृश्यन्ते। तद्यथाऽम्भ: पानीयं निमित्तं विना कलुषमप्रसन्नम्। व्योम आकाशं रजोवृत्तं रजसा व्याप्तम्। तथा मारुतो वातश्चण्ड: पुरुषो वाति वहति। कीदृश:। नगतरुशिखरामर्दी। नगानां पर्वतानां तरूणां वृक्षाणां शिखराण्यग्राणि। आसमन्तात् मर्दयति लोडयति। सशर्कर: शर्कराभिर्मृत्कणिकाभि: सहित:।

तथा तरवो वृक्षा ऋतुविपरीता:। तेषां ऋतौ स्वकालकुसुमफलानामभाव:। अनृतौ कुसुमफलान्युत्पद्यन्ते। तथा मृगा अरण्यपशव:। पक्षिण: खगाश्च। दीप्ता: सूर्याभिमुख-दीप्तस्था: परुषरवाश्च भवन्ति। दिशां दाहा दिग्दाहाश्चासकृद्दृश्यन्ते। अत्रास्मिंस्तामस-कीलकोदये निर्घात:। निर्घातलक्षणं वक्ष्यति—

पवन: पवनाभिहता गगनादवनौ यदा समापतति।
भवति तदा निर्घात:..।। इति।

महीकम्पो भूकम्प:। आदिग्रहणाद्रजोनीहारोल्कापातगन्धर्वनगराणि गृह्यन्ते। एते उत्पाता भवन्ति।।९-१०।।

अथ तेषामुत्पातानां निष्फलमाह—

न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि ।
तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ।।११।।

यदि केतु, तामस, कीलक, राहु—इनका उत्पात होने के बाद सात दिन के अन्दर दर्शन हो जाय तो पूर्ववर्णित उत्पात का कोई अलग फल नहीं होता। ये उत्पात इन केतु आदि के उदय के कारण होते हैं अर्थात् पूर्व में इन उत्पातों का दर्शन हो जाने से केतु आदि का दर्शन निश्चित होता है। यदि किसी समय किसी कारण से उत्पातों का दर्शन होने पर भी तामस, कीलक आदि का दर्शन न हो तो इन उत्पातों के अनुसार ही फल कहना चाहिये।

तेषामम्भ:कलुषादीनामुत्पातानां पृथक् फलानि न भवन्ति। यदि शिखिन: केतो:। कीलकानां तामसकीलकानाम्। राहो: स्वर्भानोश्च दर्शनानि भवन्ति। अर्कचन्द्रयोरन्यतरस्य ग्रहणं भवतीत्यर्थ:। एतेषां सप्ताहान्तरदर्शने उत्पाता निष्फला ज्ञेया:। **तदुदयकारणमिति**। यतस्तामसकीलकानामुदयकारणमुदयनिमित्तानि सम्भवन्ति। अत एतेषां केत्वादीनां फलमेव ब्रूयाद् वदेत्। केतुतामसकीलकराहूणामित्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—अम्भ:कलुषादिभिरु-त्पातैर्दृष्टैर्निश्चितं केत्वादीनामुदयो वक्तव्य:। अथ कदाचित्केत्वादीनां दर्शनं न भवति तदा अम्भ:कलुषादीनामेव फलं वदेत्।।११।।

अथ तामसकीलकानां दर्शनवशात् फलमाह—

यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्था: ।
तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ।।१२।।

क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिता: ।
निर्मांसबालहस्ता: कृच्छ्रेणायान्ति परदेशम् ।।१३।।

तस्करविलुप्तवित्ता: प्रदीर्घनि:श्वासमुकुलिताक्षिपुटा: ।
सन्त: सन्नशरीरा: शोकोद्भववाष्परुद्धदृश: ।।१४।।

क्षामा जुगुप्समाना: स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजा: ।
स्वनृपतिचरितं कर्म न पुरा कृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ।।१५।।

गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः ।
सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम् ॥१६॥

जिन-जिन देशों में सूर्यबिम्बस्थित तामस-कीलक आदि का दर्शन हो, उन-उन देशों में राजाओं को दुःख होता है। क्षुधा से पीड़ित मुनि लोग भी स्वधर्म एवं उत्तम चरित्रों से हीन होकर दुर्बल बालक को हाथ में लेकर दूसरे देश में जाते हैं। सज्जनों के धन को चोर अपहरण कर लेते हैं। अतः वे सज्जन दीर्घनिश्वास छोड़ने से संकुचित नेत्र वाले, खिन्न शरीर वाले और शोक से उत्पन्न अश्रुप्रवाह से बन्द नेत्र वाले होते हैं। अपना राजा और परराष्ट्र से पीड़ित दुर्बल मनुष्य निन्दा करते हुये पूर्वकृत अपने राजा के कर्तव्य को दूसरे से कहते हैं। गर्भयुक्त होने पर भी मेघ अधिक जल नहीं देते, नदियाँ कृश (अल्प जल वाली) हो जाती हैं और धान की उत्पत्ति बहुत कम होती है।।१२-१६।।

यस्मिन् यस्मिन् देश इति । ते तामसकीलकाः सूर्यबिम्बस्था आदित्यमण्डलगताः। यस्मिन् यस्मिन् यत्र यत्र देशे दर्शनमायान्त्युपगच्छन्ति तस्मिन् तस्मिंस्तत्र तत्र देशे महीपतीनां भूमिपानां व्यसनं दुःखं परिज्ञेयं ज्ञातव्यम्।

क्षुत्प्रम्लानशरीरा इति । अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। मुनयोऽपि ऋषयोऽपि जितक्षुधः, क्षुत्प्रम्लानशरीराः, क्षुद्बुभुक्षा तया प्रकर्षेणातिशयेन म्लानानि शरीराणि देहा येषां ते तथाभूताः, तथोत्सृष्टं त्यक्तं धर्मसच्चरितं शोभनचारित्रं च यैस्ते तथोक्ताः। तथा निर्मांसा मांसरहिताः। दुर्बला ये बालाः शिशवोऽन्नाभावात्ते हस्तेषु करेषु येषां ते तथाभूताः। कृच्छ्रेण केशेन परदेशमन्यदेशं यान्ति प्राप्नुवन्ति।

तथा सन्तः साधवो जनास्तस्करविलुप्तवित्ताः, तस्करैश्चौरैर्विलुप्तं छित्रं वित्तं धनं येषाम्। तथा प्रदीर्घैरत्यायामवद्भिर्निःश्वासैः श्वसनैर्मुकुलिताः सङ्कुचिता अक्षिपुटा नेत्राच्छादनानि येषाम्। तथा सन्नशरीराः, सन्नान्यवसादं गतानि शरीराणि देहा येषाम्। तथा शोकेन दुःखेन यदुद्भवं वाष्पमश्रु तेन रुद्धे वृते दृशौ चक्षुषी येषां ते तथोक्ताः।

क्षामाः कृशाः जुगुप्समाना निन्दन्तो मनुजा मानवाः। यतः स्वनृपतिपरचक्रपीडिताः। स्वनृपतिना आत्मीयेन राज्ञा परचक्रेण चान्यराष्ट्रेण पीडिता उपतप्ताः, अतो जुगुप्समानाः। अन्येऽपरे एवं ब्रुवन्ति कथयन्ति च कथयेति च यथा यत्कर्मास्माभिरद्यानुभूयते तत्पुरा पूर्वं स्वचरितमात्मनार्जितं न नृपतिचरितं राज्ञा वर्जितमिति।

गर्भेष्वपीति । वारिमुचो मेघा गर्भेष्वपि निष्पन्ना गर्भलक्षणयुक्ता अपि वृष्टिप्राप्त-समये न प्रभूतं न बहु वारि पयो मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा सरितो नद्यस्तनुत्वं स्वल्पतोयत्वं यान्ति गच्छन्ति जलाभावात्। सस्यधान्यादिकं क्वचित्क्वचित्कुत्रचिज्जायते उत्पद्यते न सर्वत्रेति।।१२-१६।।

अथ तेषामाकृतिवशेन फलमाह—

दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने ।
ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥१७॥

सूर्य के मण्डल में दण्ड की तरह केतु दिखाई दे तो राजा की मृत्यु, छिन्नमस्तक पुरुष की तरह दिखाई दे तो व्याधि का भय, काक की तरह दिखाई दे तो चोर का भय और कील की तरह दिखाई दे तो दुर्भिक्ष होता है।।१७।।

अर्कस्थे सूर्यमण्डलसंस्थिते। दण्डे दण्डाकारे चिह्ने। नरेन्द्रस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं स्यात्। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषः। कबन्धसंस्थाने कबन्धाकारे चिह्नेऽर्कस्थे। व्याधिभयं रोगभयम्। स्याद् भवेत्। ध्वाङ्क्षः काकस्तस्मिन्नर्कस्थे तस्करभयं चौरकृतं भयं वदेत्। कीलके कीलकाकारेऽर्कस्थे दुर्भिक्षमसुभिक्षं भवेत्।।१७।।

अन्यदप्याह—

राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः ।
राजान्यत्वकृदर्कः स्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा ।।१८।।

यदि सूर्यमण्डल राजा के उपकरणरूप छत्र, ध्वजा, चामर आदि से वेधित हो तो राजा का परिवर्तन होता है और अग्निकण, धूम आदि से वेधित हो तो लोगों का नाश करता है।।१८।।

राजा नृपस्तस्योपकरणानि हस्त्यश्वादयस्तद्रूपैस्तदाकारैरर्कः सूर्यो यदि विद्धो भवति। तथा छत्रध्वजचामरादिभिः। छत्रमातपत्रम्। ध्वजं पताका। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणाद् भृङ्गारकुम्भाकारैर्यद्यर्को विद्धो भवति तदा राजाऽन्यत्वकृत्, राज्ञोऽन्यत्वं करोति, अन्यो राजा भवतीत्यर्थः। अथ स्फुलिङ्गैरग्निकणैर्धूमेन। आदिग्रहणाज्ज्वालादिभिर्युक्तो भवति तदा जनहा, जनान् हन्ति घातयतीत्यर्थः।।१८।।

अन्यदप्याह—

एको दुर्भिक्षकरो द्व्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय ।
सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ।।१९।।

यदि पूर्वोक्त सूर्यमण्डल के वेध करने वालों में से एक से सूर्य वेधित हो तो दुर्भिक्ष, दो आदि से वेधित हो तो राजा का नाश और सफेद, लाल, पीला, काला—इन वर्णों से वेधित हो तो क्रम से वर्णों का नाश करता है। जैसे—सफेद वर्ण से वेधित होने पर ब्राह्मणों का, लाल वर्ण से वेधित होने पर क्षत्रियों का, पीले वर्ण से वेधित होने पर वैश्यों का और काले वर्ण से वेधित होने पर शूद्रों का नाश करता है।।१९।।

एको वेधोऽर्कस्थो दुर्भिक्षमसुभिक्षं करोति। द्वावाद्यौ येषां ते द्व्याद्याः। द्वौ त्रयश्चत्वारो वा वेधा नरपते राज्ञो विनाशायाभावाय स्युर्भवेयुः। अर्क आदित्यस्तैश्चिह्नैस्सितरक्तपीतकृष्णैर्विद्धोऽनुवर्णघ्नो भवति। अनु क्रमेण। वर्णान् द्विजादीन् हन्ति। तद्यथा—सितैः श्वेतवर्णैश्चिह्नैर्विद्धो ब्राह्मणान् हन्ति घातयति, रक्तवर्णैः क्षत्रियान्, पीतवर्णैर्वैश्यान्, कृष्णवर्णैः शूद्रानिति।।१९।।

विशेषफलमाह—

दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः।
आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥२०॥

ये पूर्वकथित ध्वांक्ष आदि महा उत्पात सूर्यमण्डल में जिस तरफ दिखाई देते हैं, उस दिशा में स्थित देशों के लोगों को भय होता है। जैसे—यदि उत्पात सूर्यबिम्ब में पूर्व तरफ हो तो पूर्वीय देश में, दक्षिण की तरफ हो तो दक्षिणीय देश में, पश्चिम की तरफ हो तो पश्चिमीय देश में और उत्तर की तरफ हो तो उत्तरीय देश में स्थित लोगों को भय होता है।।२०।।

ते महोत्पाता ध्वाङ्क्षप्रभृतयो रविबिम्बस्यार्कमण्डलस्योत्थिता उत्पन्ना यतो यस्यां दिशि दृश्यन्ते, पूर्वस्यां दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां वा दिशि विदिक्षु वा तेनैव प्रदेशेन लोकानां जनानां भयमागच्छति आयाति।।२०।।

अथार्करश्मिवशेन शुभाशुभफलमाह—

ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति।
पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥२१॥

चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलं करोत्यूर्द्ध्वम्।
तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥२२॥

सूर्य के ऊपरी भाग की किरणें ताम्र वर्ण की हों तो सेनापति का, पीले वर्ण की हों तो राजा के पुत्र का और श्वेत वर्ण की हों तो पुरोहित का नाश होता है। साथ चित्र या धूम्र वर्ण की हों तो चोरों या शस्त्रप्रहारों से लोग व्याकुल होते हैं। यदि उक्त उत्पात देखने के बाद जल्दी वृष्टि न हो तो पूर्वोक्त फल होता है। यदि वृष्टि हो जाय तो पूर्वोक्त फल न होकर लोगों का कल्याण होता है।।२१-२२।।

दिवसकर आदित्यः। ऊर्ध्वकर ऊर्ध्वरश्मिर्यदा दृश्यते। अधोभागे तस्य रश्मयो न दृश्यन्त इत्यर्थः। स च ताम्रस्ताम्रवर्णश्च तदा सेनापतिं चमूनाथम्, विनाशयति घातयति। ऊर्ध्वकरः पीतवर्णश्च नरेन्द्रपुत्रं नृपसुतम्, हन्ति मारयति। ऊर्ध्वकरः श्वेतवर्णश्च पुरोहितं मारयति।

चित्रोऽथवेति। रवेरादित्यस्य सम्बन्धी रश्मिः करः। ऊर्ध्वं स्थितः स च चित्रो नानावर्णोऽथवापि तु धूम्रवर्णस्तस्करशस्त्रनिपातैः, तस्कराश्चौराः, शस्त्रमायुधम्, तैस्तस्करशस्त्रनिपातैश्चौरसङ्ग्रामोपमर्दनैर्व्याकुलं सोद्यमं देशं करोति, यद्याशु शीघ्रं सलिलं जलं न पातयति न वर्षति तदैवम्। अथ सलिलपातं करोति तदा शिवमिति।।२१-२२।।

अथ भगवतो भास्करस्य ऋतुवर्णलक्षणमाह—

ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिरे हरिकुङ्कुमच्छविश्च मधौ।
आपाण्डुकनकवर्णा ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥२३॥

शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः ।
प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्त्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥२४॥

यदि सूर्यमण्डल शिशिर ऋतु में ताम्र या पीला, वसन्त ऋतु में हरा या कुङ्कुम के समान, ग्रीष्म ऋतु में पाण्डु (कुछ-कुछ सफेद) या सुवर्ण के समान, वर्षाकाल में सफेद, शरद ऋतु में कमल के गर्भ के समान और हेमन्त में रुधिर के समान हो तो शुभ होता है। यदि वर्षाकाल में स्वच्छ या अन्य सब ऋतुओं के समान वर्ण का हो तो भी शुभ फल देने वाला होता है।।२३-२४।।

ताम्रः कपिलो वार्क इति । शस्त इति सर्वत्र सम्बध्यते। शिशिरे माघफाल्गुनयोरर्क आदित्यस्ताम्रवर्णः कपिलो वा कपिलवर्णः शस्तः शुभफल इत्यर्थः। मधौ वसन्ते चैत्रवैशाख-योर्हरिकुङ्कुमच्छविर्हरितकान्तिः शुकाभः। कुङ्कुमवर्णश्च पीतलोहितवर्णः शस्त एव। ग्रीष्मे ज्येष्ठाऽऽषाढयोः पाण्डुः पाण्डुरवर्ण ईषच्छुक्रः। कनकवर्णः सुवर्णकान्तिश्च शस्त एव। वर्षासु वर्षाकाले श्रावणभाद्रयोः। शुक्लः श्वेतवर्णः शस्तः। चशब्दादापाण्डुकनकवर्णश्च शस्त एव।

शरदि शरत्काले। आश्वयुजकार्त्तिकयोः। कमलोदराभः कमलं पद्मं तस्योदरमभ्यन्तरं तत्सदृशी भा कान्तिर्यस्य स तथाभूतः शस्तः। हेमन्ते मार्गपौषयोः। रुधिरवर्णो रक्तवर्णः शस्तः। प्रावृट्काले वर्षासमये स्निग्धो विमलस्तथा सर्वर्त्तुनिभः सर्वेषां शिशिरादीनामृतूनां ये वर्णा उक्तास्तेषां निभः सदृशस्तद्वर्णोऽपि शुभदायी शुभप्रदो भवति। तथा च समास-संहितायाम्—

ताम्रघृतकनकमुक्ताकमलासृक्सन्निभः शुभः सविता।
शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु प्रावृषि सर्वर्त्तुसन्निभः स्निग्धः।।

तथा च वृद्धगर्गः—

शिशिरे ताम्रसङ्काशः कपिलो वापि भास्करः।
वसन्ते कुङ्कुमप्रख्यो हरितो वापि शस्यते।।
ग्रीष्मे कनकवैदूर्यं सर्वरूपो जलागमे।
शस्तः शरदि पद्माभो हेमन्ते लोहितप्रभः।।
एतत्स्वरूपं सवितुर्विपरीतमतोऽन्यथा।

तथा च पराशरः—

'शिशिरे ताम्रः कपिलो वा। वसन्ते कुङ्कुमाभो हरितो वा। ग्रीष्मे कनकवैदूर्यप्रभः। प्रावृषि सर्ववर्णः। शरदि पद्माभो हेमन्ते रक्तवर्णो रश्मिः सर्वर्त्तुषु श्वेतः पाण्डुवर्णश्च शस्यते विपरीतो विपरीतकारी'ति।।२३-२४।।

अन्यदप्याह—

रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान् विनाशयति ।
पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥२५॥

यदि सूर्यमण्डल रूखा या सफेद हो तो ब्राह्मणों का, लाल वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। यदि पूर्वोक्त वर्ण स्निग्ध हो तो ब्राह्मण आदि वर्णों का शुभ करने वाला होता है।।२५।।

रूक्ष इति सर्वत्र सम्बध्यते। श्वेतः शुक्लवर्णो रूक्षः स्नेहरहितो विप्रान् ब्राह्मणान्। विनाशयति हन्ति। रक्ताभो लोहितकान्ती रूक्षश्च क्षत्रियान् विनाशयति। पीतः पीतवर्णो रूक्षो वैश्यान्नाशयति। कृष्णः कृष्णवर्णो रूक्षश्च ततोऽपरान् तदित्यनेन वैश्याः परामृश्यन्ते तेभ्योऽपरानन्यान् शूद्रान् हन्तीति।

शुभकरः स्निग्ध इति । यथोक्तवर्णो यदि स्निग्धो भवति तदा तेषामेव शुभकरो भवति। तथा श्वेतः स्निग्धो ब्राह्मणानां शुभकरो भवति, रक्ताभः स्निग्धः क्षत्रियाणाम्, पीतः स्निग्धो वैश्यानाम्, कृष्णः स्निग्धश्च शूद्राणामिति।।२५।।

अथार्कस्य ऋतुष्वशुभवर्णानाह—

ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम् ।
हेमन्ते पीतोऽर्कः करोति न चिरेण रोगभयम् ॥२६॥

ग्रीष्म ऋतु में रक्त वर्ण का रविमण्डल भय उत्पन्न करने वाला होता है।, वर्षा ऋतु में काला रविमण्डल अनावृष्टि करता है और हेमन्त ऋतु में पीत वर्ण का रविमण्डल शीघ्र रोगभय करता है।।२६।।

अर्क आदित्यो रक्तो लोहितवर्णो ग्रीष्मे दृष्टो भयकृद् भयं करोति। वर्षासु वर्षाकाले। असितवर्णः कृष्णवर्णोऽनावृष्टिं वृष्ट्यभावं करोति। हेमन्ते पीतः पीतवर्णो न चिरेण शीघ्रमेव रोगभयं गदभीतिं करोति। शेषर्त्तुषु न विशेषः पूर्वोक्तमेव शुभाशुभमिति।।२६।।

अन्यदप्याह—

सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः ।
प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥२७॥

यदि इन्द्रधनुष से सूर्यमण्डल खण्डित होता हो तो राजाओं में विरोध उत्पन्न करता है। यदि वर्षाकाल में निर्मल कान्तियुक्त हो तो सद्यः (उसी दिन) वृष्टि करता है।।२७।।

सुरचापेति । सहस्रांशुरादित्यः। सुरचापमिन्द्रधनुस्तत्तुल्येन चिह्नेन पाटिता विदारिता तनुर्मूर्तिर्यस्य तथाभूतो नृपते राज्ञो विरोधप्रदो भवत्यशुभ इत्यर्थः। प्रावृट्काले वर्षासमये विमलद्युतिर्निर्मलकान्तिः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं करोति वर्षतीत्यर्थः।।२७।।

वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः ।
शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि ॥२८॥

यदि वर्षाकाल में शिरीष-पुष्प की कान्ति के समान कान्ति वाला सूर्य-मण्डल हो तो उसी दिन वृष्टि करता है। यदि मयूरपंख की तरह कान्ति वाला दिखलाई दे तो बारह वर्ष पर्यन्त वृष्टि नहीं होती।।२८।।

वर्षाकाले प्रावृट्समये शिरीषपुष्पाभः शिरीषपुष्पकान्तिसदृशो नीलपीत इत्यर्थः। सद्यो वृष्टिं करोति। शिखी मयूरस्तस्य पत्रं पक्षस्तन्निभस्तत्तुल्यो मयूरचन्द्रिकाकारो द्वादश-वर्षाणि सलिलं जलं न करोति न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

मयूरचन्द्रिकाभो वा यदा दृश्येत भास्करः।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे तदा देवः प्रवर्षति।। इति।।२८।।

अन्यदप्याह—

श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात्।
यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ।।२९।।

यदि सूर्यविम्ब श्याम वर्ण का दिखलाई दे तो कीड़े का भय और भस्म की कान्ति की तरह दिखलाई दे तो परराष्ट्र से भय होता है। जिस राजा के जन्मनक्षत्र में सूर्यमण्डल में छिद्र दिखाई दे, उस राजा का नाश होता है।।२९।।

अर्के सूर्ये श्यामवर्णे कीटभयं कृमिभीतिः सस्यानां भवति। भस्मनिभे भस्मवर्णे पाण्डौ रूक्षे परचक्रादन्यनृपाद्भयं भीतिमुशन्ति कथयन्ति। अर्क आदित्यो यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे स्थितः सच्छिद्रो दृश्यते तन्नक्षत्रं यस्य क्षितीशस्य राज्ञः कूर्मविभागेन भवति तस्य विनाशो मृत्युर्भवति।।२९।।

अन्यदप्याह—

शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति सङ्ग्रामाः।
शशिसदृशे नृपतिबधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ।।३०।।

यदि आकाश में खरहे के रुधिर के समान रक्त वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो युद्ध होता है। यदि चन्द्र के समान वर्ण का सूर्यमण्डल दिखलाई दे तो वर्तमान राजा का नाश होकर उसके स्थान पर दूसरा राजा होता है।।३०।।

शशः प्राणिविशेषः। भानावादित्ये शशरुधिरनिभे शशलोहितवर्णे अतिरक्त इत्यर्थः। नभस्तलस्थे मध्याह्ने मध्यस्थिते सङ्ग्रामा युद्धानि भवन्ति। नभस्तलग्रहणमुदयास्तमयकाल-परिहारार्थम्। तत्र किल स्वभावादतिलोहितो रविर्भवति। तथा च गर्गः—

शशलोहितवर्णाभो यदा भवति भास्करः।
तदा भवन्ति सङ्ग्रामा घोरा रुधिरकर्दमाः।। इति।

शशिसदृशे चन्द्रनिभे विरश्मौ शीतले च नृपते राज्ञो बधो मरणं भवति। क्षिप्रं चाश्वे-वान्योऽपरो नृपो राजा भवति।।३०।।

अन्यदप्याह—

क्षुन्मारकृद्घटनिभः खण्डो जनहा विदीधितिर्भयदः।
तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय ।।३१।।

जिस देश में घड़े की आकृति के समान सूर्यमण्डल दिखालाई दे, उस देश में क्षुधा से पीड़ित होकर मनुष्य प्राण-विसर्जन करते हैं। यदि खण्डाकार दिखालाई दे तो लोगों का नाश करता है। यदि तेज से हीन दिखालाई दे तो भय देने वाला होता है। यदि फाटक की तरह दिखलाई दे तो पुरों का नाश करता है और छत्र के समान दिखालाई दे तो देश का नाश करता है।

घटनिभो घटाकारोऽर्कः। क्षुन्मारकृत्। क्षुद्दुर्भिक्षं मारं मरकं च करोति। खण्ड एकदेशाद्धीनो जनहा। जनान् हन्ति घातयति। विदीधितिर्विगतरश्मिर्भयदो भीतिं ददाति। तोरणरूपस्तोरणाकारः पुरहा। पुरं नगरं हन्ति। छत्रनिभ आतपत्राकारो देशस्य जनपदस्य नाशाय विघाताय भवति।। ३१।।

अन्यदप्याह—

ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च।
कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं सचिवः ॥३२॥

यदि सूर्यमण्डल ध्वजा या चाप की तरह काँपता हुआ रूखा दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि सूर्यमण्डल में काली रेखा दिखाई दे तो मन्त्री के द्वारा राजा का वध होता है।।३२।।

ध्वजः प्रसिद्धो बहुपटरचितः पताकारूपः। चापं धनुः। भास्करे सूर्ये। ध्वजचापनिभे तदाकृतौ। युद्धानि सङ्ग्रामा भवन्ति। वेपने कम्पमाने रूक्षे वाऽस्निग्धे युद्धान्येव भवन्ति। सवितर्यादित्ये कृष्णवर्णरेखा यदि मध्ये दृश्यते तदा नृपं राजानं सचिवो मन्त्री हन्ति घातयति। केचित्पठन्ति नृपं सचिवम्। नृपं सचिवं च हन्ति। तथा च पराशरः—

'विवर्णो भूमिवर्णो वा महाभयाय। श्यामो जनमरणाय। सुवर्णरजतपद्मनिभो विमलः स्निग्धो जनहिताय। धूम्राभो वृष्टिनिग्रहाय। ऊर्ध्वदण्डो जटिलः शस्त्रकोपव्याधिमृत्युकरः। महान् परिमण्डलः कुक्षिमान् विशालो घृतमण्डलनिभः क्षेमारोग्यकरः। संक्षिप्तः क्षयाय। वज्राकारो दुर्भिक्षाय। सर्वतश्छिद्रो द्विधा वा दृश्यमानो मृत्युदेशं विनाशं वाऽऽचष्टे। शिरीषपुष्पसङ्काशो वार्षुके निष्प्रभो जनमारकरः। घटसंस्थः क्षुत्कृत्। ताम्रो रुधिराभो वा शस्त्रकोपकरः। खण्डच्छिद्रो भूपालविनाशाय च। पुण्ड्राकारः उलूकसंस्थानः उन्मादापस्मारकरः। विरश्मिर्व्याधिभयकृत्। छत्राकारो देशविपर्ययकरः। शकटाकारश्च कबन्धाकृतिर्महासङ्ग्रामकृत्। तोरणसंस्थानः पुरनाशाय। अवर्णः प्रजानाशाय। प्रतिरूपः स्त्रीभयकारी। परुषो वेपनः सस्यनाशनः। शरासनाकृतिर्ध्वजाभो वा सद्य आहवाय। विजयाकृतिर्गर्भविनाशी। परुषाकारो रुधिरप्रभोऽनेकनृपतिहस्तोत्पाटनकरः। कृष्णवर्णो जगतः क्षयाय। अपर्वण्युपरक्तः सर्वलोकविनाशाय। व्यामिश्रवर्णो यावत्प्रदृश्यते तावत्परस्परं नृपविनाशाय। कृष्णरुधिरपीतवर्णो जगत्क्षयकारी। वैदूर्यकृष्णबभ्रुवर्णः पाशुवर्णोत्सादनकरः। मयूरचन्द्रिकाभो द्वादशवार्षिकीमनावृष्टिं धत्ते। एवमन्योन्यव्यामिश्रवर्णो युगान्तकारी भवती'ति।।३२।।

अन्यदप्याह—

दिनकरमुदयास्तसंस्थितमुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः।
नरपतिमरणं विन्द्यात्तदाऽन्यराजप्रतिष्ठा च ॥३३॥

यदि उल्का, वज्र, बिजली उदयकालिक सूर्य पर गिरे तो वर्तमान राजा की मृत्यु और उसके स्थान पर दूसरे की प्रतिष्ठा होती है।।३३।।

दिनकरमादित्यमुदयास्तसंस्थितमुदयरेखास्थमस्तस्थमपररेखास्थं वा यदा उल्का अशनिर्विद्युद्वा आसां लक्षणं वक्ष्यति। एता हन्युस्ताडयेयुस्तदा तस्मिन् काले नरपतेर्मरणं मृत्युम्। विन्द्याद्विजानीयात्। तथाऽन्यराजप्रतिष्ठा। अन्यस्य द्वितीयस्य राज्ञो नृपत्वे प्रतिष्ठा स्थितिस्तत्क्षणमेव भवति। तथा च पराशरः—

उदयास्तमये भानुमुल्का हन्यात् समुत्थिता।
प्रज्वलन्ती तदा राजा क्षिप्रं शस्त्रेण बध्यते।। इति।।३३।।

अन्यल्लक्षणमाह—

प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा।
रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम्।।३४।।

यदि प्रत्येक दिन दोनों सन्ध्याओं (उदय और अस्त) में परिवेषयुक्त सूर्यमण्डल होता हो या रक्त वर्ण का होकर उदय-अस्त होता हो तो निश्चय ही दूसरा राजा होता है।।३४।।

अहिमकिरण उष्णरश्मिः सूर्यः। प्रतिदिवसम्। दिवसं दिवसं प्रति प्रतिदिवसम्। परिवेषी मण्डलवान् भवति। अथवा द्वयोः सन्ध्ययोरुदयास्तमययोः परिवेषी भवति। अथवा रक्तवर्णोऽस्तमेत्यस्तं गच्छति रक्तवर्णश्चोदेति। एतदुक्तं भवति। यादृश एव लोहितवर्णस्तादृश एव सकलमहर्भूत्वा रक्तवर्ण एवास्तमेति। प्रतिदिवसं सर्वत्र सम्बध्यते। तदा तस्मिन् प्रकारत्रये भूपं राजानमन्यं द्वितीयं करोति।।३४।।

अर्कस्य सन्ध्याकाले शुभाशुभलक्षणमाह—

प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि रणकारी।
मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी।।३५।।

यदि दोनों सन्ध्याओं में शस्त्र के समान स्वरूप वाले मेघ से सूर्यमण्डल आच्छादित हो तो युद्ध कराने वाला; और हरिण, महिष, पक्षी, गधे या हस्ती के समान स्वरूप वाले मेघ से आच्छादित हो तो भय देने वाला होता है।।३५।।

प्रहरणमायुधं खड्गादि। प्रहरणसदृशैरायुधाकृतिभिर्जलदैर्मेघैर्यदा सन्ध्याद्वये उदयास्तमयकाले स्थगित आच्छादितो भवति सूर्यस्तदा रणकारी सङ्ग्रामकृद्भवति। अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। तेनैकस्यां सन्ध्यायां द्वितीयस्यां वेत्यर्थः। मृग अरण्यप्राणी। महिषः प्रसिद्धः। विहगः पक्षी। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। एषां सदृशरूपैस्तुल्याकारैर्यदा सन्ध्याद्वये स्थगितो भवति, तदा भयदायी भयं भीतिं ददाति।।३५।।

अथार्काक्रान्तस्य नक्षत्रस्य सन्तापसंशोधने आह—

दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम्।
भवति तु पश्चाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात्।।३६।।

अग्नि के परिताप से पीड़ित होकर जिस तरह सोना शुद्ध होता है, उसी तरह सूर्य के परिताप से पीड़ित होकर नक्षत्र शुद्ध होता है।।३६।।

यस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे दिनकरः सूर्यः स्थितस्तदृक्षं दिनकरकराभितापात्सूर्यरश्मिसन्तापात् सुमहतीं पीडामतिरुजमवाप्नोति लभते। तदेव सूर्यमृक्षं पश्चादनन्तरं शुद्धं निर्दोषं भवति। यथा कनकं सुवर्णं हुताशपरितापादग्निसन्तापेन शुद्धं निर्मलं भवति। तथा च पराशरः—

ग्रहोपसृष्टं नक्षत्रं सवितुर्योगमागतम्।
विशोधयति तत्पापं तुषाग्निरिव काञ्चनम्।।

तथा च वृद्धगर्गः—

यथाग्निना प्रज्वलिते गृहे तप्यन्त्यदूरिणः।
तथार्कस्याप्यदूरस्थमृक्षं तदपि तप्यते।। इति।।३६।।

अथ प्रतिसूर्यलक्षणमाह—

दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ।।३७।।

यदि सूर्यमण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो वृष्टि होती है, दक्षिण दिशा में प्रतिसूर्य दिखलाई पड़े तो आँधी आती है, दोनों तरफ दिखलाई पड़े तो राजा का और नीचे की तरफ दिखलाई पड़े तो वह प्रतिसूर्य लोगों का नाश करता है।

विशेष—सूर्योदय के बाद एक प्रहर तक जब एक छोटा मेघ का टुकड़ा आ जाता है तब वह सूर्य की किरणों से चमकता हुआ द्वितीय सूर्य के समान लक्षित होता है, उसी को 'प्रतिसूर्य' कहते हैं।।३७।।

दिवसकृत इति। उदयात्प्रभृति दिनप्रहरैकं यावत्तनुघनोऽर्कसमीपे यदा भवति तदार्करश्मिवशात्तत्र द्वितीयोऽर्क इव लक्ष्यते, स प्रतिसूर्य उच्यते। एवमस्तमयेऽपि सम्भवति। दिवसकृतः स प्रतिसूर्यः। आदित्यस्योदगुत्तरे यदा प्रतिसूर्यो दृश्यते तदा जलकृज्जलं पानीयं करोति पर्जन्यवृष्टिर्भवति। दक्षिणस्थोऽर्कस्य वातकरो भवति। उभयस्थ उत्तर-दक्षिणभागयोर्द्वयोरपि स्थितः सलिलभयं जलभीतिं करोति। तस्यैवार्कस्योपरि स्थितः प्रति-सूर्यो नृपं राजानं हन्ति घातयति। अधःस्थितः प्रतिसूर्यो जनहा जनान् हन्ति।।३७।।

अन्यदप्याह—

रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तकरो न चिरात्।
परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत् ।।३८।।

असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः।
खगमृगभैरवस्वररुतैश्च निशाद्युमुखे ।।३९।।

आकाश में रुधिर के समान लाल वर्ण या धूलि के समुदाय से लाल वर्ण का सूर्यमण्डल राजा का बहुत जल्दी नाश करता है। यदि सूर्यमण्डल कृष्ण, विचित्र या नील

वर्ण का होकर देखने में भयङ्कर प्रतीत हो या सन्ध्याकाल में पक्षी अथवा जंगली जानवरों के भयङ्कर शब्द सुनाई दें तो लोगों का नाश होता है।।३८-३९।।

दिनकृदादित्यो वियत्याकाशेऽकस्मादेव रुधिरनिभो रक्तवर्णो यदा दृश्यते तदा न चिरात् शीघ्रमेवाऽवनिपस्य राज्ञोऽन्तकरो मृत्युकृद्भवति। वियद्ग्रहणमत्रोदयास्तमयौ विहायान्यत्र ग्रहणार्थम्। परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा। परुषेण रूक्षेण रजसा पांशुनारुणीकृता लोहिता तनुर्मूर्त्तिर्यस्य तथाभूतोऽप्यवनिपान्तकर: शीघ्रमेव भवति। असित: कृष्ण:। विचित्रो नानावर्ण:। नीलो नीलवर्ण:। परुषो रूक्ष:। एवंविधोऽर्को जनघातकर:। जनानां लोकानां घातं करोति। खगा: पक्षिणो मृगा आरण्यजातय:। एतेषां भैरवा भीषणा ये स्वरा: शब्दास्तैर्यानि रुतानि तैर्यदा निशामुखेऽस्तमये द्युमुखे उदये च युक्तो भवति तदापि जनघातं करोति।।३८-३९।।

अथ शुभलक्षणमाह—

अमलवपुरवक्रमण्डल: स्फुटविपुलामलदीर्घदीधिति: ।
अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकर: ।।४०।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामादित्यचारस्तृतीयोऽध्याय:।।३।।

स्वच्छ, अखण्डित, स्पष्ट, अतिशय स्वच्छ, दीर्घ किरण वाला, निर्विकार शरीर, वर्ण और चिह्न वाला सूर्यमण्डल संसार का मङ्गल करने वाला होता है।।४०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामादित्यचाराध्यायस्तृतीय: ।।३।।

अमलवपुरिति । एवंविधो दिवाकर: सूर्यो जगति जनानां शिवं श्रेय: करोति। कीदृशोऽमलवपुर्निर्मलशरीर:। अवक्रमण्डल: स्पष्टबिम्ब:। तथा च पराशर:—

श्वेत: शिरीषपुष्पाभ: पद्माभो रूप्यसन्निभ:।
वैदूर्यघृतमण्डाभो हेमाभश्च दिवाकर:।।
वर्णैरिभि: प्रशस्त: स्यान्महास्निग्ध: प्रतापवान्।
भावन: सर्वसस्यानां क्षेमारोग्यसुभिक्षद:।।

स्फुटविपुलामलदीर्घदीधिति: । स्फुटा: स्पष्टा। विपुला विस्तीर्णा:। अमला निर्मला:। दीर्घा आयामिनो रश्मयो यस्य। तथा च पराशर:—'स्निग्धा: परिपूर्णा: शुक्ला माञ्जिष्ठा: पीता अत्यन्तगामिनो रश्मय: शस्यन्ते। रूक्षा अविच्छिन्नास्तनवो ह्रस्वा धूमाभा लोहितवर्णा विगर्हिता' इति। **अविकृततनुवर्णचिह्नभृत् ।** अविकृता निर्विकारा तनुर्मूर्त्तिस्तथाऽविकृतो वर्ण: कान्ति:। अविकृतं चिह्नं लक्ष्म। एतान्यविकृतानि बिभर्ति धारयति तथाभूत इति।।३९।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावादित्यचारो नामाध्यायस्तृतीय: ।।३।।

अथ चन्द्रचाराध्यायः

अथ चन्द्रचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव रवेरुपरि चन्द्रमसमिच्छन्ति, तान् प्रत्याह—

नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धम्।
स्वच्छाययाऽन्यदसितं कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य ॥१॥

जिस तरह धूप में स्थित घड़े का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध दिशा में स्थित दूसरा आधा भाग अपनी छाया से ही कृष्ण वर्ण दिखाई देता है, उसी तरह सदा सूर्य के अधोभाग में स्थित चन्द्र का सूर्य की तरफ का आधा भाग शुक्ल और विरुद्ध अर्धभाग अपनी छाया से ही कृष्ण दिखाई देता है।।१।।

इन्दोश्चन्द्रस्य भानोरादित्यादधःस्थस्य भानवीभिर्भाभिः सूर्यरश्मिभिर्नित्यं सर्वकालमेकमर्द्धदलं सितं शुक्लं भवति। यस्मिन् गोलकभागेऽर्करश्मयः पतन्ति तदेवार्द्धं शुक्लं भवति। अन्यद् द्वितीयमर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं नित्यमेव भवति। कथम्? उच्यते—कुम्भस्येवाऽऽतपस्स्थस्य। कुम्भस्य यस्मिन्नर्द्धे रश्मयः पतन्ति तदर्द्धं शुक्लं दृश्यते। अन्यदर्द्धं स्वच्छायया कृष्णं दृश्यते। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

रविदृष्टं सितमर्द्धं कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य।
कुम्भस्य तथासन्नं रवेरधःस्थस्य चन्द्रस्य।।

तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

महतश्चाप्यधःस्थस्य नित्यं भासयते रविः।
अर्द्धं शशाङ्कबिम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन।। इति।।१।।

नन्विन्दुप्रकाशकोपलम्भात् स्वच्छाययान्यदसितमित्यस्य प्रत्यक्षबाधां मन्यमान आह—

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥२॥

जिस तरह दर्पण पर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से घर के अन्दर का अन्धकार नष्ट होता है, उसी तरह जलपिण्डात्मक चन्द्र के ऊपर गिरी हुई सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब से रात्रिसम्बन्धी अन्धकार नष्ट होता है।।२।।

शशिनि चन्द्रमसि सलिलमयेऽम्बुमये रवेरादित्यस्य सम्बन्धिन्यो दीधितयो रश्मयो मूर्च्छितास्तत्र संलग्नाः प्रतिफलिता नैशं निशाभवं रात्र्युत्पन्नं तमोऽन्धकारं क्षपयन्ति नाशयन्ति। यथा दर्पणोदरे आदर्शमध्ये द्वारप्रवेशे गृहस्य सूर्यरश्मयो निहिताः संरुद्धा मन्दिरस्य गृहस्यान्तर्मध्ये तमः क्षपयन्ति तथेति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिताः।।

तथा चाऽऽर्यभटः—

भूग्रहभानां गोलार्द्धानि स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्द्धानि यथा सार्द्धं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते।। इति।।२।।

अथ शशिनः पश्चिमदिग्भागात्सितवृद्धिः किमुपलभ्यते? तदर्थमाह—

त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम्।
दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः ।।३।।

सूर्य के अधःप्रदेश को छोड़ते हुये चन्द्र का शुक्ल जिस-जिस तरह नीचे की तरफ लटकता है, उसी तरह चन्द्र का उदित अधोभाग भी क्रम से प्रकाशित होता है।।३।।

शशिनश्चन्द्रमसोऽर्कतलं सूर्याधोभागं त्यजतो यथा येन प्रकारेण पश्चात्पश्चिमायां दिशि शौक्ल्यं शुक्लत्वमवलम्बते आक्रमते। तथा तेनैव प्रकारेणेन्दोश्चन्द्रस्य दिनकरवशात्सूर्यहेतोरधःप्रभृति बुध्नभागादारभ्योदयः प्रकाशते विराजते इति। एतदुक्तं भवति। रवेरधोभागस्थश्चन्द्रमा अमावास्यान्ते भवति तत्र च तस्य चन्द्रलोकस्य सूर्याभिमुखं गोलार्द्धं शुक्लं भवति। अधःस्थितमवनिदृश्यभागं कृष्णवर्णं भवति। ततः प्रतिपदादिषु तिथिषु यथा यथा स्वभोगतुल्येनार्कात्प्राङ्मुखः शीघ्रगतित्वाद्याति तथातथा दृष्टिवर्तिनं सितमधोभागेऽवलम्बते। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

विप्रकर्षं यथा याति ह्यधःस्थश्चन्द्रमा रवेः।
तथातथाऽस्य भूदृश्यमंशं भासयते रवेः।। इति।।३।।

प्रतिदिनं कथं चन्द्रगोले शुक्लवृद्धिर्भवति तदर्थमाह—

प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः।
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ।।४।।

अपराह्ण काल में आतप में स्थित घड़े के पश्चिम भाग में जिस तरह शुक्लता बढ़ती है, उसी तरह प्रतिदिन रवि से स्थानविशेष (दूर-दूर) में गमन करने से चन्द्र का शुक्लत्व बढ़ता है।।४।।

एवमनेन प्रकारेण शशिनश्चन्द्रस्यार्कादादित्यात् स्थानविशेषेण स्थानान्तरगमनेन शौक्ल्यस्य शुक्लभावस्य परिवृद्धिर्वृद्धिरधिकतरा भवति। यथायथाग्रतो राशिभोगवशेन याति तथातथा तस्य शुक्लाधिक्यं भवति। यथाऽपराह्णे द्वितीये दिनार्द्धे पश्चाद्भागे पश्चिमार्द्धे घटस्य कुम्भस्याऽऽतपस्थस्य शुक्लता भवति तथेति। एतदुक्तं भवति। यथा यथा चन्द्रः प्राङ्मुखो राशिवशेन याति तथातथा शौक्ल्यपरिवृद्धिर्भवति। यावच्छुक्राष्टम्यर्द्धे राशिचयान्तरितस्यार्द्धशुक्लता भवति। पौर्णमास्यन्ते षड्राश्यन्तरितस्य सर्वशुक्लता भवति। ततो

यथायथाऽर्कसन्निकर्षमायाति तथातथा शौक्ल्यहानिर्भवति। यावत्कृष्णाष्टम्यर्द्धे कृष्णार्द्धता भवति। अमावास्यान्ते सर्वकृष्णता भवतीति।।४।।

अथ चन्द्रस्य नक्षत्रगमनेन शुभाशुभत्वमाह—

ऐन्द्रस्य शीतकिरणो मूलाषाढाद्वयस्य चायात:।
याम्येन बीजजलचरकाननहा वह्निभयदश्च ।।५।।

जिस समय चन्द्रमा ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा—इन चार नक्षत्रों के दक्षिण में होकर जाता है, उस समय बीज, जलचर और वन का नाश होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उक्त नक्षत्रों के उत्तर में होकर यदि चन्द्र जाता हो तो शुभ होता है।।५।।

ऐन्द्रं ज्येष्ठा। मूलं नैर्ऋतम्। आषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे। शीतकिरणश्चन्द्रमा ऐन्द्रस्य मूलाषाढाद्वयस्य च याम्येन दक्षिणेन यदा यातो गतस्तदा बीजानि यान्युप्यन्ते। जलचरा जलप्राणिन:। काननानि वनानि च। हन्ति नाशयति। तथा वह्निभयदश्चाग्निभयदो भवति। अर्थादेवोत्तरेण गत: शोभन:। ततो वक्ष्यति—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्क:।
प्रदक्षिण तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिव: शशाङ्क:।। इति।।५।।

अन्येषामप्याह—

दक्षिणपार्श्वेन गत: शशी विशाखाऽनुराधयो: पाप:।
मध्येन तु प्रशस्त: पितृदेवविशाखयोश्चापि ।।६।।

यदि विशाखा और अनुराधा के दक्षिण भाग में चन्द्रमा जाता हो तो पाप फल देने वाला होता है। यदि मघा और विशाखा के मध्य में होकर चन्द्रमा जाता हो तो शुभ फल देने वाला होता है।।६।।

विशाखाऽनुराधे प्रसिद्धे नक्षत्रे। अनयो: शशी चन्द्रो दक्षिणपार्श्वेन याम्यभागेन गतो यात:। पाप: पापफलदोऽनिष्टदो भवति। अर्थादेवोत्तरेण शुभ:। पितृदेवो मघा। विशाखा प्रसिद्धा। अनयोर्द्वयोर्मध्येनान्तरेण चन्द्रमा गत: प्रशस्त:। शुभफलद:। अपिशब्दो विशेषं द्योतयति, तेन मघाविशाखयोरुत्तरेणापि गतश्चन्द्र: शुभफलद:। तथा च समाससंहितायाम्—

भवति विशाखाद्यानां षण्णां याम्येन पापदश्चन्द्र:।
उदगिष्ट: सर्वेषां पित्र्येशविशाखयोश्चान्त:।।

तथा च पराशर:—

'अथ मार्गेष्वाग्नेयादुत्तरोऽतिवर्षकरो मैत्रसावित्राभ्यां प्रजाहितकारी। ज्येष्ठाग्नेयमैत्र-त्वाष्ट्राणां दक्षिणतश्चरन् पुष्कलाशुभद:। उपरिष्टाद्वैरोधिको धान्यविनाशी। अधो यव-सम्पत्कर:। मघाऽनुराधाभ्यां मध्येन गमनमतिशोभनम्। शिशिरग्रीष्मयोर्दक्षिणे च शुभदो वर्षास्ववर्षकर: सर्वर्त्तुषु नैर्ऋतेऽपि विश्वदेवानां चे'ति।।६।।

अथ चन्द्रमसो नक्षत्रयोगमाह—

षडनागतानि पौष्णाद् द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि ।
ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ।।७।।

रेवती से छः नक्षत्र (रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी) अनागत (अप्राप्त) होकर चन्द्र से मिलते हैं। आर्द्रा से बारह नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा) मध्यसंयोगी होकर चन्द्रमा से मिलते हैं और ज्येष्ठा से नव नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा) अतिक्रान्त (प्राप्त) होकर चन्द्रमा से मिलते हैं। इसका आशय यह है कि जब चन्द्र उत्तराभाद्रपदा में जाता है तो उसी समय चन्द्र का रेवती नक्षत्र से संयोग हो जाता है। इसी तरह रेवती में जाने पर अश्विनी से, अश्विनी में जाने पर भरणी से, भरणी में जाने पर कृत्तिका से, कृत्तिका में जाने पर रोहिणी से और रोहिणी में जाने पर मृगशिर से संयोग हो जाता है। आर्द्रा आदि बारह नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्रविभाग के बीच में चन्द्र के जाने से संयोग होता है। ज्येष्ठा से नव नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्र के अगले नक्षत्र में जाने पर ही चन्द्रमा पिछले नक्षत्र से संयोग कर लेता है। जैसे—मूल में जाने पर ज्येष्ठा से, पूर्वाषाढा में जाने पर मूल इत्यादि से चन्द्र का संयोग हो जाता है। इन्हीं नक्षत्रों को गर्ग आदि आचार्य अर्द्धभोगी, अध्यर्द्धभोगी और समभोगी नाम से सम्बोधित करते हैं।।७।।

पौष्ण रेवती तस्मात्प्रभृति षट् नक्षत्राणि रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिराश्चे-त्येतानि षट् नक्षत्राणि षट्संख्यानि ऋक्षाणि। उडुपतिना चन्द्रेण सहानागतान्यप्राप्तानि। युज्यन्ते सयोगं यान्ति। यथोत्तरभाद्रपदस्थस्य चन्द्रमसो रैवत्या सह संयोगो दृश्यते। रेवती-संस्थितस्य अश्विन्या सहैवमन्येषाम्। रौद्रमार्द्रा तस्मात्प्रभृति द्वादशनक्षत्राणि। आर्द्रापुनर्वसु-तिष्याश्लेषामघापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधा इति। एतान्युडुपतिना मध्ययोगीनि युज्यन्ते। चन्द्रमा यत्र काले एषां मध्यप्राप्तो भवति। अर्द्धभोगं भुक्त इत्यर्थः। यथा आर्द्रायां स्थितः सन् चन्द्र आर्द्रया सह संयोगं याति, एवमन्येषामपि ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाणि। ज्येष्ठाद्यानि ज्येष्ठात्प्रभृति नवनक्षत्राणि ज्येष्ठामूलपूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठा-शतभिषक्पूर्वभाद्रपदोत्तराभाद्रपदेत्येतान्युडुपतिना चन्द्रेणातीत्यातिक्रम्य युज्यन्ते। यथा मूल-स्थस्य चन्द्रमसो ज्येष्ठया सह संयोगो दृश्यते पूर्वाषाढास्थस्य मूलेनैवमन्येषामपि। एत-दुक्तं भवति—गर्गादिभिः कानिचिन्नक्षत्राण्यर्द्धभोगीन्युक्तानि, कानिचिदध्यर्द्धभोगीनि, कानि-चित्समभोगीनि। यान्यर्द्धभोगीनि तान्यतीत्य युज्यन्ते। यान्यध्यर्द्धभोगीनि तान्येवानागतानि। यानि समभोगीनि तानि मध्यभोगीनि युज्यन्ते। तथा च गर्गः—

उत्तराश्च तथादित्यं विशाखा चैव रोहिणी।
एतानि षडध्यर्द्धभोगीनि महाक्षेत्राणि।
मघाश्विकृत्तिकासोमतिष्यपित्र्यभगाह्वयाः ।

सावित्रचित्राऽनूराधा मूलं तोयं च वैष्णवम्।
धनिष्ठा चैकपाच्चैव समभागः प्रकीर्तितः।
एतानि पञ्चदश समभोगीनि मध्यक्षेत्राणि।
याम्येन्द्ररुद्रवायव्यसार्पवारुणसंज्ञिताः ।
एतानि षडर्द्धभोगीनि स्वल्पक्षेत्राणि।

नन्वाचार्येणान्यथोक्तानि तान्यन्यथा स्थितानि। उच्यते—आचार्येणातिगोलज्ञतया यष्टि-यन्त्रेण देवदर्शनदृक्समान्युक्तानि। अथ किम्प्रमाणमध्यर्द्धभोगिनां किं वार्द्धभोगिनां किं च समभोगिनामिति। उच्यते—चन्द्रमध्यमभुक्तिरध्यर्द्धगुणा अध्यर्द्धभोगिनां प्रमाणमर्द्धगुणा अर्द्धभोगिनामेकगुणा समभोगिनामिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

केशादित्यविशाखाप्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि ।
षट् षड् ज्येष्ठाभरणीस्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः।।
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽभिजिदुक्तमृक्षभोगोऽन्यः ।
तन्मानं नाक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्।
अध्यर्द्धार्द्धसमक्षेत्राणां मध्यगतिलिप्तिकाः शशिनः।
अध्यर्द्धार्द्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योनाः।।
मण्डललिप्ताः शेषा भोगोऽभिजितः।।७।।

अथ चन्द्रमसः संस्थानानि दश भवन्ति। तद्यथा—नौर्लाङ्गलं दुष्टलाङ्गलं समो दण्डः कार्मुकं युगं पार्श्वशय्यावर्जितं कुण्डाख्यमिति। तत्र नौसंस्थानस्य लक्षणं फलं चाह—

उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता।
नाविकपीडा तस्मिन् भवति शिवं सर्वलोकस्य ।।८।।

चन्द्र का शृङ्ग कुछ उन्नत होकर जब नाव की तरह विशालता को प्राप्त होता है तो 'नौ' नाम का संस्थान होता है। इसमें नाविक लोगों को पीड़ा और अन्य सबों का शुभ होता है।।९।।

ईषच्छृङ्गम्। ईषत्किञ्चिदुन्नतमुच्चं शृङ्गं यस्य। तथा विशालता विस्तीर्णता च भवति। तन्नौसंस्थानम्। तस्मिन्नौसंस्थाने नाविकानां नौकर्णधारिणां पीडोक्ता कथिता। तथा च सर्व-लोकस्य समस्तजनस्य च शिवं श्रेयो भवति।।८।।

अथ लाङ्गलसंस्थानं सफलमाह—

अर्द्धोन्नते च लाङ्गलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन्।
प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च ।।९।।

यदि चन्द्र का शृङ्ग आधा उन्नत हो तो 'लाङ्गल' संस्थान होता है। इसमें हल से जीवनयात्रा चलाने वाले को पीड़ा होती है। राजाओं में विना कारण स्नेह होता है और सुभिक्ष होता है।।९।।

शशिनि उच्छृङ्गे चोत्तरे अर्द्धोन्नते लाङ्गलमिते हलनाम तत्स्थानम्। तस्मिन् संस्थाने तदुपजीविनां लाङ्गलोपजीविनां पीडा भवति। तथा मनुजपतीनां राज्ञां निर्निमित्तं कारणं विना प्रीतिः स्नेहो भवति। लोके शिवं श्रेयः सुभिक्षं च भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

यदा सोमः प्रतिपदि नौस्थायी सम्प्रदृश्यते।
उत्तरोज्ज्वलशृङ्गो वा लाङ्गली च मनोहरः।।
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सर्वभूतेषु निर्दिशेत्।
राज्ञां च विजयं ब्रूयाद् वर्द्धन्ते शृङ्गिणस्तथा।। इति।।९।।

अथ दुष्टलाङ्गलसंस्थानं सफलमाह—

दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलाङ्गलाख्यं तत् ।
पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृदुद्योगकरं बलानां च ॥१०॥

जब चन्द्र का दक्षिण शृङ्ग अर्द्धोन्नत दिखाई दे, तब 'दुष्टलाङ्गल' नाम का संस्थान होता है। इसमें पाण्डव देश के राजा की मृत्यु होती है और यह संस्थान सेनाओं को यात्रा में प्रवृत्त कराता है।।१०।।

दक्षिणविषाणं याम्यशृङ्गं यदाऽर्द्धोन्नतं भवति तदा दुष्टलाङ्गलं नाम तत्संस्थानम्। तच्च पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृत् पाण्ड्यदेशे योऽसौ नरेश्वरो राजा तस्य निधनं मरणं करोति। तथा बलानां सैन्यानामुद्योगकरं सेनानामुद्योगम् उद्यमं करोति यात्रायाम्। तथा च वृद्धगर्गः—

दक्षिणे च भवेत् स्थूलं हीनं शृङ्गमथोत्तरम्।
दुष्टलाङ्गलसंज्ञं तत्प्रजाक्षयकरं स्मृतम्।। इति।।१०।।

अथ समदण्डसंस्थानमाह—

समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः ।
दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥११॥

यदि चन्द्र का शृङ्ग समान हो तो प्रथम दिन की तरह सुभिक्ष, क्षेम (कुशल) और वृष्टि होती है अर्थात् प्रतिपदा के दिन जिस तरह सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती है, उसी तरह एक महीने तक सुभिक्ष, क्षेम और वृष्टि होती रहेगी। यदि दण्डाकार चन्द्रमा दिखाई दे तो गौ को पीड़ा होती है और राजा बहुत कठोर दण्ड देने वाला होता है।।११।।

समशशिनि तुल्यशृङ्गे चन्द्रे। प्रथमदिवससदृशाः प्रथमं दिनं प्रतिपत्तत्सदृशास्तत्तुल्याः सुभिक्षक्षेमवृष्टयः स्युर्भवेयुः। प्रतिपद्दिने यादृशः सुभिक्षो यादृशः क्षेमो यादृशी वृष्टिस्तादृशा एव मासं यावत् स्युर्भवेयुः। दण्डवदुदिते दण्डाकारे। गवां पीडा भवति। तथात्रास्मिन् संस्थाने राजा नृप उग्रदण्डस्तीक्ष्णकरो भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

समशृङ्गो यदा दृष्टः शशी क्षेमसुभिक्षकृत्।
प्रतिपत्सदृशं तत्र वासवो वर्षते तदा।।

चन्द्ररेखा यदा चोर्ध्वमृज्वी दण्ड इव स्थिता।
उदक्शृङ्गाधिकसमो दण्डस्थानं तदुच्यते।।
उद्युक्तदण्डा राजानो विनिघ्नन्ति समन्ततः।
गवां पीडां विजानीयाद्दण्डस्थाने यदा शशी।। इति।।११।।

अथ कार्मुकयुगसंस्थानयोर्लक्षणं फलं चाह—

कार्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम्।
स्थानं युगमिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय ।।१२।।

यदि चन्द्र की आकृति धनुष के समान हो तो उसको 'कार्मुक'संस्थान कहते हैं। इसमें युद्ध होता है तथा जिस तरफ धनुष की जीवा रहती है, उस दिशा के राजा की जीत होती है। यदि चन्द्र के शृङ्ग दक्षिणोत्तर विस्तीर्ण हों तो उसको 'युग'संस्थान कहते हैं। इसमें भूकम्प होता है।।१२।।

कार्मुकं धनुस्तद्रूपे तदाकारे संस्थाने। युद्धानि संग्रामा भवन्ति। यत्र तु ज्या यस्मिन् भागे गुणस्तत्र तस्यां दिशि ये स्थिता राजानस्तेषां जयो भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

उदये तु यदा सोमं पश्येद्धनुरिवोदितम्।
धनुर्द्धराणामुद्योगो जगद्युद्धकरो भवेत्।।
क्षत्रियाः क्षत्रियान् घ्नन्ति वर्णाश्चैव तथापरे।
अग्रतश्च जयस्तेषां पृष्ठतश्च पराजयः।।

स्थानं युगमिति। तत्स्थानं याम्योत्तरायतं दक्षिणसौम्यभागविस्तीर्णां मध्यमं मण्डलं यदि भवति तद्युगं नाम। तच्च भूमिकम्पाय भवति। एतदुक्तं भवति—एवंविधे संस्थाने तन्मासमध्ये भूमिकम्पो वक्तव्यः। तथा च वृद्धगर्गः—

चन्द्ररेखा यदा व्यक्ता दक्षिणोत्तरमायता।
शुक्लादौ प्रतिपद्येत तद्योगस्थानलक्षणम्।।
सैन्योद्योगा भवन्त्यत्र भूमिकम्पश्च जायते।। इति।।१२।।

अथ पार्श्वशायिनः संस्थानं फलं चाह—

युगमेव याम्यकोट्यां किञ्चित्तुङ्गं स पार्श्वशायीति।
विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात् ।।१३।।

पूर्वकथित युगसंस्थान में दक्षिण शृंग का अग्रभाग कुछ ऊँचा हो तो 'पार्श्वशायी' संस्थान होता है। इसमें धनी व्यापारियों का और वृष्टि का नाश होता है।।१३।।

युगमेव युगसंस्थानं याम्यकोट्यां दक्षिणशृङ्गाग्रे किञ्चिदीषत्तुङ्गमुच्चं यदि भवति तदा स पार्श्वशायीति चन्द्रः। पार्श्वशायीति तत्संज्ञा। स च सार्थवाहान् सार्थप्रधानान् विनिहन्ति घातयति। तथा वृष्टेर्वर्षणस्य च विनिग्रहं विनाशमभावं कुर्यात्। न वर्षतीत्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

याम्यकोट्यायतः किञ्चिद्युगकाले यदा शशी।
पार्श्वशायीति संज्ञोऽयं सार्थहा वृष्टिनाशनः।। इति।।१३।।

अथाऽऽवर्जितलक्षणं सफलमाह—

अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनोऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम्।
आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद् गोधनस्यापि।।१४।।

अतिशय उन्नत होने के कारण चन्द्र का शृंग यदि अधोमुख हो तो 'आवर्जित' नाम का संस्थान होता है। इसमें मनुष्य एवं पशु—दोनों के लिये दुर्भिक्ष होता है।।१४।।

अभि मुख्येनोच्छ्रायोऽभ्युच्छ्रायस्तस्मादभ्युच्छ्रायाच्छशिनश्चन्द्रस्य यद्येकशृङ्गमवाङ्मुखमधोमुखं भवति तत्संस्थानमावर्जितं नाम। इतिशब्दः प्रकारायैवं प्रकाराय इत्यर्थः। तदसुभिक्षकारि दुर्भिक्षं करोति लोके। न केवलं यावद् गोधनस्यापि तृणानामभावादपि दुर्भिक्षं करोति। तथा च वृद्धगर्गः—

अधोमुखं यदा शृङ्गं शशिनो दृश्यते तदा।
संस्थानमावर्जितकं गोघ्नं दुर्भिक्षकारकम्।। इति।।१४।।

अथ कुण्डाख्यसंस्थाने लक्षणं फलं चाह—

अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम्।
अस्मिन् माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम्।।१५।।

यदि चन्द्र के चारो तरफ अव्युच्छिन्न (अखण्डित) गोलाकार रेखा दिखाई दे तो 'कुण्डाख्य' संस्थान होता है। इसमें माण्डलिक राजाओं का स्थान छूट जाता है।।१५।।

समन्ततः सर्वत्र यद्यव्युच्छिन्ना रेखा खण्डरेखा चन्द्रमसो दृश्यते तदा तत्स्थानं कुण्डाख्यं कुण्डमित्याख्या नाम यस्य। अस्मिन् संस्थाने माण्डलिकानां नरपतीनाम्। मण्डले परिमिते देशे ये राजानस्तेषां स्थानत्यागः स्थानचलनं भवति, स्वस्थानाच्च्युतिरित्यर्थः। तथा च वृद्धगर्गः—

अच्छिन्ना मण्डले रेखा शशिनो दृश्यते यदा।
कुण्डाख्यं नाम संस्थानं नृपविग्रहदायकम्।।

नक्षत्रचन्द्रमसोर्यानि संस्थानान्युक्तानि तेषां कानिचिद् गणितविधिना शृङ्गोन्नतिपरिलेखकरणेनोत्पद्यन्ते कानिचिन्नोत्पद्यन्ते। तथा चाऽऽचार्येणोक्तम्—

अपमान्तरसंयुक्तात्तदूनगुणिताच्छशाङ्करविविवरात्।
मूलेनापमविवरे छिन्ने विक्षेपसङ्गुणिते।।
फलमिन्द्वर्कविशेषाच्छोध्यं त्वपमानुकूलविक्षिप्ते।
तद्व्यत्यासे देयं विपरीतं पूर्वसन्ध्यायाम्।।
दिनकृत्सप्तमभवनात्तेनोदयनाडिकाद्वयं यदि वा।
वियति विमले तदेन्दोर्लोकस्याऽऽलोकमायाति।।

द्विगुणेच्छातिथ्यंशः शृङ्गमुदक्कुङ्गमुडुगणाधिपतेः।
देयं च भुजादेतच्छौक्ल्यं कर्णाद् द्विषट्कांशम्।।
अपमान्तरविक्षेपावैकान्यत्वे युतोनितौ कोटिः।
कर्णो रवीन्दुविवरं तत्कृतिविवरात् पदं बाहुः।।
सविता यतः शशाङ्कात्कोट्या परिकल्पितस्ततः कोटिः।
देयांशकार्गुलसमा भुजकर्णौ चाङ्गुलैरेव।।
शशिमध्यात्त्राक्कर्णः कोटिरतोऽतो भुजः शशाङ्कगतः।
परिधावक्षो नाम शौक्ल्यं मध्याद्धनुस्तत्र।।
याम्योदग्विक्षेपाद्विषुवत्याघ्नाद्रविभिरवाप्तांशः ।
उदये शशिनो वृद्धिः क्षयो विपर्यस्तमय एवम्।।
एवं व्यर्काच्चन्द्राद्यद्यूना राशयः षडधिका वा।
तदुदयकालेन दिवा निशि च शशाङ्कोदयो वाच्यः।।
कृत्वैवं क्षयवृद्धी व्यर्कं चन्द्रं विशोध्य चक्रार्द्धात्।
शेषोदयकालसमे शशिदिवसार्द्धे शशी मध्ये।।

एवमत्र तानि नोत्पद्यन्ते किमर्थमाचार्येण फलमुक्तम्। उच्यते—यानि नोत्पद्यन्ते परिलेखविधौ तान्युत्पातरूपाणि कदाचिद्दृश्यन्ते यतस्तेषां भगवद्गर्गादिविरचितशास्त्रेषु फलानि दृश्यन्ते, तानि चाऽऽचार्येण पूर्वशास्त्राऽऽचारेणोक्तानीति। पराशरतन्त्रेऽष्टौ संस्थानान्युक्तानि। तथा च पराशरः—

'तत्राऽष्टौ संस्थानानि भवन्ति। तद्यथा—लाङ्गलं नौर्दुष्टलाङ्गलं दण्डो धनुर्युगं सममवाक्शिरः। तत्रैषामीषदुन्नतोत्तरशृङ्गं लाङ्गलसंस्थानं तत्र सुभिक्षक्षेमवृष्टिकारणान्युत्पद्यन्ते। उभयशृङ्गः कुक्षिमान्विशालो नौस्थायी फलतः समः। पूर्वेण दक्षिणोन्नतशृङ्गो दुष्टलाङ्गलं परसैन्योद्योगनाशकृत्। दण्डवद्दण्डस्थायी दण्डकृत्प्रजानाम्। धनुष्प्रख्यो धनुःस्थायी स धनुर्द्धरोद्योगकृतोऽस्य ज्या, ततो विजयः। यद्युदगायता दक्षिणेन चास्य लेखा भवति, तद्युगसंस्थानमिच्छन्ति जगद्विद्रवभूकम्पाय। समोभयशृङ्गः समस्तसंस्थानं महाभयकृत्। शस्त्रसारभयदोऽवाक्शिराः। अथैतानि शुक्लप्रतिपदि द्वितीयायां वा लक्ष्याणि भवन्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

उदगुन्नतः शुभफलः समः समो दक्षिणोन्नतो न शुभः।
युद्धानि चापरूपे ज्यास्य यतस्ते नृपा जयिनः।।
नाविकपीडा नौवल्लाङ्गलवत्संस्थिते कृषिकराणाम्।
दण्डाऽवाङ्मुखसङ्कटजर्जरपीठाकृतिर्न शुभः।।
उत्पाता व्याख्याता येऽर्के चन्द्रेऽपि ते विनिर्देश्याः।
शुक्ले भवन्ति सौम्याः कृष्णेऽधिकपापफलदास्ते।। इति।।१५।।

अथ सामान्यलक्षणमाह—

प्रोक्तस्थानाभावादुदगुच्चः क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः ।
दक्षिणतुङ्गश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः ।।१६।।

पूर्वकथित संस्थानों के अभाव में यदि चन्द्र का शृंग उत्तर दिशा में उन्नत हो तो वह क्षेम, सस्य की वृद्धि और वृष्टि को करता है एवं यदि दक्षिण दिशा में उन्नत हो तो दुर्भिक्ष और भय करता है।।१६।।

प्रोक्तानि कथितानि यानि संस्थानानि तेषामभावादसम्भवाद्यद्युदगुच्च उत्तरोन्नतश्चन्द्रमास्तदा क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः। लब्धपालनं क्षेमस्तं च करोति। वृद्धयः सस्यवृद्धयो वृष्टिर्वर्षणं ते च करोतीति।

अथ दक्षिणतुङ्गो याम्योन्नतो भवति दक्षिणविषाणोन्नतस्तदा दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः कथितः। दुर्भिक्षभयं च करोति।।१६।।

अन्यदप्याह—

शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीनमथवाऽप्यवाङ्मुखं शृङ्गम् ।
सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रश्येत् ।।१७।।

यदि चन्द्र का एक शृङ्ग विलीन (बिलकुल नहीं) हो, अधोमुख हो या सब नये प्रकार के हों तो उसे देखने वालों में से एक मनुष्य की मृत्यु होती है।।१७।।

एवंविधमिन्दुं चन्द्रं दृष्ट्वा विलोक्यैको मनुजो जीवितादायुषो भ्रश्येत् पतेत्। य एवैकः पश्यति स म्रियत इत्यर्थः। कीदृशम्? एकेन शृङ्गेणोपलक्षितम्। अथवा विलीनं गलितमिवैकेन शृङ्गेण। अपिशब्दो विकल्पनार्थः। अथवाऽवाङ्मुखमधोमुखं शृङ्गं चास्य भवति। तथा सम्पूर्णं परिपूर्णमभिनवमभि मुख्येन नवम्। चशब्दः समुच्चये। अथवाऽभि मुख्येन नवं द्वितीयाचन्द्रमेवंविधं पश्यति। तथा च समाससंहितायाम्—

उदयन्तमप्यसदृशं न शुभं बहुरूपताथवैकस्य।
एकश्चन्द्रविकारं यः पश्येन्न स चिरं जीवेत्।। इति।।१७।।

अथ चन्द्रमसो रूपाण्याह—

संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद् भवन्ति चन्द्रमसः।
स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान् सुभिक्षावहः प्रोक्तः।।१८।।

संस्थानप्रकार कहने के बाद चन्द्र के स्वरूप और उनके फल को कहते हैं। यदि चन्द्रबिम्ब छोटा हो तो दुर्भिक्ष और बड़ा हो तो सुभिक्ष होता है।।१८।।

संस्थानविधिः संस्थानप्रकारश्चन्द्रमसः कथित उक्तः। अस्मात् परतो रूपाणि भवन्ति, तानि चाह—स्वल्पो दुर्भिक्षकरः, अत्यल्पमूर्त्तिरसुभिक्षं करोति। महान् पृथुमूर्त्तिः सुभिक्षावहः, सुभिक्षमावहति करोतीति सुभिक्षावहः, प्रोक्तः कथितः।।१८।।

मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः सम्भ्रमाय राज्ञां च।
चन्द्रो मृदङ्गरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति ॥१९॥
ज्ञेयो विशालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चन्द्रः।
स्थूलः सुभिक्षकारी प्रियधान्यकरस्तु तनुमूर्त्तिः ॥२०॥

यदि चन्द्रबिम्ब मध्यम हो तो वज्रसंज्ञक होता है। यह क्षुधा और भय को देने वाला तथा राजाओं में उद्यम उत्पन्न करने वाला होता है। यदि चन्द्रबिम्ब मृदङ्ग की तरह दिखलाई पड़े तो कल्याण और सुभिक्ष होता है। यदि अति विस्तृत मूर्ति के समान हो तो राजलक्ष्मी की वृद्धि होती है। यदि मोटी मूर्ति के समान हो तो सुभिक्ष करने वाला और पतली मूर्ति के समान हो तो प्रियधान्य (सुभिक्ष) करने वाला होता है।।१९-२०।।

मध्यतनुर्यो मध्यादवनतः स वज्राख्यो वज्रसंज्ञः। क्षुद्भयदः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददाति। राज्ञां नृपाणां च सम्भ्रमायोद्यमाय भवति। तथा च वृद्धगर्गः—

विलग्नमध्यो मेघाभो वज्रसंस्थानसंस्थितः।
मध्यच्छिद्रो विलीनो वा भयं च जनयेद् महत्।।

चन्द्रः शशी मृदङ्गरूपो मृदङ्गाकारः क्षेमसुभिक्षावहो भवति। क्षेमं सुभिक्षं च करोति। चन्द्रः शशी विशालमूर्त्तिर्विस्तीर्णबिम्बो नरपते राज्ञो लक्ष्मीविवृद्धये श्रियो वृद्ध्यर्थं ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स्थूलो घनः सुभिक्षकारी सुभिक्षकृद्भवति। तनुमूर्त्तिरघनदेहः प्रियधान्यकरो दुर्भिक्षकारी च भवति।।१९-२०।।

अथ चन्द्रस्य कुजादिभिस्ताराग्रहैः शृङ्गे भिन्ने फलमाह—

प्रत्यन्तान् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतिः शृङ्गे कुजेनाहते
शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत्।
श्रेष्ठान् हन्ति नृपान् महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान्
शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥२१॥

यदि चन्द्रशृङ्ग मङ्गल से वेधित हो तो दूर देश में रहने वाले बड़े राजाओं का नाश करने वाला होता है एवं शनि से वेधित होने पर शस्त्र और क्षुधा का भय करने वाला होता है। इसी प्रकार बुध से वेधित होने पर श्रेष्ठ राजाओं का नाश करने वाला होता है तथा शुक्र से वेधित होने पर छोटे राजाओं का नाश करने वाला होता है। यह पूर्वोक्त ग्रहकृत फल शुक्ल पक्ष में थोड़ा और कृष्ण पक्ष में पूर्ण रूप से घटित होता है।।२१।।

चन्द्रस्य ताराग्रहैः सह संयोगे समागमाध्यायोक्तगणितविधिना ग्रहणवत्कर्मणि जाते भूत्वाऽधोभागेन भौमादयो बिम्बभेदनं कुर्वन्ति। तत्र शृङ्गभेदने इदं फलं मध्यभेदने च वक्ष्यमाणम्।

प्रत्यन्तानिति। उडुपतिश्चन्द्रः कुजेन भौमेन शृङ्गे विषाणे आहते ताडिते सति प्रत्यन्तान्

दूरवासिनः। कुनृपान् कुत्सितनरपतीन्। हन्ति घातयति। यमेन शनैश्चरेणाऽऽहते शृङ्गे शस्त्रक्षुद्भयकृत्। शस्त्रभयं क्षुद्भयं दुर्भिक्षं च करोति। शशिजेन बुधेनाऽऽहते अवृष्टिजं अवृष्ट्युद्भूतं भयं दुर्भिक्षजं भयं च करोति। महेन्द्रगुरुणा बृहस्पतिना हते श्रेष्ठान् नरपतीन् हन्ति घातयति। शुक्रेण सितेनाऽऽहते शृङ्गे अल्पान् नृपान् स्वल्पान् नृपान् हन्ति। चशब्दः समुच्चये सर्वत्राऽत्र।

शुक्ले याप्यमिति। इदं ग्रहकृतं शृङ्गभङ्गफलं शुक्लपक्षे याप्यं भवति किञ्चिद्भद्रवतीत्यर्थः। कृष्णे कृष्णपक्षे यथोक्तागमं यथा निर्दिष्टं सकलं फलं भवतीति। तथा च पराशरः—

'अथ शृङ्गाभिमर्दने गुरुः प्रधाननृपविनाशाय। भृगुर्यायिनां कुनृपाणाम्। भौमः सौम्यो दुर्भिक्षायावृष्टये। क्षुच्छस्त्रभयदः सौर' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

प्रत्यन्तविनाशोऽन्नक्षयो महाराजपीडा च।
संग्रामाश्चाभिहिते शृङ्गे भौमादिभिः क्रमशः।। इति।।२१।।

अधुना शुक्रभिन्नबिम्बस्य चन्द्रमसः फलमाह—

भिन्नः सितेन मगधान् यवनान् पुलिन्दान्
नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान् ।
पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुषादान्
हन्यादुशीनरजनानपि सप्त मासान् ।।२२।।

यदि चन्द्रबिम्ब शुक्र से वेधित हो तो मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल, भृङ्गि, मरुदेश, कच्छ, सूरत, मद्रास, पञ्जाब, काश्मीर, कुलूतक, पुरुषाद, उशीनर—इन देशों में सात महीने तक भयानक मृत्यु होती है।।२२।।

सितेन शुक्रेण यदा भिन्नश्चन्द्रो मध्याद्विदारितस्तदा मगधान् जनान्, यवनान्, पुलिन्दान्, एतान् सर्वान् जनान्। नेपालभृङ्गिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रानेतान् जनान्, पाञ्चालान्, कैकयान्, कुलूतकान् जनानेव। पूरुषादान् पुरुषभक्षान्। उशीनरजनान्, एतान् सर्वान् पाककालादनन्तरं सप्त मासान् यावन्निहन्याद् घातयेत्।।२२।।

अथ जीवभिन्नस्याह—

गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान्
धान्यानि शैलान् द्रविडाधिपांश्च ।
द्विजांश्च मासान् दश शीतरश्मिः
सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः ।।२३।।

यदि चन्द्रबिम्ब बृहस्पति से वेधित हो तो कन्धार, सौवीरक, सिन्ध, कीर, पर्वतीय, द्रविड—इन देशों के ब्राह्मणों और धान्यों का दश महीने तक नाश करता है।।२३।।

शीतरश्मिश्चन्द्रो वाक्पतिना गुरुणा विभिन्नो विदारितबिम्ब:। गान्धारान्, सौवीरकान्, कीरान्—एतान् सर्वानेन जनान् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। तथा धान्यानि व्रीहीन्, शैलान् पर्वतान्, द्रविडाधिपान् द्रविडदेशीयाधिपतीन्, द्विजांश्च ब्राह्मणान्—एतान् दश मासान् यावत् सन्तापयेत् सम्पीडयेत्। पाकाध्यायनिर्दिष्टकालात् परत इदं ज्ञेयमिति सर्वत्र।।२३।।

अथ भौमभिन्नस्याह—

उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान् मालवान्
कौलिन्दान् गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान्।
हन्यात् कौरवमत्स्यशुक्त्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि
प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया ।।२४।।

यदि मङ्गल से चन्द्रबिम्ब वेधित हो तो अश्व आदि वाहनों के द्वारा योद्धाओं का नाश होता है तथा त्रिगर्त, मालवा, कौलिन्द, गणों में प्रधान, शिबि और अयोध्या में उत्पन्न जनों एवं राजाओं का नाश करता है। इसी तरह कुरु, मत्स्य, शुक्ति—इन देशों के जनों और राजाओं का छ: महीने के अन्दर नाश करता है।।२४।।

प्रालेयांशुर्हिमरश्मिश्चन्द्रोऽसृग्ग्रहे अङ्गारके तनुगते शरीरस्थे भौमभिन्न इत्यर्थ:। षण्मासमर्यादया षण्मासावधि यावदेतान् हन्यात् घातयेत्। उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतीन्, नरपतीन्नृपान्। उद्युक्तान् उद्योगस्थितान् विजिगीषून् वाहनैरश्वादिभि: सह हन्यात्। त्रैगर्तान् जनान्, मालवान्, कौलिन्दान् जनानेव। गणपुङ्गवान् समूहप्रधानान्। अथशब्द: स्वार्थे। अथ शिबीन् जनान्, आयोध्यकानयोध्याभवान्, तथा पार्थिवान्नृपान्—एतानपि हन्यात्। तथा कौरवानां मत्स्यानां शुक्तीनां जनानां चाधिपतय: स्वामिनस्तानपि राजन्यमुख्यान् क्षत्रिय-प्रधानांश्च हन्यात्।।२४।।

अथ शनैश्चरभिन्नस्याह—

यौधेयान् सचिवान् सकौरवान् प्रागीशानथ चार्जुनायनान्।
हन्यादर्कजभिन्नमण्डल: शीतांशुर्दशमासपीडया ।।२५।।

यदि शनैश्चर से चन्द्रमा वेधित हो तो दश महीने तक पीड़ित करके योद्धाओं, मन्त्रियों, कुरुवंशियों, पूर्व दिशा में स्थित राजाओं और अर्जुनायन (पाण्डुवंशीय) जनों का नाश करता है।।२५।।

शीतांशुश्चन्द्रोऽर्कजभिन्नमण्डल: सौरविदारितबिम्बो दशमासपीडया दशमासोपतापेनैतान् हन्याद् घातयेत्। यौधेयान् जनान्। सचिवान् मन्त्रिण:। सकौरवान् कौरवैर्जनै: सहितान्। प्रागीशान् पूर्वस्यां येऽधिपतयस्तान्। अथशब्द: पादपूरणे। चशब्द: समुच्चयार्थे। अर्जुनायनान् जनानिति।।२५।।

अथ बुधभिन्नस्याह—

मगधान् मथुरां च पीडयेद्वेणायाश्च तटं शशाङ्कज:।
अपरत्र कृतं युगं वदेद्यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गत:।।२६।।

यदि चन्द्रमा को वेधित करके बुध निकला हो तो मगध, मथुरा और वेणा नदी के तट पर स्थित देशों के मनुष्यों को पीड़ित करता है तथा पश्चिमीय देशों में स्थित मनुष्यों के लिए सतयुग के समान समय करता है, अर्थात् उन देशों में रहने वाले मनुष्य सब प्रकार से सम्पन्न होते हैं।।२६।।

शशाङ्कजो बुधो यदि शशिनं चन्द्रं भित्त्वा विदार्य विनिर्गतो विनिःसृतस्तदा मगधान् देशान् मथुरां च पीडयेत् हन्ति। तद्वासिनो जनान् विनाशयति। वेणा नाम नदी तस्यास्तटं तत्तीरे ये निवासिनस्तान् जनानित्यर्थः। एतानुक्तान् वर्जयित्वाऽपरत्र अन्यदेशेषु कृतं युगं वदेत् कृतयुगाकारं ब्रूयात् तद्धर्मानुवृत्तेः।।२६।।

अथ केतुभिन्नस्याह—

क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः।
कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम्॥२७॥

यदि केतु से चन्द्रमा वेधित हो तो सब प्रकार के मंगल, आरोग्य, सुभिक्ष—इनका और शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले मनुष्यों का नाश करता है तथा चोरों को विशेषकर पीड़ा देता है।।२७।।

शीतांशुश्चन्द्रः शिखिना केतुना यदि भिन्नो विदारितबिम्बस्तदा क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी भवति। क्षेममारोग्यं नीरुजत्वं सुभिक्षं च विनाशयति तच्छीलः। तथाऽऽयुधजीविनामायुधेन ये जीवन्ति तेषां विनाशमुपघातं कुर्यात्। चौराणां तस्कराणामधिकेन चातिशयेन पीडां रुजं कुर्यात्। तथा च पराशरः—

'अथ भेदेष्वसुरगुरुभिन्नः पाञ्चालमगधमद्रकुणिन्दकौलूतककैकययवनधूमाम्बष्टमार्गणाङ्गनाराज्यभृङ्गिमरुकच्छोशीनरपुलिन्दपुरुषादनेपालान् सप्तमासानुपतापयतीति। अमरगुरुणा दशमासान् गान्धारवसतिं सिन्धुवाह्लिकपर्वतकाश्मीरान्। क्षितिसुतभिन्नः कुरुशिबिमालवत्रिगर्तकुलिन्दायोध्याधिपतीन् जयार्थिनः सह षण्मासानुपतापयतीति। अर्कसूनुसम्भेदो नृपविरोधामात्यभेदगणपयौधेयार्जुनायनभयायाऽनावृष्टिप्रादुर्भावाय च दशमासान्। बुधभिन्नः सुभिक्षक्षेमवृष्टिकरः। केतोस्तद्विपर्ययः। प्रवर्द्धमानो वपुष्मानपराजितो ग्रहभिन्नोऽप्यशुभफलसंहर्ता' इति।।२७।।

अथ ग्रहणकाले उल्काहतस्य चन्द्रस्य फलमाह—

उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते।
हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः॥२८॥

यदि ग्रहणकालिक चन्द्र के ऊपर उल्कापात हो तो उस समय जिस राजा के जन्मनक्षत्र में चन्द्रमा स्थित हो, उस राजा का नाश करता है।।२८।।

शशी चन्द्रः। ग्रस्तो राहुराशिगतो यदोल्कया हन्यते, तदभिमुखी उल्का याति, तदा यस्य नृपस्य यस्य राज्ञः, जन्मनि जन्मगतः स्थितः स हन्यते तदा म्रियत इत्यर्थः। तथा

च समाससंहितायाम्—

उल्काभिहतो ग्रहणे तन्नक्षत्रं नृपं हन्ति।। इति।।२८।।

अथ चन्द्रमसो वर्णलक्षणमाह—

भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्त्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः ।
श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुड्डमरामयचौरभयाय ॥२९॥

यदि चन्द्रबिम्ब भस्म के समान रूक्ष, रक्त वर्ण, किरणों से हीन, कृष्ण वर्ण, खण्डित या काँपता हुआ हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग और चोरों का भय देने वाला होता है।।२९।।

एवंविधः शीतकरश्चन्द्रः क्षुड्डमरामयचौरभयाय भवति। क्षुद्दुर्भिक्षम्। डमरः शत्रुकलहः। आमयो रोगः। चौरास्तस्कराः। एषां सम्बन्धि भयं भवति। कीदृशः? भस्मनिभो भस्मवर्णः कलुषः। परुषो रूक्षः। अरुणमूर्त्तिर्लोहितशरीरः। किरणै रश्मिभिः परिहीणो वर्जितः। श्यावतनुः श्यामशरीरः। स्फुटितो भग्नः। स्फुरणः कम्पमान इति।।२९।।

अन्यच्छुभलक्षणमाह—

प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो
यत्नादिवाऽद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः ।
उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय
यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥३०॥

मानो शिव जी के लिये पार्वती जी ने साफ करके हिम, कुन्दपुष्प या स्फटिक मणि के समान स्वच्छ अत्यन्त सुन्दर चन्द्र बनाया हो, ऐसे चन्द्र को जो मनुष्य रात्रि में देखता है उसके लिये वह कल्याणकारी होता है अर्थात् हिम आदि के समान स्वच्छ चन्द्र को रात्रि में जो देखता है; उसका सर्वथा मंगल होता है।।३०।।

एवंविधश्चन्द्रो यो दृश्यतेऽवलोक्यते स जगतो जनानां शिवाय श्रेयसे भविता भविष्यतीत्यर्थः। कीदृशः? प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातः, प्रालेयं हिमम्, कुन्दकुमुदे पुष्पविशेषे शुक्ले तथा स्फटिको मणिस्तद्वदवदातो निर्मल इत्यर्थः। तथा अद्रिसुतया गौर्या यत्नाद्यत्नतः परिमृज्य समन्ततो निर्मलीकृत्योच्चैः कृत इवोपरि न्यस्तः। किमर्थम्? निशि रात्रौ मे शिवाय महेश्वराय भविष्यति प्रेयसे वेति निश्चित्य। तथा च पराशरः—

'भस्मारुणवह्निताम्रपीतपाण्डुनीलरूक्षवर्णः क्षुद्वैरकरः। स्निग्धः प्रसन्नो रश्मिवान् श्वेतः क्षेमसुभिक्षवृष्टिकरः' इति।।३०।।

अथ पक्षवृद्धौ वा हानौ वा साम्ये शुभाशुभमाह—

शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च ।
हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ३१॥

यदि शुक्ल पक्ष में कोई तिथि बढ़ जाय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और प्रजागण अत्यन्त

वृद्धि को प्राप्त होते हैं, लेकिन घट जाने पर उनकी हानि होती है और समान तिथि रहने पर उनको साधारण फल प्राप्त होता है।।३१।।

शुक्ले पक्षे श्वेतमासार्द्धे सम्प्रवृद्धे सम्यक् प्रवृद्धिं गते ब्रह्मक्षत्रं वृद्धिं याति। ब्राह्मणा द्विजाः, क्षत्रिया नृपाश्च वृद्धिं गच्छन्ति, तथा प्रजाश्च वृद्धिं यान्ति। हीने हानिरिति, तस्मिन्नेव शुक्लपक्षे हीने क्षयं गते च ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्भवति। **तुल्यता तुल्यतायामिति।** तुल्यतायां समत्वे न हानौ न वृद्धौ तेषां ब्रह्मक्षत्रप्रजानां तुल्यता साम्यमेव भवति। कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन, कृष्णे कृष्णपक्षे सर्वं प्रागुक्तं फलं व्यत्ययेन विपरीतेन ज्ञेयं ज्ञातव्यम्। एतदुक्तं भवति—कृष्णपक्षे प्रवृद्धे ब्रह्मक्षत्रप्रजानां हानिर्हीने तस्मिन् पक्ष एव तेषां वृद्धिः। समे पक्षे समत्वमिति।।३१।।

अन्यदप्याह—

यदि कुमुदमृणालहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्द्धते वा।
अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः ॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

यदि विकाररहित गति और विकाररहित किरण वाला चन्द्र कुमुद, मृणाल या मुक्ताहार के समान वर्ण का होकर तिथि के अनुसार घटता-बढ़ता हो तो मनुष्यों की विजय का सूचक होता है।।३२।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां चन्द्रचाराध्यायश्चतुर्थः ॥४॥

एवंविधः शीतरश्मिश्चन्द्रो नृणां पुंसां विजयाय भवति। कीदृशो यदि कुमुदमृणालहारगौरः, कुमुदं पुष्पविशेषम्, मृणालं बिसम्, हारो मुक्ताहारस्तद्वद्यदि गौरः श्वेत इत्यर्थः। तिथिनियमात्तिथिक्रमेण क्षयमेति क्षयं गच्छति। तिथिक्रमेण वा वर्द्धते वृद्धिं याति। शुक्लकृष्णप्रतिपदाद्यासु तिथिषु वृद्धिक्षयौ तुल्यौ भवतः कदाचिद्धीनाधिकतेत्यर्थः। अविकृतगतिः, अविकृता विकाररहिता गतिर्गमनं यस्य कम्पनादिदोषरहितः। अविकृतं मण्डलं बिम्बं यस्य अविकृतैरंशुभिः किरणैर्योगः संयोगो यस्य तथाभूत इति।।३२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
चन्द्रचारो नामाध्यायश्चतुर्थः ॥४॥

अथ राहुचाराध्यायः

अथ राहुचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव राहोर्ग्रहत्वप्रतिपादनाय मतान्तरमाह—

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥१॥

राहु नामक राक्षस ने अपना मस्तक कट जाने पर भी अमृत पी चुकने के कारण प्राणनाश नहीं; वरन् ग्रहत्व को प्राप्त किया—ऐसा कुछ लोग कहते हैं।।१।।

किलशब्द आगमप्रदर्शनार्थः। एके केचिदाचार्या एवं वदन्ति कथयन्ति। लोके यो राहुरित्युच्यते स चाऽसुरः सैंहिकेयः। तस्य पुराऽमृतं पिबतो भगवता हरिणा सुदर्शनाख्येन चक्रेण शिरो मूर्द्धा छिन्नं निकृत्तमपि अमृताऽऽस्वादविशेषादमृताऽऽस्वादनहेतोः प्राणै-रसुभिरपरित्यक्तं नोज्झितं ग्रहतां यातं तदेव ग्रहत्वं प्राप्तमिति। तथा च पुराणकारः—

सिंहिकातनयो राहुरपिबच्चामृतं पुरा।
शिरच्छिन्नोऽपि न प्राणैस्त्यक्तोऽसौ ग्रहतां गतः।। इति।।१।।

यद्येवंविधो राहुस्तत्किमित्याकाशे ग्रहवन्नोपलभ्यते तदर्थमाह—

इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥२॥

कृष्ण वर्ण का होने के कारण ब्रह्मा जी के वर-प्रदान से पर्वकाल से भिन्न समय में राहु आकाश में चन्द्र और रविमण्डल के सदृश नहीं दिखाई देता।।२।।

इन्दुमण्डलस्य चन्द्रबिम्बस्यार्कमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्य च यादृश्याकृतिराकारस्तादृगेव राहुमण्डलस्य। यद्येवं तत् किमिति गगने आकाशे न दृश्यते नोपलभ्यते? असितत्वात् किलेति, असितत्वात् कृष्णत्वात् किल न दृश्यते यतोऽसौ तमोमय इति। यदि न दृश्यते तदास्य दर्शनमस्तीत्याह—**अन्यत्र पर्वकालादिति**। कमलयोनेर्ब्रह्मणो वरप्रदानात् पर्वकालाद् ग्रहणसमयादन्यत्र अन्यस्मिन् काले न दृश्यते, पर्वकाले तु पुनर्दृश्यते। तथा च पराशरः—

'पुरा पुरुहूतपितरं कश्यपमपत्यार्थमकाले सिंहिका अभियाचयामास। तस्यै मुनिर-कालयाञ्चाकोपाद्दारुणं मयकालान्तकोपमं सुतमदात्, यं राहुमित्याचक्षते कुशलाः। स जातमात्र एवाऽदितिसुतसङ्गरावमर्दादनु विमुखीकृतः क्रोधाद्धिमवति दिव्यमत्युग्रमयुतं वर्षाणां तपोऽतप्यत। स पितामहाद्दिवि चरणममरतां सुरविजयमर्कचन्द्रसम्भक्षणं च वरमभि-वरयामास। तस्मै भगवानमरगुरुः स्वयम्भूः प्रहसन्नुवाच। अतिवरमशक्तस्त्वमेतौ जरयितुं किन्त्वेवमस्त्वित्युक्त्वान्तर्हिते भगवति दिनकररजनिकरावभिदुद्राव राहुः। ततो हरिररि[illegible]

चक्रमुपरि प्रक्षिप्यास्य शिरच्छित्वोवाच। सर्वमवितथं पितामहवचो भवतु स्वे स्वे युगे पर्वणि ग्रहणं 'कुर्वन् जगतः शुभाशुभानां कर्ता भविष्यसी'ति। तथा च भगवान् गर्गः—

आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च पुरश्चान्द्रेषु पर्वसु।। इति।।२।।

अन्यदपि मतान्तरमाह—

मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्त्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम्।।३।।

किसी का मत है कि मुख और पुच्छ से विभक्त है अंग जिसका, ऐसा जो सर्प का आकार है, वही राहु का आकार है। किसी का मत है कि राहु का आकार कोई भी नहीं है, बल्कि वह केवल अन्धकारमय है।।३।।

एके आचार्याः सैंहिकेयाख्यं राहुं मुखपुच्छविभक्ताङ्गमुपदिशन्ति कथयन्ति। मुख-पुच्छाभ्यां विभक्तान्यङ्गानि यस्य, एतदेवास्य ज्ञायते नान्यदवयवादिकं मुखपुच्छाभ्यां परतः। तथा च वीरभद्रः—

सिंहिकातनयस्यास्य राहोः पुच्छमुखादृते।
नान्यदस्ति परं बाहुकटिपादकरादिकम्।। इति।

भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये। अन्ये आचार्या भुजङ्गमाकारं सर्पाकृतिं च वदन्ति कथयन्ति। यथा सर्परूपो राहुः। तथा च वसिष्ठः—

भषट्कान्तरितौ राहुः सूर्याचन्द्रमसावुभौ।
छादयत्युरगाकारो वरदानात् स्वयम्भुवः।। इति।

कथयन्त्यमूर्तमपर इति। अपरेऽन्ये पुनरमूर्तं मूर्त्तिरहितं तमोमयमन्धकारमयं राहुं कथयन्ति वदन्ति। तथा च देवलः—

अन्धकारमयो राहुर्मेघखण्ड इवोत्थितः।
आच्छादयति सोमार्कौ पर्वकाले ह्युपस्थिते।। इति।।३।।

अधुनैतत्परमतं दूषयितुमाह—

यदि मूर्त्तो भविचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः।
भगणार्द्धेनान्तरितौ गृह्णाति कथं नियतचारः।।४।।

यदि राहु मूर्तिमान्, राशि में चलने वाला, शिर वाला और बिम्ब वाला होता तो मिश्रित गति वाला होकर भगणार्द्ध पर स्थित रवि-चन्द्र—इन दोनों को कैसे ग्रसित करता अर्थात् कभी भी ग्रसित नहीं कर पाता।।४।।

यद्यसौ राहुर्मूर्त्तो मूर्त्तिमान् सावयवः। भविचारी भेषु राशिषु वा नक्षत्रेषु विचरणशीलः। शिरोऽथवा भवति, शिरोमान् राहुर्मण्डलवान् वा तन्नियतचारो निश्चितगतिर्भूत्वा कथं

भगणार्द्धेन राशिषट्केनान्तरितौ व्यवहितौ सूर्याचन्द्रमसौ गृह्णाति। किलास्य तिस्रो लिप्ता एकादशविलिप्ताश्च गणितस्कन्धोक्ता नियता गतिर्यस्य नियतचारस्तस्य षड्राश्यन्तरिता गतिर्न सम्भाव्यते अर्कादीनां यथेति।।४।।

अन्यद् दूषणान्तरमाह—

अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य।
पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ।।५।।

यदि राहु अनिश्चित गति वाला होता तो गणित से उसका ज्ञान कैसे हो सकता था? अथवा यदि मुख-पुच्छ-विभक्ताङ्ग वाला होता है तो अपने से दूसरी, तीसरी, चौथी या पाँचवीं राशि पर स्थित रवि-चन्द्र को क्यों नहीं ग्रसता है।।५।।

यद्यसौ राहुरनियतचारोऽनिश्चितगतिः केत्वादिरिव तत्कथं तस्य संख्यया गणितेनोपलब्धिरुपलम्भनम्। कथं ज्ञायते यथास्मिन् राशौ राहुरवस्थित इति।

अथवा पुच्छाननाभिधानो मुखपुच्छविभक्ताङ्गस्तदान्तरेण मध्येन कथं न गृह्णाति। यथा षड्राश्यन्तरितौ गृह्णाति तथा राशिद्वयेन राशित्रयेण राशिचतुष्केण राशिपञ्चकेन वा कस्माद्धेतोर्न गृह्णाति।।५।।

अन्यदपि दूषणमाह—

अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति।
मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्द्धम् ।।६।।

यदि राहु सर्पाकार होता तो मुख या पुच्छ से छः राशि के अन्तर पर स्थित रवि-चन्द्र को ग्रहण-समय में मुख और पुच्छ के मध्य में स्थित भगणार्ध को भी आच्छादित कर देता।।६।।

अथशब्दो विकल्पार्थे। तुशब्दः पादपूरणे। यदि राहुर्भुजगेन्द्ररूपः सर्पाकारः। स च षड्राश्यन्तरितावर्कचन्द्रौ पुच्छेन लाङ्गूलेन मुखेन वदनेन वा गृह्णाति। एवं चेद् मुखपुच्छान्तरसंस्थं मुखपुच्छमध्यवर्ति भगणार्द्धं राशिषट्कं कस्माद्धेतोर्न स्थगयति नाच्छादयति। किलैतदुपपद्यत इति।।६।।

अथ राहुद्वयमप्यस्ति तत्रैको नियतचारः, अन्योऽनियतचारः। यश्चानियतचारः स षड्राश्यन्तरितयोरर्कचन्द्रयोर्मुखेन ग्रहणं करोतीत्येतत्प्रतिषेधयन्नाह—

राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे।
तत्समगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ।।७।।

यदि राहु दो होते तो चन्द्र के ग्रस्तास्त या ग्रस्तोदय समय में चन्द्र से षड्भान्तर पर स्थित सूर्य भी उसके समान गति वाले द्वितीय राहु से ग्रसित देखने में आता। आशय यह है कि जो कोई दो राहु—एक नियत चार वाला और दूसरा अनियत चार वाला मानते हैं,

वह ठीक नहीं है; क्योंकि जब अनियत चार वाले राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्र का उदय या अस्त होगा तो उस समय क्षितिज के ऊपर विरुद्ध दिशा में नियत चार वाले राहु से सूर्य का भी ग्रहण होना सम्भव है, पर ऐसा देखने में नहीं आता।।७।।

यदि चेद्राहुद्वयं स्वर्भानुयुगम्। स्याद्भवेत्। तच्चन्द्रे शशिनि ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवा दिने ग्रस्त उदिते सति सूर्योऽपि रविरपि तत्समगतिना सूर्यतुल्यगतिनान्येनापरेण द्वितीयेन राहुणा ग्रस्तश्छादितो दृश्येत अवलोक्येत च। एतदुक्तं भवति—यदा ग्रस्तश्चन्द्रमा उदेति ग्रस्तो वास्तमेति तदा पूर्वापरहरिजसक्तस्येन्दोरर्कस्यापि पूर्वापरक्षितिजासक्तिर्भवति षड्राश्यन्तरितत्वादुपपद्यते। द्वावपि क्षितिजादुपरि स्थितौ दृश्यौ भवतः। पर्वकालस्य च सम्भवादेकेनानियत-चारेण चन्द्र आच्छाद्यते परेण च नियतचारेण षड्राश्यन्तरितः सूर्य इति।।७।।

एवं मतान्तराणि निराकृत्य स्वसिद्धान्तमाह—

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ।।८।।

अपने ग्रहण में चन्द्रमा भूच्छाया में और सूर्यग्रहण में सूर्यबिम्ब में प्रविष्ट होता है; अतः चन्द्र का स्पर्श पश्चिम भाग से और सूर्य का स्पर्श पूर्व भाग से नहीं होता।।८।।

यदि राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्ग्रहणं तदिन्दोः प्राक्प्रग्रहणं पश्चात् सूर्यस्येति तत्किमिति राहोरेकरूपत्वात्? अत्राऽऽह—**भूच्छायामिति**। इन्दुश्चन्दः स्वग्रहणे। आत्मीयोपरागे भूच्छाया प्रविशति। अर्कग्रहणे सूर्योपरागे भास्करमर्कं प्रविशति, यतोऽर्कात् सप्तमराशौ भूच्छाया भ्रमति चन्द्रश्च पौर्णमास्यन्ते तत्रैव भवति। स च शीघ्रत्वात् पूर्वाभिमुखो भूच्छायां प्रविशति। तत्र प्रविष्टस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतस्तस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं भवति। सूर्यग्रहणे चन्द्रार्कावेकराशिगौ भवतः। तत्र चन्द्रमाः शीघ्रगतित्वात् पश्चादागत्यामावास्यान्तेऽर्कतलं प्रविशत्यतोऽविक्षिप्तः स एवाधःस्थोऽर्कमाच्छादयति। अतः पश्चात् सूर्यस्य खण्डं नोत्पद्यते। अतोऽस्माद्धेतोरिन्दोश्चन्द्रस्य पश्चादर्द्धात् प्रग्रहणं न भवति। भानोरादित्यस्य पूर्वार्द्धात् प्रग्रहणं न भवतीति।।८।।

अथ रात्रौ कुतो भूच्छाया भवत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घचया ।
निशि निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ।।९।।

जिस तरह सूर्य के आवरणवश वृक्ष की छाया एक तरफ फैलती है, उसी तरह सूर्य के आवरणवश पृथ्वी की छाया प्रत्येक रात्रि में लम्बी होती है।।९।।

यथा वृक्षस्य तरोः स्वच्छायाऽऽत्मीया भा दिनेशस्याऽऽदित्यस्याऽऽवरणवशात् छादनहेतोरेकस्मिन् पार्श्वे भवति दीर्घचयाऽऽयामिनी सूर्याद्विपक्षायां दिशि भवति। तद्वत्तेनैव प्रकारेण निशि निशि रात्रौ रात्रौ दिनेशस्याऽऽवरणवशाद् भूर्यतः सूर्यमाच्छादयति। अतो हेतोरेकपार्श्वे भवति दीर्घचया।।९।।

यद्येवं तत्प्रतिमासं किमिति चन्द्रस्य ग्रहणं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयन्नाह—

सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगत:।
चन्द्र: पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥१०॥

जब सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होकर पूर्वाभिमुख गति वाला चन्द्र क्रान्तिवृत्त से अत्यल्प उत्तर या दक्षिण शर पर रहता है तो उस समय पूर्वाभिमुख चलता हुआ चन्द्र पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है।।१०।।

यदि चन्द्र: शशी सूर्यादादित्यात् सप्तमे राशौ स्थितो भूच्छायात उत्तरेण दक्षिणेन च नात्यर्थं याति। स्वल्पेन विक्षेपेण विक्षिप्तो भवतीत्यर्थ:। तदा पूर्वाभिमुखो गच्छन् प्राचीं दिशमनुसरन्नौर्वीं भूच्छायां प्रविशति नान्यथेति। यतो भूच्छाया मूलाद्बृहती भवत्यग्रादल्पा। सा च चन्द्रकक्षाया ऊर्ध्वं याति। तत्रस्थश्चन्द्रमा अत्यल्पविक्षिप्तो यदा भवति तदा सर्वग्रास उत्पद्यते। विक्षेपे सति तदनुसारेण चतुर्भागग्रासप्रमाणमर्द्धग्रासप्रमाणं पादोनग्रासप्रमाणं ग्रासाभावो वा स्वबुद्ध्योह्यमिति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भूच्छायां शशिकक्ष्यागां रवौ भार्द्धान्तरस्थिते।
यदा विशत्यविक्षिप्तश्चन्द्र: स्यात्तद्ग्रहस्तदा।। इति।।१०।।

अथ चन्द्रग्रहणं सर्वत्रैकरूपं दृश्यते अर्कग्रहणं प्रतिदेशमन्यादृशमित्येतत्प्रतिपादयन्नाह—

चन्द्रोऽध:स्थ: स्थगयति रविमम्बुदवत् समागत: पश्चात्।
प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद् भास्करग्रहणम् ॥११॥

सभी देशों में प्राय: चन्द्रग्रहण एक रूप का और रविग्रहण विभिन्न रूप का देखने में आता है। उसका कारण यह है कि मेघ की तरह अध:स्थित चन्द्रमा पश्चिम तरफ से आकर रविबिम्ब को आच्छादित करता है; इसीलिये प्रत्येक देश में सूर्यग्रहण विभिन्न रूप में देखने में आता है।।११।।

आदित्यादध:स्थश्चन्द्र:। स च पश्चात् पश्चिमभागात् समागतोऽम्बुदवन्मेघखण्डवद्रविमादित्यं स्थगयत्याच्छादयति। अतोऽस्माद्धेतो: प्रतिदेशं देशं देशं प्रति भास्करग्रहणं सूर्योपरागं दृष्टिवशाद्दर्शनहेतोश्चित्रं नानाप्रकारं दृश्यतेऽवलोक्यते। क्वचित्सर्वग्रहणं क्वचित्खण्डग्रहणं क्वचिद्ग्रहणाभाव:। यथा मेघखण्डाच्छादितमर्कबिम्बं समाधोवर्त्तिनां सर्वमेवादृश्यं पार्श्ववर्त्तिनां केषाञ्चिदर्द्धदृश्यं केषाञ्चिच्चतुर्थभागदृश्यमन्येषां सर्वदृश्यमिति। तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

इन्दुना छादितं सूर्यमधोऽविक्षिप्तगामिना।
न पश्यति यदा लोकस्तदा स्याद्भास्करग्रह:।।
तमोमयस्य तमसो रविरश्मिपलायिन:।
भूच्छाया चन्द्रबिम्बं च स्थाने द्वे परिकल्पिते।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

भूच्छायेन्दुं चन्द्रः सूर्यं छादयति मानयोगार्द्धात्।
विक्षेपो यद्यूनः शुक्लेतरपञ्चदशयन्ते।। इति।।११।।

अथार्द्धच्छन्नस्य चन्द्रमसः कुण्ठविषाणता भवत्यर्द्धच्छन्नस्यार्कस्य तीक्ष्णविषाणता भवति तत्किमेकत्वाद् ग्राहकस्येत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्द्धसञ्छन्नः ।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ।।१२।।

चन्द्र का आवरण (छादक = भूच्छाया) महान् होने के कारण अर्धग्रसित चन्द्रबिम्ब में कुण्ठविषाण (स्थूल श‍ृङ्ग) होता है एवं सूर्य का आवरण (छादक = चन्द्रबिम्ब) स्वल्प (सूर्यबिम्ब से अल्प) होने के कारण अर्धग्रसित सूर्यबिम्ब में तीक्ष्ण विषाण (सूक्ष्म श‍ृङ्ग) होता है।।१२।।

इन्द्रोश्चन्द्रस्य महत् अतिबृहत् किञ्चिदावरणमाच्छादकः। ततस्तस्माद्धेतोरर्द्धसञ्छन्नोऽर्द्धग्रस्तः कुण्ठविषाणो भग्नश‍ृङ्गो भवति।

रवेरादित्यस्य स्वल्पमावरणम्। यतो यस्मादर्द्धसञ्छन्नो रविस्तीक्ष्णविषाणस्तीक्ष्णश‍ृङ्गो भवति। एतच्च भूच्छायाचन्द्रयोरेव सम्भवति। परिलेखकरणेनात्रोपपत्तिरिति। तथा चाऽऽचार्य एव पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

स्वं भूच्छायामिन्दुः स्पृशत्यतः स्पृश्यते न पश्चार्द्धे।
भानुग्रहेऽर्कमिन्दोः प्राक् प्रग्रहणं रवेर्नातः।।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

महदिन्दोरावरणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्द्धसञ्छन्नः।
अर्द्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्णविषाणस्ततोऽस्याल्पम्।। इति।।१२।।

राहुकृतमर्कचन्द्रयोर्न ग्रहणमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः ।
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ।।१३।।

दिव्य दृष्टि वाले आचार्यों ने इस तरह उपराग (ग्रहण) का कारण कहा है। इसमें राहु को कारण न मानना शास्त्रमर्यादा की रक्षा करना है।

इस प्रकार राहुकृत ग्रहण का न होना सिद्ध होता है; परन्तु पामर से लेकर महान् ज्ञानियों तक सर्वत्र राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है। साथ ही श्रुति-स्मृति-पुराणादि में भी राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है।।१३।।

एवमनेन प्रकारेणेदमुपरागकारणं ग्रहणनिमित्तं दिव्यदृग्भिराचार्यैरुक्तं दिव्यज्ञानसंयुक्ता दृष्टिर्येषां ते दिव्यदृशस्तैर्दिव्यदृग्भिरुक्तं कथितम्। अस्मिन्नुपरागे राहुरकारणमनिमित्तमिति

शास्त्रसद्भाव: परमार्थ उक्त कथित:। इतिशब्दो निश्चयार्थे। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

यदि राहु: प्राग्भागादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।
स्थित्यर्द्धं महदिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य।।
किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।
ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणमर्केन्द्वो:।। इति।

ननु यद्येवमर्केन्द्वोर्न राहुकृतं ग्रहणं तच्छ्रुतिसंहितालोकै: सह विरुध्यते। यतो लोके राहुकृतं ग्रहणमित्यागोपालाङ्गनादिप्रसिद्धं स्मृतिषूक्तम्—

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्।

तथा—

राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु ।
स्नानदानादिकं कुर्यान्निशि काम्यव्रतेषु च।। इति।

तथा च श्रुतौ—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरि: सूर्यं तमसा विव्याधेति।

संहितासु तथा च गर्ग:—

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत् पीडा ये नरा: शान्तिवर्जिता:।। इति।

तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

राहुकृतं ग्रहणद्वयमागोपालाङ्गनादिसिद्धमिदम्।
बहुफलमिदमपि सिद्धं जपहोमस्नानफलमत्र।।
स्मृतिषूक्तं न स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनाद्रात्रौ।
राहुग्रस्ते सूर्ये सर्वं गङ्गासमं तोयम्।।
स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा विव्याध वेदवाक्यमिदम्।। इति।।१३।।

एवं मत्वा लोकश्रुतिस्मृतिसंहितानां यथैक्यं भवति तत्प्रतिपादनाय राहोरेव ग्राहकत्वमाह—

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त: ।
आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ।।१४।।

तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहु: ।
याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ।।१५।।

पूर्व समय में ब्रह्मा जी ने राहु को ऐसा वर दिया था कि ग्रहण-समय में लोगों के द्वारा दिये गये हुतांश से तेरी तृप्ति होती रहेगी। इस कारण ग्रहण-समय में सूर्य-चन्द्र को राहु का सान्निध्य होता है और राहु के कारण ही चन्द्र की दक्षिणोत्तरा गति उत्पन्न होती है।।१४-१५।।

योऽसावसुर इति। योऽसावसुर: सैंहिकेयाख्यो राहुस्तस्य राहोर्ब्रह्मणा पितामहेन वरोऽयमाज्ञप्तो दत्त:। यथापरागे ग्रहणेऽर्कचन्द्रयोर्दत्तहुतांशेन ग्रहणकाले यद्दानं दीयते यच्च वह्नौ हूयते ततोऽसावंशो भागस्तेन दत्तहुतांशेन ते तव चाप्यायनं तर्पणं भविता भविष्यतीति।

तस्मिन् काले ग्रहणसमयेऽस्य राहो: सान्निध्यं सन्निहितत्वं कमलजवरप्रदानाद्भवति तेन कारणेन लोके राहुरित्युपचर्यते कथ्यते। तेन भूच्छायाचन्द्रगोलौ द्वे स्थाने तस्य निवासार्थं परिकल्पिते। तत्र स्थितत्वात् स एवाऽऽच्छादक इति सर्वत्र प्रसिद्धि:। गणिते तु पुन: शशिगतिर्याम्योत्तरा दक्षिणसौम्यविक्षेपवशात्। स च दक्षिणसौम्यविक्षेप उत्पद्यते पातवशात्। यतश्चन्द्रपात एव लोके राहुरिति प्रसिद्ध:। भौमादीनां ताराग्रहाणामपि पाता विद्यन्ते। तेषामपि तद्वशात्तद्विक्षेपो भवति। तेन याम्योत्तरा गतिर्ज्ञायते। किमयं ग्रह: क्रान्त्यग्रादुत्तरेण विक्षिप्त: किं वा दक्षिणेनेति। एवं चन्द्रस्य याऽसौ दक्षिणोत्तरा गति: पातवशात् सिध्यति, सैवापि लोके राह्वर्थेनोपचर्यते व्यवस्थाप्यते। अपिशब्दो निश्चयार्थे। एतदुक्तं भवति— चन्द्रविक्षेपज्ञानार्थं यश्चन्द्रपात: परिकल्पित: स एव लोके राहुरित्युच्यते। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

श्रुतिसंहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरत:।
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदश्यन्ते।।
भूच्छायातमसीन्दुं वरप्रदानात् कमलजस्य।
चन्द्रोऽम्बुमयोऽध:स्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते।।
छादयति शमिततापं राहुश्छादयति तत्सवितु:।
भूच्छायाव्याससम: शशिकक्ष्यायां स्थित: शशिग्रहणे।।
राहुश्छादयतीन्दुं सूर्यग्रहणेऽर्कमिन्दुसम:।
यत्तदधिकं तमोमयराहुव्यासस्य सूर्यदृष्टं तत्।।
नश्यति भूच्छायेन्दुव्याससमोऽस्माद्भवति राहु:।।
भूच्छाया नेन्दुमतो ग्रहणे छादयति नार्कमिन्दुर्वा।
तत्स्थस्तद्व्याससमो राहुश्छादयति शशिसूर्यौ।। इति।।१४-१५।।

गर्गादिभिरुत्पातैर्ग्रहणज्ञाननिमित्तान्युक्तानि, तैर्ग्रहणज्ञानं स्फुटं न भवतीत्येतत्प्रतिपादयितुमाह—

न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि।
अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ।।१६।।

गर्गादि आचार्यों ने उत्पातों के द्वारा ग्रहण के कारण कहे हैं; पर उनके द्वारा ग्रहणज्ञान स्पष्ट नहीं होता—किसी तरह उत्पात के द्वारा ग्रहणकाल का ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि पर्वकाल से भिन्न काल में भी उत्पात के द्वारा जो ग्रहण होता है, उसको 'उत्पात' कहते हैं।।१६।।

निमित्तैश्चिह्नैरुत्पातरूपैर्ग्रहणपरिज्ञानं न कथञ्चिदपि विज्ञायते। यतो निमित्तान्यन्यस्मिन्नपि काले परसमये सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि उत्पातभूतानि गण्यन्ते। गर्गादिभिरुत्पा-

तवशेन यद्ग्रहणज्ञानमुक्तं तत्र शोभनम्। निमित्तानि ग्रहणकाल एव न सम्भवन्ति। अन्य-स्मिन्नपि काले सम्भवन्ति। तत्र च तान्युत्पातरूपाणि गण्यन्ते, न ग्रहणकारणानीति। तथा च पराशर:—

'तद्यथा—ग्रहणनिमित्तानि। चन्द्रमसस्तावत्प्रस्पन्दनं सव्यावृत्तिर्दैन्यं पाण्डुत्वं सतत-परिवेषणं चिरोत्पादितज्योत्स्नाप्रभाभङ्ग: क्षीणता क्षामता दक्षिणशृङ्गतैमिर्येरितरस्यात्यर्थं तुङ्गताविर्भावश्च।

आदित्यस्यापि वेपनं परिवेषणं दीनमन्दरश्मिता कृष्णकल्माषता। उभयोरपि सन्ध्य-योश्चोल्कापातदिग्दाहभूमिकम्पाशनिवज्रनिर्घातस्तनयित्नुपांशुवृष्टिविषवातशीतोष्णविकृतानि। वज्रकनकरजतमणीनां प्रभाभङ्ग:। अभ्रलेखासन्दर्शनम्। अर्कमण्डलोत्थिताया: कृष्णराज्या: सोमानुप्रवेशश्च। शिवाखगगणरुतविकृतनीचैरभ्रपरिसर्पणरश्मिजालव्याकुलत्वम्। तप्ताम्भसां शीतता क्षीरिणां क्षीरक्षय:। अकस्मान्माल्यग्लानि:। पञ्चताराग्रहादिभी रोहिणीपीडनमिति चन्द्रग्रहणेऽर्कविकृति:।

'अर्कग्रहणे चन्द्रमसो बलवन्मध्यतनुनिमित्तहेतुकानि सर्वार्धाकिञ्चिद्ग्रहणेऽप्यानुपूर्व्या। यतो निमित्तोत्पातस्तत: प्रग्रहणम्। यत एषामपसरणं ततो मोक्ष' इति।।१६।।

अथान्यद् दूषणमाह—

पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति।
तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भि: ।।१७।।

किसी का मत है कि जिस अमा या पूर्णिमा में पाँच ग्रहों की संयुति हो, उसमें ग्रहण का होना सम्भव नहीं कहना चाहिये तथा ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डालकर स्पर्श-मोक्ष की दिशा का ज्ञान करना चाहिये अर्थात् ग्रहण से पूर्व अष्टमी के दिन जल में तेल डालने पर वह तेल जिस तरफ फैले, उस तरफ स्पर्श और उसके दूसरी तरफ मोक्षकाल समझना चाहिये।

परञ्च यह मत ठीक नहीं है; अत: पण्डितों को इसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिये।।१७।।

किलेत्यागमसूचने शास्त्रान्तरेष्वेवमुक्तम्। यथा पञ्चानां ग्रहाणां संयोगात् समागमाद् ग्रहणस्य सम्भवो न भवति। एतदुक्तं भवति—पौर्णमास्याममावास्यायां वा पञ्चग्रहसंयोगो यदि भवति तदा ग्रहणाभाव इति। तथा च वृद्धगर्ग:—

ग्रहपञ्चकसंयोगं दृष्ट्वा न ग्रहणं वदेत्।
यदि न स्याद् बुधस्तत्र तं दृष्ट्वा ग्रहणं वदेत्।।

एतदसत्। अत्रापि दिक्परिज्ञानार्थमाह—तैलं च जलेऽष्टम्यामिति सोमग्रहणं सूर्यग्रहणं वा यदा भावि तदाष्टम्यां समीपवर्त्तिन्यां तिथौ जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्यां दिशि तत्प्रस-रति तस्यामेव दिशि ग्रहणं वक्तव्यम्। पुनरपि मोक्षार्थं भूयो जलमध्ये तैलं क्षिप्तं यस्या-मेव दिशि न प्रसरति तस्यामेव मोक्षो वक्तव्य:। तथा च वृद्धगर्ग:—

अष्टम्यां परिवेषः स्यात्तैले जलगते यदा।
प्रसारिते विजानीयाद्यतः खण्डस्ततस्तमः।। इति।

एतदप्यसत्। यतोऽन्यस्मिन् भाण्डगते जले तैलं क्षिप्तं किमन्यस्यां दिशि न प्रसरति। अन्यत्र सर्वत्र प्रसरति तस्मात् सर्वमेव तदसत्। तथा च गर्गः—

दिग्दाहोल्कामहीकम्पतमोधूमरजांसि च।
सूचयन्त्यागमं राहोः पुनः पर्वण्युपस्थिते।।
तत्राष्टम्यां जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत्।
परिवेषो यतः खण्डस्तत्र ज्ञेयौ समागमौ।।
पञ्चग्रहसमायोगं दृष्ट्वा सौम्यविवर्जितम्।
ग्रहणं नु वदेत्तत्र सबुधं न ग्रहं वदेत्।।

तस्माद्विपश्चिद्भिः पण्डितैरिदं न विचिन्त्यं नाङ्गीकार्यं पञ्चग्रहसंयोगात्तैलं च जलेऽष्टम्यामिति।।१७।।

अथ ग्रहणे ग्रासप्रमाणं दिग्ज्ञानं वेलाज्ञानं चाह—

अवनत्याऽर्के ग्रासो दिग्ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च।
तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया।।१८।।

अवनति (स्पष्ट शर) के द्वारा सूर्य का ग्रास, वलन और स्पष्ट शर के द्वारा परिलेख से दिशा और तिथि (अमावास्या) के अन्त से ग्रहणकाल का निश्चय करना चाहिये।।१८।।

अवनतिरिति स्फुटविक्षेपस्य नाम। तयाऽवनत्या तेन स्फुटविक्षेपेणार्के सूर्ये ग्रासो ज्ञेयः। अत्यल्पे विक्षेपे महाग्रहणं महति विक्षेपेऽल्पमिति। चन्द्रार्कमानयोगार्द्धादवनतिमपास्य शेषे रविमानादधिके सर्वग्रहणमूने खण्डग्रहणमशुद्धे ग्रहणाभावः। एवमवनत्याऽर्के ग्रासो ज्ञेयः।

दिग् ज्ञेया वलनयाऽवनत्या च, अवनत्या तत्कालोत्पन्नयाऽवनत्या स्फुटविक्षेपेण च परिलेखकरणेन प्रग्रहणादीनां दिग् ज्ञेया।

तिथ्यवसानाद्वेला, तिथेरमावास्याया योऽवसानोऽस्य हरिजसंस्कारेण मध्याह्नमप्राप्य निवृत्तिर्मध्याह्नादूर्ध्वं वा तत्र मध्यग्रहणम्। तस्मिन्नेव प्राग्रहणिकं स्फुटस्थित्यर्द्धं संशोध्य प्रग्रहणकालो भवति। तत्रैव मोक्षस्फुटस्थित्यर्द्धं संयोज्य मोक्षकालो भवति। एवं तिथ्यवसानाद्वेला। अत्रार्कग्रहणमुपलक्षणार्थम्। चन्द्रग्रहणेऽपि स्वोपकरणैः।

एतान्युपकरणानि करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां मया कथितान्युक्तानीति। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

दिनमध्यमसम्प्राप्ता यावत्यो नाडिका व्यतीता वा।
ताभ्यः षड्गुणिताभ्यो ज्यात्रिंशांशस्तिथेर्नाम।।
उदयात् प्रभृति च नाड्यो याः स्युः प्राग्लग्नमानयेत्ताभिः।
तस्मात्तु नवसमेतादपक्रमांशान् विनिश्चित्य।।

लग्नत्र्यगुविवरज्यां द्विगुणां खरसांशसम्मितामपमात्।
जह्याद्दिग्व्यत्यासे विक्षेपैक्ये तयोर्योगः।।
उत्तरमक्षाच्छुद्धं याम्यं साक्षं च दक्षिणं विन्द्यात्।
उत्तरमक्षाद्यदधिकमुत्तरमेवं विजानीयात्।।
तज्ज्याघ्नीं शशिभुक्तिं हृत्वा धृतिभिः शतैः स्फुटाऽवनतिः।
मध्यममानं त्रिंशद्भानोः शशिनश्चतुस्त्रिंशत्।।
समलिप्तराहुविवरज्याभ्यस्ता मूर्छना नवहृताश्च।
अवनत्या युतविश्लेषिता च दिक्साम्यवैलोम्ये।।
मध्यममानाभ्यस्ता स्फुटभुक्तिर्मध्यभुक्तिभक्ता च।
भवति कलापरिमाणं तत्कालीनं रविहिमांश्वोः।।
अवनतिवर्गं जह्याद्रवीन्दुपरिमाणयोगदलवर्गात्।
तन्मूलात्तु द्विगुणात्तिथिभुक्तवदादिशेत् कालम्।।
रविशशिमानयुतिदलादवनतिहीनाद्भवन्ति या लिप्ताः।
तान्यङ्गुलानि विन्द्याद्भानोश्छन्नानि चन्द्रमसा।।
अर्द्धेनाऽऽलिख्य रविं दत्वावनतिं यथादिशं मध्यात्।
अवनत्यन्ताच्चन्द्रं विलिखेद्ग्रासार्थमर्द्धेन।। इति।

एवमेव चन्द्रस्य स्वोपकरणैरुदाहार्यम्। तथा च—

तिथ्यन्ते ग्रहमध्यं प्राक्परतः स्थितिदलेन चाद्यन्तौ।
रक्तकपिलौ च वर्णावुच्चाधःस्थे परे नितराम्।।
सर्वग्रासिन्येवं वर्णविशेषं वदेन्निशानाथे।
उदयास्तमये धूम्रं खण्डग्रहणे सलिलदाभम्।। इति।

एवं पञ्चग्रहसंयोगादित्यादि यदुक्तं तत्सर्वमसदिति।।१८।।

इदानीं कल्पादेः षण्मासोत्तरया वृद्ध्या सप्त पर्वाणि ब्रह्मादीनां भवन्ति। तेषां देवानां नामानि चाह—

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः।।१९।।

कल्पादि से छः-छः मास की वृद्धि करके सात पर्वों के क्रमशः ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम—ये सात देवता होते हैं।।१९।।

कल्पादारभ्य षण्मासोत्तरया वृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्गतैः पर्व भवति। तानि च सप्त पर्वाणि। तेषां पर्वणां क्रमशः क्रमेण सप्तदेवता ब्रह्माद्याः। तद्यथा—ब्रह्मा कमलजः, शशी चन्द्रः, इन्द्रः शक्रः, कुबेरो वैश्रवणः, वरुणो यादसाम्पतिः, अग्निर्हुताशनः, यमः पितृपतिः—एते सप्त यथासंख्यं सप्तानां पर्वणामधिपतयो विज्ञेया विज्ञातव्याः। एतेषामानयनं गणितसिद्धम्। तथा च खण्डखाद्यके करणेऽस्मदीयं वचनम्—

दिनवृन्दात्खशर५०घ्नात् षण्णवरविभि१२९६र्विभाजितादाप्तम्।
रामर्तुखेन्दु१०६३सहितं क्षिपेद् द्युवृन्दे भजेत्खधृतिभि१८०स्तत्।।
लब्ध: कमलजपूर्व: पर्वगण: सप्तभाजित: शेष:।
गतगम्ये ते शून्यधृत्यूने चन्द्रसूर्यपर्व स्यात्।।

अत्र यल्लब्धं तदतीतं स्यात्तत: परं वर्तमानं भवति इति।।१९।।

अथ तेषां फलान्याह—

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च।
तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च ।।२०।।

ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम्।
कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ।।२१।।

वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम्।
आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ।।२२।।

याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च सस्यानाम्।
यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व ।।२३।।

यदि ब्राह्मपर्व में ग्रहण हो तो ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य तथा धान्यों की वृद्धि होती है। चान्द्रपर्व में भी इसी तरह ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य, धान्यों की वृद्धि, पण्डितों को पीड़ा तथा अनावृष्टि होती है। ऐन्द्रपर्व में राजाओं में विरोध, शारदीय धान्य का नाश और लोगों में अकुशल होता है। कौबेरपर्व में धनपतियों के धन की क्षति और सुभिक्ष होता है। वारुणपर्व में राजाओं का अशुभ, दूसरे लोगों का कुशल और धान्यों की वृद्धि होती है। आग्नेयपर्व को 'मित्र' भी कहते हैं; इसमें धान्य की वृद्धि, आरोग्य, अभय और वृष्टि होती है। याम्यपर्व में वर्षा का अभाव, दुर्भिक्ष और धान्यों का नाश होता है। इन सात पर्वों से भिन्न पर्व अशुभ फल देने वाले होते हैं। जैसे कि छः-छः मास वृद्धि करके सात पर्वेश कहे गये हैं; इनमें किसी समय उत्पातवश पाँच, साढे पाँच, साढे छः या सात मास आदि पर ही पर्व की उपस्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में पूर्वकथित ब्रह्मा आदि सात पर्व नहीं होते। इनसे अतिरिक्त पर्वों में दुर्भिक्ष, मरकी और अनावृष्टि होती है।।२०-२३।।

ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणीति । ब्राह्मे पर्वणि द्विजानां ब्राह्मणादीनां पशूनां चतुष्पदानां वृद्धिर्वर्द्धनम्, तथा क्षेमं लब्धपालनम्, आरोग्यं नीरोगत्वम्, एतानि भवन्ति। सस्यानां च सम्पद्वृद्धिर्भवति।

तद्वत्सौम्य इति । सौम्ये पर्वणि चान्द्रे तद्वद् द्विजपशुवृद्धिक्षेमारोग्याणि भवन्ति। सस्य-सम्पच्च भवति। तस्मिन् सौम्ये तु पुनर्विदुषां पण्डितानां पीडा। अवृष्टिरवर्षणं भवति।

ऐन्द्रे भूपविरोध इति। ऐन्द्रे पर्वणि भूपानां राज्ञां परस्परं विरोध: कलहम्, तथा शारदानां सस्यानां धान्यानां क्षयो विनाश:, लोके क्षेमं न च भवति। कौबेरे पर्वण्यर्थपतीनामीश्वराणामर्थविनाशो वित्तक्षय: सुभिक्षं च भवति।

वारुणमवनीशाशुभमिति। वारुणं नाम यत्पर्व तदवनीशानां राज्ञामशुभमश्रेयस्करमन्येषां सर्वजनानां क्षेमकरं तथा सस्यानां वृद्धिकरं भवति।

आग्नेयं मित्राख्यमिति। आग्नेयस्य पर्वणो मित्राख्यमित्यपरं नाम तत्पर्व सस्यारोग्यकरं सस्यानि करोति निष्पादयति, आरोग्यं च करोति। तथा अम्बु जलमभयं भयरहितं नातिबहुलं नात्यल्पं मध्यमं यथाकालोपयोग्यं च करोति।

याम्यमिति। याम्यं पर्वावृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं क्षुद्भयं सस्यानां च संक्षयं विनाशं करोति। **यदत: परमिति**। अतोऽस्मात् पर्वसप्तकाद्यत्परमन्यत्पर्व तदशुभमनिष्टदम्।

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशा उक्ता:। तत्र कदाचिदुत्पातवशात् पञ्चभिर्मासै: सार्द्धै: पञ्चभिर्वा षड्भि: सार्द्धै: सप्तभिर्वा पर्व भवति। तत्पर्व ब्राह्मादि न भवति। तच्च क्षुन्मारावृष्टिदम्, क्षुद् दुर्भिक्षम्, मारं मरणम् अवृष्टिमवर्षणं च ददाति। तथा च पराशर:—

'शुक्लकृष्णाष्टमीपञ्चदश्योरन्तराद् ग्रहणनिमित्तानीन्दुभान्वो: प्रबलानि भवन्ति। तानि च निशामय। षण्मासात् चन्द्रमसस्ततोऽर्द्धषष्ठेत्यादि चादित्यस्यापि पूजितमाहुराचार्या:। सप्तदशत्रयोदशपञ्चत्रिंशन्मासिकानि चेन्दोस्त्रीणि विसन्धिग्रहणानि क्षुद्व्याधिमरकदुर्भिक्षोपद्रवाय वेदितव्यानि। एवमेवैतानि प्राकृतवैकृतग्रहणानि। अत: परं सप्तविधे: पर्वेशान् कथयिष्याम:। ब्राह्मसौम्यैन्द्रकौबेरवारुणाऽऽग्नेययाम्यानि षण्मासान्तरितानि सप्त भवन्ति। तत्र ब्राह्मं सस्यजननं तद्वत्सौम्यम्। ऐन्द्रं भूपालविरोधाक्षेमदुर्भिक्षकरम्। कौबेरमीश्वराणामैश्वर्यविनाशकरं क्षेमसस्यकृच्च। वारुणं वृष्टिसस्यक्षेमारोग्यकरम्। आग्नेयमन्नक्षयदम्। दुर्भिक्षायाल्पवृष्टये याम्यं चे'ति। तथा च गर्ग:—

चन्द्रात् पञ्चममासे तु मासे त्वेकादशे तथा।
सप्तादशे वा सूर्यस्य ग्रहणं क्षुद्भयाय तत्।। इति।।२०-२३।।

अथ वेलाहीनेऽतिवेले च पर्वणि फलमाह—

वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।
अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ।।२४।।

गणितागत ग्रहणकाल से पूर्व में या बाद में ग्रहण दिखलाई पड़े तो उसको क्रम से वेलाहीन एवं अतिवेल ग्रहण कहते हैं। वेलाहीन पर्व में गर्भ (गर्भलक्षण आगे कहेंगे) का नाश, शस्त्रकोप (युद्ध) और अतिवेल पर्व में पुष्प-फल का नाश, भय एवं धान्यों का नाश होता है।।२४।।

गणिताऽऽगतप्रग्रहणात् पूर्वं यदि दृक्प्रग्रहणं दृश्यते तदा तत्पर्व वेलाहीनम्। अथ गणिताऽऽगतप्रग्रहणकालात् पश्चाद् दृक्प्रग्रहणं भवति तदा तत्पर्वाऽतिवेलम्। वेलाहीने

पर्वणि गर्भाणां विपत्तिर्नाशो भवति। गर्भागर्भलक्षणमग्रतो वक्ष्यति। ते तत्र विज्ञेयाः। तथा शस्त्रकोपे युद्धं च भवति।

अतिवेले पर्वणि कुसुमानां पुष्पाणां फलानां च क्षयो विनाशः। लोके भयं सस्यानां नाशश्च भवति। तथा च गर्गः—

वेलाहीने शस्त्रभयं गर्भाणां स्रावणं तथा।
अतिवेलफलानां तु सस्यानां क्षयमादिशेत्।
दृक्समे पर्वणि नृपा निर्वैरा विगतज्वराः।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वा भयरोगविवर्जिताः।

तथा च काश्यपः—

अनागतमतीतं वा ग्रहणे पर्व दृश्यते।
गर्भस्रावमनावृष्टिं फलं पुष्पं विनश्यति।। इति।।२४।।

एतन्मया पूर्वशास्त्राणि निरीक्ष्योक्तं न स्वमतेनेत्याह—

हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्।
स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ।।२५।।

गणितागत ग्रहणकाल से भिन्नकालिक पर्व में जो फल मैंने कहे हैं, वे पूर्वशास्त्रानुसार हैं; क्योंकि स्पष्ट गणित को जानने वाले दैवज्ञों के द्वारा साधित ग्रहणकाल अन्यथा नहीं हो सकता। यतः देशान्तर कर्म के विना तिथिचलन नहीं होता—यह गणित को जानने वाले ज्योतिषी लोग ही जान सकते हैं।।२५।।

हीनातिरिक्तकाले पर्वणि यन्मया फलमुक्तं कथितं तत्पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात्। पूर्वशास्त्रेषु भगवद्गर्गादिप्रणीतेषु दृष्टम्। यतः स्फुटगणितविदः स्फुटं गणितं वेत्ति जानातीति स्फुट-गणितज्ञस्य कालः प्रग्रहणादीनां समयः कथञ्चिदप्यन्यथा न भवति। यतो देशान्तरकर्मणा विना तिथिचलनं न भवति। तच्च गणितज्ञ एव जानाति। उक्तं च—

गणितप्रग्रहात् पश्चाद्यदि दृक्प्रग्रहो भवेत्।
स प्राग्देशोऽन्यथा पश्चाद्रेखायाः स च मेरुतः।।
उज्जयिन्यां गता यावल्लङ्कातो दक्षिणोत्तरा।
तदन्तर्घटिका भुक्तिवधात् षष्ट्या हृतात् फलम्।।
मध्ये धनमृणं पश्चात्प्राग्घटिका द्युगणेऽथवा।

एवं संस्कृता ग्रहा दृक्समा भवन्तीत्यर्थः। पूर्वागमतः परीक्ष्योक्तम्। यथा—

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किं तु बहूनां मतं वक्ष्ये।। इति।।२५।।

अधुनैकमासे चन्द्रसूर्यग्रहणयो: फलमाह—

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपा: ।
स्वबलक्षोभै: संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥२६॥

यदि एक ही मास में सूर्य-चन्द्र दोनों का ग्रहण हो तो अपनी-अपनी सेनाओं में हलचली मच जाने से या शस्त्रप्रहार से राजाओं का नाश होता है।।२६।।

एकस्मिन् मासे रविसोमयो: सूर्य्याचन्द्रमसोर्यदि ग्रहणमुपरागो भवति, तदा क्षितिपा राजान: स्वबलक्षोभैरात्मीयसैन्यानां क्षोभणै: संक्षयं विनाशमायान्ति प्राप्नुवन्ति। अतिशस्त्रकोपोद्योग: संग्रामाश्च भवन्ति। तथा च काश्यप:—

चन्द्रार्कयोरेकमासे ग्रहणं न प्रशस्यते।
परस्परं वधं कुर्यु: स्वबलक्षुभिता नृपा:।। इति।

नन्वत्रोक्तं यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरिति। तदत्र वक्ष्यमाणेन—

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रामय: प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम्।।

इत्यनेनैव सह पुनरुक्ततादोष: स्यात्। यस्माज्ज्योति:शास्त्रे मास: शुक्लादिरुक्त:। प्रथमपक्षान्ते सोमग्रहो द्वितीयपक्षान्तेऽमावास्यायामर्कग्रहात् तथैकमास: सञ्जायते तस्मादयं महान् दोष:।

अन्य एवं व्याचक्षते—यथाधिकमास एवैतत्सम्भवति। यदि समाने मासाह्वये सूर्येन्द्वोर्ग्रहणं भवति तदैकमासोक्तफलमन्यत्र पक्षान्तरितग्रहणफलमर्केन्द्वोर्वक्तव्यम्। एतत् सत्यमौत्पातिकं भवति। यस्मादाचार्येणाऽऽदित्यचारे सूर्यस्योपरक्तस्यापर्वणि फलमुक्तम्—

सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते।
स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षै:।। इति।

तथा च व्यास आह—

ततो ववौ महाराज मारुतो लोमहर्षण:।
राहुरग्रसताऽऽदित्यं युगपत् सोममेव च।।

यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोरित्यस्यामायामौत्पातिकं पर्व विना रविसोमयोरप्येकस्मिन्नेव मासे ग्रहणफलमुक्तम्। कुत एतल्लभ्यते। तथा च भगवान् व्यास:—

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासे त्रयोदशे।
अपर्वणि ग्रहावेतौ प्रजा: संक्षपयिष्यत:।। इति।

तथा च पराशर:—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टा नाम महाग्रह:।
आवृणोति तम:श्याम: सर्वलोकविपत्तये।।

तथा च वृद्धगर्ग:—

मासि त्रयोदशे दृश्यौ सोमार्कौ ग्रहणं गतौ।
छत्राण्यनेकानि तदा मृज्यन्ते भूमिपक्षये।।
सपुत्रदारा गच्छन्ति संग्रामे लोमहर्षणे।
अनेन वनितायाः स वैधव्यान्तकरोऽधिकम्।।
कालशोकावहः पुंसां देशानेकविनाशनः।
स्वचक्रपरचक्रैश्च विनश्यन्ति बहुप्रजाः।। इति।

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्येत्यत्र पक्षान्ते मासान्ते पर्वनियममाह— तस्मात् पुनरुक्ततादोषोऽन्यत्रावगम्यत इति।

अन्य एवं व्याचक्षते। यथा—कथमेकस्मिन् मासे रविसोमयोर्ग्रहणं स्याद् यावच्चैत्र-सिताद्या मासा इति शास्त्रस्थितिः। अत्रोच्यते—यदि पञ्चदश्यां ग्रहणं भवति ततः पुरस्ता-दमावास्यायामर्कग्रहणं भवति, तत्राग्लम्बनमृणगतं भवति तदैको मासो भवति। अथवा लम्बनं धनगतं भवति, ततः पुरस्तात् पौर्णमास्यां चन्द्रग्रहणं भवति। तत्राप्येको मासो युज्यते नान्यथेति।

एवमत्राधिकमासके यदुक्तं तदेव शोभनमृषिवचनादेकमासे त्रयोदश इति।।२६।।

अथ ग्रस्तोदितयोर्ग्रस्तास्तयोश्चार्कचन्द्रयोः फलमाह—

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।
सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसन्दृष्टौ ॥२७॥

यदि ग्रस्त चन्द्र-सूर्य का उदय या अस्त हो तो क्रम से शारदीय धान्य और राजा का नाश करता है। आशय यह है कि ग्रस्त चन्द्र का उदय या अस्त हो तो शारदीय धान्य का और ग्रस्त सूर्य का उदय या अस्त हो तो राजा का नाश होता है। सर्वग्रस्त चन्द्र-सूर्य यदि पापग्रह से देखे जाते हों तो दुर्भिक्ष और मरकी देते हैं।।२७।।

ग्रस्तावुदितास्तमितावित्यत्र शशिरव्योः प्रत्येकस्य फलेन सह सम्बन्धः। चन्द्रो यदा ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितो वा भवति तदा शारदधान्यस्य क्षयदो विनाशकर्ता भवति। एवमर्को ग्रस्तोदितो ग्रस्तास्तमितश्चावनीश्वरस्य राज्ञः क्षयदो भवति। ननु सूर्येन्द्वोर्यथासंख्येन कस्मात् फलं न सम्बध्यते। ग्रस्तोदितौ सूर्येन्दू शारदधान्यक्षयदौ ग्रस्तास्तमितावनीश्वरक्षयदौ भवत इति। अत्रोच्यते नैतद्युक्तम्। यस्माद्वृद्धगर्गः—

उद्गच्छति गृहीतश्चेदस्तं वा यदि गच्छति।
शारदं तु तदा सस्यं जातं जातं विपद्यते।।
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नरा मूलफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च तदा सम्पीड्यते जगत्।। इति।

तथा च ऋषिपुत्रः—

यावतोंऽशान् ग्रसित्वेन्दोरुदयत्यस्तमेति वा।
तावतोंऽशान् पृथिव्यास्तु तम एव विनाशयेत्।।
उदयेऽस्तमये वापि सूर्यस्य ग्रहणं भवेत्।
तदा नृपभयं विन्द्यात् परचक्रस्य चागमम्।।

तथा च—

चिरं गृह्णाति सोमार्कौ सर्वं वा ग्रसतं यदा।
हन्यात् स्फीतान् जनपदान् वरिष्ठांश्च जनाधिपान्।।
ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नराश्चाम्बुफलेन वा।
भयदुर्भिक्षरोगैश्च सम्पीड्यन्ते प्रजास्तथा।। इति।

सर्वग्रस्ताविति। सूर्येन्दू सर्वग्रस्तौ निःशेषाच्छादितौ तावेव यदि पापसन्दृष्टौ पापग्रहयोरङ्गारकसौरयोरन्यतरेण दृष्टौ भवतस्तदा दुर्भिक्षं मरकं च ददाते इति।।२७।।

अथोदयात् प्रभृत्यस्तमयं यावद् ग्रस्तयोश्चन्द्रार्कयोः सप्तस्वाकाशभागेषु फलं श्लोक-चतुष्टयेनाह—

अर्द्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च।
अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगेऽभ्युदितः।।२८।।

कर्षकपाखण्डिवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयांशे।
कारुकशूद्रम्लेच्छान् खतृतीयांशे समन्त्रिजनान्।।२९।।

मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः।
तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे।।३०।।

स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहाऽस्तमयकाले।
यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति।।३१।।

यदि अर्द्धोदित चन्द्र और सूर्य ग्रस्त होता हो तो निषाद जाति का और समस्त यज्ञों का नाश करता है। दिनमान या रात्रिमान को सात जगह विभक्त करने पर युग का प्रथम आदि खांश मान होता है।

इनमें प्रत्येक खांश मान में स्पर्श और मोक्ष होने पर फल यह होता है कि यदि युग के प्रथम खांश में उदित चन्द्र या सूर्य ग्रस्त होता हो तो अग्नि से जीविका चलाने वाले, गुणी, ब्राह्मण और आश्रमवासियों का नाश करता है। द्वितीय खांश में किसान, पाखण्डी, व्यापारी, क्षत्रिय और सेनापति का नाश करता है। तृतीय खांश में चित्र बनाने वाले, शूद्र, म्लेच्छ जाति और मन्त्रियों का नाश करता है। चतुर्थ खांश में राजा और मध्य देश का नाश करता है तथा अन्नों के मूल्य में समानता करता है। पञ्चम खांश में चतुष्पद, मन्त्री,

अन्त:पुर और वैश्यों का नाश करता है। षष्ठ खांश में स्त्री और शूद्रों का नाश करता है। सप्तम खांश में (अस्तकाल में) चोर और गुहा में निवास करने वालों का नाश करता है। जिस खांश में मोक्ष होता है, उस खांश में तत्तद्व्यक्तियों के लिये कथित अशुभ फल नहीं होकर शुभ फल होता है।।२८-३१।।

चन्द्रोऽर्को वाऽर्द्धोदितो यद्युपरक्तो भवति ग्रस्त इत्यर्थः। तदा नैकृतिकान्निषादान् सर्वयज्ञान् निःशेषान् यागांश्च हन्ति नाशयति। ग्राह्याद्दिनप्रमाणस्य सप्तभिर्भागमपहृत्य यल्लभ्यते तच्छास्त्रप्रमाणम्। अनेनाऽऽकाशमपि सप्तधाकृतं भवति—

स्पार्शिकं मौक्षिकं वान्यं कालं सप्तगुणं हरेत्।
दिनमानेन यल्लब्धं खांशमानं युगस्य तत्।।

एवं कृत्वा विचारयेत्। कस्मिन्नाकाशभागे प्रग्रहणं मोक्षो वा। तत्र यदाभ्युदित उद्गत एव चन्द्रः सूर्यो वा युगे प्रथमभागे। प्रथमदिनसप्तभागे यद्यर्कस्य चन्द्रस्य ग्रहणं भवति वा तदा स एवाकाशभागः प्रथम इत्यर्थः। तत्र ग्रस्तो दृश्यते तदाग्न्युपजीविनः सुवर्णकारप्रभृतयः। गुणाधिका गुणिनः। विप्रा ब्राह्मणाः। आश्रमिण आश्रमवासिनश्चैतान् हन्ति।

कर्षकाः कृषिकराः। पाखण्डिनो वेदबाह्याः। वणिजः क्रयविक्रयकारकाः। क्षत्रिया राजन्याः। बलनायकाः सेनापतयः। एतान् द्वितीयांशे द्वितीयभागे निहन्ति।

कारुकाः शिल्पिनः। शूद्राः शूद्रजातयः। म्लेच्छा म्लेच्छजातयः। एतान् समन्त्रिजनान् मन्त्रिजनैः सह तृतीयेंऽशे तृतीय आकाशविभागे निहन्ति।

तथा मध्याह्ने चतुर्थे खांशे नरपतिमध्यदेशहा नरपतिं राजानं मध्यदेशं च निहन्ति मध्यदेशे यो राजा तमेव हन्ति। धान्यस्यार्घः शोभनो भवति सममर्घं धान्यं भवतीत्यर्थः। तृणभुजश्चतुष्पदान्। अमात्यान् मन्त्रिणः। अन्तःपुराणि राजदारान्। वैश्यान् वैश्यजातीयांश्च पञ्चमे खांशे आकाशभागे निहन्ति।

स्त्रीशूद्रानिति। स्त्रियो योषितः। शूद्राः शूद्रजातयः। एतान् षष्ठेंऽशे आकाशभागे निहन्ति। दस्यवश्चौराः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। एतानस्तमयकाले निहन्ति। यस्मिन् खांशे आकाशभागे मोक्षो भवति तत्प्रोक्तानामग्न्युपजीविप्रभृतीनां शिवं श्रेयो भवति। अथ यस्मिन्नंशे प्रग्रहस्तस्मिन् मोक्षस्तदा यदुक्तं फलं तन्न भवति शुभाशुभं समं स्यात्। तथा च काश्यपः—

उदितास्तमितौ ग्रस्तौ सर्वसस्यक्षयङ्करौ।
सर्वं ग्रस्तौ यदा पश्येद्दुर्भिक्षं तत्र जायते।।
प्रथमांशे विप्रपीडा क्षत्रियाणां द्वितीयके।
शूद्राणां च तृतीयेंऽशे चतुर्थे मध्यदेशिनाम्।।
वैश्यानां पञ्चमे खांशे षष्ठांशे प्रमदाभयम्।
दस्युप्रत्यन्तकम्लेच्छविनाशः सप्तमांशके।।
येषामंशे भवेन्मोक्षस्तज्जातानां शुभं भवेत्।

तथा च वृद्धगर्गः—

येषां सोमो युगे ग्रस्तो विमर्दो यत्र वा भवेत्।
तेषां पीडां विजानीयात् मोक्षे शुभमथादिशेत्।। इति।।२८-३१।।

अथायनफलं दिक्फलं चाह श्लोकत्रयेण—

द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान् दक्षिणायने हन्ति।
राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन्।।३२।।

म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च।
सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोदग्गवामशुभः।।३३।।

पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः।
पश्चात् कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः।।३४।।

यदि उत्तरायण में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों का नाश करता है। दक्षिणायन में वैश्य और शूद्रों का नाश करता है। प्रदक्षिणक्रम से उत्तर आदि दिशाओं (उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम) में राहु दिखाई दे तो क्रम से ब्राह्मण आदि का नाश करता है। जैसे—उत्तर में ब्राह्मण, पूर्व में क्षत्रिय, दक्षिण में वैश्य और पश्चिम में शूद्र का नाश करता है। विदिशा (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण) में स्थित राहु म्लेच्छ जाति, यायी और अग्नि से जीविका चलाने वाले (अग्निहोत्री आदि) का नाश करता है। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं के लिये पुनः विशेष फल कह रहे हैं। यदि दक्षिण में राहु दिखाई दे तो जलचर और हस्तियों का नाश करता है। उत्तर में दिखाई दे तो गाय-बैलों का नाश करता है। पूर्व में दिखाई दे तो भूमि को जल से पूर्ण करता है तथा पश्चिम में दिखाई दे तो किसान, भृत्य और बीजों का नाश करता है।।३२-३४।।

मकरादिराशिषट्कस्थेऽर्के उत्तरमयनम्। कर्कटादिराशिषट्कस्थेऽर्के दक्षिणमयनमिति। उदगयने उत्तरायणे राहुर्दृष्टो द्विजान् ब्राह्मणान् नृपतीन् क्षत्रियांश्च निहन्ति। तथा विट्शूद्रान् वैश्यान् शूद्रांश्च दक्षिणायने हन्ति घातयति। तथा च गर्गः—

उत्तरायणसन्दृष्टो ब्रह्मक्षत्रविनाशनः।
दक्षिणायनगो राहुर्वैश्यशूद्रविनाशनः।।

राहुरुदगादिदृष्ट इति। उदगादिषूत्तराद्यासु चतसृषु दिक्षु प्रदक्षिणेन राहुर्दृष्टो विप्रादीन् ब्राह्मणादीन् हन्ति। एतदुक्तं भवति—सूर्ये चन्द्रे वा यद्युत्तरस्यां दिशि राहुः प्रग्रहणं करोति तदा ब्राह्मणान् हन्ति। पूर्वस्यां दृष्टः क्षत्रियान् निहन्ति। दक्षिणस्यां दृष्टो वैश्यान् हन्ति। पश्चिमायां दृष्टः शूद्रान्निहन्ति। अत्र यद्यप्यर्कचन्द्रयोर्दक्षिणोत्तरदिग्भागात् प्रग्रहणं न सम्भवति, तथाप्याचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च काश्यपः—

सौम्यायामागतो विप्रान् पूर्वस्यां क्षत्रजातयः।
वैश्यान् दक्षिणतो राहुर्हन्ति पश्चिमतोऽपरान्।।

तथा च पराशरः—'उदक्प्राग्दक्षिणप्रत्यग्ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रोच्छेदनायाऽऽनुपूर्व्याऽपि च।'

म्लेच्छान् विदिक्स्थित इति। विदिक्स्थितो राहुः। ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येषु स्थित इत्यर्थः। म्लेच्छान् म्लेच्छजनांस्तथा यायिनः प्रोद्यतान्। हुताशसक्तानग्निरतानग्निहोत्रिणो हन्यात्। दक्षिणोत्तरयोः पुनरपि विशेषमाह—**सलिलचरेति**। याम्येन दक्षिणेन दृष्टः सलिलचरान् जलचरान् तथा दन्तिनो हस्तिनो घातयति हन्ति। उदगुत्तरेण दृष्टो गवामशुभः क्षयकृत्।

अथ पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः पुनरपि विशेषफलमाह— **पूर्वेणेति**। दैत्यो राहुः पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि समागतो दृष्टो वसुधां भूमिं सलिलपूर्णां तोयपूर्णां करोति। पश्चादागतः कर्षकाणां कृषिकराणां सेवकानां पराऽऽराधनरतानां बीजानां च विनाशाय निर्दिष्ट उक्तः। उप्यन्ते यानि तानि बीजानि। तथा च काश्यपः—

पूर्वे सलिलघाती स्यात् पश्चाद्धान्यकृषीवलान्।
याम्ये जलचरान् हन्ति सौम्ये गोनाशकः स्मृतः।।
म्लेच्छान् यायिनृपान् हन्ति विदिक्स्थः सिंहिकासुतः।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

उदगादिषु दिक्ष्वशुभो विप्रादीनां सितादिवर्णस्य।
विदिगादिगतो हन्याद्राहुर्म्लेच्छान् सविजिगीषून्।।
द्विजराजन्यान् हन्यादुदगयने दक्षिणे तु विट्शूद्रान्।
समरामयाय राहुर्यदि पक्षान्ते पुनर्दृश्यः।। इति।।३२-३४।।

अथ चन्द्रार्कयोर्मेषादिषु राशिषु ग्रस्तयोः फलान्याह—

पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्त्ताः।
जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ।।३५।।

मेष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण होने पर पञ्जाब, कलिङ्ग, शूरसेन, कम्बोज, औड्रदेश, किरात, शस्त्र से जीवनयात्रा चलाने वाले और अग्नि से जीविका चलाने वालों को पीड़ित करता है।। ३५।।

पाञ्चालाः पाञ्चालजनाः, कलिङ्गाः, शूरसेनाः, काम्बोजाः, उड्राः, किराता—एते सर्वे जनाः। तथा शस्त्रवार्ताः शस्त्रवृत्तयः शस्त्रं वर्तनं येषाम्। ये च हुताशवृत्त्या अग्निवृत्त्या च जीवन्ति सुवर्णकारादयः। ते सर्वे पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति मेषसंस्थितेऽर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते।।३५।।

अथ वृष आह—

गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः।
पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ।।३६।।

यदि वृष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो वह गौ को पालन करने वालों (अहीर आदियों), चतुष्पदों और पूजनीय मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३६।।

गाः पान्ति रक्षन्तीति गोपाः। पशवश्चतुष्पदाः। गोमिनो गोमन्तो गावो विद्यन्ते येषां ते। ज्योत्स्नातमिस्रेति गोमिन्शब्दः। ये च मनुजा मनुष्या महत्त्वमागताः पूज्यतां प्राप्तास्ते सर्व एव भास्करे सूर्ये शीतकरे चन्द्रे वा वृषस्थे ग्रस्ते पीडामुपयान्ति प्राप्नुवन्ति।।३६।।

मिथुन आह—

मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः।
यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥३७॥

यदि मिथुन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र या ग्रहण हो तो उत्तम स्त्री, राजा, नृपमात्र (राजा के समान मन्त्री आदि), प्राणधारी अन्य जीव, कलाओं (चित्र, गीत, नृत्य और वाद्य) को जानने वाले, यमुना नदी के तट पर निवास करने वाले, बाह्लिक (धीर मनुष्य, 'बाह्लीकं वाह्लिकं धीरहिङ्गुनो'रिति मेदिनी), मध्यदेश (साकेता मिथिला चम्पा कौशाम्बी कौशिकी तथा। अहिक्षेत्रं गया विन्ध्या मध्यदेशो हि कीर्तितः।।) और सुह्म देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३७।।

प्रवराङ्गनाः प्रधानस्त्रियः। नृपा राजानः। नृपमात्रा नृपसदृशा अमात्याः। बलिनः प्राणिनः। कलाविदश्चित्रगीतनृत्यवाद्याभिज्ञाः। यमुना नदी तस्यास्तटे तीरे ये जातास्ते च सबाह्लिका बाह्लिकैर्जनैः सहिताः। तथा मत्स्या जनास्ते च सुह्मजनैः समन्विताः सहिता एते सर्व एव मिथुनस्थे सूर्ये चन्द्रे वा ग्रस्ते पीडामुपयान्ति।।३७।।

कर्कटक आह—

आभीराञ्छबरान् सपह्लवान् मल्लान् मत्स्यकुरूञ्छकानपि।
पाञ्चालान् विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥३८॥

यदि कर्क राशि में स्थित सूर्य का चन्द्र का ग्रहण हो तो आभीर (अहीर, 'गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाहीरबल्लवाः' इत्यमरः) शबर (म्लेच्छ जाति, 'भेदाः किरात-शबर-पुलिन्दा म्लेच्छजातयः' इत्यमरः), पह्लव (दक्षिण देश का राजवंश), बाहुयुद्ध जानने वाले, मत्स्य, कुरु, शक, पञ्जाब—इन देशों में निवास करने वाले और अङ्गहीन मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३८।।

आभीरान् जनान्, शबरानपि जनांश्च, सपह्लवान् पह्लवैर्जनैः सहितान्, मल्लान् बाहु-युद्धज्ञान्, मत्स्यान्, कुरूंश्च, शकानपि, पाञ्चालानपि, विकलानङ्गहीनान् एतान् सर्वानेव जनान् पीडयत्युपतापयति तथाऽन्नं च निहन्ति धान्यमहार्घाधिक्यं भवतीति कर्कटे यद्यर्क-चन्द्रौ ग्रस्तौ भवतः।।३८।।

सिंहकन्ययोराह—

सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्
राजोपमान्नरपतीन् वनगोचरांश्च।

षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्
हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥३९॥

यदि सिंह राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पुलिन्दों (म्लेच्छ जातियों) का समूह, मेकल (पर्वतविशेष) में निवास करने वाले, बलवान जन्तु, राजा और राजा के समान तथा वन में निवास करने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि कन्या राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो धान्य, कवि, लेखक, गानविद्या जानने वाले, पत्थर से आजीविका चलाने वाले, त्रिपुर नामक देश और धान्ययुत प्रदेश—इन सबों का नाश करता है।।३९।।

पुलिन्दा निषादा जना:, गणा: समूहा:, मेकला जना:, सत्त्वयुक्ता: सत्त्वप्रधाना:, राजोपमा राजन्यतुल्या वित्तप्रतिपत्तियुक्ता:, नरपतयो राजान:, वनगोचरा वनमरण्यं गोचरो विषयो येषां ते वनगोचरा वनवासिन इत्यर्थ:। एतान् सिंहे हन्ति।

षष्ठ इति। सस्यानि प्रसिद्धानि, कवय: पण्डिता:, लेखका लेखज्ञा:, गेयसक्ता गेयरता:, अश्मका जना:, त्रिपुरा देशा:, शालियुता देशा येषु शालयो धान्यानि बहूनि भवन्ति, एतान् सर्वान् षष्ठे कन्यायां हन्ति।।३९।।

अथ तुलावृश्चिकयोराह—

तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान् मरुकच्छपांश्च।
अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान् द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ॥४०॥

यदि तुला राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो अवन्तिदेश में निवास करने वाले, पश्चिम समुद्र के निकट रहने वाले, सज्जन तथा व्यापारी, दशार्ण, मरु और कच्छ देश में रहने वाले—इन सबों का नाश करता है। यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चोल देश में निवास करने वाले मनुष्य, वृक्ष, युद्ध करने वाले मनुष्य, कठोर शस्त्र धारण करने वाले—इन सबों का नाश करता है।।४०।।

अवन्ती आवन्त्या जना:, अपरान्त्या जना एव, साधव: सज्जना:, वणिज: किराटा:, दशार्णा जना एतान् मरुकच्छपाञ्जनांश्च—एतान् सर्वान् तुलाधरे तुले हन्ति।

अलिन्यथेति। उदुम्बरा जना:, मद्रा:, चोला—एतानपि जनान्, द्रुमान् वृक्षान्, यौधेयान् जनान्, विषायुधीयान् विषमायुधं येषां तान् सह यौधेयैर्विषायुधीयान्—एतानलिनि वृश्चिके हन्ति।।४०।।

अथ धनुर्मकरयोराह—

धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्
पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान्।
हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्
मन्त्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ॥४१॥

यदि धनु राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मन्त्री, प्रधान मनुष्य, घोड़ा, विदेह देश (मिथिला) में निवास करने वाले मनुष्य, बाहुयुद्ध करने वाले मनुष्य, पञ्जाब देश में निवास करने वाले मनुष्य, वैद्य, व्यापारी, कठोर अस्त्र को चलाने वाले—इन सबों का नाश करता है। यदि मकर राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो मछली, मन्त्रियों का कुल, नीच कर्म करने वाले मनुष्य, मन्त्र और औषध को जानने वाले, वृद्ध, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले—इन सबों का नाश करता है।।४१।।

अमात्या मन्त्रिणः, वराः प्रधानाः, अथवाऽमात्यवराः प्रधानाः, वाजिनोऽश्वाः, विदेहा जनाः, मल्ला बाहुयुद्धज्ञाः, पाञ्चाला जनाः, वैद्याः कायचिकित्सकाः, वणिजः क्रयविक्रयिणः, विषमाः क्रूराः, आयुधज्ञा आयुधवेत्तार—एतान् धन्विनि हन्यात्।

हन्यान्मृगे त्विति। झषा मत्स्याः, मन्त्रिणश्चाणक्यविदः सचिवाः, कुलानि वंशाः अथवा मन्त्रिणां सचिवानां कुलानि, नीचा अधमकर्मकराः—एतान् तथा मन्त्रौषधीषु च कुशलान् मन्त्रेषु शैववैष्णवसौरेषु औषधीषु च कुशलान् शक्तान्, स्थविरान् वृद्धान्, आयुधीयानायुधजीविन—एतान् मृगे मकरे हन्यात्।।४१।।

अथ कुम्भमीनयोराह—

कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करा-
नाभीरान् दरदाऽऽर्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान्।
मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि वन्यान् जनान्
प्राज्ञान् वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत्।।४२।।

यदि कुम्भ राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो पहाड़ी मनुष्य, पाश्चात्य देश में रहने वाले मनुष्य, बोझा ढोने वाले, चोर, अहीर, दरद देश में रहने वाले, प्रधान मनुष्य, सिंह नगर, बर्बर देश में रहने वाले मनुष्य—इन सबों का नाश करता है। यदि मीन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो समुद्र के तीर और जल में उत्पन्न हुये द्रव्य, जंगली मनुष्य, बुद्धिमान, जल के विक्रय से जीवन-यात्रा चलाने वाले मनुष्य—इन सबों का नाश करता है। नक्षत्र-फल कूर्म-विभाग के द्वारा कहना चाहिये, जैसे कि जिस नक्षत्र में सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो, वह नक्षत्र कूर्म-विभाग से जिस देश में पड़े, उस देश में स्थित मनुष्यों को पीड़ा होती है।।४२।।

अन्तर्मध्ये गिरौ पर्वते जाता अन्तर्गिरिजास्तान् पर्वतमध्यजातान् जनान् सपश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिभिर्जनैः सह। केचिदन्तर्गिरिजान् स पश्चिमानिति पठन्ति। गिरेरन्तरे जातान् जनान् पश्चिमजनान् पश्चिमदिग्वासिनः। प्राक्पाठोऽत्र शोभनः। भारोद्वहान् भारवाहिनः, तस्क-रान् चौरान्, आभीरान् जनान्, दरदान् जनानेव, आर्यान् प्रधानजनान्, सिंहपुरकान्, बर्बरान् तथा तेनैव प्रकारेण एतान् सर्वान् कुम्भे हन्यात्।

सागरकूलं समुद्रतटम्। सागरजलद्रव्याणि समुद्रोत्पन्नानि द्रव्याणि रत्नादीनि। वन्यान्

वनभवान् जनान्, प्रज्ञान् बुद्धियुक्तान्, वार्युपजीविनो जलोपजीविनः, उदकविक्रयेण जीवन्ति ये एतान् मीने हन्यात्। भफलं नक्षत्रफलं कूर्मोपदेशात् कूर्मविभागकथितात् वदेद् ब्रूयात्। यन्नक्षत्रस्थावर्कचन्द्रौ ग्रहणसमये भवतस्तन्नक्षत्रं कूर्मविभागेन यस्मिन् देशे उक्तं तज्जनानां पीडा भवति। तच्च वक्ष्यति—

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजिता देशाः।। इति।

तथा च पराशरः—

'अथ कृत्तिकासु कलिङ्गानामधिपतीन् पीडयति। रोहिण्यां हृच्छस्त्रकोपैः प्रजानाम्, मृगशिरसि सालनिषदकैकयान्, आर्द्रायां शुकान् कुकुरान् पल्वलोपजीविनश्च। पुनर्वसौ पण्यान् रुरुकर्पासं च। पुष्ये गोमतिसिन्धुसौवीरकुरुपाञ्चालान्। सार्पे काशिकलिङ्गसिंहलकराजन्यान्। पित्र्ये दण्डकनिवासिनः पितृधान्यं च। भाग्ये सुभगान् काम्बोजान् सुराष्ट्राधिपतींश्च। अर्यम्णे मगधान् यवनान्। हस्ते दशार्णान्। त्वाष्ट्रे मद्रान् कुरुक्षेत्रं च। वायव्ये काश्मीरोशीनरान् वाजिनश्च। विशाखायां वृक्षाश्मकान्। मैत्रे काशिकोशलान्। ज्येष्ठायां ज्येष्ठनृपतीन् दरदांश्च। मूले क्षुद्रमालवकयौधेयान्। आप्ये पञ्चनदान् सुवीराधिपतिं च। वैश्वदेवे आर्जुनायनपौण्ड्रशिबिमालवान्। श्रवणे सत्त्वावतंसकांश्च। वासवे धनिनः शकानण्डजांश्च। वारुणे कैकयपाञ्चालराजांश्च। अजे वङ्गमगधकुकुरान्। अहिर्बुध्नेऽश्मकेक्षुक्षुद्रकत्रिगर्त्तान्। पौष्णे च वैदेहानर्त्तकसिन्धुसौवीरान्। आश्विनेऽश्वानश्वजीविनश्च। याम्ये कलिङ्गान् दक्षिणानुपतापयति। तथा च समाससंहितायाम्—

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।
सहितं ग्रहणं येन तद्देशश्चाप्नुयात् पीडाम्।। इति।।४२।।

अथार्कशनिनोर्दश ग्रासा भवन्ति, तेषां संज्ञामाह—

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः ।
आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥४३॥

सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आरोह, आघ्रात, मध्यतम, तमोऽन्त्य—ये सूर्य और चन्द्र के दश ग्रास होते हैं।।४३।।

सव्यः, अपसव्यः, लेहः, ग्रसनम्, निरोधः, अवमर्दनम्, आरोहः, आघ्रातम्, मध्यतमः, तमोऽन्त्य—इत्येवं प्रकारास्ते दश ग्रासा इति।।४३।।

अथैतेषां लक्षणानि सफलानि। तत्र सव्यापसव्ययोराह—

सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च ।
अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः ॥४४॥

यदि ग्रहण-समय में सूर्य या चन्द्र के सव्य (दक्षिण भाग) में होकर राहु गमन करे तो संसार जल से पूर्ण, हर्षित और भयरहित होता है। यदि अपसव्य (वाम भाग) में

होकर गमन करे तो राजा और चोरों को पीड़ित करते हुये प्रजा का नाश करता है।।४४।।

तमसि राहौ सव्यगते चन्द्रस्यार्कस्य वा दक्षिणभागगते जगज्जलप्लुतं वारिणा प्लावितं मुदितं हृष्टमभयं भयरहितं च भवति। अपसव्ये वामभागगते राहौ नरपते राज्ञस्तस्कराणां चौराणामवमर्दैः पीडनैः प्रजानाशः संक्षयो भवति।

अथ चन्द्रग्रहणे आग्नेय्यां राहोरागमनं सव्यः। ऐशान्यामपसव्यः। अर्कग्रहणे वायव्ये सव्यो नैर्ऋत्यामपसव्य इति।।४४।।

अथ लेहस्याह—

जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः।
प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही।।४५।।

यदि सूर्य या चन्द्रबिम्ब को जिह्वा के समान राहु चाटता हो तो 'लेह' नाम का ग्रास होता है। इसमें पृथ्वी हर्षित, सम्पूर्ण प्राणियों से युत और जलपूर्ण होती है।।४५।।

तिमिरनुदः। चन्द्रस्यार्कस्य वा तिमिरमन्धकारं नुदति प्रेरयतीति तिमिरनुदस्तस्य परितः समन्ततो मण्डलं जिह्वोपलेढि, जिह्वया रसनयोपलीढमिव दृश्यते तथा स ग्रासो लेह इति। तत्र तस्मिन् ग्रासे मही भूः प्रमुदितसमस्तभूता प्रकर्षेण मुदिता हर्षिताः समस्ता भूता जना यस्यां तथा प्रभूततोया वारिबहुला च भवति।।४५।।

अथ ग्रसनस्याह—

ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाऽप्यर्द्धम्।
स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम्।।४६।।

यदि सूर्य या चन्द्र के बिम्ब के तृतीयांश, चतुर्थांश या अर्द्धांश राहु से ग्रसित होता हो तो 'ग्रसन' नामक ग्रास होता है। इसमें स्फीत (बहुत ऐश्वर्यशाली) नृप का धननाश होता है तथा स्फीत देश में रहने वालों को पीड़ा होती है।।४६।।

त्र्यंशस्त्रिभागः। पादश्चतुर्भागः। अर्द्धं वा बिम्बार्द्धं गृह्यते तमसाऽऽच्छाद्यते तदा स ग्रासो ग्रसनमिति। तस्मिन् ग्रासे स्फीतानामतिविभवयुक्तानां नृपाणां राज्ञां वित्तहानिर्धननाशो भवति। तथा स्फीतानां सधनानां च देशानां पीडा भवति।।४६।।

अथ निरोधस्याह—

पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत्।
स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम्।।४७।।

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल को चारो तरफ से ग्रसित कर राहु मध्य-प्रदेश में पिण्डाकार होकर स्थित हो तो 'निरोध' नामक ग्रास होता है। यह भूमिस्थ सभी प्राणियों को आनन्द देने वाला होता है।।४७।।

तमो राहुः पर्यन्तेषु गृहीत्वा समन्ततः सञ्छाद्य मध्ये मध्यभागे पिण्डीकृतं घनतरं

भूत्वा यदि तिष्ठेत्तदा स ग्रासो निरोधसंज्ञो विज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च सर्वभूतानां निःशेषप्राणिनां प्रमोदकृत् हर्षकृत्।।४७।।

अथावमर्दनमाह—

अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत्।
हन्यात् प्रधानभूपान् प्रधानदेशांश्च तिमिरमयः ।।४८।।

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के सम्पूर्ण बिम्ब को ढककर राहु बहुत काल तक स्थिर रहे तो 'अवमर्द' नामक ग्रास होता है। यह प्रधान राजा और देश का नाश करता है।।४८।।

तिमिरमयो राहुर्निःशेषं समग्रमेव मण्डलं सञ्छाद्य स्थगयित्वा यदि चिरं बहुकालं तिष्ठेत् तदाऽवमर्दनं नाम ग्रासस्तेन ग्रासेन प्रधानभूपान् प्रधानान् नृपान् प्रधानांश्च देशान् हन्याद् घातयेत्।।४८।।

अथाऽऽरोहणस्याह—

वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः।
आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दैर्भयकरं राज्ञाम् ।।४९।।

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहण के बाद उसी क्षण में पुनः राहु (ग्रहण) दिखाई दे तो 'आरोहण' नामक ग्रास होता है। यह राजाओं में परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर भयंकर स्थिति लाता है।

विशेष—यह आरोहण नामक ग्रास गणित से नहीं आ सकता। जब कभी अचानक ऐसी स्थिति दृष्टिगोचर हो तो उसको उत्पातरूप ही समझना चाहिये। आचार्य ने पूर्व-शास्त्रानुसार यह लक्षण यहाँ पर बताया है।।४९।।

ग्रहे ग्रहणे वृत्ते निवृत्तेऽतिक्रान्ते भूयः पुनर्यदि चेत्तमो राहुस्तत्क्षणमावृत्य पुनश्छादयन् तिष्ठेत् तदाऽऽरोहणं नाम ग्रासः। तच्च राज्ञां नृपाणामन्योऽन्यमर्दैः परस्परावमर्दैर्भयं भीतिं करोति। इतिशब्दः प्रकारार्थे। एतदौत्पातिकम्। यतो नोत्पद्यते गणितगोलवासनया। आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम्।।४९।।

अथाऽघ्रातस्याह—

दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ।।५०।।

यदि वाष्पयुत निःश्वासवायु से मलिन दर्पण की तरह सूर्य या चन्द्रमण्डल का एक देश दिखाई दे तो 'आघ्रात' नामक ग्रास होता है। यह वृष्टि और प्राणियों की वृद्धि करता है।।५०।।

दर्पण आदर्श इवैकदेशे एकस्मिन् स्थाने सबाष्पेण सोष्मणा निःश्वासमारुतेन श्वास-वायुना चोपहतो दृश्येतावलोक्येत तदाऽऽघ्रातं नाम ग्रासः। तच्च जगतः सुवृष्टिवृद्ध्यावहं शोभनां वृष्टिं वृद्धिं च वहति जगतो जनपदस्य।।५०।।

अथ मध्यतमस आह—

मध्ये तमःप्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः ।
तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥५१॥

यदि छाद्य बिम्ब का मध्य भाग राहु से ढका हो और चारो तरफ निर्मल हो तो 'मध्यतम' नामक ग्रास होता है। यह मध्यदेश का नाश और पेट की बीमारी उत्पन्न करता है।

विशेष—छाद्य (सूर्य) विम्ब से छादक (चन्द्र) विम्ब के अल्प होने के कारण यह ग्रास सूर्यग्रहण में ही हो सकता है; जबकि छाद्य (चन्द्र) विम्ब से छादक (भूमा) विम्ब के अत्यधिक होने के कारण चन्द्रग्रहण में ऐसी स्थिति कभी नहीं हो सकती। अतः सूर्यग्रहण वलयग्रहण और चन्द्रग्रहण खग्रास होता है।।५१।।

तमो राहुर्मध्येऽन्तर्यदि प्रविष्टो दृश्यते परितः समन्ततो मण्डलं वितमस्कं तमोरहितं निर्मलं भवति तदा ग्रासो मध्यतमो नाम। तच्च मध्यदेशस्य नाशं विघातं करोति तथा कुक्ष्यामयभयं कुक्षिरोगभयं च।

अस्य ग्रासस्य संस्थानमर्कग्रहण एव सम्भवति छादकस्येन्दोरल्पत्वात्। चन्द्रग्रहणे छाद्यस्याल्पत्वाच्छादकस्य च भूच्छायाया महत्त्वान्न सम्भवति।।५१।।

अथ तमोऽन्त्याख्यस्याह—

पर्य्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये ।
सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥५२॥

यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के प्रान्त भाग में अधिक और मध्य भाग में थोड़ा राहु दृष्टिगोचर हो तो 'तमोऽन्त्य' नामक ग्रास होता है। इसमें धान्यों को ईति का और प्राणियों को चोर का भय होता है।।५२।।

तमः पर्यन्तेषु बिम्बपरिध्यन्तर्भागेषु। अतिबहुलमतिघनं मध्ये मध्यभागे स्वल्पमत्यल्पं दृश्यते तदा स ग्रासस्तमोऽन्त्याख्यो नाम। अस्मिंस्तमोऽन्त्याख्ये ग्रासे सस्यानामीतिभयं भवति। ईतयः सस्योपद्रवाः। तथा च—

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः।।

आभ्यः सस्यानां भयं तथा तस्कराणां चौराणां भयं भवति। चौरकृता भीतिर्भवतीत्यर्थः।

तथा च पराशरः—

'तद्यथा—देशोपप्लवा ग्रसनारोहणोपघ्रातोन्मर्दननिरोधपरिलेहनापसव्यसव्यान्तर्मध्यतम उपप्लवाश्च। तत्रार्धत्रिभागग्रहणं ग्रसनं प्रख्यातनृपतिविप्रच्युताय। मण्डलमध्ये ग्रहावर्त्त-नमाराहेणं नरपतिक्षोभकरं प्रजानाशनम्। ईषद् ग्रहणमुपघ्रातं जगद्धिताय। उन्मर्दनं चिरमर्केन्दु-सकलमण्डलाक्रमणं प्रजाविद्रवकरम्। सर्वमण्डलधूमावरणं निरोधस्तदरोगक्षेमसुभिक्ष-

लक्षणम्। समन्ताद् जिह्वयेवाभिलेहनं परिलेहनं समानफलम्। पूर्वेण दक्षिणमपसव्यं प्रजाभयाय। अप्रदक्षिणं सव्यमभयाय। मण्डलान्तर्मध्ययोर्ग्रहणमन्तर्मध्यं नृपतिक्षोभकरम्। महातमसाऽऽवरणं तम उपप्लवः परस्परं म्लेच्छसङ्करकृदि'ति। तथा च कश्यपः—

सव्यगे तु सुभिक्षं स्यादपसव्ये तु तस्कराः।
लीढे प्रजाः प्रहृष्टाः स्युर्ग्रसनं लोकनाशनम्।।
निरोधे जनहर्षः स्यादारोहे नृपसंक्षयः।
आमर्दितं चापमर्दे स्वयं क्षुभ्यन्ति पार्थिवाः।।
स्वच्छं वर्णप्रदेशं यदाघ्रातं तद्विघातयेत्।
मध्ये तमसि सन्दृष्टे पीडयेद् मध्यदेशजान्।।
दृष्टे तमसि पर्यन्ते सस्यानामीतिजं भयम्।। इति।।५२।।

अथ राहोर्वर्णान् वक्तुकाम आह—

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ।
अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम्।।५३।।

हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः।
कपिले शीघ्रगसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम्।।५४।।

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा।
आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च।।५५।।

कापोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्।
कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च।।५६।।

विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत् सुभिक्षाय।
सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि।।५७।।

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्।
अशनिभयसम्प्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः।।५८।।

पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।
बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय।।५९।।

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहणकाल में राहु का वर्ण श्वेत हो तो क्षेम, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। अग्नि के समान वर्ण हो तो अग्निभय और अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले (लोहार, सोनार आदि) को पीड़ा होती है। हरित वर्ण हो तो रोगों की वृद्धि और ईतियों के द्वारा धान्यों का नाश होता है। पीला हो तो जल्दी चलने वाले जानवर (ऊँट आदि) और म्लेच्छ जाति का नाश तथा दुर्भिक्ष होता है। किञ्चित् लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष, वर्षा का अभाव और पक्षियों को पीड़ा होती है। धूम्र वर्ण हो तो क्षेम, सुभिक्ष और थोड़ी

वृष्टि होती है। कबूतर के समान लाल, कपिल और श्याम वर्ण हो तो क्षुधा और दुर्भिक्ष का भय होता है। कबूतर के समान अथवा कृष्ण वर्ण हो तो शूद्रों के लिये रोग करने वाला होता है। निर्मल मणि की तरह पीत वर्ण हो तो वैश्यों का नाश और सुभिक्ष करने वाला होता है। अग्निज्वाला की तरह दिखाई दे तो अग्नि का भय करता है। गेरू के समान दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि दूर्वादल की तरह श्याम वर्ण या हल्दी की तरह पीत वर्ण का दिखाई दे तो मरकी पड़ती है। यदि पाटलपुष्प की तरह (श्वेत के साथ लोहित) हो तो वज्र गिरने का भय रहता है और यदि पांशु (धूलि) या विलोहित (मिश्रित) वर्ण का राहु दृष्टिगोचर हो तो क्षत्रियों का और वृष्टि का नाश करने वाला होता है।।५३-५९।।

राहौ तमसि श्वेते शुक्लवर्णे दृष्टे क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणानां च पीडां विनिर्दिशेत्। अग्निवर्णेऽनलवर्णे अग्निसदृशे अग्निभयं हुताशभीतिस्तथा हुताशवृत्तीनामग्निवार्त्तानां लोहकारसुवर्णकारादीनां पीडा भवति।

हरित इति। हरिते हरितवर्णे शुकाभे राहौ रोगाणामुल्बणता रोगप्राचुर्यम्। सस्यानामीतिभिरतिवृष्टिप्रभृतिभिरुपद्रवैश्च विध्वंसो विनाशो भवति। कपिले पिङ्गलाभे राहौ शीघ्रगाणां सत्त्वानामुष्ट्रादीनां तथा म्लेच्छानां ध्वंसो विनाशो दुर्भिक्षं च भवति। अथशब्दः स्वार्थे।

अरुणकिरणानुरूपे अरुणरश्मिसदृशे ईषल्लोहितवर्ण इत्यर्थः। दुर्भिक्षावृष्ट्यो भवन्ति। विहगानां पक्षिणां च पीडा भवति। आधूम्रे धूम्रवर्णे क्षेमं सुभिक्षं चादिशेत्। मन्दां स्वल्पां च वृष्टिमादिशेत्।

कापोतः कपोतवर्णः, तस्मिंस्तथा अरुणे लोहितवर्णे। कपिले कपिलवर्णे। श्यावे श्याववर्णे क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं विनिर्देश्यं वक्तव्यम्। कापोतः कपोतवर्णः कृष्णवर्णश्च शूद्राणां व्याधिकरः पीडावहः।

विमलकमणेरिव पीता आभा कान्तिर्यस्य स विमलकमणिपीताभः, नीलपीत इत्यर्थः। एवंविधे वैश्यध्वंसी वैश्यहन्ता भवेत् स्यात्। सुभिक्षाय भवेत् सुभिक्षकृद्भवेत्। सार्चिष्मति सज्वाले राहावग्निभयं भवति। तथा गैरिकरूपे गैरिकसदृशे युद्धानि संग्रामा भवन्ति।

दूर्वाकाण्डश्यामे दूर्वाकाण्डवत् श्यामे शाद्वलप्रणालतुल्यवर्णे हारिद्रे वा अतिपीतवर्णे मरकं निर्दिशेद्वदेत्। राहुर्यदि पाटलकुसुमोपमः पाटलपुष्पसदृशः श्वेतलोहित इत्यर्थः। तथाभूतोऽशनिभयसम्प्रदायी अशनिभयं ददाति।

पांशुरूपो विलोहितरूपश्च व्यामिश्रवर्णः क्षत्रध्वंसाय क्षत्रियाणां नाशाय वृष्टेश्च नाशाय भवति। तथा बालरवेर्बालार्कस्य कमलस्य पद्मस्य व सुरचापस्येन्द्रधनुषः सदृशं तुल्यं रूपं कान्तिं यदा बिभर्त्ति धारयति तदा शस्त्रकोपाय भवति शस्त्रकोपं करोति। युद्धानि भवन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'वर्णः कृष्णकपोतोऽतिवर्षाय शूद्रकुक्षिरोगाय तिलतोयवृद्धये दैत्यनाशाय च। पांशुधूमलोहितः क्षत्रियविनाशाय। बालार्कांशुकपिलो दुर्भिक्षाय। हारिद्रो व्याधये। दूर्वाङ्कुरसदृशो

जनमरकाय। पाटलकुसुमसन्निकाशोऽशनिभयदो भवती'ति।।५३-५९।।

अधुनाऽर्कचन्द्रयोर्ग्रहदृष्टिफलान्याह—

पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च।
भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ।।६०।।

शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम्।
रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ।।६१।।

ग्रहणकालिक सूर्य या चन्द्र के ऊपर बुध की दृष्टि हो तो घी, शहद, तेल और राजाओं का नाश करता है। यदि मंगल की दृष्टि हो तो युद्ध, अग्निभय और चोरों का भय करता है। यदि शुक्र की दृष्टि हो तो पृथ्वी पर धान्यों का नाश और अनेक तरह के क्लेश उत्पन्न करता है एवं यदि शनि की दृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अनावृष्टि और चोरों का भय करता है।।६०-६१।।

सौम्यो बुधो ग्रस्तमर्कं चन्द्रं वा पश्यति तदा घृतमधुतैलानां राज्ञां नृपाणां च क्षयाय नाशाय भवति। भौमश्चेत् पश्यति तदा समरविमर्दं युद्धं शिखिकोपमग्निप्रकोपं तस्करभयं चौरभयं च करोति।

शुक्रश्चेत् पश्यति तदा सस्यविमर्दं सस्यविनाशं धरित्र्यां भूमौ नानाक्लेशान् अनेकान् कृच्छ्रान् जनयत्युत्पादयति। रविजः सौरिश्चेत् पश्यति तदाऽवृष्टिमवर्षणं दुर्भिक्षं तस्करभयं चौरभीतिं च करोति।।६०-६१।।

अधुना शुभदृष्टेः प्रशंसार्थमाह—

यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा।
सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ।।६२।।

ग्रहदृष्टिवश स्पर्श और मोक्षसमय में जो अशुभ फल कहे गये हैं, गुरु की दृष्टि से उनका जल से प्रज्वलित अग्नि की तरह नाश होता है।।६२।।

पश्यन् ग्रस्तं सौम्य इत्यादिकाभिरवलोकनाभिर्दृष्टिभिर्ग्रहजनितं ग्रहोत्पादितं यदुक्तमशुभं फलं ग्रहणकाले वा तत्सर्वं सुरपतिगुरुणा बृहस्पतिनाऽवलोकिते दृष्टे शमं शान्तिमुपयाति गच्छति। यथा जलैरम्बुभिरिद्धः प्रज्वलितोऽग्निर्हुतवह इति। ग्रहणे प्रमोक्षणे वेत्यत्र विकल्पः कृतः। यदि कदाचिद् ग्रहणकाले योऽसौ दृश्यो द्रष्टा च ग्रहः स एव राश्यन्तरं संक्रामति, तदा तानि फलानि न भवन्ति। तेन ग्रहणे मोक्षान्तदृष्टिफलमभिमतमिति।।६२।।

अथ प्रग्रहणकालाद् मोक्षान्तं यावद् ग्रहणसमयस्तन्मध्ये उत्पातैर्दृष्टैरन्यस्य ग्रहणस्य परिज्ञानमाह—

ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्ध्या।
पवनोल्कापातरजः क्षितिकम्पतमोऽशनिनिपातैः ।।६३।।

यदि सूर्य या चन्द्रग्रहण के समय में वायु, उल्कापात, धूलीवर्षण, भूकम्प, अन्धकार और वज्रपात हो तो क्रमशः छः-छः की वृद्धि करके फिर ग्रहण की सम्भावना कहनी चाहिये। जैसे ग्रहणसमय में वायु-प्रकोप हो तो वर्त्तमान ग्रहण-काल से छः मास बाद, उल्कापात हो तो बारह मास बाद, धूली-वर्षण हो तो अट्ठारह मास बाद, भूकम्प हो तो चौबीस मास बाद, अन्धकार हो तो तीस मास बाद और वज्रपात हो तो छत्तीस मास बाद पुनः ग्रहण कहना चाहिये।।६३।।

अर्के चन्द्रे वा ग्रस्ते गृहीते सति यद्येत उत्पाता दृश्यन्ते तदा पुनर्भूयो मासषट्क-परिवृद्ध्या षड्भिः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। तद्यथा—प्रग्रहणकाले यदि पवनो वायुर्भवति तदा तेनोत्पातेन पुनः षड्भिर्मासैर्ग्रहणं भवति। एवमुल्कापातेन द्वादशभिः। रजसा पांशु-वर्षेणाष्टादशभिः। क्षितिकम्पेन भूचलनेन मासचतुर्विंशत्या तमसा मासत्रिंशता। अशनिपातेन मासषट्त्रिंशता। तथा च पराशरः—

उपरक्ते यदा सूर्ये प्रबलाद्वाति मारुतः।
मासषट्के तदा विन्द्याद्राहोरागमनं ध्रुवम्।।
उल्कायां द्वादशे मासे रजसाष्टादशे तथा।
भूकम्पे च चतुर्विंशे त्रिंशे तमसि निर्दिशेत्।।
षट्त्रिंशेऽशनिपाते स्यात् सर्वेषु स्यात् षडुत्तरे।। इति।।६३।।

अधुना भौमादीनां ग्रस्तानां फलमाह—

आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः।
दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ।।६४।।

सूर्य या चन्द्र के साथ एक राशि में अल्पांशान्तर पर होकर कुजादि ग्रहों का यदि शराभाव हो तो वे ग्रस्त कहे जाते हैं। इस तरह यदि मङ्गल ग्रस्त हो तो अवन्ती देश में स्थित मनुष्य, कावेरी और नर्मदा नदी के तीर पर रहने वाले एवं गर्वयुत राजाओं को पीड़ित करता है।।६४।।

अत्रादौ तावत्ताराग्रहाणां ग्रस्तत्वं व्याख्यायते। यो ग्रहोऽर्केण चन्द्रेण वा सहैकराशौ भवति तत्र चेति विक्षिप्तो न भवति, तदा छादनात् ग्राहकस्य ग्रस्त इत्युच्यते। एवं क्षिति-सुतेऽङ्गारके ग्रस्ते आवन्तिका इत्यवन्तिदेशभवा जनपदाः। तथा कावेरी नदी नर्मदा च तयो-स्तटं तीरं ये समाश्रितास्तन्निवासिनः। तथा दृप्ता दर्पिष्ठा ये मनुजपतयो मनुष्याणां मनुजानां पतयो राजानः, एते सर्व एव पीड्यन्ते।।४६।।

अथ बुधस्याह—

अन्तर्वेदीं सरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम्।
स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ।।६५।।

यदि बुध ग्रस्त हो तो अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना के मध्य का देश), सरयू, नेपाल, पूर्वी समुद्र, शोण नद, स्त्री, राजा, योद्धा, बालक, विद्वान्—इन सबों का नाश करता है।

अन्तर्वेदी गङ्गायमुनयोर्मध्यम्। सरयू पूर्वनदी। नेपालदेशः। पूर्वसागरः पूर्वसमुद्रः। शोणो नदः। स्त्रियो योषितः। नृपा राजानः। योधाः संग्रामकुशलाः। कुमारा बालाः। प्रथमवयसश्च। एतान् सर्वान् विद्वद्भिः पण्डितैः सह बुधो ग्रस्तो हन्ति घातयन्ति।।६५।।

अथ जीवस्याह—

ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः।
सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ।।६६।।

यदि गुरु ग्रस्त हो तो पण्डित, राजा, मन्त्री, हस्ती, घोड़ा, सिन्धुनद के तट पर रहने वाले, उत्तर दिशा में रहने वाले—इन सबों का नाश करता है।।६६।।

जीवे बृहस्पतौ ग्रहणोपगते ग्रहणं प्राप्ते विदुषां पण्डितानां नृपाणां राज्ञां मन्त्रिणां सचिवानां गजानां हस्तिनां हयानामश्वानां च ध्वंसो विनाशो भवति। तथा सिन्धुर्नाम नदी तत्तवटवासिनो ये तेषामपि। तथोदग्दिशं संश्रितानामुत्तरदिग्वासिनां जनानां च ध्वंस एव भवति।।६६।।

अथ शुक्रस्याह—

भृगुतनये राहुगते दाशेरककैकयाः सयौधेयाः।
आर्यावर्त्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ।।६७।।

यदि शुक्र ग्रस्त हो तो दाशेरक, कैकय (काश्मीर), यौधेय और शिबि देश में स्थित मनुष्य, स्त्री-गण, मन्त्री—इन सबों को पीड़ित करता है।।६७।।

भृगुतनये शुक्रे राहुगते ग्रस्ते सति दाशेरका जनाः। कैकयाः सयौधेयाः सह यौधेयैर्जनैः। आर्यावर्त्ताः प्रधानदेशजनाः। शिबयो जनाः। स्त्रियो योषितः। सचिवा मन्त्रिणः। गणाः समूहाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते उपतप्यन्ते।।६७।।

अथ सौरस्याह—

सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रिकधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः।
गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ।।६८।।

यदि शनैश्चर ग्रस्त हो तो मरुभूमि, पुष्कर और सौराष्ट्र देश के निवासी जन, अर्बुद पर्वत पर निवास करने वाले मनुष्य, अन्त्यजन (निकृष्ट जाति के मनुष्य), गोस्वामी, पारियात्र पर्वत पर रहने वाले—इन सबों का नाश होता है।।६८।।

सौरे शनैश्चरे ग्रस्ते मरुभवा मरुभूमावुत्पत्तिर्येषां ते। पुष्करजनाः। सौराष्ट्रिकाः। धातवो धातुद्रव्याणि। अर्बुदजनाः अर्बुदः पर्वतस्तत्र ये निवसन्ति। अन्त्यजना निकृष्टजनाः। गोमन्तो गोमिनः, केचिद् गोनन्द इति पठन्ति, गोनन्दा जनाः। पारियात्राश्रिताश्च पारियात्रः पर्वतस्तत्र

ये आश्रिताः स्थिता एते सर्व आशु क्षिप्रमेव नाशं व्रजन्ति गच्छन्ति।।६८।।

अथ मासफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव कार्त्तिकस्याह—

कार्त्तिक्यामनलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशलान्
कल्माषानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत्।
हन्यादाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो
दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम्॥६९॥

यदि कार्तिक की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो अग्नि से आजीविका करने वाले (लोहार, सोनार आदि), मगध देश में रहने वाले, पूर्व दिशा के राजा, कोशल, कल्माष, शूरसेन और काशी में रहने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है। साथ ही मन्त्री और भृत्यों के साथ कलिङ्ग देश के राजा का नाश करता है एवं क्षत्रियों को सन्तापित करता है। साथ ही संसार में क्षेम और सुभिक्ष करता है।।६९।।

कार्तिकस्येयं पौर्णमास्यामावास्या वा कार्त्तिकी। तस्यां कार्त्तिक्यां तमो दृष्टं राहुर्यदि दृश्यते तदाऽनलोपजीविनोऽग्निवार्त्ताः सुवर्णकारप्रभृतयः। मगधा जनाः। प्राच्याधिपाः पूर्वस्यां दिशि ये अधिपतयो राजानस्तान् तथा कोशलाञ्जनान्, कल्माषान् जनान्। अथशब्दः स्वार्थे, तांश्च शूरसेनसहितान् शूरसेना जनास्तैः सहितान् तथा काशींश्च जनान् एतांश्च सर्वान् सन्तापयेदुपतापयेत्। तथा कलिङ्गदेशे यो नृपती राजा तं सामात्यभृत्यम्। अमात्यैर्मन्त्रि-भिर्भृत्यैश्च सर्वकर्मकरैः सहितमाश्वेव क्षिप्रं हन्यान्नाशयेत्। तथा क्षत्रियतापदं क्षत्रियाणां राजन्यानां तापं ददाति। क्षेमं सुभिक्षान्वितं सुभिक्षसंयुक्तं जनयत्युत्पादयति।।६९।।

अथ मार्गशीर्षस्याह—

काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च।
ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च॥७०॥

यदि मार्गशीर्ष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, कौशल और पुण्ड्र देश में रहने वाले, मृग (वन के जन्तु), पश्चिम देशवासी मनुष्य, सोमरस का पान करने वाले—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में सुवृष्टि, क्षेम और सुभिक्ष करता है।।७०।।

सौम्ये मार्गशीर्षमासे राहुर्दृष्टः काश्मीरकान् जनान्। कोशलांश्च सपुण्ड्रान् पुण्ड्रैर्जनैः सहितान्। मृगा अरण्यप्राणिनस्तानपि। अपरान्तकान् जनान्। एतानपि हन्यान्नाशयेत्। तथा ये सोमपाः सोमं पीतं यैस्ते कृतयज्ञास्तांश्च निहन्ति। सुवृष्टिकृत् शोभनां वृष्टिं करोति। क्षेमसुभिक्षकृच्च क्षेमं सुभिक्षं च करोति।।७०।।

अथ पौषस्याह—

पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः।
ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम्॥७१॥

यदि पौष मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों में उपद्रव, सैन्धव, कुकुर और विदेह देशवासियों का नाश होता है तथा संसार में थोड़ी वृष्टि, भय और दुर्भिक्ष होता है।।७१।।

पौषे मासे तमसि दृष्टे द्विजानां ब्राह्मणानां क्षत्रजनानां चोपरोध उपद्रवो भवति। तथा सैन्धवा जना: सैन्धवेत्याख्या नाम येषां ते। कुकुराश्च जना एव सह सैन्धवाख्यैर्ये कुकुरा वर्त्तन्ते ते ससैन्धवाख्या: कुकुरा:। तथा विदेहजना:। एते सर्वे ध्वंसं विनाशं व्रजन्ति गच्छन्ति। अत्र च मन्दामल्पां वृष्टिं तथाऽसुभिक्षयुक्तं दुर्भिक्षसहितं भयं विन्द्याज्जानीयात्।।७१।।

अथ माघ आह—

माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्
स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।
वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहु-
र्वृष्टिञ्च कर्षकजनाभिमतां करोति।।७२।।

यदि माघ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो माता-पिता के भक्त, वसिष्ठ-गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण, स्वाध्याय और धर्म में निरत, हाथी, घोड़ा, वङ्ग, अङ्ग और काशी देश में रहने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है तथा संसार में किसानों की इच्छा के अनुकूल वृष्टि होती है।।७२।।

माघमासे राहुर्दृष्टो मातृपितृभक्तान् जननीजनकतत्परान्, तथा वसिष्ठगोत्रान् वसिष्ठो गोत्रं येषां द्विजानीनां तान्, तथा स्वाध्याये पाठे धर्मे च निरतान् सक्तान्, करिणो हस्तिन:, तुरङ्गानश्वान्, वङ्गान् जनान् अङ्गानपि, काशिमनुजान् काशिदेशे मनुष्यान् अथवा मनुज-शब्द: प्रत्येकं सम्बध्यते। वङ्गान् मनुजानङ्गमनुजान् काशिमनुजांश्च सर्वान् दुनोत्युपतापयति। तथा कर्षकजनानां कृषिकराणामभिमताभीष्टां वृष्टिं च करोति।।७२।।

अथ फाल्गुन आह—

पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्वं वङ्गाश्मकावन्तिकमेकलानाम्।
नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च।।७३।।

यदि फाल्गुन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो बङ्गाल, अश्मक, अवन्ती और मेकल देश में रहने वाले, नाचने वाले, धान्य, उत्तम स्त्री, धनुष बनाने वाले शिल्पी, क्षत्रिय, तपस्वी—इन सबों को पीड़ित करता है।।७३।।

फाल्गुने मासि पर्वं ग्रहणं वङ्गानां जनानामश्मकानामावन्तिकानां मेकलानां पीडाकर-मुपतापजनकम्। तथा नृत्यज्ञानां नाट्यविदां सस्यानां प्रवराङ्गनानां प्रधानस्त्रीणां धनुष्कराणां शिल्पिनां क्षत्राणां क्षत्रियाणां तपस्विनां तपोनिरतानामेषां सर्वेषां पीडाकरमेव।।७३।।

अत्र चैत्र आह—

चैत्र्यां तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान्
रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान्।

पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च
तापःस्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥७४॥

यदि चैत्र मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो चित्रकार, लेखक, गान विद्या जानने वाले, रूपोपजीवी (वेश्या आदि), निगम (वेद) को जानने वाले, सोना बेचने वाले, पौण्ड्र, औड्र, कैकय और अश्मक देश में रहने वाले पीड़ित होते हैं। संसार में अमरप (इन्द्र) विचित्रवर्षी (चित्रवर्षी = कहीं वृष्टि और कहीं नहीं वृष्टि करने वाले) होते हैं।।७४।।

चैत्र्याममावास्यायां पौर्णमास्यां वा चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः, लेखका लिपिज्ञाः, गेयसक्ता गीतरता एतान्। तथा रूपोपजीविनो वेश्याजनाः। निगमा वेदपाठकाः। हिरण्यपण्याः सुवर्णविक्रयिणः एतानपि। तथा पौण्ड्रा जनाः। औड्राः कैकया एते सर्व एव जनाः। अथशब्दः पादपूरणे। अश्मकाश्च जना एव, एतान् सर्वान् तापः सन्तापः स्पृशति। एते पीडिता भवन्तीत्यर्थः। अत्रास्मिन् वर्षे अमरप इन्द्रो विचित्रवर्षी। विचित्रं नानाप्रकारं वर्षति। क्वचिन्न वर्षति क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः। केषाञ्चित् पाठः—अमरराडपि चित्रवर्णः।।७४।।

अथ वैशाख आह—

वैशाखमासे ग्रहणे विनाश-
मायान्ति कर्पासतिलाः समुद्गाः।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः
सोपप्लवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥७५॥

यदि वैशाख मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कपास, तिल और मूंग का नाश होता है। इक्ष्वाकु, यौधेय और कलिङ्ग देश में उपद्रव होते हैं; किन्तु संसार में सुभिक्ष होता है।।७५।।

वैशाखमासे ग्रहणे कर्पासास्तिलाः समुद्गा मुद्गसहिता एते विनाशमायान्ति गच्छन्ति। तथेक्ष्वाकवो जना यौधेयाः शका कलिङ्गा एते सर्वे सोपप्लवाः सोपद्रवाः। किन्तु पुनरस्मिन् ग्रहणे सुभिक्षं च भवति।।७५।।

अथ ज्येष्ठ आह—

ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च।
प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसङ्घाः ॥७६॥

यदि ज्येष्ठ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो राजा, ब्राह्मण, राजपत्नी, धान्य, वृष्टि, महागण, उत्तर दिशा में रहने वाले मनुष्य, साल्व देशवासी, निषाद—इन सबों का नाश होता है।।७६।।

ज्येष्ठे मासि पर्वणि ग्रहणे नरेन्द्रा राजानो द्विजा ब्राह्मणा राजपत्न्यो राजस्त्रियः।

सस्यानि प्रसिद्धानि। वृष्टिर्वर्षणं च। महागणा महासमूहाश्च। एते सर्वे प्रध्वंसं नाशमायान्ति नाशं प्राप्नुवन्ति। तथा च ये नराः सौम्या दर्शनीया उत्तरदिग्वासिन इति। एते साल्वैः समेताः सहिताश्च निषादानां प्राणिघातकानां संघाः समूहा प्रध्वंसमायान्ति।।७६।।

अथाऽऽषाढ आह—

आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान् फलमूलवार्त्तान्।
गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हतान् वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ।।७७।।

यदि आषाढ़ मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो उदपान (वापी, कूप, तालाब) के वप्र (तट) में रहने वाले मनुष्य, नदी का प्रवाह, फल-मूल खाकर समय-यापन करने वाले, गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द, चीन—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में मण्डलवृष्टि (कहीं-कहीं वर्षा) होती है।।७७।।

आषाढपर्वण्याषाढे मासे ग्रहणे उदपानं जलाधारो वापीकूपतडागादिस्तस्य चोदपानस्य वप्रस्तटः। नदीप्रवाहः पुलिनविस्तरम्। फलमूलवार्त्ताः फलानि मूलानि वार्त्ता वर्तनं वृत्तिर्येषां ते। तथा गान्धारा जनाः। काश्मीराः। पुलिन्दाः। चीनाः। एतान् सर्वान् हतान् नष्टानिति वदेत्। सर्व एव नश्यन्तीत्यर्थः। अस्मिन् पर्वणि मण्डलवर्षं भवति। क्वचित् क्वचिद्वर्षतीत्यर्थः।। ७७।।

अथ श्रावण आह—

काश्मीरान् सपुलिन्दचीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रजान्
गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे।
काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमा-
नन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ।।७८।।

यदि श्रावण मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र, गान्धार, मध्य देश, कम्बोज—इन देशों में रहने वाले, एकशफ (घोड़ा, गदहा), शरद ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न—इन सबों का नाश करता है; किन्तु उक्त देशों से अन्यत्र के मनुष्यगण अत्यधिक अन्न की उत्पत्ति से सुखी होकर सम्पूर्ण संसार को व्याप्त कर लेते हैं।।७८।।

श्रावणे मासि ग्रहो ग्रहणं दृष्टः काश्मीरान् जनान् सपुलिन्दचीनयवनान् पुलिन्दचीनजा जना यवनास्तैः सहितान्। तथा कुरुक्षेत्रजान् जनान्। गान्धारानपि। मध्यदेशसहितानेतान् सर्वान् हन्यात् नाशयेत्। तथा काम्बोजान् जनान्। एकशफांश्च अश्वगर्दभान्। चशब्दः समुच्चये। न केवलं यावत् शारदमपि शारदधान्यादिकान् एतानपि हन्ति। इमान् यथोक्तान् काश्मीरादीन् त्यक्त्वा विहायान्यत्र देशेषु प्रचुरेण प्रभूतेनान्नेन ये हृष्टाः प्रहर्षिता मनुजा नरास्तैर्धात्रीं भूमिमावृतां व्याप्तां करोति।।७८।।

अथ भाद्रपद आह—

कलिङ्गवङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान्
म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाश्मकांश्च।
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति
सुभिक्षकृद् भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥७९॥

यदि भाद्रपद मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कलिङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर, दरद, अश्मक—इन देशों का और स्त्रियों के गर्भों का नाश करता है तथा संसार में सुभिक्ष होता है।।७९।।

असुरो राहुर्भाद्रपदे मास्यभ्युपेत आगतः कलिङ्गान् जनान्। वङ्गान्। मगधान्। सुराष्ट्रान्। म्लेच्छान्। सुवीरान्। दरदान्। अश्मकान्। एतान् सर्वान्निहन्ति घातयति। केचिद्दरदाञ्छकानिति पठन्ति। तथा स्त्रीणां योषितां गर्भान् निहन्ति। सुभिक्षकृत् सुभिक्षं करोति।।७९।।

अथाश्वयुज्याह—

काम्बोचीनयवनान् सह शल्यहृद्भि-
र्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्।
आनर्त्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्
दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥८०॥

यदि आश्विन मास की अमा में सूर्य-ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र-ग्रहण हो तो कम्बोज, चीन और यवन देश में रहने वाले, शल्यचिकित्सक, बाह्लीक देश में रहने वाले, सिन्धु नद के तट में रहने वाले, आनर्त और पौण्ड्र देश में रहने वाले, वैद्य, किरात—इन सबों का नाश करता है तथा संसार में अधिक सुभिक्ष होता है।।८०।।

असुरो राहुरश्वयुजि मासि दृष्टः काम्बोजान् जनान्। चीनान् यवनान् एतान् सर्वान् सह शल्यहृद्भिः शल्यहर्तृभिर्व्रणचिकित्सकैः सह। तथा वाह्लीकान् जनान्। सिन्धोर्नद्यास्तटे ये निवसन्ति जनास्तांश्च। हन्यात् घातयेत्। चशब्दः सर्वत्रात्र समुच्चये। आनर्त्ता जनाः। पौण्ड्राः। भिषजो वैद्याः। तथा किराता जनाः। एतान् सर्वान् हन्यान्नाशयेत्। तथा भूरिसुभिक्षकृच्च। भूर्यतिबाहुल्येन सुभिक्षं करोति। तथा च समाससंहितायाम्—

अश्वयुग्माघकार्त्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
राहुरवशिष्टमासेष्वशुभकरो वृष्टिधान्यानाम्।।

तथा च पराशरः—'तत्र कार्त्तिके सुभिक्षक्षेमाय काशिकोशलशूरसेनाऽभावाय च। मार्गशीर्षे मृगपौण्ड्रसोमभयाय वृष्ट्ये च। पौषे भयदुर्भिक्षब्रह्मक्षत्रोपरोधाय। माघे शस्त्रप्रकोपाय प्रावृड्वृद्धये वङ्गानर्त्तकयवनकाशिदेशोत्सादनकृत्। फाल्गुनेऽन्नसम्पच्च। नटनर्त्तकधनुष्करसस्यविनाशाय चैत्रे। वैशाखेऽश्मकपौण्ड्रौड्रम्लेच्छवृक्षसस्याभावाय। ज्येष्ठे ज्येष्ठपत्नीगणमुख्यसस्योपद्रवाय। साल्वनिषादवृष्टिसस्यघ्नमाषाढे। श्रावणे क्षेमसुभिक्षमन्यत्र चीनकाश्मीर-

पुलिन्दगान्धारेभ्यः। भाद्रपदे मगधदरदकलिङ्गवङ्गाऽनयाय सस्यक्षेमाय च। आश्वयुग्ग्रहणे सुभिक्षक्षेमाय आवन्तिवाह्लीकानर्त्तकाम्बोजसैन्धवाऽऽमयाये'ति।।८०।।

अथार्कशशिनोर्दश मोक्षा भवन्ति तेषां नामान्याह—

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः सञ्छर्दनं च जरणं च।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥८१॥

दक्षिण हनु, वाम हनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, वाम पायु, सञ्छर्दन, जरण, मध्य विदरण एवं अन्त्य विदरण—ये दश प्रकार के सूर्य और चन्द्र के मोक्ष होते हैं।।८१।।

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः। द्वौ द्वौ वारौ द्विर्द्विः। हनुभेदौ द्वौ। कुक्षिभेदौ द्वौ। पायुभेदौ द्वाविति षट्। सञ्छर्दनं च जरणं च। चकारः समुच्चये। तथा मध्यविदरणमन्त्यविदरणम्। इत्येवंप्रकाराः शशिसूर्ययोश्चन्द्रार्कयोर्दश मोक्षाः।।८१।।

अथैतेषां लक्षणं सफलं वक्तुकामस्तत्रादावेव दक्षिणहनुभेदस्य लक्षणं फलं चाह—

आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः।
सस्यविमर्दो मुखरुग् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥८२॥

यदि चन्द्र के ग्रहण में अग्निकोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् अग्निकोण में मोक्ष हो तो दक्षिण हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें धान्य का नाश, मुख का रोग, राजा को पीड़ा और सुवृष्टि होती है।।८२।।

आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि यद्यपगमनं निवर्त्तनं तमः करोति तदा स मोक्षो दक्षिण-हनुभेदसंज्ञितो दक्षिणहनुभेद इति तस्य संज्ञा। कस्य मोक्षः शशिनश्चन्द्रस्य। चन्द्रग्रहण-मत्रोपलक्षणार्थमर्कस्यापि यतो वक्ष्यति। 'एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करस्यापि' इति। अस्मिन् मोक्षे सस्यविमर्दः सस्यनाशो भवति। तथा मुखरुग्वदनपीडा। नृपस्य राज्ञः पीडा स्याद्भवेत्। सुवृष्टिः वृष्टिश्च भवेत्। तथा च कश्यपः—

दक्षिणो हनुभेदः स्याच्चाग्नेय्यां यदि गच्छति।
सस्यनाशं च कुरुते नृपभङ्गं सुदारुणम्।। इति।।८२।।

अथ वामहनुभेदलक्षणं सफलमाह—

पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी।
मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विन्द्यात् सुभिक्षं च ॥८३॥

यदि पूर्वोत्तर (ईशान कोण) में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् ईशान कोण में मोक्ष हो तो वाम हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमार को भय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष होता है।।८३।।

पूर्वोत्तरेणैशान्यां दिशि अपगमनं राहोर्यदि भवति तदा स वामो हनुभेदो नाम मोक्षः। स च नृपकुमाराणां नृपपुत्राणां भयदायी भवति भीतिं ददाति। तस्मिंश्च मोक्षे मुखरोगं

वक्त्रपीडां शस्त्रभयं संग्रामभीतिं च विन्द्याज्जानीयात्। सुभिक्षं च भवति। तथा च कश्यपः—

पूर्वोत्तरेऽपरो भेदो नृपपुत्रभयप्रदः।। इति।।८३।।

अथ दक्षिणकुक्षिविभेदलक्षणं सफलमाह—

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः।
पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपवः ।।८४।।

यदि चन्द्र-ग्रहण में दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो दक्षिण कुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमारों को पीड़ा और दक्षिण दिशा में स्थित शत्रुओं में लड़ाई होती है।

विशेष—गणित के द्वारा दक्षिण दिशा में होकर राहु का निकलना असम्भव है, फिर भी यहाँ पर पूर्व-शास्त्रानुसार आचार्य ने कहा है। अतः जब ऐसी स्थिति हो तो उसको उत्पातरूप समझना चाहिये।।८४।।

दक्षिणपार्श्वेन दक्षिणभागेन यदि मोक्षो भवेत् स दक्षिणकुक्षिविभेदो नाम मोक्षः। तस्मिन्मोक्षे नृपपुत्राणां राजसुतानां पीडा भवति। तथा दक्षिणा रिपवो दक्षिणदिक्स्थाः शत्रवोऽभियोज्याः। तेषामुद्योगः कार्य इत्यर्थः। एतदौत्पातिकम्। यतो गणितगोलवासनया दक्षिणोत्तरयोर्दिशोर्ग्रासमोक्षौ न भवतः। कदाचिदपि आचार्येण पूर्वशास्त्रानुसारेणोक्तम्। तथा च कश्यपः—

दक्षिणः कुक्षिभेदः स्याद्वामे मोक्षो भवेद्यदि।
राजपुत्रभयं तत्र दक्षिणाशाद्विषां वधः।। इति।।८४।।

अथ वामकुक्षिभेदं सफलमाह—

वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः।
स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ।।८५।।

यदि ग्रहण-काल में उत्तर तरफ होकर राहु निकलता (उत्तर तरफ मोक्ष) हो तो वाम कुक्षि-भेद नामक मोक्ष होता है। इसमें स्त्रियों के गर्भों का नाश और मध्यम रूप से धान्य होता है।।८५।।

राहुर्यद्युत्तरमार्गसंस्थितः उत्तरस्यां दिशि संस्थितो भवति तदा स वामकुक्षिभेदो नाम मोक्षः। तस्मिन् मोक्षे स्त्रीणां योषितां गर्भविपत्तिर्गर्भविनाशो भवति। तथा सस्यानि मध्यानि भवन्ति नाल्पानि न बहूनीत्यर्थः। एतदौत्पातिकम्। तथा च कश्यपः—

सौम्यायां तु यदा मोक्षो वामकुक्षिविभेदतः।
स्त्रीणां गर्भविनाशाय सौम्याशाधिपतेर्वधः।। इति।।८५।।

अथ दक्षिणवामौ पायुभेदौ सफलावाह—

नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ।।८६।।

यदि मोक्षकाल में नैर्ऋत्य और वायव्य कोण में राहु दृष्टिगोचर हो तो क्रम से दक्षिण पायु-भेद और उत्तर पायु-भेद नामक मोक्ष होता है। जैसे—नैर्ऋत्य कोण में मोक्ष हो तो दक्षिण पायु-भेद और वायव्य कोण में मोक्ष हो तो वाम पायु-भेद नामक मोक्ष होता है। दक्षिण पायु-भेद में गुदा और लिङ्ग में रोग एवं थोड़ी वृष्टि तथा उत्तर पायु-भेद में राजपत्नी का नाश होता है।।८६।।

नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि व्यवस्थिते तमसि दक्षिणपायुभेदः। वायव्यस्थे पश्चिमोत्तरस्यामवस्थिते वामपायुभेदः। पायुशब्देनापानस्थानमुच्यते। अनयोर्द्वयोरपि गुह्यरुग् गुदरोगो भवति। गुह्यं लिङ्गं वा तत्र रोगो भवति। अल्पा स्वल्पा वृष्टिर्वर्षणं भवति। वामस्य विशेषमाह—**राज्ञीक्षयो वाम इति**। वामकुक्षिभेदे राज्ञ्या राजपत्न्याः क्षयो मरणं भवति। तथा च कश्यपः—

पायुभेदगते राहौ वायवीनैर्ऋताशयोः।
गुह्यरोगभयं विन्द्याद्वामे राज्ञीभयं तथा।। इति।।८६।।

अथ सञ्छर्दनलक्षणमाह—

पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत।
सञ्छर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ।।८७।।

यदि चन्द्रविम्ब के पूर्व भाग से स्पर्श करके राहु उसी तरफ से निकलता (बिम्ब के पूर्व भाग में ही स्पर्श और मोक्ष) हो तो सञ्छर्दन नामक मोक्ष होता है। यह मोक्ष संसार में क्षेम, धान्य और सन्तोष देने वाला होता है।।८७।।

पूर्वेण पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव पूर्वस्यामेव यद्यपसर्पेत गमनं करोति स मोक्षः सञ्छर्दनमिति। तच्च जगतो लोकस्य क्षेमप्रदं सस्यप्रदं हार्दिप्रदं तुष्टिप्रदं च भवति। तथा च कश्यपः—

ग्रासमोक्षौ यदा पूर्वे छर्दनं तु तदा भवेत्।
क्षेमहार्दिप्रदं ज्ञेयं सस्यनिष्पत्तिकारकम्।। इति।।८७।।

अथ जरणं सफलमाह—

प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्।
क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ।।८८।।

यदि चन्द्र-विम्ब के पूर्व भाग में स्पर्श और पश्चिम भाग में मोक्ष हो तो जरण नाम मोक्ष होता है। इसमें क्षुधा और युद्ध के भय से उद्विग्न होकर मनुष्य निःशरण होते हैं अर्थात् उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होता है।।८८।।

यस्मिन् प्रग्रहणे प्राक् पूर्वस्यां दिशि प्रग्रहणं कृत्वा पश्चात् पश्चिमायां दिशि अपसर्पणं गमनं यदि करोति तदा तज्जरणं नाम मोक्षः। तत्र तस्मिन् मोक्षे जना मर्त्याः क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्नाः। क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयम्। शस्त्रभयं संग्रामभीतिः। तेनोद्विग्ना दुःखिता न शरण-

मुपयान्ति शरणं न प्राप्नुवन्ति। निःशरणा भवन्तीत्यर्थः। तथा च कश्यपः—

पूर्वेण ग्रसते राहुरपरस्यां विमुञ्चति।
क्षुत्तस्करभयं तत्र मोक्षस्तु जरणं स्मृतम्।। इति।।८८।।

अथ मध्यविदरणं सफलमाह—

मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम।
अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम्।।८९।।

यदि ग्रहण के प्रारम्भ काल में ही मण्डल के मध्य भाग में प्रकाश प्रतीत हो तो मध्य विदरण नामक मोक्ष होता है। यह राजा की अपनी सेनाओं में ही परस्पर क्षोभ उत्पन्न करने वाला, सुभिक्ष और थोड़ी वृष्टि देने वाला होता है।।८९।।

प्रथममादौ मध्यभागे यदि प्रकाशो बिम्बस्य प्राकाश्यमुत्पद्यते तन्मध्यविदरणं नाम मोक्षः। तदन्तःकोपकरम्। अन्तरभ्यन्तरे राजगृहे कोपकरम्। स्वयमेव सैन्यक्षोभकरं स्याद्भवेत्। तथा सुभिक्षदं सुभिक्षं ददाति। नातिवृष्टिकरं भवति प्रभूतं न वर्षतीत्यर्थः। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धम्। तथा च कश्यपः—

यदा प्रकाशो मध्ये स्याद् दुर्भिक्षमरकं तदा।। इति।।८९।।

अथान्त्यविदरणाख्यं सफलमाह—

पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्त्यदरणाख्यः।
मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन्।।९०।।

यदि ग्रहण-समय में चन्द्र के विम्ब-प्रान्त भाग निर्मल और मध्य भाग में अधिक श्यामता हो तो अन्त्य विदरण नामक मोक्ष होता है। इसमें मध्य देश और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का नाश होता है।।९०।।

पर्यन्तेषु बिम्बान्तभागेषु यदि विमलता निर्मलत्वं भवति मध्ये मध्यभागे बहुलं सन्ततं तमस्तदान्त्यदरणाख्यो मोक्षः। अस्मिन् मोक्षे मध्याख्यस्य देशस्य नाशो भवति। मध्यदेशो विनश्यतीत्यर्थः। तथा शारदानां सस्यानां च क्षयः। एतदप्यौत्पातिकम्। यतो गणितगोलविरुद्धमिति। तथा च कश्यपः—

पर्यन्ते विमलत्वं स्यात्तमो मध्ये यदा भवेत्।
मध्याख्यदेशनाशः स्याच्छरत्सस्यं विनश्यति।। इति।।९०।।

अथैत एव मोक्षा भास्करस्य ज्ञेया इत्येतदाह—

एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र।
पूर्वा दिक् शशिनि यथा रवौ पश्चिमा कल्प्या।।९१।।

इन पूर्वकथित चन्द्र-ग्रहण के समस्त मोक्षों का विचार सूर्यग्रहण में भी करना चाहिये; पर वहाँ की पूर्व दिशा के स्थान पर यहाँ पश्चिम दिशा, पश्चिम दिशा के स्थान पर पूर्व

दिशा, उत्तर के स्थान पर दक्षिण और दक्षिण के स्थान पर उत्तर दिशा की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार दिग्वैपरीत्य करके सभी दश मोक्षों का लक्षण और फल देखना चाहिये।।९१।।

एते सर्वे मोक्षा ये चन्द्रमस्युक्तास्ते सर्वे भास्करे सूर्येऽपि वक्तव्या: कथनीया:। किन्त्वत्रायं विशेष:—यथा शशिनि चन्द्रे पूर्वा दिक् तथा रवावादित्ये पश्चिमा दिक् कल्प्या। एतदुक्तं भवति—आदित्यस्य पश्चिमा दिक् पूर्वा, पूर्वा च पश्चिमा। दक्षिणा उत्तरा। उत्तरा च दक्षिणा। विदिशश्चानेनैव वैलोम्येन परिकल्प्य चन्द्रवद् मोक्षा वाच्या इति।।९१।।

अथ ग्रहणे मुक्ते सप्ताहान्त:फलान्याह श्लोकपञ्चकेन—

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसंक्षयं कुरुते।
नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम्।।९२।।

उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृदंष्ट्रिपरिपीडाम्।।९३।।

परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते।।९४।।

निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदेव सन्दृष्टः।।९५।।

अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति।।९६।।

मोक्ष के पश्चात् सात दिन के अन्दर रजोवर्षण हो तो अन्न का नाश, नीहार (हिमवर्षण 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिममि'त्यमरः) हो तो रोग का भय, भूकम्प हो तो प्रधान राजा का मरण, उल्कापात हो तो मन्त्री का नाश, नाना वर्ण का मेघ हो तो अतिशय भय, मेघ का गर्जन हो तो गर्भ (२१वें अध्याय में उक्त गर्भ-लक्षण) का नाश, विद्युत्पात हो तो राजा, सर्प, सूकर आदि को पीड़ा, परिवेष (मण्डल, 'परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः) हो तो रोग और पीडा, दिग्दाह हो तो राजभय और अग्निभय, कठोर प्रचण्ड वायु बहे तो चोर का भय, निर्घात (वायु से वायु अभिहत) हो, इन्द्रधनुष दिखाई दे या दण्ड (रवि के किरण, मेघ और वायु का संघात) हो तो दुर्भिक्ष और परराष्ट्र का भय, ग्रहयुद्ध या केतु का दर्शन हो तो राजाओं में युद्ध और निर्मल जल की वर्षा हो तो सुभिक्ष तथा ग्रहण में उत्पन्न अशुभ फलों का नाश होता है।।९२-९६।।

मुक्ते ग्रहणे सप्ताहान्तर्दिनसप्तकमध्ये यदि पांशुनिपातो भवति पांशुवर्षणं दृश्यते तदान्नसंक्षयं दुर्भिक्षं कुरुते। एवं नीहारो रोगभयं करोति। भूकम्पः प्रवरस्य प्रधानस्य नृपस्य राज्ञो मृत्युं मरणं करोति।

उल्का पतिता मन्त्रिण: सचिवस्य विनाशं करोति। नानावर्णा विविधकान्तयो घना मेघा अतुलमतिभयं कुर्वन्ति। स्तनितं मेघशब्दस्तच्च गर्भविनाशं करोति। गर्भा गर्भलक्षणोक्ता अत्र ज्ञेया:। विद्युत्तडित्। नृपो राजा। दंष्ट्रिण: सर्पादय:। तेभ्य: परिपीडां करोति।

परिवेषो रुक्पीडां रोगव्यथां करोति। दिग्दाहो दिशां दाहो नृपभयमग्निभयेन सहितं करोति। रूक्ष: परुष: प्रबलश्चण्डो वायुश्चौरसमुत्थं तस्करोत्पन्नं भयं धत्ते ददाति।

निर्घात: शब्दस्तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'पवन: पवनाभिहत:' इति। सुरचापमिन्द्र-धनु:। दण्डश्च रविकिरणजलदमरुतां संघात:। एतेषामन्यतमं क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं सपरचक्रं परचक्रभयसहितं करोति। ग्रहयोर्युद्धे नृपाणां राज्ञां युद्धं भवति। केतु: शिखी च सन्दृष्ट-स्तदेव नृपयुद्धं करोति।

सप्ताहान्तर्दिनसप्तमध्येऽविकृतस्याविकारस्य सलिलस्य पानीयस्य निपातै: सुभिक्ष-मादेश्यं वक्तव्यम्। यच्च ग्रहणजं फलमशुभं तत्सर्वं नाशमुपयाति नश्यतीत्यर्थ:। तथा च समाससंहितायाम्—

परुषपवनाभ्रगर्जितविद्युत्परिवेषभूप्रकम्पाद्या: ।
सप्ताहान्तर्न शुभा ग्रहणनिवृत्तौ शुभा वृष्टि:।।

तथा च वृद्धगर्ग:—

अथेन्दुग्रहनिर्मुक्ते सप्ताहान्तर्भवेद्यदि।
पांशुवर्षोऽन्ननाश: स्यान्नीहारो रोगवृद्धये।।
नृपनाशाय भूकम्प उल्का मन्त्रिविपत्तये।
रोगाय परिवेष: स्याद्भयायैवाभ्रसम्प्लव:।।
विद्युद्गर्भविनाशाय दिग्दाहोऽग्निविवृद्धये।
निर्घातेन्द्रधनुर्दण्डा दुर्भिक्षाय भयाय च।।
पवन: प्रबलो रूक्षश्चौरोपद्रवसूचक:।
सर्वोपद्रवनाश: स्यात् सम्यग्वृष्टिर्भवेद्यदि।।
यद्राहुचरितं प्रोक्तं चन्द्रग्रहणहेतुकम्।
तदेव सकलं सूर्ये वेदितव्यं शुभाशुभम्।। इति।।९२-९६।।

चन्द्रग्रहणानन्तरं यद्यर्कग्रहणं दृश्यते तदा फलमाह—

सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रानय: प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ।।९७।।

यदि चन्द्र-ग्रहण के पन्द्रह दिन पश्चात् सूर्य-ग्रहण हो तो प्रजाओं में अनीति और स्त्री-पुरुषों में द्वेष उत्पन्न होता है।।९७।।

सोमग्रहे चन्द्रग्रहणे निवृत्तेऽतीते पक्षान्ते दिनपञ्चदशकात्परतो यदि ग्रहो ग्रहणमर्कस्या-

ऽऽदित्यस्य भवति तत्र तस्मिन् प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयो भवति। दम्पत्योर्जायापत्यो-रन्योन्यं परस्परं वैरं द्वेषो भवति।।९७।।

अथार्कग्रहाच्छशिग्रहणं दृष्टं फलमाह—

अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः ।
नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ।।९८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
राहुचाराध्यायः पञ्चमः ।।५।।

यदि सूर्य-ग्रहण के पन्द्रह दिन पश्चात् चन्द्र-ग्रहण हो तो ब्राह्मणगण अनेक यज्ञफल को भोगने वाले और प्रजागण हर्षित होते हैं।।९८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां राहुचाराध्यायः पञ्चमः ।।५।।

अर्कग्रहादादित्यग्रहणादनन्तरं पक्षान्ते यदि शशिनश्चन्द्रमसो ग्रहणं दृश्यते अवलोक्यते। ततो विप्रा ब्राह्मणा नैकक्रतुफलभाजो नैकानां बहूनां क्रतूनां यज्ञानां फलभागिनो भवन्ति। तथा सर्वाः प्रजा मुदिता हृष्टा भवन्तीति।।९८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
राहुचारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अथ भौमचाराध्यायः

अथ भौमचाराध्यायो व्याख्यायते। तत्र भौमस्य पञ्चमुखानि भवन्ति। तद्यथा—

उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च।
निस्त्रिंशमुशलं चेति पञ्च वक्त्राणि भूसुते।।

एतेषां लक्षणानि सफलानि वक्ष्यति। तत्रादावेवोष्णमुखस्य लक्षणं सफलमाह—

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु।
तद्वक्त्रमुष्णमुदये पीडाकरमग्निवार्त्तानाम् ।।१।।

मङ्गल के पाँच मुख (उष्णमश्रुमुखं व्यालं रुधिराननमेव च। निस्त्रिंशं मुशलं चेति पञ्चवक्त्राणि भूसुते।।) होते हैं। उनमें पहले उष्णमुख नामक मंगल का लक्षण और फल कहते हैं। जिस नक्षत्र में मङ्गल का उदय हो, उससे सप्तम, अष्टम या नवम नक्षत्र में जाकर यदि वक्री हो तो वह वक्री मंगल 'उष्णमुख' कहलाता है। इस उष्णमुख वाले मङ्गल के उदयकाल में अग्नि से आजीविका चलाने वाले (सोनार, लोहार आदि) को पीड़ा होती है।।१।।

यस्मिन्नक्षत्रे स्थितोऽङ्गारक आदित्यमण्डलादुदयं करोति तदुदयर्क्षादुदयनक्षत्राद् नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु नवमे नक्षत्रे अष्टमे वा सप्तमे वा यदि वक्रं प्रतीपगमनं करोति तदा तद्वक्त्रमुष्णं नाम। तच्च भौमस्योदये रविमण्डलात् पुनरपि निर्गमेऽग्निवार्त्तानामग्निवृत्तीनां सुवर्णकारलोहकारादीनां पीडाकरमुपतापकरम्। वक्रादनन्तरं यदाऽर्कमण्डलेऽस्तमेष्यति तदैतत्फलमेषां सर्वेषां ज्ञेयम्। यत्र यद्यप्यसम्भवस्तत्रापि पूर्वशास्त्रानुसारेणाऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च वृद्धगर्गः—

उदयात् नवमे कुर्यादष्टमे सप्तमेऽपि वा।
निवृत्तिं लोहिताङ्गस्तु तदुष्णं वक्त्रमुच्यते।।
नरोऽग्निजीविनो ये च पचन्ति च दहन्ति च।
तेषामुत्पद्यते तापो जायते धनसंक्षयः।।

तथा च पराशरः—'तस्य पञ्चवक्त्राणि क्रमेणोपदिशन्ति। उष्णमश्रुमुखं व्यालं लोहिताख्यं निस्त्रिंशमुशलं चेति। तत्रोदयर्क्षात् सप्तमाष्टनवमेषु नक्षत्रेषु निवृत्तः प्रजासंक्षयं विशेषतः पचतां दहतां च पीडां धत्ते'।।१।।

अथाश्रुमुखस्याह—

द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम्।
दूषयति रसानुदये करोति रोगानवृष्टिं च ।।२।।

औदयिक नक्षत्र से दशम, एकादश या द्वादश नक्षत्र में यदि मङ्गल वक्री हो तो वह अश्रुमुख कहलाता है। यह वक्र रसों में दोष उत्पन्न करता है तथा रोग की वृद्धि और अनावृष्टि करता है।।२।।

उदयनक्षत्राद् द्वादशे नक्षत्रे दशमे वैकादशे वा कुजेऽङ्गारके वक्रिते प्रतीपगतौ अश्रुमुखं नाम वक्त्रम्। तच्चोदये पुनरर्कमण्डलान्निर्गमे रसान् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायान् दूषयति सदोषान् करोति। ते च दुष्टा नराणां भक्षणमात्रात् पीडामुत्पादयन्ति। एवं रोगान् करोति। तथा अवृष्टिमवर्षणं च करोति। तथा च गर्गः—

दशमैकादशे वापि द्वादशे वापि वक्रिते।
लोहिताङ्गे ग्रहे ज्ञेयं वक्त्रमश्रुमुखं च तत्।।
तत्र वर्षति पर्जन्यो दूषयित्वा शुभान् रसान्।
ते दुष्टा दूषयन्त्याशु नृणां धातून् तथा भृशम्।।
बहवो व्याधयः क्रूरा उत्पद्यन्ते शरीरिणाम्।
बहुभिः कारणैरेतैस्ततो लोकः प्रलीयते।।

तथा च पराशरः—'दशमैकादशद्वादशेषु प्रदुष्टवातैरद्रव्यरसान् प्रजानां धातून् कोपयन् व्याधीन् प्रवर्त्तयति'।।२।।

अथ व्यालस्याह—

व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये ।
दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ।।३।।

जिस नक्षत्र में मङ्गल अस्त हो, उससे तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में जाकर वक्री हो तो वह वक्र व्यालमुख कहलाता है। इसमें दंष्ट्री (सूकर, कुत्ता आदि), सर्प और मृग से लोगों को पीड़ा होती है तथा संसार में सुभिक्ष होता है।।३।।

उदयापेक्षया त्रयोदशर्क्षात् त्रयोदशनक्षत्राच्चतुर्दशाद्वा कुजे वक्रिते व्यालं नाम वक्रम्। तच्चास्तमये विपच्यते। यस्मिन् काले भौमोऽर्कमण्डले पुरस्तादस्तमेति तत्र परिपाकमायाति। दंष्ट्रिणः सूकरकुक्कुरादयः। व्यालाः सर्पाः। मृगा आरण्यजातयः। तेभ्यः सकाशात् पीडां लोकानां करोति सुभिक्षं च करोति। तथा च गर्गः—

त्रयोदशे च नक्षत्रे यदि वापि चतुर्दशे।
निवृत्तिं कुरुते भौमस्तद्वक्त्रं व्यालमुच्यते।।
भवन्ति प्रचुरा व्यालास्तेभ्यो लोकभयं वदेत्।
नृपाणामशुभं विन्द्यात् सस्यसम्पत्तिमादिशेत्।।

तथा च पराशरः—'त्रयोदशचतुर्दशयोः सस्यदंष्ट्रिव्यालप्राबल्यं हिरण्यसञ्चयं च' इति।।३।।

अथ रुधिराननस्याह—

रुधिराननमिति वक्त्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते।
तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति ॥४॥

यदि अस्त-कालिक नक्षत्र से पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र में जाकर मंगल लौटता (वक्री होता) हो तो वह वक्र रुधिरानन कहलाता है। इसके उदयकाल में मुख का रोग, भय और सुभिक्ष होता है।।४।।

उदयापेक्षया पञ्चदशान्नक्षत्रात् षोडशाच्च विनिवृत्ते वक्रितेऽङ्गारके रुधिराननमिति नाम वक्त्रम्। तच्च तत्कालं यावद्वक्रं तावन्मुखरोगं वक्त्रं पीडितं सभयं भयसहितं च सुभिक्षमावहत्युत्पादयति। तथा च गर्गः—

यदि पञ्चदशर्क्षे तु भूसुतः षोडशेऽपि वा।
निवृत्तिं कुरुते वक्रस्तद्विदुर्लोहिताननम्।।
दीप्तिमन्तः पार्थिवाश्च भवन्ति प्रथिता भुवि।
क्षत्रकोपश्च सुमहान् मुखरोगा भवन्ति च।।

तथा च पराशरः—'पञ्चदशषोडशयोर्मुखरोगो नृपक्षोभः शस्त्रकोपश्च' इति।।४।।

अथासिमुशलस्याह—

असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे।
दस्युगणेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम् ॥५॥

यदि अस्तकालिक नक्षत्र से सत्रहवें सा अठारहवें नक्षत्र में जाकर मङ्गल पीछे की तरफ लौटता हो तो वह असिमुशल वक्र कहलाता है। इसमें लोगों को चोरों से पीड़ा, अनावृष्टि और शस्त्रभय होता है।।५।।

उदयापेक्षया सप्तदशान्नक्षत्रादष्टादशतोऽपि वा वक्रितेऽङ्गारके वद्वक्त्रमसिमुशलं नाम। तच्चानुवक्रे स्पष्टगत्याऽऽश्रिते भौमे दस्युगणेभ्यश्चौरसंघेभ्यः सकाशात् प्रजानां पीडां करोति। तथाऽवृष्टिं सशस्त्रभयां शस्त्रभयेन सहितां च करोति। तथा च गर्गः—

सप्तादशेऽष्टादशे वा लोहिताङ्गे निवर्तिते।
निस्त्रिंशमुशलं नाम तद्वक्त्रं परिकीर्तितम्।।
पशुपुत्रधनं धान्यमाहरन्ते तु दस्यवः।
प्राणिनां जीवनं हन्ति जायते शस्त्रसम्भ्रमः।।

तथा च पराशरः— 'सप्तदशेऽष्टादशे वा दस्युगणैः प्रजानामुपद्रवमवृष्टिं शस्त्रभयं च' इति।।५।।

अथात्रैव योगवशेन विशेषफलमाह—

भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्तते वैश्वदैवते भौमः।
प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोकान्निपीडयति ॥६॥

यदि पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदित होकर मङ्गल उत्तराषाढा में जाकर वक्री होता हो और बाद में रोहिणी में जाकर अस्त होता हो तो वह तीनों लोकों (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल) को पीड़ित करता है।।६।।

भाग्यं पूर्वफल्गुनी। अर्यमा उत्तरफल्गुनी। भौमोऽङ्गारकोऽनयोरेकतरे यद्युदितो भवति रविमण्डलनिर्गतः। ततोऽग्रतो वैश्वदैवते उत्तराषाढायां निवर्तते वक्रं करोति तथा प्राजापत्ये रोहिण्यामस्तमितो यदि भवति तदा त्रीनपि भूर्भूवःस्वराख्यांल्लोकान्निपीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः—

फल्गुन्यामुदयं कृत्वा वक्रं स्याद्वैश्वदैवते।
प्राजापत्ये प्रवासश्च त्रैलोक्यं तत्र पीड्यते।। इति।।६।।

अन्यदपि विशेषमाह—

श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्द्धाभिषिक्तपीडाकृत् ।
यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति ।।७।।

यदि श्रवण नक्षत्र में उदित मङ्गल पुष्य में जाकर वक्री होता हो तो राजाओं को पीड़ित करता है तथा जिस नक्षत्र में उदित हो उस नक्षत्र की दिशा (नक्षत्रकूर्मोक्त दिशा) और व्यूह (नक्षत्रव्यूह) जहाँ हो, वहाँ के जनों का नाश करता है।।७।।

श्रवणस्थस्याङ्गारकस्यार्कमण्डलादुदितस्य यद्यग्रतः पुष्ये वक्रं भवति तदा मूर्द्धाभिषिक्तानां राज्ञां पीडां करोति। तथा च पराशरः—

उदितः श्रवणे भौमः पुष्ये वक्रं चरेद्यदि।
मूर्द्धाभिषिक्ता राजानो विनश्येयुः परस्परम्।।

यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदित इति। सूर्यमण्डलस्थो यस्मिन्नृक्षे यत्र नक्षत्रे स्थितोऽभ्युदितः सूर्यमण्डलादुद्गतस्तस्य नक्षत्रस्य या दिक् नक्षत्रकूर्मोक्ता यश्च तस्य व्यूहो नक्षत्रव्यूहोक्तस्तत्र ये जनास्तान् हन्ति घातयति। तथा च पराशरः—

यथा जनपदव्यूहे दिग्विभागः प्रदर्शितः।
तस्य वै मोहितं कुर्याल्लोहिताङ्गस्तथा मुखम्।। इति।।७।।

अन्यदपि विशेषफलमाह—

मध्येन यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः ।
पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः ।।८।।

यदि मघा नक्षत्र में जाकर मंगल उसी में वक्री होता हो तो पाण्ड्यदेशीय राजा का नाश करता है तथा शस्त्रभय और अनावृष्टि करता है।।८।।

लोहितोऽङ्गारको यदि चेन्मघानां मध्ये न गतागतं करोति स्पष्टगतेस्तन्मध्ये तारकाणां गत्वा पुनर्वक्रगतेरागमनं तन्मध्ये नैव करोति ततस्तस्माद्धेतोः पाण्ड्यो नृपः पाण्ड्यदेशे

यो राजा स विनश्यति विनाशमायाति। लोके च शस्त्रोद्योगाद्भयं भवति। शस्त्राणामुद्योगः संग्रामः। अवृष्टिरवर्षणं च भवति।।८।।

अन्यदपि योगवशेनाह—

भित्त्वा मघां विशाखां भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम्।
मरकं करोति घोरं यदि भित्त्वा रोहिणीं याति ।।९।।

मघा नक्षत्र का भेदन करने के उपरान्त मंगल यदि विशाखा नक्षत्र का भेदन करता हो तो दुर्भिक्ष करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र का भेदन करता हो तो जनों में भयङ्कर मरक (मरी) करता है।।९।।

भौमोऽङ्गारको मघां भित्त्वा मघायोगतारकाभेदं कृत्वा यदि विशाखां भिन्दन् तामपि पुनर्भिनत्ति तदा दुर्भिक्षं क्षुद्भयं करोति। यदि रोहिणीं भित्वा याति रोहिण्या योगतारकभेदनं कृत्वा गच्छति तदा घोरं तीव्रं मरकं जनानां करोति विदधाति।।९।।

अन्यदप्याह—

दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत्।
धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्थान् ।।१०।।

यदि रोहिणी नक्षत्र के दक्षिण से मङ्गल विचरण करता हो तो महँगी और अनावृष्टि करता है। यदि धूमयुक्त या शिखायुक्त मङ्गल दृष्टिगोचर हो तो पारियात्र पर्वत पर स्थित मनुष्यों का नाश करता है।।१०।।

महीजोऽङ्गारको रोहिण्या दक्षिणतश्चरन् रोहिण्या योगतारकस्य दक्षिणभागेन गच्छन् अर्घस्य वृष्टेश्च निग्रहं करोति विनाशयतीत्यर्थः। अर्घस्य निग्रहः स्वल्पत्वम्। वृष्टेर्निग्रहश्चाभावः। धूमायन् सशिखो वेति। धूमायन् धूममुद्वहन् सशिखः सचूडो वा यदि दृश्यते तदा पारियात्रस्थान् विनिहन्यात्। पारियात्रः पर्वतः। तत्र स्थितान् जनान् हन्याद् घातयेत्।।१०।।

अथ भौमस्य वार्षिकाणि नक्षत्राण्याह—

प्राजापत्ये श्रवणे मूले त्रिषु चोत्तरेषु शाक्रे च।
विचरन् घननिवहानामुपघातकरः क्ष्मातनयः ।।११।।

यदि मङ्गल रोहिणी, श्रवण, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा या ज्येष्ठा नक्षत्र में विचरण करता हो तो मेघों का नाश करता है।।११।।

क्ष्मातनयोऽङ्गारकः प्राजापत्ये रोहिण्यां स्थितः श्रवणे मूले त्रिषु नक्षत्रेषूत्तरेषु उत्तरशब्द आदौ येषाम्। उत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदासु च। तिसृषूत्तरासु वा पाठः। शाक्रे ज्येष्ठायाम्। चशब्दः समुच्चये। एतेष्वेकतमे विरचन्निवसन् घननिवहानां मेघवृन्दानामुपघातकरो विनाशकर्ता भवत्यवृष्टिकृदित्यर्थः।।११।।

अथास्य नक्षत्रेषु स्थितस्योदितस्य वा विशेषफलमाह—

चारोदयाः प्रशस्ताः श्रवणमघादित्यहस्तमूलेषु ।
एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येषु च कुजस्य ॥१२॥

श्रवण, मघा, पुनर्वसु, मूल, हस्त, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा और रोहिणी नक्षत्र में मङ्गल का सञ्चार तथा उदय अधिक प्रशस्त (उत्तम फलदायक) कहा गया है।।१२।।

'यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति' तथा 'प्राजापत्ये श्रवण' इत्यस्यापवादोऽयम्। कुजस्याङ्गारकस्य श्रवणे मघायामादित्ये पुनर्वसौ हस्ते मूले एकपदायां पूर्वभद्रपदायामश्विन्यां विशाखायां प्राजापत्ये रोहिण्याम्। चशब्दः समुच्चये। एतेषु नक्षत्रेषु चारोदयाः। चारश्चरणमवस्थितिः। उदयः सूर्यमण्डलादुद्गमनम्। प्रशस्ताः शोभनाः। पूर्वोक्तमशुभफलमत्र न भवतीत्यर्थः।।१२।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

विपुलविमलमूर्त्तिः किंशुकाशोकवर्णः
स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः ।
विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
भौमचाराध्यायः षष्ठः ॥६॥

अधिक निर्मल मूर्ति वाला, किंशुक और अशोकपुष्प के समान वर्ण वाला, स्पष्ट सुन्दर किरण वाला तथा तपाये गये ताम्बे के समान वर्ण वाला मङ्गल यदि उत्तरा क्रान्ति में विचरण करे तो राजाओं का शुभ करने वाला और प्रजाओं को सन्तोष देने वाला होता है।।१३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां भौमचाराध्यायः षष्ठः ॥६॥

मेदिनी भूस्तस्या जातो मेदिनीजोऽङ्गारको विपुलविमलमूर्त्तिः। विपुला विस्तीर्णा विमला निर्मला मूर्त्तिर्यस्य। तथा किंशुकाशोकवर्णः। किंशुकाशोकौ पुष्पविशेषौ अतिलोहितौ तत्सदृशवर्णः अतिलोहित इत्यर्थः। स्फुटरुचिरमयूखः। स्फुटा स्पष्टा रुचिरा दीप्तिमन्तो मयूखा रश्मयो यस्य। तप्तताम्रप्रभाभः। तप्तस्य गलितस्य ताम्रस्य यादृशी प्रभा कान्तिस्तत्तुल्या आभा बिम्बच्छाया यस्य। यदि चोत्तरं मार्गं विचरति यस्मिन्नक्षत्रे स्थितस्तस्योत्तरभागेन यदि याति तदाऽवनिपानां राज्ञां शुभकृत् श्रेयस्करः। प्रजानां लोकानां च हार्दिदस्तुष्टिदो भवति। तथा च पराशरः—

वर्णरश्मिप्रभाप्रमाणतेजोयुक्त उदग्मार्गगः स्नेहवान् सर्वलोकहितायापि च।

प्रदक्षिणगतिः कान्तः स्निग्धश्च कलशोपमः।
तप्तकाञ्चनसङ्काशो भवेल्लोकविवृद्धये।।

अन्ये एवं व्याचक्षते—यथा भरण्यादिमघान्तमुत्तरो मार्गस्तत्र यदा विचरति तदावनिपानां शुभकृत् प्रजानां च हार्दिदः। तथा च गर्गः—

याम्यादिपितृपर्यन्तं नवर्क्षं मार्गमुत्तरम्।
भाग्यादिनैर्ऋतान्तं तु मध्यमं मार्गमुच्यते।।
आषाढाद्याश्विनान्तं तु दक्षिणं समुदाहृतम्।
सौम्यमार्गस्थितो भौमः प्रजानामुपकारकः।।
मध्यमे मध्यफलदो याम्ये तु भयदः स्मृतः।। इति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
भौमचारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ बुधचाराध्याय:

अथ बुधचारो व्याख्यायते; तत्रादावेव बुधस्योदितस्य फलमाह—

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम्।
जलदहनपवनभयकृद् धान्यार्घक्षयविवृद्धौ वा ।।१।।

उत्पातरहित होकर किसी भी समय में बुध का उदय नहीं होता अर्थात् जब बुध का उदय होता है, उस समय किसी न किसी प्रकार का उत्पात अवश्य होता है। जैसे कि जल, अग्नि और वायु का भयरूप उत्पात तथा अनाज की महँगी या सस्ती करता है।।१।।

चन्द्रजो बुध उत्पातपरित्यक्त उत्पातविरहितो न कदाचिदपि न जात्वप्युदयं सन्दर्शनं व्रजति गच्छति। अपि तु यदा यदोद्गच्छति तदा तदा सोत्पातरूप एवेति। किमुत्पातं करोति। जलदहनपवनभयकृत्। जलमुदकम्, दहनोऽग्निः, पवनो वायुः, एभ्यो भयं करोति। तथा धान्यार्घस्य क्षयाय भवति। विवृद्ध्यै विवृद्धये च भवति। बहुमूल्यता अर्घवृद्धिः, स्वल्पमूल्यता अर्घक्षयः। तथा च समाससंहितायाम्—

उदयं याति शशिसुतो नोत्पातविवर्जितः कदाचिदपि।
पवनाग्निसलिलभयदो धान्यार्घवृद्धिक्षयकृद्वा।।

ननु जलदहनादिभिरुत्पातैः परित्यक्तश्चन्द्रजः कदाचिदप्युदयं नो गच्छति। किमेतेषां जलदहनादीनामन्यतम उत्पातसमेत उदयं करोति किं वा सर्वैरेव युक्त इत्यत्रोच्यते।

येनोत्पातेन सहास्तगस्तत्प्रतिलोमगश्चन्द्रज उदयं याति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

अवर्षे कुरुते वर्षं वर्षे वर्षं न गच्छति।
भये च कुरुते क्षेमं सर्वत्र प्रतिलोमगः।।

उदयोक्तं फलमेतद्विशेषतश्चारजं फलं ब्रूयात्। तथा च कश्यपः—

नाकस्माद्दर्शनं याति विनोत्पातेन सोमजः।
भयवातातपहिमैरर्घवृद्धिक्षयादिभिः ।। इति।।१।।

अधुना नक्षत्रावस्थितस्य बुधस्य फलमाह—

विचरन् श्रवणधनिष्ठाप्राजापत्येन्दुवैश्वदेवानि।
मृद्नन् हिमकरतनयः करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम् ।।२।।

श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिर या उत्तराषाढ़ा का भेदन करते हुये यदि बुध विचरण करे तो वर्षा का अभाव और रोग का भय करता है।।२।।

श्रवणम्। धनिष्ठा। प्राजापत्यं रोहिणी। इन्दुर्मृगशिरः। वैश्वदेवमुत्तराषाढा। हिमकर-

श्चन्द्रस्तत्तनयो बुधः। एतानि नक्षत्राणि। विचरन्निवसन्नेतेषामन्यतमस्य मृद्नन्नुपमर्दयन् विचरति। मर्दनं भेदः। तदा अवृष्टिमवर्षणं सरोगभयां गदभीत्या सहितां करोति। मर्दनमत्र श्रवणमध्यात् केषाञ्चित् सम्भवति केषाञ्चिन्न सम्भवति। आचार्येणोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारेणेति। तथा च कश्यपः—

रोहिणीं वैश्वदेवं च सौम्यवैष्णववासवान्।
शशिजश्च यदा हन्ति प्रजा रोगैश्च पीडयेत्।। इति।।२।।

अन्येषु नक्षत्रेष्वाह—

रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः ।।३।।

आर्द्रा से मघा तक के पाँच नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में बुध का सञ्चार हो तो शस्त्रनिपात (युद्ध), क्षुधा, रोग, अनावृष्टि और अनेक प्रकार के दुःख से प्रजाओं को पीड़ित करता है।।३।।

रौद्रमार्द्रा तदादीनि मघान्तानि पञ्च नक्षत्राणि। आर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघाश्चेति। चन्द्रजे उपाश्रिते व्यवस्थिते तानि चोपमृद्नन् यदि विचरति तदा प्रजानां पीडा भवति। कैः शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः। शस्त्रनिपातेन युद्धेन। क्षुद्भयेन दुर्भिक्षभीत्या। रोगैर्गदैः। अनावृष्ट्या अवर्षणेन। सन्तापेनोपतापेन च। तथा च कश्यपः—

रौद्रादीनि यदा पञ्च नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
भिनत्ति शस्त्रदुर्भिक्षव्याधिभिः पीड्यते जगत्।। इति ।।३।।

अन्येष्वाह—

हस्तादीनि चरन् षड्दृक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः।
स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम् ।।४।।

हस्त से छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा) नक्षत्रों के योगतारा का भेदन करते हुये बुध विचरण करे तो गौओं को अशुभ करता है और भूमि को अनेक प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण करता है।।४।।

हस्तादीनि षड् नक्षत्राणि हस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठा इति। एतानि षड् नक्षत्राणि विचरन् बुध एतेषु व्यपार .स्तथोपपीडयन् योगतारकां भिन्दन् गवामशुभो भवति, गाः हन्ति। स्नेहानां तैलघृतानाम्। रसानां मधुरादीनामर्घवृद्धिं सामर्घ्यम्। तथोर्वीं भूमिं प्रभूतान्नां पर्याप्तसस्यां करोति। तथा च कश्यपः—

हस्तादीनि चरन् षड् वै नक्षत्राणीन्दुनन्दनः।
गवामशुभदः प्रोक्तः सुभिक्षक्षेमकारकः।। इति।।४।।

अन्येष्वाह—

आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशं च।
चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसंक्षयकृत् ॥५॥

उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा या भरणी नक्षत्र को बुध भेदन करता हो तो प्राणियों के धातुओं (वसा, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा और शुक्र) का नाश करता है।

आर्यम्णमुत्तरफल्गुनी। हौतभुजं कृत्तिका:। हुतं भुक्त इति हुतभुगग्निस्तस्येदं हौतभुजम्। भद्रपदा उत्तरा उत्तरभद्रपदा। यमेशं भरणी। चशब्द: समुच्चये। एतानि नक्षत्राणि चन्द्रस्य सुतो बुधो निघ्नन्नुपमर्दयन् प्राणभृतां देहिनां धातूनां संक्षयं विनाशं करोति। वसासृङ्-मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातव इति। तथा च कश्यप:—

भरणी कृत्तिकार्यम्णमहिर्बुध्नं च चन्द्रज:।
चरन् धातुविनाशाय प्राणिनां परिकीर्तित:।। इति।।५।।

अन्येष्वप्याह—

आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुत: ।
पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकर: ॥६॥

यदि बुध अश्विनी, शतभिषा, मूल या रेवती का भेदन करे तो व्यापारी, वैद्य, नौका से जीविका करने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य तथा घोड़ों का नाश करता है।।६।।

आश्विनमश्विनी, वारुणं शतभिषक्, मूलम्। एतानि नक्षत्राणि तथा रेवतीं च चन्द्र-सुतो बुधश्चरन् तथोपमृद्नन् पण्यजीविनां पण्यवृत्तीनां वणिक्प्रभृतीनाम्। भिषजां वैद्यानाम्, नौजीविकानां नाविकानाम्, सलिलजानां जलोत्पन्नानां द्रव्याणां मुक्ताफलादीनाम्, तुरगाणा-मश्वानामुपघातं करोति नाशकर्ता भवति। तथा च कश्यप:—

रेवतीं वारुणं मूलमश्विनीं चोपमर्दयन्।
बुधो वणिग्भिषग्वाहान् जलोत्थांश्च विनाशयेत्।। इति।।६।।

अन्येष्वाह—

पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकमपीन्दो: सुतोऽभिमृद्नीयात् ।
क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी चरन् जगत: ॥७॥

यदि बुध पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा या पूर्वाभाद्रपदा का भेदन कर विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्र, चोर और रोगों का भय देने वाला होता है।।७।।

पूर्वशब्द आदिर्यस्य तत्पूर्वाद्यृक्षत्रितयम्—पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभद्रपदेति। अस्मान्नक्षत्रत्रितयादिन्दो: सुतो बुधश्चरन्नेकमभिमृद्नीयात् पीडयेत् तदा जगतो लोकस्य क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी भवति। क्षुद् दुर्भिक्षम्, शस्त्रं संग्राम:, तस्कराश्चौरा:, आमयो रोग:। एभ्यो भयं भीतिं प्रददाति तच्छील:। तथा च कश्यप:—

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो भेदं कृत्वा यदि व्रजेत्।
क्षुच्छस्त्रतस्करभयैः करोति प्राणिनां वधम्।। इति।।७।।

अथ बुधस्य सप्तगतय उक्ताः पराशरतन्त्रे। तासां च तन्मतेनैव नामान्याह—

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः ।
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः ।।८।।

प्राकृत, विमिश्र, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर, पाप—ये पराशरतन्त्रोक्त नक्षत्रों के साथ बुध की सात गतियाँ कही गई हैं।।८।।

प्राकृता, विमिश्रा, संक्षिप्ता, तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा, पापाख्या—एताः सप्तगतयः पराशराख्ये तन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता उक्ताः।।८।।

अथैतासां नक्षत्रवशेन नामान्याह—

प्राकृतसंज्ञा वायव्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च ।
मिश्रा गतिः प्रदिष्टा शशिशिवपितृभुजगदेवानि ।।९।।

संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति ।
तीक्ष्णायां भद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ।।१०।।

योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गतिः सुतस्येन्दोः ।
घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदैवं वारुणं चैव ।।११।।

पापाख्या सावित्रं मैत्रं शक्राग्निदैवतं चेति ।

स्वाती, भरणी, रोहिणी या कृत्तिका नक्षत्र में प्राकृत गति से; मृगशिर, आर्द्रा, मघा या आश्लेषा में विभिन्न गति से; पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी में संक्षित गति से; पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी या रेवती में तीक्ष्ण गति से; मूल, पूर्वाषाढा या उत्तराषाढा में योगान्तिक गति से; श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा या शतभिषा में घोरा नाम की गति से और हस्त, अनुराधा या विशाखा में पापसंज्ञक गति से बुध स्थित होता है।।९-११।।

प्राकृतसंज्ञेति । वायव्यं स्वाती, याम्यं भरणी, पैतामहं रोहिणी, बहुलाः कृत्तिकाश्चैतानि नक्षत्राणि प्राकृतसंज्ञा गतिः। एतेषां नक्षत्राणामन्यतमे स्थितो बुधः प्राकृतगत्या स्थितो भवति।

मिश्रा गतिरिति । शशिदेवो मृगशिरः, शिवदेव आर्द्रा, पितृदेवो मघा, भुजगदेव आश्लेषा—एतानि नक्षत्राणि बुधस्य मिश्रा नाम्नी गतिः प्रदिष्टा उक्ता।

संक्षिप्तायामिति । पुष्यः पुनर्वसुः, फल्गुनीद्वयं पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी एतानि नक्षत्राणि संक्षिप्तायां गतौ।

तीक्ष्णायामिति । भद्रपदाद्वयं पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे, शाक्रं ज्येष्ठा, अश्वयुगश्विनी, पौष्णं रेवती, तच्च सशाक्राश्वयुक् शाक्रेणाश्वयुजा च सह पौष्णमित्यर्थः। एतानि नक्षत्राणि तीक्ष्णायां गतौ।

योगान्तिकेति । मूलम्, द्वे आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढे—एतानि नक्षत्राणि इन्दुसुतस्य बुधस्य योगान्तिका नाम्नी गतिः।

घोरेति । श्रवणम्, त्वाष्ट्रं चित्रा, वसुदैवं धनिष्ठा, वारुणं शतभिषग्—एतानि नक्षत्राणि घोरा नाम्नी गतिः।

पापाख्येति । सावित्रं हस्तः, मैत्रमनुराधा, इन्द्राग्निदैवतं विशाखा—एतानि नक्षत्राणि पापा नाम्नी गतिः। इतिशब्दः प्रकाराय। तथा च पराशरः—

'अथास्य गतयः सप्त च प्राकृता विमिश्रा संक्षिप्ता तीक्ष्णा घोरा पापा योगान्तिका च। तत्र प्राकृता याम्याग्नेयरोहिणीवायव्यानि। मिश्रा सौम्यार्द्रा मघाश्लेषा च। संक्षिप्ता पुष्यार्यम्णभाग्यादित्यानि। तीक्ष्णा अजपादतश्चत्वारि ज्येष्ठा च। घोरा त्रीणि श्रवणादीनि त्वाष्ट्रं च। पापा सावित्रेन्द्राग्निमैत्राणि। योगान्तिका मूलमाषाढे'।।९-११।।

अथ पराशरमतेनाऽऽसामेवोदयास्तलक्षणमाह—

उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणं प्राह ॥१२॥

चत्वारिंशत्४० त्रिंशद्३० द्विसमेता
विंशति२२र्द्विनवकं च १८।
नव९ मासार्द्ध१५ दश चैक-
संयुताः११ प्राकृताद्यानाम् ॥१३॥

उदय और अस्तदिन से पूर्वोक्त गति का लक्षण कहते हैं। प्राकृता नाम की गति में स्थित बुध का उदय हो तो चालीस दिन तक उदित और अस्त हो तो चालीस दिन तक अस्त रहता है एवं मिश्रा गति में ३० दिन, संक्षिप्ता गति में २२ दिन, तीक्ष्णा गति में १८ दिन, योगान्तिका गति में ९ दिन, घोरा गति में १५ दिन तथा पापा गति में स्थित बुध का उदय हो तो ९ दिन तक उदित और अस्त हो तो ९ तक अस्त रहता है।।१२-१३।।

स एव पराशरमुनिर्गतिलक्षणं प्राह—उदयदिवसैः प्रवासदिवसैः। उदयः सूर्यमण्डलान्निर्गमः। प्रवासस्तत्रैवास्तमयः। तैश्च दिवसैर्गतिलक्षणं प्राहोक्तवान्।

चत्वारिंशदिति । एतानि चत्वारिंशदादीनि प्राकृताद्यानां गतीनामुदये प्रवासे च प्रमाणम्। तद्यथा—प्राकृतायां गतौ बुधः स्थित उदेति तदा चत्वारिंश४०दिनान्युदित एव तिष्ठति। अथास्तमेति तदा चत्वारिंश४०द्दिनान्यस्तमित एव तिष्ठति। एवं मिश्रायां त्रिंशत् ३०। संक्षिप्तायां द्विसमेता विंशतिर्द्वाविंशतिः २२। तीक्ष्णायां द्विनवकमष्टादश १८। योगान्तिक्यां नव ९। घोरायां पञ्चदश १५। पापाख्यायां च दश चैकसंयुता एकादश११दिनानीति। यद्यपि गणितवासनयैतन्नोपपद्यते तथापि पराशरमङ्गीकृत्याऽऽचार्येणोक्तम्। तथा च पराशरः—

'अथ चत्वारिंशत्त्रिंशद्द्वाविंशत्यष्टादशपञ्चदशैकादशनवरात्राणि गतिक्रमादुदितोऽभिदृश्यते तान्येवास्तमितो भवति। उष्णशीतवाय्वभ्रसूर्येन्दुग्रहणायोदयति सस्यविघाताय

चे'ति। न केवलं पराशरेणोक्तं यावद् गर्गादिभिरपि। तथा च वृद्धगर्ग:—

चत्वारिंशत्प्राकृतायां गतावालक्ष्यते बुध: ।
मासमेकं विमिश्रायां दर्शयित्वास्तमर्हति।।
अह्नां द्वाविंशतिं सार्द्धं संक्षिप्तामेत्य लक्ष्यते।
अष्टादशाहं तीक्ष्णायां घोरायां दश पञ्च च।।
पापायां पादहीनानि तथैकादश तिष्ठति।
योगान्तिक्यामिन्दुसूनुर्नवाहं लक्ष्यते तथा।।
चारकालो य एवोक्त: सोमपुत्रस्य भागश:।
अस्तकाल: स एव स्यात् सूर्यमण्डलचारिण:।।

तथा च कश्यप:—

चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्दिनानि द्वौ च विंशति:।
अष्टादशार्द्धमासं च दश चैकयुतानि च।।
नव च प्राकृताद्यासु सोमजस्तूदितस्तथा।
अस्तं गत: सर्वकालं तिष्ठतीति विनिश्चय:।।

आचार्यस्यैतन्नाभिमतम्। यत: समाससंहितायामनेनैवोक्तम्—

प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्या: ।
गतयो लक्षणमासां नोदयदिवसै: स्फुटं भवति।।
स्पष्टा पराशरमते स्वाती च प्राकृता त्रिभं याम्यात्।
मिश्रा गति: शशिशेखरभुजगपितृदेवतासौम्यै:।।
संक्षिप्ता नाम गति: पुनर्वसु: फल्गुनीद्वयं पुष्य:।
तीक्ष्णा भद्रपदाद्यं नत्रक्षचतुष्टयं ज्येष्ठा।।
मूलत्र्यृक्षं योगा घोरा श्रवणत्रिभं च सत्वाष्ट्रम्।
पापाख्या तु विशाखा हस्तो मैत्रं च शशिसूनो:।। इति।।१२-१३।।

अथैतासां फलान्याह—

प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धय: क्षेमम् ।
संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम् ॥१४॥

प्राकृत गति में स्थित बुध आरोग्य, वृष्टि, धान्य की वृद्धि और क्षेम करता है। संक्षिप्ता गति में स्थित बुध मिश्रित फल (मध्यम फल = साधारण आरोग्य, साधारण वृष्टि, साधारण धान्य की वृद्धि और साधारण क्षेम) देता है और शेष (तीक्ष्णा, योगान्तिका, घोरा और पापा) गति में विपरीत फल (अनारोग, अवृष्टि, धान्य का नाश और अक्षेम) करता है।।१४।।

प्राकृतगत्यां स्थिते बुधे आरोग्यं नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, प्रकृष्टा अभिप्रभूता सस्यानां

वृद्धिरेतानि भवन्ति, तथा लोके क्षेमं च भवति। संक्षिप्तमिश्रयोर्द्वयोर्गत्योरेतदेव पूर्वोक्तं फलं मिश्रम्। आरोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धय: क्षेमं च मध्यं भवति। अन्यासु परिशेषासु तीक्ष्णयोगान्त-घोरपापाख्यासु विपरीतम्। अनारोग्यमनावृष्टि: सस्यानामवृद्धिरक्षेममिति। तथा च पराशर:—

'तासां प्रथमा गति: क्षेमारोग्याम्बुसस्यवती। इतरे द्वे व्यामिश्रफले। शेषाश्चतस्रो दुर्भिक्षा-क्षेमाय। विशेषतस्तु सौम्यादिषड्नक्षत्रचारी सुवृष्टये। श्रविष्ठावारुणयोश्च। दक्षिणतो नैर्ऋतेन्द्र-पूर्वासु भयकृत्। अश्विन्यां वणिग्विनाशाय। त्वाष्ट्रे शरत्सस्यानाम्। रोहिणीश्रवणाग्नेयब्रह्म-राशिष्वम्भोदविनाश:। हस्तोदितो मैत्रमनुचरन् पशुगोकोशलानभिहन्ति। विशाखामध्यगश्च सस्यमि'ति। तथा च गर्ग:—

क्षेमारोग्यसुभिक्षेषु लक्षणा प्राकृता गति:।
संक्षिप्ता च विमिश्रा च शुभाशुभफलोदये।।
तीक्ष्णा घोरा च पापा च तथा योगान्तिकापरा।
एताश्चतस्र: सौम्यस्य दुर्भिक्षाक्षेमलक्षणा:।। इति ।।१४।।

अधुना देवलमतेन बुधस्य गतिचतुष्टयमाह—

ऋज्व्यतिवक्रावक्रा विकला च मतेन देवलस्यैता: ।
पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ता: ।।१५।।

देवल के मत से बुध की गति ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा, विकला—ये चार प्रकार की होती हैं। इन गतियों की स्थिति का प्रमाण—उदय या अस्तदिन से ऋज्वी ३० दिन तक, अतिवक्रा २४ दिन तक, वक्रा १२ दिन तक और विकला ६ दिन तक रहती है।।१५।।

आकृत्येव या स्वाभाविकी गति: सा ऋज्वी अवक्रा। कुटिलगतित्वमाश्रित्य तन्मध्ये ग्रहस्य यदा भुक्त्यभावो भवति तदा अतिवक्रा गतिरुच्यते। ऋजुं मार्गं परित्यज्य निवृत्तिं करोति सा वक्रा। विकला वैकारिकी गतिर्या न्यूना। ऋज्वी चातिवक्रा च वक्रा च यास्ता ऋज्व्यतिवक्रावक्रा:। न केवलं ऋज्व्यतिवक्रावक्रा:। यावद्विकला। चकार: समुच्चये। देवलस्य मतेनैताश्चतस्रो गतय:। तथा च वृद्धगर्ग:—

ऋजुर्गच्छति चेद् मार्गमविकारं प्रदक्षिणम्।
ग्रहो यस्मात्तु तस्मात् सा ऋज्वी तु गतिरुच्यते।।
कुर्वन्ति वक्रं वक्रायां यस्मान्नित्यं महाग्रहा:।
अङ्गारकप्रभृतयस्तस्माद्वक्रेति सा गति:।।
वक्राद् भूयो महावक्रमनुकुर्वन्ति चेद् ग्रहा:।
अनेनैवानुमानेन सातिवक्रोच्यते गति:।।
विस्खलन्ति यथा चारान्मार्गादस्तमयोदयात्।
गतेस्तस्माद्धि विकला सा गति: परिकीर्तिता।।

तथा चाऽऽचार्येण विकला गति: प्रदर्शितैव—

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसम्प्रातो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम्।।

तथा च ऋषिपुत्रेणोक्तम्—

उन्मार्गस्थानमार्गस्था ग्रहा: कुर्वन्ति पार्थिवान्।
मार्गवन्तश्च मार्गस्थान् कुर्वन्ति वसुधाधिपान्।।
सत्पथप्रतिपन्नेषु पार्थिवेषु भवन्ति हि।
प्रजा: सत्पथमापन्ना विपर्यासे विपर्यय:।।

आसां प्रमाणमाह—**पञ्चचतुर्द्व्येकाहा इति**। उदयप्रवासदिवसैरित्यनुवर्तते। पञ्चचतुर्द्व्येकाहा: षडभ्यस्ता: षड्गणितास्त्रिंशदादीनि भवन्ति। एतानि ऋज्व्यादीनां प्रमाणम्। एतदुक्तं भवति—यदा बुधस्त्रिंश३०द्दिनानि उदितस्तिष्ठत्यस्तमितो वा तदा सा ऋज्वीनाम्नी बुधस्य गति:। एवमन्यासामपि ज्ञेयम्। तेन चत्वार: षडभ्यस्ता: चतुर्विंशति: २४। चतुर्विंशद्दिनान्यतिवक्राया: प्रमाणम्। द्वौ षडभ्यस्तौ द्वादश १२। द्वादशदिनानि वक्राया: प्रमाणम्। एकाह: षडभ्यस्त: षड्दिनानि ६ भवन्ति। एतानि विकलाया: प्रमाणम्।।१५।।

अथाऽऽसां फलान्याह—

ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्राऽर्घं गतिर्विनाशयति।
शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी ।।१६।।

ऋज्वी गति प्रजाओं का हित करने वाली, अतिवक्रा दुर्भिक्ष करने वाली, वक्रा शस्त्रभय देने वाली तथा विकला भय और रोग प्रदान करने वाली होती है।।१६।।

ऋज्वी गति: प्रजानां हिता शुभकरी। अतिवक्रा गतिरर्घं विनाशयति दुर्भिक्षं करोति। वक्रा शस्त्रभयदा शस्त्रभयं संग्रामभीतिं करोति। विकला भयं भीतिं रोगान् गदांश्च सञ्जनयत्युत्पादयति। तथा च देवल:—

दिनानि त्रिंशदुदितस्तिष्ठेद्यदि च सोमज:।
ऋज्वी गति: सा विज्ञेया प्रजानां हितकारिणी।।
चतुर्विंशद्दिनान्येवं यदि तिष्ठेच्च सोमज:।
अतिवक्रा गतिर्ज्ञेया दुर्भिक्षगतिलक्षणा।।
अहानि द्वादश यदा बुधस्तिष्ठेत्तथोद्गत:।
वक्रा: गति: सा विज्ञेया शस्त्रसम्भ्रमकारिणी।।
षड् दिनानि यदा तिष्ठेदुद्गत: सोमनन्दन:।
विकला सा गतिर्ज्ञेया भयरोगविवर्धिनी।।
एवमस्तमये सर्वं गतिजं सोमजस्य तु।
भावाभावाय लोकानां फलं वाच्यं शुभाशुभम्।। इति।।१६।।

अथोदयास्तमययोः शुभाशुभलक्षणमाह—

पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु ।
दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत्प्रोषितस्तेषु ॥१७॥

यदि पौष, आषाढ, श्रावण या माघ मास में बुध का उदय हो तो संसार में भय और अस्त हो तो शुभ फल प्रदान करता है।।१७।।

पौषाऽऽषाढश्रावणवैशाखेषु मासेषु माघसहितेषु इन्दुजो बुधो दृष्ट उदित इत्यर्थः। जगतो लोकस्य भयाय भीत्यै भवति। तेष्वेव पौषादिषु मासेषु प्रोषितोऽस्तं गतः शुभफलकृद् भवति जगतः शुभफलं करोति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

वैशाखपौषमाघेषु श्रावणाषाढयोरपि।
न दृश्यते बुधः प्रायो मासेष्वन्येषु दृश्यते।।
यदाऽदृश्येषु दृष्टः स्याद् दृश्येषु च न दृश्यते।
गवां रोगमनावृष्टिं दुर्भिक्षं चापि निर्दिशेत्।।

तथा च पराशरः—

वैशाखाषाढयोर्माघे पौषश्रावणयोस्तथा।
बुधो न दृश्यते जातु दृश्येत भयमादिशेत्।।
पौषे करोति मरकं माघे वातं तथा च सोमसुतः।
वैशाखे जनमरकमाषाढे श्रावणे च दुर्भिक्षम्।। इति।।१७।।

अन्येष्वप्याह—

कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः ।
शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च तदा विदधाति ॥१८॥

यदि कार्तिक या आश्विन मास में बुध का उदय हो तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग, जल और दुर्भिक्ष का भय करता है।।१८।।

कार्तिके अश्वयुजि मासे वा यदि शिशिरांशोश्चन्द्रस्य तनुभवः पुत्रो दृश्यते उद्गच्छतीत्यर्थः। भयशब्दः प्रत्येकमपि सम्बध्यते। तदा शस्त्रभयं संग्रामभयम्, चौरभयं तस्करभयम्, हुतभुग्भयमग्निभयम्, गदभयं रोगभयम्, तोयभयं जलभयम्, क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयमेतानि विदधाति करोति।।१८।।

अन्यदुदयास्तमयवशेनेन्दुजस्य फलमाह—

रुद्धानि सौम्येऽस्तगते पुराणि यान्युद्गते तान्युपयान्ति मोक्षम् ।
अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥१९॥

बुधास्त समय में जो पुर शत्रुओं से घिर जाता है, वह उसके उदय होने पर मुक्त हो जाता है। किसी पण्डित का मत है कि यदि पश्चिम तरफ बुध का उदय हो तो उस तरफ के पुरों में स्थित मनुष्यों को लाभ होता है।।१९।।

सौम्ये बुधेऽस्तगते सूर्यमण्डलस्थे यानि पुराणि नगराणि रुद्धानि शत्रुभिर्वेष्टितानि तानि तस्मिन्नेवोद्गते उदिते रविमण्डलान्निष्क्रान्ते मोक्षमुपयान्ति प्राप्नुवन्ति, ततो रोद्धा चलतीत्यर्थ:। **अन्ये त्विति** । अन्ये तु पुनस्तज्ज्ञा: पण्डिता नन्दिप्रभृतय: पश्चादुदिते बुधे पश्चिमायां दिश्युद्गते पुराणां लाभो लब्धिर्भवतीति वदन्ति कथयन्ति। लाभश्चाभियोक्तुर्भवति। अन्यथोदिते पुरपतेरेव। तथा च नन्दी—

पश्चार्द्धादुदिते सौम्ये लभते पुररोधक:।
पुन: प्रागुदिते तस्मिन् पुरमोक्षं विनिर्दिशेत्।। इति।।१९।।

अथास्य बिम्बलक्षणमाह—

हेमकान्तिरथवा शुकवर्ण: सस्यकेन मणिना सदृशो वा।
स्निग्धमूर्त्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्र: ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
बुधचाराध्याय: सप्तम: ॥७॥

सुवर्ण के समान कान्ति वाला, तोता पक्षी के समान वर्ण वाला, धान्य अथवा नील-मणि के सदृश और निर्मल तथा विस्तीर्ण बुध का विम्ब दिखाई दे तो संसार के हित के लिये होता है। इसके विपरीत वर्ण का दिखाई दे तो अशुभ करने वाला होता है।।२०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां बुधचाराध्याय: सप्तम: ॥७॥

हेमकान्ति: सुवर्णाभ:, अथवा शुकवर्ण: शुककान्तिर्नीलपीतवर्ण इत्यर्थ:। सस्यकेन मणिना नीलवर्णेन सदृशस्तुल्यो वा। तथा स्निग्धमूर्तिर्निर्मलदेह:। अलघुश्च विस्तीर्णबिम्ब:। एवंविध: शशिपुत्रो बुधो लोकानां हिताय श्रेयसे भवति। व्यत्यये उक्तविपर्यये न शुभकृन्न शुभकर:। तथा च पराशर:—'विमलजलरजतस्फटिकाभ: प्रशस्यते' इति।।२०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
बुधचारो नाम सप्तमोऽध्याय: ॥७॥

अथ बृहस्पतिचाराध्याय:

अथ बृहस्पतिचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव महाकार्तिकादीनां षष्ट्यब्दवर्षाणां संज्ञा-ज्ञापनार्थमाह—

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री।
तत्सञ्ज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥१॥

जिस नक्षत्र में रहते हुये बृहस्पति का उदय होता है, उस नक्षत्र के अनुसार द्वादश मास की तरह द्वादश वर्ष भी होते हैं।।१।।

येन नक्षत्रेण सहोदयं याति सुरमन्त्री गुरुर्यस्मिन्नक्षत्रे स्थित: सूर्यमण्डलादुदयं दर्शनं याति तन्नक्षत्रं गुरुसहितम्। अथवा येन नक्षत्रेण सहास्तं याति यस्मिन्नक्षत्रे स्थित: सूर्य-मण्डले प्रविशति तत्संज्ञं तन्नामधेयं वर्षं वक्तव्यं लोके वाच्यम्। तच्च मासक्रमेणैव मास-परिपाट्या। अनन्तरोक्तस्यार्थस्य नक्षत्रेण सहोदयमस्तं चेत्यस्य सन्देहव्युदासार्थमाह—**मासक्रमेणैव**। अन्यमासनक्षत्रेण सहास्तं गतोऽन्यमासनक्षत्रेण सहोदित:। यथा रोहिणी-स्थोऽस्तं गतो मृगशिर:स्थश्चोदयं गतस्तदानन्तराक्रान्तमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं बोद्धव्यमिति। ऋषिपुत्रादिभिरुदयनक्षत्रमाससंज्ञितक्रमेण वर्षं वक्तव्यमित्युक्तम्। तथा च ऋषिपुत्र आह—

यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे सह येन प्रवर्धते।
संवत्सर: स विज्ञेयस्तन्नक्षत्रविधायक:।।

तथा च काश्यप:—

संवत्सरे युगे चैव षष्ट्यब्देऽङ्गिरस: सुत:।
यन्नक्षत्रोदयं कुर्यात्तत्संज्ञं वत्सरं विदु:।।

प्रभवादीनामब्दानां प्रवृत्तिर्गुरोरुदयकालादित एव। यतो गुरुरत्राबाधितत्वेन स्थित:। तथा च ऋषिपुत्र आह—

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशरा:।
बृहस्पतेस्तु सौम्यान्तं सदा द्वादशवार्षिकम्।।
उदेति यस्मिन् मासे तु प्रवासोपगतोऽङ्गिरा:।
तस्मात् संवत्सरो मासो बार्हस्पत्योऽथ गम्यते।। इति।

तथा च गर्ग:—

प्रवासान्ते सहर्क्षेण तूदितो युगपच्चरेत्।
तस्मात् कालादृक्षपूर्वो गुरोरब्द: प्रवर्तते।।

केचित् कृत्तिकादियुक्ते गुरौ यच्चन्द्रयुक्तं नक्षत्रं चैत्रमासादितो भवति, ततो महाकार्तिकादीनि संवत्सराणि प्रभवादीनि च गणयन्ति। अपरे सौरमानेन गणयन्ति। तदयुक्तम्। यस्मात् सौरं मानमधिकं गुरुमानात्। यदुत्कृष्टं मानं तत्स्वल्पतरमानेनानुमीयमानं बहुतरं भवति। यथा—अष्टयवेनाङ्गुलेन ये पादोना एकाशीतिहस्तास्त एव सप्तयवेनानुमीयमाना हस्तशतं भवन्ति। एवं सौरं मानं गुरुमानाच्चतुर्युगेण न्यूनं भवति। आचार्या-ऽऽर्यभटेन च प्रदर्शितम्—

गुरुभगणा राशिगुणा आश्वयुजाद्या गुरोरब्दा:।
गुरुभगणानां संख्या जिनयमवेदर्तुहव्यभुक्तुल्या: ३६४२२४।।

राशिगुणा इति। भगणे द्वादश राशयो भवन्ति तैर्गुणा द्वादशगुणा इत्यर्थ:। द्वादशगुणा गुरोरब्दा:। वस्वष्टरसाम्बराद्रिगुणवेदतुल्या: ४३७०६८८। रविभगणा एव रव्यब्दा: खचतुष्टयरदवेतुल्या: ४३२००००। गुरोरब्दानां रव्यब्दानां चान्तरे कृते गुरोरब्दा: समधिका जाता वस्वष्टर्तुखेषव: ५०६८८। अत्र च त्रैराशिकम्—यदि चतुर्युगरव्यब्दानामनन्तर-प्रदर्शितगुरुरव्यब्दान्तरं लभ्यते तदैकस्य रव्यब्दस्य कियदिति। न्यास:—४३२००००। ५०६८८। १। फलं रविवर्षभोग इति। रव्यब्दानां कृतखगुणयमै२३०४रपवर्तितानां शरागाष्टेन्दवो लभ्यन्ते १८७५। तावद्भागेन रविगुरुवर्षान्तरस्य द्व्यधिका विंशतिर्भवति २२। सप्तत्यधिकेऽब्दशते एकादशभागै: पञ्चभिरधिके १७०/५/११ गते गुरुयुक्तनक्षत्र-माससंज्ञवर्षद्वयमधिकं भवति। तथा च गर्ग आह—

युगानि द्वादशाब्दानि तत्र तानि बृहस्पते:।
तत्र सावनसौराभ्यां सावनाब्दो निरुच्यते।।
एवमाश्वयुजं चैव चैत्रं चैव बृहस्पति:।
संवत्सरं नाशयते सप्तत्यब्दशतेऽधिके।।

एवं नष्टजातकेऽपि—

'लग्नत्रिकोणेषु गुरुस्त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात्' इत्यनेन गणितेन यान्यतीतवर्षाण्यागतानि तानि द्व्यधिकया विंशत्या २२ गुणयित्वा पादोनैरेकोनविंशतिशतै-१८७५र्विभज्य लब्धमनन्तरोक्तश्लोकानीतगुर्वतीतजन्मवर्षाणां विशोध्य शेषं स्फुटतरम-तीतजन्मवर्षपिण्डं भवतीति। अत्र गुणकारभागहारयोराचार्येण द्विगुणतोपनिबद्धा। यत आचार्यप्रणीतकालेऽतीतं षष्ट्यब्दादेर्वर्षद्वयं त्रयो मासाश्चतुर्दश दिनानि दिनशेषं खद्विदश १०२०। अक्षागाष्टरूपाणि १८७५ छेद:। तत्परिणामाय छेदं तेन वर्षद्वयेन सङ्गुण्य ततो मासत्रयं दिनीकृत्य सदिनं कृत्वा तेन छेदेन सङ्गुण्य शेषं युक्तं कृत्वा खर्त्वग्निभि-३६०र्विभज्यावाप्तं शतपञ्चकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं सार्द्धम् ५४४/१/२। तच्च वर्षघ्ने छेदे संयोज्यते। तस्य च सविकलत्वात् सवर्णनाय द्वाभ्यां गुणना क्रियते। स्वाध:स्थं रूपार्द्धं योज्यते। तत: सवर्णीकृतो भवति। एवं क्षेपस्य द्विगुणत्वाद् गुणकारभागहारा-वप्याचार्येण द्विगुणावुपनिबद्धाविति। तदर्थं चतुश्चत्वारिंशद् गुणकार:। शून्यशरागरामा ३७५० भागहार इति।।१।।

यदुक्तं वर्षं मासक्रमेणैव तत् कथमित्यत आह—

वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्।।२।।

कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रों में बृहस्पति के रहने से कार्तिक आदि बारह मास की तरह बारह वर्ष होते हैं। इनमें केवल पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष तीन-तीन नक्षत्र के होते हैं।।२।।

कार्तिकादीनि कार्तिकमासपूर्वाणि वर्षाणि भवन्ति माससमानि द्वादश। तानि चाग्नेयात् कृत्तिकात: प्रभृति भद्वयानुयोगीनि। भद्वयेनानुयोगो येषाम्। नक्षत्रद्वयानुयोगीनि क्रमश: क्रमेण परिपाट्या भवन्ति।

त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षमिति। पञ्चमं फाल्गुनं वर्षम्। त्रिभं नक्षत्रत्रयानुयोगि। अन्त्यं द्वादशं चाश्वयुजं त्रिभम्। तस्य समीपमुपान्त्यमित्येकादशं च त्रिभम्। एवं पञ्चम-मुपान्त्यमन्त्यं च वर्षत्रयं त्रिभम्। तद्यथा—कृत्तिकारोहिणीभ्यां कार्तिक:। मृगशिरआर्द्राभ्यां मार्गशीर्ष:। पुनर्वसुतिष्याभ्यां पौष:। आश्लेषामघाभ्यां माघ:। पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तै: फाल्गुन:। चित्रास्वातीभ्यां चैत्र:। विशाखानुराधाभ्यां वैशाख:। ज्येष्ठामूलाभ्यां ज्यैष्ठ:। पूर्वाषाढोत्तराषाढाभ्यामाषाढ:। श्रवणधनिष्ठाभ्यां श्रावण:। शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रप-दाभिर्भाद्रपद:। रेवत्यश्विनीभरणीभिश्चाश्वयुज इति। एतदुक्तं भवति—यदा कृत्तिकायां रोहिण्यामवस्थितो वा गुरुरुदयं याति तदा कार्तिकं वर्षं ज्ञेयम्। एवमन्येषामपि। अत्रान्ये एवं व्याचक्षते—यथोपान्त्यमन्त्यं चेत्यत्रान्त्यशब्द: समीपवाची। उपान्त्यस्यैकादशस्य समीपं दशमं श्रावणं न तु द्वादशमाश्वयुजमिति। यतस्तत्र गर्गादिवचनै: सह विरोधो भवति। तथा च गर्ग आह—

फल्गुनी चैव हस्तं च चरेद्यदि बृहस्पति:।
स फाल्गुनोऽब्द: क्रूर: स्याद्धान्यमुच्चाटतां व्रजेत्।।
श्रवणादीनि च त्रीणि चरेद्यदि बृहस्पति:।
श्रावणो नाम सोऽब्द: स्यात् क्षेमसौभिक्षमूर्तिमान्।।
पूर्वोत्तरे प्रोष्ठपदे चरेद्रेवतिमेव च।
प्रौष्ठपाद इति ज्ञेयो मध्यमो वत्सरो हि स:।।
आश्विनं चैव याम्यं च चरेद्यदि बृहस्पति:।
संवत्सर: सोऽश्वयुक् स्यात् सर्वभूतहितावह:।।

तथा च पराशर:—

'कृत्तिकारोहिणीषूदिते क्षुच्छस्त्राग्निना वृष्टिव्याधिप्राबल्यं गोशाकटिकपीडा च। सौम्यरौद्रयोरेतदेव गवादिवर्ज्जम्। तिष्यपुनर्वस्वोरुक्तविपर्यय:। पुष्यवन्मघाश्लेषासु राज्ञा-मुपतापश्च। फल्गुनीसावित्रेषु क्वचित्क्षेमसुभिक्षं नारीदौर्भाग्यं च। चित्रास्वात्योरुदितो नृप-

सस्यवर्षक्षेमारोग्यकर:। एवमेव मैत्रेन्द्राग्न्योरैन्द्रनैर्ऋतयोर्वनस्पतिसस्यवर्षश्रेष्ठनृपतिप्रधान-जनविनाशायेतरवृद्धये। अषाढयो: प्राक्परसस्यानां वृद्धये मध्यमक्षेमवर्षणमन्योन्यभेदश्च। श्रवणधनिष्ठावारुणेषु यज्ञनृपसस्यवर्षारोग्यवृद्धये। अजाहिर्बुध्न्यपौष्णेष्वाषाढवत्फलं प्राक्परसस्यविपर्यय:। प्रभूतजलसस्यर्द्धिजलक्षेमाण्यश्वयुग्भरण्योरिति।

एवमत्रान्त्यशब्देन समीपं दशमं वर्षं श्रावणमन्त्येनाऽऽश्वयुजमिति न शोभनम्। अत्र केचिदृषिपुत्रस्य मतभेदं मन्यन्ते—

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र स्यु: सौम्यत्वाष्ट्रवैष्णवा:।
द्विनक्षत्रा: स्मृता: शेषा: पूर्वपश्चिमयोगत:।। इति।

स्वमतेनैतद्विरुध्यते। यदि त्रिनक्षत्रो मार्गशीर्षस्तदा माघस्त्वेकनक्षत्रो भवति 'द्विनक्षत्रा: स्मृता: शेषा:' इत्यनेन सह विरुद्ध्यते। यस्मात् त्रयस्त्रिनक्षत्रा: शेषा द्विनक्षत्रा: स्मृता-स्त्वेकनक्षत्रो नास्त्येव। तस्मात् पुस्तकपाठेऽयं सिद्धान्तपाठ: कथ्यते।

त्रिनक्षत्रास्त्रयस्तत्र ज्ञेया भाग्याजवैष्णवा:।
द्विनक्षत्रा: स्मृता: शेषा: पूर्वपश्चिमयोगत:।। इति।

तथा च गर्ग:—

नववारा द्विनक्षत्रा गुरोर्द्वादशमासिका:।
शेषास्त्रयस्त्रिनक्षत्रा: पञ्चमैकादशान्तिमा:।।

तथा च काश्यप:—

कार्तिकादिसमा ज्ञेया द्विनक्षत्रविचारिणा।
त्रिभं भाद्रपदे ज्ञेयं फाल्गुने श्रावणे तथा।।

तस्मात् 'क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्' इत्यत्र पञ्चमैकादशदशस्त्रि-नक्षत्रांश्चेति शोभनम्।।२।।

अथैतेषां कार्तिकादीनां वर्षाणां फलानि विवक्षुरादौ कार्तिक आह—

शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च।
वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्तिके वर्षे ।।३।।

कार्तिक नामक वर्ष में गाड़ी से तथा अग्नि से आजीविका चलाने वाले (लोहार, सोनार आदि) और गौ—इन सबों को पीड़ित करता है। लोगों में व्याधि और लड़ाई होती है; किन्तु लाल और पीले पुष्पों की वृद्धि होती है।।३।।

कार्तिके वर्षे शकटोपजीविनां शकटेन गन्त्र्या य उपजीवन्ति तेषाम्। तथा अनलोप-जीविनां सुवर्णकारलोहकारायस्कारादीनाम्। गवां च पीडा भवति। तथा व्याधयो रोगा: शस्त्रकोपश्च युद्धानि भवन्ति। तथा रक्तपीतककुसुमानां द्रव्याणां रक्तं पीतं च पुष्पं येषां सम्भवति तेषां च वृद्धिर्भवति। तथा च गर्ग:—

कार्तिकः प्रचुरातङ्कः क्षुच्छस्त्राग्निभयप्रदः।
गोशाकटिकपीडां च करोत्येवमवृष्टिदः।। इति।।३।।

अथ मार्गशीर्ष आह—

सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः।
व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम्।।४।।

मार्गशीर्ष वर्ष में अनावृष्टि होती है। जंगली जानवर, चूहा, शलभ (टीढी) और पक्षियों से धान्य का नाश होता है। मनुष्यों में व्याधि का भय होता है तथा मित्रों से भी राजाओं को द्वेष होता है।।४।।

सौम्ये मार्गशीर्षेऽब्दे अनावृष्टिर्भवति। मृगा अरण्यपशवः, आखवो मूषकाः, शलभाः प्राणिनः कीटजातयः, अण्डजाः पक्षिणः—एतैः सस्यानां वधो नाशो भवति। तथा व्याधिभयं रोगभीतिः। भूपानां राज्ञां मित्रैरपि सुहृद्भिरपि वैरमप्रीतिर्जायत उत्पद्यते। किं पुनः शत्रुभिः सह न भवेदिति। तथा च गर्गः—

वर्षहन्ता व्याधिकरो मिथो भेदभयावहः।
शलभाद्याकुलः सौम्यो दुर्भिक्षभयकारकः।। इति।।४।।

अथ पौष आह—

शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः।
द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च।।५।।

पौष वर्ष में संसार का शुभ होता है, राजा लोग पारस्परिक द्वेष त्याग देते हैं, धान्य का मौल्य द्विगुणित या त्रिगुणित हो जाता है एवं पौष्टिक कर्म की सिद्धि होती है।।५।।

पौषोऽब्दो जगतो लोकस्य शुभकृच्छुभमिष्टं करोति। क्षितिपा राजानः परस्परमन्योन्यं निवृत्तवैरा विगतद्वेषा भवन्ति। धान्यस्यार्घो द्विगुणस्त्रिगुणो वा भवति। धान्यस्य यन्मूल्यमासीत्तेनैव द्विगुणं त्रिगुणं वा धान्यं लभ्यते। तथा पौष्टिककर्मणां पुष्टिदानां कार्याणां प्रसिद्धिर्भवति। अतिशयेन भवतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

प्रशान्तव्याधिदुर्भिक्षदुर्वर्षाशनितस्करः।
सर्वलक्षणसम्पन्नः पौषः संवत्सरोत्तमः।। इति।।५।।

अथ माघ आह—

पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्।
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च।।६।।

माघ नामक वर्ष में पितरों की पूजा की वृद्धि, सभी प्राणियों को तुष्टि, आरोग्य, सुन्दर वृष्टि, धान्यों के मौल्य में समता और मित्रों का लाभ होता है।।६।।

माघे पितॄणां पूजापरिवृद्धिर्भवति। अत्यर्थं जनाः पितृपूजाकर्मणि रता भवन्तीत्यर्थः।

मघाया: पितृदैवतत्वात् सर्वभूतानां च हार्दिश्चित्ततुष्टिर्भवति। तथा आरोग्यं नीरोगता, वृष्टिर्वर्षणम्, धान्यस्यार्घसम्पत्समर्घता, एते भवन्ति। तथा मित्रलाभश्च भवति। यत्किञ्चिन्मित्रत्वमापद्यत इत्यर्थ:। तथा च गर्ग:—

क्षेमारोग्यं सुभिक्षं च वर्षणं शिवमेव च।
पितृपूजा: प्रवर्तन्ते माघे राज्ञां च सन्धय:।। इति।।६।।

अथ फाल्गुन आह—

फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि ।
दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्रा: ।।७।।

फाल्गुन वर्ष में किसी-किसी स्थान में मंगलकार्य और धान्य होता है; किन्तु सर्वत्र मंगलकार्य और धान्य की उत्पत्ति नहीं होती तथा स्त्रियों की अभाग्यता, चोरों की प्रबलता और राजाओं की उग्रता बढ़ती है।।७।।

फाल्गुनवर्षे क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि विन्द्याज्जानीयात्। क्वचित्क्षेमं क्वचिद् वृष्टि: क्वचिच्च सस्यं भवति न सर्वत्र। तथा प्रमदानां स्त्रीणां दौर्भाग्यं दुर्भाग्यत्वं तन्नृणामवाल्लभ्यं भवति। प्रबलाश्चौरास्तस्करा बहवो भवन्ति। तथा नृपाश्च राजान उग्रा: क्रूरा भवन्ति। तथा च गर्ग:—

नारीदौर्भाग्यकृच्चौर: फाल्गुन: सस्यवर्षद:।
क्वचित् क्षेमं सुभिक्षं च क्वचिदक्षेमकारक:।। इति।।७।।

अथ चैत्र आह—

चैत्रे मन्दा वृष्टि: प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदव: ।
वृद्धिश्च कोशधान्यस्य भवति पीडा च रूपवताम् ।।८।।

चैत्र वर्ष में थोड़ी वृष्टि, दुर्लभ अन्न, लोगों में कुशलता, राजाओं में कोमलता, एकत्रित किये हुये धान्यों की वृद्धि और सुन्दर मनुष्यों को पीड़ा होती है।।८।।

चैत्रेऽब्दे वृष्टिर्मन्दा अल्पा भवति। प्रियमन्नं सुदुर्लभमन्नं भवति। लोके क्षेमं लब्धपालनं तथा अवनिपा राजानो मृदवोऽक्रूरा भवन्ति। कोशधान्यस्य शिम्बिधान्यस्य मुद्गादेर्वृद्धिर्बाहुल्यम्। तथा रूपवतां सुरूपाणां पीडा भवति। चशब्द: समुच्चये। तथा च गर्ग:—

मृदुप्रचारा राजान: प्रियमन्नं जनस्य च।
क्षेमारोग्यं च मृदुता चैत्रवर्षस्तथा मृदु:।। इति।।८।।

अथ वैशाख आह—

वैशाखे धर्मरता विगतभया: प्रमुदिता: प्रजा: सनृपा: ।
यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्ति: सर्वसस्यानाम् ।।९।।

वैशाख वर्ष में राजाओं के साथ-साथ समस्त प्रजागण भी धर्मनिरत, भयरहित, आनन्दयुक्त और यज्ञकर्म में प्रवृत्त होते हैं तथा सभी धान्यों की वृद्धि होती है।।९।।

वैशाखेऽब्दे सनृपा: प्रजा नृपेण राज्ञा सहिता: सर्वजनपदा धर्मरता धर्मसक्ता विगत-भया भयरहिता: प्रमुदिता: प्रहृष्टाश्च भवन्ति। तथा यज्ञक्रियाणां यागकर्मणां प्रवृत्ति: प्रवर्तनं भवति। सस्यानां सर्वेषां च निष्पत्तिरशेषाणां सस्यानां समृद्धिर्भवति। तथा च गर्ग:—

ईतय: प्रथमं यान्ति सन्धिं कुर्वन्ति पार्थिवा:।
वैशाखे तु सस्यजन्या वृष्टय: सम्भवन्ति हि।। इति।।९।।

अथ ज्येष्ठ आह—

ज्यैष्ठे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः ।
पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कङ्गुं शमीजातिम् ।।१०।।

ज्येष्ठ वर्ष में अच्छे कुल में उत्पन्न, अति धनी, बहुतों में प्रधान, राजा लोग, धर्म को जानने वाले और कंगुनी तथा शमी के अतिरिक्त सभी धान्य पीड़ित होते हैं।।१०।।

ज्यैष्ठेऽब्दे जातिकुलधनश्रेणीश्रेष्ठा जातीनां ये श्रेष्ठा: प्रधाना:, कुलश्रेष्ठा: सत्कुलजा:, धनश्रेष्ठा अतिधनिन:, श्रेणीश्रेष्ठा बहूनां समानजातीयानां संज्ञा श्रेणी, तत: श्रेष्ठा: प्रधाना:, नृपा राजानस्ते च सधर्मज्ञा धर्मज्ञैर्जनै: सहिता:, ते सर्व एव पीड्यन्ते। तथा धान्यानि च पीड्यन्ते सर्वाण्येव। किन्तु हित्वा कङ्गुशमीजातिम्। कङ्गु: प्रियङ्गु:, शमीजा-तिस्तिलादि:, एतद्धित्वा वर्जयित्वा। केचित् सबीजानीति पठन्ति। तथा च गर्ग:—

वृक्षगुल्मलतासस्यक्षेमवर्षविनाशन: ।
क्रूराज्ञादीप्तिजननो ज्यैष्ठो ज्येष्ठनृपान्तकृत्।। इति।।१०।।

अथाऽऽषाढ आह—

आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिदवृष्टिरन्यत्र ।
योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ।।११।।

आषाढ वर्ष में कहीं-कहीं पर धान्य और कहीं-कहीं पर वर्षा का अभाव होता है, योगक्षेम (अलब्ध का लाभ, लब्ध का पालन) मध्यम रूप से होता है तथा राजा लोग काम में व्यग्र रहते हैं।।११।।

आषाढेऽब्दे क्वचित्क्वचित्सस्यानि जायन्ते उत्पद्यन्ते च सर्वत्र। अन्यत्रान्यत्र देशेषु अवृष्टिरवर्षणं भवति। तथा लोके योगक्षेमं मध्यमं भवति। अलब्धलाभो योग:, लब्धपालनं क्षेमम्, तच्च मध्यमं भवति। न चात्युत्कृष्टं न चातिनिकृष्टमित्यर्थ:। भूपाला राजानो व्यग्रा: सोद्यमा भवन्ति। तथा च गर्ग:—

दुर्भिक्षाक्षेमजननश्चाषाढोऽन्योन्यभेदकृत्।
भूपालयुद्धजननो मध्यमक्षेमकारक:।। इति।।११।।

अथ श्रावण आह—

श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति ।
क्षुद्रा ये पाखण्डाः पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः ।।१२।।

श्रावण नामक वर्ष में सभी धान्य अच्छी तरह पक जाते हैं तथा क्षुद्र (क्रूर), पाखण्डी गण (वेदनिन्दक) और उनके भक्त लोग पीड़ित होते हैं।।१२।।

श्रावणवर्षे क्षेमं भवति। तथा सर्वाणि सस्यानि सम्यग् निश्चितं पाकं निष्पत्तिमुपयान्ति। तथा ये क्षुद्राः क्रूरा ये च पाखण्डा वेदबाह्यास्ते सर्वे पीड्यन्ते। ये च तद्भक्तास्तेषां क्षुद्राणां पाखण्डानां भक्ताः सेवकास्ते पीड्यन्ते बाध्यन्ते। तथा च गर्गः—

श्रावणः सस्यसम्पन्नः क्षेमारोग्यकरः शिवः।
धान्यं समर्घतां याति सम्यग् वर्षति वासवः।
क्षुद्रान् पाखण्डिनः सर्वान् तद्भक्तांश्चोपतापयेत्।। इति।।१२।।

अथ भाद्रपद आह—

भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च।
न भवत्यपरं सस्यं क्वचित्सुभिक्षं क्वचिच्च भयम्।।१३।।

भाद्रपद वर्ष में वल्लीज (मूँग आदि अन्न) और पूर्व में बोये हुए धान्य पक जाते हैं; परन्तु इस वर्ष के आरम्भ के बाद के बोये हुए धान्य नहीं होते हैं तथा संसार में कहीं-कहीं पर सुभिक्ष और कहीं-कहीं पर भय होता है।।१३।।

भाद्रपदेऽब्दे वल्लीजं मुद्गादिकं निष्पत्तिं परिपाकं याति प्राप्नोति। तथा च पूर्वं प्रथममुप्तं सस्यं निष्पत्तिं याति। अपरं पश्चादुप्तं सस्यं न भवति। क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च भयं भीतिर्भवति। तथा च गर्गः—

प्रौष्ठपात् सस्यजननो नाशयत्यपरं च यत्।
करोति च क्वचित् क्षेमं क्वचिदक्षेमकारकः।। इति।।१३।।

अथाऽऽश्वयुज आह—

आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्।
प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम्।।१४।।

आश्वयुज (आश्विन) वर्ष में बहुत वृष्टि, सर्वथा सानन्द प्रजा, सब प्राणियों में प्राणचय (अत्यधिक बल की वृद्धि) और अन्न की अधिकता होती है।।१४।।

आश्वयुजेऽब्दे वर्षेऽजस्रं सततं जलं पतति सततं वर्षतीत्यर्थः। तथा प्रजाः सर्वाः प्रमुदिताः प्रहृष्टाः। क्षेमं च भवति। तथा प्राणभृतां शरीरिणां सर्वेषामवशेषाणां प्राणचयो बलोपचयो भवति। तथाऽन्नबाहुल्यमतिसुभिक्षं च। तथा च वृद्धगर्गः—

पर्याप्तसस्यान्नजलक्षेमश्चाश्वयुजः शिवः।
सम्प्रवृत्तोत्सवः श्रीमान् सर्वकामसुखावहः।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

गुरुरुदयति नक्षत्रे यस्मिंस्तत्संज्ञितानि वर्षाणि।
द्विभयोगीन्याग्नेयात्त्रिभमन्त्यं पञ्चममुपान्त्यम्।।

अनेन वाक्येनाऽऽचार्यस्य प्रथमैव व्याख्या साध्वी। उपान्त्यमेकादशमन्त्यं च द्वादशमिति। तथा च—

फाल्गुनचैत्राषाढा मध्याः सौम्योऽधमस्तथा ज्यैष्ठः।
वैशाखपौषमाघाः शुभफलदाः श्रावणाद्याश्च।। इति।।१४।।

अथ नक्षत्रेषु चरतो गुरोर्विशेषफलमाह—

उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानाम्।
याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी ।।१५।।

नक्षत्रों के उत्तर में चलता हुआ बृहस्पति संसार में सुभिक्ष और क्षेम करता है, दक्षिण में विपरीत फल (दुर्भिक्ष और अक्षेम) प्रदान करता है तथा नक्षत्रों के मध्य में चलता हुआ बृहस्पति मध्यम फल प्रदान करता है।।१५।।

वाक्पतिर्बृहस्पतिर्भानां नक्षत्राणामुदगुत्तरेण चरन् गच्छन्नारोग्यसुभिक्षक्षेमकरः आरोग्यं सुभिक्षं क्षेमं च करोति। याम्ये दक्षिणेन चरंस्तद्विपरीतः अनारोग्यमसुभिक्षमक्षेमं च करोति। मध्येन तु चरन् मध्यभागेन नक्षत्रस्य गच्छन् मध्यफलदायी भवति। मध्यमं फलं ददाति न शुभं नाशुभमिति।।१५।।

अन्यदप्याह—

विचरन् भद्वयमिष्टस्तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफलः।
सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं यदि कदाचित् ।।१६।।

यदि बृहस्पति एक वर्ष के अन्दर दो नक्षत्रों में विचरण करे तो शुभ फल, ढाई नक्षत्रों में विचरण करे तो मध्यम फल और यदि कदाचित् ढाई से भी अधिक नक्षत्रों में विचरण करे तो धान्यों का नाश करने वाला होता है।।१६।।

वत्सरेण वर्षेण भद्वयं नक्षत्रद्वयं विचरन् गच्छन् गुरुरिष्टः शोभनः। एतदुक्तं भवति—बृहस्पतिर्यदा वर्षेण नक्षत्रद्वयं भुङ्क्ते तदा स प्रजानां शुभकरो भवति। **तत्सार्द्धं वत्सरेण मध्यफल इति।** तन्नक्षत्रद्वयं सार्द्धं यदि वत्सरेण विचरति तदा मध्यफलो मध्यमं फलं करोति। न शुभं नाप्यशुभमित्यर्थः। **सस्यानां विध्वंसीति।** अधिकं भद्वयात् सार्द्धाद्यदि कदाचिद्विचरेद्वर्षेण तदा सस्यानां विध्वंसी भवति। सस्यानि विनाशयतीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'मध्यदक्षिणोत्तरमार्गप्रविचारी मध्यदारुणोत्तमप्रजाभावकरः। श्वेतरक्तपीतकृष्णवर्णो ब्राह्मणादिवर्णजयक्षय। सपादमृक्षद्वयमब्देन प्रविचरन् सस्यसम्पत् करोति। विपर्ययाद्विपरीतः।'

अथ गुरोर्वर्णलक्षणमाह—

अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणागमः श्यामे।
हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ।।१७।।

धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे।
विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः ॥१८॥

यदि बृहस्पति अग्निवर्ण का हो तो अग्नि का भय, पीतवर्ण का हो तो व्याधि, श्यामवर्ण का हो तो युद्ध, हरा हो तो चोरों से पीड़ा, लालवर्ण का हो तो शस्त्र का भय और धूमवर्ण का हो तो अनावृष्टि करता है। यदि बृहस्पति दिन में दिखाई दे तो राजा का नाश और ताराओं से सुन्दर रात्रि में बृहस्पति का विपुल निर्मल विम्ब दिखाई दे तो प्रजाओं को सर्वथा स्वस्थ करता है।।१८।।

त्रिदशगुरौ देवाचार्ये बृहस्पतावनलवर्णेऽग्निप्रभेऽनलभयमग्निभीतिर्भवति। पीते पीतवर्णे व्याधिः पीडा। श्यामे श्यामवर्णे रणागमः संग्रामः। हरिते हरितवर्णे शुकाभे तस्करेभ्यश्चौरेभ्यः पीडोपतापो लोकानां भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रभयम्।

धूमाभे धूमप्रभे अनावृष्टिरवर्षणम्। दिवा दिवसभागे दृष्टे नृपवधो राज्ञो मृत्युर्भवति। तथा च पराशरः—

कदाचिद्यत्र दृश्येत दिवा देवपुरोहितः।
राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति।।

विपुले महाबिम्बे। अमले निर्मले। सुतारे शोभनतारे। रात्रौ निशि। दृष्टे प्रजा लोकाः स्वस्था नीरोगा भवन्ति। केचिन्नृपाः स्वस्था इति पठन्ति।।१८।।

अथ संवत्सरपुरुषमाह—

रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढाद्वयं
सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम्।
देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं
पुष्पे मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥१९॥

संवत्सरपुरुष के रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्र शरीर, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नाभि, आश्लेषा हृदय और मघा पुष्प हैं। यदि संवत्सरपुरुष के ये शरीर आदि अङ्ग शुद्ध (पापग्रह से रहित) हों तो शुभ फल देते हैं। यदि देह (रोहिणी और कृत्तिका) में पाप ग्रह हो तो अग्नि और वायु का भय, नाभि (पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा) में पाप ग्रह हो तो दुर्भिक्ष का भय, पुष्प (मघा) में पाप ग्रह हो तो मूल (मूल पदार्थ) और फल (आम्र आदि) का क्षय तथा हृदय (आश्लेषा नक्षत्र) में पाप ग्रह हो तो धान्यों का नाश होता है।।१९।।

रोहिण्योऽनलभं कृत्तिकाः। एते द्वे नक्षत्रे संवत्सरतनुः संवत्सरपुरुषस्य शरीरम्। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढे तस्यैव नाभिः। सार्पमाश्लेषा हृत् हृदयम्। पितृदैवतं मघा कुसुमं पुष्पमिति। प्रयोजनमप्याह—**शुद्धैः शुभं तैः फलमिति**। तैस्तन्वादिभिः शुद्धैः

पापग्रहविरहितैर्लोके शुभं फलं भवति। **देहे क्रूरनिपीडित इति।** क्रूरग्रहा रविभौभसौराः। देहे तनौ कृत्तिकारोहिण्योरित्यर्थः। क्रूरनिपीडिते क्रूरहते तयोर्यदि पापाः स्थितास्तदा अग्न्यनिलजं भयं भवति। अग्निर्हुतवहः, अनिलो वायुः, अनयोर्जातम्। तथा नाभ्यां पीडितायामषाढाद्वय इत्यर्थः। क्षुत्कृतं दुर्भिक्षभयं भवति। पुष्पे मघायां पीडितायां मूलफलक्षयः, मूलानां मूलद्रव्याणां फलानां चाम्रादीनां क्षयो विनाशो भवति। अथशब्दः स्वार्थे। हृदये आश्लेषायां पीडितायां ध्रुवमवश्यं सस्यस्य धान्यस्य नाशः क्षयो भवति। तथा च काश्यपः—

कृत्तिका रोहिणी चोभे संवत्सरतनुः स्मृता।
आषाढाद्वितयं नाभी सार्पं हृत्कुसुमं मघा।।
क्रूरग्रहहते देहे दुर्भिक्षानलमारुताः।
क्षुद्भयं तु भवेन्नाभ्यां पुष्पे मूलफलक्षयः।।
हृदये सस्यहानिः स्यात् सौम्यैः पुष्टिः प्रकीर्तिता।। इति।।१९।।

अधुना षष्ट्यब्दानयनमाह—

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला-
द्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः।
नवाष्टपञ्चाष्ट८५८९युतानि कृत्वा
विभाजयेच्छून्यशरागरामैः३७५० ॥२०॥

लब्धेन युक्तं शकभूपकालं
संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य।
युगानि नारायणपूर्वकाणि
लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥२१॥

एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेण।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ॥२२॥

शकादित्य (शालिवाहन) नृप के समय से जितने वर्ष बीते हों, उनको ग्यारह से गुणा कर गुणनफल को फिर चार से गुणा करे। उस गुणनफल में ८५८९ जोड़कर ३७५० से भाग देने पर जो लब्धि मिले, उसमें शकाब्द जोड़ कर ६० का भाग देने पर जो शेष बचे, उसमें पाँच का भाग दे। लब्ध गत युग और शेष वर्तमान युग के वर्ष आदि होंगे एवं उक्त वर्षों की संख्या को १२ से भाग दे और भागफल को नवगुणित अङ्क में मिलाकर ४ का भाग करने पर जो लब्धि हो, उतनी संख्या के नक्षत्रों में बृहस्पति की मान्यता समझे; परन्तु गणना के समय २४ वें नक्षत्र से गणना करनी चाहिए अर्थात् १ लब्धि हो तो २५वाँ (पूर्वाभाद्रपद) और २ लब्धि हो तो २६वाँ (उत्तराभाद्रपदा) नक्षत्र समझना चाहिये।

उदाहरण—जैसे शाके १८७६ में संवत्सर का आनयन करना है तो १८७६ को ११

से गुणा कर गुणनफल २०६३६ को फिर ४ से गुणा किया तो ८२५४४ हुआ; इसमें ३७५० का भाग देने से लब्ध वर्ष २४, शेष वर्ष ११३३ को १२ से गुणा कर गुणनफल १३५९६ में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध मास ३, मासशेष २३४६ को ३० से गुणा कर गुणनफल ७०३८० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध दिन १८, दिनशेष २८८० को ६० से गुणा कर गुणनफल १७२८०० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध घटी ४६, घटीशेष ३०० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००० में भाजक ३७५० का भाग देने से लब्ध पला ४, पलाशेष ३००० 'अर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्' इस नियम से लब्ध पला ५ हुआ। अत: वर्ष आदि लब्धि = (२४। ३। १८। ४६। ५) इतनी हुई, इसमें इष्ट शकाब्द १८७६ जोड़ा तो १९००। ३। १८। ४६। ५ हुआ। इसके वर्षस्थान १९०० में ६० का भाग देने से लब्धि ३१ और शेष षष्ट्यब्द प्रमाण—४०। ३। १८। ४६। ५ रहा, अत: ४०वें संवत्सर के अग्रिमस्थ ४१वाँ संवत्सर 'प्लवङ्ग' नाम का इष्ट शकाब्द १८७६ में सिद्ध हुआ। इस ४०। ३। १८। ४६। ५ में ५ का भाग देने से लब्धि ८ और शेष ०। ३। १८। ४६। ५ रहा। अत: नवम युग (सोम) में वर्ष आदि ०। ३। १८। ४६। ५ बीता है।।२०-२२।।

शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिता: स कालो लोके शक इति प्रसिद्ध:। तस्माच्छकेन्द्रकालात् शकनृपवधादारभ्याभीष्टवर्षं यावद् यानि वर्षाणि गतान्यतीतानि तानि संस्थाप्य हतानि रुद्रैरेकादशभिर्गुणयेत्, तत: पुनरपि चतुर्भिर्गुणयेत्। एवं चतुश्चत्वारिंशता गुणितानि भवन्तीत्यर्थ:। ततो नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कार्याणि। अष्टभि: सहस्रै: पञ्चभि: शतैरेकोननवत्यधिकैरित्यर्थ: ८५८९। एवं कृत्वा तत: शून्यशरागरामैर्विभाजयेत्। त्रिभि: सहस्रै: सप्तभि: शतै: सार्द्धैरित्यर्थ: ३७५०। एतैर्भागमपहरेत्, लब्धं फलं वर्षाणि। तान्येव बृहस्पतिराशय:। शेषं त्रिंशता सङ्गुण्य तेनैव छेदेन विभज्यावाप्तं भागा राशीनामध: स्थाप्या:। भागशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं लिप्ता भागानामध: स्थाप्या:। भागशेषं षष्ट्या सङ्गुण्य तेनैव छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं विलिप्ता लिप्तानामध: स्थाप्या:।

लब्धेन युक्तमिति। ततस्तेन लब्धेन राश्यादिना फलेन शकभूपकालं शकनृपसमयं युक्तं कार्यम्। वर्षेषु राशय: क्षेप्या: शेषमध: स्थापयेत्। यतस्तानि वर्षरूपाण्येव गुरो राशय: सम्पन्ना:। तत: संशोध्य षष्ट्या। वर्षस्थाने योऽसौ राशिस्तत: षष्ट्या भागमपहरेत्। लब्धमतीतषष्ट्यब्दा:। शेषं वर्तमानषष्ट्यब्दस्य गतवर्षाणि। यतो गुरो राशिभोग एव वर्षम्। ततस्तान्यब्दान्यत्र विषयै: पञ्चभिर्विभज्य लब्धं वर्तमानषष्ट्यब्दस्यातीतयुगानि। एतानि नारायणपूर्वकाणि विष्णुप्रभृतीनि भवन्ति। पञ्चभिर्भागे हृते यच्छेषं तदेव वर्तमानयुगस्याब्दा: सविकला गता:। शेषं पञ्चभ्य: संशोध्य यदवशिष्यते तावन्ति वर्षाणि तत्र भवन्ति।

अथ बृहस्पतिनक्षत्रज्ञानं तद्वशेन वर्षज्ञानमप्याह—**एकैकमिति**। वर्तमानषष्ट्यब्दस्य ये गता: सविकला अब्दा अनष्टा: पृथक् स्थापिता:। तान् सविकलान् पृथगेकत्र नवभिर्गुणयेत्, ततो द्वितीयस्थानस्थेभ्यो वर्तमानषष्ट्यब्दगतवर्षेभ्यो द्वादशभागं वर्षादिकं गृहीत्वा नवगणि

ष्वब्देषु योजयेत्। यत उक्तम्—**एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग् द्वादशकं क्रमेणेति।** द्वादशभिर्द्वादशभिर्वर्षैरेकैकं योजयेत्। वर्षस्थाने द्वादशभिर्भागमपहृत्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः। शेषं त्रिंशता षष्ट्या षष्ट्या च सङ्गुण्य विकलासहितं कृत्वा प्राग्वद् भागाद्यानीय तत्र राशीनामधः स्थापयित्वा द्वादशभागं नवाहतेष्वब्देषु योजयेद्यथास्थानमेव। ततः स्वच्छेदैर्भागमपहृत्यावाप्तं यथास्थानमुपर्युपरि योजयेत्। ततस्तत्र चतुर्भिर्भागमपहृत्य यल्लब्धं तान्युडूनि नक्षत्राणि वसुदेवताद्यानि धनिष्ठादीनि भवन्ति। शेषं स्थाप्यम्। लब्धस्य सप्तविंशत्यावशेषाङ्कसमं धनिष्ठादिकं नक्षत्रं वक्तव्यम्। तत्र चतुर्भिर्भागे हृते यच्छेषं स्थापितं तदंशकपूर्वमब्दं भवति। लब्धसंख्यनक्षत्रात् परस्य नक्षत्रस्य तावद्भिरंशैश्चतुर्भागैर्गुरुणा भुक्तैर्वर्तमानात् पूर्वस्य कार्तिकादेः प्रवृत्तिरिति। यदुक्तम्—वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद् भद्वयानुयोगीनीत्यादि। एतन्मध्यगत्या ज्ञेयम्, न स्फुटगत्येति। अत्राऽऽनयनमाचार्येण स्फुटतरं पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तथा च—

> रविशशिनोः पञ्चयुगं वर्षाणि पितामहोपदिष्टानि।
> अधिमासास्त्रिंशद्भिर्मासैरवमो द्विषष्ट्याह्नाम्।।
> द्यूनं शकेन्द्रकालं पञ्चभिरुद्धृत्य शेषवर्षाणाम्।
> द्युगणं माघसिताद्यं कुर्याद्युगभानि वह्न्युदयात्।।
> सैकत्रिंशे द्युगणे तिथिर्भमार्कं नवाहतेऽक्ष्यर्कैः।
> दिग्रसभागैः सप्तभिरूनं शशिभं धनिष्ठाद्यम्।। इति।

गतानि वर्षाणीत्यत्रोत्पत्तिः प्रदर्श्यते— पूर्वमेव रव्यब्दानां गुरुवर्षाणां चान्तरे कृते त्रैराशिकेन प्रतिवर्षमन्तरं प्रदर्शितम्। तत्र फलभागाद्भाज्यभाजकराशी द्वावप्यपवर्तितौ। तत्र भाज्यराशिर्जातो द्वाविंशतिः २२। भाजकराशिः शरागाष्टेन्दवः १८७५। तत्र च शकेन्द्रकालाद् गतवर्षाणि सौराणि यातानि यानि तानि च बार्हस्पत्यानि क्रियन्ते। कथम्? उच्यते— पृथक्स्थानि द्वाविंशत्या सङ्गुण्य शरागाष्टेन्दुभिर्विभज्य लब्धं वर्षाणि त एव राशयः कल्प्याः। शेषात्त्रिंशदादिगुणकारगुणितात् प्राग्वद्विभज्याऽऽप्तमंशादिकं वर्षाणामधः स्थापयेत्। तच्च वर्षादिफलं तत्रैव शककाले संयोज्य बार्हस्पत्येन मानेन तानि वर्षाणि भवन्ति। एवं स्थिते सति तत्र शककालात् प्रागगतस्य षष्ट्यब्दस्य छेदपरिणतं शेषमस्ति वेदनवयमाब्धयः सार्द्धाः ४२९४/१/२। एतान्यत्र योज्यानि भवन्तीति तदर्थं सवर्णीक्रियते। स्वच्छेदेन द्विकेन गुणयित्वा रूपं च संयोज्य जातो राशिर्नवाष्टपञ्चाष्टाख्यः ८५८९। एवं क्षेपसवर्णिते सति गुणकभाजकावपि सवर्णीकृतौ यतः तेनैवात्र गुणकारश्चतुश्चत्वारिंश४४दङ्को जातः। भागहारः शून्यशरागरामाख्यः ३७५०। लब्धेन फलेन शककालं संयुतं कृत्वा बार्हस्पत्येन मानेनाब्दगणो भवति। तस्य षष्ट्या भागे हृते अतीताः षष्ट्यब्दा भवन्ति। शेषस्य पञ्चभिर्भागे हृते युगानि लभ्यन्ते। यतः पञ्चवार्षिकं युगम्। ततो नवाहता अब्दा नक्षत्रपदा भवन्ति, राश्यात्मकत्वात्। अत्र द्वादशकक्रमेणैकैको नक्षत्रपादो दीयते पृथक्स्थादब्दसमूहात्। यतस्तत्र वर्षद्वादशके नक्षत्रे पादमन्तरं भवति। चतुर्भिर्भागे हृते

नक्षत्राणि सविकलानि भवन्ति। तेषां च धनिष्ठादिका गणना। यतो धनिष्ठास्थे गुरौ षष्ट्यब्दप्रवृत्तिः। यतो वक्ष्यति 'आद्यं धनिष्ठांशम्' इत्यादि। अर्थादिवाशेषं भोग्यनक्षत्रपादा भवन्तीति।।२०-२२।।

अधुना द्वादशानां षष्ट्यब्दावस्थितानां युगानां नामान्याह—

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥२३॥

विष्णु, सुरेज्य (बृहस्पति), बलभित् (इन्द्र), हुताश (अग्नि), त्वष्टा (प्रजापति), उत्तरप्रोष्ठपदाधिप (अहिर्बुध्न्य), पिता, विश्वेदेव, सोम, शक्रानल (इन्द्राग्नि), अश्वि (अश्विनीकुमार), भग (सूर्य)—ये बारह पूर्वकथित बारह युगों के स्वामी हैं।।२३।।

विष्णुर्नारायणः प्रथमयुगम्। सुरेज्यो बृहस्पतिर्द्वितीययुगम्। बलभिदिन्द्रस्तृतीयम्। हुताशोऽग्निश्चतुर्थम्। त्वष्टा नाम प्रजापतिः पञ्चमम्। उत्तरप्रोष्ठपदाधिपोऽहिर्बुध्न्यः षष्ठम्। पिता सप्तमम्। विश्वोऽष्टमम्। सोमो नवमम्। शक्रानल इन्द्राग्निर्दशमम्। अश्विसंज्ञमेकादशम्। भगः सूर्यो द्वादशम्। एते देवविशेषा द्वादश क्रमादानुपूर्व्येण युगेशा युगस्वामिनः प्रदिष्टा उक्ताः। तथा च समाससंहितायाम्—

विष्णुगुरुशक्रहुतभुक्त्वष्टाहिर्बुध्न्यपित्र्यविश्वानि ।
सौम्यमथेन्द्राग्न्याख्यं त्वाश्विनमपि भाग्यसंज्ञं च।। इति।।२३।।

अत्र युगे युगे पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तेषां नाम दैवतं च प्रत्येकस्याह—

संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली।
प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥२४॥

संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर—ये प्रत्येक युग में पाँच-पाँच संवत्सर होते हैं। इनके स्वामी क्रम से अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और शिव हैं। जैसे संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का स्वामी सूर्य, इदावत्सर का स्वामी चन्द्र, अनुवत्सर का स्वामी प्रजापति और इद्वत्सर का स्वामी शिव है।।२४।।

संवत्सरपरिवत्सरेदाद्यनुवत्सरेद्वत्सराख्यानि पञ्च वर्षाणि भवन्ति। तत्र यः संवत्सरः प्रथमोऽब्दः सोऽग्निदैवत्यः। परिवत्सरो द्वितीयः सोऽर्कदैवत्यः सूर्याधिपः। यश्चेदादिकः इदाशब्द आदौ यस्य स इदावत्सरस्तृतीयस्तस्य शीतमयूखमाली चन्द्रोऽधिपतिः। योऽनुवत्सरश्चतुर्थस्तस्य प्रजापतिर्ब्रह्माऽधिपतिः। य इद्वत्सरः पञ्चमस्तस्य शैलसुतापतिरुमाभर्ता रुद्र इति। अत्र दैवतकथनेन किं प्रयोजनम्? उच्यते—यथा युगानामधिपतय उक्तास्तथा वर्षाणामपि। तस्मिन् वर्षे तस्या देवताया यागः सम्पत्त्यर्थं वेदे पठ्यते। तदर्थं दैवतकथनमिति।।२४।।

अथैतेषां फलान्याह—

वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥२५॥

संवत्सर नामक वर्ष में मध्यम रूप से (जैसे—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक—इन चारों मासों में समान) वृष्टि होती है, परिवत्सर नामक वर्ष में आद्य भाग में (श्रावण, भाद्र में) एवं इदावत्सर नामक वर्ष में चारों मासों में बहुत वृष्टि होती है। अनुवत्सर नामक वर्ष में अन्त में (आश्विन और कार्तिक में) वृष्टि होती है और इद्वत्सर नामक वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है।।२५।।

आद्ये संवत्सराख्ये वर्षे समा वृष्टिर्भवति, न चातिबह्वी न चात्यल्पा। श्रावणभाद्रपदाऽश्वयुजकार्तिकमासेषु चतुर्ष्वपि तुल्या भवतीत्यर्थः। द्वितीये परिवत्सरे प्रमुखे प्रथमभागे आदावेव वृष्टिर्भवति न पश्चात्। श्रावणभाद्रपदयोर्भवति नाश्वयुजकार्तिकयोरित्यर्थः। तृतीये इदावत्सरे प्रभूततोया बहुजला वृष्टिर्भवति चतुर्ष्वपि मासेषु। यच्चतुर्थवर्षमनुवत्सराख्यं तत्पश्चादन्ते जलं मुञ्चति वर्षति। न प्रथममाश्वयुजकार्तिकयोर्न श्रावणभाद्रपदयोरित्यर्थः। यत्पञ्चममब्दं वर्षमिद्वत्सराख्यं तत्स्वल्पोदकमल्पजलमुक्तं कथितं चतुर्ष्वपि मासेषु।।२५।।

अधुना युगान्युत्तममध्यमाधमान्याह—

चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां
विष्णिवन्द्रजीवानलदैवतानि ।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि
चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विन्द्यात् ॥२६॥

पूर्वकथित बारह युगों में विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि जिनके देवता हैं, वे उत्तम, मध्य के चार (प्रजापति, उत्तरप्रौष्ठपदाधिप, पिता और विश्वेदेव) जिनके देवता हैं, वे मध्यम और अन्त के चार (सोम, शक्रानल, अश्वि और सूर्य) जिनके देवता हैं, वे अशुभ होते हैं।।२६।।

एषां द्वादशानां युगानां मध्याच्चत्वारि युगानि मुख्यानि उत्तमफलानि प्रयच्छन्ति। अथशब्दः पादपूरणे चार्थे वा। कानि तानि? विष्णुः। इन्द्रः। जीवो बृहस्पतिः। अनलोऽग्निः। विष्णुदैवतं प्रथमम्। इन्द्रदैवतं तृतीयम्। बृहस्पतिदैवतं द्वितीयम्। अग्निदैवतं चतुर्थम्। एतानि मुख्यानि। तथा चत्वारि युगानि मध्यानि मध्यमान्येव मध्यफलानि न शुभानि नाप्यशुभानि। कानि च तानि? त्वष्टृदैवतम्। अहिर्बुध्न्यदैवतम्। पितृदैवतम्। विश्वदैवतम्। एतानि मध्यफलानि। तथा चान्त्यानि चत्वारि। सोमदैवतम्। इन्द्राग्निदैवतम्। अश्विदैवतम्। भगाख्यदैवतम्। एतान्यधमानि दुष्टफलानि विन्द्याज्जानीयात्। तथा च समाससंहितायाम्—

चत्वारि युगान्यादौ शुभानि मध्यानि मध्यमफलानि।
चत्वार्यन्त्यानि न शोभनानि वर्षैर्विशेषोऽत्र।। इति।।२६।।

अधुना षष्ट्यब्दपूर्वस्य प्रभवाख्यस्याब्दस्य प्रवृत्तिकालमाह—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः ।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाब्दः ॥२७॥

जब धनिष्ठा के प्रथम अंश में स्थित होकर बृहस्पति माघ मास में उदित होता है, उस समय से षष्ट्यब्दों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष का प्रारम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियों के लिये हितकारी होता है।।२७।।

सुरेज्यो बृहस्पति:। आद्यं प्रथमं धनिष्ठांशं धनिष्ठाया: प्रथमपादमभिप्रपन्नस्तत्र स्थितो माघे मासे यदा यस्मिन् काले उदयं याति सूर्यमण्डलादुद्गच्छति तदा तस्मिन् काले षष्ट्यब्दपूर्व: षष्ट्यब्दस्य प्रथमोऽब्द:। स च प्रभवो नाम्ना प्रभवसंज्ञ: प्रपद्यते प्रवर्तते। तस्य प्रारम्भो भवतीत्यर्थ:। एतच्चान्द्रेण मानेन यो मासस्तत्र सम्भवति न सौरमानेन। यत: कृतदृक्कर्मद्वयो गुरुर्यदा राशिनवकाद्भागत्रयोविंशतेर्लिप्ताविंशतेश्चार्वाग्भवति, सूर्यश्च राशिदशकं षड् भागान् द्वादशलिप्ताश्च भुक्त्वा स्थितो भवति, तदैतत्सम्भवति नान्यत्रेति। कीदृशोऽब्द:? भूतहितो भूतानां सत्त्वानां हितोऽनुकूल इति।।२७।।

तथा च स्वरूपमाह—

क्वचित्त्ववृष्टि: पवनाग्निकोप:
सन्तीतय: श्लेष्मकृताश्च रोगा: ।
संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते
न दु:खमाप्नोति जनस्तथापि ।।२८।।

यद्यपि प्रभव संवत्सर में कहीं-कहीं पर अवृष्टि, कहीं-कहीं पर वायु का प्रकोप, कहीं कहीं पर अग्नि का कोप, कहीं-कहीं पर अतिवृष्टि आदि छ: ईतियों का भय और कहीं-कहीं पर कफजन्य रोग होते हैं, तथापि संसारस्थित प्राणियों को विशेष कष्ट का अनुभव नहीं होता है।।२८।।

अस्मिन् प्रभवाख्ये संवत्सरे वर्षे प्रवृत्ते प्रतिपन्ने सति क्वचित्त्ववृष्टिरवर्षणं भवति न सर्वत्र। तथा पवनाग्निकोप:। पवनो वायु:। अग्निर्हुताशन:। वायुप्रकोपोऽग्निप्रकोपश्च क्वचिद् भवति। तथा ईतयोऽतिवृष्ट्यादय उपद्रवा: सन्ति भवन्ति। श्लेष्मकृता: कफोत्पन्नाश्च रोगा गदाश्च क्वचिद् भवन्ति। तथापि जनो लोको न दु:खं कृच्छ्रमाप्नोति लभते।।२८।।

अथान्येष्वब्देषु नामानि फलं चाह—

तस्माद् द्वितीयो विभव: प्रदिष्ट: शुक्लस्तृतीय: परत: प्रमोद: ।
प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलान्यथैषाम् ।।२९।।

निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् ।
संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ।।३०।।

इसके बाद दूसरे वर्ष का नाम विभव, तीसरे का शुक्ल, चौथे का प्रमोद और पाँचवें वर्ष का नाम प्रजापति है। ये चारो वर्ष उत्तरोत्तर शुभ फल देने वाले होते हैं। इन वर्षों में राजाओं की शासनपद्धति ऐसी होती है, जिससे धान्य, ईख, यव आदि अन्न अच्छी तरह पककर सुन्दर फल देने वाले होते हैं तथा सभी प्राणी निर्भय, द्वेषरहित, आनन्दयुत और कलि के दोष

(अधर्म, व्याधि, दारिद्र्य, शोक, कलह, मृत्यु आदि) से विमुक्त होते हैं।।२९-३०।।

तस्मात् प्रभवाद् द्वितीयोऽब्दो विभवनामा प्रदिष्ट उक्तः। तृतीयः शुक्लः। परतोऽनन्तरं चतुर्थः प्रमोदः। प्रजापतिः पञ्चमश्चेति। इतिशब्दः प्रकाराय। एतानि वर्षाणि यथोत्तराणि उत्तरोत्तराणि। शस्तानि शुभानि। अथानन्तरमेषां वर्षाणां फलानि भवन्ति।

निष्पन्नेत्यादि। तदा तस्मिन् युगे क्षत्रं राजवर्गो भूतधात्रीं वसुन्धरामेवंविधां शास्ति पालयति। किम्भूताम्? निष्पन्ना निष्ठाः प्राप्ताः शालय इक्षवो यवादयः सस्यानि च यस्यां ताम्। आदिग्रहणाद् गोधूममसूरचणकमुद्गमाषा गृह्यन्ते। तथा भयैर्दुःखैर्विमुक्तां वर्जिताम्। उपशान्तवैरां नष्टद्वेषाम्। संहृष्टलोकां प्रहृष्टजनाम्। कलिदोषमुक्तां कलियुगे ये दोषा अधर्मव्याधिदारिद्र्यशोककालमृत्युप्रभृतयस्तैर्मुक्तां रहिताम्। अथवा कलिः कलहः। दोषा राष्ट्रोपतापाः।।२९-३०।।

अथ द्वितीययुगस्याह—

आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ युवा सुधातेति युगे द्वितीये।
वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ।।३१।।

त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी देवो निरातङ्कभयश्च लोकः।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ।।३२।।

द्वितीय युग के अन्तर्गत अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता—ये पाँच वर्ष होते हैं। इनमें प्रथम तीन (अङ्गिरा, श्रीमुख और भाव) शुभ और शेष (युवा और धाता) मध्यम होते हैं। इनमें आदि के तीन वर्षों में देव (इन्द्र) पर्याप्त वर्षा करते हैं और सब लोग निर्भय रहते हैं। अन्त के दो वर्षों में मध्यम रूप से सुवृष्टि होती है; पर इनमें रोग और युद्ध होता है।।३१-३२।।

द्वितीये वार्हस्पत्ययुगे आद्यः प्रथमोऽब्दोऽङ्गिराः, द्वितीयः श्रीमुखः, तृतीयो भावसाह्वो भावसेत्याह्वः संज्ञा यस्य, चतुर्थो युवा, पञ्चमः सुधाता। एतानि पञ्च वर्षाणि यथाक्रमेण परिपाट्या स्थितानि। अत्रास्मिन् युगे त्रीणि प्रथमानि वर्षाणि शस्तानि शोभनानि। परे पश्चिमे चतुर्थपञ्चमे द्वे समे न शुभे नाप्यशुभे इति।

त्रिष्वाद्यवर्षेष्विति। आद्येषु प्रथमेषु त्रिषु वर्षेषु अङ्गिरःश्रीमुखभावसाह्वेषु देव इन्द्रो निकामवर्षी निकामं पर्याप्तं वर्षति। लोको जनो निरातङ्कभयः, आतङ्क उपद्रवो भयं भीतिश्च निर्गता अविद्यमाना यस्य। तथा अन्त्ये पश्चिमे अब्दद्वये वर्षयुग्मे सुवृष्टिः शोभना वृष्टिः समा तुल्या भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा यथाकालोपयोग्या। किन्तु अत्रास्मिन् वर्षद्वये रोगा गदा भवन्ति। तथा समरागमश्च। समरः संग्रामस्तस्यागमः प्राप्तिः।।३१-३२।।

अथ तृतीययुगस्याह—

शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः।
प्रमाथिनं विक्रममप्यथान्यद् वृषं च विन्द्याद् गुरुचारयोगात् ।।३३।।

आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् ।
पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥३४॥

तृतीय (ऐन्द्र) युग में ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष—ये पाँच वर्ष बृहस्पति के सञ्चारवश होते हैं। इनके प्रथम (ईश्वर) और द्वितीय (बहुधान्य) वर्ष शुभ हैं तथा इनमें प्रजागण कृतयुग की तरह (धर्म में निरत, सुखी और दीर्घजीवी) होते हैं। प्रमाथी नाम का तृतीय वर्ष पापफल देने वाला होता है। वृष और विक्रम नामक वर्ष सुभिक्ष तो करता है; किन्तु रोग और भय देने वाला भी होता है।।३३-३४।।

शाके इन्द्रे युगे पूर्वं प्रथमं वर्षमीश्वरसंज्ञम्। अथशब्दः पादपूरणे। द्वितीयं वर्षं बहुधान्यसंज्ञमाहुरुक्तवन्तः। प्रमाथिनं तृतीयम्। विक्रमं चतुर्थम्। अपिशब्दश्चार्थे। अथशब्द आनन्तर्ये। अन्यत् पञ्चमं वृषं नाम गुरुचारयोगाद् बृहस्पतिचारसंयोगाद्विन्द्याज्जानीयात्। यतो बार्हस्पत्येनैव मानेनैतानि वर्षाणि भवन्ति। यस्मिन् काले गुरुरादित्यमण्डलादुदेति तस्मिन्नेव कालेऽब्दप्रवृत्तिः। अत उक्तं **गुरुचारयोगादिति।**

आद्यं द्वितीयं चेति । आद्यं वर्षं द्वितीयं च एते द्वे वर्षे शुभे प्रशस्तफले प्रजानां लोकानां कृत्तानुकारं कृतयुगस्यानुकारं कुरुतः। तद्धर्मानुष्ठानात् तत्सदृशमित्यर्थः। धर्मरताः सुखिता दीर्घजीविन्यः प्रजा भवन्तीति यावत्। प्रमाथी नाम तृतीयोऽब्दः, स पापोऽनिष्टफलः। वृषविक्रमौ तु द्वावब्दौ सुभिक्षदौ सुभिक्षं ददतः, किन्तु रोगभयप्रदौ रोगभयं कुरुतः।।३३-३४।।

अथ चतुर्थस्य युगस्याह—

श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम् ।
मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसञ्ज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं नतं च ॥३५॥

तारणं तदनु भूरिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम् ।
पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥३६॥

चतुर्थ (हुताश) युग के अन्तर्गत चित्रभानु नामक प्रथम वर्ष शुभ फल देने वाला, द्वितीय सुभानु नामक वर्ष मध्यम फल देने वाला और तृतीय नत नाम का वर्ष रोगप्रद और मृत्यु को देने वाला होता है। चतुर्थ तारण नामक वर्ष में बहुत जल, धान्यों की वृद्धि और राजाओं में आनन्द की वृद्धि होती है। पञ्चम व्यय नामक वर्ष शुभ है, इसमें काम की प्रबलता और उत्सव (विवाहादि मङ्गलकार्य) होते हैं।।३५-३६।।

श्रेष्ठमिति । चतुर्थस्य युगस्य हुताशाख्यस्य पूर्वं प्रथमं वर्षं यच्चित्रभानुसंज्ञं तच्छ्रेष्ठं शुभं कथयन्ति प्रवदन्ति। तस्यैव द्वितीयं सुभानुसंज्ञं तच्च मध्यं मध्यफलम्। तृतीयं नतं नाम तच्च रोगप्रदं रोगान् ददाति। मृत्युकरं मृत्युं च करोति।

तदनु तस्य तृतीयस्य वर्षस्य पश्चाच्चतुर्थं वर्षं तारणं नाम, तच्च भूरिवारिदम्, भूरि बहु वारि जलं ददाति। तथा सस्यवृद्धिमुदितातिपार्थिवम्, सस्यानां वृद्धिः, मुदितातिलुद

पार्थिवं मुदितो हृष्टोऽतीवात्यर्थं पार्थिवो राजा च यत्र। तथा पञ्चमं वर्षं व्ययसंज्ञं तच्च श्रेष्ठमुशन्ति कथयन्ति। मन्मथप्रबलम्, मन्मथः कामः प्रबल उद्धतो यस्मिन् वर्षे तत्। तथोत्सवैर्विवाहादिभिराकुलं सोद्यमम्।।३५-३६।।

अथ पञ्चमस्य युगस्याह—

त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी।
तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ।।३७।।

पञ्चम (त्वाष्ट्र) युग के अन्तर्गत सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें दूसरा (सर्वधारी) शुभ और शेष (सर्वजित्, विरोधी, विकृत और खर) भय देने वाले होते हैं।।३७।।

त्वाष्ट्रे युगे आद्यः प्रथमः संवत्सरोऽब्दः सर्वजिन्नामा उक्तः कथितः। अन्यो द्वितीयः सर्वधारी। खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे आगमद्योतनार्थे वा। तस्माद् द्वितीयात् परतस्तृतीयो विरोधी नाम। चतुर्थो विकृतः। पञ्चमः खरः। **शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषा इति**। अत्रास्मिन् युगे द्वितीयोऽब्दः शस्तः शुभः। शेषाः प्रथमतृतीयचतुर्थपञ्चमा भयाय भवन्ति भयं कुर्वन्ति। अनिष्टफलदा इत्यर्थः।।३७।।

अथ षष्ठस्य युगस्याह—

नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः।
कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ।।३८।।

षष्ठ (प्रोष्ठपद) युग में नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें आदि के तीन (नन्दन, विजय और जय) शुभ, मन्मथ मध्यम और शेष (दुर्मुख) अशुभ है।।३८।।

अहिर्बुध्न्ये युगे प्रथमोऽब्दो नन्दनः। अथानन्तरं द्वितीयो विजयः। तथा तेनैव प्रकारेण तृतीयो जयः। चतुर्थो मन्मथः। अस्य चतुर्थस्य परतोऽनन्तरं दुर्मुखः पञ्चमः। अत्रास्मिन् युगे आदित आदौ प्रथमं वर्षत्रयं कान्तं शुभमित्यर्थः। केचित् 'कान्तमत्र युगमादितस्त्रये' इति पठन्ति। अत्रास्मिन् युगमादित आदौ प्रथमवर्षत्रये कान्तम्। मन्मथः समफलः, न शुभो नाप्यशुभ इत्यर्थः। अपरश्च दुर्मुखोऽधमः, अशुभफल इत्यर्थः।।३८।।

अथ सप्तमस्य युगस्याह—

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि परतो विकारि च।
शर्वरीति तदनु प्लवः स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ।।३९।।

ईतिप्राया प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे
मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः ।।४०।।

सप्तम (पितृसंज्ञक) युग में हेमलम्ब, विलम्बी, विकारी, शर्वरी, प्लव—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (हेमलम्ब) संवत्सर में अधिकतर अतिवृष्टि आदि छः ईतियों का भय और अधिक वायु के प्रकोप से युत वृष्टि होती है। दूसरे (विलम्बी) संवत्सर में थोड़ा धान्य और अधिक वृष्टि होती है। तृतीय संवत्सर बहुत उद्वेग (दोष) करने वाला और अधिक जल देने वाला होता है। चौथा (शर्वरी) संवत्सर दुर्भिक्ष करने वाला होता है एवं पाँचवाँ (प्लव) संवत्सर शुभ फल और बहुत वृष्टि देने वाला होता है।।३९-४०।।

सप्तमे पैत्रे हेमलम्ब इति प्रथमो वत्सर: स्यात्। विलम्बि द्वितीय:। परतोऽनन्तरं तृतीयो विकारि। चशब्द: समुच्चये। शर्वरीति चतुर्थ:। तदनु तत्पश्चात् पञ्चमो वत्सरोऽब्द: प्लव: इति उक्त:। गुरुवशेन बृहस्पतिचारयोगात्।

ईतिप्रायेति। पूर्वे प्रथमेऽब्दे वर्षे ईतिप्रायाऽतिवृष्ट्याद्युपद्रवबहुला। प्रचुरपवना बहुवाता वृष्टिर्भवति। अतोऽब्दाद् द्वितीये वत्सरे मन्दमल्पं सस्यं न बहुसलिलं प्रभूतजलं भवति। तृतीयो वत्सरोऽत्युद्वेगकर: प्रभूतदोषदस्तथा प्रचुरसलिल: प्रभूतजल: स्याद् भवेत्। चतुर्थो दुर्भिक्षाय भवति। ततोऽनन्तरं प्लव इति पञ्चम: शोभन: श्रेष्ठ इति। स च भूरितोयो बहुजलश्च भवति।।३९-४०।।

अथाष्टमस्य युगस्याह—

वैश्वे युगे शोक हृदित्यथाद्य: संवत्सरोऽत: शुभकृद् द्वितीय:।
क्रोधी तृतीय: परत: क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ।।४१।।

पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्द:।
अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्नि: शस्त्रामयार्तिर्द्विजगोभयं च ।।४२।।

अष्टम (वैश्व) युग में शोकहृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (शोकहृत्) और द्वितीय (शुभकृत्) संवत्सर प्रजाओं को आनन्द देने वाले होते हैं। तृतीय (क्रोधी) संवत्सर बहुत अशुभकारी है। अन्त्य के चतुर्थ (विश्वावसु) और पञ्चम (पराभव) संवत्सर मध्यम फल देने वाले होते हैं; किन्तु पराभव संवत्सर में अग्नि का भय, शस्त्र से पीड़ा, रोग से पीड़ा एवं ब्राह्मणों और गौओं को भय होता है।।४१-४२।।

वैश्वे युगे इति। अथानन्तरं वैश्वे अष्टमे युगे आद्य: प्रथम: संवत्सरोऽब्द: शोकहृदिति। केचिच्छोककृदिति पठन्ति। शोकं कृन्तति छिनत्तीति शोककृत्। यतोऽस्य शोभनं फलमाचार्यो वक्ष्यति—'पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानाम्' इति। तस्माच्छोकहृदिति नि:सन्देह: पाठ:। अतोऽन्यो द्वितीय: शुभकृत्। तृतीय: क्रोधी। परतोऽनन्तरं क्रमेण विश्वावसुश्चेति चतुर्थ:। इतिशब्द: प्रकारे। पराभवश्च पञ्चम:।

पूर्वापराविति। प्रथमद्वितीयावब्दौ प्रजानां प्रीतिकरौ। एषां सर्वेषां पञ्चानां क्रोधी योऽब्दस्तृतीय: स बहुदोषद:, बहुदोषानशुभान् ददाति। अन्त्यौ पश्चिमौ चतुर्थपञ्चमौ समौ

समफलौ न शुभौ नाप्यशुभौ भवतः। किन्त्वत्र वर्षद्वये पराभवेऽग्निरग्निभयं भवति। तथा शस्त्रामयार्तिः शस्त्रेण आमयैश्च रोगैरार्तिः पीडा भवति। तथा द्विजगोभयं च द्विजानां ब्राह्मणानां गवां च भयं भवति।।४१-४२।।

अथ नवमस्य युगस्याह—

आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः
स्यात् कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः ।
साधारणो रोधकृदित्यथैवं
शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ ।।४३।।

कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च ।
यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ।।४४।।

नवम (सौम्य) युग में प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, साधारण, रोधकृत्—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें कीलक और सौम्य संवत्सर शुभप्रद हैं। प्लवङ्ग संवत्सर में प्रजाओं को कष्ट होता है। साधारण संवत्सर में थोड़ा जल और अनावृष्टि आदि ईति का भय होता है। रोधकृत् संवत्सर में चित्रजल (कहीं-कहीं पर वृष्टि और कहीं पर अवृष्टि) एवं धान्य की उत्पत्ति होती है।।४३-४४।।

आद्यः प्लवङ्ग इति । नवमे युगे सौम्ये आद्यः प्रथमोऽब्दः प्लवङ्गसंज्ञः स्याद्भवेत्। अन्यो द्वितीयः कीलकः। परतस्तृतीयः सौम्यः। साधारणश्चतुर्थः। रोधकृत् पञ्चमः। इत्येवं प्रकारे। अथशब्द आनन्तर्ये। तत्र कीलकसौम्यसंज्ञौ द्वावब्दौ शुभप्रदौ श्रेष्ठौ।

कष्ट इति । प्लवङ्गसंज्ञः प्रजानां बहुशो बहुप्रकारं कष्टोऽशुभः। अब्दे साधारणे अल्पं जलं स्वल्पमुदकम्। ईतय अतिवृष्ट्यादय उपद्रवाः। अथानन्तरं यः पञ्चमोऽब्दो रोधकृदिति तत्र तस्मिन्नब्दे चित्रं नानाप्रकारं जलं क्वचित्क्वचिद्वर्षति। तथा सस्यानां सम्पच्च भवति।।४३-४४।।

अथ दशमस्य युगस्याह—

इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत्तत्राद्यवर्षं परिधाविसंज्ञम् ।
प्रमादिनं विक्रममप्यतोऽन्यत् स्याद्राक्षसं चानलसंज्ञितं च ।।४५।।

परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः ।
अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ।।४६।।

विक्रमः सकललोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा ।
ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो वह्निकोपमरकप्रदोऽनलः ।।४७।।

दशम (शक्राग्नि) युग में परिधावी, प्रमादी, विक्रम, राक्षस, अनल—ये पाँच संवत्सर होते हैं। परिधावी संवत्सर में मध्यदेश का नाश, राजा का मरण, थोड़ी वर्षा और

अग्निभय होता है। प्रमादी संवत्सर में आलसी मनुष्य, डमर (सशस्त्र कलह), रक्त पुष्प और रक्त बीज वाले वृक्षों का नाश होता है। विक्रम संवत्सर में सभी मनुष्यों को आनन्द प्राप्त होता है। राक्षस और अनल संवत्सर में सब लोगों का नाश होता है; पर राक्षस संवत्सर में ग्रीष्म धान्य (यव, गेहूँ, चना आदि) की उत्पत्ति और अनल संवत्सर में अग्निकोप एवं मरक (मरी) होता है।।४५-४७।।

इन्द्राग्निदैवमिति । दशमं युगमिन्द्राग्निदैवतं यत्तत्र तस्मिन्नाद्यवर्षं प्रथमवर्षं परिधाविसंज्ञम्। प्रमादिनं द्वितीयम्। अतोऽस्मादन्यत्तृतीयं विक्रमं स्याद् भवेत्। राक्षसं चतुर्थम्। अनलसंज्ञितं पञ्चमम्। चशब्दोऽत्रोभयत्र समुच्चये।

परिधाविनीति । परिधाविनि वर्षे मध्यदेशनाशो भवति। तत्रैव नृपहानी राज्ञो मरणम्। जलमुदकमल्पं स्तोकम्। अग्निकोपो वह्निभयम्। प्रमादिसंज्ञे जनो लोक:। अलस: सालसो भवति। तथा डमरं कलह: सशस्त्र:। रक्तकपुष्पाणां येषां वृक्षाणां लोके रक्तपुष्पं भवति, तथा रक्तकबीजानां च नाशो भवति।

विक्रम इति । विक्रम: सकललोकानां नन्दनोऽब्द: समस्तजनसमृद्धिकर:। राक्षस: समस्तलोकानां क्षयकरो विनाशकरो भवति। अनलस्तेनैव प्रकारेण क्षयकर एव। अत्रास्मिन् युगे राक्षसोऽब्दो ग्रीष्मधान्यानां यवगोधूमादीनां जनन: सम्पत्कर:। अनलो वह्निकोपमरकप्रद:। अग्निकोपं मरकं च ददाति।।४५-४७।।

अथैकादशस्य युगस्याह—

एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ।
आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ।।४८।।
यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च ।
रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत् प्रदिष्टो यो दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत् सः ।।४९।।

एकादश (आश्विन) युग में पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति—ये पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम (पिङ्गल) संवत्सर में अतिवृष्टि, चोरों का भय, श्वास और ठोढ़ी को कम्पित करने वाली खाँसी होती है। कालयुक्त संवत्सर में अनेक फल होते हैं। सिद्धार्थ-संज्ञक संवत्सर में बहुत गुण (सम्पत्ति आदि) होते हैं। रौद्र संवत्सर में अतिशय अशुभ फल और प्रजाओं का नाश होता है। दुर्मति संवत्सर में मध्यम वृष्टि होती है।।४८-४९।।

एकादशेति । एकादशो आश्विने युगे प्रथमोऽब्द: पिङ्गल:। द्वितीय: कालयुक्त:। तृतीय: सिद्धार्थ:। चतुर्थो रौद्र:। पञ्चमो दुर्मति:। खलुशब्द आगमद्योतनार्थ:। आद्ये प्रथमे वर्षे महती चण्डा अतिवृष्टिर्भवति सा तु सचौरा चौरयुक्ता। तस्करा भवन्तीत्यर्थ:। तथा श्वासो भवति जनानां हनूकम्पयुतश्च कास:। कासपीडा च भूतानां भवति यया हनू कम्पेते।

यत्कालयुक्तमिति । यदब्दं कालयुक्तं तदनेकदोषं बहुदोषप्रदम्। सिद्धार्थसंज्ञे बहव: प्रभूता गुणा: सम्पदादयो भवन्ति। यो रौद्र: सोऽतिरौद्र:। अतिदुष्टफल:। तथा क्षयकृ

प्रजानां क्षयकर: प्रदिष्ट उक्त:। यो दुर्मति: स मध्यमवृष्टिकृत् मध्यमां वृष्टिं करोतीति।।

अथ द्वादशस्य युगस्याह—

भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति।
अङ्गारसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टि: ।।५०।।

रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं तस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च।
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधै: ।।५१।।

द्वादश (भाग्य) युग में प्रथम दुन्दुभि नामक संवत्सर में धान्य की अधिक वृद्धि होती है। द्वितीय अङ्गार संवत्सर में राजाओं का नाश और अत्यन्त भयङ्कर वृष्टि होती है। तृतीय रक्ताक्ष नामक संवत्सर में दंष्ट्री (सूकर आदि) का भय और रोग होता है। चतुर्थ क्रोध नामक संवत्सर में लोगों को बहुत क्रोध होता है।।५०-५१।।

भाग्ये युगे इति। भाग्यसंज्ञे द्वादशे युगे आद्यं प्रथमं वर्षं दुन्दुभिसंज्ञं तच्च महतीमतिबह्वीं सस्यवृद्धिं करोति। तदनु तत्पश्चात् द्वितीयमङ्गारसञ्ज्ञं तच्च नरेश्वराणां राज्ञां क्षयाय नाशाय भवति। वृष्टिश्च विषमा अतुला अतिचण्डा वा भवति।

तथा तृतीयमब्दं वर्षं रक्ताक्षसंज्ञं कथितमुक्तम्। तस्मिन्नब्दे दंष्ट्रिकृतं भयं भवति। दंष्ट्रिण: सूकरादयस्तत्कृतं भयं भवति। तथा गदा रोगाश्च भवन्ति। चतुर्थं क्रोधसंज्ञं तच्च बहुक्रोधकरं बहुप्रकारं लोकानां क्रोधं करोति। तथा राष्ट्राणि विरोधै: कलहै: शून्यीकुरुते। अशून्यानि शून्यानि करोतीति शून्यीकुरुते। उद्वासयतीत्यर्थ:।।५०-५१।।

अथ पञ्चमस्य वर्षस्य फलं षष्ट्यब्दलक्षणं मया संक्षेपत: कृतमित्येतच्चाह—

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं
जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीबलवृद्धिदम्।
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहतां तथा
कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समासत: ।।५२।।

बारहवें युग का अन्तिम क्षय नामक संवत्सर बहुत प्रकार से लोगों का नाश करने वाला, ब्राह्मणों को भय देने वाला, किसानों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरे के धन का अपहरण करने वालों को बढ़ाने वाला होता है। शास्त्रान्तर में षष्ट्यब्दों का जो फल वर्णित है, उसको संक्षेप से मैंने (वाराहमिहिर ने) यहाँ पर बृहस्पतिचाराध्याय में कहा है।।५२।।

अन्त्यस्य युगस्य द्वादशस्य अन्त्यं पञ्चमं वर्षं क्षयमिति क्षयसंज्ञम्। तच्च बहुक्षयकरं बहुविधं जनानां क्षयं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानां भयं भीतिं जनयत्युत्पादयति। कृषीबलानां कर्षकाणां वृद्धिदम्। विट्शूद्राणां वैश्यानां शूद्राणां चोपचयकरं वृद्धिकरम्। तथा परस्वहतां परधनहर्तॄणामप्युपचयकरम्। अखिलं नि:शेषं षष्ट्यब्दे षष्ट्यब्दाख्ये।

माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिन:।
युगस्य पञ्चकस्येह कालज्ञानं निबोध्यते।।

इति तस्मिन् शास्त्रे यत्कथितमुक्तं तदत्रास्मिन् बृहस्पतिचारे सर्वं समासत: संक्षेपत: कथितमुक्तम्। तथा च समाससंहितायाम्—

ऐन्द्रे तृतीयमशुभं द्वितीयवर्जानि पञ्चमे तु युगे ।
पित्र्ये युगे तृतीयं चतुर्थमपि पापदं वर्षम्।।
वैश्वे तृतीयमशुभं शुभदान्युक्तानि चावशेषाणि।
सौम्ये द्वितीयवर्षं शुभावहं यत्तृतीयं तु।।
प्रथितं शुभमैन्द्राग्नौ तृतीयवर्षं तथाश्विदैवत्ये।
भाग्ये प्रथमं वर्षं षष्ट्यब्दस्यैष संक्षेप:।। इति।।५२।।

अथ बिम्बलक्षणमाह—

अकलुषांशुजटिल: पृथुमूर्ति: कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभ: ।
ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ।।५३।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
बृहस्पतिचाराध्यायोऽष्टम: ।।८।।

निर्मल किरण वाला, जटिल (सघन किरण वाला), विशाल बिम्ब वाला, कुमुदपुष्प, कुन्दपुष्प या स्फटिक मणि के समान कान्ति वाला, ग्रहयुद्ध में अविजित होकर सत्पथ (ग्रहनक्षत्रों के उत्तरमार्ग) में गत बृहस्पति मनुष्यों का हितकारी होता है।।५३।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां बृहस्पतिचाराध्यायोऽष्टम: ।।८।।

एवंविधोऽमरगुरुर्बृहस्पतिर्मनुजानां मनुष्याणां हितकर: शिवप्रद:। कीदृश:? अकलुषांशुर्निर्मलरश्मि:। जटिल: समन्ततो रश्मिभिर्व्याप्त:। पृथुमूर्तिर्विस्तीर्णदेह:। तथा कुमुदस्य कुमुदपुष्पस्य कुन्दकुसुमस्य स्फटिकस्य च मणे: सदृशी आभा कान्तिर्यस्य। अतिस्निग्ध: श्वेतवर्ण इत्यर्थ:। यदि च ग्रहहतो न भवति ग्रहयुद्धे अन्येन ग्रहेण विजितो न भवति। तथा सत्पथवर्ती ग्रहनक्षत्राणामुत्तरमार्गगोचराणामधिकृतश्चेति।।५३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
बृहस्पतिचारो नामाष्टमोऽध्याय: ।।८।।

अथ शुक्रचाराध्यायः

अथ शुक्रचारो व्याख्यायते। तस्य च नव वीथयस्त्रयो मार्गा उदङ्मध्यदक्षिणा। वातव्याडवैश्वानरास्त्रयो मार्गभेदाः षड् मण्डलानि भवन्ति। तत्रादावेव परमतेन वीथीनां लक्षणमाह—

नागगजैरावतवृषभगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः ।
अश्विन्याद्याः कैश्चित्त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिताः ।।१।।

शुक्र की नव वीथियाँ, तीन मार्ग एवं छः मण्डल होते हैं। उनमें मतान्तर से प्रथमतः वीथियों के नक्षत्रों को कहते हैं—

अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रों में क्रम से नाग, गज, ऐरावत, वृष, गो, जरद्गव, मृग, अज, दहन—ये नव वीथियाँ होती हैं। जैसे—अश्विनी, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि; रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा में ऐरावतवीथि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तरफाल्गुनी में वृषवीथि; हस्त, चित्रा और स्वाती में गोवीथि; विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा में जरद्गववीथि; मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में मृगवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में अजवीथि तथा पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती में दहन नाम की वीथि होती है।।१।।

स्फुटार्थ चक्र

वीथियाँ	नाग	गज	ऐरावत	वृष	गौ	जरद्गव	मृग	अज	दहन
न	अश्विनी	रोहिणी	पुनर्वसु	मघा	हस्त	विशा.	मूल	श्रवण	पू. भा.
क्ष	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पू.फा.	चित्रा	अनुरा.	पू. षा.	धनिष्ठा	उ. भा.
त्र	कृत्तिका	आर्द्रा	आश्लेषा	उ.फा.	स्वाती	ज्येष्ठा	उ. षा.	शतभि.	रेवती

नागवीथी प्रथमा। गजवीथी द्वितीया। ऐरावतवीथी तृतीया। वृषभवीथी चतुर्थी। गोवीथी पञ्चमी। जगद्गववीथी षष्ठी। मृगवीथी सप्तमी। अजवीथी अष्टमी। दहनवीथी नवमी। एता नव वीथयः कैश्चिदाचार्यैर्देवलप्रभृतिभिरश्विन्याद्यास्त्रिभास्त्रिभिर्भैर्नक्षत्रैः कथिता। अश्विनीभरणीकृत्तिका नागवीथी। रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावतवीथी। एवं क्रमेण त्रिभिस्त्रिभिर्नक्षत्रैरन्या अपि ज्ञेयाः। एताः क्रमात् परिपाट्या वीथयः कथिता उक्ताः। तथा च देवलः—

अश्विन्यादित्रिभाः सर्वा नागाद्या दहनान्तिकाः।
वीथयो भृगुपुत्रस्य नव प्रोक्ताः पुरातनैः।।

तथा च काश्यपः—

त्रिष्वश्विन्यादिषु यदा चरति भृगुनन्दनः ।
नागवीथीति सा ज्ञेया प्रथमान्या निबोधत ।।
रोहिण्यादिगजा ज्ञेयाऽदित्याद्यैरावती स्मृता ।
मघाद्या वृषभा ज्ञेया हस्ताद्या गौः प्रकीर्तिता ।।
जारद्गवी विशाखाद्या मूलाद्या मृगवीथिका ।
अजवीथी विष्णुभाद्याऽजाद्या तु दहना स्मृता ।। इति ।।१।।

अथ स्वमतेन प्रविभागमाह—

नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः ।
गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे ।।२।।

जारद्गव्यां श्रवणात्त्रिभं मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम् ।
हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्यजेत्यषाढाद्वयं दहना ।।३।।

अपने मत से वीथियों में नक्षत्रविभाग कहते हैं—स्वाती, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि; रोहिणी, मृगशिर और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा में ऐरावतवीथि; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में बृषवीथि; अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा—इन चार नक्षत्रों में गोवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जरद्गववीथि; अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में मृगवीथि; हस्त, विशाखा और चित्रा में अजवीथि तथा पूर्वाषाढा एवं उत्तराषाढा—इन दो नक्षत्रों में दहनवीथि होती है।।२-३।।

पवनः स्वातिः। याम्यं भरणी। अनलः कृत्तिकाः। एतानि नक्षत्राणि नागवीथी। पैतामहात्त्रिभास्तिस्रः। पैतामहं रोहिणी तत आरभ्य त्रिभास्त्रिभिस्त्रिभिर्भैर्नक्षत्रैस्तिस्रो वीथयो भवन्ति। तद्यथा—रोहिणीमृगशिरआर्द्रा गजवीथी। पुनर्वसुतिष्याश्लेषा ऐरावती। मघा पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी चेति वृषभा। **गोवीथ्यामिति**। अश्विन्यः पौष्णं रेवती द्वे भद्रपदे पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि गोवीथी।

जारद्गव्यामिति। श्रवणात्प्रभृति त्रिभं नक्षत्रत्रयं श्रवणा धनिष्ठा शतभिषगिति जारद्गव्याम्। मृगाख्या त्रिभं तु मैत्राद्यम्। मैत्रमनुराधा तदाद्यं त्रिभं नक्षत्रत्रितयम्। अनुराधा ज्येष्ठा मूलमिति मृगाख्या। तुशब्दः पादपूरणे। हस्तो विशाखा त्वाष्ट्रं चित्रा। एतानि नक्षत्राण्यजा अजवीथी। अषाढाद्वयं पूर्वाषाढोत्तराषाढा चेति दहनवीथी।।२-३।।

अथ तासां मार्गप्रविभागमाह—

तिस्रस्तिस्रस्तासां क्रमादुदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः ।
तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणेन स्थितैकैका ।।४।।

नाग आदि तीन-तीन वीथियाँ क्रम से उत्तर, मध्य और दक्षिण में स्थित होती हैं। जैसे नाग, गज और ऐरावत उत्तर मार्ग में; वृष, गो और जरद्गव मध्य मार्ग में तथा मृग, अज और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित होती हैं। इन तीन-तीन वीथियों में भी एक-एक क्रम से

उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में स्थित हैं। जैसे—नाग उत्तर मार्ग में, गज मध्य मार्ग में, ऐरावत दक्षिण मार्ग में, वृष उत्तर मार्ग में, गो मध्य मार्ग में, जरद्गव दक्षिण मार्ग में, मृग उत्तर मार्ग में, अज मध्य मार्ग में और दहन दक्षिण मार्ग में स्थित है। अतः नाग उत्तरोत्तर मार्ग में, गज उत्तर-मध्य मार्ग में, ऐरावत उत्तर-दक्षिण मार्ग में, वृष मध्योत्तर मार्ग में, गो मध्यमध्य मार्ग में, जरद्गव मध्य दक्षिण मार्ग में, मृग दक्षिणोत्तर मार्ग में, अज दक्षिण मध्य मार्ग में और दहन दक्षिण-दक्षिण मार्ग में स्थित है।।४।।

तासां नागाद्यानां नवानां वीथीनां क्रमात् परिपाट्या तिस्रस्तिस्रो वीथय उदङ्मध्य-याम्यमार्गस्थाः। उत्तरे मार्गे मध्ये मध्यमे याम्ये दक्षिणे च स्थिताः। तद्यथा—नागगजैरावत्य उत्तरमार्गस्थाः। वृषभगोजारद्गव्यो मध्यममार्गस्थाः। मृगाजदहना दक्षिणमार्गस्था। तासामपि वीथीनामुत्तरमध्यमदक्षिणमार्गस्थानामुत्तरमध्यदक्षिणेनैकैका स्थिता। तद्यथा—नागा उत्तरोत्तरा। गजा उत्तरमध्यमा। ऐरावती उत्तरदक्षिणा। तथा वृषभा मध्योत्तरा। गोवीथी मध्यमध्या। जरद्गववीथी मध्यदक्षिणा। तथा मृगा दक्षिणोत्तरा। अजा दक्षिणमध्या। दहना दक्षिण-दक्षिणा इति। तथा च पराशरः—

'अथ मार्गास्त्रयो भवन्त्युत्तरमध्यमदक्षिणाः। पुनरेकैकशस्त्रिधा नव वीथय इत्याचक्षते। तत्रोत्तरे नागगजैरावत्यः। मध्ये वृषभगोजारद्गव्यः। दक्षिणे मृगाजदहनाः। तासां नागाऽऽग्नेय-याम्यवायव्यानि। गजवीथी रोहिण्यादीनि त्रीणि। चत्वारि परमैरावती। वृषभा फल्गुन्यौ। गोवीथी प्राक्प्रोष्ठपदादीनि चत्वारि। श्रवणधनिष्ठावरुणानि जारद्गवी। मृगवीथी त्वाष्ट्रहस्तम्। आजी मैत्रमिन्द्राग्न्यधिपमैन्द्रम्। मूलमषाढाद्वयं च वैश्वानरीमितीच्छन्ति।'

अत्र वराहमिहिरेण सह भेदः। तथा च गर्गः—

कृत्तिका भरणी स्वाती नागवीथी प्रकीर्तिता।
रोहिण्याद्यास्त्रिभास्तिस्रो गजैरावतवार्षभाः।।
अहिर्बुध्न्याश्विपौष्णं च गोवीथीति प्रकीर्तिता।
श्रवणत्रितयं ज्ञेया वीथी जारद्गवीति सा।।
मैत्रत्रिभा मृगाख्या स्याद्धस्तचित्राविशाखिका।
अजवीथी तु दहनाषाढायुग्ममिति स्मृता।।
पूर्वोत्तरा नागवीथी गजवीथी तदुत्तरा।
ऐरावती ततो याम्या एतास्तूत्तरतः स्मृता।
आर्षभी तु चतुर्थी स्याद् गोवीथी पञ्चमी स्मृता।
षष्ठी जारद्गवी ज्ञेया तिस्रस्ता मध्यमाश्रिताः।।
सप्तमी मृगवीथी स्यादजवीथी तथाष्टमी।
दहना नवमी ज्ञेया दक्षिणं मार्गमाश्रिताः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

वीथी नागा नाम्नी स्वातिर्भरणी च कृत्तिका चैव ।
स्वायम्भुवस्त्रिभा: स्युर्गजवीथ्यैरावती वृषभा ।।
एकपदादिचतुष्कं गौ: स्याज्जारद्रवी त्रिभा श्रवणात् ।
मैत्रात्त्रिभं मृगाऽजा हस्तश्चित्रा विशाखा च ।।
द्वे चाषाढे दहना तिस्त्र उदग्वीथय: क्रमाच्छुभदा: ।
मध्या मध्यास्तिस्त्रो याम्या: पापा मृगाद्यास्ता: ।। इति।।४।।

अत्रैव मतान्तरमाह—

वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथास्थितान् भमार्गस्य ।
नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ।।५।।

किसी का मत है कि नक्षत्रमार्ग में जिस तरह वीथी के मार्ग स्थित हैं, उसी तरह दक्षिण, उत्तर और मध्यमार्ग की कल्पना करनी चाहिए। जैसे नक्षत्रमार्ग के दक्षिण में स्थित योग तारागण दक्षिणमार्गस्थित, उत्तर में उत्तरमार्गस्थित और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है अथवा नक्षत्रमार्ग से दक्षिण में स्थित ग्रह दक्षिणमार्गगत, उत्तर में उत्तरमार्गगत और मध्य में मध्यमार्गस्थित होता है।।५।।

अपरे आचार्या भमार्गस्य नक्षत्रपथस्य यथास्थितान् येनैव प्रकारेण व्यवस्थितान् वीथीमार्गान् तेनैव प्रकारेण कथयन्ति प्रवदन्ति। यतस्तद्वत्तेनैव प्रकारेण नक्षत्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमा: स्थिता:। याम्यास्तारा दक्षिणो मार्ग:। उत्तरा: उत्तरो मार्ग:। मध्यमा मध्यमो मार्ग:। अथवा नक्षत्राद्दक्षिणभागस्थो ग्रहो दक्षिणमार्गग:। उत्तरमार्गस्थ उत्तरमार्गग:। मध्यममार्गस्थो मध्यममार्गग:। तथा च काश्यप:—

नक्षत्राणां त्रयो मार्गा दक्षिणोत्तरमध्यमा: ।
उदक्स्थास्तारका: सौम्यो मध्यमो मध्यमा: स्मृत: ।।
दक्षिणा दक्षिणो मार्गो नक्षत्रेषु प्रकीर्तित: ।
नक्षत्रात् सौम्यग: सौम्यमार्गस्थो ग्रह उच्यते।।
दक्षिणे दक्षिणो मार्गो मध्ये मध्य इति स्मृत: ।। इति।।५।।

पुनरपि मतान्तरमाह—

उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्य: ।
दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गा: ।।६।।

किसी का मत है कि भरणी आदि नव नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा) उत्तरमार्ग में, पूर्वाफाल्गुनी आदि नव नक्षत्र (पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल) मध्यमार्ग में और पूर्वाषाढा आदि नव नक्षत्र (पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) दक्षिणमार्ग में स्थित हैं।।६।।

कैश्चिदाचार्यैरिवमनेन प्रकारेण मार्गाः कृताः। ते च गर्गादयः। याम्या भरणी तदादिको नवनक्षत्रान्त उत्तरो मार्गो निगदित उक्तः। यथा—भरणीकृत्तिकारोहिणीमृगशिरआर्द्रापुनर्वसुतिष्याश्लेषामघा उत्तरो मार्गः। मध्यमस्तु भाग्याद्यः। भाग्यं पूर्वफल्गुनी तदादिको नवनक्षत्रान्तो मध्यमो मार्गः। तद्यथा—पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनीहस्तचित्रास्वातीविशाखानुराधाज्येष्ठामूलमिति मध्यमो मार्गः। दक्षिणमार्गोऽषाढादि। अषाढा पूर्वाषाढा तदादिको नवनक्षत्रान्तो दक्षिणमार्गः। तद्यथा—पूर्वाषाढोत्तराषाढा श्रवणा धनिष्ठा शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदा रेवती अश्विनी दक्षिणो मार्ग इति। तथा च गर्गः—

अश्वयुग्भोगपर्यन्तेऽषाढादौ नवके गणे।
वर्तमानः सदा क्रूरो दक्षिणे पथि वर्तते।।
शुक्रो निर्ऋतिपर्यन्ते भाग्यादौ नवके गणे।
वर्तमानश्च मध्यस्थो मध्यमे पथि वर्तते।।
भरण्यादौ मघान्ते च तृतीये नवके गणे।
वर्तमानः शुभो ज्ञेय उत्तरे पथि वर्तते।। इति।।६।।

ननु संग्रहकर्त्रा यत्सारं तदेव वक्तव्यं किं मतान्तरैः प्रयोजनमित्येतदाशङ्क्याऽऽह—

ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम्।
स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये।।७।।

ज्यौतिष शास्त्र आगमशास्त्र है। इसको आगम के विना नहीं जान सकते; अतः इसमें स्वयं सन्देह (यह ठीक है या नहीं इत्यादि) करना हमारे लिये उचित नहीं है। यतः सभी ऋषि त्रिकालदर्शी थे। नहीं कह सकते कि किस ऋषि का कैसा आगम था; अतः हमारे लिये सभी के माननीय होने के कारण बहुतों का मत संग्रह करके यहाँ कहता हूँ।।७।।

ज्योतींषि ग्रहनक्षत्रादीनि तान्यधिकृत्य कृतं शास्त्रं ज्यौतिषं तच्चागमशास्त्रमागमेन विना न ज्ञायते। अस्माकं विप्रतिपत्तौ विषये स्वयमेवाऽऽत्मना विकल्पयितुं न योग्यं न न्याय्यम्। इदं शोभनमिदमशोभनमिति। यतः सर्व एव मुनयस्त्रिकालदर्शिनः। न ज्ञायते कस्य मुनेः कीदृश आगमः। तस्मादस्माकं विकल्पयितुं न न्याय्यम्। किन्तु बहूनां प्रभूतानां मतं वक्ष्ये कथयिष्ये।।७।।

अधुना वीथीनां फलमाह—

उत्तरवीथिषु शुक्रः सुभिक्षशिवकृद् गतोऽस्तमुदयं वा।
मध्यासु मध्यफलदः कष्टफलो दक्षिणस्थासु।।८।।

यदि उत्तरवीथी में स्थित शुक्र का उदय या अस्त हो तो सुभिक्ष और मङ्गल करने वाला, मध्यवीथी में हो तो मध्यम फल देने वाला तथा दक्षिणवीथी में कष्ट देने वाला होता है।

शुक्र उत्तरवीथीषु नागगजैरावताख्यासु स्थितो यद्यर्कमण्डले अस्तमयं गतस्तस्मादेवोदयं वा गतस्तदा सुभिक्षशिवकृत्। सुभिक्षं श्रेयश्च करोति। एवं मध्यासु मध्यमासु वीथिषु ऋष-

भगोजारद्गवाख्यासु मध्यमफलदः। न शुभं नाप्यशुभं फलं करोति। तथा च दक्षिणस्थासु वीथिषु मृगाजदहनाख्यासु कष्टफलोऽनिष्टफल इति। तथा च गर्गः—

उदयास्तमयं कुर्यान्मार्गमुत्तरमाश्रितः।
सुभिक्षं च सुवृष्टिं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्।।
उदयास्तमयं कुर्यात् मध्यमं मार्गमाश्रितः।
मध्यमं चार्घसस्यं च योगक्षेमं विनिर्दिशेत्।।
उदयास्तमयं कुर्याद्दक्षिणं मार्गमाश्रितः।
धान्यस्य संग्रहं कृत्वा केदारेषु तिलान् वपेत्।।

तथा च पराशरः—

'तत्र नागवीथीगतो नागाश्रितांश्च पीडयति गजकुलानि गजवीथ्याम्। ऐरावत्यां नृपति-बलविरोधः। आर्षभ्यां वयोवित्तज्ञानबलाधिकसस्यपीडा श्लेष्मव्याधिप्रादुर्भावश्च। गोवीथ्यां सस्यगोमतां हानिर्जरद्गववीथ्यां शास्त्रविदाम्। मृगवीथ्यां मृगव्याधिः सस्यतपस्विनामपि रोगोद्भवश्च। अजवीथ्यां सस्यवर्षब्रह्मचारिणामाधिक्यम्। दहनवीथ्यां सस्यविलयनमग्नि-पित्तव्याधिसम्भवश्च'।।८।।

अथाऽऽसामपि विशेषफलमाह—

अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनमधमकष्टफलम्।
कष्टतरं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात्।।९।।

नाग आदि नव वीथियों में क्रम से अत्युत्तम, उत्तम, ऊन, (कुछ कम शुभ फल), सम, मध्यम, न्यून (किञ्चित् शुभ फल), अधम, कष्ट और कष्टतम फल होते हैं। जैसे नागवीथी में अत्युत्तम, गजवीथी में उत्तम, ऐरावतवीथी में ऊन, वृषवीथी में सम, गोवीथी में मध्यम, जरद्गववीथी में न्यून, मृगवीथी में अधम, अजवीथी में कष्ट और दहनवीथी में कष्टतम फल होता है।।९।।

सौम्याद्यासु उदगाशाद्यासु वीथिषु नागाद्यासु नवसु यथाक्रमं परिपाट्याऽनेन प्रकारेण फलमिदं ब्रूयाद्वदेत्। तद्यथा—नागायामत्युत्तममतिशुभं फलम्। गजाख्यायां वीथ्यामुत्तमं शुभफलं किञ्चिदूनं पूर्वापेक्षया। एवमूनं किञ्चिच्छुभफलमैरावत्याम्। समं मध्यमं फलमृष-भवीथ्याम्। मध्यममेव गोवीथ्याम्। न्यूनमीषदशुभं जारद्गव्याम्। अधममनिष्टं मृगवीथ्याम्। कष्टमशुभमजवीथ्याम्। कष्टतरमतिकष्टं दहनवीथ्याम्।।९।।

अथ शुक्रस्य षण्मण्डलानि भवन्ति। तेषां लक्षणं सफलमाह—

भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम्।
वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजननम्।।१०।।

अत्रोदितमारोहेद् ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात्।
भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान्।।११।।

भरणी से चार नक्षत्र (भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा) प्रथम मण्डल के होते हैं। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो संसार में सुभिक्ष तथा अंग, वंग, महिष, वाह्लीक और कलिङ्ग देशों में भय होता है। यदि प्रथम मण्डल में उदित शुक्र के ऊपर कोई ग्रह हो तो भद्राश्व, शूरसेनक, यौधेयक और कोटिवर्ष देशों के राआजों का नाश होता है।।१०-११।।

आद्यं प्रथममण्डलं भरणीपूर्वमृक्षचतुष्कम्। भरणी पूर्वा प्रथमा यस्य ऋक्षचतुष्कस्य तद्भरणीपूर्वम्। भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरश्चेति। तच्च सुभिक्षकरं सुभिक्षं करोति। तथा वङ्गा अङ्गा महिषा बाह्लिकाः कलिङ्गाः। एषां ये देशास्तेषु देशेषु भयजननं भीतिं जनयत्युत्पादयति।

अत्रास्मिन् मण्डले सितं शुक्रमुदितं सूर्यमण्डलादुद्गतं यद्यपि परोऽन्यो ग्रह आरोहेदुपरि पतेत्। अग्रतस्तिष्ठतीत्यर्थः। तदा भद्राश्वा जनाः। शूरसेनकाः। यौधेयकाः। कोटिवर्षाः। एतेषां ये नृपा राजानस्तान् हन्यान्नाशयेत्।।१०-११।।

अथ द्वितीयमण्डलं सफलमाह—

भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै ।
विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ।।१२।।

अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकश्वजीविगोमन्तान् ।
गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ।।१३।।

आर्द्रा से चार नक्षत्र (आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा) तक द्वितीय मण्डल होता है। यदि इस मण्डल में शुक्र का उदय या अस्त हो तो अधिक वृष्टि और धान्यों की विशेष उत्पत्ति होती है; ब्राह्मणों के लिये अशुभकारी और दुष्टों के लिये तो विशेष अशुभकारी होता है। यदि इसमें उदित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो म्लेच्छ मनुष्य, वन में रहने वाले, कुत्तों से आजीविका करने वाले, गौ रखने वाले, गोनर्द (पतञ्जलि की जन्मभूमि चिदम्बरम् में निवास करने वाले), अधम कर्म करने वाले, शूद्र, विदेह के देश (मिथिला) में निवास करने वाले—इन सबों को अनीति स्पर्श करती है (ये सब उपद्रवयुक्त होते हैं)।।१२-१३।।

आर्द्राद्यमार्द्राप्रथमं भचतुष्टयं नक्षत्रचतुष्कं द्वितीयं मण्डलं तच्चामिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै भवति। अमितमपरिमितमम्बु जलं सस्यानां च सम्पदं करोति। विप्राणां ब्राह्मणानामशुभकरमनिष्टफलदम्। क्रूरचेष्टानां विषमस्वभावानां विशेषतो न शुभकरम्।

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन परेण ग्रहेणाऽऽक्रान्ते रुद्धे शुक्रे म्लेच्छा जनाः। आटविका अरण्यवासिनः। श्वजीविनश्च श्वभिर्ये जीवन्ति। गोमन्तो विद्यमानगावः। गोनर्दा जनाः। नीचा अधमकर्मकराः। शूद्राः। वैदेहा जनाः। एतान् सर्वाननयः स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थः।।१२-१३।।

अथ तृतीयं मण्डलं सफलमाह—

विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः ।
क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसङ्करकरश्च ॥१४॥

पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्येनाविकान् शबरशूद्रान् ।
पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥१५॥

मघा से पाँच नक्षत्र (मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा) तक तृतीय मण्डल होता है। इसमें उदित शुक्र धान्य का नाश करने वाला, दुर्भिक्ष और चोरों का भय करने वाला, अधम कर्म करने वालों की उन्नति करने वाला तथा वर्णसंकर की उत्पत्ति करने वाला होता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो वृक्ष, शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिम शूलिक देश और वन में रहने वाले, द्रविड तथा समुद्रतीर में रहने वालों का नाश करता है।।१४-१५।।

तृतीयमण्डलं मघादिपञ्चकम्। मघा आदौ यस्य ऋक्षपञ्चकस्य तत्। तत्र शुक्र उदितः सूर्यमण्डलादुद्गतो विचरंस्तिष्ठन् सस्यप्रणाशकृत् सस्यानां प्रणाशं करोतीति सस्यप्रणाशकृत्। तथा क्षुद् दुर्भिक्षम्। तस्करश्चौरः। आभ्यां भयं जनयति उत्पादयति। तथा नीचानामुन्नतिं प्राधान्यं करोति। सङ्करकरश्च वर्णसङ्करं करोति।

पित्र्याद्ये मघाद्ये। अन्येनापरेणावष्टब्धो रुद्धो यदि भवति तदाऽऽविकानविसम्भूतान् शबरान् जनान्। शूद्रान्। पुण्ड्रा अपरान्त्याः शूलिका जनाः। वनवासिनो वनेचराः। द्रविडा जनाः। सामुद्राः समुद्रतीरवासिनः। एतान् हन्ति घातयति।।१४-१५।।

अथ चतुर्थं मण्डलं सफलमाह—

स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम् ।
ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥१६॥

अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून् ।
प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणान् शूरसेनांश्च ॥१७॥

स्वाती से तीन नक्षत्र (स्वाती, विशाखा और अनुराधा) तक चतुर्थ मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिये सुभिक्ष तथा उन्नति करने वाला होता है। पर मित्रों में परस्पर द्वेष उत्पन्न कराता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो किरातों के स्वामी की मृत्यु, इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न, प्रत्यन्त (म्लेच्छ देश), अवन्ती, पुलिन्द, तङ्गण और शूरसेन देश में निवास करने वालों का नाश करता है।।१६-१७।।

स्वात्याद्यं स्वातिपूर्वकं भत्रितयं चतुर्थं मण्डलम्। एतदभयकरं भयं न करोति। व्याध्यादिकृता भीतिं नोत्पादयति। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च सुभिक्षस्याभिवृद्धये भवति।

एतेषां वृद्धिं करोति। तथा मित्रभेदाय भवति मित्राणां सुहृदां परस्परं भेदमप्रीतिं जनयति।

अत्रास्मिन् मण्डले अन्येन ग्रहेणाक्रान्ते शुक्रे मृत्युः किरातभर्तुः किराताधिपस्य। पिनष्टि सञ्चूर्णयति तथा चेक्ष्वाकून् जनान्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। अवन्तयो जनाः। पुलिन्दाः। तङ्गणाः। शूरसेनाः। एतांश्च पिनष्ट्येव।।१६-१७।।

अथ पञ्चममण्डलं सफलमाह—

ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्कररोगदं प्रबाधयते।
काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीनवन्तींश्च ।।१८।।

अत्रारोहेद् द्रविडाभीराम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्।
नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ।।१९।।

ज्येष्ठा से पाँच नक्षत्र (ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा और श्रवण) तक पञ्चम मण्डल होता है। यदि इसमें शुक्र का उदय या अस्त हो तो दुर्भिक्ष, चोर और रोग का भय होता है तथा काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी नदी के तट और अवन्ती देशवासियों को पीड़ित करता है। यदि इस मण्डल में स्थित शुक्र किसी अन्य ग्रह से आक्रान्त हो तो द्रविड, आभीर (शबर), अम्बष्ठ, त्रिगर्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवीरक देशवासियों का तथा काशिराज का नाश करता है।।१८-१९।।

ज्येष्ठाद्यं ज्येष्ठापूर्वकं पञ्चर्क्षं पञ्चनक्षत्रं पञ्चमं मण्डलम्। तच्च क्षुत्तस्कररोगदम्। क्षुद् दुर्भिक्षम्। तस्कराश्चौराः। रोगा गदाश्च। एतान् ददाति। अथ काश्मीरान् जनान्। अश्मकान्। मत्स्यान्। एतान् जनान्। चारुदेवीन्। चारुदेवी नदी तत्तटनिवासिन इत्यर्थः। अवन्तीन् जनान् सचारुदेवीन् चारुदेव्या सहितान् एतान् प्रबाधयते उपतापयति।

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत् तदा द्रविडान् जनान्। आभीरान्। अम्बष्ठान्। त्रिगर्तान्। सौराष्ट्रान्। एतान्नाशयति क्षयं नयति। तथा सिन्धुसौवीरकांश्च जनान् नाशयत्येव। काशीश्वरस्य काशिराजस्य च वधो मरणं भवति।।१८-१९।।

अथ षष्ठं मण्डलं सफलमाह—

षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्।
भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित् सभयम् ।।२०।।

अत्रारोहेच्छूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते।
वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ।।२१।।

धनिष्ठा से छः नक्षत्र (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी) तक षष्ठ मण्डल है। इसमें यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो शुभ होता है। पृथ्वी बहुत धन, गौ और धान्यों से व्याप्त होती है; परन्तु कहीं-कहीं पर भय की मात्रा रहती है। यदि इस मण्डल में शुक्र किसी ग्रह से आक्रान्त हो तो शूलिक, गान्धार, अवन्ती—

इन देशों में स्थित मनुष्यों को पीड़ा होती है। विदेह देश-स्थित जनों का मरण होता है तथा गुहा में निवास करने वाले, यवन, शक और दासों की वृद्धि होती है।।२०-२१।।

धनिष्ठाद्यं धनिष्ठापूर्वकं षण्नक्षत्रम्—धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदा, रेवती, अश्विनीति। एतत् षष्ठं मण्डलम्। तच्च शुभं शुभफलप्रदम्। भूरिधनगोकुलाकुलम्। भूरि बहुलम्। धनं वित्तम्। गोकुलानि गोवाटाः। एतैराकुलं सोद्यमं व्याप्तम्। अनल्पधान्यं प्रभूतशालिसंयुक्तम्। क्वचित् क्वचिच्च सभयं भीतिसंयुक्तं न सर्वत्र।

अत्रास्मिन् मण्डले यद्यपरो ग्रहः सितं शुक्रमारोहेत्तदा शूलिकाः। गान्धाराः। अवन्तयः। एते जनाः प्रपीड्यन्ते। तथा वैदेहानां जनानां वधो मरणम्। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। यवनाः। शकाः। दासाः कर्मकराः। एतेषां परिवृद्धिर्भवति।।२०-२१।।

अथैषां मण्डलानां विशेषफलमाह—

अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्।
पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥२२॥

पूर्वोक्त मण्डलों में स्वाती आदि (चतुर्थ) और ज्येष्ठा आदि (पञ्चम) मण्डल पश्चिम दिशा में शुभ करने वाले होते हैं। मघा आदि (तृतीय) मण्डल पूर्व दिशा में शुभद होता है। शेष तीन मण्डलों (प्रथम, द्वितीय और षष्ठ) का यथोक्त फल समझना चाहिये।।२२।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि स्वात्याद्यं मण्डलं ज्येष्ठाद्यं च तच्छुभदम्। एतदुक्तं भवति—अस्मिन् मण्डलद्वये शुक्र उदितः पश्चिमायां शुभफलदः। एवमेव पित्र्याद्यं मघाद्यं मण्डलं पूर्वस्यां दिशि शुभदम्। शेषाण्यन्यानि मण्डलानि यथोक्तफलदानि यथा प्रागुक्तं फलं तदेव प्रयच्छन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'आद्यरोहितदारुणविरोचनोर्ध्वदण्डतीक्ष्णान्येतानि षण्मण्डलानि। तत्र भरण्यादीनि चत्वारि चतुर्नक्षत्राणि। ज्येष्ठाद्ये द्वे पञ्चनक्षत्रे। आद्यमेव मण्डलचतुष्टयं वातमाहुस्तीक्ष्णं व्याडमार्गम्। ऊर्ध्वदण्डं वैश्वानरमृते श्रवणात्। अथ मण्डलेषु विचरन् क्रमाद् गोब्रह्मचारि-नृपतनयसुहृद्भूपालप्रजानामुपतापायेति। तेष्वेवोदयास्तमयौ कुर्वन् प्रथमेऽतीवसुभिक्षा-याङ्गवङ्गशबरकलिङ्गाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढोऽसौ माञ्जिष्ठपुरुषादशूरसेनपटच्चर-पण्यागाराभावाय। द्वितीयेऽन्नसम्पत्प्रदोऽवन्त्यश्मकमालवपाण्ड्यकैकयोपद्रवाय च। तृतीये शकसौराष्ट्रनृपानयायान्यग्रहारूढः काश्मीरयवनक्षुद्रमालवकिरातशकाननयेन स्पृशति। चतुर्थे सुवर्षसस्यक्षेमाणि विधत्तेऽन्यग्रहारूढः सुभगांश्चित्रांश्चोपतापयति। पञ्चमे मगधान् शूद्रान् जनाननयैः स्पृशति। अत्रैवान्यग्रहारूढो व्याधिभयशस्त्रदुर्भिक्षावर्षाणि सृजति। विशेषतस्तु कुरुपाञ्चालशाल्वेयशूरसेनपटच्चराहारभूतयोऽभिपीड्यन्ते। षष्ठे बालगर्भान् बालान् शूद्रांश्च हिनस्ति। यद्यारोहेत तदा काम्बोजैः सैन्धवो नृपतिः पराजयेत आवन्त्याश्मकाधिपती चोप-सृज्येते।' अत्र मतभेदो वराहमिहिरेण सहास्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

भरणीरौद्रमघाऽनिलशक्रधनिष्ठादिसम्प्रवृत्तेषु।
चारोदयः शुभो मण्डलेषु हित्वैन्द्र्यपित्र्याद्ये।। इति।।२२।।

अथ दिवादृष्टस्य शुक्रस्य विशेषफलमाह—

दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के भयकृत् क्षुद्रोगकृत्समस्तमहः ।
अर्द्धदिवसे च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ।।२३।।

यदि शुक्र सूर्यास्त से पहले दिखाई दे तो भय करता है, दिन भर दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और रोग करता है तथा मध्याह्न काल में चन्द्र के साथ दिखाई दे तो राजा, सेना और नगर में भेद-भाव उत्पन्न करता है।।२३।।

शुक्रो भार्गवोऽनस्तमिते नास्तमितेऽर्के सूर्ये दृष्टोऽवलोकितो भयकृद् भयं करोति। तथा समस्तमहः सकलं दिनं दृष्टः क्षुद्रोगकृत्। क्षुद् दुर्भिक्षम्। रोगान् गदांश्च करोति। तथा अर्द्धदिवसे मध्याह्नसमये सेन्दुः सचन्द्रः शुक्रो दृष्टो नृपबलपुरभेदकृद् भवति। नृपस्य राज्ञो बलस्य सेनायाः परस्य नगरस्य भेदं पृथग्भावं करोति। तथा च पराशरः—

अहः सर्वं यदा शुक्रो दृश्यतेऽथ महाग्रहः।
तदान्वागन्तुभिर्ग्रामा बाध्यन्ते नगराणि च।। इति।।२३।।

अथ शुक्रस्य नक्षत्राणां भेदनात् फलमाह—

भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः ।
अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ।।२४।।

यदि कृत्तिका नक्षत्र का भेदन करते हुए शुक्र गमन करे तो किनारा काटने वाली, जल धारण करने वाली नदियों के द्वारा ऊबड़-खाबड़ स्थल लुप्त होकर पृथ्वी समान हो जाती है अर्थात् नदी की बाढ़ से पृथ्वी भर जाती है।।२४।।

अनलर्क्षं कृत्तिकां भिन्दन् भित्त्वा यदि शुक्रो गतस्तदा सरिद्भिर्नदीभिः कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः कूलातिक्रान्तं वारि जलं वहन्ति याः। आत्मीयं प्रवाहमतिक्रम्यातिप्रभूतं जलं वहन्तीत्यर्थः। तथाभूताभिः। धात्री भूरव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा भवति। न व्यक्तमव्यक्तम्। तुङ्गमुच्चम्। निम्नं नीचम्। अव्यक्तौ तुङ्गनिम्नौ यस्याः। अलक्षितोच्चनीचप्रदेशेत्यर्थः।।२४।।

अथ रोहिण्याः शकटभेदे फलमाह—

प्राजापत्ये शकटे भिन्ने कृत्वेव पातकं वसुधा ।
केशास्थिशकलशबला कापालमिव व्रतं धत्ते ।।२५।।

यदि रोहिणीशकट का भेदन करते हुये शुक्र गमन करे तो पातकी (ब्रह्महत्या करने वाले की तरह) होकर पृथ्वी केश और अस्थिखण्डों से शबल (विचित्र वर्ण की) होकर कापालिक की तरह व्रत धारण करती है। जिस तरह ब्रह्महत्या करने वाले मनुष्य पापशान्ति के लिये मनुस्मृति आदि के अनुसार केश और अस्थिखण्डों को धारण करके

कापालिक-व्रत धारण करते हैं, उसी तरह केश और अस्थिखण्डों से व्याप्त होकर पृथ्वी कापालिक की तरह व्रत धारण करती है अर्थात् पृथ्वी पर अत्यधिक मरी पड़ती है।।२५।।

प्राजापत्ये शकटे रोहिण्या: शकटे भिन्ने। शकटभेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम्। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विक्षेपोंऽशद्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्या:।।

तथा च भानुभट्ट:—

वृषस्यांशे सप्तदशे विक्षेपो यस्य दक्षिण:।
अंशद्वयाधिको भिन्द्याद्रोहिण्या: शकटं तु स:।।

एवं रोहिण्या: शकटे शुक्रेण भिन्ने वसुधा भू: पातकं ब्रह्महत्यामिव कृत्वा केशैर्मूर्द्ध-जैरस्थिशकलैरस्थिखण्डै: शबला मिश्रितशुक्लकृष्णा भवति। अत: कापालं व्रतमिव धत्ते धारयति। ब्रह्महत्याया: कापालं व्रतं प्रायश्चित्तम्। कापालिकश्च केशास्थिशकलै: शबलो भवति।।२५।।

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह—

सौम्योपगतो रससस्यसंक्षयायोशना: समुद्दिष्ट: ।
आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकर: ॥२६॥

यदि शुक्र मृगशिरा नक्षत्र में आवे तो रस (मधुर आदि) और धान्यों का नाश करता है। यदि आर्द्रा नक्षत्र में आवे तो कोशल तथा कलिङ्ग देश का नाश और अतिवृष्टि करता है।

उशना: शुक्र:। सौम्योपगतो मृगशिरसि प्राप्तो रसानां मधुरादीनां सस्यानां च संक्ष-याय विनाशाय समुद्दिष्ट: कथित:। आर्द्रागतस्तु कोशलान् कलिङ्गांश्च हन्ति तथा सलिलं जलं निकरं निवहं करोति। अतिवृष्टिं करोतीत्यर्थ:।।२६।।

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह—

अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननय:।
पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधररणविमर्दश्च ॥२७॥

यदि शुक्र पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित हो तो अश्मक और विदर्भ देश में अनय (उपद्रव) होता है। यदि शुक्र पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो अधिक वृष्टि तथा विद्याधरों के युद्ध में विमर्द होता है।।२७।।

पुनर्वसुस्थे सिते। अश्मकानां जनानां वैदर्भाणां च महाननय उपद्रवो भवति। तथा पुष्ये तिष्यस्थे सिते पुष्टा बह्वी वृष्टिर्भवति। तथा विद्याधराणां देवयोनीनां रणे संग्रामे विमर्दो भवति।।२७।।

अथाश्लेषामघयोराह—

आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्चरन् शुक्रः ।
भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद् भूरिवृष्टिकरः ॥२८॥

आश्लेषा नक्षत्र में गमन करता हुआ शुक्र लोगों को सर्पों से अत्यन्त पीड़ित करता है तथा मघा नक्षत्र को भेदन करते हुये शुक्र हस्तिपति को पीड़ित और अतिवृष्टि करता है।

शुक्र आश्लेषासु चरंस्तिष्ठन् भुजङ्गमेभ्यः सर्पेभ्यो लोकानां दारुणां तीव्रां पीडां वहेत् कुर्यात्। मघां भिन्दन् विदारयन् महामात्राणां हस्तिसाधनपतीनां दोषकृद् दोषं करोति। केचिन्महामात्याः प्रधाना इतीच्छन्ति। भूरिवृष्टिकरो बहुवर्षकरः। भेदलक्षणं गणितकारैरुक्तम्—

छादयति योगतारां मानार्द्धोनाधिकाद् भविक्षेपात्।
स्फुटविक्षेपो यस्याधिकोनको भवति समदिक्स्थः।।
विक्षेपोऽन्त्ये सौम्ये तृतीयतारां भिनत्ति पित्र्यस्य।
इन्दुर्भिनत्ति पुष्यं पौष्णं वारुणमविक्षिप्तः।। इति।।२८।।

अथ पूर्वोत्तरफल्गुन्योराह—

भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय ।
आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी ॥२९॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र को भेदन करता हुआ शुक्र शबर-पुलिन्दजनों का नाश और अतिवृष्टि करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का भेदन करता हुआ शुक्र कुरु देश में निवास करने वाले, जांगल (स्वल्पोदक स्थान) में निवास करने वाले और पञ्जाबियों का नाश तथा वृष्टि करता है।।२९।।

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां शबरा जनाः पुलिन्दाश्च। एतेषां प्रध्वंसकरो विनाशकरः। अम्बुनिवहमोक्षाय। अम्बुनो जलस्य निवहं वेगं मुञ्चति। बहुजलं वर्षतीत्यर्थः। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां कुरून् जनान्। जाङ्गलं स्वल्पोदकस्थानम्। तत्र ये निवसन्ति प्राणिनः। पाञ्चालान् जनान्। एतान् हन्ति। सलिलं जलं ददातीति सलिलदायी। वर्षतीत्यर्थः।

अथ हस्तचित्रयोराह—

कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः ।
कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥३०॥

हस्त नक्षत्र में स्थित शुक्र कौरवों और चित्रकारों को पीड़ित करता तथा अवृष्टि करता है एवं चित्रा नक्षत्र में स्थित शुक्र कुआँ बनाने वालों और पक्षियों को पीड़ित करता तथा सुन्दर वृष्टि करता है।।३०।।

हस्ते स्थिते शुक्रे कौरवा जनाः। चित्रकराश्चित्रज्ञाः शिल्पिनः। एषां पीडा भवति

जलस्योदकस्य च निरोधोऽवर्षणम्। चित्रास्थे शुक्रे कूपकृतां कूपकराणां खे अण्डजानां पक्षिणां च पीडा भवति। वृष्टिश्च शोभना कालोपयोग्या भवति।।३०।।

अथ स्वातिविशाखयोराह—

स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः।
ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात्॥३१॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित शुक्र अतिवृष्टि तथा दूत, वाणिज्य कर्म करने वाले, नाव चलाने वाले—इनमें उपद्रव फैलाता है। विशाखा नक्षत्र में स्थित शुक्र सुन्दर वृष्टि तथा वाणिज्य कर्म करने वालों को पीड़ित करता है।।३१।।

स्वातौ स्थिते शुक्रे प्रभूता बह्वी वृष्टिर्भवति। दूता गमागमिनः। वणिजः क्रयविक्रयज्ञाः नाविका नौकर्णधाराः। एताननयः स्पृशति। सोपद्रवा भवन्तीत्यर्थः। ऐन्द्राग्ने विशाखायां स्थिते सुवृष्टिः शोभना वृष्टिर्भवति। तथा वणिजां किरातानां च भयं भीतिं विजानीयाद् विन्द्यात्।।३१।।

अथानुराधाज्येष्ठामूलेष्वाह—

मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः।
मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः॥३२॥

अनुराधा नक्षत्र में स्थित शुक्र क्षत्रियों में विरोध, ज्येष्ठा में क्षत्रियों में प्रधान का नाश और मूल में स्थित शुक्र प्रधान वैद्यों का नाश करता है तथा इन तीनों नक्षत्रों में जब तक शुक्र बैठा रहता है तब तक अनावृष्टि करता है।।३२।।

मैत्रेऽनुराधायां क्षत्रविरोधः क्षत्रियाणामुपद्रवः। ज्येष्ठायां स्थिते शुक्रे क्षत्रमुख्यानां क्षत्रियप्रधानानां सन्ताप उपद्रवः। मूले मौलिकानां मूलद्रव्यविक्रयिणां भिषजां वैद्यानां च सन्तापः। एतेषु त्रिष्वप्यनुराधाज्येष्ठामूलेष्वनावृष्टिरवर्षणं भवति।।३२।।

अथ पूर्वाषाढोत्तराषाढश्रवणधनिष्ठास्वाह—

आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति।
श्रवणे श्रवणव्याधिः पाखण्डिभयं धनिष्ठासु॥३३॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शुक्र जल में उत्पन्न जीवों को पीड़ित, उत्तराषाढ़ा में रोगों की उत्पत्ति, श्रवण में कर्णपीड़ा और धनिष्ठा में स्थित शुक्र पाखण्डियों में भय उत्पन्न करता है।।३३।।

आप्ये पूर्वाषाढायां सलिलजैर्जलोद्भवैश्च प्राणिभिर्द्रव्यैश्च प्राणिनां पीडा भवति। सलिलजानां पीडा भवति इति केचित्। विश्वेशे उत्तराषाढायां स्थिते शुक्रे व्याधयो रोगाः प्रकुप्यन्ति बाहुल्येन भवन्ति। श्रवणे स्थिते श्रवणव्याधिः कर्णे रोगो भवति। धनिष्ठासु स्थिते पाखण्डिभयम्। पाखण्डिनो वेदबाह्याः तेषु भयं भवति।।३३।।

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदयोराह—

शतभिषजि शौण्डिकानामजैकभे द्यूतजीविनां पीडाम्।
कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलिलम् ॥३४॥

शतभिषा नक्षत्र में स्थित शुक्र शौण्डिकों (मद्यविक्रेताओं = कलवारों) को पीड़ित करता है। पूर्वभाद्रपदा में स्थित शुक्र जुआरी लोग, कुरु तथा पञ्जाब देश में स्थित जनों को पीड़ित और वृष्टि करता है।।३४।।

सितः शुक्रः शतभिषजि स्थितः शौण्डिकानां मद्यपानप्रसक्तानां पीडाकरः। अजैकभे पूर्वभद्रपदायां स्थितो द्यूतजीविनां द्यूतेन ग्लहेन ये जीवन्ति तेषां पीडाकरः। कुरवः पाञ्चालाश्च जनास्तेषामपि पीडां करोति। अपिशब्दो वार्थे। अस्मिन्नक्षत्रे स्थितः सितः शुक्रः सलिलं जलं करोति।।३४।।

अथोत्तरभद्रपदारेवत्यश्विनीभरणीष्वाह—

आहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम्।
अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥३५॥

उत्तरभाद्रपदा में स्थित शुक्र फल-मूलों को, रेवती में पथिकों को, अश्विनी में अश्वपालकों को तथा भरणी में स्थित शुक्र किरात तथा यवनों को पीड़ित करता है।।३५।।

आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां फलानां मूलानां च तापकृत् पीडाकरः। रेवत्यां यायिनां पथिकानां च पीडाकरः। अश्विन्यां हयपानामश्वपतीनां तापकृत्। याम्ये भरण्यां किरातानां यवनानां जनानां च तापकृत् तापकरः। तथा च काश्यपः—

भेदयेत् कृत्तिकां शुक्रो बहुतोयं विमुञ्चति।
रोहिण्यां मरणं घोरं गृध्राकुलभयाकुलम्।।
मृगे तु सर्वसस्यानां क्षयं कुर्याद् भृगोः सुतः।
आर्द्रासु च कलिङ्गानां कोशलानां भयावहः।।
पुनर्वसौ विदर्भाणां पीडयत्युशनास्तथा।
पुष्ये पुष्टिं समायान्ति जनाः सस्यानि वृष्टयः।।
आश्लेषासूशना भेदात् पीडयेद् भुजगैः प्रजाः।
मघाभेदकरः शुक्रो महामात्रांश्च पीडयेत्।।
भाग्ये शबरविध्वंसं बहुवृष्टिं प्रमुञ्चति।
आर्यम्णे तु कुरुक्षेत्रं पाञ्चालांश्चोपतापयेत्।।
हस्ते चित्रकराणां तु पीडा वृष्टिक्षयो भवेत्।
सुवृष्टिं कूपकृत्पीडां चित्राभेदं यदा व्रजेत्।।
स्वास्तिभेदे सुवृष्टिं च वणिग्नाविकभीतिदः।
विशाखायां सुवृष्टिं च मैत्रे मित्रं विरुध्यति।।

ऐन्द्रे पौरविरोधः स्यान्मूले तु भिषजां भयम्।
आप्ये वैश्वे व्याधिभयं वैष्णवे कर्णवेदना।।
धनिष्ठासु कुकर्मस्थान् वारुणे शौण्डिकक्षयम्।
प्रोष्ठपादे पूर्वसक्तानहिर्बुध्न्ये फलक्षयः।।
यायिनां सनृपाणां च पौष्णे ज्ञेयं महद्भयम्।
अश्विन्यां हयपीडाकृद् भरण्यां कृषिजीविनाम्।। इति।

तथा च पराशरः—

'भाग्यार्यमानिलेन्द्राग्निप्रोष्ठपदरौद्रयाम्यतिष्यगतः स्निग्धो रश्मिवान् वर्षकरः। तत्र प्राजापत्यत्वाष्ट्रेन्द्राग्निमैत्राणामुदग्मध्यदक्षिणेन व्रजेत् क्षेमसस्यवृष्टीनां प्रकृष्टमध्यान्तफलो भवति। पित्र्याग्नेययोरुदग्मध्यगतः प्रजाहिताय। एवमेवाषाढादित्यरोहिणीषु मध्यगः पुररोधाय च'।।३५।।

अथ शुक्रस्य तिथिष्वस्तमयोदयफलमाह—

चतुर्दशीं पञ्चदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिं भृगोः सुतः।
यदा व्रजेद् दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते ।।३६।।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, अमावास्या और कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में शुक्र का उदयं या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण होती है।।३६।।

भृगोः सुतः शुक्रस्तमिस्रपक्षस्य कृष्णपक्षस्य चतुर्दशीं तिथिं पञ्चदशीममावस्याष्टमीं वा समाश्रित्य यदा दर्शनमुदयं व्रजेत् सूर्यमण्डलादुदग्च्छति, अथवा अस्तमयमेति तत्रैवादर्शनमायाति तदा मही भूः, वारिमयीव जलमयीव लक्ष्यते दृश्यते। अतिवृष्टिर्भवतीत्यर्थः। तथा च काश्यपः—

कृष्णपक्षे ह्यमावस्याचतुर्दश्यष्टमीषु च।
उदयं भार्गवः कुर्यात्तदा वृष्टिं प्रमुञ्चति।।

पराशरश्चात्र विशेषमाह—

कार्तिके तु यदा मासि कुरुतेऽस्तमयोदयौ।
तदाह्नां नवतिं पूर्णां देवो भुवि न वर्षति।।
वर्तमाने यदा शुक्रे कृत्तिकासु बृहस्पतिः।
उदेति तु तदा देवस्तां समां वर्षते समाम्।।
अस्तोदये तु शुक्रस्य यदि चन्द्रदिवाकरौ।
आवृत्तिमार्गं कुर्वति तदा वर्षति भार्गवः।।
अवार्षके भे विचरन् यदि वर्षति भार्गवः।
वार्षकर्क्षगतो व्यक्तं षोडशार्चिर्न वर्षति।। इति।।३६।।

अथ गुरुशुक्रयोरन्योन्यं सप्तमस्थयोः फलमाह—

गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः
परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता
न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥३७॥

यदि बृहस्पति और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में स्थित हों तो रोग और अनेक प्रकार के भय से प्रजागण पीड़ित होते हैं तथा अवृष्टि होती है।।३७।।

गुरुर्जीवः। भृगुः शुक्रः। एतावपरपूर्वकाष्ठयोः। अपरा पश्चिमा। पूर्वा प्राची। काष्ठा दिक्। पश्चिमपूर्वयोर्दिशोः परस्परमन्योन्यं यदि च सप्तमराशिगौ भवतः। कदाचित् पूर्वकाष्ठागतः शुक्रोऽपरकाष्ठागतो गुरुः। कदाचित् पूर्वकाष्ठागतो गुरुरपरकाष्ठागतः शुक्रः। नन्वत्रापरपूर्वकाष्ठयोरित्यनेनैव सिद्धे सप्तमराशिग्रहणं किमर्थम्? उच्यते। यदि सप्तमराशिग्रहणं न क्रियते तदापरपूर्वस्थावन्येनापि प्रकारेण भवतः। एकः प्राक्कपाले स्थितोऽपरोऽपरकपालस्थः। तदापरपूर्वकाष्ठास्थौ भवत इत्यतः सप्तमराशिग्रहणं कृतम्। तेनैतज्ज्ञापयति—यथोदयास्तयो रेखासक्तयोरयं योगो भवति नान्यथा। एवं परस्परं सप्तमराशिगौ यदा तस्मिन् काले प्रजा जनाः। रुग्भयशोकपीडिताः। रोगैर्भयेन शोकेन दुःखेन च पीडिता उपहताः। पुरन्दरोज्झितमिन्द्रोत्सृष्टं वारि जलं न पश्यन्ति नावलोकयन्ति। अवृष्टिर्भवतीत्यर्थः।

नन्वत्र यथासंख्येनैवापरपूर्वकाष्ठागौ गुरुभृगू यदा भवतस्तदायं योगो भवति यथा, तथा भृगुर्गुरुश्चेत्यनया पाठविप्रतिपत्त्या वा। यथासंख्येनैव कस्माद्योगो न भवति कथमनियमेन भवति। तथा च पराशरेण गुरुभृगू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहतौ। तथा च—

उदयास्तमयस्थौ तु यदा शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ स्यातां जनयेतां तदा भयम्।।

ऋषिपुत्रेण च भृगुगुरू अपरपूर्वकाष्ठास्थावभिहितौ। तथा चाह—

पृष्ठतस्तूशना यत्र पुरस्ताच्च बृहस्पतिः।
न च कश्चिद् ग्रहो मध्ये बुधो वाप्यथ दृश्यते।।
एकमार्गसमापन्नौ प्रेक्षमाणौ परस्परम्।
ते दिशौ पीडिते विन्द्यात् त्रीन् पक्षानभियोजयेत्।।

अत उभयदर्शनान्निश्चीयते तथा ऋषीणामत्रैकवाक्यता नास्त्येवेति स्वयमेवमङ्गीकृतं तैरिति। वयं त्वत्र ब्रूमः—

उभयदर्शनाद् गुरुभृगुभ्यामनियमोऽत्राऽऽचार्यस्याभिप्रेतस्तथा बृहज्जातकेऽपि प्रयोगः कृत इति। 'शूरस्तब्धौ विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुविज्ञौ। चार्वङ्गेष्टौ रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु' इत्यत्र च नियमव्याख्यैव यथा तथा कृतैव। अत्रापि यथा तथा गुरुभृग्वोरपरपूर्वकाष्ठास्थयोरित्यनियमव्याख्यैव ज्यायसी। सति वा नियमे पाठविप्रतिपत्तिचोदने नावत-

रतीति। तथा च भद्रबाहौ पठ्यते—

प्रत्यूषे प्राक्स्थितः शुक्रः पृष्ठतश्च बृहस्पतिः ।
यदाऽन्योन्यं निरीक्षेते तदा चक्रं प्रवर्तते।।
धर्मार्थकामा लुप्यन्ते प्रस्तावा वार्णसङ्करा: ।
नृपाणां च समुद्योगो यतः शुक्रस्ततो जयः।।
अवृष्टिश्च भयं रोगं दुर्भिक्षं च तदा भवेत्।
आढकेन तु धान्यस्य ग्राहकः स्यात्तदा प्रियः।।
यदा तु पृष्ठतः शुक्रः पुरतश्च बृहस्पतिः ।
यदा वालोकयेतां तौ तावदेव फलं भवेत्।।

तथा च गर्गः—

अन्योन्यमस्तसंस्थौ तु यदि शुक्रबृहस्पती।
पूर्वसन्ध्यागतौ घोरं जनयेतां महद्भयम्।।

तस्मात् साधूक्तं गुरुः शुक्रः पृष्ठतः पुरतो वेति।।३७।।

अथ सर्वैर्ग्रहैः शुक्रस्याग्रवर्तिभिः फलमाह—

यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः
सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः ।
नृनागविद्याधरसङ्गराः तदा
भवन्ति वाताश्च समुच्छ्रितान्तकाः ॥३८॥
न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः
क्रियासु सम्यग् न रता द्विजातयः ।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो
भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम् ॥३९॥

यदि शुक्र के आगे बृहस्पति, बुध, मंगल और शनि हों तो मनुष्य, नाग और विद्याधरों में युद्ध, भयङ्कर वायु से वृक्षादिकों का नाश, मित्रों में परस्पर मित्रता का अभाव, ब्राह्मणों में कर्म का अभाव, वर्षा का बिल्कुल अभाव और वज्रपातों से पर्वतों का नाश होता है।।३८-३९।।

यदा यस्मिन् काले जीवबुधारसूर्यजाः। जीवो बृहस्पतिः। बुधः सौम्यः। आरो भौमः। सूर्यजः शनैश्चरः। एते सर्व एव सितस्य शुक्रस्याग्रपथानुवर्तिनः स्थिताः। पुरःसरा भवन्तीत्यर्थः। तदा तस्मिन् काले नृणां मनुष्याणां नागानां पन्नगानां विद्याधराणां देवयोनीनां सङ्गराः संग्रामा भवन्ति। तथा वाता वायवः समुच्छ्रितान्तकाः। समुच्छ्रितानां पर्वतानां वृक्षादीनामन्तकाः शृङ्गाग्रपातिनो भवन्तीति।

न मित्रभाव इति। सुहृदो मित्राणि न मित्रभावे सुहृद्भावे व्यवस्थिता: संस्थिता भवन्ति। मित्रतां न भजन्त इत्यर्थ:। तथा द्विजातयो ब्राह्मणा: सम्यग्यथावद्विहितासु क्रियास्वग्निहोत्राद्यासु न रता: सक्ता न भवन्ति। तथा वासव इन्द्रोऽल्पं स्तोकमप्यम्बु जलं न ददाति न प्रयच्छति। न किञ्चिद्वर्षतीत्यर्थ:। भूभृतां पर्वतानां वज्रेणोल्कया शिरांसि मस्तकानि भिनत्ति विदारयतीत्यर्थ:।।३८-३९।।

एवं सर्वेषूक्त्वाऽधुनैकैकस्याग्रगतस्य वक्तुकाम: शनैश्चरस्य तावदाह—

शनैश्चरे म्लेच्छविडालकुञ्जरा:
खरा महिष्योऽसितधान्यशूकरा: ।
पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथा:
क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्गदोद्भवै: ॥४०॥

यदि शुक्र के आगे शनैश्चर गमन करे तो म्लेच्छ जाति, बिल्ली, हाथी, गदहा, भैंस, काले धान्य, सूकर, निषाद, शूद्र और दक्षिण दिशा में स्थित जन नेत्ररोग तथा वायु के विकार से नष्ट होते हैं।।४०।।

शनैश्चरे शुक्रस्याग्रत: स्थिते म्लेच्छा जना:। विडाला मार्जारा:। कुञ्जरा गजा:। खरा गर्दभा:। महिष्य: प्रसिद्धा:। असितधान्यं कृष्णधान्यम्। शूकरा वराहा:। पुलिन्दा निषादजना:। शूद्रा जना:। ते च सदक्षिणापथा दक्षिणदिग्निवासिभिर्जनै: सहिता:। एते सर्व एव क्षयं विनाशं व्रजन्ति। कै:? अक्षिमरुद्गदोद्भवै:। अक्षिषु नेत्रेषु ये गदा रोगा मरुता वायुना च ये गदास्तदुद्भवैस्तदुत्पन्नैर्दोषैरिति।।४०।।

अथ भौमेऽग्रत: स्थिते फलमाह—

निहन्ति शुक्र: क्षितिजेऽग्रत: प्रजां
हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करै: ।
चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं
दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत् ॥४१॥

यदि शुक्र के आगे मङ्गल गमन करे तो अग्नि, शस्त्र, क्षुधा, अवृष्टि और चोरों से प्रजाओं का, उत्तर दिशा में स्थित जङ्गम तथा स्थावर प्राणियों का, अग्नि तथा विद्युत् और धूलि से दिशाओं का नाश होता है।।४१।।

शुक्रो भार्गव: क्षितिजे भौमे अग्रत: पुरत: स्थिते सत्येवं प्रजां निहन्ति नाशयति। कै:? हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करै:। हुताशोऽग्नि:। शस्त्रमायुधं संग्राम इत्यर्थ:। क्षुद् दुर्भिक्षम्। अवृष्टिरवर्षणम्। तस्कराश्चौरा:। एतै:। तथोत्तरां दिशम्। चराचरम्। चरं जङ्गमाख्यमचरं स्थावराख्यं व्यक्तं नि:शेषं निहन्ति। तथा दिश आशा:। अग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत्। अग्निना हुतवहेन। विद्युता तडिता। रजसा पांशुना। एतै: पीडयेद् उपतापयेत्।।४१।।

अथ बृहस्पतावग्रतः स्थिते फलमाह—

बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः
सितं समस्तं द्विजगोक्षुरालयान्।
दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा
गले गदा भूरि भवेच्च शारदम्॥४२॥

यदि शुक्र के आगे गुरु गमन करे तो सफेद वस्तु, ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं के गृह और पूर्व दिशा का नाश करता है, मेघ से ओले की वृष्टि होती है, लोगों के गले में रोग होता है तथा शारदीय धान्य अधिक होता है।।४२।।

सितः शुक्रो बृहस्पतौ पुरःस्थिते अग्रवर्तिनि सति समस्तं निःशेषं यत्किञ्चित्सितं शुक्लवर्णम्। तथा द्विजगोसुरालयान्। द्विजा ब्राह्मणाः। गावः। सुरा देवाः। एषामालयं स्थानं हन्ति नाशयति। तथा दिशमाशां च पूर्वामैन्द्रीं हन्ति। अम्बुदा मेघाः करकासृजः करकावृष्टिं सृजन्ति मुञ्चन्ति। गले कण्ठे गदा रोगा लोकानां भवन्ति। शारदं च सस्यं भूरि बहु भवेत्।।४२।।

अथ बुधे अग्रतः स्थिते फलमाह—

सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्
रोगान् पित्तजकामलांश्च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकान्।
हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान्
वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम्॥४३॥

यदि शुक्र के आगे बुध गमन करे तो वृष्टि, लोगों में पित्तज और कामला रोगों की उत्पत्ति तथा ग्रीष्म में उत्पन्न होने वाले धान्यों को पुष्ट करता है एवं वनवासी, अग्निहोत्री, वैद्य, योद्धा, घोड़ा, वैश्य, गौ, वाहन, राजा, सभी पीली वस्तुयें और पश्चिम दिशा का नाश करता है।।४३।।

सौम्यो बुधो भृगुसुतस्य शुक्रस्य पुरोऽग्रतः। अस्तोदययोः। अस्तमितः सूर्यमण्डले स्थित उदितस्तन्निर्गतो वा यथा तथावस्थितस्तोयकृद्भवति, तोयं जलं करोति। तथा रोगान् ज्वरादीन् करोति। पित्तजकामलांश्च पितजै रोगैः सहिताः कामलाः पित्तजकामलास्तांश्च कुरुते। ग्रैष्मिकान् ग्रीष्मजातांश्च सस्यादीन् पुष्णाति पुष्टिं नयति। तथा प्रव्रजितान् वनस्थान्। आग्निहोत्रिकान् अग्निहोत्रे सक्तान्। भिषजो वैद्यान्। रङ्गोपजीव्यान् मल्लादीन्। हयानश्वान्। वैश्यान् वैश्यजातीयान्। गास्तथा वाहनैरश्वादिभिश्च सह नरपतीन् नृपान्। पीतानि पीतवर्णानि सर्वाणि द्रव्याणि। पश्चाद्दिशमपरां चाऽऽशां हन्यान्नाशयेत्।।४३।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते
कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये।

हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः
पतति न सलिलं खाद् भस्मरूक्षासिताभे ॥४४॥

यदि शुक्र का वर्ण अग्नि के समान हो तो अग्नि का भय, रक्त हो तो शस्त्रकोप, कसौटी पर घिसे हुये सुवर्ण की रेखा के समान हो तो रोग, तोते के समान या पीला हो तो श्वास और कास रोग की उत्पत्ति तथा भस्म की तरह रूक्ष या काला वर्ण हो तो अवृष्टि होती है।।४४।।

दैत्यपूज्ये शुक्रे अनलाभे अग्निसदृशकान्तौ शिखिभयमग्निभीतिर्भवति। रक्ते लोहितवर्णे शस्त्रकोपः संग्रामा भवन्ति। कनकस्य सुवर्णस्य याऽसौ निकषरेखा तद्वद् गौरवर्णे व्याधयो रोगा भवन्ति। हरितरूपे शुकाभे कपिलरूपे च पिशङ्गवर्णे श्वासकासप्रकोपो भवति। श्वासेन च कासेन च पीडा जनानां भवति। भस्माभे भस्मवर्णे। रूक्षाभे स्नेहरहिते। असिताभे कृष्णकान्तौ। खादाकाशात् सलिलं जलं न पतति। देवो न वर्षतीत्यर्थः।।४४।।

अन्यदप्याह—

दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः ।
सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ॥४५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
शुक्रचाराध्यायो नवमः ॥९॥

यदि दही, कुमुदपुष्प या चन्द्र की तरह कान्ति वाला, स्पष्ट विस्तृत किरण वाला, विपुल मूर्त्ति वाला, सुन्दर गति वाला (अवक्री), विकाररहित और विजयी शुक्र हो तो प्रजाओं को कृतयुग की तरह (व्याधि, दारिद्र्य और शोक से रहित) करता है।।४५।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शुक्रचाराध्यायो नवमः ॥९॥

ईदृग्रूपः सिताह्वयः सितनामा शुक्रः कृतयुगरूपकरः, कृतयुगस्य रूपं करोति, तद्धर्मानुप्रवृत्तेर्जना व्याधिदारिद्र्यशोकवर्जिता भवन्तीत्यर्थः। कीदृशः? दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत्। दध्नः क्षीरविकारस्य। कुमुदस्य पुष्पविशेषस्य। शशाङ्कस्य चन्द्रस्य सदृशीं कान्तिमाभां बिभर्ति धारयति। स्फुटविकसत्किरणः, स्फुटाः स्पष्टा विकसन्तो विस्तीर्णाः किरणा रश्मयो यस्य तथाभूतः। बृहत्तनुर्विस्तीर्णदेहः। सुगतिः शोभनगतिः। अवक्रो ग्रहर्क्षाणामुत्तरभागगतश्च। अविकृतो विकारवर्जित उत्पातरहितः। जयान्वितो जययुक्त इति। तथा च पराशरः—

'हिमकनकरजतशङ्खस्फटिकवैदूर्यमुक्तामधुघृतमण्डकुमुदशशाङ्कच्छविस्निग्धदीप्तप्रकान्तिप्रकाशः प्रसन्नार्चिरवनिपतिहितकरः प्रशान्तवैरो दुर्भिक्षारोगवृष्टिकरश्च। श्यावनील-

रूक्षकपिलरक्तध्वस्तदीनाल्पलोष्टसन्निभ: शस्त्रवैरव्याधिवर्षान्नक्षयकर:।' तथा च—

कूटाकारनिभ: स्निग्धो मार्गस्थो रजतप्रभ:।
भार्गवो विस्तृतार्चिश्च प्रजाभावकर: स्मृत:।। इति।

प्रावृषि शुक्र: प्राच्यां दिशि स्थितोऽल्पं जलं सृजति नित्यम्।
धान्यं च भूरि कुरुते तृणं च बहु जायते तत्र।।
अपरां निषेव्यमाण: काष्ठां शुक्रो जलं सृजति भूरि।
धान्यं कुरुते चाल्पं तृणं न बहु जायते तत्र।। इति।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शुक्रचारो नाम नवमोऽध्याय: ।।९।।

अथ शनैश्चरचाराध्याय:

अथ शनैश्चरचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव शनैश्चरस्य नक्षत्रावस्थितिवशेन फलमाह—

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्योपग: सुतोऽर्कस्य।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्ध: ।।१।।

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलम्।
क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपि वक्ष्ये ।।२।।

यदि शनैश्चर श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी या पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित होकर निर्मल मूर्ति वाला हो तो पृथ्वी वृष्टि के जल से परिपूर्ण होती है। यदि आश्लेषा, शतभिषा या ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो सुन्दर क्षेत्र और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि मूल में स्थित हो तो दुर्भिक्ष, युद्ध और वर्षा का अभाव होता है। इस तरह संक्षेप से फल कह कर अब प्रत्येक नक्षत्र के फल कहते हैं।।१-२।।

श्रवणानिलेति। श्रवणम्। अनिल: स्वाति:। हस्त:। आर्द्रा। भरणी। भाग्यं पूर्वफल्गुनी। एतेषु नक्षत्रेष्वर्कस्य सुत: शनैश्चर उपग: प्राप्त: स्थित इत्यर्थ:। तत्र यदि स्निग्धो विमलमूर्तिर्भवति तदा धात्रीं भूमिं प्रचुरसलिलोपगूढां प्रचुरेण प्रभूतेन सलिलेन पानीयेन उपगूढां छन्नां करोति। तथा च गर्ग:—

याम्यवायव्यसावित्ररौद्रश्रवणसंस्थित: ।
भवेत् स्निग्धवपु: सौरो भाग्ये चैवातिवर्षद:।। इति।

अहिवरुणपुरन्दरदैवतेष्विति। अहिदैवतमाश्लेषा। वरुणदैवतं शतभिषक्। पुरन्दर इन्द्रस्तद्दैवतं ज्येष्ठा। एतेष्ववस्थित: सौर: सुक्षेमकृत् शोभनं क्षेमं करोति। न चाति जलम्, अति प्रभूतं जलमुदकं न करोति। क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले। मूले स्थित: क्षुद् दुर्भिक्षम्। शस्त्रं संग्राम:। अवृष्टिरवर्षणम्। एता: करोति। प्रत्येकमपि वक्ष्ये। एकमेकं प्रति प्रत्येकम्। इदानीं प्रत्येकं नक्षत्रमधिकृत्य वक्ष्ये कथयिष्ये। तथा च गर्ग:—

सार्पवारुणमाहेन्द्रनक्षत्रेषु च संस्थित:।
स्निग्ध: सौर: क्षेमकरो नातिवृष्टिं प्रमुञ्चति।।
क्षुच्छस्त्रवृष्टिदो मूले सूर्यपुत्र: समास्थित:।। इति।।१-२।।

अथाऽश्विनीभरण्यो: समवस्थितस्य सौरस्य फलमाह—

तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगत:।
याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ।।३।।

यदि शनैश्चर अश्विनी नक्षत्र में स्थित हो तो घोड़ा, घोड़े का उपचारक, कवि, वैद्य

और मन्त्रियों को नाश करता है। यदि भरणी नक्षत्र में स्थित हो तो नाचने, बजाने, गाने वाले, अन्याय पथ पर चलने वाले तथा निषाद—इन सबों का नाश करता है।।३।।

अर्कज: सौर:। अश्विगत: अश्विन्यामवस्थित:। तुरगानश्वान्। तुरगाणां य उपचारकास्तान् तुरगोपचारकान्। तथा कवीन् काव्यकुशलान्। वैद्यान् कायचिकित्सकान्। अमात्यान् मन्त्रिणश्च। हन्ति नाशयति। याम्ये भरण्यां नर्तनं शिल्पमस्येति नर्तक:। वादनं शिल्पमस्येति वादक:। गेयं जानातीति गेयज्ञ:। क्षुद्रोऽन्यायवर्ती। नैकृतिको निषाद:। एतान् हन्ति नाशयति।।३।।

अथ कृत्तिकारोहिण्योराह—

बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च ।
रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिका: ।।४।।

यदि कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो अग्नि से आजीविका चलाने वालों और सेनापति का नाश करता है। यदि रोहिणी नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो कोशल, मद्र, काशी तथा पाञ्चाल देश में रहने वाले मनुष्यों और गाड़ी से आजीविका चलाने वालों का नाश करता है।।४।।

सौरे शनैश्चरे बहुलासु कृत्तिकास्ववस्थिते अग्न्युपजीविनोऽग्निवार्ता: सुवर्णकारलोहकारायस्कारप्रभृतय:। चमूपा: सेनापतय:। एते पीड्यन्ते। रोहिण्यां स्थिते सौरे कोशला जना:। मद्रा:। काशय:। पाञ्चाला:। एते जना:। शाकटिका: शकटोपजीविन:। एते पीड्यन्ते।।४।।

अथ मृगशिरआर्द्रयोराह—

मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च ।
रौद्रस्थे पारतरमठास्तैलिकरजकचौराश्च ।।५।।

यदि मृगशिर नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो वत्स देश में रहने वाले मनुष्य, याजक, यजमान, प्रधान मनुष्य और मध्यदेश को पीड़ित करता है। यदि शनैश्चर आर्द्रा में स्थित हो तो पारतर देश में रहने वाले, मद्र देश में रहने वाले, तेली, रजक (धोबी, रंगरेज) और चोरों को पीड़ित करता है।।५।।

मृगशिरसि स्थिते सौरे वत्सजना:। याजका:। यजन्तीति याजका ऋत्विज:। यजमाना याज्ञिका:। आर्यजना: प्रधानजना:। मध्यदेशा: प्रसिद्धा:। एते पीड्यन्ते। रौद्रस्थे आर्द्रास्थे पारतरा जना:। मठा जना एव। तैलिका: प्रसिद्धा:। रजका वस्त्ररागकृत:। चौरास्तस्करा:। एते पीड्यन्ते।।५।।

अथ पुनर्वसुतिष्ययोराह—

आदित्ये पाञ्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीरा: ।
पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ।।६।।

यदि पुनर्वसु नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो पञ्जाब, गुहा, सौराष्ट्र, सिन्धु के समीप तथा सौवीर देश में रहने वाले लोगों को पीड़ित करता है। यदि शनैश्चर पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो घण्टा बजाने वाले, घोषिक (ढींढोरा पीटने वाले अथवा घोष-गुहा में निवास करने वाले), यवन, वणिक्, किरात, धूर्त और पुष्पों को पीड़ित करता है।।६।।

आदित्ये पुनर्वसौ स्थिते सौरे पाञ्चनदा जनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। सुराष्ट्रो देशः। सैन्धवाः। सौवीराः। एते पीड्यन्ते। पुष्ये स्थिते सौरे घाण्टिका घण्टावादनं शिल्पमस्येति घाण्टिकाः। घोषः शब्दोच्चारणं शिल्पमस्येति घौषिकाः श्रावका इत्यर्थः। अथवा घोषे गह्वरे निवसन्ति ते घौषिकाः। यवना जनाः। वणिजः किराताः। कितवा द्यूतकराः। कुसुमानि पुष्पाणि। एतानि पीड्यन्ते।।६।।

आश्लेषामघयोराह—

सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्लीकचीनगान्धाराः।
शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ।।७।।

यदि आश्लेषा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो जल में उत्पन्न प्राणियों और सर्पों को पीड़ित करता है। यदि मघा नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो बाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिक और पारत देश में रहने वाले मनुष्य, वैश्य, कोष्ठागार, वणिक्, किरात—इनको पीड़ित करता है।।७।।

सार्पे आश्लेषायां जलरुहा जलोद्भवाः प्राणिनो द्रव्याणि वा। सर्पा उरगाश्च पीड्यन्ते। तथा च गर्गः—

भुजङ्गकच्छपग्राहनागमत्स्यसरीसृपान्।
हन्यादर्कसुतस्तिष्ठन्नक्षत्रे सर्पदैवते।।

पित्र्ये मघायां बाह्लीकाः। चीनाः गान्धाराः। शूलिकाः। पारताः। सर्व एव जनाः। वैश्या वैश्यवर्णाः। कोष्ठागाराण्यविलयग्रामाः। वणिजश्च किराताः। पीड्यन्त इति सर्वत्र योज्यम्।।७।।

अथ पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुन्योराह—

भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यस्त्रीकन्यकामहाराष्ट्राः।
आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ।।८।।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर रस (मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय) बेचने वाले, वेश्या, कुमारी, महाराष्ट्र देश में निवास करने वाले मनुष्य—इन सबों को पीड़ित करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, गुड़, नमक, भिक्षुक, जल और तक्षशिला नगरी को पीड़ित करता है।।८।।

भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां रसविक्रयिणः। रसाः षट् मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः। एषां

विक्रयकारिणः। पण्यस्त्रियो वेश्याः। कन्यकाः कुमार्यः। महाराष्ट्रा महाराष्ट्रदेशे ये जना निवसन्ति। एते सर्व एव पीड्यन्ते। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यां नृपा राजानः। गुडमिक्षुविकारः। लवणं प्रसिद्धम्। भिक्षुका यतयः। अम्बु पानीयम्। एतानि। तक्षशिला नगरी। एते सर्व एव पीड्यन्ते।।८।।

अथ हस्ते स्थितस्याह—

हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिका द्विपग्राहाः ।
बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ।।९।।

हस्त नक्षत्र में स्थित शनैश्चर हजाम, चक्रिक (कुम्भार, तेली आदि), चोर, वैद्य, शिल्पी, हाथी पकड़ने वाले, वेश्या, कोशल देश में निवास करने वाले, माली—इन सबों को पीड़ित करता है।।९।।

हस्तस्थे सौरे नापिताः श्मश्रुकर्मविदः। चाक्रिकाश्चक्रेण चरन्ति चाक्रिकाः, कुम्भकारतैलिकप्रभृतयः। चौरास्तस्कराः। भिषजो वैद्याः। सूचिकाः प्रसिद्धाः शिल्पिनः। द्विपा हस्तिनस्तेषां ग्राहा बन्धकाः। बन्धक्यो वेश्याः। कौशलका जनाः। मालाकाराः पुष्पप्रदायकाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते।।९।।

अथ चित्रास्वात्योराह—

चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि ।
स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ।।१०।।

यदि शनैश्चर चित्रा नक्षत्र में स्थित हो तो स्त्रीगण, लेखक, चित्रकार, भाण्ड (अनेक प्रकार के वैश्यों के धन = 'भाण्डं वणिङ्मूलधने भूषाश्वभूषयोरि'ति मेदिनी)—इन सबों को पीड़ित करता है। यदि स्वाती नक्षत्र में शनैश्चर स्थित हो तो मागध (कीर्ति गाने वाले या मगध देश में रहने वाले), गुप्तचर, दूत, सारथी, नाव पर चलने वाले, नट आदि—इन सबों को पीड़ित करता है।।१०।।

चित्रास्थे सौरे प्रमदाजनः स्त्रीलोकः। लेखका लिपिज्ञाः। चित्रज्ञाश्चित्रकर्मविदः। चित्रभाण्डानि नानावर्णानि भाण्डानि। बहुवर्णानीत्यर्थः। एतानि पीड्यन्ते। स्वातौ स्थिते सौरे मागधा नाम श्रावका जना वा मगधवासिनः। चरा गूढपुरुषाः। दूता गमागमकारिणः। सूताः सारथयः कथाश्रावका वा। पोतप्लवाः पोतः समुद्रो येनोत्तीर्यते तत्र ये प्लवन्ते, पोतेन यान्तीत्यर्थः। नटा नृत्यज्ञाः। आदिग्रहणादन्येऽपि ये गीतवाद्यज्ञास्ते सर्व एव पीड्यन्ते।।१०।।

अथ विशाखास्थिते आह—

ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा ।
सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च क्षयं याति ।।११।।

यदि विशाखा नक्षत्र में शनि बैठा हो तो त्रिगर्त, चीन और कुलूत देश में रहने वाले मनुष्य, कुङ्कुम, लाख, धान्य, मञ्जीठ और कुसुम्भ के पुष्पों का नाश करता है।।११।।

ऐन्द्राग्नाख्ये विशाखायां स्थिते सौरे त्रैगर्ता जनाः। चीनाः। कौलूताः कुलूतनिवासिनः। कुङ्कुमं काश्मीरम्। लाक्षा जतु। सस्यानि प्रसिद्धानि। अथ माञ्जिष्ठम्। अथशब्दः स्वार्थे। माञ्जिष्ठया रक्तं माञ्जिष्ठम्। कौसुम्भञ्च। एतत्सर्वं क्षयं याति नश्यतीत्यर्थः।।११।।

अथाऽनुराधायामाह—

मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः।
उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम्॥१२॥

यदि शनैश्चर अनुराधा नक्षत्र में स्थित हो तो कुलूत, तङ्गण, खस (नेपाल), काश्मीर—इन देशों में स्थित मनुष्य, मन्त्री और चक्रचर (कुम्भार-तेली आदि), घण्टा बजाने वाले और शिल्पियों को पीड़ित करता है तथा मित्रों में परस्पर भेदभाव उत्पन्न कराता है।।१२।।

मैत्रेऽनुराधायां कुलूतो देशस्तत्र ये जनाः। तङ्गणा जनाः। खसाः पर्वतवासिनः। काश्मीरा जनाः। किम्भूताः? समन्त्रिचक्रचराः, मन्त्रिभिः सचिवैश्चक्रचरैः कुम्भकारप्रभृतिभिः सहिताः। एते सर्वे उपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। तथा घाण्टिका घण्टावादिनः शिल्पि-नस्तेऽप्युपतापं यान्ति। तथा मित्राणां सुहृदां च परस्परं विभेदो विश्लेषो भवति।।१२।।

अथ ज्येष्ठामूलयोराह—

ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः।
मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः॥१३॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, पुरोहित, राजाओं से पूजित, शूर, गण (संन्यासियों के मठ), प्रधान कुल और जनसङ्घियों को पीड़ित करता है। मूल में स्थित शनैश्चर काशी, कोशल, पञ्जाब—इन देशों में रहने वाले मनुष्य, फल, औषध और युद्ध करने वालों को पीड़ित करता है।।१३।।

ज्येष्ठासु स्थिते सौरे नृपा राजानः। पुरोहितास्तदाचार्याः। नृपसत्कृता राजपूजिताः। शूराः संग्रामवीराः। गणाः समूहा मठप्रायाः। कुलानि प्रधानकुलानि। श्रेणी बहूनां समान-जातीयानां सङ्घः। एते सर्व एवोपतापं यान्ति। मूले तु स्थिते सौरे काशयो जनाः। कोशलाः। पाञ्चालाः। फलान्याम्रादीनि। ओषध्यः प्रसिद्धाः। योधाः संग्रामकुशलाः। एत एवोपतापं यान्ति।।१३।।

अथ पूर्वाषाढायामाह—

आप्येऽङ्गवङ्गकौशलगिरिव्रजा मगधपुण्ड्रमिथिलाश्च।
उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च॥१४॥

पूर्वाषाढ़ा में स्थित शनैश्चर अंग, वंग, कोशल, गिरिव्रज, मगध, पुण्ड्र, मिथिला और ताम्रलिप्ती देश में निवास करने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है।।१४।।

आप्ये पूर्वाषाढायां स्थिते सौरे अङ्गा जनाः। वङ्गाः। कौशलाः। गिरिव्रजा जना एव। मगधाः। पुण्ड्राः। मिथिलाश्च। एते सर्व एवोपतापं यान्ति उपद्रवं प्राप्नुवन्ति। ये च जनास्ताम्रलिप्त्यां नगर्यां वसन्ति तेऽप्युपतापं यान्ति।।१४।।

अथोत्तराषाढायामाह—

विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च।
उज्जयिनीं शबरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥१५॥

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर दशार्ण देश में रहने वाले मनुष्य, यवन, उज्जयिनी देश, शबर जाति, पारियात्र (पर्वत पर रहने वाले) और कुन्तिभोज देश में स्थित मनुष्यों को पीड़ित करता है।।१५।।

विश्वेश्वरे उत्तराषाढायामर्कपुत्रः शनैश्चरश्चरंस्तिष्ठन् जनान् यवनांश्च निहन्ति नाशयति। चशब्दः समुच्चये। उज्जयिनीं देशम्। शबरान् जनान्। पारियात्रिकान् पारियात्रे गिरौ ये निसवन्ति तान्। कुन्तिभोजांश्च जनानेतांश्च निहन्ति नाशयति।।१५।।

अथ श्रवणधनिष्ठयोराह—

श्रवणे राजाधिकृतान् विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान्।
वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम् ॥१६॥

श्रवणा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा के अधिकारी, प्रधान ब्राह्मण, वैद्य और पुरोहितों को पीड़ित करता है। धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित शनैश्चर हो तो मगधेश्वर की विजय और धनाधिकारी की वृद्धि होती है।।१६।।

श्रवणे स्थितः सौरो राजाधिकृतान्। राज्ञा नृपेणाधिकारे स्थापितान् नियोगिन इत्यर्थः। विप्राग्र्यान् ब्राह्मणप्रधानान्। भिषजो वैद्याः। पुरोहिता आचार्याः। कलिङ्गा जनाः। एतांश्च निहन्ति। वसुभे धनिष्ठायां स्थितः सौरो मगधेशस्य मगधाधिपतेर्जयः। तथा धनेष्वधिकृतानां वित्तरक्षणे विनियुक्तानां वृद्धिर्भवति।।१६।।

अथ शतभिषक्पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदास्वाह—

साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवृत्तीनाम्।
आहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकराः स्त्रीहिरण्यं च ॥१७॥

यदि शनि शतभिषा या पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में स्थित हो तो वैद्य, कवि, शौण्डिक (मद्य बेचने वाले), खरीद-बिक्री करने वाले और नीति शास्त्र जानने वाले पीड़ित होते हैं। यदि उत्तराभाद्रपदा में शनैश्चर बैठा हो तो नदी-तीर में निवास करने वाले, रथाधिकारी, शिल्पी, स्त्री और सुवर्ण का नाश करता है।।१७।।

शतभिषजि साजे पूर्वभद्रपदासहिते स्थितः सौरो भिषजो वैद्याः। कवयः काव्यज्ञाः। शौण्डिका मद्यपानप्रसक्ताः। पण्यवृत्तयः क्रयविक्रयजीविनः। नीतिवृत्तयो नीतिशास्त्रज्ञाः। एता् पीडयति। आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायां नद्यः सरितः। नदीतीरे ये निवसन्ति। तथा यानकरा रथाधिकारकाः शिल्पिनस्तक्षकाः। स्त्रियो योषितः। हिरण्यं सुवर्णादि। एतान् निहन्ति।।१७।।

अथ रेवत्यामाह—

रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम्।
शबराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति ॥१८॥

यदि रेवती नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो राजा के आश्रय में रहने वाले, क्रौञ्च द्वीप में रहने वाले, शारदीय धान्य, शबर जाति और यवन पीड़ित होते हैं।।१८।।

रेवत्यां शनैश्चरे चरति स्थिते सति राजभृता राज्ञा नृपेण ये भृताः पोषिता धृता वा। तथा क्रौञ्चद्वीपे य आश्रिताः स्थिताः। शरत्सस्यं धान्यानि। शबरा जनाः। यवना म्लेच्छ-जातयः। एते पीड्यन्ते। तथा च पराशरः—

'आग्नेये प्रविचरन्नग्निस्थूलशूरसेनाहिताग्निलोहकारधातुकाराङ्गनाशौण्डिकाग्न्युपजीविन उपतापयति। प्राजापत्ये मद्रकपाञ्चालकाशिकोशलाङ्गशाकटिकाः कन्यकाश्चोपतप्यन्ते। सौम्ये यजमानयाजकार्यजनमध्यदेशवत्सजनपदाः। रौद्रे पारतरमठतैलिकरजकदस्यवः। आदित्ये सुराष्ट्रसिन्धुसौवीरपञ्चनदप्रत्यन्ता विधवाश्च। पुष्ये पुष्पमानकघाण्टिकघौषिक-पोतयात्रिकयवनवणिग्दूताः। आश्लेषासु सर्पाः सलिलजाश्च। मघासु शूलिकबाह्लिक-तैलिकगान्धारवैद्यपारतदरदशिल्पिकोष्ठागाराणि। भाग्ये रसविक्रयिपण्यस्त्रीकन्यामहाराष्ट्राः। आर्यम्णे नृपनृपपत्नीसुततिललवणगुडभिक्षुककूपकूर्चधरतक्षशिलादर्शनिवासिनः। हस्ते हस्तिहस्तिग्राहकस्तेनभिषग्रजकसूचिकनापितमालाकारबन्धकीकोशलाः। त्वाष्ट्रे प्रमदाले-खकचित्रकरचित्रभाण्डानि। स्वातौ दूतचरसूतमागधप्लवकनटनर्तकगायनवादकपोतयात्रिकाः। ऐन्द्राग्ने त्रैगर्तचीनकौलूतलाक्षाकुङ्कुमकुसुम्भमाञ्जिष्ठपीतकुसुमसस्यानि विग्रहकामाश्च। अनु-राधासु खसतङ्गणकुलूतकाश्मीरचक्रचरमन्त्रिघाण्टिकाः। अस्मिन् मित्रभेदं च विन्द्यात्।'

ऐन्द्रे जातिगणकुलश्रेणीश्रेष्ठनृपनृपतिसत्कृतपुरोहितान्। मूले काशिकोशलपाञ्चा-लमूलफलौषधियोधान्। पूर्वाषाढास्वङ्गमगधवङ्गपुण्ड्रकौशलमिथिलागिरिव्रजताम्रलिप्ति-निवासिनः। उत्तराषाढास्ववन्तिशबरकुन्तिभोजदाशार्णेयपारियात्रिकान्। वैष्णवेऽग्निदेश-कलिङ्गेशविद्वद्विप्राश्रमभिषग्राजाधिकृतपुरोहितान्। श्रविष्ठासु मगधाधिपतिविजयाय विविध-वसुनिचयाय तदधिकृतानामर्थेशांश्च पीडयति। शतभिषजि भिषङ्मद्यसुरासवक्रयविक्रय-वनितोपजीविदस्युपाखण्डिनिवासिनः। प्राक्प्रोष्ठपदायां द्रविडकर्णाटवर्तिचोलपाण्ड्यसिंहल-महेन्द्रनगरनिवासिनः। उत्तरभद्रपदायां स्त्रीहिरण्यनिचयतक्षकशमीधान्यनदनदीपान् युग्मकरान्। रेवत्यां शरत्सस्यराजभृतशबरवनवासिक्रौञ्चद्वीपनिवासिनः। अश्विन्यामश्वारोहाश्वपालवैद्या-मात्यकविनायकान्। भरणीषु वादकगायननर्तकक्षुद्रनैकृतिकान् पीडयति।।१८।।

अथ विशाखास्थस्य गुरो: कृत्तिकास्थस्य सौरस्य तथानयोरेकर्क्षगतयो: फलमाह—

यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः ।
तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम् ॥१९॥

जब विशाखा नक्षत्र में गुरु और कृत्तिका नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो उस समय प्रजाओं में भयंकर अनीति उत्पन्न होती है तथा जब एक ही नक्षत्र में दोनों बैठे हों तो उस समय नगरों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।।१९।।

यदा यस्मिन् काले महेन्द्रमन्त्री बृहस्पतिर्विशाखासु यात: प्राप्तस्तथा भानोरादित्यस्य सुत: पुत्र: सौरो दहनर्क्षे कृत्तिकायां यातस्तदा तस्मिन् काले प्रजानां लोकानामनयो दुर्नयोऽतिघोरो भयावहो भवति। तयोरेवंगुरुसौरयोरेकं भमेकनक्षत्रं गतयो: पुरस्य नगरस्य प्रभेदो भवति। तथा च पराशर:—

कृत्तिकासु शनैश्चारी विशाखासु बृहस्पति:।
तिष्ठेद्यदा तदा घोर: प्रजानामनयो भवेत्।।
एकं नक्षत्रमासाद्य दृश्यते युगपद्यदि।
अन्योन्यभेदं जानीयात्तदा पुरनिवासिनाम्।।

गुरुसौरावेकस्थौ द्विस्वभावराशिस्थौ तदाप्यनिष्टफलमभिहितम्। तथा च देवल:—

मीने धनुषि कन्यायां मिथुने सगुरु: शनि:।
तिष्ठेद्यदा तदा घोर: प्रजानामनयो भवेत्।। इति।।१९।।

अथ वर्णस्वरूपमाह—

अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः ।
शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥२०॥

यदि शनैश्चर का वर्ण अनेक वर्णों का हो तो पक्षियों का नाश, पीला हो तो दुर्भिक्ष, रक्त वर्ण का हो तो युद्ध और भस्म के सदृश वर्ण का हो तो प्रजाओं में द्वेष होता है।।२०।।

रविज: शनैश्चरो यदि चित्रश्चित्रवर्णो नानाकारो दृश्यते। तदा अण्डजहा अण्डजान् पक्षिणो हन्ति। यदि पीतमयूख: पीतरश्मिर्दृश्यते तदा क्षुद् दुर्भिक्षं करोति। रक्तसवर्णो रक्ताभ: शस्त्रभयाय संग्रामाय भवति। भस्मनिभो भस्मसदृशकान्तिर्बहुवैरकर: प्रजानां भवति। तथा च पराशर:—

नीलपीत: क्षुधे। रक्तभस्मचित्रवर्ण: शस्त्रवैरकरोऽण्डजाभिहन्ता। यद्वर्णस्तद्वर्णविनाशी भवति।।२०।।

अन्यद्वर्णलक्षणमाह—

वैदूर्यकान्तिविमलः शुभकृत् प्रजानां
बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः ।

यं चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान्
सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ॥२१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
शनैश्चरचाराध्यायः दशमः ॥१०॥

यदि शनैश्चर का वर्ण वैडूर्य मणि के समान निर्मल हो तो प्रजाओं को शुभ करने वाला होता है। बाण या अतसी पुष्प के समान काला हो तो भी शुभ है। साथ ही शनैश्चर जिस तरह के वर्ण को धारण करे, उसके समान वर्ण वाले मनुष्यों का नाश करता है। जैसे—श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मण का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रिय का, पीत वर्ण का हो तो वैश्य का तथा कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्र का नाश करता है। इस प्रकार प्राचीन मुनियों का वचन है।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां शनैश्चरचाराध्यायो दशमः ॥१०॥

सूर्यात्मजः सौरो वैदूर्यकान्तिविमलो वैदूर्यस्य मणेरिव कान्तिः प्रभा विमला निर्मला यस्य स तथाभूतः प्रजानां लोकानां शुभकृत्। शुभं श्रेयः करोति। तथा बाणपुष्पाणामतिकृष्ण-वर्णानामतसीकुसुमानां चातिनीलवर्णानां वर्णनिभस्तत्सदृशकान्तिः शस्तः प्रशस्तः। यं चापि वर्णमुपगच्छतीति। यादृशं वर्णं सितं रक्तं पीतं कृष्णमुपगच्छति समाश्रयति तत्स-वर्णांस्तत्समानवर्णान् द्विजादीन् क्षपयति नाशयति। तद्यथा—श्वेतवर्णो ब्राह्मणान्नाशयति। रक्तः क्षत्रियान्। पीतो वैश्यान्। कृष्णः शूद्रानिति। इत्येवम्प्रकारो मुनीनां गर्गादीनां प्रवादो वचनमित्यर्थः। तथा च गर्गः—

भवत्यर्कात्मजे रूक्षे श्यावपीतारुणप्रभे।
तदात्मकानां भावानां क्षुच्छस्त्राग्निकृतं भयम्।।

तथा पराशरश्च—

पाण्डुः स्निग्धोऽमलः श्यामो विस्तृतार्चिः शनैश्चरः।
मार्गस्थश्च प्रसव्यश्च नक्षत्राद्धित इष्यते।। इति।।२१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
शनैश्चरचारो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ केतुचाराध्यायः

अथ केतुचारो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः ॥१॥

गर्ग, पराशर, असित, देवल और अन्य आचार्यों के भी किये हुये केतुचार को देखकर यह अनाकुल (निःसन्देहात्मक) केतुचार को कहते हैं।।१।।

गार्गीयं गर्गप्रोक्तम्। शिखिचारं केतुचारम्। तथा पाराशरं पराशरकृतम्। असित-नामाचार्यस्तत्कृतम्। देवलकृतं देवलविरचितं च। एतान् केतुचारान् दृष्ट्वा अवलोक्य। तथा अन्यानपि काश्यपऋषिपुत्रनारदवज्रादिविरचितान् बहून् प्रभूतान् दृष्ट्वा मया अयम-नाकुलो निःसन्देहः केतुचारः क्रियते विरच्यत इति।।१।।

अथोदयास्तमयलक्षणमाह—

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥२॥

गणित के द्वारा केतु का अस्त या उदय नहीं जान सकते; क्योंकि दिव्य (आकाश में उत्पन्न), आन्तरिक (ग्रह और नक्षत्रस्थान से भिन्न स्थान में उत्पन्न), भौम (पृथ्वी पर उत्पन्न)—ये तीन प्रकार के केतु होते हैं। इसलिए उत्पातरूप होने के कारण गणित से इनका उदयास्त नहीं जाना जा सकता।।२।।

अस्य केतोर्दर्शनमुदयोऽस्तमयोऽदर्शनं वा गणितविधिना गणितविधानेन न ज्ञातुं वेदितुं शक्यते। यस्मात् केतवस्त्रिविधास्त्रिप्रकारा दिव्यान्तरिक्षभौमाः। दिव्याकाशे भवा दिव्याः। अन्तरिक्षे भवा आन्तरिक्षाः। ग्रहनक्षत्रस्थानं विहायान्यत्राऽऽकाशे ये दृश्यन्ते ते आन्तरिक्षाः। भूमौ भवा भौमाः। इति हेतोरुत्पातरूपत्वादेषामुदयास्तमयौ न ज्ञायेते इति।

अथ केतूनां दिव्यवर्जितानामन्येषां स्वरूपमाह—

अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत्केतुरूपमेवोक्तम्।
खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥३॥

खद्योत, पिशाचालय (यक्ष का स्थान), मणि (चन्द्रकान्त इत्यादि), रत्न (मरकत इत्यादि), आदि (काच आदि)—इनको छोड़कर अग्नि से भिन्न जिस-किसी स्थान में अग्नि के समान रूप दृष्टिगोचर हो, वहाँ केतु का रूप समझना चाहिये।।३।।

अहुताशेऽग्निवर्जिते यस्मिन् देशेऽनलरूपमग्निरूपं दृश्यते तदेव केतुरूपमुक्तं कथितम्। किन्तु खद्योत इन्द्रगोपकः कृमिविशेषः। पिशाचालयो यक्षस्थानम्। मणयश्चन्द्रकान्तप्रभृतयः।

रत्नानि मरकतप्रभृतीनि। आदिग्रहणादन्यान्यपि काचप्रभृतीनि तेजोरूपाणि। एतानि परित्यज्य त्यक्त्वा। यत एषां स्वभावादेवानलरूपं दृश्यते। एतानि परित्यज्यान्यद्यदनल-रूपमहुताशे दृश्यते तत्केतुरूपमिति।।३।।

अथ दिव्यान्तरिक्षभौमानां केतूनां लक्षणमाह—

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते ।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ।।४।।

ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, घोड़ा, हाथी आदि में जिस केतु का दर्शन हो, वह आन्तरिक्ष नक्षत्रों में दिव्य और इनसे भिन्न स्थानों में भौम केतु होता है।।४।।

ध्वजश्चिह्नम्। शस्त्रमायुधादि। भवनं गृहम्। तरुर्वृक्षः। तुरगोऽश्वः। कुञ्जरो हस्ती। आदिग्रहणादन्येषु चतुष्पदादिषु दृश्यन्तेऽनलरूपास्ते केतव आन्तरिक्षाः। तथा नक्षत्राणां तारकाणां च मध्ये ये केतवो दृश्यन्ते ते दिव्या नक्षत्रस्थाः अतोऽस्मादुक्ताद्येऽन्यथा अन्ये भूभौ दृश्यन्ते ते भौमाः शिखिनः केतव इति।।४।।

अथ केतूनां मतान्तरेण संख्यामाह—

शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम् ।
बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ।।५।।

कोई एक सौ एक, दूसरे एक सहस्र और नारद मुनि अनेक रूप वाला केवल एक ही केतु कहते हैं।।५।।

एके मुनयः पराशरादय एकाधिकं शतं केतूनां वदन्ति कथयन्ति। तथा च पराशरः— तद्यथा—'शतमेकोत्तरं केतूनां भवति। तेषां षोडश मृत्युनिःश्वासजाः। द्वादशाऽऽदित्यसम्भवाः। दश दक्षमखविलयने रुद्रक्रोधजाः। सप्त पैतामहाः। पञ्चदश उद्दालकऋषेः पुत्राः। सप्तदश मरीचिकश्यपललाटजाः। पञ्च प्रजापतिहास्यजाः। त्रयो विभावसुजाः। धूमोद्भवश्चैकः। चतुर्दश मथ्यमानेऽमृते सोमेन सह सम्भूताः। एकस्तु ब्रह्मकोपजः' इति।

सहस्रमपरे वदन्तीति । अपरे अन्ये गर्गादयः सहस्रं केतूनां वदन्ति। तथा च गर्गः—

अतीतोदयचाराणामशुभानां च दर्शने।
आगन्तूनां सहस्रं स्याद् ग्रहाणां तन्निबोध मे।।

बहुरूपमेकमेवेति । नारदाख्यो मुनिरेकमेव केतुं प्राहोक्तवान्। तन्मते एक एव केतुस्तस्य च बहूनि रूपाणि। स एव दिव्यान्तरिक्षभौम इत्यर्थः। तथा च नारदः—

दिव्यान्तरिक्षगो भौम एकः केतुः प्रकीर्तितः।
शुभाशुभफलं लोके ददात्यस्तमयोदयैः।। इति ।।५।।

एवं मतान्तराण्युक्त्वा स्वसिद्धान्तमाह—

यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम् ।
उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ।।६।।

एक या अनेक केतु हों, इसका मुझसे कोई प्रयोजन नहीं; बल्कि उदय, अस्त, उसके स्थान, स्पर्श (ग्रह या नक्षत्र के साथ स्पर्श) और आधूम (श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण वर्णों) के द्वारा मुझे केवल फल कहना है।।६।।

फलं शुभाशुभम्। वाच्यं वक्तव्यम्। उदयास्तमयौ यथा—कस्यां दिशि उदित: कस्यामेवास्तमित:। स्थानं यथा—कस्मिन्नाकाशभागे कस्य ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा समीपे उदितोऽस्तमितश्च। स्पर्शनकम्। तेन ग्रहो नक्षत्रं वा स्पृष्टम्। आधूमन: शिखयाऽभिधूमित:। वर्ण: सितरक्तपीतकृष्णादिक:। एवमादिभिस्तस्य फलं वाच्यम्। तस्माद्यद्येको बहवो यदि वा भवन्तु किमनेन का न: क्षतिरिति।।६।।

अथ केतुचारे येषां केतूनां नाम निर्दिष्टं कियन्तं कालं यावत्फलपाको भविष्यति तेषामिति फलपाकनियमार्थमाह—

यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाक: ।
मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परत: ।।७।।

जितने दिन तक केतु देखने में आवे, अस्त के ४५ दिन बाद से उतने मास तक और जितने मास तक देखने में आवे, अस्त के ४५ दिन बाद से उतने वर्ष तक फल देता है।

यावन्त्यहानि यावन्ति दिनानि दृश्यो दर्शनपथं गत:। क: केतुरिति सम्बध्यते। फलपाक:। फलस्य पाक: फलपाक:। तस्य तावन्तो मासा:। तस्य केतोस्तावतो मासान् दृश्यदिनतुल्यांस्तावत्संख्यान् मासान् फलपाकं वदेद् ब्रूयात्। मासैरब्दांश्च वदेत्। **प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति** । मासै: पुनरब्दान् संवत्सरान् वदेत्। माससंख्यादर्शने मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। यावत्संख्यान् मासान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि तस्य फलपाकं वदेत्। कस्मात् कालात् प्रभृति? इत्यत आह—प्रथमात् पक्षत्रयात् परत:। सर्वेषां केतूनां त्विदं सामान्यम्। यावन्ति दिनानि दृश्य: केतुस्तस्माद्दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि यावन्ति निष्फलानि। तस्मात् पक्षत्रयात् परतस्तावतो मासान् फलपाक:। अथ मासा दृश्यन्ते तदा तस्मादेव दर्शनात् परत: पक्षत्रयमतिक्रम्य मासतुल्यानि वर्षाणि वदेत्। प्रथमात् पक्षत्रयात् परत इति यदुक्तं तत्सर्वत्र फलपाके। दर्शनादूर्ध्वं प्रथमं पक्षत्रयं यावन्निष्फलं भवति।

अत्र केचिद् व्याख्याविप्रतिपत्तिं प्रदर्शयन्ति। यदुक्तं मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात् पक्षत्रयात् परत:। तत्र पक्षत्रयं यावद्दिनसंख्या गृह्यते। पक्षत्रयादूर्ध्वं यदा दृश्यते केतुस्तदा माससंख्यातुल्यानि वर्षाणि वदेत्।

अत्र सन्देहव्युदासार्थं गर्गोक्तं नियामकमभिलिख्यते। तथा च गर्ग:—

यावन्त्यहानि दृश्य: स्यात्तावन्मासान् फलं भवेत्।
मासांस्तु यावद् दृश्येत तावतोऽब्दांश्च वैकृतम्।।
त्रिपक्षात् परत: कर्म पच्यतेऽस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुध:।।

तथा च वृद्धगर्गः—

यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावन्मासान् विनिर्दिशेत्।
त्रिपक्षात् परतश्चापि कर्म केतोः प्रपच्यते।।
तस्मात् कालात् परं ब्रूयात् फलमस्य शुभाशुभम्।
सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः।।

यद्येवं तदा द्वितीयव्याख्यानं न घटते, प्रथमव्याख्यानमेव ज्याय इति। यथा प्रथमात् पक्षत्रयात् परतः। दर्शनादूर्ध्वं पक्षत्रयं यावन्निष्फलम्। पक्षत्रयात् परतः फलपाकस्य कालसंख्या प्रवर्तते। यस्मादुक्तं 'सद्यस्कमुदिते केतौ फलं नेहाऽऽदिशेद् बुधः' इति।

यच्चोक्तं मासैरब्दांश्च वदेत् तदेकदेशेनापि मासप्रतिमासमेकद्वित्र्यादिदिनस्पर्शनेनापि माससंख्या लभ्यत एव सर्वथा किमनेनास्माकमसद्विकल्पेन। दिवसैः पक्षत्रयात् परतो मासान् वदेत् मासैस्तस्मादेव पक्षत्रयात् परतोऽब्दान् वदेत्। मासात् परतो दिनाधिक्ये दृष्टेऽनुपातवशाद्वक्तव्यम्। यदि दिनत्रिंशता वर्षं लभ्यते तदेष्टदिनैः किमिति? तथा च समाससंहितायाम्—

केचित् केतुसहस्रं शतमेकसमन्वितं वदन्त्येके।
नारदमत एकोऽयं त्रिस्थानसमुद्भवो विविधरूपः।।
दिव्यग्रहर्क्षजातास्तीव्रफला मन्दफलकरा भौमाः।
प्राणिध्वजादितुङ्गेषु चान्तरिक्षा न चान्यशुभाः।।
उदयास्तमयाधूमनसंयोगाकारमार्गदिग्यातैः ।
फलनिर्देशो दिवसैर्मासा मासैस्तु वर्षाणि।। इति।।७।।

अथ शुभस्य केतोर्लक्षणमाह—

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः ।
उदितोऽथवाभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ।।८।।

यदि छोटा, पतला, निर्मल, स्निग्ध, सरल, थोड़े ही दिनों में अदृश्य, श्वेत और उदयकाल में वृष्टि हो तो वह केतु सुभिक्ष और सुख देने वाला होता है।।८।।

एवंविधः केतुर्दृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः सुभिक्षं सौख्यमावहति करोति। कीदृशः? ह्रस्वोऽदीर्घः। तनुरस्थूलः। प्रसन्नो निर्मलः। स्निग्धः सुस्नेहः। ऋजुः स्पष्टः। अकुटिल इत्यर्थः। अचिरसंस्थितः शीघ्रमेवादर्शनं यातः। शुक्लः श्वेतवर्णः। अथवोदित एवाभिवृष्टस्तस्मिन्नुदितमात्रे यदि वृष्टिर्भवति।।८।।

अथाशुभस्य केतोर्लक्षणमाह—

उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः ।
इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ।।९।।

उक्त लक्षण से भिन्न लक्षण वाले केतु शुभ करने वाले नहीं होते तथा इन्द्रधनु, दो या तीन शिखा वाले केतु विशेषकर अशुभ फल देते हैं।।९।।

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्न इत्यस्मादुक्ताद्यो विपरीतरूपः केतुरुत्पन्नः स धूमकेतुः। स च न शुभकरः शुभं फलं न करोति। पापं करोतीत्यर्थः। तथेन्द्रायुधानुकारी, इन्द्रायुधं चक्रचापं तत्सदृशो न शुभकर एव। तथा द्वित्रिचूलो द्विशिखस्त्रिशिखश्च विशेषतो न शुभकर एव। तथा च समाससंहितायाम्—

अचिरस्थितोऽभिवृष्टस्त्वृजुः स्मितः स्निग्धमूर्तिरुदगुदितः।
ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः केतुर्लोकस्य भावाय।।
न शुभो विपरीतोऽतो विशेषतः शक्रचापसङ्काशः।
द्वित्रिचतुश्चूलो वा दक्षिणसंस्थश्च मृत्युकरः।। इति।।९।।

अधुना केतुसहस्रस्य लक्षणं सफलं विवक्षुस्तत्रादावेव रविजाः पञ्चविंशतिः केतवो भवन्ति तेषां लक्षणमाह—

हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः।
प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥१०॥

मुक्ताहार, मणि (चन्द्रकान्त आदि) और सुवर्ण के समान वर्ण वाले शिखासहित केतु पच्चीस प्रकार के होते हैं। ये सूर्यपुत्र केतु पूर्व और पश्चिम तरफ दृश्य होते हैं। इनमें से एक का भी यदि दर्शन हो तो राजाओं में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।।१०।।

हारो मुक्ताहारः। मणयश्चन्द्रकान्तप्रभृतयः। हेम सुवर्णम्। एतेषां सदृशरूपाः समानवर्णा ये केतवस्ते किरणाख्याः किरणसंज्ञाः। सशिखाः सचूलाः। ते च पञ्चविंशतिः। रविजाः सूर्यपुत्राः प्रागपरदिशोर्दृश्याः। प्राक् पूर्वस्यामपरस्यां पश्चिमायां दिशि दृश्यन्ते। एतेषां मध्ये एक एव दृश्यते न सर्वे युगपदिति सर्वत्रेयं परिभाषा। ते च नृपतिविरोधावहाः, नृपते राज्ञो विरोधावहा विरोधप्रदाः। अनिष्टा इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

शुद्धस्फटिकसङ्काशमृणालरजतप्रभाः ।
मुक्ताहारसुवर्णाभाः सशिखाः पञ्चविंशतिः।।
किरणाख्या रवेः पुत्रा दृश्यन्ते प्राग्दिशि स्थिताः।
तथा चापरभागस्था नृपतेर्भयदाश्च ते।। इति।।१०।।

अथाग्निपुत्रांस्तावत आह—

शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः।
आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥११॥

तोता, अग्नि, बन्धुजीवक (काला पुष्प) लाख या रक्त के समान वर्ण वाले अग्नि के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु होते हैं, जो अग्निकोण में दृश्य होते हैं। इनका दर्शन होने पर अग्नि का भय होता है।।११।।

शुकः पक्षिविशेषो नीलपीतवर्णः। दहनोऽग्निः। बन्धुजीवकः पुष्पविशेषोऽतिलोहितः। लाक्षा वृक्षनिर्यासः। क्षतजं रक्तम्। तदुपमास्तत्तुल्यवर्णाः। ते च तावन्तः पञ्चविंशतिः। हुताशसुता अग्निपुत्राः। आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। ते च दृष्टाः शिखिभयदा अग्निभयप्रदा इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

नानावर्णाग्निसङ्काशा दीप्तिमन्तो विचूलिनः।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशात् सर्वे ज्यौतिषनाशनाः।।
तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः।
आग्नेय्यां दिशि दृश्यन्ते पञ्चविंशत्प्रकीर्तिताः।। इति।।११।।

अथ मृत्युसुतांस्तावत एवाऽऽह—

वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः ।
दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्ते च ।।१२।।

कुटिल शिखा वाले, रूक्ष और काले यम के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु हैं। ये दक्षिण दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से पृथ्वी पर मरी पड़ती है।।१२।।

वक्रशिखा अस्पष्टचूडास्ते च रूक्षा अस्निग्धाः। कृष्णाश्चासितास्तेऽपि तावन्तः पञ्चविंशतिरेव। ते च मृत्युसुता मृत्योः पुत्राः। याम्यायां दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते विलोक्यन्ते। ते च जनमरकावेदिनः। जनानां मरकमावेदयन्ति कथयन्ति। तथा च गर्गः—

कृष्णा रूक्षा वक्रशिखा दृश्यन्ते याम्यदिक्स्थिताः।
पञ्चविंशा मृत्युसुताः प्रजाक्षयकराः स्मृताः।। इति।।१२।।

अथ भूपुत्रा द्वाविंशतिस्तानाह—

दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः ।
क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ।।१३।।

वृत्ताकार, दर्पण के समान, शिखारहित, किरणों से युक्त, जल और तेल के समान बाईस प्रकार के भूमिपुत्र केतु हैं। ये ईशान कोण में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से दुर्भिक्ष होता है।।१३।।

दर्पणवद् वृत्तः परिवर्तुल आकारो येषां ते दर्पणवृत्ताकाराः। विशिखा विचूलाः। किरणान्विता रश्मिसंयुक्ताः। धरातनया भूमिपुत्रास्ते च द्वाविंशतिरैशान्यां पूर्वोत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। अम्बुतैलनिभाः। अम्बु जलम्। तैलं प्रसिद्धम्। तन्निभाः। जलस्य तैलस्य वा सदृश्यः कान्तयः। एते दृष्टा क्षुद्भयदाः क्षुद्भयं दुर्भिक्षं ददति। तथा च गर्गः—

समस्तवृत्ता विशिखा रश्मिभिः परिवारिताः।
अम्बुतैलप्रतीकाशा द्वाविंशद् भूसुताः स्मृताः।।
ऐशान्यां दिशि दृश्यन्ते दुर्भिक्षभयदास्तु ते।। इति।।१३।।

अथ चन्द्रसुतास्त्रयस्तानाह—

शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः ।
उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः ॥१४॥

चन्द्रकिरण, चाँदी, हिम, कुमुद या कुन्दपुष्प के समान वर्ण वाले तीन प्रकार के चन्द्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने पर सुभिक्ष होता है।

शशिकिरणाश्चन्द्ररश्मयः। रजतं रूप्यम्। हिमं तुषारम्। कुमुदकुन्दकुसुमे पुष्पविशेषे अतिशुक्लवर्णे। तदुपमास्तत्तुल्यवर्णास्त्रयः शिखिनः केतवश्चन्द्रस्य सुताः पुत्राः। उत्तरतः सौम्यायां दिशि दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। ते च सुभिक्षावहाः सुभिक्षमावहन्ति कुर्वन्तीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

चन्द्ररश्मिसवर्णाभा हिमकुन्देन्दुसप्रभाः।
त्रयस्ते शशिनः पुत्रा सौम्याशास्थाः शुभावहाः।। इति।।१४।।

अथ ब्रह्मदण्डाख्यस्य लक्षणमाह—

ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः ।
अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥१५॥

ब्रह्मा का पुत्र, तीन शिखा वाला, तीन वर्णों से युक्त एक केतु है। यह सभी दिशाओं में उदित होता है। जब इसका दर्शन होता है, उस समय सभी प्रदेशों का नाश होता है।

ब्रह्मसुतो ब्रह्मणः पुत्र एक एव। स च त्रिशिखस्त्रिचूडः। वर्णैः सितादिभिस्त्रिभिरुपलक्षितास्ताश्च शिखाः। स तु ब्रह्मदण्डाख्यो ब्रह्मदण्डसंज्ञो विज्ञेयो विज्ञातव्यः। अनियतदिक्सम्प्रभवः। अनियतायामनिश्चितायां दिशि सम्प्रभव उत्पत्तिर्यस्य। सर्वासु दिक्षु दृश्यत इत्यर्थः। स तु युगान्तकरो युगस्यान्तं करोति। सर्वत्र क्षयकर इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

एको ब्रह्मसुतः क्रूरस्त्रिवर्णस्त्रिशिखान्वितः।
सर्वास्वाशासु दृश्यः स्याद् ब्रह्मदण्डः क्षयावहः।। इति।।१५।।

एकाधिकं शतं कथितमन्यानि नवशतान्येकोनानि कथयामीत्याह—

शतमभिहितमेकसमेतमेतदेकेन विरहितान्यस्मात् ।
कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥१६॥

इस तरह एक सौ एक केतुओं के लक्षण कहे गये हैं। फिर आठ सौ निन्यानबे तरह के उनके स्पष्ट लक्षण कहते हैं।।१६।।

एतदेकसमेतमेकेनाधिकं केतूनां शतमभिहितमुक्तम्। अस्मादेकाधिकाच्छतात् परत एकेन विरहितान्येकेनोनानि नव शतानि केतूनां स्पष्टैः स्फुटैर्लक्षणैश्चिह्नैः कथयिष्ये वक्ष्ये।।१६।।

अथ शुक्रपुत्राश्चतुरशीतिसंख्यास्तांश्चाह—

सौम्यैशान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः ।
विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥१७॥

विस्तीर्ण, शुक्ल और निर्मल शरीर वाले चौरासी प्रकार के शुक्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर और ईशान कोण में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से तीव्र (अशुभ) फल होता है।

शुक्रसुता भार्गवपुत्राश्चतुरशीत्याख्याः। चतुरशीतिसंज्ञाश्चतुरशीतिसंख्याश्च। सौम्यैशान्योरुदयं यान्ति। सौम्या उत्तरा। ऐशानी पूर्वोत्तरा। तत उदयं यान्ति गच्छन्ति। ते च विपुलसिततारका विपुला विस्तीर्णाः सिताः शुक्लास्तारका येषाम्। स्निग्धा निर्मलदेहाः। ते तीव्रफला भवन्ति। अनिष्टफला इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

स्थूलैकतारकाः श्वेताः स्नेहवन्तश्च सप्रभाः।
आर्चिष्मन्तः प्रसन्नाश्च तीव्रेण वपुषान्विताः।।
एते विसर्पका नाम शुक्रपुत्राः पुरोदयाः।
अशीतिश्चतुरश्चैव लोकक्षयकराः स्मृताः।। इति।।१७।।

अथ षष्टिः शनैश्चरपुत्रास्तानाह—

स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः ।
अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः ॥१८॥

निर्मल, कान्ति से युक्त, दो शिखा वाले शनैश्चर के पुत्र साठ प्रकार के केतु हैं। ये कनकसंज्ञक हैं और सभी दिशाओं में उदित होते हैं। इनके दर्शन होने से बहुत अशुभ फल होते हैं।।१८।।

स्निग्धा निर्मलाः। प्रभासमेताः कान्त्यन्विता दीप्तिमन्तः। द्विशिखा द्विचूडास्ते च षष्टिसंख्याः शनैश्चराङ्गरुहाः शनैश्चरपुत्राः। एते कनकसंज्ञाः कनककेतवः। सर्वत्र सर्वासु दिक्षु दृश्याः। अतिकष्टफला अत्यशुभफलाश्च ते। तथा च गर्गः—

सुस्निग्धा रश्मिसंयुक्ता द्विशिखाः सप्ततारकाः।
षष्टिस्ते कनका घोराः शनैश्चरसुता ग्रहाः।। इति।।१८।।

अथ गुरुसुताः पञ्चषष्टिस्तानाह—

विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः ।
षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः ॥१९॥

श्वेत, एक तारे वाले, शिखारहित, निर्मल शरीर वाले पैंसठ प्रकार के बृहस्पति-पुत्र केतु हैं। ये विकचसंज्ञक और दक्षिण दिशा में उदित होते हैं एवं इनका दर्शन होने से पाप (अशुभ) फल होता है।।१९।।

षष्टिः पञ्चभिरधिका पञ्चषष्टिः केतवो विकचा नाम विकचसंज्ञा गुरुसुता बृहस्पति-

पुत्राः। ते च सितैकताराः। सितः श्वेत एकस्तारको येषाम्। शिखापरित्यक्ताश्चूडारहिताः। ते च स्निग्धा निर्मलदेहा याम्याश्रिता दक्षिणस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफला अनिष्ट-फला इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

शुक्लाः स्निग्धाः प्रसन्नाश्च महारूपाः प्रभान्विताः।
एकतारा वपुष्मन्तो विशिखा रश्मिभिर्वृताः।।
एते बृहस्पतेः पुत्राः प्रायशो दक्षिणाश्रयाः।
नामतो विकचा घोराः पञ्चषष्टिर्भयावहाः।। इति।।१९।।

अथैकपञ्चाशद् बुधपुत्रास्तानाह—

नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः ।
बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥२०॥

अस्पष्ट, सूक्ष्म शरीर वाले, लम्बे, श्वेत, सभी दिशाओं में उदित होने वाले, तस्कर-संज्ञक बुध के पुत्र इक्यावन केतु हैं। इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२०।।

तस्करसंज्ञास्तस्करनामान एकपञ्चाशत्केतवो बुधजाः सौम्यपुत्राः। नातिव्यक्ता नाति-स्फुटाः। सूक्ष्मा अल्पदेहाः। दीर्घा आयामिनः। शुक्लाः श्वेतवर्णाः। यथेष्टदिक्प्रभवा यथे-ष्टायां दिशि प्रभव उत्पत्तिर्येषाम्। सर्वासु दिक्षु दृश्यन्त इत्यर्थः। ते च पापफला अनिष्ट-फलाः। तथा च गर्गः—

अरुन्धतिसमा रूक्षाः केचिदव्यक्ततारकाः।
सपाण्डुवर्णाः श्वेताभाः सूक्ष्मा रश्मिभिरावृताः।।
एते बुधात्मजा ज्ञेयास्तस्कराख्या भयावहाः।
एकाधिकास्ते पञ्चाशदथोत्पथचरा ग्रहाः।। इति।।२०।।

अथ षष्टिर्भौमपुत्रास्तानाह—

क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः ।
नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिताः पापाः ॥२१॥

रक्त या अग्नि के समान कान्ति वाले, तीन शिखा और तीन तारे वाले साठ प्रकार के मङ्गल-पुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं और इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२१।।

कौङ्कुमनामानः षष्टिः केतवः कुजात्मजा अङ्गारकपुत्राः। क्षतजानलानुरूपाः। क्षतजं रक्तमनलोऽग्निस्तदनुरूपास्तत्सदृशाः। अतिलोहिता इत्यर्थः। त्रिचूलतारास्त्रिशिखास्त्रि-तारका येषाम्। ते च सौम्याशासंस्थिता उत्तरस्यां दिशि दृश्यन्ते। पापाः पापफलाश्च। तथा च गर्गः—

त्रिशिखाश्च त्रिताराश्च रक्ता लोहितरश्मयः।
प्रायंशश्चोत्तरामाशां सेवन्ते नित्यमेव ते।।

लोहिताङ्गात्मजा ज्ञेया ग्रहा: षष्टि: समासत:।
नामत: कौङ्कुमा ज्ञेया राज्ञां संग्रामकारका:।। इति।।२१।।

अथ त्रयस्त्रिंशद्राहुपुत्रास्तानाह—

त्रिंशत्त्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याता: ।
रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम् ।।२२।।

राहु के पुत्र तामस-कीलक संज्ञक तैंतीस प्रकार के केतु हैं। ये सूर्य-चन्द्रमण्डल में दिखाई देते हैं। इनका फल सूर्यचाराध्याय में 'तामसकीलकसंज्ञा राहुसुता: केतव:' इत्यादि पद्य में कहा गया है।।२२।।

त्रिंशत्यधिकास्त्रयस्त्रिंशत्केतवो राहो: सुता: स्वर्भानुपुत्रा:। ते च नामतस्तामसकीलका इति ख्याता: प्रसिद्धा:। ते च रविशशिगा अर्कचन्द्रमण्डलस्था दृश्यन्ते अवलोक्यन्ते। तेषां च फलं शुभाशुभमर्कचारोक्तं सूर्यचारे कथितम्—'तामसकीलकसंज्ञा राहुसुता: केवत:' इति। तथा च गर्ग:—

कृष्णाभा: कृष्णपर्यन्ता: सङ्कुला: कृष्णरश्मय:।
राहुपुत्रास्त्रयस्त्रिंशत् कीलकाश्चातिदारुणा:।।
रविमण्डलगाश्चैते दृश्यन्ते चन्द्रगास्तथा।।

तथा च पराशर:—

अपर्वण्येव दृश्यन्ते ह्यङ्गिर:काककीलका:।
रवेरेवाङ्गिरा मध्ये ह्युभयो: काककीलकौ।।
अङ्गिरा: सरथो धन्वी दृश्यते पुरुषाकृति:।
काक: कालाकृतिर्घोरस्त्रिकोणो वापि लक्ष्यते।।
मण्डलं कीलके मध्ये मण्डलस्यासितो ग्रह:।
महानृपविरोधाय यस्यर्क्षे तस्य मृत्यवे।। इति।।२२।।

अथ विंशत्यधिकं शतमग्निपुत्राणामाह—

विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम् ।
तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम् ।।२३।।

अतिशय जाज्वल्यमान मूर्ति वाले अग्नि के पुत्र एक सौ बीस प्रकार के केतु हैं। ये विश्वरूपसंज्ञक और बड़े भयङ्कर अग्निभय देने वाले होते हैं।।२३।।

अन्यदपरं शतं विंशत्याधिकं केतूनामग्नेरग्निपुत्राणां विश्वरूपसंज्ञानां विश्वरूपनाम्नाम्। कीदृशानाम्? ज्वालामालाकुलतनूनां ज्वालामालाभिराकुला व्याप्तास्तनवो मूर्तयो येषाम्। तथा तीव्रानलभयदानां तीव्रं घोरमनलभयमग्निभीतिं ये ददति। तथा च गर्ग:—

नानावर्णा हुताशाभा दीप्तिमन्तो विचूलिन:।
सृजन्त्यग्निमिवाकाशे सर्वे ज्योतिर्विनाशना:।।

तेऽग्निपुत्रा ग्रहा ज्ञेया लोकेऽग्निभयवेदिनः।
विंशं ग्रहशतं घोरं विश्वरूपेति नामतः।। इति।।२३।।

अथ सप्तसप्ततिर्वायुपुत्रास्तानाह—

श्यामारुणा वितारश्चामररूपा विकीर्णदीधितयः।
अरुणाख्या वायोः सप्तसप्ततिः पापदाः परुषाः ॥२४॥

श्याम वर्ण लेते हुये लोहित वर्ण, ताराओं से रहित, चामर के समान, विस्तृत किरण और रूक्ष सतहत्तर वायुपुत्र केतु होते हैं। ये सभी अरुणसंज्ञक और पाप फल देने वाले होते हैं।।२४।।

अरुणाख्या अरुणसंज्ञाः सप्तसप्ततिः केतवो वायोः सुताः अनिलपुत्राः। श्यामारुणाः श्यामलोहितवर्णाः। वितारास्तारकवर्जिताः। चामररूपा बालव्यजनाकृतयः। विकीर्णदीधितयो व्याक्षिप्तरश्मयः। परुषा रूक्षाः। ते च पापदा दुष्टफलदाः। अत्र येषां दिङ्नियमो नास्ति तेऽनियतदर्शनाः सर्वास्वपि दिक्षु दृश्यन्ते। तथा च गर्गः—

अताररूपप्रतिमा धूमरक्तसवर्णिनः।
वातरूपा इवाभान्ति शुष्कविस्तीर्णरश्मयः।।
सप्ततिः सप्त चैवान्ये वायुपुत्रान् प्रचक्षते।
लोकविध्वंसना रूक्षा नामतस्त्वरुणा ग्रहाः।। इति।।२४।।

अथाष्टौ प्रजापतिसुता द्वे च शते चतुरधिके ब्रह्मणः पुत्रास्तानाह—

तारापुञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ।
द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्तानाः ॥२५॥

तारापुञ्ज के समान प्रजापति के पुत्र आठ प्रकार के केतु हैं। ये गणकसंज्ञक और अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। साथ ही चतुर्भुजाकार ब्रह्मा के पुत्र चतुरस्रसंज्ञक एक सौ चार केतु हैं। ये भी अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। ये दोनों केतु सभी दिशाओं में उदित होते हैं।।२५।।

अष्टौ केतवो गणका नाम प्रजापतेः सुताः पुत्राः। ते च तारापुञ्जनिकाशास्ताराणां नक्षत्राणां पुञ्जाः समूहास्तदाकाराः। ते च पापफला अशुभफलदायिनः। तथा द्वे च शते चतुरधिके केतूनां च ते चतुरस्राश्चतुरस्रसंज्ञाश्चतुरस्राकारा आकृतयश्च। ते च ब्रह्मसन्ताना ब्रह्मणः पुत्राः पापफला एव ज्ञेयाः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः—

तारापुञ्जप्रतीकाशास्तारामण्डलसंस्थिताः।
प्राजापत्या ग्रहास्त्वष्टौ गणका भयवेदिनः।।
त्र्यस्रा वा चतुरस्रा वा सशिखाः श्वेतरश्मयः।।
द्वे शते चतुरश्चैव ब्रह्मजा भयदाश्च ते।। इति।।२५।।

अथ द्वात्रिंशद्वरुणपुत्रानाह—

कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंशगुल्मसंस्थानाः ।
शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥२६॥

वंश और गुल्म (लता) के समान आकृति वाले, वरुण के पुत्र, कङ्कसंज्ञक और चन्द्र के समान कान्ति वाले बत्तीस प्रकार के केतु हैं। ये सभी दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है।।२६।।

द्वात्रिंशत्केतवः कङ्कनामानः। ते च वरुणजा यादसाम्पतेः पुत्राः। वंशगुल्मसंस्थाना वंशगुल्मवत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। गुल्म एकमूलजो लतासमूहः। शशिवच्चन्द्रवत्प्रभया कान्त्या समेताः संयुक्ताः। ते च तीव्रफलाः कष्टफलाः। प्रोक्ताः कथिताः। ते चानियत-दिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः—

वंशगुल्मप्रतीकाशा महान्तः पूर्णरश्मयः।
काकतुण्डनिभैश्चापि रश्मिभिः केचिदावृताः।।
मयूखानुत्सृजन्तीव सुस्निग्धाः सौम्यदर्शनाः।
एते कष्टफलाः प्रोक्ता द्वात्रिंशद्वारुणा ग्रहाः।। इति।।२६।।

अथ षण्णवतिकालपुत्रानाह—

षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञाः कबन्धसंस्थानाः ।
पुण्ड्राभयप्रदाः स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिनः ॥२७॥

काल के पुत्र, कबन्धसंज्ञक, छिन्न शिर वाले पुरुष के समान आकृति वाले और अस्पष्ट तारा वाले छियानबे प्रकार के केतु हैं। ये समस्त दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनका दर्शन होने से पुण्ड्र देश में शुभ एवं अन्य देश में अशुभ फल होता है।।२७।।

कालसुताः कालपुत्राः कबन्धसंज्ञाः कबन्धनामानः। षण्णवतिः केतवः। ते च कबन्ध-संस्थानाः। कबन्धश्छिन्नशिराः पुरुषस्तद्वत्संस्थानमाकृतिर्येषाम्। ते च विरूपताराः। विरूपा अस्फुटास्तारका येषाम्। ते शिखिनः केतवः पुण्ड्राभयप्रदाः। पुण्ड्रा नाम जनपदा-स्तेषामभयप्रदाः श्रेयस्कराः। स्युर्भवेयुः। अन्यत्र पुनर्भयदाः। ते चानियतदिक्सम्प्रभवाः। तथा च गर्गः—

तारापुञ्जविरूपाश्च कबन्धाकृतिसंस्थिताः।
पीतारुणसवर्णाश्च भस्मकर्पूररश्मयः।।
कालपुत्राः कबन्धाश्च नवतिः षट् च ते स्मृताः।
लोके मृत्युकरा घोराः पुण्ड्राणामभयप्रदाः।। इति।।२७।।

अथ नव विदिक्पुत्रान् सर्वेषां च संख्यानमन्येषां विशेषं च वक्ष्यामीत्याह—

शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः ।
एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥२८॥

श्वेत वर्ण, विस्तृत और एक तारा वाले, विदिशा के पुत्र नव प्रकार के केतु हैं। ये विदिशा में उत्पन्न होते हैं तथा इनका दर्शन होने से अशुभ फल होता है। इस तरह कुल एक सहस्र केतु हैं। अब आगे इनकी विशेषता कहते हैं।।२८।।

विदिशां दिगन्तरालानां नव समुत्पन्ना विदिक्पुत्रा इत्यर्थः। किम्भूताः शुक्लविपुलैकताराः। शुक्लः श्वेतवर्णो विपुलो विस्तीर्ण एकस्तारको येषाम्। ते च विदिक्ष्वेव दृश्यन्ते। दृष्टाश्च पापफलाः। तथा च गर्गः—

शुक्लैकतारा विपुला विदिक्पुत्रा नव ग्रहाः।
विदिक्षु संस्थितास्ते च दृश्यन्ते भयदायकाः।।

एवं केतुसहस्रमिति। एवं केतूनां सहस्रं कथितमुक्तम्। अतोऽनन्तरमेतेषामेव केतूनां विशेषं विशेषलक्षणं वक्ष्ये कथयिष्ये।।२८।।

एषां मध्यात् केचिद् दृश्यन्ते न सर्व एव। तत्र ये दृश्यन्ते तेषां लक्षणं वक्तुकामस्तत्रादावेव वसाकेतुलक्षणमाह—

उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः।
सद्यः करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते।।२९।।

उत्तर तरफ विस्तृत, स्थूल, निर्मल और पश्चिम दिशा में उदित होने वाला वसा नामक केतु है। इसके उदयकाल से ही पृथ्वी पर मरी पड़ती है तथा उत्तम सुभिक्ष होता है।।२९।।

उदगायत उत्तरस्यां दिशि आयतो दीर्घः। महानतिस्थूलः। स्निग्धमूर्तिर्निर्मलतनुः। अपरोदयी पश्चिमायां दिशि उदयं याति। स च नाम्ना वसाकेतुर्दृष्टः सद्य एव तस्मिन्नेवाहनि मरकं करोति। उत्तममपि प्रधानं सुभिक्षं च कुरुते।।२९।।

अथास्थिकेतोः शस्त्राख्यस्य च लक्षणमाह—

तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रूक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः।
स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय।।३०।।

पूर्वकथित वसा केतु की तरह उदगायतादि लक्षणों से युत और रूक्ष अस्थि-केतु है। यह दुर्भिक्ष करने वाला होता है तथा वसा केतु के लक्षणों से युत, निर्मल और पूर्व दिशा में उदित होने वाला शस्त्र-केतु है। यह शस्त्रयुद्ध कराने वाला और मनुष्यों को मारने वाला होता है।।३०।।

तदित्यनेन वसाकेतोः परामर्शः। अस्थिकेतुर्नाम केतुः स तल्लक्षणः। तल्लक्षणैर्वसाकेतोः सदृशैर्युक्तः—'उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी' इति। किन्त्वयं विशेषः—स तु रूक्षो भवति स्नेहरहितः। दृष्टश्च क्षुद्भयावहो दुर्भिक्षभयप्रदः प्रोक्तः कथितः। **स्निग्धस्तादृगिति**। तादृग् वसाकेतुसदृशः स्निग्धो निर्मलदेहः प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि दृश्यते। स तु शस्त्राख्यः शस्त्रकेतुसंज्ञो दृष्टो डमरमरकाय भवति। डमरं शस्त्रकलहं मरकं च करोति। तथा च पराशरः—

'एते षड्विंशतिरुदयैः फलमावेदयन्ति। तान् नामतो रूपतः फलतः कालतोऽभिधास्यामः। तत्र भार्गवास्त्रय उदयं यान्ति। एकैकशो वसास्थिशस्त्रकेतवः। तत्र वसाकेतुः स्निग्धो महानुदगायतशिखस्त्रिंशद्वर्षशतं प्रोष्य सम्प्लवे युगे पश्चिमोदितः सद्यो मरकफलः सौभिक्षकरस्तु। रूक्षोऽस्थिकेतुरसौ भिक्षुकतुल्यप्रवासकालफलः। पूर्वेण स्निग्ध एव तु शस्त्रकेतुः। राजविरोधमरकफलः समो रूक्षः'।।३०।।

अथ कपालकेतोर्लक्षणमाह—

दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः।
प्राङ्नभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ।।३१।।

धूम्र वर्ण की किरणों वाला, अमावास्या में पूर्व तरफ उदित होने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में विचरण करने वाला कपाल-केतु है। इसका दर्शन होने से पृथ्वी पर दुर्भिक्ष, मरकी, अवृष्टि और रोग उत्पन्न होता है।।३१।।

कपालकेतुर्नाम केतुः स त्वमावास्यायां कृष्णपञ्चदश्यां प्राक् पूर्वस्यां दिशि दृश्य उदयं याति। किम्भूतः? सधूम्ररश्मिशिखः। सधूम्रा रश्मिशिखा यस्य। किरणकान्तिर्धूम्रवर्णेत्यर्थः। नभसोऽर्द्धविचारी। नभस आकाशस्यार्द्धं यावद्विचरति गच्छति। स च क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः। क्षुद् दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयम्। अवृष्टिं रोगांश्च करोति। तथा च पराशरः—

'अथादित्यजानां कपालकेतुरुदयतेऽमावस्यायां पूर्वस्यां दिशि सधूम्रार्चिशिखो नभसोऽर्द्धचरो दृश्यते। पञ्चविंशवर्षशतं प्रोष्य त्रींश्च पक्षानमृतजस्य कुमुदकेतोश्चारान्ते स दृष्ट एव दुर्भिक्षानावृष्टिव्याधिभयमरणोपद्रवान् सृजति। जगति यावतो दिवसान् दृश्यते तावन्मासान् मासैर्वत्सरान् पञ्चप्रस्थं च शारदधान्यार्घं कृत्वा प्रजानामपयुङ्क्ते'।।३१।।

तथा रौद्रकेतुमाह—

प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः।
नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः ।।३२।।

पूर्व और अग्निकोण में उदित होने वाला शूलाग्र (तीन शिखा वाला), कपिश, रूक्ष या ताम्र के समान किरण वाला और आकाश के तीन भाग में गमन करने वाला रौद्र-केतु है। यह कपाल केतु की तरह फल देता है।।३२।।

रौद्रनामा केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि वैश्वानरमार्गे दहनवीथ्यां दृश्यते। वैश्वानरसंज्ञितमार्गे पूर्वाषाढोत्तराषाढयोः समीप इत्यर्थः। कीदृशः? शूलाग्रः। शूलाकृतिरग्रं यस्य केतोः स शूलाग्रः। त्रिशिख इत्यर्थः। तस्यैव विशेषणं श्यावरूक्षताम्रार्चिः। रूक्षमस्निग्धमर्चिस्तेजः, श्यावरूक्षं ताम्रं चार्चिस्तेजो यस्य स श्यावरूक्षताम्रार्चिः। नभसस्त्रिभागगामी नभस आकाशस्य त्रिभागगमनशीलः। स च कपालतुल्यफलः कपालकेतोः समानफलः। एतदुक्तं भवति—क्षुन्मरकावृष्टिरोगकर इति। आचार्येण शुक्रचारे वैश्वानरमार्गः प्रदर्शित एव 'अषाढाद्वयं दहना' इति। तथा च पराशरः—

'अथ दक्षयज्ञरुद्रक्रोधोद्भव: कलिकेतुस्त्रीणि वर्षशतानि नव च मासान् प्रोष्योदयते पूर्वेण वैश्वानरमार्गे ह्यमृतजस्य मणिकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षताम्रारुणां शूलाकारसदृशीं शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागचारी स शस्त्रभयरोगदुर्भिक्षाऽनावृष्टिमरकैर्यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि त्रिभागशेषां प्रजां कृत्वार्घं च शारदधान्यमाढकमस्तं व्रजति।' तथा च वृद्धगर्ग आह—

ज्येष्ठामूलमनूराधा या वीथी सम्प्रकीर्तिता।
तां च वीथीं समारुह्य केतुश्चेत् क्रीडते भृशम्।।
दक्षिणाभिनतां कृत्वा शिखां घोरां भयङ्करीम्।
शूलाग्रसदृशीं तीक्ष्णां श्यावताम्रारुणप्रभाम्।।
पूर्वेण चोदितश्चैष नक्षत्राण्युपधूमयेत्।
घोरं प्रजासु सृजति फलं मासे त्रयोदशे।।
त्रिभागं नभसो गत्वा ततो गच्छत्यदर्शनम्।
यावतो दिवसांस्तिष्ठेत्तावद्वर्षाणि तद्भयम्।।
शस्त्राग्निभयरोगैश्च दुर्भिक्षमरणैर्हता:।
पूर्यमाणा: प्रजा सर्वा विद्रवन्ति दिशो दश।। इति।।३२।।

अथ चलकेतोर्लक्षणमाह—

अपरस्यां चलकेतुः शिखया याम्याग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथा यथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति।।३३।।

सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः।
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति।।३४।।

हन्यात् प्रयागकूलाद्यावदवन्तीं च पुष्करारण्यम्।
उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम्।।३५।।

अन्यानपि च स देशान् क्वचित् क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः।
दश मासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः।।३६।।

पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, दक्षिण दिशा में एक अङ्गुल उच्छ्रित शिखा वाला, जैसे-जैसे उत्तर तरफ जाय वैसे-वैसे दीर्घ होने वाला, सप्तर्षि, ध्रुवतारा और अभिजित् नक्षत्र को स्पर्श करके लौटने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में जाकर दक्षिण दिशा में अस्त होने वाला चल केतु है। इसका दर्शन होने से प्रयाग से लेकर अवन्ती तक के देश, पुष्करारण्य नामक स्थान और उत्तर दिशा में देविका नदी तक के देश का नाश होता है; लेकिन विशेषकर तथा मध्य देश का नाश होता है। साथ ही अन्य देशों का भी रोग और दुर्भिक्ष के द्वारा नाश होता है। इसका फल दर्शनकाल से लेकर दश मास तक होता है और किसी का मत है कि दर्शनकाल से लेकर अट्ठारह मासपर्य्यन्त फल प्राप्त होता है।।३३-३६।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि चलकेतुर्नाम दृश्यते। स च कीदृशः? शिखया याम्याग्रया अङ्गुलोच्छ्रितयोपलक्षितः। शिखा चूडा तया याम्याग्रया याम्यायां दक्षिणस्यां दिश्यग्रं यस्याः। तथा अङ्गुलोच्छ्रितया अङ्गुलप्रमाणोच्चया। यथा यथा येन येन प्रकारेणोदगुत्तरां दिशं गच्छेद्याति तथा तथा तेन तेन प्रकारेण दैर्घ्यं दीर्घतामायाति प्राप्नोति।

सप्तमुनीनिति। सप्तमुनीन् वसिष्ठादीन् संस्पृश्य तथा ध्रुवं ध्रुवतारकमभिजितं च नक्षत्रं संस्पृश्य ततः प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागतः। नभस आकाशस्यार्द्धमात्रमित्वा गत्वा प्राप्य याम्येन दक्षिणस्यां दिशि अस्तमदर्शनं समुपयाति गच्छति।

हन्यात् प्रयागकूलादिति। स एव चलकेतुः प्रयागकूलादारभ्य यावदवन्तीं चोज्जयिनीं तथा पुष्करारण्यं नाम स्थानं तावद्धन्यान्नाशयेत्। उदगपि चोत्तरस्यां दिश्यपि च यावद्देविकां नदीं तावद्धन्यात्। मध्यदेशाख्यं मध्यदेशं भूयिष्ठमतिशयेन हन्यात्।

अन्यानपि च स देशानिति। स चलकेतुरन्यानपरान् देशानपि रोगदुर्भिक्षैः क्वचित् क्वचिद्धन्ति नाशयति न सर्वत्र। अस्य केतोर्दश मासान् यावत्फलपाकः। दर्शनात् त्रिपक्षा-त्परतो यावद्दशमासांस्तावदशुभं फलं ददाति। कैश्चिदन्यैर्गर्गादिभिरष्टादश मासान् यावत् फलपाकः प्रोक्तं कथितः। तथा च पराशरः—

'अथ पैतामहश्चलकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्योदितः पश्चिमेनाङ्गुलिपर्वमात्रां शिखां दक्षिणाभिगतां कृत्वा जलकेतोश्चारान्ते नभसस्त्रिभागमनुचरन् यथा यथा चोत्तरेण व्रजति तथा तथा शूलाग्राकारां शिखां दर्शयन् ब्रह्मनक्षत्रमुपसृत्य मनाग् ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन् स्पृशन् नभसोऽर्द्धमात्रं दक्षिणमनुक्रम्यास्तं व्रजति। स स्वर्गे दारुणकर्मा। स्वर्गप्राप्तत्वादेव च कृत्स्नमभिहिनस्ति लोकम्। अपि च भूमिं कम्पयित्वा दश मासान्मध्यदेशे भूयिष्ठं जनपदमनवशेषं कुरुते। तेष्वपि क्वचित् क्वचिच्छस्त्रदुर्भिक्षव्याधिमरकभयैः क्लिश्नात्य-ष्टादश मासानि'ति। तथा च गर्गः—

क्षुच्छस्त्रमरकव्याधिभयैः सम्पीडयेत् प्रजाः।
मासान् दश तथाष्टौ च चलकेतुः सुदारुणः॥ इति॥३३-३६॥

अथ श्वेतकेतुलक्षणमाह—

प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यश्च।
क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ॥३७॥

स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः।
दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम्॥३८॥

श्वेत-केतु पूर्व दिशा में अर्द्धरात्रि के समय दृश्य होने वाला और दक्षिणस्थित शिखा वाला है तथा अन्य 'क'संज्ञक केतु गाड़ी के जुए के समान आकृति वाला और पश्चिम दिशा में अस्त होने वाला है। यदि निर्मल होकर ये दोनों सात दिन तक दिखाई दें तो सुभिक्ष और

कल्याण करते हैं। यदि सात दिन से अधिक कनामक केतु दिखाई दे तो दश वर्ष तक शस्त्र के कोप से मनुष्यों को पीड़ित करता है।।३७-३८।।

श्वेतकेतुर्नाम केतुः प्राक् पूर्वस्यां दिशि अर्द्धरात्रदृश्यः अर्द्धरात्रकाले दृश्यते। याम्याग्रो दक्षिणदिक्शिखः। अन्यश्च द्वितीयः क इति कनामा केतुः। अपरे पश्चिमायां दृश्यते। तौ च द्वावपि युगपत्तुल्यकालं सप्तदिनदृश्यौ सप्तदिनानि दृश्येते।

तौ च द्वावपि स्निग्धावतिनिर्मलौ दृष्टौ च सुभिक्षशिवदौ सुभिक्षं शिवं श्रेयश्च ददतः। अथ यः कनामा स च यदि सप्तभ्यो दिनेभ्योऽधिकं दृश्यते तदा दशवर्षाणि शस्त्रप्रकोपकृतं संग्रामजमुपतापमुपद्रवं जनयत्युत्पादयति। तथा च पराशरः—

'अथौद्दालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्य भटकेतोश्चारान्ते पूर्वस्यां दिशि दक्षिणाभिनतशिखोऽर्द्धरात्रकाले दृश्यः। तेनैव सह द्वितीयः कः प्रजापतिपुत्रः पश्चिमेन ग्रहकेतोर्यूपसंस्थायी युगपद् दृश्यते। तावुभौ सप्तरात्रदृश्यौ दशवर्षाणि प्रजाः पीड्यन्ते। कः प्रजापतिपुत्रो यद्यधिकं दृश्यते तदा दारुणतरं प्रजानां शस्त्रकोपं कुर्यात्तथैव स्नेहवर्णयुक्तौ क्षेमारोग्यसुभिक्षदौ भवतः'।।३७-३८।।

अथ श्वेतलक्षणमाह—

श्वेत इति जटाकारो रूक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः।
विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते।।३९।।

श्वेत नामक केतु जटा के सदृश, रूक्ष, कपिश और आकाश के तीन भाग तक जाकर बायीं तरफ से होकर लौट आता है। इसका दर्शन होने से प्रजा का तृतीयांश मात्र शेष रहता है अर्थात् दो भाग नष्ट हो जाते हैं।।३९।।

श्वेतनामा केतुर्जटाकारो जटासदृशः। रूक्षः परुषः। श्यावः कृष्णवर्णः। वियत्त्रिभागगतो वियत्याकाशे त्रिभागं यावद् गच्छति ततोऽपसव्यमप्रदक्षिणं वामभागे विनिवर्तते विनिवृत्तिं करोति। त्रिभागशेषास्तृतीयांशावशेषाः प्रजाः कुरुते। द्वौ भागौ क्षयं नयतीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'अथ काश्यपः श्वेतकेतुः पञ्चदशवर्षशतं प्रोष्यैन्द्रांशः सहजस्य पद्मकेतोश्चारान्ते श्यावरूक्षो नभसस्त्रिभागमाक्रम्याग्रसव्यं निवृत्त्योर्ध्वं प्रदक्षिणजटाकारशिखः। स यावन्मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि सुभिक्षमावहति। मध्यदेश आर्यगणानामौदीच्यैश्च भूयिष्ठं बहुशस्त्रिभागशेषां प्रजामवशेषयति।।३९।।

अथ रश्मिकेतोर्लक्षणमाह—

आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः।
ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते।।४०।।

धूम्र वर्ण की शिखा वाला और कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होने पर दिखाई देने वाला

रश्मि केतु है। इसका दर्शन होने से यह श्वेत की तरह फल (त्रिभाग शेष प्रजा) करता है।।४०।।

आधूम्रवर्णया शिखयोपलक्षितस्तथा कृत्तिकासंस्थः समीपे दर्शनमुदयमायाति गच्छति स रश्मिकेतुर्नाम केतुर्ज्ञेयो ज्ञातव्यः। स च श्वेतसमानं श्वेतकेतुसदृशं फलं धत्ते ददाति। त्रिभागशेषा प्रजाः कुरुत इत्यर्थः। तथा च पराशरः—

'अथ रश्मिकेतुर्विभावसुजः प्रोष्य वर्षशतमावर्तकेतोश्चारान्ते उदितः कृत्तिकासु धूम्रशिखः श्वेतकेतोः सदृशफलः'।।४०।।

अथ ध्रुवकेतोर्लक्षणमाह—

ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक् ।
दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ।।४१।।

सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम् ।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति ।।४२।।

अनिश्चित गमन, प्रमाण, वर्ण और आकृति वाला, सभी दिशाओं में दिखाई देने वाला, दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम भेद से तीन प्रकार का होने वाला, निर्मल तथा शुभ फल देने वाला ध्रुव केतु है। यह ध्रुवकेतु नाश होने वाले राजाओं के सेनाङ्ग (अश्व, लगाम आदि) में, नाश होने वाले देशों के गृह, वृक्ष और पर्वत में तथा नाश होने वाले गृहस्थों के उपकरण द्रव्य में दिखाई देता है।।४१-४२।।

ध्रुवकेतुर्नाम केतुः स त्वनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिः। अनियता अनिश्चिता गतिर्गमनम्। प्रमाणं स्थूलसूक्ष्ममध्यभावम्। वर्णः शुक्लकृष्णादिः। आकृतिराकारो यस्य स तथाभूतः। स च विष्वक् समन्ततो भवति। सर्वासु दिक्ष्वित्यर्थः। स च दिव्यान्तरिक्षभौमस्त्रिप्रकारो भवति। केचिद्विश्वे नानाकारो भवतीतीच्छन्ति। स च स्निग्धो निर्मलशरीरः। इष्टफलः शुभफलो भवति।

एष चैवंविधानां विनाशानां मुमूर्षूणां दर्शनमुदयं याति गच्छति। नृपाणां राज्ञां विनाशिनां सेनाङ्गेषु अश्वोपकरणेषु खलीनपर्याणादिषु दर्शनं याति। देशानां विनाशिनां गृहतरुशैलेषु। गृहेषु वेश्मसु। तरुषु वृक्षेषु। शैलेषु पर्वतेषु च दृश्यते। तथा गृहिणां गृहस्थानामुपस्करेषु भाण्डेषु दर्वीशूर्पमार्जन्यादिषु विनाशिनामेव दर्शनं याति। तशा च पराशरः—

अथानियतदिक्कालरूपवर्णप्रमाणसंस्थानो ध्रुवकेतुः पराभवमिष्यतां देशानां राज्ञां जनपदानां च वृक्षपुरपर्वतवेश्मध्वजपताकाशस्त्रवर्मायुधावरणरथनागोष्ट्रपुरुषशयनासनभाण्डेषु वा दृश्यते। स एव च स्निग्धो विमलः प्रदक्षिणशिखो गोगजाजनागवीथीश्चोत्तरेण व्रजन् सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चावहति। दशैकविंशतिद्विषष्टिशतधा वा दर्शनमिच्छन्ति मुनयो ध्रुवकेतोः। तस्य प्रागुदयनिमित्तानि—अवनिचलनम्। अग्नेः प्रभामान्द्यम्। प्रधूपनं दिशाम्। शीतोष्णविपर्ययः। अतिरूक्षवायुसम्भवश्च।।४१-४२।।

अथ कुमुदकेतोर्लक्षणमाह—

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखो निशामेकाम् ।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ।।४३।।

कुमुदपुष्प की तरह कान्ति वाला, पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, पूर्व की तरफ शिखा वाला और केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला कुमुद केतु है। इसका दर्शन होने से दश वर्ष तक पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है।।४३।।

कुमुद इति कुमुदनामा केतुः। स तु कुमुदकान्तिः कुमुदाभः। श्वेतवर्ण इत्यर्थः। स तु वारुण्यां पश्चिमायां दिशि। प्राक्शिखः पूर्वाग्रो निशां रात्रिमेकामेव दृश्यते। किलेत्यागमसूचने। स तु दृष्टो दशवर्षाण्यतुलमसमं सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथामृतजः कुमुदो मणिः। जलोद्भवः पद्मः। आवर्तः। ऊर्मि। शङ्खः। हिमः। रक्तः। कुक्षिः। कामः। विसर्पणः। शीतश्चे'ति।

तत्र कुमुदकेतुर्वसाकेतोश्चारसमाप्तौ वारुण्यां दर्शनमुपैति। गोक्षीरविमलस्निग्धप्रभां पूर्वेणाभिनतां शिखां कृत्वैकरात्रचरः। स दृष्ट एव सुभिक्षमुत्पादयति। दशवर्षाणि प्रजानामविरोधं च। प्रतीच्यानां च मुखरोगारोचकप्रतिश्यायपाण्डुरोगजननैः प्रजा बाधत इति।

अथ मणिकेतोर्लक्षणमाह—

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः ।
ऋज्वी शिखास्य शुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ।।४४।।

उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान् ।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ।।४५।।

पश्चिम दिशा में एक प्रहरमात्र शेष रात्रि में एक बार दिखाई देने वाला और दुग्धधारा की तरह स्पष्ट शिखा वाला मणि केतु है। यह केतु उदयकाल से ही साढ़े चार महीने तक सुभिक्ष और अधिकतर नकुल आदि क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है।।४४-४५।।

मणिकेतुर्नाम केतुः स त्वपरेण पश्चिमायां दिशि सुसूक्ष्मतारोऽत्यल्पतारकः। सकृदेकवारम्। एकयामदृश्यः। यामशब्देन रात्रिचतुर्भाग उच्यते। अस्य केतोः। ऋज्वी स्पष्टा। शिखा चूडा। शुक्ला श्वेतवर्णा दृश्यते। कीदृशी? स्तनोद्गता क्षीरधारेव। स्तनात् कुचादुद्गता निःसृता क्षीरधारा यथा दृश्यते तद्वच्छिखा।

असौ केतुरुदयन्नेवोदितमात्र एव चतुरः सार्द्धान् अर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमं सुभिक्षमुत्पादयति करोति। प्रायो बाहुल्येन क्षुद्रजन्तूनां नकुलादीनां प्रादुर्भावमुत्पत्तिं करोति। तथा च पराशरः—

'मणिकेतुरपि कपालकेतोश्चारावसाने प्रतीच्यामुदयमुपयाति। सूक्ष्मोऽरुन्धतीतारकामात्रः क्षीरप्रसेककान्त्या पूर्वाभिनतया स्निग्धशिखया शर्वर्यामेकयामदृश्यः। स उदयात्

प्रभृत्यर्द्धपञ्चमान् मासान् क्षेमसुभिक्षमुत्पादयति। क्षुद्रजन्तूनां प्रादुर्भावं करोत्यतिमात्रकालदृष्टः'।।४४-४५।।

अथ जलकेतोर्लक्षणमाह—

जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया।
नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ।।४६।।

पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाला, निर्मल और पश्चिमोन्नत शिखा वाला जलकेतु है। यह उदित हो तो नव मास तक सुभिक्ष और लोगों का कुशल करता है।।४६।।

जलकेतुर्नाम केतुः सोऽपि पश्चात् पश्चिमायां दिशि दृश्यते। स्निग्धो निर्मलदेहः। अपरेण पश्चिमेन। चोन्नतया उच्चया शिखया चूडया युक्तः। स च दृष्टो नव मासान् यावत् सुभिक्षं करोति। लोकस्य जनपदस्य च शान्तिं श्रेयः करोति। तथा च पराशरः—

'अथ जलकेतुः पैतामहजस्य जलकेतोर्नवमासावशिष्टे कर्मणि कृतं प्रवर्तयति। पश्चिमेनोदितः स्निग्धः सुजातोऽनुपश्चिमाभिनतशिखः। स च नव मासान् क्षेमसुभिक्षारोग्याणि प्रजाभ्यो धत्ते। अन्यग्रहकृतानां चाशुभानां व्याघाताये'ति।।४६।।

अथ भवकेतोर्लक्षणमाह—

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ।।४७।।
यावत एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान्।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ।।४८।।

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला, सूक्ष्म तारा से युत और सिंह की पूँछ की तरह दक्षिणावर्त शिखा से युत भव केतु है। यह निर्मल मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष और रूक्ष मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक प्राणान्तक रोग की उत्पत्ति करता है।।४७-४८।।

भवकेतुर्नाम केतुः स च प्राक् पूर्वस्यां दिशि एकरात्रमेकां निशां दृश्यः। सूक्ष्मतारकः सूक्ष्मोऽत्यल्पस्तारको यस्य। स्निग्धो निर्मलदेहः। अन्यत्र शिखयोपलक्षितः। कीदृश्या? हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया। हरिः सिंहस्तस्य लाङ्गूलं पुच्छस्तदुपमया तदाकारया प्रदक्षिणेनावर्तो यस्यास्तथाभूतया।

स च यावत एव मुहूर्त्तान् यावत्संख्यान् क्षणान् दर्शनमायाति दृश्यते तावन्मासानतुलमसमं सुभिक्षं निर्दिशेद्वदेद्यदि स्निग्धः। रूक्षे तु पुनः प्राणान्तिकान् रोगान् गदान् वदेत्। तथा च पराशरः—

'अथ जलकेतोः कर्मसमाप्तावूर्म्यादयः शीतान्ता अष्टौ प्रादुर्भवन्ति। ते त्रयोदशचतुर्दशाष्टादशवर्षान्तरिता दृश्यन्ते। स्निग्धाः सुभिक्षक्षेम्या विपर्यया: विपरीताः। क्षुद्रजन्तूनां

वधाय। तेषामष्टानां कर्मण्यतीते भवकेतुर्दृश्यते पूर्वेणैकरात्रम्। या कृत्तिकानामग्रतमा तारा तत्प्रमाणया स्निग्धयाऽरूक्षाभया सिंहलाङ्गूलसंस्थानया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षाय। रूक्षः प्राणहराणां रोगाणां प्रादुर्भावायेति'।।४७-४८।।

अथ पद्मकेतोर्लक्षणमाह—

अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ।।४९।।

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला मृणाल की तरह गौर पद्म केतु है। यह उदित हो तो सात वर्ष तक सुभिक्ष और लोगों में आनन्द-मंगल करता है।।४९।।

पद्मकेतुर्नाम केतुः। अपरेण पश्चिमायां दिशि निशां रात्रिमेकां दृश्यते। कीदृशः? मृणालगौरः, मृणालवद् गौरो मृणालगौरः। मृणालं बिसतन्तु। तद्वद् गौरः। श्वेत इत्यर्थः। स तु दृष्टः सप्त वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथ पद्मकेतुः श्वेतकेतुफलसमाप्तौ पश्चिमेनाह्लादयन्निव मृणालकुमुदाभया शिखयैकरात्रचरः। सप्त वर्षाण्यभ्युच्छ्रितं हर्षमावहति जगतः'।।४९।।

अथावर्तकेतोर्लक्षणमाह—

आवर्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः।
यावत्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ।।५०।।

पश्चिम दिशा में रात्र्यर्ध समय में उदित होने वाला, दक्षिणस्थ शिखा वाला, रक्तवर्ण, निर्मल शरीर वाला आवर्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष करता है।।५०।।

आवर्तनामेति यः केतुः स निशार्धे रात्र्यर्धे। अपरे पश्चिमायां दिशि। सव्यशिखो दक्षिणदिगाश्रितशिखः। अरुणनिभो रक्तवर्णः। स्निग्धो निर्मलवपुर्दृश्यते। स तु यावत्क्षणान् यावत्संख्यान् मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् सुभिक्षं करोति। तथा च पराशरः—

'अथावर्तकेतुः श्वेतकेतोः कर्मण्यतीतेऽपरस्यामर्द्धरात्रे शङ्खावदातोऽरुणाभया प्रदक्षिणनताग्रया शिखयोदितः। स यावन्मुहूर्तान् दृश्यते तावन्मासान् भवत्यतीव सुभिक्षं नित्ययज्ञोत्सवं जगत्'।।५०।।

अथ संवर्तकेतोर्लक्षणमाह—

पश्चात् सन्ध्याकाले संवर्तो नाम धूम्रताम्रशिखः।
आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ।।५१।।

यावत एव मुहूर्तान् दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति।
भूपान् शस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ।।५२।।

पश्चिम दिशा में सन्ध्याकाल में आकाश के तीसरे भाग तक जाकर दिखाई देने वाला धूम्र या ताम्र वर्ण की तीन शिखा वाला संवर्त्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने वर्ष तक युद्ध के द्वारा राजाओं का नाश करता है; साथ ही उदयकालिक नक्षत्र को पीड़ित करता है।।५१-५२।।

पश्चात् पश्चिमायां दिशि। सन्ध्याकाले सन्ध्यासमये। संवर्तो नाम केतुः। कीदृशः? धूम्रताम्रशिखः। धूम्रा ताम्रवर्णा च शिखा चूडा यस्य। वियत आकाशस्य त्र्यंशं तृतीयभागमाक्रम्य प्राप्य दृश्यते। शूलाग्रावस्थितः। शूलमग्रे शिरस्यवस्थितं यस्य। त्रिचूड इत्यर्थः। स च रौद्रो भयावहः।

स च केतुर्यावतो मुहूर्तान् दृश्यो भवति तावत्संख्यानि वर्षाणि हन्ति नाशयति। अशुभफलप्रदो भवतीत्यर्थः। तथा भूपान् नृपान्। शस्त्रनिपातैः संग्रामैर्हन्ति नाशयति। तथोदयर्क्षम्। यस्मिन्नक्षत्रे उदितो दृश्यते तच्च पीडयत्युपतापयति। तथा च पराशरः—

'अथ संवर्तो वर्षसहस्रमष्टोत्तरं प्रोष्य पश्चिमेनास्तं गते सवितरि सन्ध्यायां दृश्यते तन्वीं ताम्ररूक्षां शूलाभां धूम्रं विमुञ्चन्तीं दारुणां शिखां कृत्वा नभसस्त्रिभागमाक्रम्य। स यावन्मुहूर्तान् निशि तिष्ठति तावद्वर्षाणि परस्परं शस्त्रैर्घ्नन्ति पार्थिवाः। यानि नक्षत्राणि धूपयति यत्र चोदेति तानि दारुणतरं पीडयति। तदाश्रितांश्च देशानि'ति। तथा च—

येषां नक्षत्रविषये रूक्षः सज्वाललोहितः।
दृश्यते बहुमूर्तिश्च तेषां विन्द्यान्महाभयम्।।
अवर्षं शस्त्रकोपं च व्याधिं दुर्भिक्षमेव च।
कुर्यान्नृपतिपीडाश्च स्वचक्रपरचक्रतः।।
यत्रोत्तिष्ठति नक्षत्रे प्रवासं यत्र गच्छति।
धूपयेद्वा स्पृशेद्वापि हन्याद्देशांस्तदाश्रितान्।।
यस्याभिषेकनक्षत्रं जन्मभं कर्मभं तथा।
देशर्क्षं पीडयेद्वापि स शान्त्युपरमो भवेत्।।
स्निग्धः प्रसन्नो विमलः प्रदक्षिणशिखस्तथा।
दृश्यते येषु देशेषु शिवं तेषु विनिर्दिशेत्।।
गगनार्द्धचरः सद्यः प्रधानदेशान् विनाशयेदचिरात्।
निखिलगगनानुचारी त्रैलोक्यविनाशकः केतुः।। इति।।५१-५२।।

अथ शुभान् केतून् वर्जयित्वाऽशुभानां नक्षत्रस्पर्शधूपनाद् दुष्टफलं वक्ष्यामीत्याह—

ये शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूपितेऽथवा स्पृष्टे।
नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान्।।५३।।

शुभ केतुओं को छोड़कर अन्य केतुओं से धूपित या स्पृष्ट नक्षत्र होने पर जिन-जिन राजाओं का नाश होता है, उनको अब कहते हैं।।५३।।

ये केतव: शस्ता: प्रशस्तफला:। तान् हित्वा त्वक्त्वा। अन्यै: केतुभि: शिखिभिर्नक्षत्रे यस्मिन्नाधूपितेऽथवा स्पृष्टे तेषां राज्ञां नृपाणां वधो मरणं भवति तान्नृपान् वक्ष्ये कथयिष्ये।।५३।।

तांश्चाधुनाऽऽह—

अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात्।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम्।।५४।।

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट अश्विनी नक्षत्र हो तो अश्मक देशाधिपति, भरणी हो तो किरातों के अधिपति, कृत्तिका हो तो कलिङ्ग देश के अधिपति और रोहिणी नक्षत्र हो तो शूरसेन देश के स्वामी का नाश करता है।।५४।।

अश्विन्यामभिधूपितायां स्पृष्टायां वा केतुना। अश्मकपमश्मकानां जनानामधिपतिं राजानं हन्यान्नाशयेत्। एवं भरणीषु किरातपार्थिवं किराताधिपतिं हन्यात्। बहुलासु कृत्तिकासु कलिङ्गेशं कलिङ्गाधिपतिम्। रोहिण्यां शूरसेनपतिं शूरसेना जनास्तेषां पतिम्।।५४।।

अन्येष्वाह—

औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति।।५५।।

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मृगशिरा हो तो उशीनर देश के स्वामी, आर्द्रा हो तो मत्स्य देश के स्वामी, पुनर्वसु हो तो अश्मक देश के स्वामी और पुष्य हो तो मगधाधिपति का नाश करता है।।५५।।

सौम्ये मृगशिरसि केतुनाभिधूपिते स्पृष्टे वा औशीनरमुशीनराधिपतिं हन्यात्। तथा आर्द्रासु जलजाजीवाधिपं जलजा मत्स्यादयस्तैर्ये आजीवन्ति ते च जलजाजीवा:। ग्रामदेशवासिन इत्यर्थ:। तेषामधिपं नृपं हन्यात्। आदित्ये पुनर्वसावश्मकनाथानश्मकाधिपतीन्। पुष्ये मगधाधिपं मागधं नृपं हन्ति।।५५।।

अन्येष्वाह—

असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम्।।५६।।

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट आश्लेषा नक्षत्र हो तो असिकेश्वर, मघा हो तो अंगदेशाधिपति, पूर्वाफाल्गुनी हो तो पाण्ड्यदेशाधिपति, उत्तराफाल्गुनी हो तो उज्जयिनी के पति और हस्त नक्षत्र हो तो दण्डक वन के स्वामी का नाश होता है।।५६।।

भौजङ्गे आश्लेषायामसिकेशम्। असिका जनास्तेषामीशं पतिं हन्ति। पित्र्ये मघायामङ्गाधिपतिम्। भाग्ये पूर्वफल्गुन्यां पाण्ड्यनाथम्। आर्यम्णे उत्तरफल्गुन्यामौज्जयिनिकमुज्जयिनीपतिम्। सावित्रे हस्ते दण्डकाधिपतिं दण्डकारण्यनाथं हन्ति।।५६।।

अन्येष्वाह—

चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः ।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥५७॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट चित्रा नक्षत्र हो तो कुरूक्षेत्राधिपति का मरण केतूपघातज्ञ पण्डित को कहना चाहिये तथा स्वाती नक्षत्र हो तो काश्मीर और कम्बोज देश के स्वामी का नाश कहना चाहिये।।५७।।

चित्रासु केतुनाभिधूपितासु स्पृष्टासु वा कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं वधम्। तज्ज्ञः केतूपघातज्ञः। समादिशेद्वदेत्। प्राभञ्जने स्वातौ काश्मीरककाम्बोजौ नृपती राजानौ न स्तो न भवतः।।५७।।

अन्येष्वाह—

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु ।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः ॥५८॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट विशाखा नक्षत्र हो तो अलकाधिपति, अनुराधा हो तो पुण्ड्राधिपति और ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो सार्वभौम राजा का नाश होता है।।५८।।

विशाखासु यदि केतूपघातो भवेत्तदा इक्ष्वाकुनाथोऽलकनाथश्च हन्यते। इक्ष्वाकवो जनाः। अलका नाम नगरी। तन्नाथो राजा। मैत्रेऽनुराधायां पुण्ड्राधिपतिर्हन्यते। ज्येष्ठासु च सार्वभौमस्य राज्ञः कान्यकुब्जाधिपतेर्वधो मरणं भवति।।५८।।

अन्येष्वाह—

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति ।
यौधेयकार्जुनायनशिविचैद्यान् वैश्वदेवे च ॥५९॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मूल नक्षत्र हो तो अन्ध्र और मद्रक देश के अधिपति, पूर्वाषाढ़ा हो तो काशी के स्वामी और उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो यौधेयक, अर्जुनायन, शिवि और चैद्य देश के अधिपति का नाश होता है।।५९।।

मूले केतूनाभिधूपिते हते वा अन्ध्रपतिं मद्रकपतिं च हन्ति। जलदेवे पूर्वाषाढायां काशिपः काश्यधिपतिर्मरणमेति प्राप्नोति। वैश्वदेवे उत्तराषाढायां यौधेयकः। अर्जुनायनः। शिविः। चैद्यः। एतान्नृपतीन् हन्ति।।५९।।

अथान्येष्वाह—

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम् ।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः ॥६०॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट श्रवण नक्षत्र हो तो केकय देश के स्वामी, धनिष्ठा हो तो पञ्जाब के स्वामी, शतभिषा हो तो सिंहल देश के स्वामी, पूर्वभाद्रपदा हो तो नैमिषारण्य के

स्वामी और रेवती हो तो किरातों के स्वामी का नाश होता है।।६०।।

षटसु श्रवणादिषु नक्षत्रेषु हतेषु षडिमान्नृपान् क्रमशः क्रमेण हन्यात्। तद्यथा— श्रवणे हते कैकयनाथं केकयजनाधिपं हन्यात्। धनिष्ठासु पाञ्चनदं पञ्चनदाधिपतिम्। शतभिषजि सिंहलाधिपतिम्। पूर्वभद्रपदायां वाङ्गं वङ्गाधिपतिम्। उत्तरभद्रपदायां नैमिषनृपं नैमिषारण्याधिपतिम्। रेवत्यां किरातं किराताधिपतिं हन्यात्।।६०।।

अथ केतोर्विशेषमाह—

उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽतिदृष्टो यः।
अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम् ।।६१।।

जो केतु उल्का से ताड़ित हो, वह शुभ करने वाला होता है। जो वृष्टियुक्त हो, वह अतिशय शुभ करने वाला होता है; लेकिन वही केतु चोल, अवगाण, सितहूण और चीन देश में स्थित मनुष्यों का अशुभ करने वाला होता है।।६१।।

यः शिखी केतुः। उल्काभिताडितशिखः। उल्कया अभिमुख्येन ताडिता हता शिखा चूडा यस्य। स शिवः श्रेयस्करः। योऽतिदृष्ट उदितमात्र एव दृष्टः स शिवतरोऽतिशयेन शुभप्रदः। स एव केतुरेवंविधश्चोलानामावगाणानां सितानां हूणानां चीनानां चाशुभोऽश्रेयस्करः सर्व एव जनाः।।६१।।

अन्यद्विशेषमाह—

नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा
ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान्।
दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ।।६२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
केतुचाराध्याय एकादशः ।।११।।

केतु की शिखा जिस दिशा में नम्र हो, जिस दिशा में फैलती हो या जिस नक्षत्र में स्पर्श करती हो, वहाँ पर स्थित अन्य भोगी जनों से भुक्त अत्यधिक पराक्रमों से निर्जित ग्रामों को उसी तरह राजा लोग भोगते हैं, जैसे गरुड़ दिव्य प्रभाव से नष्ट उत्कृष्ट सर्पों के अंगों का भोग करता है।।६२।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां केतुचाराध्याय एकादशः ।।११।।

यतो यस्यां दिशि। शिखिशिखा केतुशिखा। नम्रा वक्रा। शिखिनः शिखा शिखिशिखा। अभिसृता यतो वा। यस्यां दिशि। अभिसृता गन्तुं प्रवृत्ता। अथवा यदृक्षं नक्षत्रं स्पृशति

स्पर्शयति। तत्कथितांश्च देशान्। यस्यां दिशि शिखा नम्रा तत्र ये देशाः। यस्यां वा गन्तुं प्रवृत्ता तत्र ये देशा यन्नक्षत्रं स्पृशन्ति तस्य च नक्षत्रस्य ये देशा वक्ष्यमाणास्तान् कथितां-स्तदुक्तान् देशान् नरपती राजा गतो भुङ्क्ते स्वीकरोति। कीदृशान् देशान्? दिव्यप्रभावनिहतान्। दिव्येनाप्रतिहतेन प्रभावेण विक्रमेण निहतान् निर्जितान्। कीदृशान्? परभोगिभोगान्। परैरन्यैर्भोगिभिर्भुज्यन्ते ये भोगा ग्रामास्तान्। कथं स राजा भुङ्क्ते? यथा गरुत्मान् गरुडो दिव्यप्रभावनिहतान् परभोगिभोगान् भुङ्क्ते। परा उत्कृष्टा ये भोगिनः सर्पास्तेषां भोगाः शरीराण्य-ङ्गानि वा तान्। यथा येन प्रकारेण। तथा तेन प्रकारेणेति। तथा च पराशरः—

यस्यां दिशि समुत्तिष्ठेत्तां दिशं नाभियोजयेत्।
यतः शिखा यतो धूमस्ततो यायान्नराधिपः।।
प्रतिलोमे यतः केतोर्जयार्थी याति पार्थिवः।
सामात्यवाहनबलः स नाशमधिगच्छति।।

दृष्ट्वा षोडश वासरान्नशुभदः कैचित् प्रदिष्टः शिखी
सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रेऽथवा माधवे।
ऋक्षं यत्परिभुक्तपीडितहतं यच्चाऽऽशिखाभेदितं
तत्सर्वं परिवर्ज्य शुद्धमपरं पाणिग्रहे वास्तुषु।। इति।।६२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
केतुचारो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथागस्त्यचाराध्यायः

(अगस्त्यमुनिवर्णनम्—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः ।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समासादयम्[1] ।।

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का संक्षेप से यहाँ वर्णन किया जाता है।)

अथागस्त्यचारो व्याख्यायते। तत्रादावेवागस्त्यस्य मुनेः प्राधान्यद्वारेण समुद्रशोभा-मुपवर्णयितुमाह—

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः ।
पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा ।।१।।

पहले तत्क्षण जलप्रवाह से, मकर के नखों से उत्पाटित शिखर वाले अन्तर्गत पर्वतों से तथा परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले देवताओं को तिरस्कार करने के लिये इधर-उधर अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित श्रेष्ठ मणि और रत्नों से युत जलप्रवाहों से समुद्र को जिन्होंने अतिशय सुन्दर बनाया।।१।।

येन भगवताऽगस्त्यमुनिना। पुरा पूर्वम्। तोयोच्छित्या जलापहरणेन। सपदि तत्क्षणमेव। समुद्रः सागरः। सुतरामतिशयेन। रुचिरो रम्यः। कृतः सम्पादितः। तस्य मुनेरुदयः श्रूयतामिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। रम्यः कैः कृतः? अन्तःशैलैः। अन्तर्मध्ये ये स्थिता मैनाकप्रभृतयः शैलाः पर्वतास्तैः। ते किलेन्द्रभयात्तत्र पूर्वं प्रविष्टाः। कीदृशैः? मकरनखरोत्खातशिखरैः। मकरा जलप्राणिविशेषाः। तेषां ये नखाः कठिनत्वात् त एव नखराः। तैर्मकरनखरैरुत्खातानि शिखराणि येषां तैः। ते किल कण्डूमपनेतुं परुषत्वात्तान्युत्खनन्ति। तथा यः समुद्रः सुरान् देवान्। प्रत्यादेष्टुं प्रत्याख्यातुमभिभवितुमिव दृष्टान्तीकर्तुमिव।

---

१. श्लोकोऽयं भट्टोत्पलटीकायामव्याख्यातत्वादिदं प्रतीयते प्रक्षिप्त इति।

कीदृशान् सुरान्? मितमुकुटरत्नान्। मितानि परिमितानि मुकुटेषु मौलिषु रत्नानि येषां तान्। तथाभूतान्। कैः प्रत्यादेष्टुमिव? पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिबहैः। अम्बुनिबहैः पानीयौघैः। कीदृशैः? पतन्मुक्तामिश्रैः पतन्तीभिर्मुक्ताभिर्मिश्रास्तैः। तथा प्रवराणि विकचानि च तानि मणिरत्नानि प्रधानरत्नानि। प्रवरमणिरत्नानि चाम्बुनिवहाश्च प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहास्तैः।।१।।

अन्यदप्याह—

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः ॥२॥

जिस अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने पर भी मणि, रत्न और प्रवालों से युत, वृक्ष तथा पंक्ति से पृथक् स्थित सर्पों से रहित पर्वतों के कारण समुद्र अतिशय शोभित हुआ है।।२।।

येनागस्त्यमुनिना। अम्बुहरणे जलापहरणे कृतेऽपि सति सागरः समुद्रः। अधिकतरमतिशयेन विराजितः शोभितः। कैः? भूधरैः पर्वतैः। कीदृशैः? विद्रुमैः। विगता द्रुमा वृक्षा येभ्यस्तैः। वृक्षरहितैः। जलमध्यगतत्वात्तेषु वृक्षाः क्लिन्ना यतः। तथा समणिरत्नविद्रुमैः। मणिरत्नैः प्रधानरत्नैर्विद्रुमेण प्रवालेन सह वर्तन्ते ये तैः। निर्गतैस्तदुरगैश्च। तद्दिति भूधराणां पराशर्मः। तदुरगैः। तेभ्यः पर्वतेभ्यो ये उरगाः सर्पा निर्गता निष्क्रान्तास्तैः। कथं च ते निर्गताः? राजितः पङ्क्तितस्तैस्तथाभूतैः।।२।।

अन्यदाह—

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम् ॥३॥

अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने के कारण विपत्तिग्रस्त होने पर भी समुद्र ने जलाभाव के कारण चञ्चल मत्स्य, जलहस्ती, सर्प तथा इधर-उधर विखरे हुये रत्न और मणियों से सुशोभित होकर स्वर्गीय शोभा प्राप्त की।।३।।

येन महोदधिः समुद्रः। आपदां पदगतोऽपि विपदां स्थानं प्राप्तोऽपि। पीतसलिलः पीतजलोऽपि। अमरश्रियं सुरलक्ष्मीम्। यापितः प्रापितः। कीदृशः? प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तस्तिमयश्चलन्तो मत्स्याः। जलेभा जलहस्तिनः। जिह्मगाः सर्पा यस्मिन्। जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः। एते जलप्राणिनो जलाभावात् प्रस्फुरन्ति। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः क्षिप्रः परिक्षिप्तो रत्नानां मणीनां निकरः समूहो यस्मिन्। तथा सुरलोकः प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः। प्रस्फुरन्तश्चलन्तो ये सुरास्तिमिजलेभजिह्मगाः। तिमिगा मत्स्यवाहनाः केचित्। यथा वितस्ता नदी। केचिज्जलगाः पानीयस्थाः। यथा समुद्रे भगवान्नारायणः। केचिदिभगा हस्तिनो गताः। यथेन्द्र ऐरावतस्थः। केचिज्जिह्मं कुटिलं गच्छन्तीति जिह्मगाः कुटिलगतयः। यथा भौमादयस्ताराग्रहा वक्रिताः। तथा क्षिप्तरत्ननिकरः सोऽपि।

अथान्यदाह—

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम्।
सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम्॥४॥

जल नष्ट होने पर भी चलित मत्स्य, शुक्ति और शंख से युत समुद्र शरद् ऋतु में तरंग, श्वेत कुवलय और हंस से युत सरोवर की शोभा धारण करता है (यहाँ पर चलित मत्स्य = तरंग, शुक्ति = श्वेत कुवलय, शंख = हंस है)॥४॥

सरितां नदीनाम्। पतिः प्रभुः समुद्रः। सलिले जलेऽपहृतेऽपि सति। शरदि शरत्काले। सरसो महोदकाधारस्य सम्बन्धिनीं रुचिं दीप्तिम्। बिभर्ति धारयति इव। कीदृशस्य सरसः? सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः। सतरङ्गाणि तरङ्गेण वीचिसमूहेन सहितानि सितोत्पलानि श्वेतकुवलयानि पुष्पविशेषान् हंसान् पक्षिविशेषांश्च बिभर्ति धारयति यत् तस्य। समुद्रः कीदृशः? प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः। प्रचलद्भिस्तिमिभिर्मत्स्यैः। शुक्तिजैः प्राणिभिः शङ्खैश्च चितो व्याप्तः। प्रचलन्तो मत्स्यास्त एव तरङ्गाः। शुक्तिजाः सितोत्पलानि। शङ्खा हंसा इति॥४॥

अथान्यत्—

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युतिः।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः॥५॥

मत्स्यरूप मेघ, मणिरूप तारा, स्फटिक मणिरूप चन्द्र, जलाभावरूप शारदीय द्युति और सर्पों के फणा पर स्थित मणि (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) के किरणरूप केतु ग्रह हैं, जिसमें ऐसे कुटिलगेश (समुद्र) को जिन्होंने बना दिया॥५॥

यः कुटिलगेशं समुद्रम्। वियदाकाशम्। चकार कृतवान्। कुटिलमस्पष्टं गच्छन्तीति कुटिलगा नद्यः। तासामीशं स्वामिनम्। तिमयो मत्स्याः। त एव सिताः शुक्ला अम्बुधरा मेघा यस्मिन् तत्तथाभूतम्। मणयो रत्नानि तान्येव दीप्तिमत्त्वात्तारका यस्मिन्। स्फटिको मणिविशेषः। स एव स्थूलत्वाच्चन्द्रः शशी यस्मिन्। अनम्बु जलाभावः। तदेव शरद्द्युतिः शरत्कान्तिः। अभिव्यक्तत्वाद्यस्मिन्। फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहम्। फणिनः सर्पाः। तेषां फणासु मूर्धसु यान्युपला रत्नानि चन्द्रकान्तसूर्यकान्तप्रभृतीनि। तेषु ये रश्मयः। त एव तत्सदृश वाच्छिखिग्रहाः केतवो यस्मिन्। यत आकाश एत एव सम्भवन्तीति॥५॥

अथ समुद्रवर्णनानन्तरं विन्ध्यवर्णनामाह—

दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्ग-
मुद्भ्रान्तविद्याधरांसावासक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहाव-
लम्बाम्बरात्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितम्।
करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारि-
द्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान् बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान्

धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम् ।
गगनतलमिवोल्लिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुम-
त्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीहृष्टमन्द्रस्वनैः
शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः ।
रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्या-
सितोद्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहारविप्रान्वितं
विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम् ।।६।।

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये उन्नत होने में कम्पायमान शृङ्ग होने से भयभीत, विद्याधर के कन्धे में सक्त और व्यग्र विद्याधरी गण से दिये हुये विद्याधर के शरीर में लगे हुये कम्पायमान और अत्युन्नत ध्वजरूप वस्त्र से शोभित, हस्ती के मद से युक्त रक्त के आस्वादन से उत्पन्न सुगन्धि को खोजने में उद्यत भ्रमरगणों से युक्त शिर वाले मानो बाणपुष्पों से रचित शिरोमाला धारण करने वाले सिंहों से युक्त गुहागत निर्झर वाला, बढ़े हुये गजों से आकृष्ट होने पर कम्पित प्रफुल्लित वृक्षों पर चञ्चल और आनन्द से मधुर शब्द करते हुये भ्रमरपंक्ति वाले तथा वन के अश्व, भालू, व्याघ्र और वानरों से युत पर्वतशृङ्गों से मानो आकाश को उल्लिखित करता हुआ, निर्जन स्थान में मदनवृक्ष से युक्त होने के कारण मानो मदनातुर प्रिया—रेवा नदी से युक्त, देवताओं से सेवित उद्यान वाला तथा जलहारी, निराहारी, मूलाहारी, वाताहारी ब्राह्मण मुनियों से सेवित विन्ध्याचल को जिन्होंने रोका, उन अगस्त्य मुनि के उदय के सम्बन्ध में सुनो।।६।।

एवंविधं विन्ध्यं विन्ध्यपर्वतम्। योऽगस्त्यमुनिरस्तम्भयत् स्तम्भितवान् तस्योदयो दर्शनम्। श्रूयतामाकर्ण्यताम्। कीदृशं विन्ध्यः? दिनकरस्यादित्यस्य। योऽसौ रथः स्यन्द-नम्, तस्य मार्गः पन्थाः। तद्विच्छित्तये तन्निवारणाय। अभ्युद्यतमाभिमुख्येनोद्यतं यत्। अत एवाभ्युद्यतत्वाच्चलच्छृङ्गम्। चलिता न कम्पमानानि शृङ्गाणि शिखराणि सस्य तम्। उद्भ्रान्ता भ्रान्तिमापन्नाः। तेषु च शृङ्गेषु ये स्थिता विद्याधरा देवयोनयः तेषां येंऽसाः स्कन्धाः। तेष्वंसेषु या अवसक्ता अवलग्नाः प्रिया वल्लभाः स्त्रियः। ताभिर्व्यग्राभिः सोद्यमाभिः। दत्ता विन्यस्ताः। अङ्गेषूत्सङ्गेषु विद्याधराणां ये देहाः शरीराणि। तेषु यान्य-वलम्बन्ते अम्बराणि वस्त्राणि। तान्यतिशयेनोच्छ्रितान्युच्चतराणि। तानि चोद्धूयमानानि कम्पमानानि। तान्येव ध्वजाः सादृश्याद् ध्वजरूपाणि। तैः शोभितं भूषितम्।

करिकटेति। मृगेन्द्रैः सिंहैः सनाथीकृतमधिष्ठितम्। अन्तर्मध्ये या दर्यो गुहाः, तासु यन्निर्झरम्। जलं नियतं झरति स्रवतीति निर्झरम्। गुहाप्रदेशे प्रपातपानीयम्। यस्मिन् विन्ध्ये तं तथाभूतम्। कीदृशैः सिंहैः? करिणो हस्तिनः। तेषां ये कटाः कुम्भाः, तेषु यो मदो दानाम्बु, तेन मिश्रं संयुक्तम्। यद्रक्तमसृक् तस्य योऽवलेह आस्वादः, तेन योऽनु-वासः सौरभ्यम्। तदनुसारिणस्तदन्वेषणपरा ये द्विरेफा भ्रमराः। ते अवलीनाः संलग्ना

उत्तमाङ्गेषु शिरःसु येषां तैः सिंहैः। बाणपुष्पैर्बाणकुसुमैः कृतान् रचितान्। उत्तंसकान् शिरोमाला धारयद्भिरिव।

गगनतलमिति। शैलकूटैः पर्वतशृङ्गैः। गगनतलमाकाशतलम्। उल्लिखन्तमिव। कीदृशैः शैलकूटैः? प्रवृद्धैर्वृद्धिमद्भिः। गजैर्हस्तिभिः। आकृष्टा आकर्षिताः फुल्लाः कुसुमिता ये द्रुमा वृक्षास्तैर्यस्त्रासः कम्पः, तस्माद्ये विभ्रान्ता भ्रान्तिमापन्ना मत्तद्विरेफा भ्रमराः, तेषामावली पङ्क्तिः। तस्या हृष्टाया ये मन्द्रा मधुराः स्वनाः शब्दाः। ते विद्यन्ते येषां तैस्तथाभूतैः शैलकूटैः। अत्र भ्रमरपङ्क्तिर्वर्णपङ्क्तिरिव। तथा तरक्षैर्वनश्वभिः। ऋक्षै-र्वानरैः प्राणिविशेषैर्वा। शार्दूलैः सिंहजातिभिः। शाखामृगैर्मर्कटैः। अध्यासिताः सेविता ये शैलकूटास्तैः।

रहसीति। कीदृशं विन्ध्यम्? रहसि निर्जने। रेवया मदनसक्तया कान्तया वल्लभया कामिन्येवोपगूढं परिष्वक्तम्। रेवा नर्मदा। यतः सा तत्रैव बहुशो गता। सा च मदनसक्ता। मदनवृक्षावृतत्वादिति। सुरैर्देवैरध्यासितानि निषेवितानि, उद्यानानि उपवनानि यस्मिन्। तथाम्भोऽशनैर्जलाहारैः। अनन्नैर्निराहारैः। मूलाहारैर्मूलभक्षैः। अनिलाहारैर्वायुभक्षैश्च। विप्रै-र्ब्राह्मणैर्मुनिभिरन्वितं संयुक्तं विन्ध्यम्।।६।।

तथाऽगस्त्योदयप्रभावमाह—

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि।।७।।

जिस तरह खलों की सङ्गति-रूप मल से दूषित हृदय वाला मनुष्य भी सज्जनों के दर्शन से निर्मल हृदय वाला हो जाता है, उसी तरह वर्षा ऋतु में कीचड़ मिला हुआ जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से निर्मल हो जाता है।।७।।

अगस्त्यनाम्नो मुनेरुदये उद्गमे। पुनर्भूयः। अम्बूनि पानीयानि। स्वभावात् प्रकृत्यैव। निर्मलानि प्रसन्नानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कोर्भूम्याः समायोगः संश्लेषः कुसमायोगः। तस्मात् कुसमायोगाद्यन्मलं पङ्कः। तेन प्रदूषितानि दुष्टानि यानि तान्यगस्त्यदर्शनान्निर्मलानि भवन्ति। वर्षासु कुसमायोगस्तेषाम्। यथा सतां साधूनां उदये दर्शने हृदयानि पुनर्निर्मलानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कुत्सितैर्जनैर्योऽसौ समायोगस्तस्माद्यन्मलं पापं तेन प्रदूषितानि दुष्टानि। पुनः स्वभावादेव निर्मलानि भवन्ति। साधुदर्शनात् पापक्षय उत्पद्यते यावत्।।७।।

अथ विन्ध्यवर्णनानन्तरं शरद्वर्णनमाह—

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत् सहासा।।८।।

ताम्बूल से रक्त ओठों के मध्य विराजमान दन्तपंक्ति वाली, हासयुत स्त्री की तरह दोनों पार्श्वों में स्थित लाल वर्ण के चक्रवाकों के मध्य शब्दायमान हंसपंक्ति से विराजमान नदियों के द्वारा शरद् ऋतु शोभित है।।८।।

शरत् सहासा हासयुक्ता योषा स्त्रीव विभाति शोभते। कीदृशी योषा? ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती। ताम्बूलेन रक्ता रञ्जिता ये दन्ता रदाः। तेभ्योऽग्रदन्ताः पुरोवर्तिनो रदा उत्कषिता उद्घृष्टा यया सा तथाभूता स्त्री। शरत्कीदृशी? पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्। पार्श्वद्वयमधिष्ठितं संयुक्तम्। चक्रवाकैः पक्षिविशेषैर्लोहितवर्णैर्यस्याः सस्वनायाः शब्दयुक्ताया हंसपङ्क्तेस्तामापुष्णती आपोषयमाणा। नदीनां प्रत्यहं जलाल्पत्वात् पुलिनानि व्यक्तानि भवन्ति। तानि च हंसैः सेव्यन्ते। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती योषा सहासेव।।८।।

अन्यदप्याह—

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा।।९।।

भ्रमण करते हुये भ्रमर की पंक्तियों से भूषित, नीलकमल के निकट स्थित श्वेत कमल से युत नदियों से शोभित शरद् मानो भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली मदनातुरा स्त्री की तरह शोभित है।।९।।

शरत् सस्मरा सकामा विदग्धयोषा प्रौढाङ्गनेव विभाति शोभते। कीदृशी विदग्धयोषा? सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा। भ्रूलतयोर्योऽसावाक्षेपश्चलनम्। तेन यः कटाक्षो नयनविभ्रमः। तेन सहितं वीक्षणमवलोकनं यस्याः। शरत् कीदृशी? इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता। इन्दीवरं नीलोत्पलम्। तस्यासन्ने उभयपार्श्वस्थे ये सितोत्पले। तथाभूतेनेन्दीवरेणान्विता संयुक्ता। अनेन नेत्रस्य सादृश्यमुक्तम्। यतो नेत्रमपि मध्यभागात् कृष्णमुभयपार्श्वयोः सितं भवति। तथा भ्रमन्तश्चलन्तः। ये षट्पदा भ्रमराः। तेषां या पङ्क्तिरवलिः। तया भूषिता संयुक्ता। अनेन भ्रूसादृश्यमुक्तम्। यतो नयनस्योर्ध्वभागस्था भ्रूलता भवति। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषा सस्मरेव।।९।।

अथान्यदाह—

इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं
द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म
वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम्।।१०।।

तरङ्गरूप कङ्कण वाली वापीरूप कामिनी रात्रि में मेघ के चले जाने से बढ़ी हुई चन्द्रमा की शोभा को देखने के लिये मानो भ्रमयुक्त कुमुदरूप कृष्ण तारा से युक्त नेत्र को खोलती है।

इन्दोश्चन्द्रमसः। पयोदानां मेघानाम्। विगमाद्विशेषोपगमात्। उपहिता वृता व्याप्ता या विभूतिः कान्तिः। तां द्रष्टुमवलोकयितुम्। वापी नलिनी। निशासु रात्रिषु। कुमुदं कैरवम्। विलोचनं नेत्रमिवोन्मूलयति विकाशयति। कीदृशी वापी? तरङ्गवलया। तरङ्गा ऊर्मिसमूहाः। त एव वलयः प्रकोष्ठभूषणं यस्याः। कीदृक् कुमुदम्? अलिनिलीनदलम्।

अलिर्भ्रमर: स निलीन: संलग्नो दलेषु पत्रेषु यस्मिन्। सुपक्ष्म शोभनं पत्रम्। तदेवासितं कृष्णम्। तारकमन्तर्मध्ये यस्मिन्। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—नयनमिव। यतो नयनं सुपक्ष्म भवति। शोभनानि पक्ष्माणि अक्षिलोमानि यस्य तत्तथा। असिततारकान्तं कृष्णतारकामध्यम्। नायिका चिरदर्शनाद्वल्लभास्यं सोत्कण्ठा समुद्वीक्षत इति।।१०।।

अथ भूमे: शोभामुपवर्णयितुमाह—

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने ।।११।।

अनेक प्रकार के विचित्र कमल, हंस, चक्रवाक, कारण्डव आदि से भूषित तड़ागरूप हस्त के द्वारा पृथ्वी मानो अनेक रत्न, पुष्प और फलों से अगस्त्य मुनि को अर्घ्य देती है।

भूर्भूमि:। अगस्त्यनाम्ने अर्घं यच्छतीव ददाति इव। कीदृशी भू:? नानाविचित्राम्बुज-हंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता। नानाप्रकारा विचित्रा ये अम्बुजा: पद्मादय:। तथा हंस-कोककारण्डवा: पक्षिविशेषा:। तैर्यान्यापूर्णानि तडागानि। तान्येव हस्ता यस्या। कैरर्घं यच्छतीव? रत्नै: प्रभूतै: कुसुमै: फलैश्चेति। त एवाम्बुजादयो हस्तस्थिता रत्नादीन्युप-लक्ष्यन्ते। तै रत्नै:। प्रभूतैर्बहुभि:। तथा कुसुमै: पुष्पै: फलैश्चेति। यतो भगवते रत्नादिभिरर्घो दीयत इति।।११।।

अथ भगवत: प्राधान्यमाह—

सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद् घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः ।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ।।१२।।

मेघों से परिवेष्टित मूर्ति वाले सर्पों के फणा से उत्पन्न विषरूप अग्नि से दूषित इन्द्र की आज्ञा से पतित जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से श्रेयस्कर हो जाता है।।१२।।

अमरप इन्द्र:। तदाज्ञया यत्सलिलं जलम्। उज्झितमुत्सृष्टम्। भुजङ्गै: सर्पै:। कीदृशै:? घनपरिवेष्टितमूर्तिभि:। घनैर्मेघै:। परिवेष्टिता मूर्त्तयो देहा येषां तै:। कीदृशं जलम्? फणि-जनितविषाग्निसम्प्रदुष्टम्। फणिन: सर्पा:। तेभ्यो जनितमुत्पादितं यद्विषम्। तदेवाग्नि-र्वह्नि:। तेन सम्प्रदुष्टं सम्यग् दूषितम्। तदगस्त्यदर्शनेन शिवं श्रेयस्करं भवति।।१२।।

अथान्यदप्याह—

स्मरणादपि पापमपाकुरुते
किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः ।
मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्घविधिः
कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ।।१३।।

जिनका स्मरण करने से भी पाप नष्ट हो जाते हैं, उन वरुण के पुत्र अगस्त्य की स्तुति का फल कहाँ तक कहें। गर्ग आदि मुनियों के द्वारा जिस प्रकार उनकी अर्घविधि कही गई है, उसी प्रकार राजाओं के हित के लिये मैं कहता हूँ।।१३।।

वरुणस्याङ्गरुहः पुत्रोऽगस्त्यमुनिः स्मरणादपि स्मरणमात्रादपि नामसङ्कीर्तनमात्रात्पापमेनोऽपाकुरुते निवर्तयतीति। किमुत किं पुनः स्तुतिभिः स्तोत्रैः। मुनिभिर्गर्गादिभिर्यथा येन प्रकारेणास्यार्घविधिः कथित उक्तः। तथा तेनैव प्रकारेण नरेन्द्रस्य राज्ञो हितं कथयामि वच्मि। तथा च समाससंहितायाम्—

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलस्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभृत् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयश्च्युतिकृतश्चारः समासादयम्।। इति।।१३।।

अथास्योदयलक्षणमाह—

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य
विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां
भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ।।१४।।

गणित के द्वारा प्रत्येक देश में इनका दर्शन जानकर पण्डितों को कहना चाहिये। वह दर्शन सिंह राशि के तेईस अंश पर जब स्पष्ट सूर्य जाते हैं तब होता है।।१४।।

अस्यागस्त्यमुनेः संख्याविधानाद् गणितविधानात् प्रतिदेशं देशं देशं प्रति सन्दर्शनमुदयं विज्ञाय ज्ञात्वा ज्ञः पण्डित आदिशेद् वदेत्। तच्च दर्शनमुज्जयिन्यां स्फुटभास्करस्य स्फुटादित्यस्य कन्यां कुमारीं स्वराख्यैर्भागैः सप्तभिरंशैरगतस्याप्राप्तस्य भवति। सिंहस्य भागत्रयोविंशतिं भुक्त्वेत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

सप्तभिरंशैः कन्यामप्राप्ते रोमके तु दिवसकरे।
दृश्योऽगस्त्योऽवन्त्यां तत्समपूर्वापरेऽप्येवम्।। इति।।१४।।

अथार्घदानलक्षणमाह—

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ।।१५।।

सूर्य के किरणों से रात्रि के अन्धकार के कुछ नष्ट होने पर ज्योतिषी से बताई हुई दक्षिण दिशा में पृथ्वी पर संयत होकर राजा को पृथ्वी पर अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ देना चाहिये।।१५।।

भूपो राजा प्रयतः संयत उर्व्यां भूम्यामर्घं प्रयच्छेद् दद्यात्। कस्मिन् काले? अरुणरश्मिजालैररुणकरनिकरैर्नैशे रात्रिभवेऽन्धकारे तमसि ईषत् किञ्चित् प्रभिन्ने नष्टे। कस्यां दिश्यर्घं दद्यात्? दक्षिणस्यां याम्यायां दिशि। कीदृशो राजा? सांवत्सरावेदितदिग्विभागः। सांवत्सरेण कालविदा आवेदितः प्रदर्शितो दिग्विभागो यस्य स तथाभूतः। यथेयं दक्षिणदिगस्यां भगवतो दर्शनमिति।।१५।।

कैरर्घं प्रयच्छेदित्याह—

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च
रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यै-
र्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥१६॥

शारदीय सुगन्धित पुष्प, फल, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृष, पायसयुत भोजन, द्रव्य, दधि, सुगन्धित धूप और चन्दनयुत अर्घ देना चाहिये।।१६।।

कालोद्भवैः सुकालजातैः। सुरभिभिः सुगन्धैः। कुसुमैः पुष्पैः। फलैश्च जातीफलादिभिः। तथा रत्नैर्मणिभिः। सागरभवैः समुद्रजातैः। कनकेन सुवर्णेनाम्बरैर्वस्त्रैः। तथा धेन्वा पयस्विन्या गवा वृषेण दान्तेन। परमान्नेन पायसेन युतैश्च भक्ष्यैरपूपादिभिस्तथा दध्ना क्षीरविकारेण। अक्षतैर्यवैः। सुरभिधूपैः सुगन्धधूपैर्विलेपनैरनुलेपनैः सुगन्धिभिश्च।।१६।।

अथार्घं दातुर्नृपस्य फलमाह—

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः
प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः।
भवति यदि च दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यग्
जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥१७॥

यदि श्रद्धावान् राजा इस प्रकार अर्घ देने की विधि को धारण करे तो नीरोग होता है और शत्रुओं को जीतता है। यदि इस प्रकार सात वर्ष तक भक्तिपूर्वक अर्घ देता रहे तो समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का स्वामी (चक्रवर्ती राजा) होता है।।१७।।

नरपति राजा श्रद्दधानः श्रद्धावानिममर्घं दधानः प्रयच्छमाणः। प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षो भवति। प्रविगताः प्रनष्टा गदा रोगा दोषाश्च यस्य। तथा निर्जितोऽरातिपक्षः शत्रुपक्षो येन। यदि चानेन विधिना सम्यगविच्छिन्नं सप्त वर्षाणि दद्यात्तदा जलनिधिरशनाया भूमेः समुद्रमेखलाया उर्व्याः स्वामितां प्रभुतां याति गच्छति।।१७।।

अथ ब्राह्मणविट्शूद्राणां फलमाह—

द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान्।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१८॥

यदि अपनी शक्ति के अनुसार लब्ध वस्तु से अर्घ दे तो ब्राह्मण वेदों को, स्त्री पुत्रों को, वैश्य गौओं को एवं शूद्र बहुत धनों को प्राप्त करता है तथा ब्राह्मणादि सभी वर्ण रोगक्षय और धार्मिक फल को प्राप्त करते हैं।।१८।।

द्विजो ब्राह्मणो यथालाभं यथासम्भवमुपाहृतार्घो दत्तार्घः प्राप्नोति लभते वेदान्। प्रमदाः स्त्रीः। पुत्रानपत्यानि च। तथा वैश्यो यथालाभमुपहृतार्घो गां लभते। शूद्रो भूरि बहु धनं वित्तं प्राप्नोति। सर्वे ब्राह्मणवैश्यशूद्रा रोगक्षयं गदोपशमं धर्मफलं च प्राप्नुवन्ति।।१८।।

अथोदितस्य लक्षणमाह—

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं
धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च
कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥१९॥

यदि अगस्त्य रूक्ष हो तो रोग, कपिल हो तो अवृष्टि, धूम्रवर्ण हो तो गौओं के लिये अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म हो तो नगर का अवरोध करते हैं।।१९।।

अगस्त्यनामा अगस्त्यमुनिः परुषो रूक्षो रोगान् करोति। कपिलः कपिलवर्णोऽवृष्टि-मवर्षणं करोति। धूम्रो धूम्रवर्णो गवामशुभकृदनिष्टफलं करोति। स्फुरणः चलनो भयाय भवति। माञ्जिष्ठरागसदृशो लोहितवर्णः क्षुधं दुर्भिक्षं करोति। आहवान् संग्रामांश्च करोति। अणुः सूक्ष्मः पुररोधं नगरवेष्टनं करोति।।१९।।

अथ वर्णलक्षणमाह—

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणाग्रैः।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥२०॥

सुवर्ण, रजत या स्फटिक के समान अपने किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुये अगस्त्य मुनि दिखाई दें तो पृथ्वी अधिक धान्य, निर्भीक तथा रोगरहित मनुष्यों से युत होती है।

यदि शातकुम्भसदृशो रूप्यसदृशाभो दृश्यते। शातकुम्भशब्दः सुवर्णरजतयोर्द्वयोरपि वाचकः। अथवा स्फटिकाभः स्फटिककान्तिः। महीं भूमिं किरणाग्रै रश्मिप्रान्तैस्तर्पयन्निव दृश्यते। केचित् किरणौघैरिति पठन्ति। किरणौघै रश्मिसमूहैः। तदा भूर्मही प्रचुरान्ना प्रभूतसस्या। तथा अभयरोगजनाढ्या अभयैर्भयरहितैररोगैर्विगतगदैर्जनैर्जन्तुभिराढ्या बहुला भवति। तथा च गर्गः—

शङ्खकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः।
दृश्यते यद्यगस्त्यः स्यात् सुभिक्षक्षेमकारकः।।
वैश्वानरार्चिप्रतिमैर्मांसशोणितकर्दमैः।
रणैर्भयैश्च विविधैः किञ्चिच्छेषायते प्रजा।। इति।।२०।।

अथोदयास्तमयलक्षणं शुभाशुभं चाह—

उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मरकमेव विधत्ते।
दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥२१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहिताया-
मगस्त्यचाराध्यायः द्वादशः ॥१२॥

यदि अगस्त्य मुनि उल्का या केतु से आहत हों तो पृथ्वी पर दुर्भिक्ष और मरी पड़ती है। अगस्त्य मुनि सूर्य-हस्तगत हों तो उदित और रोहिणीगत हों तो अस्त होते हैं।।२१।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामगस्त्यचाराध्यायो द्वादशः ॥१२॥

उल्कया विनिहतोऽभिताडित: शिखिना केतुना वा विनिहत:। तदा क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्। मरकं जनक्षयं च विधत्ते ददाति। किलेत्यागमसूचने। सोऽगस्त्यमुनि: हस्तगतेऽर्के हस्तस्थे सूर्ये दृश्यते उदयं याति। तथा रोहिणीमुपगते रोहिण्यां संस्थितेऽर्केऽस्तमुपैति अदर्शनमायाति। यद्यप्यत्र गणितसाम्यं न भवति, तथाप्याऽऽचार्येण पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् कृतम्। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

विषुवच्छायार्द्धगुणा पञ्चकृतिस्तत्कलास्ततश्चापम्।
छायात्रिसप्तकयुतं दशभिर्गुणितं विनाड्यस्ता:।।
ताभि: कर्कटकाद्याद्यल्लग्नं तादृशे सहस्रांशौ।
याम्याशावनितामुखविशेषतिलको मुनिरगस्त्य:।।

एवं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वादाचार्येणात्रोक्तम्। तथा च पराशर:—

हस्तस्थे सवितर्युदेति रोहिणीसंस्थे प्रविशति।

अथास्य त्रिविधश्चारोदयकालो दृष्ट:—आश्वयुग्बहुलाष्टमीपञ्चदश्यो: कार्तिकाष्टम्यां वा। तत्राश्वयुग्बहुलोदित: सुवृष्टिक्षेमान्नसम्पत्कर:। वर्णैश्चावेदयति। अग्निपरुषरूक्षाभो रोगाय कपिलो वृष्टिनिग्रहाय। धूमाभो गवामभावाय। माञ्जिष्ठ: कुङ्कुमच्छवि: क्षुच्छस्त्रद:। नीलोऽतिवर्षाय। संवृत: पुररोधाय। स्पन्दनो भयाय। अपि च—

हन्यादुल्का यदागस्त्यं केतुर्वाप्युपधूपयेत्।
दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते।।
सुस्निग्धवर्ण: श्वेतश्च शातकुम्भसमप्रभ:।
मुनि: क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च।। इति।।२१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृता-
वगस्त्यचारोनाम द्वादशोऽध्याय: ॥१२॥

अथ सप्तर्षिचाराध्यायः

अथ सप्तर्षिचारो व्याख्यायते। तत्रादावेव तेषां मुनीनां दिक्संस्थानलक्षणमाह—

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव ।
नाथवतीव च दिग् यैः कौवेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥१॥

एकावली (भूषणविशेष) से शोभित, श्वेत कमल की माला से भूषित, मुस्कानयुत और स्वामी–सहित कामिनी की तरह सात मुनियों से युत उत्तर दिशा शोभित है। (यहाँ मुनिपंक्तियों के कुटिल होने के कारण इनमें पूर्वोक्त सभी विशेषण उत्पन्न होते हैं)।।१।।

यैः सप्तभिर्मुनिभिः कौवेरी उत्तरा दिग् नाथवतीव च विराजते शोभते। यथा नाथवती प्रभुणा युक्ता नायिका विराजते तद्वत् कौवेरीति। नाथवती कीदृशी भवति? सैकावलीव। सह एकावल्या वर्तते या। एकावलीत्याभरणविशेषस्य संज्ञा। एवं ससितोत्पलमालिनी सहासेव। सह सितया श्वेतयोत्पलमालया वर्तते सह हासेन च। मुनिपङ्क्तेः कुटिलत्वादेतानि विशेषणान्युपपद्यन्त इति।। १।।

ध्रुववशाद् भ्रमद्भिर्यैरुत्तरा दिगेवंविधा लक्ष्यते तेषां चारं वक्ष्यामीत्याह—

ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च ।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥२॥

ध्रुव नक्षत्ररूप नायक के उपदेश से भ्रमण करने वाले सप्तर्षियों से उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है। अब वृद्ध गर्ग के मत से उनका सञ्चार कहता हूँ।।२।।

यैर्मुनिभिर्भ्रमद्भिरुत्तरा कौवेरी दिग् नरिनर्तीव। अत्यर्थं नृत्यति नरिनर्ति। कथं ध्रुवनायकोपदेशात्। ध्रुव एव नायको ध्रुवनायकस्तदुपदेशात्। यतो नर्तक्या उपदेशो नायक आचार्यो भवति। तस्या ध्रुवनायकोपदेशः। यस्मात् सकलज्योतिश्चक्रस्य ध्रुव एव भ्रामकः। तथा च भट्टब्रह्मगुप्तः—

ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्।। इति।

तेषां मुनीनां चारमहं वृद्धगर्गमतात् कथयिष्ये। वृद्धगर्गो नाम महामुनिस्तन्मतात्तत्कृताच्छास्त्रादिति।।२।।

अधुनैतेषां चारनक्षत्रानयनमाह—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥३॥

जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर राज्य करते थे, उस समय मघा नक्षत्र में सप्तर्षि थे। शकाब्द में २५२६ मिलाने से युधिष्ठिर का गताब्द काल होता है।

१८७५ शकाब्द में नक्षत्र लाने का उदाहरण—एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ (१००) वर्ष रहते हैं; अत: २५२६+१८७५/१०० = ४४०१/१००, लब्धि ४४ शेष १।

अत: गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और वर्तमान नक्षत्र रेवती का १ वर्ष भुक्त और ९९ वर्ष भोग्य हैं।।३।।

मुनयो मरीच्यादय: सप्तर्षयो युधिष्ठिरे पाण्डुतनये नृपतौ राजनि पृथ्वीं महीं शासति परिपालयति मघासु मघानक्षत्रेष्वासन्नध्यतिष्ठन्। तथा च वृद्धगर्ग:—

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरता: प्रजानां पालने रता:।।

तस्य च युधिष्ठिरस्य राज्ञ: षड्द्विकपञ्चद्वियुत: शककालो गत:। सहस्रद्वयेन पञ्चभि: शतै: षड्विंशत्यधिकै: २५२६ शकनृपकालो युक्त: कार्य:। एवं कृते यद्भवति तावद्वर्षवृन्दं वर्तमानकालं यावद् गतम्। तस्य च शतेन भागमाहृत्य यदवाप्यते तानि नक्षत्राणि मघादीनि भुक्तानि यच्छेषं तानि वर्षाणि भुज्यमाने नक्षत्रे तेषां प्रविष्टानां गतानि। तानि च शताद्विशोध्य यदवशिष्यते तावन्त्येव वर्षाणि तस्मिन्नक्षत्रे स्थितानीति। लब्धनक्षत्राणामपि सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमं मघादिनक्षत्रं भुक्तमिति वाच्यम्।।३।।

अथ तेषां नक्षत्रभोगप्रमाणकालं नक्षत्रावस्थितिं चाह—

एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।
प्रागुदयतोऽप्यविवरादृजून्नयति तत्र संयुक्ता: ।।४।।

एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। जिस नक्षत्र के पूर्व दिशा में उदय होने पर सप्तर्षि-मण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। 'प्रागुत्तरश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका:।' ऐसा पाठ होने के फलस्वरूप ईशान कोण में सदा साध्वी अरुन्धती के साथ सप्तर्षि उदित होते हैं—ऐसा अर्थ समझना चाहिये।।४।।

ते मुनय एकैकस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे शतं शतं वर्षाणां चरन्ति। तथा च कश्यप:—

शतं शतं तु वर्षाणामेकैकस्मिन् महर्षय:।
नक्षत्रे निवसन्त्येते ससाध्वीका महातपा:।।

अविवरान्निरन्तरं प्रागुदयत: प्राक् पूर्वस्यां दिशि उदयतो यन्नक्षत्रं तेषामृजून्नयति स्पष्टतां सप्तर्षिपङ्क्त्या नयति तत्र तस्मिन्नक्षत्रे ते संयुक्ता: स्थिता इति। एतदुक्तं भवति—यस्य नक्षत्रस्य प्रागुदयत: सप्तर्षिपङ्क्ति: स्पष्टा भवति तस्मिन्नेव स्थिता इति। केचित् प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका इति पठन्ति। ते च प्रागुत्तरतश्चैशान्यां दिशि सदा सर्वकालं ससाध्वीका: सारुन्धतिका उदयन्ते।।४।।

अथ संस्थानलक्षणमाह—

पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ।।५।।

पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात्।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी ।।६।।

पूर्व दिशा में भगवान् मरीचि, उनसे पश्चिम में वशिष्ठ, वशिष्ठ से पश्चिम में अङ्गिरा, अङ्गिरा के बाद अत्रि, अत्रि के समीप पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद क्रतु— इस तरह पूर्व दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति रहती है और इनके मध्य में अरुन्धती वसिष्ठ के आश्रित है।।५-६।।

पूर्वे भागे पूर्वस्यां दिशि भगवान् मरीचिर्नाम महर्षिः स्थितः। अस्मान्मरीचेरपरे पश्चिमे भागे वसिष्ठः स्थितः। तस्य वसिष्ठस्यापरे अङ्गिराः स्थितः। ततस्तस्मादङ्गिरसोऽत्रिः स्थितः। तस्यात्रेरासन्नो निकटवर्ती पुलस्त्यश्च।

ततः पुलहस्ततः क्रतुरिति भगवान्। अनुक्रमेण परिपाट्या पूर्वाद्यात् पूर्वादित आसन्ना निकटस्थिताः। तत्र च तन्मध्ये अरुन्धती साध्वी सच्छीला मुनिवरं मुनिप्रधानं वसिष्ठमुपाश्रिता संश्रितेत्यर्थः।।५-६।।

अथैतैः शुभाशुभफलमाह—

उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः।
हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्ध्यै ।।७।।

उल्का, वज्र या धूम आदि से हत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प बिम्ब वाला सप्तर्षि मण्डल हो तो अपने-अपने वर्ग का नाश करता है तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने वर्ग की वृद्धि करता है।।७।।

एते मुनय उल्कया अशन्या धूमेन वा। आदिग्रहणाद्रजोनीहारपांशुभिर्हताः। तथा विवर्णाः कलुषाः। विरश्मयो विगतकिरणाः। ह्रस्वाः स्वल्पबिम्बाः स्वं स्वमात्मीयवर्गं वक्ष्यमाणं हन्युर्नाशयेयुः। तथा विपुला विस्तीर्णाः। स्निग्धा निर्मलाश्च तद्वृद्ध्यै स्ववर्गसिद्धये भवन्ति। तथा च वृद्धगर्गः—

उल्कया केतुना वापि धूमेन रजसापि वा।
हता विवर्णाः स्वल्पा वा किरणैः परिवर्जिताः।।
स्वं स्वं वर्गं तदा हन्युर्मुनयः सर्व एव ते।
विपुलाः स्निग्धवर्णाश्च स्ववर्गपरिपोषकाः।। इति।।७।।

अथैतेषां स्ववर्गमाह—

गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम्।
पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च ।।८।।

शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः ॥९॥

अङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः।
अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः ॥१०॥

रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य।
पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः ॥११॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
सप्तर्षिचाराध्यायस्त्रयोदशः ॥१३॥

यदि मरीचि पीड़ित हों तो गन्धर्व, देव, राक्षस, मन्त्र, ओषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि वसिष्ठ पीड़ित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्बोज, तपस्वी और वनवासियों को पीड़ित करते हैं तथा किरणों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अङ्गिरा पीड़ित हों तो ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राह्मणों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अत्रि पीड़ित हों तो वन तथा जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियों को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलस्त्य पीड़ित हों तो राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और सर्पों को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलह पीड़ित हों तो मूल और फलों को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि क्रतु पीड़ित हों तो यज्ञ और यज्ञकर्ताओं को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।।८-११।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां सप्तर्षिचाराध्यायस्त्रयोदशः ॥१३॥

गन्धर्वा अश्वमुखा नरदेवयोनयः। देवाः सुराः। दानवा दनुपुत्राः। मन्त्राः। औषधयः। सिद्धा देवयोनयः। यक्षाः। नागा एतेषां सर्वेषाम्। तथा विद्याधराणां देवयोनीनां मरीचिरुपतप्तः पीडाकरः। स्निग्धो विपुलश्च वृद्धिप्रदः।

शकयवनेति। शका जनाः। यवनाः। दरदाः। पारताः। काम्बोजाः। तापसाः तपोनिरताः। वनोपेता वनस्था एतान् वसिष्ठोऽभिहत उपतप्तो हन्ति। रश्मिसम्पन्नो निरुपहतो विवृद्धिदो वृद्धिप्रदः।

अङ्गिरस इति। ज्ञानयुता ज्ञानोपेताः। धीमन्तो बुद्धिमन्तः। ब्राह्मणा द्विजा। एते अङ्गिरसो विनिर्दिष्टाः कथिताः।

अत्रेरिति । कान्तारमटवी। तत्र भवो जन्म येषां ते कान्तारभवा:। जलजानि। जले यानि द्रव्याणि जायन्ते। अम्भोनिधि: समुद्र:। सरितो नद्य:। एते अत्रे:।

राक्षसा:। पिशाचा:। दानवा:। दैत्या:। भुजङ्गा: सर्पा:। एते पुलस्त्यस्य स्मृता: कथिता:। मूलफलं यत्किञ्चित्तत्तु पुलहस्य। यज्ञा मखा:। यज्ञभृतो यज्ञकर्तार:। तै: सह यज्ञा: क्रतोरिति। तथा च वृद्धगर्ग:—

देवदानवगन्धर्वा: सिद्धपन्नगराक्षसा: ।
नागा विद्याधरा: सर्वे मरीचे: परिकीर्तिता:।।
यवना: पारताश्चैव काम्बोजा दरदा: शका:।
वसिष्ठस्य विनिर्दिष्टास्तापसा वनमाश्रिता:।।
धीमन्तो ब्राह्मणा ये च ज्ञानविज्ञानपारगा:।
रूपलावण्यसंयुक्ता मुनेरङ्गिरस: स्मृता:।।
कान्तारजास्तथाम्भोजा अत्रेर्ये सरिदाश्रिता:।
पिशाचा दानवा दैत्या भुजङ्गा राक्षसास्तथा।।
पुलस्त्यस्य विनिर्दिष्टा: पुष्पं मूलं फलं च यत्।
तत्सर्वं पुलहस्योक्तं यज्ञा यज्ञभृतश्च ये।।
क्रतोरेव विनिर्दिष्टा वेदज्ञा ब्राह्मणास्तथा।। इति।।८-११।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सप्तर्षि-चारो नाम त्रयोदशोऽध्याय: ।।१३।।

वराहमिहिराचार्यग्रहचारोदधौ कृते ।
अर्थिनामुत्पलश्चक्रे स्वार्थाय विवृतिप्लवम्।।

इति ग्रहचारा: समाप्ता:

अथ नक्षत्रकूर्मविभागाध्यायः

अथ नक्षत्रकूर्माध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रविभागमाह—

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा ।
भारतवर्षे मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः ॥१॥

कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के एक-एक वर्ग द्वारा मेरु के दक्षिण भाग में स्थित भारतवर्ष को मध्यस्थित कल्पना करके तथा अन्य देशों को पूर्व आदि क्रम से रखकर नव भाग किये गये हैं।।१।।

नक्षत्रत्रयेण नववर्गास्तैर्नक्षत्रयवर्गैः। आग्नेयाद्यैः कृतिकाद्यैर्नवधा नवभिः प्रकारैर्व्यवस्थितैः। क्व भारतवर्षे। मेरोर्दक्षिणभागो भारतवर्षं तत्र व्यवस्थितैः। तत्र च मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः। मध्यदेशे मध्यभागे भारतवर्षेऽन्ये देशाः प्रागादिना पूर्वादिक्रमेण विभाजिता विभागेन स्थापिता वक्ष्यमाणविधानेनेति। तथा च गर्गः—

कृत्तिकाद्यैस्त्रिनक्षत्रैर्भवर्गैर्नवभिः क्षितिः ।
कल्पिता मध्यदेशादौ प्रागादिक्रमयोगतः।।
कृत्तिकाद्यस्त्रिनक्षत्रो मध्यदेशे गणो यदा।
पापैरुपहतो हन्ति मध्यदेशाऽखिलांस्तदा।।
रौद्रादिको हन्ति पूर्वां सार्पाद्यः पूर्वदक्षिणाम्।
आर्यम्णाद्यस्तथा याम्यां स्वात्याद्यो दक्षिणापराम्।।
ज्येष्ठाद्यः पश्चिमामाशां वैश्वाद्यश्चापरोत्तराम्।
वारुण्याद्यो हन्ति सौम्यां पौष्णाद्यः शूलिनो दिशम्।। इति।।१।।

अथ मध्यदेशप्रविभागमाह—

भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिहानसंख्याताः ।
मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ॥२॥

माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च।
गौरग्रीवोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥३॥

साकेतकङ्ककुरुकालकोटिकुकुराश्च पारियात्रनगः।
औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥४॥

भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, साल्व, नीप, उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्स, घोष, यामुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, शौरग्रीव, उद्देहिक,

पाण्डु, गुड, अश्वत्थ, पाञ्चाल, साकेत, कंक, कुरु, कालकोटि, कुकुर, पारियात्र नग, औदुम्बर, कापिष्ठल और हस्तिनापुर—ये देश कृत्तिका आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (भारतवर्ष) में स्थित हैं।।२-४।।

एते देशा मध्यदेशे प्रधानाः परिगणितास्तत्रैव कृत्तिकादिनक्षत्रत्रितयम्। तद्यथा देशास्तेषु च जनपदाः। भद्राः। अरिमेदाः। माण्डव्याः। साल्वाः। नीपाः। उज्जिहानाः। संख्याताः। मरुभूः। वत्साः। घोषो देशविशेषः। यामुनाः। सारस्वताः। मत्स्याः। माध्यमिकाः।

माथुरकाः। उपज्योतिषाः। धर्मारण्यं पुण्यक्षेत्रम्। शूरसेनाः। गौरग्रीवाः। उद्देहिकाः। पाण्डुगुडाः। अश्वत्थाः। पाञ्चालाः।

साकेतदेशः। कङ्काः। कुरवः। कालकोटिः। कुकुराश्च। पारियात्रो नगः पर्ततः। औदुम्बराः। कापिष्ठलाः। गजाह्वयो हस्तिनापुरमित्येवं प्रकारा मध्यमिदम्। मध्यदेशविभाग इत्यर्थः। तथा च भगवान् पराशरः—

'चत्वारिंशोत्तरं योजनसहस्रं जम्बूद्वीपस्तत्र पूर्वादापश्चिमार्णवमवगाढाः षण्महागिरयः। हिमवान् हेमकूटो निषधो नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च। शतं सहस्राणामितरेषां षष्टिसहस्राणि काञ्चनमयानां गिरीणां चत्वारिंशन्महानद्यश्चत्वार उदधयः। कुनदीनां षष्टिसहस्राणि या महार्णवमनुप्रविशन्ति। एकनवती राज्यानामेकोनशतं कुराज्यानां दश जाङ्गलानि मरवोऽष्टावशीतिः कच्छास्तावन्त एव द्वीपाः। पञ्च जनपदसहस्राणि। तत्र कृत्तिकादीनि त्रीणि मध्यदेशेऽस्मिन् वर्षे भवन्त्यार्द्रादीनि त्रीणि त्रीण्युक्तवर्जं क्रमात् पूर्वादिष्वष्टासु दिक्षु। दिङ्नक्षत्रेषूपसृष्टेषु दिग्जनपदानामेवोपतापो भवति। विशेषस्तु शूरसेनमगधकलिङ्गावन्तिसौवीरसैन्धवहाररभूतिमन्दकुणिन्दाधिपतीनाम्। अतः परं दिग्जनपदान् व्याख्यास्यामः।

अथ मध्यदेशे आर्यावर्त इति य आख्यायते तत्र जनपदाः—शूरसेनोद्देहिकपाण्डुगुडाश्वत्थनीपकाञ्चनकौरवोत्तमज्योतिषभद्रारिमेदमाध्यमिकसाल्वसाकेतमत्स्यकपिष्ठलचक्रदौलेपमाण्डव्यपाण्डुनगरगौरग्रीवपारियात्रिककुकुरराज्यौदुम्बरयामुनगजाह्वयोज्जिहानकालकोटिमाथुरोत्तरदक्षिणपाञ्चालकुरुक्षेत्ररुर्मारण्यसारस्वताः'।।२-४।।

अथ पूर्वस्यां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः ।
व्याघ्रमुखसुह्मकर्वटचान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च ।।५।।

खसमगधशिबिरगिरिमिथिलसमतटोड्राश्ववदनदन्तुरकाः ।
प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपुरुषादाः ।।६।।

उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः ।
एकपदताम्रलिप्तककोशलका वर्धमानाश्च ।।७।।

अञ्जन, वृषभध्वज, पद्म और माल्यवान् गिरि, व्याघ्रमुख, सुह्म, कर्वट, चान्द्रपुर,

शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिला, समतट, ओड्र (उड़ीसा), अश्ववदन, दन्तुरक, प्राग्ज्यौतिष, लौहित्य नद, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि, भद्र, गौडक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तक, कोशलक, वर्धमान—ये देश आर्द्रा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पूर्व दिशा) में स्थित हैं।।५-७।।

अथानन्तरं पूर्वस्यां दिशि देशप्रविभाग:। तद्यथा—अञ्जनम्। वृषभध्वज:। पद्मम्। माल्यवान्। एते सर्व एव गिरय: पर्वता:। तथा व्याघ्रमुखा जना:। सुह्मा:। कर्वटा:। चन्द्रपुरं पत्तनं तत्र भवाश्चान्द्रपुरा:। शूर्पकर्णा जना:।

खसा:। मगधाख्यो देश:। शिबिरो गिरि: पर्वत:। मिथिलाख्यो देश:। समतटो देश:। उड्रा जना:। अश्ववदना:। दन्तुरका:। प्राग्ज्योतिष:। लौहित्याख्यो नद:। क्षीरोदसमुद्र:। पुरुषादा: पुरुषभक्षा जना:।

उदयगिरि: पर्वत:। भद्रा जना:। गौडका:। पौण्ड्रा जना:। उत्कला:। काशय:। मेकला:। अम्बष्ठा:। एकपदा:। ताम्रलिप्तका:। कोशलका:। वर्धमानाश्चेति। एते आर्द्रादिके नक्षत्रत्रये देशा:। तथा च पराशर:—

'अथ पूर्वस्यां माल्यवच्छिबिराञ्जनपद्मवृषभध्वजोदयशिखरिदन्तुरका: काशिकोशलमिथिलमेकलोत्कलपुण्ड्रकर्वटसमतटोड्रगौडकभद्रद्रविडसुह्मताम्रलिप्तप्राग्ज्योतिषवर्द्धमानवाजिमुखाम्बष्ठपुरुषादकर्णिकोष्ठाधिश्रोत्रव्याघ्रमुखलौहित्यार्णवक्षीरोदार्णवमीनाशनकिरातसौवीरमहीधराविवसनैकपादोदयानुवासिनश्चे'ति।।५-७।।

अथाग्नेय्यां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

आग्नेय्यां दिशि कोशलकलिङ्गवङ्गोपवङ्गजठराङ्गा: ।
शौलिकविदर्भवत्सान्ध्रचेदिकाश्चोर्ध्वकण्ठाश्च ॥८॥

वृषनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी ।
श्मश्रुधरहेमकुड्यव्यालग्रीवा महाग्रीवा: ॥९॥

किष्किन्धकण्टकस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णा: ।
सह नग्नपर्णशबरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशा: ॥१०॥

कोशल, कलिङ्ग, वंग, उपवंग, जठरांग, शौलिक, विदर्भ, वत्स, आन्ध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, वृष, नालिकेर, चर्मद्वीप, विन्ध्याचल के समीप, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल, निषादराष्ट्र, पुरिक, दाशार्ण, नग्नशबर, पर्णशबर—ये देश आश्लेषादि तीन नक्षत्रों के वर्ग (आग्नेय) में स्थित हैं।।८-१०।।

आग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि देशप्रविभाग:। तद्यथा—कोशला जना:। कलिङ्गा:। वङ्गा:। उपवङ्गा:। जठराङ्गा:। शूलिका:। विदर्भा:। वत्सा:। अन्ध्रा:। चेदिकाश्च। ऊर्ध्वकण्ठाश्च।

वृष: वृषस्थानम्। नालिकेर:। चर्मद्वीप:। विन्ध्यान्तवासिन:। विन्ध्यपर्वते ये निवसन्ति। त्रिपुरी नगरी। श्मश्रुधरा जना:। हेमकुड्यं स्थानम्। व्यालग्रीवा जना:। महाग्रीवा:।

किष्किन्धो देश:। कण्टकस्थलम्। निषादराष्ट्रम्। पुरिका:। दाशार्णा:। नग्नशबरा:। पर्णशबरा:। एते प्रागुक्ता: सह नग्नपर्णशबरै:। एते देशा आश्लेषाद्ये नक्षत्रत्रिके ज्ञेया:। तथा च पराशर:—

'अथ प्राग्दक्षिणस्यां विन्ध्यान्तवासिनश्चेदिवत्सदशार्णाङ्गवङ्गोपवङ्गकलिङ्गजठरपुण्ड्रशूलिकविदर्भनग्नपर्णशबरविन्ध्यक्षेत्रपुरपुरिककण्टकस्थलवृषद्वीपकौशलौर्ध्विककाम्बोजवर्मलूतकाककाचहेमकुड्यव्यालग्रीवश्मश्रुधरनालिकेरद्वीपकिष्किन्धाधिवासिन:'।।८-१०।।

अथ दक्षिणस्यां दिशि देशजनपदप्रविभागमाह—

अथ दक्षिणेन लङ्काकालाजिनसौरिकीर्णतालिकटा: ।
गिरिनगरमलयदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यभरुकच्छा: ।।११।।

कङ्कटकङ्कणवनवासिशिबिकफणिकारकोङ्कणाभीरा: ।
आकरवेणावर्तकदशपुरगोनर्दकेरलका: ।।१२।।

कर्णाटमहाटविचित्रकूटनासिक्यकोल्लगिरिचोला: ।
क्रौञ्चद्वीपजटाधरकावेर्यो रिष्यमूकश्च ।।१३।।

वैदूर्यशङ्खमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपा: ।
गणराज्यकृष्णवेल्लूरपिशिकशूर्पाद्रिकुसुमनगा: ।।१४।।

तुम्बवनकार्मणयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिका: ।
काञ्चीमरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभा: ।।१५।।

बलदेवपट्टनं दण्डकावनतिमिङ्गिलाशना भद्रा: ।
कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति विज्ञेया: ।।१६।।

लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय पर्वत, दर्दुर, महेन्द्र, मालिन्द्य, भरूकच्छ, कंकट, कंकण, वनवासी, शिबिक, फणिकार, कोङ्कण, आभीर, आकर, वेण, आवर्त्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट पर्वत, नासिक्य देश, कोल्लगिरि, चोल, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरी नदी, ऋष्यमूक पर्वत, वैदूर्य, शंखमुक्ताकर देश, अत्र्याश्रम, वारिचर, धर्मपुर द्वीप, गणराज्य, कृष्णवेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि, कुसुम नग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिण समुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपट्टन, चेर्य, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पट्टन, दण्डकावन, तिमिङ्गिलाशन, भद्र, कच्छ, कुञ्जरदरी, ताम्रपर्णी— ये उत्तरफाल्गुनी आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (दक्षिण) में स्थित हैं।।११-१६।।

अथानन्तरं दक्षिणेन दक्षिणस्यां दिशि देशा:। तद्यथा—लङ्का। कालाजिनम्। सौरिकीर्णा:। तालिकटा:। गिरिनगरम्। मलय: पर्वत:। दर्दुर:। महेन्द्र:। मालिन्द्य:। एते पर्वता:। भरुकच्छा जना:।

कङ्कटा:। कङ्कणा:। वनवासिन:। शिबिका:। फणिकारा:। कोङ्कणा:। आभीरा:। आकर: स्थानं यत्र सर्वद्रव्याणां परिच्छित्ति: क्रियते। वेणा नदी। आवर्तका जना:। दशपुरम्। गोनर्दा:। केरलका:।

कर्णाट:। महाटवि:। चित्रकूट: पर्वत:। नासिक्यो देश:। कोल्लगिरि:। चोला जनपदा:। क्रौञ्चद्वीपो द्वीपविशेष:। जटाधरा जना:। कावेरी नदी। रिष्यमूक: पर्वत:।

वैदूर्यशङ्खमुक्ता यत्रोत्पद्यन्ते। अत्रि: आश्रमस्थानं भगवतोऽत्रे:। वारिचर:। धर्मपट्टनम्। द्वीपा:। गणराज्यकृष्णवेल्लूरा राजान:। पिशिका:। शूर्पाद्रि: पर्वत:। कुसुमनग: पर्वत:।

तुम्बवनम्। कार्मणेयका:। याम्योदधिर्दक्षिण: समुद्र:। तापसाश्रमास्तापसानामाश्रमा:। ऋषिका जना:। काञ्ची देश:। मरुचीपट्टनम्। चेर्यार्यका:। सिंहला:। ऋषभा:।

वलदेवपट्टनम्। दण्डकावनम्। तिमिङ्गिलाशना:। भद्रा:। कच्छ:। अथानन्तरम्। कुञ्जरदरी हस्तिखण्डा। सताम्रपर्णी ताम्रपर्ण्या नद्या सहिता। इत्येवं प्रकारा देशा उत्तरफल्गुन्याद्ये त्रिके विज्ञेया ज्ञातव्या:। तथा च पराशर:—

'अथ दक्षिणस्यां विन्ध्यकुसुमापीडदर्दुरमहेन्द्रशूर्पवत्समलयमालिन्द्यावन्तिसाम्बवति-दशपुरैककच्छभरुकच्छर्द्धिवनवासोपगिरिभद्रगिरिनगरदण्डकगणराज्यत्रिराजककर्कोटकञ्चन-तिमिङ्गिलाहाररिष्यमूकतापसाश्रमशङ्खमुक्ताप्रवालवैदूर्याकरोद्वक्त्रात्रिवारिचरार्णवचोलककौ-वेरकावेरिकपाशिकधर्मपट्टनपट्टिकाशकृष्णवेल्लूरताम्रपर्णनार्मदगोनर्दचाञ्चीकपट्टनतालिकट-सौरिकीर्णसहकारिवेणातटतुम्बवनकालाजिनद्वीपकर्णिकारशिबिकोङ्कणचित्रकूटकर्णाटम-हाटविकान्ध्रकोल्लगिरिनासिक्यकार्मणेयकावेर्वारुकवेधिनिकबलदेवपट्टनक्रौञ्चद्वीपसिंहला: परमतदर्दुरमलयमरीचित्रकूठशिखरालंकृतालङ्कारशूर्पपर्वतकुञ्जरदरीसम्भोगवतिनृणां गिरि-साराश्रमा:'।।११-१६।।

अथ नैर्ऋत्यां दिशि देशप्रविभागमाह—

नैर्ऋत्यां दिशि देशा: पह्लवकाम्बोजसिन्धुसौवीरा:।
वडवामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्ता: ।।१७।।

फेणगिरियवनमार्गरकर्णप्रावेयपारशवशूद्रा:।
बर्बरकिरातखण्डक्रव्यादाभीरचञ्चूका: ।।१८।।

हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रविडा:।
स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्च महार्णवोऽत्रैव ।।१९।।

पह्लव, काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, अरव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, आनर्त, फेणगिरि, यवन, मार्गर, कर्णप्रावेय, पारशव, शूद्र, बर्बर, किरात, खण्डक्रव्याद, आभीर, चञ्चूक, हेमगिरि, सिन्धुनद, कालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर, द्रविड—ये देश स्वाति आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (नैर्ऋत्य कोण) में स्थित हैं।।१७-१९।।

नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि देशाः। तद्यथा—पह्लवाः। काम्बोजाः। सिन्धुसौवीराः। वडवामुखाः। अरवाः। अम्बष्ठाः। कपिलाः। नारीमुखाः। आनर्ताः।

फेणगिरिः। यवनाः। मार्गराः। कर्णप्रावेयाः। पारशवाः। शूद्राः। बर्बरा। किराताः। खण्डाः। क्रव्यादाः। आभीराः। चञ्चूकाः।

हेमगिरिः। सिन्धुर्नदः। कालकाः। रैवतकाः। सुराष्ट्राः। बादराः। द्रविडाः। अत्रैव नैर्ऋत्यां दिशि महार्णवो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एते स्वात्याद्ये भत्रितये स्वातिपूर्वके नक्षत्रत्रितये ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अथ प्रत्यग्दक्षिणस्यां सुराष्ट्रमहाराष्ट्रसिन्धुसौवीरशूद्राभीरद्रविडकनकखण्डसिन्धुकालकफेणगिरिरैवतकनर्तकबाह्लीकयवनपह्लवमार्गरारवरथकाराम्बष्ठकालाजकर्णप्रवरगिरिवासिनोऽतः परं महार्णवोऽर्वकोपजोऽग्निर्वडवामुख' इति।।१७-१९।।

अथ पश्चिमायां दिशि देशान् जनपदांश्चाह—

अपरस्यां मणिमान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः।
अपरान्तकशान्तिकहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥२०॥

पञ्चनदरमठपारततारक्षितिजृङ्गवैश्यकनकशकाः।
निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥२१॥

मणिमान्, मेघवान्, वनौघ, क्षुरार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रमठ, पारत, तारक्षिति, जृङ्ग, वैश्य, कनक, शक, अन्य मर्यादाहीन पश्चिम दिशा में निवास करने वाले म्लेच्छ जाति—ये सब ज्येष्ठा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (पश्चिम) में स्थित हैं।।२०-२१।।

अपरस्यां पश्चिमायां दिशि देशाः। तद्यथा—मणिमान् पर्वतः। मेघवान्। वनौघः। क्षुरार्पणः। अस्तगिरिः। अपरान्तकाः। शान्तिकाः। हैहयाः। प्रशस्ताद्रिः। वोक्काणाः।

पञ्चनदः। रमठः। पारतः। तारक्षितिः। जृङ्गाः। वैश्याः। कनकाः। शकाः। अन्ये च ये म्लेच्छा निर्मर्यादा मर्यादारहिताः। पश्चिमदिक्स्थिताः पश्चिमायां दिशि निवासिनस्ते सर्वेऽत्रैव ज्येष्ठाद्ये नक्षत्रत्रितये ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अथ पश्चिमायां दिशि मणिमान् क्षुरार्पणो मेघवान् वनौघः। चक्रवदस्तगिरिप्रशस्तमण्डितारः। पञ्चनदकाशिब्रह्मवसतितारक्षितिपारतशान्तिकशिबिरमठजृङ्गिवायव्यगुडवासिजहैहयसत्कङ्कताजिकहूणपार्श्वेर्वेतककवोक्काणाः। अन्ये च गिरिवनवासिनस्त्यक्तधर्मदण्डमर्यादा म्लेच्छजातयः'।।२०-२१।।

अथ वायव्यां दिशि देशान् जनपदानाह—

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः।
अश्मककुलूतहलडाः स्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थाः ॥२२॥

वेणुमती फल्गुलुका गुलुहा मरुकुच्चचर्मरङ्गाख्याः ।
एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥२३॥

माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कुलूत, हलड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्थ, वेणुमती नदी, फल्गुलुका, गुलुहा, मरुकुच्छ, चर्मरङ्ग, एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव, आस्यकेश—ये सभी देश उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (वायव्य कोण) में स्थित हैं।।२२-२३।।

पश्चिमोत्तरस्यां वायव्यां दिशि देशाः। तद्यथा—माण्डव्याः। तुषाराः। तालाः। हलाः। मद्राः। अश्मकाः। कुलूतदेशाः। हलडाः। स्त्रीराज्यम्। नृसिंहवनम्। खस्थाः।

वेणुमती नदी। फल्गुलुकाः। गुलुहाः। मरुकुच्चाः। चर्मरङ्गाख्याः। एकविलोचनाः। शूलिकाः। दीर्घग्रीवाः। दीर्घास्याः। दीर्घकेशाः। एते उत्तराषाढाद्ये त्रिके ज्ञेया देशाः। तथा च पराशरः—

'अथ पश्चिमोत्तरस्यां दिशि गिरिमतिवेणुमतिरलमतिफल्गुलुकमाण्डव्यैकनेत्रमरुकुच्चतुषारतालमल्लहलडहलातवर्दिलीनविलीनदीर्घकेशग्रीवान्याङ्गशरगविषवेषशूलिगुलुहाः। परमतः स्त्रीराज्यमि'ति।।२२-२३।।

अथोत्तरस्यां दिशि देशप्रविभागमाह—

उत्तरतः कैलासो हिमवान् वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च ।
क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥२४॥

कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः ।
आदर्शान्तर्द्वीपित्रिगर्ततुरगाननाः श्वमुखाः ॥२५॥

केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः ।
तक्षशिलपुष्कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥२६॥

अम्बरमद्रकमालवपौरवकच्छारदण्डपिङ्गलकाः ।
माणहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः ॥२७॥

गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याश्च ।
यौधेयदासमेयाः श्यामाकाः क्षेमधूर्ताश्च ॥२८॥

कैलाश, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्, क्रौञ्च, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, आग्नीध्र, आदर्श, आन्तर्द्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, श्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, शरधान, तक्षशील, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठधान, अम्बर, मद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दण्डपिङ्गलक, माणहल, हूण, कोहल, शीतक, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवती नगरी, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय,

दासमेय, श्यामक, क्षेमधूर्त—ये सभी देश शतभिषा आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (उत्तर दिशा) में स्थित हैं।।२४-२८।।

उत्तरत: उत्तरस्यां दिशि देशा:। तद्यथा—कैलास: पर्वत:। हिमवान्। वसुमान् गिरि:। धनुष्मांश्च गिरिरेव। क्रौञ्च:। मेरु:। कुरवस्तथोत्तरा उत्तरकुरव:। क्षुद्रमीना:।

कैकया:। वसातय:। यामुना:। भोगप्रस्था:। अर्जुनायना:। आग्नीध्रा:। आदर्शा:। अन्तर्द्वीपिन:। त्रिगर्ता:। तुरगानना:। श्वमुखा:।

केशधरा:। चिपिटनासिका:। दासेरका:। वाटधाना:। शरधाना:। तक्षशिला: शिला:। पुष्कलावता:। कैलावता:। कण्ठधाना:।

अम्बरावता:। मद्रका:। मालवा:। पौरवा:। कच्छारा:। दण्डपिङ्गलका:। माणहला:। हूणा:। कोहला:। शीतका:। माण्डव्या:। भूतपुरा:।

गान्धारा:। यशोवति नगरी। हेमताला:। राजन्या:। खचरा:। गव्या:। यौधेया:। दासमेया:। श्यामाका:। क्षेमधूर्ता:। एते शतभिषगाद्ये नक्षत्रत्रये देशा:। तथा च पराशर:—

'अथोत्तरस्यां हिमवान् क्रौञ्चो मधुमान् कैलासो वसुमानुत्तरोत्तरस्यां मद्रपौरवयौधेयमालवशूरसेनराजन्यार्जुनायनत्रैगर्तकैकयक्षुद्रमाचेलूकमत्स्यवसातिदर्भफलाफलप्रस्तलक्षेमधूर्त्ताशाकलदाशधानहव्यमुरदण्डगव्यशरधानदासेरकवाटधानान्तर्द्वीपिगान्धारववन्धिषुवास्तुतक्षशिलालवणवतिपुष्कलावतियशोवतिमणिवतिश्यामाकखचरकोहलकनगरशरभूतपुरकैरातकादर्शकान्तारदण्डपिङ्गलमाण्डव्ययामुनेयमाणहलहूणहेमतालाश्वमुखा हिमवद्वसुमत्कैलासक्रौञ्चात् परमभिजना' इति।।२४-२८।।

अथैशान्यां प्रविभागमाह—

ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीरा: ।
अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्रा: ।।२९।।

ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरातचीनकौणिन्दा: ।
भल्ला: पटोलजटासुरकुनटखसघोषकुचिकाख्या: ।।३०।।

एकचरणानुविद्धा: सुवर्णभूर्वसुधनं दिविष्ठाश्च ।
पौरवचीरनिवासित्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगान्धर्वा: ।।३१।।

मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तङ्गण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्ल, पटोल, जटासुर, कुनट, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविद्ध, सुवर्णभू, वसुधन, दिविष्ट, पौरव, चीरनिवासी, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि, गन्धर्व—ये सभी देश रेवती आदि तीन नक्षत्रों के वर्ग (ईशान कोण) में स्थित हैं।।२९-३१।।

ऐशान्यां दिशि देशा:। तद्यथा—मेरुक:। नष्टराज्यम्। पशुपाला:। कीरा:। काश्मीरा:।

अभिसाराः। दरदाः। तङ्गणाः। कुलूतदेशाः। सैरिन्ध्राः। वनराष्ट्राः।

ब्रह्मपुरम्। दार्वाः। डामराः। वनराज्यम्। किराताः। चीनाः। कौणिन्दाः। भल्लाः। पटोलदेशाः। जटासुराः। कुनटाः। खसाः। घोषाः। कुचिकाख्याः।

एकचरणाः। अनुविद्धाः। सुवर्णभूः। वसुधनम्। दिविष्ठाश्च। पौरवाः। चीरनिवासिनः। त्रिनेत्राः। मुञ्जाद्रिः। गान्धर्वाः। एते रेवत्याद्ये त्रिके देशाः। तथा च पराशरः—

'अथ प्रागुत्तरस्यां कौलूतब्रह्मपुरकुणिन्ददिवादिनपारतनष्टराज्यवनराष्ट्रवैमकैणभल्लसिंहपुरचामरतङ्गणसार्यकपर्वतककाश्मीरदरददर्वाभिमुरजटासुरपटोलसैरिन्ध्रकुचिन्तनकिरातपशुपालचीनसुवर्णभूमिदेवस्थलदेवोद्यानानि'।

एतदाचार्येण समाससंहितायां स्पष्टतरमुक्तम्। तथा च—

भत्रयमाग्नेयाद्यं मध्यं प्राक्प्रभृति च प्रदक्षिणतः।
कथयामि प्रविभागं रौद्रात् प्रागादिदेशानाम्।।
मध्यमुदक्पाञ्चाला वङ्गा यमुनान्तरं कुरुक्षेत्रम्।
उदगपि च पारियात्रात् परमथवाऽयोग्यमत्स्याश्च।।
सारस्वतयामुनवत्सघोषसंख्याननीपमाण्डव्याः।
भद्रारिमोदनैमिषसाल्वोपज्योतिषाश्ववत्था:।।
औदुम्बरोऽथ कुकुरोज्जिहानगजसाह्वकङ्कपाण्डुगुडाः।
माध्यमिकोद्देहिककालकोटिकापिष्ठलाश्चेति।।
मध्येऽयं प्रविभागः शेषर्क्षाणां तथादिशेद्देशान्।
प्रख्यातदेशमध्यानन्यांश्चैवाभिधास्यामि।।
आर्द्रादिकाशिकोशलमिथिलोत्कलवर्धमानपाण्ड्योड्राः।
लौहित्यमगधसमतटमेककलाम्बष्ठताम्रलिप्ताख्याः।।
आश्लेषाद्ये त्रिपुरी निषादराष्ट्राणि चेदिकदशार्णाः।
शूलिकविन्ध्यान्तःस्था वत्सान्ध्रविदर्भकालिङ्गाः।।
आर्यम्णाद्ये चैदिककोङ्कणवनवासिकोल्लगिरिमलयाः।
उज्जयिनीभरुकच्छा दिशा च याम्यार्णवो यावत्।।
स्वात्याद्ये सिन्धुसौवीरकापिलवनितास्यमार्गरानर्ताः।
बर्बरयवनसुराष्ट्रककाम्बोजद्रविडरैवतकाः।।
ज्येष्ठादितोऽपरान्तकशकहैहयजृङ्गपाञ्चनदकतकाः।
निर्मर्यादा म्लेच्छाः शान्तिकवोक्काणवैश्याश्च।।
विश्वेश्वरादिशूलिकतालतुषारैकनेत्रमाण्डव्याः।
स्त्रीराज्यचर्मरङ्गाश्मकलडहारुहकफाल्गुलुकाः।।
शतभिषगाद्ये केकयगान्धारादर्शयामुनाग्नीध्राः।
दासेयचिपिटनासार्जुनायना दण्डपिङ्गलकाः।।

पौष्णाद्ये काश्मीरत्रिगर्तदरदाभिसारचीनखसाः।
तङ्गणकिरातकीरा ब्रह्मपुरजटासुराश्चेति।। इति।।२९-३१।।

कृत्तिकाद्यैः प्रयोजनमाह—

वर्गैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः।
पाञ्चालो मागधिकः कालिङ्गश्च क्षयं यान्ति ।।३२।।

आवन्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति सिन्धुसौवीरः।
राजा च हारहौरो मद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ।।३३।।

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्र-
कूर्मविभागाध्यायश्चतुर्दशः ।।१४।।**

आग्नेय आदि नव वर्ग पापग्रह से पीड़ित हों तो क्रम से पाञ्चाल, मगध, कलिङ्ग, अवन्ती, आनर्त्त, सिन्धु, सौवीर, हारहौर, मद्र और कौलिन्द देश के राजाओं का नाश होता है।।३२-३३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां नक्षत्रकूर्मविभागाध्यायश्चतुर्दशः ।।१४।।

आग्नेयाद्यैः कृत्तिकाद्यैर्वर्गैः। क्रूरग्रहपीडितैः। क्रूरैरादित्याङ्गारकशनैश्चरैः पीडितैः। क्रमेण परिपाट्या। एते नृपा राजानः क्षयं नाशं यान्ति। तद्यथा—कृत्तिकाद्ये पाञ्चालः। आर्द्राद्ये मागधिकः। आश्लेषाद्ये कालिङ्गश्च। आर्यम्णाद्ये आवन्तः। स्वात्याद्ये आनर्तः। अथशब्द आनन्तर्ये। ज्येष्ठाद्ये सिन्धुसौवीरो मृत्युं मरणं चायाति प्राप्नोति। उत्तराषाढाद्ये राजा हारहौरः। शतभिषगाद्ये मद्रेशो मद्राधिपः। रेवत्याद्ये अन्यश्चापरः कौणिन्द इति।।३३।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्र-
कूर्मो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।**

अथ नक्षत्रव्यूहाध्यायः

अथ नक्षत्रव्यूहो व्याख्यायते। कस्मिन्नक्षत्रे के पदार्था आश्रिता इत्येतद्यत्र निरूप्यते स नक्षत्रव्यूहः। तत्रादावेव कृत्तिकायामाह—

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः ।
आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥१॥

श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राह्मण, कुम्भार, पुरोहित, ज्यौतिष—ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१।।

सितकुसुमानि श्वेतपुष्पाणि। आहिताग्निराहित आरोपितोऽग्निर्येन अग्नित्रयोपचारकाः। मन्त्रज्ञा मन्त्रविदः। एवं सूत्रज्ञा यज्ञशास्त्रविदः। भाष्यज्ञा वैयाकरणाः। आकरः अर्थोत्पत्ति-स्थानम्, तत्र नियुक्त आकरिकः। नापितः श्मश्रुकर्मकरः। द्विजो ब्राह्मणः। घटकारः कुम्भकारः। पुरोहितः पुरोधाः। अब्दज्ञो ज्यौतिषिकः। एते आग्नेये कृत्तिकायां समाश्रिताः।।१।।

अथ रोहिण्यामाह—

रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः ।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥२॥

सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत—ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।।२।।

सुव्रताः शोभनव्रताः। पण्याः पण्यवृत्तयः। भूपा राजानः। धनिनः। योगयुक्ता योग-रताः। शाकटिकाः शकटजीविनः। गावः। वृषा दान्ताः। जलचराः प्राणिनः। कर्षकाः कृषिकराः। शिलोच्चयाः पर्वताः। ऐश्वर्यसम्पन्ना ऐश्वर्ययुक्ताः। एते रोहिण्यामाश्रिताः।।२।।

अथ मृगशिरस्याह—

मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहङ्गाः ।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥३॥

सुगन्धियुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक—ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं।।३।।

सुरभीणि सुगन्धद्रव्याणि। वस्त्राण्यम्बराणि। अब्जं यत्किञ्चिज्जलोद्भवम्। कुसु-मानि पुष्पाणि। फलानि प्रसिद्धान्याम्रादीनि। रत्नानीन्द्रनीलप्रभृतीनि। वनचरा वनवासिनः।

विहङ्गा: पक्षिण:। मृगा अरण्यप्राणिन:। सोमपीथय: सोमपा:। गान्धर्वा गेयज्ञा:। कामुका: कामिन:। लेखहारा लेखवाहा:। एते सर्व एव मृगशिरसि।।३।।

अथार्द्रायामाह—

रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरता: ।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञा: ।।४।।

वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले, अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले—ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।४।।

वधरता घातका:। बन्धरता: प्राणिनां ये बन्धं कुर्वन्ति। अनृतरता असत्यभाषिण:। परदाररता: परस्त्रीषु सक्ता:। स्तेयरताश्चौरा:। शठा: परकार्यविमुखा:। तथा चोक्तम्—

मनसा वचसा यश्च दृश्यतेऽकार्यतत्पर:।
कर्मणा विपरीतश्च स शठ: सद्भिरिष्यते।।

तस्य भाव: शाठ्यम्। तत्र ये रता:। एकीभूतानां पदार्थानां पृथक्करणं भेदा:। तत्र ये रता:। तुषधान्यं शालय:। तीक्ष्णा: क्रूरा:। मन्त्रज्ञा मन्त्रविद:। अभिचारज्ञा वशीकरणादिकर्मविद:। वेतालकर्मज्ञा वेतालोत्थापनविद्यास्वभिज्ञा:। एते सर्वे रौद्रे आर्द्रायाम्।।४।।

अथ पुनर्वसावाह—

आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुता: ।
उत्तमधान्यं वणिज: सेवाभिरता: सशिल्पिजना: ।।५।।

सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी—ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।५।।

सत्ययुता: सत्यभाषिण:। औदार्ययुता दानशीला:। शौचयुता: शुद्धा परधनादिष्वलुब्धा:। कुलयुता: कुलीना:। रूपयुता: सुरूपा:। धीयुता बुद्धिमन्त:। यशोयुता यशस्विन:। अर्थयुता धनिन:। उत्तमधान्यं कलमशाल्यादि। वणिज: किराटा:। सेवाभिरता: सेवका:। ते च सशिल्पिजना: शिल्पिजनै: कुम्भकारप्रभृतिभि: सहिता:। एते सर्व एवाऽऽदित्ये पुनर्वसौ।।५।।

अथ पुष्ये आह—

पुष्ये यवगोधूमा: शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपा: ।
सलिलोपजीविन: साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ।।६।।

यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले

(धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)—ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं।।६।।

यवाः। गोधूमाः। शालयो धान्यानि। इक्षवः। वनान्यरण्यानि। मन्त्रिणः सचिवाः। भूपा राजानः। सलिलोपजीविनः सलिलं जलं तेनोपजीवन्ति तेनैवार्जनं ये कुर्वन्ति धीवरप्रायाः। साधवश्च सज्जनाः। यज्ञसक्ता यागेष्वनुरक्ताः। इष्टयः पुत्रकाम्यादयः, तासु च ये सक्ता निरताः। एते सर्व एव पुष्ये।।६।।

अथाऽऽश्लेषायामाह—

अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥७॥

कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने वाले—ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।७।।

कृत्रिमाणि द्रव्याणि यानि युक्त्या क्रियन्ते। यन्मूलमेव बीजं स कन्दः। केचिद-भिनवाङ्कुरमिच्छन्ति। मूलानि प्रसिद्धानि। फलानि च प्रसिद्धान्येव। कीटाः कृमिजातयः। पन्नगाः सर्पाः। विषं प्रसिद्धम्। परधनहरणे ये अभिरताः सक्ताः। तुषधान्यं शालयः। सर्वभिषजो निःशेषाः शल्यहर्तृशालाकिकाः कायचिकित्सकादयः। एते सर्व एवाहिदेवे आश्लेषायाम्।।७।।

अथ मघायामाह—

पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः।
पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥८॥

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी, स्त्रीद्वेषी—ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।८।।

धनधान्याढ्या वित्तशालिबहुलाः। कोष्ठागाराणि विपुलग्रामाः। पर्वताश्रयिणः पर्वतनिवासिनः। पितृभक्ताः पितृणां पूजाभिरताः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। शूराः संग्रामप्रियाः। क्रव्यादा मांसाशिनः, पक्वमपक्वं वा मांसमश्नन्ति। स्त्रीणां द्विषो ये मनुजा मनुष्याः। एते सर्व एव पित्र्ये मघायाम्।।८।।

अथ पूर्वफल्गुन्यामाह—

प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि।
कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥९॥

नाचने वाले, स्त्रियाँ, सबों के प्रिय, गानविद्या को जानने वाले, शिल्पी, विक्रय या क्रय-द्रव्य, कार्पास (रुई), नमक, शहद, तेल, बालक—ये सभी पदार्थ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रगत हैं।।९।।

नटा ये नृत्यन्ति। युवतयः स्त्रियः। सुभगाः सर्वजनवल्लभाः। गान्धर्वा गेयप्रवीणाः। शिल्पिनश्चित्रकारप्रभृतयः। पण्यं यत्किञ्चिद्विक्रयद्रव्यं क्रेयं वा। कर्पासः प्रसिद्धः। लवणं सैन्धवम्। माक्षिकं क्षौद्रम्। तैलं तिलतैलम्। एतानि। तथा कुमारका बालकाः। एते सर्व एव प्राक्फल्गुनीषु पूर्वफल्गुन्याम्।।९।।

अथोत्तरफल्गुन्यामाह—

आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः।
शोभनधान्यमहाधनकर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ।।१०।।

कोमल हृदय वाले, शुद्ध (दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), नीतिज्ञ, पाखण्डी (वेदनिन्दक), दानी, शास्त्रों में निरत, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत राजा—ये सब उत्तरफल्गुनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१०।।

मार्दवरता मृदुभावसमेताः। शौचरताः शुद्धाः परधनादिष्वलुब्धाः। विनयरता नीतिज्ञाः। पाखण्डिनो वेदबाह्यास्तेषु ये रताः सक्ताः। दानरता दानसक्ताः। शास्त्ररताः पठनशीलाः। शोभनं धान्यं कलमशाल्यादि। महाधना अतिधनिनः। कर्मानुरताः कर्मस्वतिसक्ताः। ते च समनुजेन्द्रा मनुजेन्द्रैर्नृपैः सहिताः। एते सर्व एवाऽऽर्यम्णे उत्तरफल्गुन्याम्।।१०।।

अथ हस्त आह—

हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ।।११।।

चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्तिसाधनपति, शिल्पी, क्रय-विक्रय द्रव्य, भूसी वाले धान्य, सुनने वाले, वणिक्, तेजस्वी—ये सब हस्त नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।११।।

तस्कराश्चौराः। कुञ्जरा हस्तिनः। रथिका रथेन गन्त्र्यादिना ये गच्छन्ति। महामात्रा हस्तिसाधनपतयः। शिल्पिनश्चित्रकारप्रभृतयः। पण्यं यत्किञ्चिद्विक्रयद्रव्यम्। तुषधान्यं शालयः। श्रुतयुक्ताः श्रुताभिनिरताः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। तेजोयुतास्तेजस्विनः। अत्रास्मिन् हस्ते सर्व एवैते।।११।।

अथ चित्रायामाह—

त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः।
गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ।।१२।।

अलंकार को जानने वाले, मणि के लक्षण को जानने वाले, रागज्ञ (रंगरेज), लेखक, गान विद्या को जानने वाले, सुगन्धियुत द्रव्य बनाने वाले, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्र-रोगचिकित्सक, राजा के उपयोगी धान्य—ये सब चित्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१२।।

भूषणज्ञा अलङ्कारादिषु कुशलाः। मणिज्ञा मणिलक्षणज्ञाः। रागज्ञा यैर्वस्त्रादिषु रागः क्रियते। लेख्यज्ञा लिपिवेत्तारः। गान्धर्वज्ञा गीतविदः। गन्धयुक्तिज्ञा बहुभिर्द्रव्यै-

र्मिश्रितैर्विशिष्टतरं सुगन्धद्रव्यं ये उत्पादयन्ति। गणितपटवो गणितदक्षाः। तन्तुवायाः कौलिकाः। शालाक्या अक्षिरोगचिकित्सकाः। राजधान्यं राजोपयोगि यद्धान्यं षष्टिकादि। एतत्सर्वं त्वाष्ट्रे चित्रायाम्।।१२।।

अथ स्वातावाह—

स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि।
अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ।।१३।।

पक्षी, मृग, अश्व, खरीदने-बेचने वाले, धान्य, छोटे जन्तु, तपस्वी, क्रय-विक्रय में कुशल—ये सब स्वाती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१३।।

खगाः पक्षिणः। मृगा अरण्यप्राणिनः। तुरगा अश्वाः। वणिजः क्रयविक्रयनिरताः। धान्यानि शालयः। वातबहुलानि चणकप्रभृतीनि। अस्थिरसौहृदः अस्थिरमित्राणि। लघुसत्त्वा अल्पसत्त्वाः। तापसास्तपोनिरताः। पण्यकुशलाः पण्यप्रवीणाः। केचिद्वन्यकुशला इति पठन्ति। वने भवा वन्यास्तेषु कुशलाः। एते सर्व एव स्वातौ।।१३।।

अथ विशाखायामाह—

इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः।
कर्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ।।१४।।

रक्त पुष्प, रक्त फल, वृक्ष, तिल, मूंग, कपास (रुई), चना, इन्द्र के भक्त, अग्निभक्त—ये सब विशाखा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१४।।

रक्तपुष्पा लोहितपुष्पा रक्तफलाश्च ये शाखिनो वृक्षास्ते च सतिलमुद्गाः तिलैर्मुद्गैश्च सहिताः। कर्पासाः प्रसिद्धाः। माषाश्चणकाश्च प्रसिद्धा एव। ये पुरन्दरस्येन्द्रस्य हुताशस्याग्नेर्भक्ता अनुरक्ताः। एते एर्व एवेन्द्राग्निदैवते विशाखायाम्।।१४।।

अथाऽनुराधायामाह—

मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम् ।।१५।।

बली, समूहों में प्रधान, साधुओं के भक्त, संघ में बैठने वाले, वाहन से चलने वाले, जनपदों के साधु, शारदीय धान्य आदि—ये सब अनुराधा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।। १५।।

शौर्यसमेता बलसंयुक्ताः। गणनायका गणप्रधानाः। साधूनां ये रताः। गोष्ठिरता नर्मसक्ताः। यानरता वाहनसक्ता गमनसक्ता वा। ये च लोके जनपदे साधवः सज्जनाः। शरत्समुत्पन्नं शारदं सर्वमशेषं यत्किञ्चिद्धान्यादि। एतन्मैत्रेऽनुराधायाम्।।१५।।

अथ ज्येष्ठायामाह—

पौरन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ।।१६।।

अति शूर, कुलीन, धनी, यशस्वी, दूसरे के धन का अपहरण करने वाले, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले राजा, सेनापति—ये सब ज्येष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१६।।

अतिशूरा अतिसंग्रामधीराः। कुलेनाभिजनेन वित्तेन धनेन यशसा कीर्त्या ये अन्विताः संयुक्ताः। परस्वहतः परधनहन्तारः। ये च नरेन्द्रा राजानो विजिगीषवः परान् जेतुमिच्छवः। ये च सेनानां नेतारः सेनापतयः। एते सर्व एव पौरन्दरे ज्येष्ठायाम्।।१६।।

अथ मूल आह—

मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः ।
बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्तन्ते ।।१७।।

औषध, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल और फल से आजीविका चलाने वाले, नव प्रकार के बीज, अतिधनी, फलाहारी, कन्दाहारी—ये सब मूल नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१७।।

भेषजमौषधम्। भिषजो वैद्याः। गणमुख्याः समूहप्रधानाः। कुसुममूलफलवार्ताः। कुसुमानि पुष्पाणि, मूलानि फलानि च वार्ता वृत्तिर्येषाम्। बीजानि सर्वाणि यान्युप्यन्ते। ये चातिधनयुक्ताः प्रभूतवित्तसमन्विताः। ये च फलमूलैर्वर्तन्ते जीवन्ति। ते सर्व एव मूले।।१७।।

अथ पूर्वाषाढायामाह—

आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः ।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्बुजातानि ।।१८।।

कोमल हृदय वाले, जल-मार्ग से चलने वाले (धीवर, जल में रहने वाले प्राणी आदि), सत्य भाषण करने वाले, दूसरे के धन आदि को नहीं चाहने वाले, धनी, पुल बनाने वाले, जल से आजीविका चलाने वाले, जल से उत्पन्न फल और पुष्प—ये सब पूर्वाषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१८।।

मृदवो मार्दवयुक्ताः। जलमार्गगामिनो जलमार्गेण ये गच्छन्ति ते जलमार्गगामिनो धीवरा जलप्राणिनश्च। सत्ययुक्ताः सत्यभाषिणः। शौचयुक्ताः परधनादिष्वलुब्धाः। धनयुक्ता ईश्वराः। सेतुकराः सेतुं ये कुर्वन्ति। वारिजीवका वारिणा जलेन ये जीवन्ति तेनैवार्थार्जनं कुर्वन्ति। यानि चाम्बुजातानि जलसम्भूतानि फलानि कुसुमानि च। ते सर्व एवाऽऽप्ये पूर्वाषाढायाम्।।१८।।

अथोत्तराषाढायामाह—

विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवतासक्ताः ।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये तेजसा युक्ताः ।।१९।।

महामात्र (मुख्य मन्त्री = 'महामात्राः प्रधानानि' इत्यमरः), मल्ल, बाहुयुद्ध में कुशल, हाथी, घोड़ा, देवताओं के भक्त, स्थावर (वृक्ष आदि), युद्ध में कुशल, भोगी, तेजस्वी—ये सब उत्तराषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।१९।।

महामात्रा हस्तिसाधनपतय:। मल्ला बाहुयुद्धज्ञा:। करिणो हस्तिन:। तुरगा अश्वा:। देवतासक्ता देवताभक्ता:। स्थावरा वृक्षादय:। योधा युद्धकुशला:। भोगान्विता भोगसमेता:। ये च जनास्तेजसा युक्तास्तेजस्विन:। ते सर्व एव विश्वेश्वर उत्तराषाढायाम्।।१९।।

अथ श्रवण आह—

श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्था: ।
उत्साहिन: सधर्मा भागवता: सत्यवचनाश्च ॥२०॥

मायापटु (मायावी, प्रपञ्ची), सदा सब कामों को करने में उद्यत, उत्साही, धर्मी, भगवान् के भक्त, सत्य भाषण करने वाले—ये सब श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२०।।

मायापटवो मायाविन: प्रपञ्चकुशला: नित्योद्युक्ता: सर्वकालं सोद्यमा: कर्मसु व्यापारेषु समर्था: सक्ता:। उत्साहिन: सोत्साहा:। सधर्मा धर्मसंयुक्ता:। भागवता भगवद्भक्ता:। सत्य-वचना: सत्यभाषिण:। एते सर्व एव श्रवणे।।२०।।

अथ धनिष्ठायामाह—

वसुभे मानोन्मुक्ता: क्लीबाचलसौहृदा: स्त्रियां द्वेष्या: ।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुता: शमपराश्च नरा: ॥२१॥

अहङ्काररहित, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाले, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी, जितेन्द्रिय—ये सब धनिष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२१।।

मानोन्मुक्ता मानवर्जिता निरहङ्कारा:। क्लीबा: षण्ढा: अचलसौहृदा: स्थिरमैत्रा:। स्त्रियां द्वेष्या: स्त्रीष्वप्रिया:। दानाभिरता दानशीला:। बहुवित्तसंयुता: प्रभूतधनान्विता:। ये च नरा मनुष्या: शमपरा जितेन्द्रिया:। एते सर्व एव वसुभे धनिष्ठायाम्।। २१।।

अथ शतभिषज्याह—

वरुणेशे पाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचराजीवा: ।
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥२२॥

पाशिक (जाल से प्राणियों को मारने वाले), मछली मारने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले सभी द्रव्य, जलचर जन्तुओं से आजीविका चलाने वाले, सूअर को रखने वाले (डोम आदि), धोबी, मद्य बेचने वाले (कलवार आदि), पक्षियों को मारने वाले—ये सब शतभिषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२२।।

पाशिका:। पाशा बन्धनरज्जव:। पाशै: प्राणिनो बध्नन्तीति पाशिका:। मत्स्यबन्धो मत्स्यान् मीनान् बध्नाति य:। जलजानि जलोद्भवानि सर्वद्रव्याणि मुक्ताफलादीनि। जलचराजीवा:। जलचरैर्मत्स्यादिभिर्ये आजीवन्ति। सौकरिका:। सूकरान् वराहान् ये बध्नन्ति। रजका वस्त्ररागकर्तार:। शौण्डिका: पानसक्ता:। शाकुनिका: शकुनीन् घ्नन्तीति शाकुनिका: पक्षिघातिन:। एते सर्व एवास्मिन् वर्गे वरुणेशे शतभिषजि।।२२।।

अथ पूर्वभद्रपदायामाह—

आजे तस्करपशुपालहिंस्त्रकीनाशनीचशठचेष्टाः ।
धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः ।।२३।।

चोर, पशुपालक, क्रूर, कीनाश (क्षुद्र = 'कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रकर्षकयोस्त्रिषु' इत्यमरः), नीच जन, शठ (परोपकार से विमुख), विधर्मी, व्रतों से रहित, बाहु-युद्ध को जानने वाले—ये सब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२३।।

तस्कराश्चौराः। पशुपालाः छागादिषु रक्षकाः। हिंस्राः क्रूराः। कीनाशाः कदर्याः। नीचा अधमकर्मकराः। शठचेष्टाः शठः परकार्यविमुखस्तस्येव चेष्टा येषां ते शठचेष्टाः। धर्मव्रतैर्विरहिता धर्मविवर्जिताः। व्रतैः कृच्छ्रपराकैश्चान्द्रायणादिभिश्च वर्जिताः। ये च मनुजा मनुष्या नियुद्धकुशला बाहुयुद्धज्ञाः। एते सर्व एवाऽऽजे पूर्वभद्रपदायाम्।।२३।।

अथोत्तरभद्रपदायामाह—

आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः ।
आश्रमिणः पाखण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ।।२४।।

ब्राह्मण, यज्ञ करने वाले, दानी, तपस्वी, अति धनी, आश्रमी (चतुर्थाश्रम में रहने वाले), पाखण्डी (वेदनिन्दक), राजा, उत्तम धान्य—ये सब उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।। २४।।

विप्रा द्विजाः। क्रतुर्यज्ञः। दानं सत्पात्रेष्वर्थप्रतिपादनम्। तपो व्रतानुसेवनम्। एतैर्ये युताः समन्विताः। महाविभवा अत्यैश्वर्ययुक्ताः। आश्रमिणश्चतुर्थाश्रमिणः। पाखण्डा वेदबाह्याः। नरेश्वरा राजानः। सारधान्यं श्रेष्ठाः शालयः। एतत्सर्वमेवाहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायाम्।।२४।।

अथ रेवत्यामाह—

पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानि ।
सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च ।।२५।।

जल से उत्पन्न होने वाले द्रव्य, फल और फूल, नमक, रत्न, शङ्ख, मोती, कमल आदि सुगन्धयुक्त फूल, सुगन्धियुत द्रव्य, खरीदने-बेचने वाले, नाविक—ये सभी रेवती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२५।।

सलिलजानि जलोद्भवानि यानि द्रव्याणि मृणालादीनि यानि च फलानि। तथा कुसुमानि पुष्पाणि। लवणं सैन्धवम्। मणयो रत्नानि। शङ्खः प्रसिद्धः। मौक्तिकं मुक्ताफलानि। अब्जानि पद्मप्रभृतीनि। सुरभि सुगन्धद्रव्यम्। कुसुमानि। अथवा सुरभीणि सुगन्धानि कुसुमानि। गन्धाः सुगन्धद्रव्याणि। वणिजः क्रयविक्रयिणः। नौकर्णधारा नाविकाः। एते सर्व एव पौष्णे रेवत्याम्।।२५।।

अथाश्विन्यामाह—

अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः ।
तुरगारोहा वणिजो रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥२६॥

घोड़े को चुराने वाले, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाले, खरीदने-बेचने वाले, सुन्दर, अश्वरक्षक—ये सब अश्विनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२६।।

अश्वहरा अश्वग्राहकाः। सेनापतयश्चमूनाथाः। वैद्याः कायचिकित्सकाः। सेवकाः सेवानिरताः। तुरगा अश्वाः। तुरगारोहा अश्वगामिनः। वणिजः किराताः क्रयविक्रयनिरताः रूपोपेताः रूपसम्पन्नाः सुरूपाः। तुरगरक्षा अश्वपतयः। एते सर्व एवाऽश्विन्याम्।।२६।।

अथ भरण्यामाह—

याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः ।
तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥२७॥

रक्तमिश्रित मांस खाने वाले, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाले, भूसी वाले धान्य, नीच कुल में उत्पन्न, उदारता आदि गुणों से रहित—ये सब भरणी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।२७।।

असृग्रक्तं पिशितं मांसं तद्भुञ्जते ये तेऽसृक्पिशितभुजो रक्तमांसादाः। क्रूराः उग्राः। वधे मारणे बन्धे बन्धने ताडने कुट्टने चासक्ता रताः। तुषधान्यं शालयः। नीचकुलोद्भवा निकृष्टवंशजाताः। ये च सत्त्वेनौदार्येण विहीना रहिताः। एते सर्व एव याम्ये भरण्याम्।।२७।।

अधुना जातिनक्षत्राण्याह—

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥२८॥

आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति तानि ।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥२९॥

सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥३०॥

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका ब्राह्मणों के; उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्य क्षत्रियों के; रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी वैश्यों के; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् और अश्विनी क्रय-विक्रय करने वालों के; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा क्रूर मनुष्यों के; मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा सेवकों के तथा आश्लेषा, विशाखा, श्रवणा और भरणी नक्षत्र चाण्डालों के स्वामी होते हैं।।२८-३०।।

पूर्वात्रयं पूर्वफल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वभद्रपदेति। एतच्च सानलमनलेन कृत्तिकया सहितम्। एतन्नक्षत्रचतुष्टयमग्रजानां ब्राह्मणानाम्। पुष्येण सहोत्तराणि राज्ञां पुष्यमुत्तरात्र-

यमुत्तरफल्गुन्युत्तराषाढोत्तरभद्रपदा इति। एतद्राज्ञां क्षत्रियाणां नक्षत्रचतुष्टयम्। सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं चेति। मैत्रमनुराधा। सपौष्णं पौष्णेन रेवत्या सहितम्। पितृदैवतं मघा। प्रजापतेर्भं प्राजापत्यं नक्षत्रं रोहिणी। चशब्दः समुच्चये। एतत्कृषीवलानां कर्षकाणां वैश्यानां नक्षत्रचतुष्टयम्।

आदित्येति। आदित्यं पुनर्वसुर्हस्तोऽभिजित्। आश्विनमश्विनी। एतानीमानि वणिग्जनानां किराटलोकानां चत्वारि प्रवदन्ति कथयन्ति। मूलम्। त्रिनेत्रो रुद्र आर्द्रा। अनिलः स्वातिः। वारुणं शतभिषग्। एतानि चत्वारि प्रभविष्णुतायाः प्रभावशीलाया उग्रजातेः क्रूरजनस्य।

सौम्यं मृगशिराः। ऐन्द्रं ज्येष्ठा। त्वाष्ट्रं चित्रा। वसुदैवतं धनिष्ठा। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि सेवाजनस्य सेवाभिरतस्य स्वाम्यं प्रभुत्वमुपगतानि प्राप्तानि। सार्पमाश्लेषा। विशाखा। श्रवणः। भरणी। एतानि चत्वारि नक्षत्राणि चण्डालजातेश्चण्डालानामभिनिर्दिशन्ति कथयन्ति मुनयः।।२८-३०।।

अथ क्रूरग्रहप्रयोजनमाह—

रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम्।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत्।।३१।।

तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा।
निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये।।३२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
नक्षत्रव्यूहाध्यायः पञ्चदशः।।१५।।

रवि और शनि से मुक्त, मङ्गल के भेदन या वक्र गमन से दूषित, ग्रहणकालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीड़ित (चन्द्रमा जिस नक्षत्र की योगतारा को आच्छादित या उसके दक्षिण भाग में होकर गमन करे) या स्वाभाविक उत्तम गुण से रहित नक्षत्र को मुनि लोग पीड़ित कहते हैं। इस तरह पीड़ित नक्षत्र पूर्वोक्त अपने वर्ग का नाश और उक्त से भिन्न लक्षणयुत हो तो उनकी वृद्धि करता है।।३१-३२।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां नक्षत्रव्यूहाध्यायः पञ्चदशः।।१५।।

रविरादित्यः। रविसुतः शनैश्चरः। अनयोरेकस्य यन्नक्षत्रं भोगमागतं भोगं प्राप्तम्। क्षितिसुतो भौमस्तद्भेदनेन मध्यगमनेनाच्छादनेन वा तद्वक्रेण वा दूषितं दुष्टम्। ग्रहणगतं यन्नक्षत्रं यत्र स्थितोऽर्कश्चन्द्रो वा राहुणा ग्रस्यते तद्ग्रहणगतम्। अथोल्कया हतमुल्कानिपीडितम्। नियतं सर्वकालमुषाकरेण चन्द्रेण यत्पीडितम्। यस्य नक्षत्रस्य चन्द्रमा योगताराकाभेदेन आच्छादनं मध्यगमनं दक्षिणभागगमनं वा करोति तदुषाकरपीडितम्।

तदुपहतमिति प्रचक्षत इति। एवंविधं यन्नक्षत्रं तदुपहतमिति प्रचक्षते कथयन्ति मुनयः। अथवा प्रकृतेः स्वभावाद्विपर्ययं विपरीतं यातं प्राप्तं तदप्युपहतम्। एवंविधं नक्षत्रं निगदितस्य कथितस्य परिवर्गस्य प्रागुक्तस्य दूषणं दुष्टतां विनाशं करोति। कथित-विपर्ययगं समृद्धये। रविरविसुतमागतमित्यादि यदुक्तं तद्विपरीतगं यन्नक्षत्रं तत्कथितस्योक्तस्य परिवर्गस्य समृद्धये भवति पुष्णातीत्यर्थः। तथा च कश्यपः—

शनैश्चरस्य सूर्यस्य यदृक्षं भोगमागतम्।
धरित्रीतनयेनापि भिन्नं वक्रप्रदूषितम्।।
राहुग्रस्तमथोल्काभिर्हतमुत्पातदूषितम्।
चन्द्रेण पीडितं यच्च प्रकृतेरन्यथास्थितम्।।
तच्चोपहतकं विन्द्यान्नक्षत्रं हन्ति सर्वदा।
स्ववर्गमन्यथा नित्यं पुष्णाति निरुपद्रवम्।। इति।।३१-३२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नक्षत्र-व्यूहो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

अथ ग्रहभक्तियोगाध्यायः

अथ ग्रहभक्तियोगो व्याख्यायते। कस्मिन् देशे केषां जनानां को ग्रहाऽधिपतिरित्येतद्यत्र निरूप्यते। तत्रादावेवाऽऽदित्यस्याह—

प्राङ् नर्मदार्द्धशोणोड्रवङ्गसुह्माः कलिङ्गबाह्लीकाः ।
शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥१॥

मेकलकिरातविटका बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च ।
द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥२॥

चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिङ्गाश्च ।
पुण्ड्रा गोलाङ्गूलश्रीपर्वतवर्द्धमानानि ॥३॥

इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम् ।
तुषधान्यकटुकतरुकनकदहनविषसमरशूराणाम् ॥४॥

भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम् ।
व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥५॥

नर्मदा नदी के पूर्वभाग, शोण नद, उड्र, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग, बाल्हीक, शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्यौतिष, चीन, कम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वत के बाहर और मध्य में रहने वाले, पुलिन्द जन, द्रविड का पूर्वार्ध, यमुना के दक्षिण तट, विन्ध्याचल के मध्य भाग, कलिङ्ग देश में स्थित जन, पुण्ड्र, गोलांगूल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान, इक्षुवती नदी, तस्कर, पारतदेशवासी, वन, गौ का पालन करने वाले, बीज, भूसी वाले धान्य, कटुक द्रव्य, वृक्ष, सुवर्ण, अग्नि, विष, युद्ध में शूर, ओषधी, वैद्य, चतुष्पद पशु, किसान, राजा, क्रूर, संग्राम में जीतने की इच्छा रखने वाले, चोर, सर्प, निर्जन स्थान, यशस्वी, तीक्ष्ण (निम्ब आदि या जन)—इन सबों के स्वामी सूर्य हैं।।१-५।।

नर्मदानाम्नी नदी तस्याः प्रागर्द्धः पूर्वभागः। शोणो नदः। उड्रा जनाः। वङ्गाः। सुह्माः। कलिङ्गाः। वाह्लीकाः। शकाः। यवनाः। मगधाः। शबराः। प्राग्ज्योतिषाः। चीनाः। काम्बोजाः।

मेकलाः। किराताः। विटकाः। बहिरन्तःशैलजाः। शैलाः पर्वतास्तत्र ये बहिः बाह्यभागे जाताः समवस्थिताः, अन्तः पर्वतमध्ये ये जाताः। पुलिन्दा जनाः। चशब्दः सर्वत्र समुच्चये। तथा द्रविडानां जनानां प्रागर्द्धं पूर्वार्द्धम्। यमुना कालिन्दी नदी तस्या दक्षिणकूलम्।

चम्पो देशः। उदुम्बरः। कौशाम्बी नगरी। चेदयो जनाः। विन्ध्याटवी विन्ध्यमध्यम्।

कलिङ्गाः। पुण्ड्रा जनाः। गोलाङ्गूलाः। श्रीपर्वतः। वर्द्धमानम्।

इक्षुमतीनाम्नी नदी। इतिशब्दः प्रकारे। अथानन्तरम्। तस्करो देशो जना वा। पारता जनाः। कान्तारमटवी। गोपा गोपालकाः। बीजानि प्रसिद्धानि। तुषधान्यं शालयः। कटुकं द्रव्यं मरिचादि। तरवो वृक्षाः। कनकं सुवर्णम्। दहनोऽग्निः। विषं महौषधम्। समरशूराः संग्रामवीराः।

भेषजमौषधम्। भिषजो वैद्याः। चतुष्पादाः पशवः। कृषिकराः कार्षकाः। नृपा राजानः। हिंस्राः पापाः। यायिनो विजिगमिषवः। चौरास्तस्कराः। व्यालाः सर्पाः। अरण्यं निर्जनो देशः। यशोयुता यशस्विनः। तीक्ष्णं निम्बादि, तीक्ष्णा वा जनाः। एषां सर्वेषां भास्कर आदित्यः स्वामी प्रभुरिति। तथा च काश्यपः—

प्रागर्द्धं नर्मदायाश्च शोणः शबरमागधाः।
उड्रा वङ्गा कलिङ्गाश्च बाह्लीका यवनाः शकाः।।
काम्बोजा मेकलाः सुह्माः प्राग्ज्योतिषकिरातकाः।
चीनाः सर्वे सुशैलेयाः पार्वता बहिरन्तजाः।
यमुनाया याम्यकूलं कौशाम्ब्यौदुम्बराणि च।
विन्ध्याटवी च पुण्ड्राश्च वर्द्धमानाश्च पर्वताः।।
श्रीपर्वतश्चेदिपुरं गोलाङ्गूलं तथैव च।
इक्षुमत्याश्रिता ये च जनाः शूराः मदोत्कटाः।।
कान्तारमथ गोपाश्च कन्दरास्तस्करास्तथा।
समरे विषमाः शूरास्तरवः कटुका अपि।।
चतुष्पदा भेषजं च धान्यं वा भिषजस्तथा।
अरण्यवासिव्यालाश्च कार्षका बालकास्तथा।।
गौरपत्यं च किञ्जल्कं पुंसंज्ञा ये च जन्तवः।
सर्वेषां भास्करः स्वामी तेजस्तेजस्विनामपि।। इति।।१-५।।

अथ चन्द्रस्याह—

गिरिसलिलदुर्गकोशलभरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः।
वनवासितङ्गणहलस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः ।।६।।

मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानाम्।
शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम् ।।७।।

सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम्।
शृङ्गिनिशाचरकार्षकयज्ञविदां चाधिपश्चन्द्रः ।।८।।

पर्वतदुर्ग, जलदुर्ग, कोशल देशवासी मनुष्य, भरुकच्छ, समुद्र, रोमक, तुषार, वनवासी तङ्गण, हल, स्त्रीराज्य, महासागर के अन्तर्गत द्वीप, मधुर रस, सभी पुष्प और फल, जल,

नमक, मणि, शङ्ख, मोती, जल से उत्पन्न होने वाली वस्तु (कमल आदि), धान्य, यव, ओषधी, गेहूँ, सोमरस पीने वाले मनुष्य, आक्रन्द (पार्श्व रक्षकों के अन्तर्गत राज), ब्राह्मण, श्वेत वर्ण की सभी वस्तुयें, सभी जनों का प्रिय, अश्व, कामी, स्त्री, सेनापति, भोजनसामग्री, वस्त्र, शृङ्गी पशु, निशाचर, किसान, याज्ञिक—इन सबों के स्वामी चन्द्र हैं।।६-८।।

गिरिदुर्गं पर्वतदुर्गम्। सलिलदुर्गं जलदुर्गम्। कोशला जनाः। भरुकच्छाः। समुद्राः सागराः। रोमकाः। तुषाराः। वनवासिनः। तङ्गणाः। हलाः। स्त्रीराज्यम्। महार्णवद्वीपा वडवामुखद्वीपाः।

मधुररसं यत्किञ्चित् कुसुमानि फलानि सर्वाणि। सलिलं जलम्। लवणं सैन्धवम्। मणयः। शङ्खाः। मौक्तिकम्। अब्जाः सलिलसम्भवाः पद्मप्रभृतयः। शालयो धान्यानि। यवाः। औषधयः। गोधूमाः। सोमपा याज्ञिकाः। आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहान्तरितो राजा। विप्रा ब्राह्मणाः।

सितं श्वेतवर्णं यत्किञ्चित् रूप्यं वा। सुभगाः सर्वजनप्रियाः। तुरगा अश्वाः। रतिकराः कामिनः। युवतयः स्त्रियः। चमूनाथाः सेनापतयः। भोज्यं प्रसिद्धम्। वस्त्राण्यम्बराणि। शृङ्गिणः प्रसिद्धाः प्राणिनः। निशाचरा रात्रिचराः। कार्षकाः कृषिकाराः। यज्ञविदो यज्ञसूत्रज्ञाः। एतेषां चाधिपश्चन्द्रः शशी। तथा च काश्यपः—

पर्वता जलदुर्गाश्च कोशलास्तङ्गणा हलाः।
स्त्रीराज्यं भरुकच्छश्च तुषारा वनवासिनः।।
मौक्तिकं मणिशङ्खाब्जमौषधं कुसुमं फलम्।
द्वीपा महार्णवे ये च मधुरा लवणादयः।।
गोधूमाः शालयः शृङ्गिकार्षकाश्च यवा अपि।
सोमपा ब्राह्मणा ये च यज्ञज्ञास्तु सुरासवम्।।
स्त्रीसौभाग्यसमेताश्च लास्यहास्येक्षितानि च।
निशाचराधिपश्चन्द्रो हृष्टानां च प्रकीर्तितः।। इति।।६-८।।

अथ भौमस्याह—

शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः ।
निर्विन्ध्या वेत्रवती सिप्रा गोदावरी वेणा ।।९।।

मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः ।
उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः ।।१०।।

द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापरकौङ्कणाः समन्त्रिषिकाः ।
कुन्तलकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसङ्करिणः ।।११।।

(नासिक्यभोगवर्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः ।
ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतीसलिलम् ॥)

नागरकृषिकरपारतहुताशनाजीविशस्त्रवार्तानाम् ।
आटविकदुर्गकर्वटवधिकनृशंसावलिप्तानाम् ॥१२॥

नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम् ।
रक्तफलकुसुमविद्रुमचमूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥१३॥

कोशभवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम् ।
शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः ॥१४॥

शोण, नद, नर्मदा नदी और भीमरथा नदी के पश्चिम भाग में स्थित देश, निर्विन्ध्या, वेत्रवती, सिप्रा, गोदावरी, वेणा, गंगा, पयोष्णी, सिन्धु, मालती और पारा नदी, उत्तर पाण्ड्य, महेन्द्र पर्वत, विन्ध्याचल और मलयगिरि के समीपगत देश, चोल, द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापर, कौङ्कण, समन्त्रिषिक, कुन्तल, केरल, दण्डकारण्य, कान्तिपुर, म्लेच्छ, सङ्कर जाति, (नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचल के समीपस्थ देश, तापी और गोमती नदी के मधुर जल पीने वाले) नागर जन, किसान, पारत, अग्निहोत्री, सोनार, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, वनवासी, दुर्ग, कर्वटदेशवासी जन, वधिक, पापी, कामों में असंलग्न, राजा, बालक, हाथी, दाम्भिक, बालकों को मारने वाले, पशुपालक, रक्त फल, रक्त पुष्प, प्रवाल, सेनापति, गुड, मदिरा, तीक्ष्ण (निम्ब आदि), कोश, भवन, अग्निहोत्री, धातुओं की खान, शाक्य (रक्तपट), भिक्षु, चोर, शठ (परकार्य से विमुख), दृढ़द्वेष, अधिक भोजन—इन सबों का स्वामी मङ्गल है।।९-१४।।

शोणो नदः। नर्मदा नदी। भीमरथा च नद्येव। शोणस्य तथा नर्मदाया भीमरथायाश्च ये पश्चिमार्द्धस्था पश्चिमभागे समवस्थिता देशाः। तथा निर्विन्ध्या नदी। वेत्रवती। सिप्रा। गोदावरी। वेणा।

मन्दाकिनी गङ्गा। पयोष्णी महानदी। सिन्धुमालतीपारा एताः सर्वा एव नद्यः। उत्तरपाण्ड्या जनाः। महेन्द्राद्रिर्महेन्द्रपर्वत एव। विन्ध्यो मलयश्च। एतेषु ये उपगाः समीपस्थिता जनाः। तथा चोला जनाः।

द्रविडाः। विदेहाः। अन्ध्राः। अश्मकाः। भासापराः। कौङ्कणाः। समन्त्रिषिकाः। कुन्तलाः। केरलाः। दण्डकं दण्डकारण्यम्। कान्तिपुरम्। म्लेच्छाः। सङ्करिणः सङ्करजातयः।

नागरा जनाः। कृषिकराः कार्षकाः। पारताः। हुताशनाजीविनः सुवर्णकारप्रभृतयः। शस्त्रवार्ताः शस्त्रवृत्तयः। आटविका अटव्यां ये निवसन्ति। दुर्गः कोटः। कर्वटा जनाः। वधिका वधरताः। नृशंसाः पापाः। अवलिप्ताः कार्येष्वस्थिराः।

नरपतयो राजानः। कुमारा बालकाः। कुञ्जरा हस्तिनः। दाम्भिका दम्भरता मिथ्या-

ध्वजधर्मिण:। डिम्भाभिघात:। अशस्त्र: कलहो डिम्भस्तत्राभिघात:। अथवा डिम्भानां बालानां योऽभिघातं करोति। पशुप: पशुपाल:। रक्तं लोहितवर्णं यत्किञ्चित् फलम्। रक्तं च कुसुमम्। विद्रुमा: प्रवालका:। चमूप: सेनापति:। गुड इक्षुविकार:। मद्यं मदिरा। तीक्ष्णं निम्बादि।

कोशभवनं भाण्डगृहम्। अग्निहोत्रिका अग्निहोत्रसेविन:। धात्वाकरो धातूनां गैरिकादीनामाकर: स्थानं सुवर्णादीनां वा। शाक्यो रक्तपटिक:। भिक्षुर्यति:। चौरस्तस्कर:। शठ: परकार्यविमुख:। दीर्घवैरो दृढद्वेष:। बह्वाशी बहुभुक्। एतेषां सर्वेषां वसुधासुतोऽङ्गारकोऽधिपति: स्वामी। तथा च काश्यप:—

महेन्द्रविन्ध्यमलया: सिप्रा वेणा महानदी।
गोदावर्या नर्मदाया भीमाया: पश्चिमा दिश:।।
चेदिका: कौङ्कणा दुर्गा द्रविडा वेत्रवन्नदी।
मन्दाकिनी पयोष्णी च मालती सिन्धुपारका:।।
पाण्ड्याश्चोत्तदेशस्था विदेहान्ध्राश्मकास्तथा।
भासापरा: कुन्तलाश्च केरला दण्डकास्तथा।।
नागरा: पौरवाश्चैव कार्षका: शस्त्रवृत्तय:।
हुताशनाजीविनो ये कुञ्जरा: पशुपास्तथा।।
सांग्रामिका नृशंसाश्च सङ्कराश्चोपघातका:।
कुमारा भूमिजस्योक्ता दाम्भिकास्तस्करास्तथा।। इति।।९-१४।।

अथ बुधस्याह—

लोहित्य: सिन्धुनद: सरयूर्गाम्भीरिका रथाख्या च।
गङ्गाकौशिक्याद्या: सरितो वैदेहकाम्बोजा: ।।१५।।

मथुराया: पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्था:।
सौराष्ट्रसेतुजलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिण: ।।१६।।

उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविद:।
आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञा: ।।१७।।

चरपुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचाररता:।
दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन्त्रेन्द्रजालज्ञा: ।।१८।।

आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि।
व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ।।१९।।

लोहित्य और सिन्धु नद, सरयू, गाम्भीरिका, रथाख्या, गङ्गा, कौशिकी, विपाशा, सरस्वती और चन्द्रभागा नदी, मथुरा के पूर्वार्ध भाग, हिमालय पर्वत, गोमन्त पर्वत और

चित्रकूट पर्वत के प्रान्त में स्थित मनुष्य, सौराष्ट्र देश स्थित मनुष्य, सेतु (पुल) के आश्रय में रहने वाले, जलमार्ग के आश्रय में रहने वाले, पण्यवृत्ती, बिल में निवास करने वाले, पर्वत पर रहने वाले, वापी, कूप, तड़ाग आदि, यन्त्र को जानने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, मणि के लक्षण को जानने वाले, रंगरेज, सुगन्धि द्रव्य बनाने वाले, चित्रकार, वैयाकरण, ज्यौतिषी, आयुष्य (रसायन-वाजीकरण आदि को जानने वाले), शिल्पी, गुप्तचर, कुहक (प्रसेन आदि के दर्शन से जीवनयात्रा चलाने वाले), बालक, कवि, शठ (परोपकार से विमुख), चुगलखोर, अभिचार (वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण आदि को जानने वाले), दूत, नपुंसक, हँसी उड़ाने वाले, भूत-प्रेत के तन्त्र को जानने वाले, इन्द्रजाल को जानने वाले, रक्षक, नाचने वाले, घृत, तेल, स्नेह (तिल-अक्षोट आदि), बीज, तिक्त (निम्बादि), व्रती (ब्रह्मचारी आदि), रसायन को जानने वाले, वेसर (अश्वविशेष)—इन सबों का स्वामी बुध है।।१५-१९।।

लोहित्यो नदः। सिन्धुनदश्च। सरयूर्नदी गाम्भीरिका रथाख्या च। गङ्गा जाह्नवी। कौशिकी। आदिग्रहणाद्विपाशा सरस्वती चन्द्रभागा च ज्ञेया। एताः सरितो नद्यः। वैदेहा जनाः। काम्बोजा जनाः।

मथुरायाः पूर्वमर्द्धम्। हिमवान् पर्वतः। गोमन्तो गोमिनः पर्वतो वा। चित्रकूटश्च पर्वतः। एतेषु ये स्थिता जनाः। सौराष्ट्रा जनाः। सेत्वाश्रयिणः सेतुगामिनः। जलमार्गाश्रयिणो जलमार्गेण ये गच्छन्ति। पण्याश्रयिणः पण्यवृत्तयः। बिलाश्रयिणो बिलनिवासिनः। पर्वताश्रयिणः पर्वतवासिनः।

उदपानं वापीकूपतडागादि। यन्त्रविदो यन्त्रज्ञाः। गान्धर्वविदो गेयज्ञाः। लेख्यविदो लेख्यज्ञाः। मणिविदो मणिलक्षणज्ञाः। रागयुक्तिविदो रागो रञ्जनं तद्युक्तिज्ञाः। गन्धयुक्तिविदो गन्धयुक्तिज्ञाः। आलेख्यं चित्रकर्म तज्ज्ञाः। शब्दज्ञा वैयाकरणाः। गणितज्ञाः। एषां प्रसाधका निरताः। आयुषो हितमायुष्यं रसायनवाजीकरणादि तज्ज्ञाः। शिल्पज्ञास्तक्षकारलेखकलेपकरकुम्भकारायस्कारकर्मविदः।

चरपुरुषा गूढार्थवेदिनः। कुहकजीवकाः कुहकेनाद्भुतेन प्रसेनादिदर्शनेन ये जीवन्ति। शिशुर्बालः। कविः काव्यकर्ता। शठः परकार्यविमुखः। सूचकः पिशुनः। अभिचारो वश्योच्चाटनविद्वेषणमारणादिकस्तत्र ये रताः। दूता गमागमिनः। नपुंसकाः क्लीबाः। हास्यज्ञा उपहासकुशलाः। भूततन्त्रज्ञाः। इन्द्रजालज्ञाः।

आरक्षको रक्षाधिकृतः। नटाः प्रसिद्धाः। नर्तको नर्तनं शिल्पमस्य स नर्तकः। घृतमाज्यम्। तैलं प्रसिद्धम्। स्नेहस्तिलाक्षोटादि। बीजानि प्रसिद्धानि। तिक्तं निम्बादि। व्रतचारिणो ब्रह्मचारिप्रभृतयः। रसायनकुशला रसायनसाधने शक्ताः। वेसरा अश्वविशेषाः। एते सर्वे चन्द्रपुत्रस्य बुधस्य। तथा च काश्यपः—

चित्रकूटगिरी रम्यो हिमवान् कौशिकी तथा।
मथुरायाश्च पूर्वार्द्धं लोहित्यः सिन्धुरेव च।।

गाम्भीरिका च सरयू रथाख्या गण्डकी नदी।
गान्धर्वा लेखहाराश्च तथोदाराश्च कृत्रिमाः।।
वैदेहाः सर्वजलजाः काम्बोजाश्च सुराष्ट्रिकाः।
गन्धयुक्तिविदो ये च सौगन्धिपदलेपनाः।।
सुवर्णरजतं रत्नं मातङ्गतुरगादि यत्।
पौरा जनपदाः सौम्याः सोमपुत्रवशे स्थिताः।। इति।।१५-१९।।

अथ गुरोराह—

सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्द्धभरतसौवीराः ।
स्रुघ्नौदीच्यविपाशासरिच्छतद्रू रमठशाल्वाः ।।२०।।

त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारता वाटधानयौधेयाः ।
सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ।।२१।।

हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः ।
कारुण्यसत्यशौचव्रतविद्यादानधर्मयुताः ।।२२।।

पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः ।
मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च ।।२३।।

शैलेयकुष्ठमांसीतगररससैन्धवानि वल्लीजम् ।
मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य ।।२४।।

सिन्धु नद के पूर्व भाग, मथुरा के पश्चिमार्द्ध, भरत, सौवीर, स्रुघ्न, उत्तर दिशा में रहने वाले, विपाशा नदी, शतद्रू नदी, रमठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, अर्जुनायन और मत्स्य देशों के ग्राम और राष्ट्र का आधा भाग, हाथी, घोड़ा, पुरोहित, राजा, मन्त्री, मङ्गल कार्य (विवाह, उपनयन आदि) में सक्त, पौष्टिक कार्य में संलग्न, दयालु, सत्य भाषण करने वाले, शौचयुत (शुद्ध = दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), तपस्वी, विद्वान्, दानी, धर्मी, ग्राम में उत्पन्न होने वाले, वैयाकरण, अर्थ को जानने वाले, वेद को जानने वाले, अभिचारज्ञ, नीतिशास्त्र को जानने वाले, राजा के उपकरण (आयुध, सन्नाह आदि), छत्र, ध्वजा, चामर आदि, सुगन्ध द्रव्य, कुष्ठ, मांसी, तगर, रस (बोल), नमक, मूंग आदि, मधुर रस, मधूच्छिष्ट (सिक्थक = मोम), चोरक, सुगन्ध द्रव्य—इन सबों का स्वामी गुरु है।।२०-२४।।

सिन्धुनदस्य पूर्वभागः। मथुरायाः पश्चार्द्धम्। भरता जनाः। सौवीराः। स्रुघ्नो देशः। औदीच्या उत्तरदिङ्निवासिनो जनाः। विपाशा सरिन्नदी। शतद्रूः। रमठा जनाः। शाल्वाः।।

त्रैगर्ताः। पौरवाः। अम्बष्ठाः। पारताः। वाटधानाः। यौधेयाः। सारस्वताः। अर्जुनायनाः। मत्स्या जनास्तद्विषयाद् ग्रामराष्ट्रार्द्धम्।

हस्ती। अश्वस्तुरग:। पुरोहितो नृपाचार्य:। भूपो राजा। मन्त्री सचिव:। मङ्गलकार्येषु विवाहोपनयनादिषु पौष्टिकेषु य आसक्ता रता:। कारुण्ययुता अनुकम्पाशीला:। सत्ययुता: सत्यभाषिण:। शौचयुता: शौचरता: परधनादिष्वलुब्धा:। व्रतयुतास्तपस्विन:। विद्यायुता:। दानयुता:। धर्मयुता:।

पौरा: पुरे भवा:। महाधना ईश्वरा:। शब्दविदुषो वैयाकरणा:। अर्थविदुष: पण्डिता:। वेदविदुषो वेदज्ञा:। अभिचारज्ञा:। नीतिज्ञा नीतिशास्त्रविद:। मनुजेश्वरोपकरणं मनुजेश्वरो राजा तदुपकरणमायुधसन्नाहादि। छत्रमातपत्रम्। ध्वजो बहुपटविनिर्मितं चिह्नम्। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणात्तालवृन्तादिकम्।

शैलेयं सुगन्धद्रव्यम्। कुष्ठम्। मांसीतगरम्। रसं वोलम्। सैन्धवं लवणम्। वल्लीजं मुद्गादि। मधुरा ये च रसा:। मधूच्छिष्टं सिक्थकम्। चोरकं सुगन्धद्रव्यम्। एते सर्व एव जीवस्य गुरो:। तथा च काश्यप:—

त्रैगर्तसिन्धुसौवीरा: शतद्रूमथुरे अपि।
स्रुघ्नौदीच्यविपाशाश्च पारताम्बष्ठकास्तथा।।
राजा पुरोहितो मन्त्री माङ्गल्यं पौष्टिकं व्रतम्।
कारुण्यं कर्म सिद्धानां विद्याशौचतपस्विनाम्।।
मत्स्याश्च वाटधानाश्च यौधेयाश्चार्जुनायना:।
सारस्वताश्च रमठा हस्त्यश्वध्वजचामरा:।।
शब्दार्थविदुष: पौरा नीतिज्ञा: शीलसंयुता:।
मांसीतगरकुष्ठं च शैलेयं लवणं रसा:।।
मधुरस्वादवल्लीजं विप्राणां चाधिपो गुरु:। इति।।२०-२४।।

अथ शुक्रस्याह—

तक्षशिलमर्तिकावतबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतका: ।
प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णोशीनरा: शिबय: ।।२५।।

ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं चन्द्रभागसरितं च ।
रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ता: ।।२६।।

सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्या: ।
वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुज: ।।२७।।

उद्यानसलिलकामुकयश:सुखौदार्यरूपसम्पन्ना: ।
विद्वदमात्यवणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफला: ।।२८।।

कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकरोध्रपत्रचोचानि ।
जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगो: ।।२९।।

तक्षशिला नगरी, मार्तिकावत देश, बहुगिरि, गान्धार, पुष्कलावतक, प्रस्थल, मालव, कैकय, दाशार्ण, उशीनगर, शिवि, वितस्ता, ऐरावती और चन्द्रभागा नदी के जल पीने वाले, रथ, चान्दी, आकर (अर्थोत्पत्ति स्थान), हाथी, घोड़ा, महामात्र (हस्ती के अधिप), धनी, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, चन्दन, मणि (पद्मराग आदि), वज्र (हीरक), भूषण, अम्बुरुह (कमल आदि), शय्या, प्रधान, युवा, स्त्री, कामोपकरण (पुष्प, धूप, माला, चन्दन आदि), मृष्ट (शोधित) अन्न का भोजन करने वाले, मधुर भोजन करने वाले, उद्यान, जल, कामी, यशस्वी, सुखी, दाता, सुन्दर, विद्वान्, मन्त्री, क्रय-विक्रय से जीवनयात्रा चलाने वाले, कुम्भार, चित्राण्डज (नाना प्रकार के पक्षी), फलत्रय (एला, लवङ्ग, कक्कोल), कौशेयपट (नेत्रपट), कम्बल, पत्रौर्णिक (धौतकौशेय), रोध्र (एक प्रकार का सुगन्ध द्रव्य), पत्र (सुगन्ध पत्र), चोच (नारिकेल), जातीफल (जायफल), अगुरु, वचा (वच), पिप्पली (पीपल), चन्दन—इस सबों का स्वामी शुक्र है।।२५-२९।।

तक्षशिला नगरी। मार्तिकावतो देशः। बहुगिरिः। गान्धारा जनाः। पुष्कलावतको देशः। प्रस्थलाः। मालवाः। कैकयाः। दाशार्णाः। उशीनराः। शिबयः।

ये च पिबन्ति वितस्तां नदीम्। तथैरावतीं ये च पिबन्ति। चन्द्रभागसरितं चन्द्रभागां सरितं ये च पिबन्ति। रथा गन्त्र्यः। रजतं रूप्यम्। आकरमर्थोत्पत्तिस्थानम्। कुञ्जरा हस्तिनः। तुरगा अश्वाः। महामात्रा हस्त्यधिपतयः। धनयुक्ता ईश्वराः।

सुरभिः सुगन्धद्रव्यम्। कुसुमानि पुष्पाणि। अनुलेपनं समालम्भनम्। मणयः पद्मरागप्रभृतयः। वज्रं हीरकम्। विभूषणान्यलङ्करणानि। अम्बुरुहः पद्मादि। शय्या आस्तरणम्। वराः प्रधानाः। तरुणा यौवनोपेताः। युवतयः स्त्रियः। कामोपकरणं मदनोपयोग्यं यद्वस्तु पुष्पधूपमाल्यानुलेपनादि। मृष्टान्नभुजो ये नराः। तथा मधुरभुजः।

उद्यानमुपवनम्। सलिलं जलम्। कामुकाः कामिनः। यशःसम्पन्ना यशस्विनः। सुखसम्पन्नाः सुखिनः। औदार्यसम्पन्ना दातारः। रूपसम्पन्नाः सुरूपाः। विद्वांसः पाठकाः। अमात्या मन्त्रिणः। वणिग्जनाः क्रयविक्रयजीविनः। घटकृत् कुम्भकारः। चित्राण्डजा नानाप्रकाराः पक्षिणः। त्रिफलाः फलत्रयमेलालवङ्गकक्कोला इति।

कौशेयपट्टो लोके नेत्रपट्ट इति प्रसिद्धः। कम्बल और्णिकः। पत्रौर्णिकं धौतकौशेयम्। रोध्रं प्रसिद्धं सुगन्धद्रव्यम्। पत्रं सुगन्धपत्रम्। चोचं मलिनपत्रं नारिकेलं च। जातीफलं प्रसिद्धम्। अगुरु सुगन्धद्रव्यम्। वचा प्रसिद्धा। पिप्पल्यः कणाः। चन्दनं मलयजम्। एतद् भृगोः शुक्रस्य। तथा च काश्यपः—

चन्द्रभागां वितस्तां चैरावतीं च पिबन्ति ये।
पुष्करावतकैकेया गान्धारप्रस्थलास्तथा।।
दशार्णा मालवास्तक्षशिला मौक्तिकमेव च।
धनाढ्याः कुञ्जरा अश्वाः प्रस्थलं च विलेपनम्।।

सुरूपसुभगोद्यानकामुकाः कामचारिणः।
वेसरा मधुरा हृद्याः सलिलाशयजीविनः।।
तरुणा योषितः क्रीडाविदुषो जनगोष्ठिकाः।
चित्राण्डजाश्च कौशेयं पत्रौर्णं काशिकौशिकाः।।
पिप्पल्यश्चन्दनं जातीफलमामलकानि च।
गन्धपत्रस्य लोध्रस्य शुक्रश्चाधिपतिः स्मृतः।। इति।।२५-२९।।

अथ शनैश्चरस्याह—

आनर्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः ।
नष्टा यस्मिन् देशे सरस्वती पश्चिमो देशः ।।३०।।

कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीतटजाः ।
खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहतपुंस्त्वाः ।।३१।।

बान्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरूपवृद्धसौकरिकाः ।
गणपूज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः ।।३२।।

कटुतिक्तरसायनविधवयोषितो भुजगतस्करमहिष्यः ।
खरकरभचणकवातलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ।।३३।।

आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीर, शूद्र, रैवतक, सरस्वती नदी जहाँ पर अलक्षित हुई है—वह प्रदेश (पश्चिम प्रदेश), कुरुभूमि में उत्पन्न मनुष्य (स्थानेश्वर में निवास करने वाले), प्रभास क्षेत्र, विदिशा नगरी, वेदस्मृती नदी, मही नदी के तट में उत्पन्न मनुष्य, खल, मलिन, नीच, तेली, निर्बल, नपुंसक, बन्धन-स्थानस्थित, पक्षियों को मारने वाले, अशुचि में रत (अपवित्र), धीवर, कुरूप, वृद्ध, सूअर पालने वाले (डोम), सङ्घियों में प्रधान, नियम को नहीं पालन करने वाले, शबर, पुलिन्द (म्लेच्छ जाति), दरिद्र, कटु द्रव्य (मरीच आदि), तिक्त (निम्ब आदि), रसायन, विधवा स्त्री, सर्प, चोर, महिषी (भैंस), गदहा, ऊँट, चना, वातल (मटर-राजमाष आदि), धान्य—इन सबों का स्वामी शनि है।।३०-३३।।

आनर्ता जनाः। आर्बुदाः। पुष्कराः। सौराष्ट्राः। आभीराः। शूद्राः। रैवतकाः। यस्मिन् देशे सरस्वती नष्टा अदर्शनं गता। स पश्चिमो देशः।।

कुरुभूमिजा जनाः। स्थानेश्वरे ये निवसन्ति। प्रभासं स्थानम्। विदिशा नगरी। वेदस्मृती नदी। महीनदीतटे ये जाताः। खला दुर्जनाः। मलिना मलोपेताः। नीचा अधमकर्मकराः। तैलिकाः प्रसिद्धाः। विहीनसत्त्वा निःसत्त्वाः। उपहतपुंस्त्वा उपहतो नष्टः पुम्भावो येषां षण्ढप्राया इत्यर्थः।

बान्धना बन्धनपाला बन्धनस्थाश्च। शाकुनिकाः पक्षिघातकाः। अशुचिरताः। कैवर्ता

नाविका धीवराश्च। विरूपा दुराकृतयः। वृद्धाः स्थविराः। सौकरिकाः सूकरबन्धकाः। गणपूज्या गणप्रधानाः। स्खलितव्रताश्चलितनियमाः। शबरा जनाः। पुलिन्दाश्च। अर्थ-परिहीना दरिद्राः।

कटुद्रव्यं मरिचादि। तिक्तं निम्बादि। रसायनं प्रसिद्धम्। विधवयोषितो भर्तृहीनाः स्त्रियः। भुजगाः सर्पाः। तस्कराश्चौराः। महिष्यः प्रसिद्धाः। खराः गर्दभाः। करभा उष्ट्राः। चणकाः प्रसिद्धाः। वातला राजमाषप्रभृतयः। निष्पावाः शालयः। एते सर्व एव अर्कपुत्रस्य शनैश्चरस्य। तथा च काश्यपः—

अर्बुदो रैवतगिरिः सौराष्ट्राभीरकास्तथा।
सरस्वतीपश्चिमाशा प्रभासं कुरुजाङ्गलम्।।
आनर्तशूद्रा विदिशा खलतैलिकनीचकाः।
वेदस्मृती सौकरिकाः मलिनश्च महीतटम्।।
दुःशीलशाकुना हीनाः पशुबन्धनकास्तथा।
पाखण्डिनश्च वैतण्डा निर्ग्रन्थाः शबराः कृशाः।।
विरूपाः कटुतिक्तानि रसायनविषादिनः।
पुलिन्दास्तस्कराः सर्पा महिषोष्ट्रखराः शुनी।।
चणका वातला वल्लाः पुंस्त्वसत्त्वविवर्जिताः।
काकगृध्रशृगालानां वृकाणां च प्रभुः शनिः।। इति।।३०-३३।।

अथ राहोराह—

गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः।
गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गा ।।३४।।

कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च।
खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्त्ताश्रया नीचाः ।।३५।।

उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे।
धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चार्कशशिशत्रोः ।।३६।।

पर्वत के शिखर, कन्दरा (पर्वतीय निम्न स्थान) और दरी (गुहा) में रहने वाले, म्लेच्छ जाति, शूद्र, सियार को खाने वाले, शूलिक, वोक्काण, अश्वमुख, अङ्गहीग मनुष्य, कुल में कलङ्क लगाने वाले, क्रूर, कृतघ्न (उपकार को नहीं मानने वाले), चोर, मिथ्या व्यवहार करने वाले, शौचरहित, कृपण, गदहा, गुप्तचर, बाहुयुद्ध को जानने वाले, अति क्रोधी, गर्त में रहने वाले, नीच, उपहत (कुत्सित पुरुष), मिथ्याधर्मी, राक्षस, अधिक सोने वाले सभी जन्तु, धर्महीन, उड़द, तिल—इन सबों का स्वामी राहु है।।३४-३६।।

गिरिशिखरेषु पर्वतशृङ्गेषु। कन्दरेषु गिरिखातासु नीचस्थानेषु। दरीषु गुहासु च ये

विनिविष्टाः स्थिता म्लेच्छजातय एकवर्णाः। शूद्राः। गोमायुभक्षाः शृगालादाः। शूलिका जनाः। वोक्काणाः। अश्वमुखाः। विकलाङ्गा अङ्गहीनाः।

कुलपांसनाः कुलकलङ्ककारिणः। हिंस्राः क्रूराः। कृतघ्ना अनुपकारशीलाः। चौरास्तस्कराः। निःसत्याः सत्यरहिताः। निःशौचाः शौचरहिताः। निर्दाना: कदर्याः। खरा गर्दभाः। चराश्चरपुरुषाः। नियुद्धविदो बाहुयुद्धज्ञाः। तीव्ररोषा अतिक्रोधिनः। गर्ताश्रया गर्तस्थाः। नीचा अधमकर्मकराः।

उपहताः कुत्सिताः। दाम्भिका मिथ्याधर्मिणः। राक्षसा रक्षोजातयः। ये च निद्राबहुलाः सर्व एव जन्तवः। धर्मेण च सन्त्यक्ता रहिताः। तथा माषतिलाः। एते सर्वे अर्कशशिशत्रो राहोः। तथा च काश्यपः—

बुभुक्षितास्तीक्ष्णरोषा विभिन्नाः कुलपांसनाः।
नीचा म्लेच्छोत्सादकाश्च गर्तस्थाः पारदारिकाः।।
सत्यधर्मविहीनाश्च गिरिस्थाः कन्दराश्रिताः।
प्रतापसत्यहीनाश्च शृगालादा महाशनाः।।
तिलाश्च बाहुयुद्धज्ञा माषाश्चौराः खराश्चराः।
यज्ञान् हिंसन्ति ये नित्यं राहुस्तेषामधीश्वरः।। इति।।३४-३६।।

अथ केतोराह—

गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः ।
प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥३७॥

परदारविवादरताः पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः ।
मूर्खाधार्मिकविजिगीषवश्च केतोः समाख्याताः ॥३८॥

गिरिदुर्ग, पह्लव, श्वेत, हूण, चोल, आवगाण, मरुभूमि, चीन, गुहा में निवास करने वाले, धनी, महेच्छ (उदार), व्यवसायी, पराक्रमी, परस्त्रीगामी, विवादी, दूसरे का दोष सुनने के लिये उत्कण्ठित, मत्त (पागल), मूर्ख, अधार्मिक, जीतने की इच्छा रखने वाला—इन सबों का स्वामी केतु है।।३७-३८।।

गिरिदुर्गः पर्वतदुर्गः। पह्लवा जनाः। श्वेताः। हूणाः। चोलाः। आवगाणाः। मरुभूः। चीनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। धनिन ईश्वराः। महेच्छा विपुलाशाः। व्यवसायोपेता निपुणाः। पराक्रमोपेता बलिनः।

परदाररताः। विवादरताः। पररन्ध्रे कुतूहलो विस्मयो येषां ते पररन्ध्रकुतूहलाः। मदोत्सिक्ता मत्ताः। मूर्खा अज्ञाः। अधार्मिका धर्मरहिताः। विजिगीषवो विजेतुमिच्छवः। एते सर्व एव केतोः शिखिनः समाख्याता उक्ताः। तथा च काश्यपः—

प्राकाराभ्युच्छ्रिताः शृङ्गगिरिस्था विजिगीषवः।
प्रत्यन्तवासाभिरताः परच्छिद्रविशारदाः।।

नाविका धीवराश्च। विरूपा दुराकृतयः। वृद्धाः स्थविराः। सौकरिकाः सूकरबन्धकाः। गणपूज्या गणप्रधानाः। स्खलितव्रताश्चलितनियमाः। शबरा जनाः। पुलिन्दाश्च। अर्थ-परिहीना दरिद्राः।

कटुद्रव्यं मरिचादि। तिक्तं निम्बादि। रसायनं प्रसिद्धम्। विधवयोषितो भर्तृहीनाः स्त्रियः। भुजगाः सर्पाः। तस्कराश्चौराः। महिष्यः प्रसिद्धाः। खराः गर्दभाः। करभा उष्ट्राः। चणकाः प्रसिद्धाः। वातला राजमाषप्रभृतयः। निष्पावाः शालयः। एते सर्व एव अर्कपुत्रस्य शनैश्चरस्य। तथा च काश्यपः—

अर्बुदो रैवतगिरिः सौराष्ट्राभीरकास्तथा।
सरस्वतीपश्चिमाशा प्रभासं कुरुजाङ्गलम्।।
आनर्तशूद्रा विदिशा खलतैलिकनीचकाः।
वेदस्मृती सौकरिकाः मलिनश्च महीतटम्।।
दुःशीलशाकुना हीनाः पशुबन्धनकास्तथा।
पाखण्डिनश्च वैतण्डा निर्ग्रन्थाः शबराः कृशाः।।
विरूपाः कटुतिक्तानि रसायनविषादिनः।
पुलिन्दास्तस्कराः सर्पा महिषोष्ट्रखराः शुनी।।
चणका वातला वल्लाः पुंस्त्वसत्त्वविवर्जिताः।
काकगृध्रशृगालानां वृकाणां च प्रभुः शनिः।। इति।।३०-३३।।

अथ राहोराह—

गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयः शूद्राः।
गोमायुभक्षशूलिकवोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गा ।।३४।।

कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च।
खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्त्ताश्रया नीचाः ।।३५।।

उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे।
धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चार्कशशिशत्रोः ।।३६।।

पर्वत के शिखर, कन्दरा (पर्वतीय निम्न स्थान) और दरी (गुहा) में रहने वाले, म्लेच्छ जाति, शूद्र, सियार को खाने वाले, शूलिक, वोक्काण, अश्वमुख, अङ्गहीग मनुष्य, कुल में कलङ्क लगाने वाले, क्रूर, कृतघ्न (उपकार को नहीं मानने वाले), चोर, मिथ्या व्यवहार करने वाले, शौचरहित, कृपण, गदहा, गुप्तचर, बाहुयुद्ध को जानने वाले, अति क्रोधी, गर्त में रहने वाले, नीच, उपहत (कुत्सित पुरुष), मिथ्याधर्मी, राक्षस, अधिक सोने वाले सभी जन्तु, धर्महीन, उड़द, तिल—इन सबों का स्वामी राहु है।।३४-३६।।

गिरिशिखरेषु पर्वतशृङ्गेषु। कन्दरेषु गिरिखातासु नीचस्थानेषु। दरीषु गुहासु च ये

विनिविष्टाः स्थिता म्लेच्छजातय एकवर्णाः। शूद्राः। गोमायुभक्षाः शृगालादाः। शूलिका जनाः। वोक्काणाः। अश्वमुखाः। विकलाङ्गा अङ्गहीनाः।

कुलपांसनाः कुलकलङ्ककारिणः। हिंस्राः क्रूराः। कृतघ्ना अनुपकारशीलाः। चौरास्तस्कराः। निःसत्याः सत्यरहिताः। निःशौचाः शौचरहिताः। निर्दाना: कदर्याः। खरा गर्दभाः। चराश्चरपुरुषाः। नियुद्धविदो बाहुयुद्धज्ञाः। तीव्ररोषा अतिक्रोधिनः। गर्ताश्रया गर्तस्थाः। नीचा अधमकर्मकराः।

उपहताः कुत्सिताः। दाम्भिका मिथ्याधर्मिणः। राक्षसा रक्षोजातयः। ये च निद्राबहुलाः सर्व एव जन्तवः। धर्मेण च सन्त्यक्ता रहिताः। तथा माषतिलाः। एते सर्वे अर्कशशिशत्रो राहोः। तथा च काश्यपः—

बुभुक्षितास्तीक्ष्णरोषा विभिन्नाः कुलपांसनाः।
नीचा म्लेच्छोत्सादकाश्च गर्तस्थाः पारदारिकाः।।
सत्यधर्मविहीनाश्च गिरिस्थाः कन्दराश्रिताः।
प्रतापसत्यहीनाश्च शृगालादा महाशनाः।।
तिलाश्च बाहुयुद्धज्ञा माषाश्चौराः खराश्चराः।
यज्ञान् हिंसन्ति ये नित्यं राहुस्तेषामधीश्वरः।। इति।।३४-३६।।

अथ केतोराह—

गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः ।
प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ।।३७।।

परदारविवादरताः पररन्ध्रकुतूहला मदोत्सिक्ताः ।
मूर्खाधार्मिकविजिगीषवश्च केतोः समाख्याताः ।।३८।।

गिरिदुर्ग, पह्लव, श्वेत, हूण, चोल, आवगाण, मरुभूमि, चीन, गुहा में निवास करने वाले, धनी, महेच्छ (उदार), व्यवसायी, पराक्रमी, परस्त्रीगामी, विवादी, दूसरे का दोष सुनने के लिये उत्कण्ठित, मत्त (पागल), मूर्ख, अधार्मिक, जीतने की इच्छा रखने वाला—इन सबों का स्वामी केतु है।।३७-३८।।

गिरिदुर्गः पर्वतदुर्गः। पह्लवा जनाः। श्वेताः। हूणाः। चोलाः। आवगाणाः। मरुभूः। चीनाः। प्रत्यन्ता गह्वरवासिनः। धनिन ईश्वराः। महेच्छा विपुलाशाः। व्यवसायोपेता निपुणाः। पराक्रमोपेता बलिनः।

परदाररताः। विवादरताः। पररन्ध्रे कुतूहलो विस्मयो येषां ते पररन्ध्रकुतूहलाः। मदोत्सिक्ता मत्ताः। मूर्खा अज्ञाः। अधार्मिका धर्मरहिताः। विजिगीषवो विजेतुमिच्छवः। एते सर्व एव केतोः शिखिनः समाख्याता उक्ताः। तथा च काश्यपः—

प्राकाराभ्युच्छ्रिताः शृङ्गगिरिस्था विजिगीषवः।
प्रत्यन्तवासाभिरताः परच्छिद्रविशारदाः।।

मूर्खा विज्ञानहीनाश्च निर्मर्यादा नरास्तथा।
परदाररता नीचाः केतोरिति विनिर्दिशेत्।।

तथा च समाससंहितायाम्—

भानोरङ्गकलिङ्गवङ्गयमुनाः श्रीपर्वताः पारता
बाह्लीकोत्कटसुह्मशोणमगधाः प्राङ्नर्मदार्धांशकाः।
कौशाम्बी शबरान्ध्रपौण्ड्रयवना याम्याश्रिता मेकला-
श्चीनोदुम्बरवर्धमानविकटाश्चम्पेक्षुमत्याश्रिताः ।।

जलपर्वतदुर्गकोशला वनिताराज्यतुषारतङ्गणाः।
वनवासहलाः सरस्वती शीतांशोर्भरुकच्छरोमकाः।
क्षितिजस्य महानदी पयोष्णी वेणा वेत्रवती च मालती।
मलयद्रविडाश्मकान्ध्रचोला भीमार्धे त्वपरे च ये स्थिताश्च।।
पारेविन्ध्यं पश्चिमः शोणभागो गोदावर्याः कूलमद्रिर्महेन्द्रः।
सिप्रा सिन्धुर्भूमिजस्येति देशा वैदेहाख्याः कोङ्कणाः केरलाश्च।।
सौम्यस्य सौराष्ट्रिकभोजदेशा गङ्गाश्रिताश्चोत्तरकूलनद्यः।
विन्ध्यार्धमन्त्यं मथुरापुरस्तात् सुवास्तुसिन्ध्वद्रिगुहाश्रिताश्च।।
जीवस्य सारस्वतमत्स्यशाल्वाः प्राक्सिन्धुभागो मथुरापरार्धम्।
स्त्रुघ्नः शतद्रू रमठा विपाशा त्रैगर्तयौधेयकपारताश्च।।
देशा भृगोस्तक्षशिला वितस्ता गान्धारकाः कैकयमालवाश्च।
दाशार्णकौशीनरचन्द्रभागाश्चेद्याह्वसिप्रास्थलकालकाख्याः ।।
सरस्वती यत्र गता प्रणाशं वेदस्मृती मालवकाः सुराष्ट्राः।
पाश्चात्यदेशा विदिशा मही च सौरेः स्मृताः पुष्करमर्बुदश्च।।
राहोः कृतघ्नकुलपांसननीचशूद्रा वोक्काणशूलिकनियुद्धविदुग्रकोपाः।
गोमायुभक्षगिरिदुर्गनिवासिनश्च गर्भस्थहिंस्रपरदाररताः खलाश्च।।
शिखिनो वनसंस्थितावगाणा मरुभूपह्लवचोलहूणचीनाः।
व्यवसायपराक्रमोपपन्नाः परदारानुरता मदोत्कटाश्च।। इति।।३७-३८।।

अथैतेषां प्रयोजनमाह—

उदयसमये यः स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो
यदि च न हतो निर्घातोल्कारजोग्रहमर्दनैः।
स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः
स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥३९॥

उदय समय में निर्मल, विपुल, स्वभावस्थित, निर्घात, उल्का, धूलि तथा ग्रहयुद्ध से अहत, अपनी राशि में स्थित, उच्चगत या शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) से दृष्ट ग्रह जिनका स्वामी हो, उनके लिये शुभ करने वाला होता है।।३९।।

यो ग्रह उदयसमये क्षितिजात् प्रत्युद्गमकाले स्निग्धांशुर्निर्मलरश्मिर्दृश्यते। महान् विस्तीर्णबिम्बः। प्रकृतिस्थितः स्वभावस्थः। यदि वा निर्घातेन न हतो न चोल्कया न च रजसा न ग्रहयुद्धेन हतः। तथा यश्च स्वभवने स्वराशौ गतः प्राप्तः। स्वोच्चे आत्मीयोच्चराशौ च प्राप्तः। शुभग्रहैः सौम्यग्रहैः शशिबुधजीवशुक्राणामन्यतमेन वीक्षितो दृष्टः स ग्रहो येषां प्रभुः स्वामी परिकीर्तित उक्तस्तेषां शिवः श्रेयस्करो भवति।।३९।।

अन्यदप्याह—

अभिहितविपरीतलक्षणे क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः।
डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ॥४०॥

यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुतकृतं नियमादमात्यजं वा।
भवति जनपदस्य चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥४१॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रह-
भक्तियोगाध्यायः षोडशः ॥१६॥

जो ग्रह पूर्वोक्त शुभ लक्षणों से विपरीत लक्षण वाला हो, वह अपने परिग्रह वर्ग का शस्त्रयुद्ध और रोग से नाश करता है तथा राजाओं को दुःखी करता है। इस तरह के उत्पात होने पर यदि राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या निश्चित करके मन्त्री का भय न हो तो उनका तथा लोगों को अवृष्टि होने के कारण अपूर्व पुर, पर्वत और नदियों में गमन होता है। अर्थात् इस तरह के उत्पात होने पर राजा या लोगों को शत्रु, पुत्र या मन्त्री का भय अवश्य होता है। यदि किसी तरह इन आपत्तियों से मुक्ति हो जाय तो भी प्राप्त अवृष्टि के कारण अन्न, शाक, जल के लिये जहाँ पर कभी नहीं गया था, उन पुर, पर्वत और नदियों में जाना पड़ता है।।४०-४१।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहभक्तियोगाध्यायः षोडशः ॥१६॥

उदयसमये यः स्निग्धांशुरित्यनेन यल्लक्षणमभिहितमुक्तं तस्मिन् विपरीतलक्षणे दृष्टे तत्परिग्रहस्तस्य ग्रहस्य यः परिग्रह उक्तः स क्षयमुपगच्छति विनाशं प्राप्नोति। तथा जना लोका डमरगदभयातुराः। डमरः शस्त्रकलहः। गदो रोगः। भयं भीतिः। एतैरातुराः पीडिता भवन्ति। तथा नरपतयो राजानो दुःखिताश्च भवन्ति।

एवंविधे उत्पाते सति नृपाणां राज्ञां यदि रिपुकृतं भयं न भवति स्वसुतकृतमात्मीयपुत्रकृतं वा नियमान्निश्चयादमात्यजं मन्त्रिकृतं वा भयं न भवति। यतोऽस्मिन् ग्रहोत्पाते दृष्टे एत एवोपसर्गा नृपाणामाशङ्क्यन्ते। एषां मध्यादन्यतमो न भवति तदा जनपदस्य लोकस्यापि यथा तथा भयं न भवति। तदा अवृष्ट्या अवर्षणेन। पुरेषु नगरेषु। अद्रिषु पर्वतेषु। निम्न-

गासु नदीषु। अपूर्वं गमनं भवति। यत्र न कदाचिज्जनपदो गतस्तत्र गच्छति। एतदुक्तं भवति—अवृष्ट्या सर्वमुत्साद्यते। अतो हेतोरन्नशाकजलार्थी जनोऽपूर्वपुराद्रिनिम्नगामुपगच्छति यत्र न कदाचिदपि गत इति। तथा च गर्गः—

स्निग्धरश्मिविशालश्च प्रकृतिस्थश्च यो ग्रहः।
ग्रहयुद्धरजोधूमनिर्घातोल्काघनाहतः ।।
स यदा स्वोच्चराशिस्थो मित्रभे स्वगृहेऽपि वा।
स्थितः शुभग्रहैर्दृष्टः स पुष्णाति परिग्रहम्।।
स्वमन्यथा हन्ति वर्गं जननाशं करोति च।
नृपाणां भयदः प्रोक्तस्त्ववृष्टिभयकारकः।। इति।।४०-४१।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ ग्रहभक्तियोगोनाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अथ ग्रहयुद्धाध्यायः

अथ ग्रहयुद्धाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवोपोद्घातमाह—

युद्धं यथा यदा वा भविष्यमादिश्यते त्रिकालज्ञैः ।
तद्विज्ञानं करणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्ते ।।१।।

जिस समय जिस प्रकार से ताराग्रहों का युद्ध त्रिकालज्ञों ने कहा है, उसको सूर्यसिद्धान्त से लेकर मैंने करण (पञ्चसिद्धान्तिका) में कहा है।।१।।

यदा यस्मिन् काले यथा वा येन प्रकारेण वा ताराग्रहाणां युद्धं जयपराजयं त्रिकालज्ञैस्त्रिकालविद्भिरतीतवर्तमानानागतकालज्ञैर्भविष्यं भावि यदादिश्यते कथ्यते तद्विज्ञानं तस्य ग्रहयुद्धस्य विज्ञानं यथा ज्ञायते तथा मया करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां सूर्यसिद्धान्ते कृतमिति। केचित् सूर्यसिद्धान्तादिति पठन्ति। सूर्यसिद्धान्ताद् भगवद्रविप्रणीतात् सिद्धान्तादानीय कृतमिति।।१।।

अथ युद्धकारणमाह—

वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् ।
अतिदूराद् दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम् ।।२।।

आसन्नक्रमयोगाद् भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः ।
युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ।।३।।

आकाश में चलते हुये, ऊपर-ऊपर अपने-अपने मार्ग में स्थित, अत्यन्त दूर से देखने के कारण समान की तरह प्रतीत होने वाले ग्रहों के पराशर आदि मुनियों ने आसन्न-क्रम योग के भेद से भेद, उल्लेख, अंशुमर्दन, अपसव्य—ये चार प्रकार के ग्रहयुद्ध कहे हैं।

विशेष—अधःस्थित बिम्ब से ऊर्ध्वस्थित बिम्ब के आच्छादित होने से भेद, एक बिम्बपरिधि से दूसरे की बिम्बपरिधि का स्पर्श करे तो उल्लेख, आसन्नस्थित दोनों ग्रहों के परस्पर किरण का संयोग होने से अंशुमर्दन और ठीक दक्षिणोत्तर में स्थित होने से अपसव्य नामक ग्रहयुद्ध होता है।।२-३।।

ग्रहाणां भौमादीनां वियत्याकाशे चरतां गच्छतामुपर्युपर्युर्ध्वाधः स्थित्या आत्ममार्गे स्ववर्त्मनि प्रतिमण्डलवशेन संस्थितानां दृग्विषये दृष्टिगोचरे अतिदूरादत्यासन्ननिकृष्टत्वात् समतां तुल्यतामिव सम्प्रयातानां प्राप्तानाम्।

आसन्नक्रमयोगात्। आसन्नोऽतिनिकटः। क्रमोऽनुपरिपाटी। आसन्नक्रमाद्यो योगस्तस्माद्युद्धं भवति। तच्च युद्धं पराशराद्यैर्मुनिभिः पराशरगर्गकाश्यपवज्रादिभिश्चतुष्प्रकारं

चतुर्विधमुक्तं कथितम्। कैर्भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः। भेदेनोल्लेखेनांशुमर्दनेनापसव्येन। यत्र ग्रहद्वयमप्येकबिम्बमिव लक्ष्यते स भेदः। अधःस्थेनोर्ध्वस्थश्छाद्यत इति यावत्। यत्र ग्रहस्य ग्रहेण बिम्बपरिधिसंस्पर्शः क्रियते स उल्लेखः। अंशवो रश्मयस्तेषामंशूनां किरणानां परस्परं मर्दनम्। मृद् क्षोदे। भेदोल्लेखस्य व्यतिरेकेण आसन्नयोर्द्वयोर्ग्रहयोः परस्परं रश्मयः संयुक्ता विहन्यमाना इव लक्ष्यन्ते तदंशुमर्दनं कथ्यते। अपसव्यः प्रदक्षिण उच्यते समं कृत्वा दक्षिणोत्तरावस्थानमपसव्यमुच्यते। आचार्येण चन्द्रग्रहसमागमे अपसव्य-लक्षणं कृतम्—'शशिनि फलमुदक्स्थे यद् ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्' इति। एतदुक्तं भवति—ग्रहस्योत्तरदिक्स्थे शशिनि क्वचित्—

हस्तमात्रं भवेद्युद्धं बाहुमात्रं समागमः।
वितस्तिमात्रमुल्लेखो भेदश्चैव निरङ्गुलः।। इति।

नियतफलमपसव्ये दक्षिणदिक्स्थे तदेव फलं विपरीतम्। अमुमेवार्थमृषिपुत्र आह—

दक्षिणेनापसव्यं स्यादुत्तरेण प्रदक्षिणम्।
ग्रहाणां चन्द्रमा ज्ञेयो नक्षत्राणां तथैव च।।

ननु ग्रहाणां नक्षत्राणां च चन्द्रमाः प्रदक्षिणश्चापसव्यश्च पठितो न परस्परं ग्रहाणामपसव्यता प्रदक्षिणता च। अत्र वृद्धगर्ग आह—

ग्रहाणां विजये भङ्गे नक्षत्राणां च संश्रये।
कथं प्रदक्षिणं ज्ञेयमपसव्यं तथैव च।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा तूत्तरगः शशी।
तत्प्रदक्षिणमित्याहुर्भवेत् क्षेमसुवृष्टये।।
नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा दक्षिणतो व्रजेत्।
अपसव्यं तदैव स्यादवृष्टिभयलक्षणम्।।

सर्वेषां सामान्यमपसव्यलक्षणमपसव्ये वायं न भवति। अपसव्येऽर्थे यदेवापसव्यं तदेव सव्यमिति। भेदश्चोल्लेखश्चांशुमर्दनं चाऽसव्यं च भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यानि, तैश्च-तुर्भिर्गतिविशेषैर्ग्रहाणां चतुष्प्रकारमेव युद्धं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तं पराशरगर्गकाश्यपवज्र-वसिष्ठैरभिहितम्।

पराशराद्यैरित्यनेन मुनीनां वचनभेदं प्रदर्शयति। यथा ऋषिपुत्रादिभिर्ग्रहयुद्धपञ्चदश-प्रकारमुक्तम्।

पाराशरादीनामेव यन्मतं तच्चाऽऽचार्यस्यापि स्वसिद्धान्ते येन स्थानस्थानेष्वाह—गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतदिति। तथा च पराशरः—

भेदनमारोहणमुल्लेखनं रश्मिसंसर्गश्चेति ग्रहयुद्धं चतुर्विधमाचक्षते कुशलाः। तेषां पूर्वात् पूर्वो गरीयान्। तथा च गर्गः—

छादनं रोधनं चैव रश्मिमर्दस्तथैव च।
अपसव्यं ग्रहाणां च चतुर्धा युद्धमुच्यते।।

तथा च काश्यपः—

सर्वग्रहेभ्यः शीघ्रेन्दुस्ततस्तस्यैव चात्मजः।
भार्गवो रविभौमौ च जीवो मन्दः शनैश्चरः।।
शीघ्रगा मन्दगाश्चैते काले त्वेकर्क्षगामिनः।
ततो योगो भवेदेषां यतोऽशत्वैकमाश्रिताः।।
उपर्युपरिसंस्थास्ते दृश्यन्ते युगपत् स्थिताः।
भेदोल्लेखांशुमर्दाश्चापसव्यश्च तथापरः।।
चतुष्प्रकारः संयोगो युद्धे तु दिविचारिणाम्।। इति।

एवमन्योन्यापेक्षयाऽपसव्यमुच्यते।।२-३।।

अथ चतुष्प्रकारस्य युद्धस्य प्रत्येकं फलमाह—

भेदे वृष्टिविनाशो भेदः सुहृदां महाकुलानां च।
उल्लेखे शस्त्रभयं मन्त्रिविरोधः प्रियान्नत्वम्।।४।।

अंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः।
युद्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति युद्धानि भूपानाम्।।५।।

यदि भेदयुद्ध हो तो वर्षा का नाश तथा मित्र और उत्तम कुलोत्पन्न मनुष्यों में परस्पर भेद होता है। उल्लेखयुद्ध हो तो शस्त्रभय, मन्त्रियों में विरोध और दुर्भिक्ष होता है। अंशुविरोधयुद्ध हो तो राजाओं में परस्पर युद्ध, शस्त्र, रोग और क्षुधाओं से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है तथा अपसव्ययुद्ध (कोई ग्रह किसी ग्रह के दक्षिण पार्श्व से आगे होकर वाम पार्श्वगत हो तो) राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।।४-५।।

भेदसंज्ञिते युद्धे वृष्टिविनाशोऽवर्षणं भवति। सुहृदां मित्राणां महाकुलानां च प्रधानानां परस्परं भेदो भवति। उल्लेखे उल्लेखसंज्ञिते युद्धे शस्त्रभयं शस्त्राद्भयम्। मन्त्रिविरोधः सचिवविग्रहः। प्रियान्नत्वं दुर्भिक्षभयमित्यर्थः।

अंशुविरोधसंज्ञिते युद्धे भूभृतां राज्ञां युद्धानि भवन्ति। तथा शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः। अवमर्दशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। शस्त्रेण रुग्भिश्च क्षुधा चावमर्दा भवन्ति। एतैर्जना उपताप्यन्ते। अवमर्दोऽतीव पीडा इत्यर्थः। **युद्धे चापसव्य इति**। न केवलमंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां भवन्ति यावदपसव्ये च ग्रहयुद्धे भूपानां युद्धान्येव भवन्ति। नन्वपसव्यसंज्ञितं युद्धं तदतिरिच्यते यस्माद्भेदोल्लेखयोर्यदन्यत्तदंशुमर्दनं भेदोल्लेखांशुमर्दनान्येव त्रयो गतिविशेषा अवगम्यन्ते। तस्मात् त्रय एव युद्धभेदा वक्तव्या इति। अत्रोच्यते—ग्रहाद् ग्रहस्य दक्षिणदिक्स्थितता परुषता कम्पनं विवर्णता विकृतता अधिरूढता सूक्ष्मता प्रतिनिवर्तनमिति पराभवलिङ्गानि। उत्तरदिक्स्थितता स्निग्धता वैपुल्यादीनि जयलिङ्गानि। दक्षिणदिक्स्थितोऽपि यदा वैपुल्यस्निग्धतादिभिर्विजयलिङ्गैर्युक्तो भवति स जेता कल्प्यते। यदा दक्षिणदिक्स्थो जेता भवति तदा किमुत्तरदिक्स्थिते ग्रहे जेतरि यत्फलम् 'शुक्रे बृहस्पतिजिते

यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति' इत्येवमादिकं तदेव फलमुत चन्द्रग्रहसमागमोक्तेन 'शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्'। यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तदित्यनेन न्यायेन फलं वैपरीत्येन कल्प्यत इत्याचार्याऽऽर्यभटोपनिबद्धापसव्यसंस्थाने च ग्रहयुद्धस्यापसव्यसंज्ञितस्य फलं कल्प्यत इति। आचार्याऽऽर्यभटश्च प्राग्दक्षिणपरोत्तरानुक्रमेण द्रष्टुर्ग्रहाणां परिभ्रमो यस्तमपसव्यमाह—

देवाः पश्यन्ति भगोलार्द्धमुदङ्मेरुसंस्थिताः सव्यम्।
अपसव्यगं तथार्द्धं दक्षिणवडवामुखे प्रेताः।। इति।

एतैरनेकाकारैराचार्यणां दर्शनैर्मन्दधियां शिष्याणां खिलीभूतचित्तानां विकल्पिताविकल्पमाशङ्क्याऽऽचार्येणेदमपसव्यसंज्ञितं चतुर्थं युद्धभेदं कल्पयित्वा फलमुक्तं पराशरादिभिर्बहुभिरुक्तं न स्वमनीषया यथा यदेवोत्तरे स्थिते ग्रहे जेतरि फलं दक्षिणदिक्स्थेऽप्यपसव्यसंज्ञिते ग्रहे जेतरि तदेव फलम्। किमत्राप्येवं मन्यसे यथा सव्यापसव्यमाचार्येणानियमेनैवाभिहितम्। तथा चाह—

गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम्।
दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये।।

वामपार्श्वस्थे अरिभयं जयः सव्ये। लोके च वामपार्श्वं यत्तत्सव्यमुच्यते। तथा च भगवान् व्यास आह—

युध्यतः प्राङ्मुखस्यास्तु सुपर्णोऽयं ममाग्रतः।
सव्ये पार्श्वे च प्रद्युम्नस्तथा मे दक्षिणो भवान्।।

तथा च बादरायणः—

तत्रापि हरेर्नयनं दक्षिणमर्कः शशी सव्यम्।

'वामेऽरिभयं जयः सव्ये' इत्यस्यान्य एवार्थ उच्यते—क्षितिस्थानामन्यथा सव्याऽपसव्यं ग्रहर्क्षाणामन्यथा। प्राचीं दिशं गच्छतां यियासूनामुत्तरदिक्स्थः शकुनः प्राचीं दिशमासादयन् दक्षिणं पर्येति यः स प्रदक्षिण उच्यते। सव्यश्च प्रदक्षिणम्। सव्याऽपसव्ययोरभेद एवाऽऽचार्य आह—

ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः।
कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्।। इत्यादि।

आ[illegible]र्यभटेन सव्यापसव्यं भूगतानां सत्त्वानामुक्तमतः कस्माद् ग्रहर्क्षाणामुक्तमप्युच्यते। मेरुमूलनिवासीनि यानि सत्त्वानि तानि मिथुनान्तगमप्यर्कं क्षितिजलेखासन्नमेव पश्यन्ति तथैव वडवामुखनिवासीनि। अत्रोक्तमेवाऽऽचार्येण—

यन्मात्रं भूवृत्तात् क्षणद्वयेनोन्नतिं व्रजत्यर्कः।
तन्मात्रान्तरचारिणममराः पश्यन्ति नोर्ध्वमधः।।

तस्मात् क्षितिजलेखासन्नव्यवहारमेवाङ्गीकृत्याऽऽचार्याऽऽर्यभटेनोक्तम्।

सर्व एव शकुनादयो यातुर्वामपार्श्वादग्रत आगत्य दक्षिणपार्श्वेन क्रामन्ति यत्तत्प्रदक्षिणं सव्यं च। एतद्विपरीतं दक्षिणपार्श्वाद्वामपार्श्वगमनं यत्तदपसव्यमेष निश्चयः। 'वामेऽरिभयं जयः सव्ये' तदुक्तं प्रदक्षिणेन जयः। आचार्येणेदं प्रदर्शितमेव 'प्रदक्षिणं तु यात्रायां जयदं नेष्टमन्यथा' इति। वामेऽरिभयमिति सव्याद्यदन्यथा वामं विपरीतं ग्रहाणां सव्यापसव्यता। उत्तरदिक्स्थः प्रदक्षिणो दक्षिणदिक्स्थो जेता यदा तदा तदपसव्यमिति। नन्वनुक्तं कथमवगम्यते इदम्? अत्रोच्यते—उक्तमेवेदम्। यतोऽनुलोमेन प्रतिलोमेन वा गत्या भेदेन ग्रहाणां फलं प्रतिभेदान्न प्रदर्शितम्। तत्र एकमेव फलं तथा चानुलोमगः प्रतिलोमगो वा दक्षिणेनोत्तरेण वोल्लेखं करोति। तत्राप्येकमेव फलम्। तथांशुविमर्दस्याप्यनुलोमेन प्रतिलोमेनापि फल-स्याभेदः। एवं संस्थानत्रयं चैतद्यदंशुमर्दनस्य फलमपसव्यसंज्ञितस्य तदेव फलम्—

एतदुक्तं भवति—यस्य ग्रहस्योत्तरदिक्स्थस्य यत्फलमभिहितं तस्य ग्रहस्य दक्षिण-दिक्स्थस्यापसव्यसंज्ञितस्य जयसंयुक्तस्य तदेव फलम्। तस्मादपसव्यनिर्देशो यः स नातिरिच्यत इति।।४-५।।

अधुना ग्रहाणां यायिनागराक्रन्दसंज्ञा आह—

रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वेऽपरे स्थितो यायी।
पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दः ।।६।।

केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते हता घ्नन्ति।
आक्रन्दयायिपौरान् जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ।।७।।

सूर्य मध्याह्न समय में आक्रन्द, पूर्व में पौर और पश्चिम में यायी होता है। बुध, बृहस्पति और शनि सदा पौर, चन्द्र आक्रन्द तथा केतु, मंगल, राहु और शुक्र यायी संज्ञक हैं। ये ग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द, यायी और पौरों का नाश करते हैं; जैसे यदि आक्रन्दसंज्ञक ग्रह पीड़ित हों तो आक्रन्द (रक्षक आदि = 'आरावे रुदिते त्रातर्य्याक्रन्द' इत्यमरः) का, यायी-संज्ञक पीड़ित हो तो यायी (गमन करने वालों) का और पौरसंज्ञक ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासियों का नाश करता है तथा विजयी हों तो अपने वर्ग की विजय करते हैं।।६-७।।

रविः सूर्यो मध्ये मध्याह्नसमये आक्रन्दसंज्ञो भवति। यातुः पश्चात् स्थितः पार्ष्णिग्रा-हस्तस्य पश्चात् स्थित आक्रन्दः। पौरः स एव पूर्वे पूर्वाह्ने दिनस्य प्रथमत्रिभागे रविः पौरो नागरो भवति। अपरे अपराह्ने दिनस्य पश्चिमत्रिभागे यायी भवति। यायी यो यातव्य-स्याग्रतो याति। बुधगुरुरविजाः सौम्यजीवसौरा नित्यं सर्वकालं पौरा नागराः। शीतांशुश्चन्द्रः सर्वकालमाक्रन्दः।

केतुकुजराहुशुक्रा यायिनः। केतुः शिखी। कुजोऽङ्गारकः। राहुः सैंहिकेयः। शुक्रो भार्गवः। एते ग्रहा यायिनः। एत एव हता घ्नन्ति आक्रन्दयायिपौरान्। आक्रन्दयायिपौरा ग्रहा हताः पराजिता आक्रन्दयायिपौरान्नृपान् घ्नन्ति। एत एव जयिनः स्ववर्गस्यात्मीयवर्गस्य जयदा भवन्ति।।७।।

अत्रैव विशेषमाह—

पौरे पौरेण हते पौराः पौरान् नृपान् विनिघ्नन्ति।
एवं याय्याक्रन्दा नागरयायिग्रहाश्चैव ॥८॥

यदि पौर ग्रह से पौर ग्रह पीड़ित हो तो पुरवासी राजाओं से पुरवासी राजा का नाश होता है। इसी तरह यायी ग्रह से आक्रन्द ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से आक्रन्द मनुष्य का और आक्रन्द ग्रह से यायी पीड़ित हो तो आक्रन्द से यायी का नाश होता है तथा नागर ग्रह से यायी पीड़ित हो तो नागर मनुष्य से यायी का और यायी ग्रह से नागर ग्रह पीड़ित हो तो यायी मनुष्य से नागर मनुष्य का नाश होता है।।८।।

पौरेण नागरेण ग्रहेण पौरे ग्रहे हते विजिते सति पौरा नृपाः पौरान् नृपानेव विनिघ्नन्ति नाशयन्ति। एवमनेन प्रकारेण याय्याक्रन्दाः परस्परं विनिघ्नन्ति। नागरयायिग्रहाश्चैवमपि जिताः परस्परं विनिघ्नन्ति। तथा च पराशरः—

तेषां तज्जयाद्विजयो वधाद् वधोऽन्योन्यभेदाद्भेदः साम्यात् साम्यम्।।८।।

अथ जितलक्षणमाह—

दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः।
अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥९॥

दक्षिण दिशा में स्थित, रूक्ष, कम्पायमान, दूसरे ग्रह के पास में नहीं जाकर लौटने वाला, सूक्ष्म बिम्ब वाला, अन्य ग्रह से आक्रान्त, विकारयुत, किरणरहित, विवर्ण—इन लक्षणों से युत ग्रह पराजित होते हैं।।९।।

यो ग्रहो दक्षिणदिक्स्थो याम्याशास्थः। परुषो रूक्षो निःस्नेहः। वेपथुः सकम्पः। अन्यग्रहमप्राप्य सन्निवृत्तो निवर्तितः। विपरीतां गतिमापन्नः। अणुः सूक्ष्मः। अधिरूढोऽन्येनाऽऽक्रान्तः। विकृतो विकारं गतः। निष्प्रभो दीप्तिरहितः। विवर्णो विगतवर्णः। **स जित इति**। तथा च पराशरः—

'दशभिर्लक्षणैर्ग्रहं जितं विन्द्यात्। विवर्णः परुषः सूक्ष्मो याम्याशामार्गस्थोऽधिरूढो निष्प्रभो विकृतोऽभिहतोऽप्राप्य निवृत्तो वेपनश्च। अन्यथा विजयी'। तथा च गर्गः—

अरश्मिर्लोहितः श्यामः परुषः सूक्ष्म एव च।
अपसव्यगतो यश्च चक्रान्तःपतितस्तथा।।
च्युतः स्थानाद्भ्रतो यश्च प्रतिस्तब्धस्तथैव च।
निष्प्रभो विकृतश्चापि जवेनाभिहतश्च यः।।
अप्राप्य वा निवृत्तो यो वेपनः कृष्ण एव च।
लक्षणैः सप्तदशभिर्ग्रहं विन्द्यात् पराजितम्।।९।।

अथ जयिनो लक्षणमाह—

उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्देश्यः।
विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥१०॥

पूर्वोक्त लक्षण से विपरीत लक्षणयुत (उत्तर दिशा में स्थित, स्निग्ध, कम्पन से रहित, दूसरे ग्रह को प्राप्त करने वाला, ऊपर में स्थित और तेजस्वी) हो तथा दक्षिण में स्थित होने पर भी यदि विपुल, निर्मल, कान्तियुत बिम्ब वाला ग्रह हो तो विजयी होता है।

दक्षिणदिक्स्थः परुष इत्यादिना ग्रन्थेन यल्लक्षणमुक्तं तस्माद्विपरीतलक्षणसम्पन्नः। तद्यथोत्तरदिक्स्थः स्निग्धोऽवेपथुः सम्यक्प्राप्तो विपुल उपरिस्थितः। अविकृतस्तेजस्वी स जययुक्तः। तथा च गर्गः—

द्युतिमान् रश्मिसम्पन्नः प्रसन्नो रजतप्रभः।
बृहद्रूपधरश्चैव यः समेत्य ग्रहो भवेत्।।
प्रभावर्णाधिको यश्च ग्रहमावृत्य तिष्ठति।
तादृशं जयिनं विन्द्याद् ग्रहं ग्रहसमागमे।।

एवंविधो ग्रहो जयगतो विनिर्देश्यो वक्तव्यः। तथा यो विपुलो बृहद्बिम्बः। स्निग्धो निर्मलः। द्युतिमान् कान्तियुक्तः। स दक्षिणस्यां दिशि स्थितोऽपि जययुक्त इति। एतत् शुक्रस्य प्रायः सम्भवति। तथा च पुलिशाचार्यः—

सर्वे जयिन उदक्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयो शुक्रः।। इति।।१०।।

अन्यदप्याह—

द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः।
तत्रान्योन्यं प्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥११॥

यदि समागम-समय में दोनों ग्रह किरणयुक्त, विपुल या स्निग्ध हों तो दोनों ग्रहों के वर्गों में प्रीति और विपरीत हों तो अपने-अपने पक्षों का नाश करते हैं।।११।।

द्वावपि ग्रहौ मयूखयुक्तौ रश्मिजालेन महता संयुक्तौ। विपुलौ विस्तीर्णौ। स्निग्धौ निर्मलौ। यदि समागमे संयोगे भवतः। तत्र तस्मिन् समागमे। अन्योन्यं परस्परं प्रीतिस्थौ ग्रहौ येषामुक्तौ रविराक्रन्दो मध्य इत्यनेन तेषां प्रीतिर्मैत्री भवति। तावेव ग्रहौ विपरीतौ रश्मि-रहितौ। अल्पौ रूक्षौ। यदि समागमे भवतस्तदात्मीयपक्षघ्नौ स्वं-स्वं पक्षं हतः।।११।।

अत्रापि विशेषमाह—

युद्धं समागमे वा यद्यव्यक्तौ स्वलक्षणैर्भवतः।
भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं विनिर्देश्यम् ॥१२॥

युद्ध (भौम आदि ग्रहों का परस्पर युद्ध) और समागम (चन्द्र के साथ सम्मेलन) यदि अपने-अपने उक्त लक्षणों से अव्यक्त (अप्रकाशित) हो (जैसे युद्ध में कौन ग्रह

विजयी और कौन ग्रह पराजित है—इसका ज्ञान न होता हो) तथा समागम में ग्रह से चन्द्रमा न उत्तर न दक्षिण; किन्तु मध्य में होकर गमन करता हो, तो पृथ्वी पर राजाओं को भी अव्यक्त (सन्दिग्धात्मक) फल कहना चाहिये।।१२।।

युद्धं ताराग्रहाणां भौमादीनां परस्परम्। समागम एषामेव चन्द्रमसा सह। युद्धं समागमो वा यदि स्वलक्षणैर्युद्धसमागमोक्तैरव्यक्तावलक्ष्यौ भवतः। युद्धमात्रं जयपराजयरहितमित्यर्थः। यथा द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ विपरीतलक्षणस्थितौ वा तत्र न ज्ञायते को जितः कश्च जयी। समागमे ग्रहाणां चन्द्रे ग्रहादुत्तरगते दक्षिणदिग्गते वा यच्छुभाशुफलमुक्तं तत्र यद्यव्यक्तः समागमो भवति। एतदुक्तं भवति—ग्रहाच्चन्द्रो नोत्तरेण न च दक्षिणेन वा याति मध्येन गमनं करोति तदा तत्र भेदफलं वक्तव्यं न समागमोक्तं फलं तदव्यक्तं समागमस्य। तथा तेनैव प्रकारेण भूमौ भूभृतां राज्ञामव्यक्तमलक्षमेव फलं विनिर्देश्यं वक्तव्यम्। जये सत्यव्यक्तो जय आदेश्यः। पराजये पराजयः। एवं चन्द्रस्योत्तरगमनेन शुभं फलं वक्तव्यम्। दक्षिणेनाशुभं मध्येन मध्यफलमिति।।१२।।

अथ भौमस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्ताश्च।
शशिजेन शूरसेनाः कलिङ्गशाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥१३॥

सौरेणारे विजिते जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति।
कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापश्च शुक्रजिते ॥१४॥

यदि मङ्गल बृहस्पति से पराजित हो तो बाह्लीक देश में निवास करने वाले, विजय की इच्छा करने वाले, अग्नि से जीवनयात्रा चलाने वाले—ये सब पीड़ित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो सूरसेन, कलिङ्ग और शाल्व देश में रहने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि शनैश्चर से पराजित हो तो नगरों में निवास करने वाले विजयी और प्रजागण दुःखी होते हैं। यदि शुक्र से पराजित हो तो कोष्ठागार (अन्तर्गृह = 'पुंसि कोष्ठोऽन्तर्जठरं कुसूलोऽन्तर्गृहन्तथा' इत्यमरः), म्लेच्छ जाति और क्षत्रिय पीड़ित होते हैं।।१३-१४।।

अवनिसुतेऽङ्गारके गुरुणा बृहस्पतिना जिते पराजिते पराभूते बाह्लीका जनाः। यायिनो जिगमिषवः। अग्निवार्ताः सुवर्णकारप्रभृतयः। एते पीड्यन्ते उपताप्यन्ते। शशिजेन बुधेन जिते भौमे शूरसेना जनाः। कलिङ्गाः शाल्वाश्च पीड्यन्ते।

सौरेण शनैश्चरेणाऽऽरेऽङ्गारके विजिते पौरा नागरा जयन्ति विजयं प्राप्नुवन्ति। प्रजाश्च सीदन्त्यवसादयन्ति। शुक्रजिते भौमे कोष्ठागाराणामवलम्बग्रामाणां म्लेच्छानां क्षत्रियाणां च तापः सन्तापो भवति। पीडा भवतीत्यर्थः।।१३-१४।।

अथ बुधस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः।
उत्तरदिक्स्थाः क्रतुदीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति ॥१५॥

गुरुणा जिते बुधे म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः ।
त्रैगर्तपार्वतीयाः पीड्यन्ते कम्पते च मही ॥१६॥

रविजेन बुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जसधनगर्भिण्यः ।
भृगुणा जितेऽग्निकोपः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः ॥१७॥

यदि मङ्गल से बुध पराजित हो तो नदी, तपस्वी, अश्मक देश में निवास करने वाले, राजा, उत्तर दिशा में निवास करने वाले और यज्ञ में दीक्षित मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि बृहस्पति से पराजित हो तो म्लेच्छ जाति, शूद्र जाति, चोर, धनी, पुरों में रहने वाले, त्रिगर्त देश में रहने वाले और पर्वत पर निवास करने वाले पीड़ित होते हैं तथा भूकम्प होता है। यदि शनैश्चर से पीड़ित हो तो नाव चलाने वाले, योध (शत्रु वृत्ति वाले), जल से उत्पन्न वस्तु, धनी और गर्भिणी स्त्री पीड़ित होती है। यदि शुक्र से पराजित बुध हो तो अग्नि का प्रकोप, धान्य, मेघ और गमन करने वाले राजाओं का नाश होता है।।१५-१७।।

शशिजे बुधे भौमेनाङ्गारकेण हते वृक्षास्तरवः। सरितो नद्यः। तापसास्तपस्विनः। अश्मका जनाः। नरेन्द्रा राजानः। उत्तरदिक्स्थाः सौम्याशानिवासिनो जनाः। क्रतुदीक्षिताः सम्यग्यज्ञयाजिनः। एते एर्व एव सन्तापं पीडामायान्ति प्राप्नुवन्ति।

गुरुणा बृहस्पतिना जिते पराजिते बुधे म्लेच्छा जनाः। शूद्राः शूद्रजातयः। चौरास्तस्कराः। अर्थयुक्ताः सधनाः। पौरजनाः पुरवासिनः। त्रैगर्ता जनाः। पार्वतीयाः पर्वतवासिनः। एते सर्व एव पीड्यन्ते उपताप्यन्ते। मही भूश्च कम्पते चलति।

रविजेन शनैश्चरेण बुधे ध्वस्ते विजिते नाविकाः कैवर्ताः। योधाः शत्रुवृत्तयः। अब्जाः जलजाः। सधना ईश्वराः। गर्भिण्यः सगर्भाः स्त्रियः। एते सर्व एव पीड्यन्ते। भृगुणा शुक्रेण विजिते बुधे। अग्निकोपो वह्निप्रकोपः। सस्यानां धान्यादीनामम्बुदानां च मेघानां यायिनां यियासूनां च विध्वंसो विनाशो भवति।।१५-१७।।

अथ जीवस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया मद्राः ।
शाल्वा वत्सा वङ्गा गावः सस्यानि पीड्यन्ते ॥१८॥

भौमेन हते जीवे मध्यो देशो नरेश्वरा गावः ।
सौरेण चार्जुनायनवसातियौधेयशिबिविप्राः ॥१९॥

शशितनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यशस्त्रभृतः ।
उपयान्ति मध्यदेशश्च संक्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥२०॥

यदि शुक्र से बृहस्पति पराजित हो तो कुलूत, गान्धार, कैकय, मद्र, शाल्व, वत्स और वङ्ग देश में निवास करने वाले मनुष्य, गौ तथा धान्य पीड़ित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो मध्य देश, राजा और गौ पीड़ित होती है। शनि से पराजित हो तो

अर्जुनायन, वस, यौधेय, शिबि—इन देशों में निवास करने वाले और ब्राह्मण पीड़ित होते हैं। यदि बुध से पराजित हो तो म्लेच्छ जन, सत्य भाषण करने वाले, शस्त्र धारण करने वाले और मध्य देश का नाश होता है तथा गुरुभक्ति के फल (ग्रहभक्तियोगाध्यायोक्त गुरुभक्तिफल) का भी नाश होता है।।१८-२०।।

जीवे बृहस्पतौ शुक्राभिहते कुलूता जनाः। गान्धराः। कैकयाः। मद्राः। शाल्वाः। वत्साः। वङ्गा। गावो धेनवः। सस्यानि धान्यादीनि पीड्यन्ते।

भौमेनाङ्गारकेण हते जीवे मध्यो देशः। तथा नरेश्वरा राजानः। गावो धेनवश्च पीड्यन्ते। सौरेण शनैश्चरेण हते जीवे अर्जुनायना जनाः। वसातयः। यौधेयाः। शिबयः। विप्रा ब्राह्मणाः। एते सर्व एव पीड्यन्ते।

शशितनयेन बुधेन जिते बृहस्पतौ गुरौ। अपिशब्दः स्वार्थे। म्लेच्छा जनाः। सत्यभृतः सत्यवादिनः। शस्त्रभृतः शस्त्रवृत्तयः। मध्यदेशश्च। एते सर्वे संक्षयं विनाशमुपयान्ति। अन्यच्च गुरुभक्तिफलं यत्प्रागुक्तं तच्चापि संक्षयं याति।।१८-२०।।

अथ शुक्रस्य सर्वग्रहविजितस्य फलमाह—

शुक्रे बृहस्पतिजिते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति ।
ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति ।।२१।।

कोशलकलिङ्गवङ्गा वत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः ।
महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः शूरसेनाश्च ।।२२।।

कुजविजिते भृगुतनये बलमुख्यवधो नरेन्द्रसंग्रामाः ।
सौम्येन पार्वतीयाः क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च ।।२३।।

रविजेन सिते विजिते गुणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् ।
जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ।।२४।।

यदि बृहस्पति से शुक्र पराजित हो तो यायी (नायक) और प्रधान जनों का नाश, ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर विरोध, अवृष्टि, कोशल, कलिङ्ग, वङ्ग, वत्स, मत्स्य और मध्य देश में निवास करने वाले मनुष्य, नपुंसक तथा शूरसेन देश में स्थित मनुष्य पीड़ित होते हैं। यदि मङ्गल से पराजित हो तो सेनापति का मरण और राजाओं में परस्पर युद्ध होता है। यदि बुध से पराजित हो तो पर्वत पर निवास करने वालों का नाश, गौओं के दूध का नाश और थोड़ी वृष्टि होती है। यदि शनैश्चर से पराजित शुक्र हो तो सङ्घियों में प्रधान, शस्त्र से आजीविका चलाने वाले, क्षत्रिय वर्ग और जल में उत्पन्न वस्तु पीड़ित होती है। तथा सामान्य भक्तिफल और स्वभक्तिफल का भी नाश करता है।।२१-२४।।

बृहस्पतिजिते शुक्रे यायी नायकः। श्रेष्ठः प्रधानो विनाशं क्षयमुपयाति प्राप्नोति। तथा ब्रह्मक्षत्रविरोधः। ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां च विरोध उपद्रवः। वासव इन्द्रः सलिलं जलं न त्यजति। न वर्षतीत्यर्थः।

तथा कोशला जनाः। कलिङ्गाः। वङ्गाः। वत्साः। मत्स्याश्च। एत एव मध्यदेशयुता मध्यदेशेन समन्विता महतीं पीडां व्रजन्ति प्राप्नुवन्ति। नपुंसकाः क्लीबाः। शूरसेनाश्च जना महतीं पीडां व्रजन्ति।

भृगुतनये शुक्रे कुजविजिते भौमहते बलमुख्यः सेनापतिस्तस्य वधो मरणं भवति। नरेन्द्राणां राज्ञां संग्रामा युद्धानि भवन्ति। सौम्येन बुधेन जिते शुक्रे पार्वतीयाः पर्वतवासिनो नाशमायान्ति। गवां च क्षीरविनाशो भवति। अल्पा वृष्टिश्च भवत्येव।

रविजेन शनैश्चरेण सिते शुक्रे विजिते गणमुख्या गणप्रधानाः। शस्त्रजीविनः शस्त्रवृत्तयः। क्षत्रं क्षत्रियवर्गः। जलजा जलोद्भवाश्च। निपीड्यन्ते पीडामुपयान्ति। तद्विशेषफलम्। सामान्यं भक्तिफलमन्यत्। अन्यदपरं यत्स्वभक्तिफलमुक्तं तदपि हन्ति।।२१-२४।।

अथ सौरस्य ग्रहविजितस्य फलमाह—

असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा।
क्षितिजेन तङ्गणान्ध्रोड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥२५॥

सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः।
सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ॥२६॥

यदि शुक्र से पराजित शनि हो तो सभी द्रव्यों में मौल्य की वृद्धि, सर्प, पक्षी और मानियों को पीड़ा होती है। यदि मङ्गल से पराजित हो तो तङ्गण, आन्ध्र, उड्र, काशी और बाह्लीक देश में निवास करने वालों को पीड़ा होती है। यदि बुध से पराजित हो तो अङ्ग देश में निवास करने वाले, क्रय-विक्रय से आजीविका चलाने वाले, पक्षी, पशु और हाथी पीड़ित होते हैं। यदि गुरु से पराजित शनि हो तो अधिक स्त्री वाला देश, महिषक देश में रहने वाले और शक देश में रहने वाले पीड़ित होते हैं।।२५-२६।।

असिते सौरे सितेन शुक्रेण निहते विजिते अर्घवृद्धिर्भवति सर्वद्रव्याणां सुलभत्वं भवति। अहीनां सर्पाणां विहगानां पक्षिणां मानिनां मानयुक्तानां जनानां च पीडा भवति। क्षितिजेनाङ्गारकेण सौरे विजिते सति तङ्गणा जनाः। अन्ध्राः। उड्राः। काशयः। बाह्लीकाः। एतेषां जनानां ये देशास्तेषां पीडा भवति।

सौम्येन बुधेन मन्दे शनैश्चरे पराभूते। अङ्गा जनाः। वणिजः क्रयविक्रयजीविनः। विहङ्गा पक्षिणः। पशवश्चतुष्पदाः। नागा हस्तिनः। एते सन्ताप्यन्ते पीड्यन्ते। तथा गुरुणा बृहपतिना जिते सौरे स्त्रीबहुला ये देशाः। महिषकशकाश्च जनाः। सन्ताप्यन्ते पीड्यन्ते।।२५-२६।।

अत्रैव विशेषमाह—

अयं विशेषोऽभिहितो हतानां
कुजज्ञवागीशसितासितानाम् ।

फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्य-
द्यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥२७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
ग्रहयुद्धाध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि के ये विशेष फल कहे गये हैं, अवशिष्ट फल ग्रह की भक्ति से कहना चाहिये। जिस तरह व्यक्त या अव्यक्त रूप से ग्रह पीड़ित होते हैं, उसी प्रकार व्यक्त या अव्यक्त रूप से अपनी भक्ति का भी नाश करते हैं।। २७।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहयुद्धाध्यायः सप्तदशः ॥१७॥

कुजोऽङ्गारकः। ज्ञो बुधः। वागीशो बृहस्पतिः। सितः शुक्रः। असितः शनैश्चरः। एषां हतानां जितानामयं विशेषोऽभिहित उक्तः। अन्यदपरं यत्फलं तद्ग्रहस्य भक्तितो वाच्यम्। यथा येन प्रकारेण व्यक्तेनाऽव्यक्तेन वा हता जितास्तथा तेनैव प्रकारेण व्यक्तम-व्यक्तं वा कृत्वा स्वभक्तीर्घ्नन्ति विनाशयन्तीत्यर्थः। तथा च पराशरः—

ग्रहस्य ये यस्य हताः स्वदेशाः पीडांशमृच्छन्ति त एव तस्य।
सम्प्राप्तवीर्यस्य जये समर्था भवन्ति तस्यर्द्धिचतुष्पदाढ्याः।। इति।।२८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
ग्रहयुद्धंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ शशिग्रहसमागमाध्यायः

अथ शशिग्रहसमागमाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव चन्द्रमसो गतिलक्षणमाह—

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
प्रदक्षिणं तच्छुभदं नृपाणां याम्येन यातो न शिवः शशाङ्कः ॥१॥

यदि नक्षत्र या ग्रहों के निकटवर्ती होकर चन्द्रमा प्रदक्षिण क्रम से उत्तर तरफ होकर गमन करे तो राजाओं का शुभ और दक्षिण तरफ होकर गमन करे तो अशुभ करने वाला होता है।

विशेष—यह समागम जिन नक्षत्रों का शर चन्द्रशर से अल्प या तुल्य है, उन्हीं का होता है। जैसे—कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, शतभिषा, रेवती—इन नक्षत्रों का शर चन्द्रशर से अल्प होने के कारण चन्द्र के साथ समागम होता है। जिन नक्षत्रों का उत्तरशर चन्द्रशर से अधिक है, उनके सदा दक्षिण तरफ होकर और जिनका दक्षिण शर चन्द्रशर से अधिक है, उनके सदा उत्तर होकर चन्द्र गमन करता है।।१।।

शशाङ्कश्चन्द्रः। भानां नक्षत्राणां यथासम्भवमुत्तरेण यातो गतः। यथासम्भवमिति निकटवर्तिनं प्रदर्शयति। येषां चन्द्रविक्षेपादूनो विक्षेपस्तत्तुल्यो वा तेषां प्रायेण सम्भवति। यथा कृत्तिकारोहिणीपुष्यमघाचित्राविशाखानुराधाज्येष्ठशतभिषग्रेवतीनां सम्भवति। अन्येषां कदाचित् सम्भवति दूरवर्तिनामुत्तरेण तस्य गमनं न सम्भवति। यथा स्वातिश्रवणधनिष्ठादिषु। स्वातेः सप्तत्रिंशद् भागा उत्तरो विक्षेपः। चन्द्रस्य सार्द्धाश्चत्वारस्तस्य सर्वकालं दक्षिणेन याति चन्द्रः। तेषां चन्द्रविक्षेपादधिक उत्तरतो विक्षेपस्तेषां सदैव दक्षिणेन याति। येषां चन्द्रविक्षेपादधिको दक्षिणो विक्षेपस्तेषां सदैवोत्तरेण याति चन्द्रः। एवं भौमादीनां यथा-सम्भवमपि योज्यम्। एवं येषां सम्भवति तेषां योज्यम्। ग्रहाणां भौमादीनां वोत्तरेण यातः प्रदक्षिणं कृत्वा। तच्च प्रदक्षिणगमनं नृपाणां राज्ञां शुभं श्रेयस्करम्। याम्येन दक्षिणेन शशाङ्को यातो न शिवो न शुभद इत्यर्थः। ग्रहाणामपि यथासम्भवं योज्यम्। तथा च ऋषिपुत्रः—

दक्षिणेनापसव्यं स्यादुत्तरेण प्रदक्षिणम्।
ग्रहाणां चन्द्रमा ज्ञेयो नक्षत्राणां तथैव च।।

तथा च वृद्धगर्गः—

नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा तूत्तरगः शशी।
तत्प्रदक्षिणमित्याहुर्भवेत् क्षेमसुवृष्टये।।

नक्षत्राणां ग्रहाणां वा यदा दक्षिणतो व्रजेत्।
अपसव्यं तदेव स्यादवृष्टिभयलक्षणम्।। इति।।१।।

अथाङ्गारकस्योत्तरगते चन्द्रे फलमाह—

चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक् पार्वतीयबलशालिनां जयः ।
क्षत्रियाः प्रमुदिताः सयायिनो भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा ।।२।।

यदि मङ्गल के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पर्वत पर निवास करने वाले और बलशालियों की विजय होती है, यायी मनुष्यों के साथ क्षत्रियगण प्रमुदित होते हैं तथा पृथ्वी अधिक धान्यों से युत होती है।।२।।

कुजस्याङ्गारकस्य चन्द्रमाः शशी यद्युदगुत्तरेण याति गच्छति तदा पार्वतीयानां पर्वतनिवासिनाम्। बलशालिनां बलेन ये शालन्ते श्लाघ्यन्ते तेषां च जयो भवति। तथा च सयायिनो यायिभिः सहिताः क्षत्रियाः प्रमुदिता हृष्टा भवन्ति। तथा च वसुन्धरा भूः। भूरिधान्येन बहुधान्येन मुदिता हृष्टा भवति।।२।।

अथ बुधस्याह—

उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च ।
सस्यचयं कुरुते जनहार्दिं कोशचयं च नराधिपतीनाम् ।।३।।

यदि बुध के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी राजाओं की विजय, सुभिक्ष, धान्यों की वृद्धि, लोगों को आन्तरिक तुष्टि और राजाओं के कोश की वृद्धि होती है।।३।।

शशाङ्कश्चन्द्रः। स्वसुतस्यात्मीयपुत्रस्य बुधस्योत्तरत उत्तरेण यदि याति तदा पौराणां नृपाणां जयाय भवति सुभिक्षं च करोति। तथा च सस्यानां चयमुपचयं जनानां लोकानां च हार्दिं तुष्टिं नराधिपतीनां राज्ञां कोशचयं भाण्डागारवृद्धिं च करोति।।३।।

अथ गुरोराह—

बृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम् ।
धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ।।४।।

यदि बृहस्पति के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, पण्डित, धर्म, मध्यदेश—इन सबों की वृद्धि, सुभिक्ष और सम्पूर्ण प्रजा हर्षयुत होती है।

शशाङ्के चन्द्रे वृहस्पतेरुत्तरगे उत्तरस्यां दिशि स्थिते पौराणां जनानां द्विजानां ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां राजन्यानां पण्डितानां विदुषां तथा धर्मस्य मध्यमस्य च देशस्य मध्यमदेशाख्यस्य वृद्धिर्भवति। सुभिक्षं च भवति। तथा सर्वाः प्रजा मुदिता हृष्टा भवन्ति।।४।।

अथ शुक्रस्याह—

भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः ।
यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ।।५।।

यदि शुक्र के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो कोश, हाथी और घोड़ों की वृद्धि, धनुर्धारी, पापी और जीतने की इच्छा रखने वालों की विजय तथा धान्यों की अच्छी उत्पत्ति होती है।।५।।

भार्गवस्य शुक्रस्य शशी चन्द्रो यद्युदगुत्तरेण याति तदा कोशयुक्तानां सञ्चितभाण्डागाराणां गजानां वाजिनामश्वानां च वृद्धिप्रदो भवति। तथा धनुष्मतां धनुर्भृतां यायिनां च जिगमिषूणां विजयो भवति। सस्यानामपि चोत्तमा तदा तस्मिन् काले सम्पद्भवति। अपिशब्दोऽत्रातीवार्थे।।५।।

अथ सौरस्याह—

रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत्पुरभूभृतां जयः ।
शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवा मुदभाजो यवनैः समन्विताः ।।६।।

यदि शनैश्चर के उत्तर तरफ होकर चन्द्र गमन करे तो पुरवासी और राजाओं की विजय तथा शक, वाह्लिक, सैन्धव और पह्लवदेशवासी मनुष्य हर्षयुत होते हैं।।६।।

रविजस्य शनैश्चरस्य शशी चन्द्रः प्रदक्षिणमुत्तरगमनं चेद्यदि कुर्यात्तदा पुरभूभृतां पुरनिवासिनां राज्ञां जयो भवति। तथा शका जनाः। बाह्लिकाः। सैन्धवाः। पह्लवाः। एते सर्वे यवनैः समन्विताः मुदभाजो भवन्ति। मुदं हर्षं भजन्ते सेवन्ते। प्रहृष्टा भवन्तीत्यर्थः।।६।।

अत्रैव विशेषमाह—

येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च ।
तद्द्रव्यपौरेतरभक्तिदेशान् पुष्णाति याम्येन निहन्ति तानि ।।७।।

जिन नक्षत्रों या ग्रहों के उत्तर तरफ होकर उत्पातरहित चन्द्र गमन करे उन नक्षत्रों या ग्रहों के द्रव्यों की पुष्टि और दक्षिण तरफ होकर गमन करे तो हानि करता है।।७।।

येषां भानां नक्षत्राणां ग्रहाणां च भौमादीनां प्रालेयरश्मिर्हिमदीधितिश्चन्द्रः। उदगुत्तरेण निरुपद्रव उत्पातरहितो गच्छति याति। तद्द्रव्याणि तेषां भग्रहाणां द्रव्याणि यान्युक्तानि ग्रहभक्तिमध्ये नक्षत्रव्यूहे च। तथा ग्रहाणां मध्याद्ये पौरा नागरा ये चेतरे यायिनस्तांस्तथा तद्भक्तिदेशांस्तेषां ग्रहाणां ये स्वभक्तौ देशा उक्तास्तांश्च पुष्णाति पुष्टिं नयति। याम्येन दक्षिणेन गतस्तान्येव द्रव्यादीनि निहन्ति विनाशयति।।७।।

अत्रैव पुनरपि विशेषमाह—

शशिनि फलमुदक्स्थे यद् ग्रहस्योपदिष्टं
भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम् ।
इति शशिसमवायाः कीर्तिता भग्रहाणां
न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शशिग्रहसमागमाध्यायोऽष्टादशः ।।१८।।

ग्रहों के उत्तरगत चन्द्र के जो फल कहे गये हैं, उनके विपरीत फल ग्रहों के दक्षिणगत चन्द्र के होते हैं। इस तरह चन्द्र के साथ ग्रहों या नक्षत्रों के रहने को समागम, रवि के साथ अस्त और कुजादि ग्रहों के परस्पर संयोगादि को युद्ध कहते हैं।।८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां शशिग्रहसमागमाध्यायोऽष्टादशः ॥१८॥

शशिनि चन्द्रमसि ग्रहस्योदक्स्थे उत्तरस्यां दिशि स्थिते यत्फलमुपदिष्टमुक्तम्— 'चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक्' इत्यादिकम्, तत्सर्वमेव निःशेषमपसव्ये दक्षिणदिक्स्थे चन्द्रे प्रतीपं विपरीतं भवति। इत्येवंप्रकारा भग्रहाणां भानां नक्षत्राणां ग्रहाणां च शशिसमवायाश्चन्द्रसंयोगाः कीर्तिता उक्ताः खलु। खल्वित्ययं शब्दो निश्चयार्थे। इन्दोश्चन्द्रस्य ग्रहैर्भौमादिभिर्ऋक्षैर्नक्षत्रैश्च साकं सह युद्धं न भवतीति किल सूर्यस्य ग्रहैः सह समागमोऽस्तमयशब्दवाच्यः, चन्द्रेण सह समागमशब्दवाच्यः। भौमादीनां परस्परं युद्धशब्दवाच्य इत्ययमस्मिन् शास्त्रे सिद्धान्तः। तथाऽऽचार्यविष्णुचन्द्रः—

दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम्।
कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्।। इति।

यैश्चोक्तमादित्यस्य जयपराजयं ते गोलवासनाबाह्याः।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ शशिग्रहसमागमो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ ग्रहवर्षफलाध्याय:

अथ ग्रहवर्षफलाध्यायो व्याख्यायते। कस्य ग्रहस्य कस्मिन् वर्षे कीदृशानि शुभाशुभानि फलानि भवन्तीति। यत आचार्येण पूर्वमेव प्रतिज्ञातमासीत्—

वर्षे यद्ग्रस्य फलं मासे च मुनिप्रणीतमालोक्य।
तत्तद्वृत्तैर्वक्ष्ये होरातन्त्रोत्तरविधाने।। इति।

तत्रादावेवादित्यस्य वर्षफलमाह—

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि
दैवाद् बिभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि।
नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्रवन्ति
रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ।।१।।

तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले
नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः।
नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च
सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ।।२।।

हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता
बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति ।
घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान्
संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे ।।३।।

सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयङ्कर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुःखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं।।१-३।।

दिनकरस्यादित्यस्य संवत्सरे वर्षे दिने वा तद्वारे मासे वा ईदृशानि फलानि भवन्ति। तथा च यवनेश्वरः—

अब्दाश्रयं लक्षणमीरितं यद् ग्रहस्वभावप्रभवं जनानाम्।
तदेव तन्मासदिनर्तुषूक्तं तदीश्वरस्थानविकल्पितं च।।

एवं वर्षजं फलं मासदिवसहोरास्वपि बोद्धव्यम्।

तत्र रविवर्षे मासे दिने वा कीदृशानि फलानि? सर्वत्र सर्वस्मिन् देशे भूरवनिर्विरलैस्तनुभिः स्वल्पैः सस्यैर्धान्यादिभिर्युता संयुक्ता भवति। तथैव वनानि अरण्यानि दंष्ट्रिभिः सर्पवराहादिभिः समावृतानि संयुक्तानि भवन्ति। कीदृशैर्दंष्ट्रिभिः? दैवाद्दैवहेतोर्ये बिभक्षयिषवो भक्षयितुमिच्छवस्तथाभूतैः। दैवशब्देन प्राक्कर्मोच्यते। तथा चोक्तम्—

प्राग्जन्मनि कृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
दैवशब्देन निर्दिष्टमिह जन्मनि तद्बुधैः।। इति।

तस्माद्वनानि दैवाद् बिभक्षयिषुर्दंष्ट्रिसमावृतानि भवन्ति। नद्यः सरितः प्रचुरं प्रभूतं पयो जलं न स्रवन्ति न स्यन्दन्ति। रुजां रोगाणामुपशमार्थं यानि च भैषजानि द्रव्याणि तानि न तथा तेनैव प्रकारेणातिबलान्वितानि वीर्ययुक्तानि भवन्ति। रोगोपशान्तिं सम्यग् न कुर्वन्तीत्यर्थः।

तथा अदितिज आदित्यः। शिशिरेऽपि काले माघफाल्गुनमासयोः शीतकालेऽपि तीक्ष्णमतिचण्डं तपति सन्तापयति। अम्बुदा मेघा अचलसन्निकाशाः पर्वताकारा अपि नातिजलमुचो न प्रभूतं जलं मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा नभ आकाशं कीदृशं नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरम्, नष्टप्रभो विगतकान्तिर्ऋक्षगणो नक्षत्रसमूहः शीतकरश्चन्द्रमा यत्र तत्। तापसकुलानि तपस्विनां वंशाः। सगोकुलानि गोकुलेन सहितानि सीदन्त्यवसादयन्ति।

तथा नृपा राजानो युधि संग्रामे नृपानुचरैः सचिवैर्लोकपालैः सह साकं देशान् विषयान् घ्नन्तो जिघांसन्तो विचरन्ति गच्छन्ति। कीदृशा नृपाः? हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेताः। हस्तिनो गजाः। अश्वास्तुरगाः। पत्तयः पदातयो विद्यन्ते येषु बलेषु तानि। तथाभूतैः हस्त्यश्वपत्तिमद्भिरसह्यैरनभिभवनीयैर्बलैः सैन्यैरुपेताः संयुक्ताः। तथा बाणासनासिमुशलातिशयाः। बाणा अस्यन्ते क्षिप्यन्ते येन तद्बाणासनं धनुः। असिः खड्गः। मुशल आयुधविशेषो मुशलाकार एव। तेषु अतिशयो यत्नो येषां ते तथाभूताः। तथा च यवनेश्वरः—

दिवाकराब्दे रणविग्रहोग्रक्षितीश्वरस्तीव्रविषज्वराग्निः।
अवर्षशुष्कद्रुमशुष्कसस्यप्रचण्डवह्न्युग्रविषाक्षिरोगाः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

तीक्ष्णोऽर्कः स्वल्पसस्यश्च गतमेघोऽतितस्करः।
बहूरगव्याधिगणो भास्कराब्दो रणाकुलः।।१-३।।

अथ चन्द्रमस आह—

व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशै-
र्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिः पयोदैः।
गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भि-
रुत्कण्ठितेन गुरुणा ध्वनितेन चाशाः ।।४।।

तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव
फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि ।
गाव: प्रभूतपयसो नयनाभिरामा
रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान् ॥५॥

गोधूमशालियवधान्यवरेक्षुवाटा
भू: पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या ।
चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा
संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ॥६॥

चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (महिषशृङ्ग) के समान निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरवयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली), गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती है।।४-६।।

शिशिरगो: शीतरश्मे: संवत्सरे वर्षे अभिसम्प्रवृत्ते वर्तमाने मासे दिवसे वा ईदृशानि फलानि भवन्ति। कै:? पयोदैर्मेघैर्नभ आकाशं व्याप्तमाच्छादितं भवति। कीदृशै: पयोदै:? प्रचलिताचलसन्निकाशै:। प्रचलिता ये अचला: पर्वता: तत्सन्निकाशै: तत्सदृशै:। तथा व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभि:। व्याला: सर्पा:। अञ्जनं प्रसिद्धं कज्जलम्। अलिर्भ्रमर:। गवलं महिाशृङ्गं तद्वच्छवि: कान्तिर्येषां तै:। किं कुर्वद्भि:? अमलाभिर्निर्मलाभिरद्भिर्जलैर्गां भूमिमखिलां नि:शेषां पूरयद्भिराप्यायमानै:। तथा ध्वनितेन गर्जितेन चाशा दिश: पूरयद्भि:। कीदृशेन? उत्कण्ठितेन विरहिणामौत्सुक्यजननेन। गुरुणा गौरवसंयुक्तेन दु:सहेनेत्यर्थ:।

तोयानि जलान्यतीवात्यर्थम्। पद्मकुमुदोत्पलवन्ति। पद्मानि कुमुदानि उत्पलानि च विद्यन्ते येषां तानि। तथाभूतानि उपवनानि उद्यानानि। फुल्लद्रुमाणि फुल्ला: कुसुमिता द्रुमा वृक्षा येषु तानि। अलिभिर्भ्रमरैर्नादितानि कृतशब्दानि। तथा गावो धेनव: प्रभूतपयसो बहुक्षीरा:। रामा: स्त्रिय:। अविरतमविरामं सन्ततं रामान् वल्लभान् पुरुषान् रतै: सुरतै रमयन्ति क्रीडयन्ति। कीदृश्यो रामा:? नयनाभिरामा:। नयनाभ्यां नेत्राभ्यामाभिमुख्येन रम्यन्ते यास्ता:, तथाभूता:। तथा भूरवनि:। नृपतिभी राजभि: पाल्यते अभिरक्ष्यते। कीदृशी भू:? गोधूमै: शालिभिर्यवैर्धान्यवरै: कलमशालिप्रभृतिभिरिक्षुवाटैश्च संयुक्ता। तथा नगराकराढ्या। नगरै: पत्तनैराकरैराकरोत्पत्तिस्थानैराढ्या बहुला। चित्यङ्किता। चितिरग्निस्थानम्। ताभिरङ्किता चिह्निता। क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा। क्रतुवरा यज्ञश्रेष्ठा:। इष्टय: पुत्रकाम्यादयस्तेषु विघुष्टो

घोषितो यो नादो वेदशब्दस्तेन संयुता। तथा च यवनेश्वरः—

सम्पन्नसस्यक्षुपशष्पशालिप्ररूढगुल्मो बहुवर्षधारः।
रत्नौषधिस्नेहपटुप्रसेकश्चान्द्रो रतिस्त्रीसुखवर्धनोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

बहुवर्षातिसस्यश्च गवां क्षीरप्रदायकः।
चन्द्राब्दः कामिनामिष्टश्चित्यङ्कितमहीतलः।। इति।।४-६।।

अथ भौमस्य वर्षफलमाह—

वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो
ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः।
हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति
निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्घाः ।।७।।

अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि
मुञ्चन्ति कुत्रचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं
निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ।।८।।

भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः
पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः।
एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं
संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ।।९।।

मङ्गल के संवत्सर, मास या दिन में वायु से सञ्चालित ग्राम, वन और नगरों को दग्ध करने की इच्छा रखने वाली भयङ्कर अग्नि चलती है। चोरों से निर्धन किये हुये पीड़ित मनुष्यगण हाहाकार करते हैं। आकाश में संगठित मूर्ति वाले मेघ कहीं भी अधिक वृष्टि नहीं करते। निम्न स्थान में उत्पन्न धान्य सूख जाते हैं तथा पके हुये धान्य भी वज्रपात आदि उत्पातों से नष्ट हो जाते हैं। राजा लोग धर्मपालन में तत्पर नहीं रहते हैं। पैत्तिक रोगों की अधिकता होती है। सर्पों से लोगों को पीड़ा होती है। इस तरह मङ्गल के स्वामित्व में प्रजागण पीड़ित और धान्यों का नाश होता है।।७-९।।

अवनिसुतस्याङ्गारकस्य संवत्सरे वर्षे मासे दिवसे वा फलानीदृशानि भवन्ति। कीदृशानि? वह्निरग्निर्वातेन मारुतेनोद्धतः सञ्चार्यमाणोऽतिप्रचण्डो दुःसहश्चरति। कीदृशः? ग्रामान् वनानि नगराणि पत्तनादि च सन्दिधक्षुः सन्दग्धुमिच्छुः। तथा भुवि भूमौ मर्त्यसङ्घा मनुष्यसमूहाः। दस्यूनां चौराणां ये गणाः समूहास्तेषां पातैर्हताः परिपीडिताः सन्तो हाहेति रटन्ति रणन्ति हाहाशब्दं कुर्वन्ति। कीदृशाः? निःस्वीकृता निर्द्धनीकृताः। विपशवो विगताः पशवश्चतुष्पदा येभ्यः।

तथा पयोदा मेघा वियत्याकाशे अभ्युन्नता: अभिमुख्येनोच्चा:। संहतमूर्तयो घनदेहा अपि कुत्रचिदपो जलं प्रचुरं बहु मुञ्चन्ति त्यजन्ति। तथा सीम्नि जलप्रवेशमार्गेऽपि प्रजातम्। निम्ने प्रजातमिति केचित् पठन्ति। निम्ने प्रजातमुत्पन्नं सस्यं धान्यादिकं शोषं नीरसत्वमुपैति प्राप्नोति। तथा निष्पन्नमपि सञ्जातमपि सस्यमपरे अन्ये शत्रव उत्पाता वा अविनयादनीत्या अशनिप्रपातादिना वा हरन्त्यपनयन्ति।

तथा भूपा राजान: सम्यग्धर्मेणाभिपालने रक्षणे सक्तचित्तास्तत्परा न भवन्ति। तथा पित्तोत्थानां रुजां रोगाणां प्रचुरता बाहुल्यं भवति। भुजगेभ्य: प्रकोपो लोकानां पीडा भवति। एवंविधैरीदृशैर्दोषैरियं प्रजा जनसमूहा उपहता पीडिता भवति। तथा विपन्नसस्या च। तथा च यवनेश्वर:—

रणप्रचण्ड: क्षितिपोऽल्पसस्यो विशुष्कवारिद्रुमशष्पशीर्ण:।
अङ्गारकाब्द: प्रचुरोरगाग्निरातङ्कचौर्यक्षुदवृष्टिदृष्ट:।।

तथा च समाससंहितायाम्—

अग्नितस्कररोगाढ्यो नृपविग्रहदायक:।
गतसस्यो बहुव्यालो भौमाब्दो बालहा भृशम्।। इति।।७-९।।

अथ बुधस्याह—

मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां
गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धि: ।
पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि
दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्य: ॥१०॥

वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च
सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीति: ।
अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधियोऽपि केचि-
दान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमाना: ॥११॥

हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां
युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च ।
हार्दिं करोति मृगलाञ्छनज: स्वकेऽब्दे
मासेऽथवा प्रचुरता भुवि चौषधीनाम् ॥१२॥

बुध के वर्ष, मास या दिन में प्रपञ्चों में कुशल, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाले, आश्चर्य देखने वाले, अर्थोत्पत्तिस्थान को जानने वाले, नगरों में रहने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, गणितज्ञ और अस्त्र विद्या जानने वाले उन्नतियुत होते हैं। राजा लोग परस्पर प्रीति बढ़ाने की इच्छा से आश्चर्यजनक और हर्षोत्पादक द्रव्य परस्पर एक-दूसरे

को देने की इच्छा करते हैं। वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) अवितथा (सफल) होती है। त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) का अत्यधिक पाठ होता है। मनु राजा से रचित दण्डनीति नामक पुस्तकोक्त नीति की तरह नीति चलती है अर्थात् जिस तरह मनु राजा प्रजारक्षण करते थे, उसी तरह उस वर्ष के राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं। कोई अध्यात्म विद्या (योगशास्त्र) में और कोई आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) में विरत होते हैं। हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु (स्थल), जल और पर्वत पर निवास करने वाले प्रसन्न होते हैं तथा पृथ्वी पर ओषधियों की अधिकता होती है।।१०-१२।।

मृगलाञ्छनश्चन्द्रस्तस्माज्जातो बुध: स च स्वके आत्मीये अब्दे वर्षे मासे दिवसे वा ईदृशानि फलानि करोति। कीदृशानि? मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणाम्। मायाविनां प्रपञ्चकुशलानाम्। इन्द्रजालज्ञानां विस्मयदर्शिनाम्। कुहकविदामाश्चर्यदर्शकानाम्। आकरे अर्थोत्पत्तिस्थाने कुशलानाम्। नागराणां नगरवासिनाम्। गान्धर्वविदां गेयज्ञानाम्। लेख्यविदां चित्रज्ञानाम्। गणितविदां गणितप्रवीणानाम्। अस्त्रविदामायुधज्ञानां तद्वर्षे वृद्धिर्भवति। नृपतयो राजान: पिप्रीषया परितोषेच्छया परस्परस्नेहोत्पादनेन अद्भुतदर्शनान्याश्चर्यवन्ति दर्शनानि परस्परेभ्योऽन्योन्यं दित्सन्ति दातुमिच्छन्ति। कीदृशानि? तुष्टिजननानि हर्षोत्पादकानि।

वर्तनं वर्ता कृषि: पशुपाल्यं वाणिज्यं चेति। वार्ता जगति लोके अवितथा सत्यस्वरूपा सफला भवन्ति। तद्वृत्तीनां प्रभूतलाभा भवन्तीति यावत्। त्रयी ऋग्यजु:सामलक्षणा एषा चाविकला सम्पूर्णा भवति। लोकेऽत्यर्थं वेदा: पठन्ति। सम्यग्यथागमं शास्त्रविहिता दण्डनीतिर्मनोरिव चरति। प्रजारक्षणं दण्डनीति:। मनुर्नाम राजा अभूत्। तत्प्रणीता दण्डनीति: सम्यक् चरति। तेन यथा प्रजारक्षणं कृतं तथा तद्वर्षेऽपि राजा करोति। उक्तं च—

गोरक्षा कृषिवाणिज्यं सेवावर्जं परिग्रहम्।
वर्तनं जीवनं वार्ता जीवा तूज्जीवनं स्मृतम्।।
ऋजो यजूंषि सामानीत्येषा त्रय्यभिधीयते।
त्रय्यां धर्मस्थितिर्वृत्तौ दण्डनीत्यां च रक्षणम्।।

केचिदन्ये अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधिय:। अक्षरं परमात्म, तदधिकृत्य कृतं शास्त्रमध्यक्षरं तत्र स्वभिनिविष्टा अभियुक्ता धीर्बुद्धिर्येषां ते तथाभूता:। केचिदप्यध्यात्मविद्यासु योगशास्त्रेषु सक्ता:। अध्यक्षरा: स्वभिनिविष्टधियोऽपि केचिदित्यन्ये पठन्ति। तथा अन्ये आन्वीक्षिकीषु तर्कविद्यासु च परं प्रकृष्टं पदं स्थानं मोक्षाख्यमीहमाना वाञ्छां कुर्वाणास्तर्कनिरता भवन्ति।

तथा हास्यज्ञानामुपहासविदां विदग्धानाम्। दूतानां गमागमिकानाम्। कवीनां पण्डितानां काव्यज्ञानाम्। बालानां शिशूनाम्। नपुंसकानां क्लीबानाम्। युक्तिज्ञानां युक्तिविदां प्रयोगज्ञानाम्। सेतुवासिनां स्थलवासिनां सेतौ ये वसन्ति। जलवासिनां जलसमीपस्थितानाम्। पर्वतवासिनां हार्दिं चित्ते तुष्टिं करोति। तथा भूवि भूमौ औषधीनां प्रचुरता बाहुल्यं भवति। तथा च यवनेश्वर:—

सन्धानदानप्रयत: क्षितीश: स्वाध्यायतीर्थाध्वरभीर्द्विजौघ:।
निराधिरुङ्मध्यमसस्यवर्षो बौध: सुहृत्स्नेहविवर्धनोऽब्द:।।

तथा च समाससंहितायाम्—

ब्रह्मक्षत्रस्य सस्यानां जनानां च कलाविदाम्।
वृद्धिप्रदोऽब्दो बौधस्तु भूपसाम्यकर: क्षितौ।। इति।।१०-१२।।

अथ गुरोर्वर्षफलमाह—

ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन्।
विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम्।।१३।।

क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या।
क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति।।१४।।

विविधैर्वियदुन्नतै: पयोदैर्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भि:।
सुरराजगुरो: शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता।।१५।।

गुरु के शुभ वर्ष, मास या दिन में यज्ञों में रात्रिवर्जित काल में श्रेष्ठ ब्राह्मण से उच्चरित, विस्तीर्ण, स्वर्ग तक पहुँचने वाली, यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों के मन को भेदन करने वाली और इन्द्रादि के मन को प्रसन्न करने वाली वेदध्वनि होती है। राजाओं से अच्छी तरह परिरक्षित, उत्तम धान्य, बहुत हाथी, पदाति, घोड़ा, धन और विस्तृत गोकुलों से पृथ्वी परिपूर्ण होती है। देवता के समान मनुष्य होते हैं। सदा भूमि को जल से परिपूर्ण करते हुये उन्नत, विविध मेघों से आकाश व्याप्त होता है तथा बहुत तरह के धान्य और समृद्धि से युत पृथ्वी होती है।

विशेष—यहाँ पर शुभ वर्ष इसलिये कहा गया है कि बृहस्पतिचारोक्त पिङ्गल-कालयुत और रौद्रनामक बृहस्पति के वर्ष अशुभ हैं। अत: इस वर्ष का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता; किन्तु प्रभव, शुक्ल, प्रमोद आदि वर्षों का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है।।१३-१५।।

सुरराज इन्द्र:। तस्य गुरुर्जीव:। तस्य सुरराजगुरो: शुभे शोभने वर्षे मासे दिवसे वा फलान्येतानि भवन्ति। नन्वत्र सर्वग्रहाणां वर्षफलानि सामान्येनाभिहितानि भवन्ति। अत्र तु किमर्थं शुभग्रहणमित्यत्रोच्यते—अथैकदेशे पिङ्गलकालयुक्तरौद्रसंज्ञानि वर्षाण्यशुभ-फलान्युक्तानि। तेषु सत्यपि गुरौ वर्षपतित्वे न तथा फलानि परिपूर्णानि भवन्ति। यदा तु पुन: प्रभवविभवशुक्लप्रमोदवर्षाणि शुभानि भवन्ति, तदा तेषु गुरौ वर्षपतित्वे सत्येतानि परिपूर्णानि भवन्त्यत उक्तम्—**शुभे तु वर्षे इति**। कीदृशानि तानि फलानि? **ध्वनिरुच्चरित इति**। द्विजोत्तमानां ब्राह्मणप्रधानानामध्वरे यज्ञे ध्वनि: शब्द उच्चरित उद्घोषो विपुलो विस्तीर्ण:। अनिशं रात्रिवर्जितम्। द्युगामी स्वर्गामी। विचरति गच्छति। कीदृशो ध्वनि:?

यज्ञमुषां यज्ञविघ्नकर्तृणां राक्षसानां मनांसि चेतांसि भिन्दन् विदारयन्। तथा अध्वरांशभाजां यज्ञभागिनामिन्द्रादीनां हृदये चेतसि आनन्दकरः।

क्षितिर्भूः। क्षितिपैर्भूम्यधिपतिभिः। अभिमुख्येन सम्यक् पालनेन रक्षणेन प्रवृद्धा वृद्धिं गता विभाति शोभते। तदा तस्मिन् वर्षे। कीदृशी? उत्तमसस्यवती। उत्तमानि प्रधानानि सस्यानि धान्यादीनि विद्यन्ते यस्याम्। अनेकैर्बहुभिर्द्विपैर्गजैः। पत्तिभिः पदातिभिः। अश्वैस्तुरगैः। धनैर्वित्तैः। उरुभिर्विस्तीर्णैः। गोकुलैर्गोवाटैराढ्या समृद्धा भवति। तथा द्युचर-स्पर्द्धिजना। द्युचरा देवास्तेषां स्पर्द्धिनः सदृशा जना यस्याम्।

वियदाकाशं पयोदैर्मेघैः। विविधैर्नानाकारैरुन्नतैरुच्चैर्वृतं व्याप्तम्। किं कुर्वद्भिः? उर्वीं भूमिं पयसा जलेन अभि सामस्त्येन विशेषेण तर्पयद्भिः प्रीणयद्भिः। अनवरत-कालानुवर्षणात्। तथा क्षितिर्भूमिर्बहुसस्या प्रभूतधान्या। उत्तमर्द्ध्या प्रधानया समृद्ध्या च युक्ता भवति। तथा च यवनेश्वरः—

सुवर्षयज्ञोत्सवसम्प्रदानो नीरुग्व्यथो धर्मपरोऽवनीशः।
स्फीतानुपानैर्बहुसस्यकर्मा गुरोः स्वकर्मप्रयतप्रजोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

बहुयज्ञोऽतिसस्यश्च गोगजाश्वहितस्तथा।
पुरन्दरगुरोरब्दो बहुसस्यप्रदः शिवः।। इति।।१३-१५।।

अथ शुक्रस्याह—

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभ-
धाराधरोज्झितपयःपरिपूर्णवप्रा ।
श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा
योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी ।।१६।।

क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्ष-
मुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम् ।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गा
गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढ्याम् ।।१७।।

पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभि-
र्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् ।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न-
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः ।।१८।।

शुक्र के वर्ष, मास या दिन में शाली और इक्षु (ईख = गन्ना) से युत, पर्वत के समान मेघों से गिरे हुये जल से परिपूर्ण तट वाली, सुन्दर कमल और जल से परिपूर्ण

तालाब से व्याप्त; अतः विविध वर्णों से युत पृथ्वी सम्पूर्ण भूषणों से युत स्त्री की तरह शोभित होती है। पृथ्वी पर शत्रुपक्ष के बहुत सेनाओं को नाश करने से उद्घोषित जयशब्दों से सभी दिशाओं को पूर्ण करने वाले राजवर्ग होते हैं। आनन्दयुत सज्जनगण, विनष्ट दुर्जन-गण और अर्थोत्पतिस्थानों से युत पृथ्वी होती है। वसन्त समय में स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक बार-बार मद्यपान करती हैं, बाँसुरी और वीणा के साथ श्रवणसुखद गीत गाती हैं, अभ्यागत, मित्र और बन्धुओं के साथ बार-बार भोजन करती हैं तथा सब जगह कामदेव का जय-जयकार होता है।।१६-१८।।

सितस्य शुक्रस्य अब्दे मासे दिने वा फलानीदृशानि भवन्ति। कीदृशानि? **शालीक्षुमत्यपीति**। धरा भूरभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी योषा स्त्रीव भाति शोभते। अभिनवैर्नूतनैराभरणैरलङ्करणैरुज्ज्वलान्युपशोभितानि अङ्गान्यवयवानि यस्या योषायाः सा। कीदृशी धरा? शालीक्षुमत्यपि शालयो धान्यादीनि। इक्षवश्च विद्यन्ते यस्यां तथाभूता सती। धरणीधराणां पर्वतानां सदृशी तुल्या आभा आकृतिर्येषां ते तथाभूता ये धाराधरा मेघास्तैर्यदुज्झितं त्यक्तं पयो जलं तेन परिपूर्णा वप्रास्तटा यस्याः। श्रीर्विद्यते येषां सरोरुहाणां पद्मानां तानि श्रीमन्ति। तैः श्रीमत्सरोरुहैः। तथा ततं विस्तीर्णं यदम्बु जलं तच्च येषां तडागानां तैः कीर्णा संयुक्ता अत एव विचित्रवर्णत्वाद्योषेव भाति। अभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी योषा धरासाम्येनोपमानम्।

तथा क्षत्रं राजवर्गः क्षितौ भूमौ कीदृशं भवति? क्षपितभूरिबलारिपक्षम्। क्षपितं विनाशितं भूरिबलं प्रभूतवीर्यमरिपक्षः शत्रुपक्षश्च येन। तथा योऽसौ उद्घुष्ट उद्घोषितोऽनेको बहुप्रकारो यो जयशब्दस्तेन विराविताः कृतशब्दा आशाः दिशो यस्य तत् तथाभूतम्। तथा गां भूमिमवनिपा राजानः पालयन्ति रक्षन्ति। कीदृशीम्? संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गाम्। संहृष्टः प्रहर्षितः शिष्टजनः साधुलोको यस्याम्। तथा दुष्टानामसाधूनां विशेषेण नष्टो वर्गः समूहो यस्याम्। तथा नगरैः पत्तनैराकरैरर्थोत्पत्तिस्थानैश्चाढ्यां समृद्धाम्।

पेपीयत इति। मधौ वसन्ते मधु मद्यं पानविशेषः कामिनीभिर्विलासिनीभिः पेपीयते अत्यर्थं पीयते पुनः पुनर्वा पीयते। वेणुर्वंशः। वीणा वल्लकी। ताभ्यां सह सवेणुवीणं श्रवणहारि कर्णसुखकारि जेगीयते। अत्यर्थं पुनः पुनर्वा गीयते। अतिथिभिरागतैः सुहृद्भिर्मित्रैः स्वजनैर्बन्धुजनैः सह साकमन्नं भोजनं बोभुज्यते। अत्यर्थं पुनः पुनर्वा भुज्यते। मदनस्य कामस्य जयावघोषो जयशब्दोद्घोषणम्। अतीव कामासक्ता भवन्तीत्यर्थः। तथा च यवनेश्वरः—

पर्याप्तसौख्यस्फुटसस्यमेघाः प्ररूढवल्लीवरशष्पपुष्पः।
कामप्रकामः क्षितिपो मुदाढ्यः शौक्रोऽङ्गनाहर्षवसुप्रदोऽब्दः।।

तथा च समाससंहितायाम्—

सस्याढ्यो धर्मबहुलो गतातङ्को बहूदकः।
कामिनां कामदः कामं सिताब्दो नृपशर्मदः।। इति।।१६-१८।।

अथ सौरस्याह—

उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि।
रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च॥१९॥

वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्ष-
मारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा
तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः॥२०॥

जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाश-
मृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रु-
र्वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते॥२१॥

शनि के वर्ष, मास या दिन में चोरों से सम्बन्धित युद्धों से व्याप्त, पशु और धानों से रहित, संग्राम में बन्धुजनों के मरण से बार-बार रोते हुये वंशों से युत, प्रधान रोग तथा क्षुधा से व्याकुल राष्ट्र होते हैं, वायु से उड़ाये गये मेघों से रहित आकाश होता है, अनेक तरह से नष्ट वृक्षों से युत पृथ्वी होती है, सूर्य और चन्द्रकिरणों से रहित आकाश होता है, धूलियों से स्थगित वापी, कूप और तालाब होते हैं तथा नदियों में अत्यन्त कम जल होता है। इन्द्र अल्प वर्षा करता है, इसलिये कहीं-कहीं पर जल के विना धान्य नष्ट हो जाते हैं और कहीं-कहीं पर जल से सिक्त होकर पुष्ट होते हैं।।१९-२१।।

दिनकरसुतस्य सौरस्य वर्षे अब्दे प्रवृत्ते वर्तमाने मासे दिवसे वा सदा सर्वकालमेतानि फलानि भवन्ति। कीदृशानि? उद्धतदस्युगणभूरिरणाकुलानि। उद्धत उद्गतो योऽसौ दस्युगणो दस्यूनां चौराणां समूहस्तेन भूरि बहुप्रकारा ये रणाः संग्रामास्तैराकुलानि सोद्यमानि राष्ट्राणि नृपकुलानि भवन्ति। तथा अनेके प्रभूता ये पशवश्चतुष्पदाः। वित्तानि धनानि। तैश्च विना-कृतानि वर्जितानि रहितानि। हताः संग्रामे बन्धुजना येषां जनानां ते हतबन्धुजना रोरूय-माणा अत्यर्थं रोदमानाश्च ते जनास्तैस्तथाभूतैर्जनैश्चाकुलानि सोद्यमानि कुलानि वंशाः। तथा रोगोत्तमैर्गदप्रधानैर्बुभुक्षया क्षुधा वाऽऽकुलानि भवन्ति।

तथान्तरिक्षमाकाशं वातोद्धताम्बुधरवर्जितम्। वातेनोद्धताश्चालिता येऽम्बुदा मेघास्तै-र्वर्जितं रहितम्। धरातलं भूतलम्। आरुग्णनैकविटपम्। आरुग्णा भग्ना नैका बहुप्रकारा विटपाः शाखिनश्च यत्र धरातले तत्तथाभूतम्। द्यौराकाशम्। नष्टार्कचन्द्रकिरणा नष्टा अदर्शनं गता अर्कचन्द्रयोः सूर्यशशिनोः किरणा रश्मयो यस्याम्। अतिरजसा सन्ततपांशुना अव-नद्धा स्थगिता तोयाशया जलाधारा वापीकूपतडागादयः। विजला जलरहिताः सरितो नद्यस्तन्व्यः स्वल्पजलाश्च भवन्ति।

अपिशब्दोऽत्र चार्थे। वृत्रशत्रुरिन्द्रः स्वल्पमभिवर्षति। केचित् सप्तम्यन्तं पठन्ति।

वृत्रशत्राविन्द्रे मन्दं स्वल्पमभिवर्षति सति कुत्रचिज्जातान्युत्पन्नानि सस्यान्यतोयतया जलेन विना विनाशमृच्छन्ति यान्ति। तथा अपराण्यन्यानि जलोक्षितान्युदकसिक्तानि पुष्टिं वृद्धिमृच्छन्ति। तथा च यवनेश्वर:—

तुष्टाल्पवर्ष: प्रबलानिलाग्निर्विपन्नसस्यश्चलितक्षितीश:।
मृत्युक्षुधातङ्कभयोपजुष्ट: शनैश्चरोऽब्द: पशूशूद्रगोघ्न:।।

तथा च समाससंहितायाम्—

दुर्भिक्षमरकं रोगान् करोति पवनं तथा।
शनैश्चरोऽब्दो दोषांश्च विग्रहांश्चैव भूभुजाम्।।
संवत्सरोक्तं सकलमृतुमासायनेषु च।
फलं ग्रहस्य वक्तव्यं बलयुक्तस्य नान्यथा।। इति।।१९-२१।।

अत्रैव वर्षफलविशेषप्रदर्शनार्थमाह—

अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा
न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा य: ।
यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धि:
शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योन्यतायाम् ।।२२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रह-
वर्षफलाध्याय एकोनविंश: ।।१९।।

जो ग्रह सूक्ष्म, अस्पष्ट किरण वाला, नीच स्थानस्थित या ग्रहयुद्ध में पराजित हो, वह सम्पूर्ण फल देने वाला नहीं होता है। इससे विपरीत लक्षणयुत होने से सम्पूर्ण फल देने वाला होता है। अशुभ वर्ष में रवि, मंगल और शनि के अशुभ मासफल की वृद्धि होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अशुभ ग्रह के वर्ष में अशुभ ग्रह का मासाधिपतित्व होने पर अत्यन्त अशुभ फल होता है तथा वर्षाधिप, मासाधिप—दोनों शुभग्रह हों तो शुभ फल की वृद्धि और एक शुभ एवं दूसरा अशुभ हो तो याप्य (अल्प फल) होता है।।२२।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां ग्रहवर्षफलाध्याय
एकोनविंशतितम: ।।१९।।

यो ग्रहोऽणु: सूक्ष्मो नभसि दृश्यते। अपटुमयूखोऽस्पष्टरश्मि:। नीचगो नीचराशिस्थित:। अन्यैर्ग्रहैर्वा ग्रहयुद्धे जित: पराजित:। स ग्रहो नि:शेषाणां सकलानां फलानां शुभानां दाता न भवति। अतोऽन्यथा अस्मादुक्तात् प्रकाराद्यो विपरीतस्थ:। स पुष्टिद: पुष्टिं ददाति। वर्षफलानां शुभानां परिपूर्णानां दाता भवति। एतदुक्तं भवति—विस्तीर्णबिम्ब: स्फुटमयूख

उच्चस्थः स्वगृहत्रिकोणमित्रक्षेत्राणामन्यतमस्थो जया च परिपूर्णान्युक्तानि शुभानि फलानि ददाति। अन्यथा अनिष्टानि फलानि ददाति। **यदशुभमित्यादि** । अशुभेऽब्दे अशुभे वर्षे रविभौमसौराणामन्यतमे यन्मासजं मासाधिपतेर्ग्रहस्याशुभं फलं तस्य फलस्य वृद्धिर्भवति। एतदुक्तं भवति—अशुभग्रहवर्षम् अशुभस्यैव ग्रहस्य मासाधिपतित्वं यदा भवति तदा तस्मिन् मासे अतीवाशुभं फलं स ग्रहो ददाति। शुभफलमपि चैवम्। मासाब्दयोः शुभत्वे मासजस्यैव शुभस्य वृद्धिर्भवति। याप्यमन्योन्यतायाम्। अन्योन्यतायां मासाब्दयोरेकस्य शुभत्वे अन्यस्याशुभत्वे याप्यमल्पफलं वाच्यमिति। तथा च देवलः—

बली वर्षपतिः पुष्टं फलं यच्छति शोभनम्।
विबलश्च तथानिष्टं वर्षमासदिनात्मकम्।। इति।।२२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ ग्रहवर्षफलं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

अथ ग्रहश्रृङ्गाटकाध्यायः

अथ ग्रहश्रृङ्गाटकाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव दिक्फलप्रतिपादनार्थमाह—

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे।
भवति भयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥१॥

जिस दिशा में सभी ताराग्रह (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) दिखाई दें तथा जिस दिशा में रवि में प्रविष्ट (अस्त) हों, उस दिशा में शस्त्रकोप, क्षुधा (दुर्भिक्ष) और आतङ्क (उपद्रव) का भय होता है।।१।।

यस्यां दिशि यत्राशायां सर्वे एव ताराग्रहा भौमबुधगुरुसितसौरा दृश्यन्ते लोकैरवलोक्यन्ते। तथा रविमादित्यं प्रति यस्यां दिशि विशन्ति अस्तमयं यान्ति तस्यां दिशि भयं भवति। कैः आयुधकोपक्षुधातङ्कैः। आयुधकोपेन शस्त्रकोपेन, क्षुधा दुर्भिक्षेण, आतङ्कैरुपद्रवैः। तथा च काश्यपः—

भूमिपुत्रादयः सर्वे यस्यामस्तमिते रवौ।
दृश्यन्तेऽस्तमये वापि यत्र यान्ति रवेस्ततः।।
दुर्भिक्षं शस्त्रकोपं च जनानां मरकं भवेत्।
अन्योन्यं भूमिपाः सर्वे विनिघ्नन्ति प्रजास्तथा।। इति।।१।।

अधुना तेषामेव ग्रहाणां संस्थानप्रदर्शनार्थमाह—

चक्रधनुःश्रृङ्गाटकदण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः ।
क्षुदवृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥२॥

यदि ग्रहसंस्थान (ग्रह की आकृति) चक्र, धनु, श्रृङ्गाटक (त्रिकोण), दण्ड, पुर, प्रास (आयुधविशेष), कुन्त, वज्र या मध्य में कृश और दोनों तरफ विस्तीर्ण हो तो पृथ्वी पर सब जगह दुर्भिक्ष, अवृष्टि एवं मनुष्यों में और राजाओं में युद्ध होता है।।२।।

चक्रं चक्राकारम्। धनुश्चापम्। श्रृङ्गाटकं त्रिकोणम्। दण्डं दण्डाकारम्। पुरं पुराकारमेव प्रासादसदृशम्। प्रासमायुधविशेषः कुन्ताकारम्। वज्रं वज्राकारं मध्यक्षाममुभयाग्रविस्तीर्णम्। एवं चक्रादिसंस्थानां ग्रहाः। संस्थानमाकृतिः। लोके सर्वत्र जनपदे क्षुदवृष्टिकराः। क्षुद् दुर्भिक्षमवृष्टिं च कुर्वन्ति। तथा मानवेन्द्राणां राज्ञां समराय संग्रामाय च भवन्ति। अर्थादेवोक्त-संस्थानं विना यथा तथा स्थितानां शुभं फलं कुर्वन्तीति। तथा च काश्यपः—

विहायोक्तं च संस्थानं दृश्यन्ते वै ग्रहा यदा।
तदा न तत्फलं ब्रूयाल्लोके नाशुभदाश्च ते।। इति।।२।।

अथान्तरिक्षप्रविभागेनाशुभं फलमाह—

यस्मिन् खांशे दृश्या ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते।
तत्राऽन्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान्॥३॥

सूर्य के अस्तसमय में जिस देश के आकाशभाग में ग्रहमाला दिखाई दे, वहाँ पर अन्य राजा का आगमन और दूसरे राजा का उपद्रव होता है॥३॥

दिनकरे सूर्ये दिनान्तगते दिवसस्य पर्यन्तं प्राप्ते अस्तमित इत्यर्थः। तस्मिन् खांशे यत्राकाशभागे ग्रहमाला ग्रहपङ्क्तिर्दृश्या भवति, तत्र तस्मिन्नेव भूभागे अन्यो द्वितीयो नृपो राजा भवति। तथा महानतीव परचक्रोपद्रवश्च भवति। अपरनृपापमर्दस्तत्र भवतीत्यर्थः।

अथ ग्रहाणां नक्षत्रस्थितानां फलमाह—

तस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः।
अविभेदिनः परस्परममलमयूखाः शिवास्तेषाम्॥४॥

जिस नक्षत्र के साथ ग्रहों का समागम होता है, उस नक्षत्र के नक्षत्रकूर्म और नक्षत्रव्यूह में उक्त जनों का नाश करता है। यदि वे दोनों (ग्रह, नक्षत्र) परस्पर निर्मल किरण वाले हों तो उनका कुशल करते हैं॥४॥

यस्मिन्नृक्षे यत्र नक्षत्रे ग्रहाः समागमं सम्प्रयोगं कुर्युस्तस्य नक्षत्रस्य ये जना नक्षत्रकूर्मेण नक्षत्रव्यूहेन च कथितास्तान् हन्युर्नाशयेयुः। यदा च त एव ग्रहाः परस्परमन्योन्यमविभेदिनश्छाद्यच्छादकभावेन स्थिता अमलमयूखा निर्मलरश्मयस्तेषामेव जनानां शिवाः श्रेयस्करा भवन्ति। तथा च समाससंहितायाम्—

सर्वे यदा दिनकरं विशन्ति कुर्युर्ग्रहास्तदा पीडाम्।
क्षुच्छस्त्रभयातङ्कैरपरैश्च परस्पराघातैः॥
प्रत्यर्चिषः प्रसन्नाः सम्भृतकिरणाः प्रदक्षिणावर्ताः।
सुस्निग्धामलतनवः क्षेमसुभिक्षावहास्ते स्युः॥४॥

अथ योगषट्कस्य नामान्याह—

ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः।
कोशश्चेत्येतेषामभिधास्ये लक्षणं सफलम्॥५॥

ग्रहसंवर्त, ग्रहसमागम, ग्रहसम्मोह, ग्रहसमाज, ग्रहसन्निपात और ग्रहकोश—ये छः योग हैं। अब इनका लक्षण और फल कहते हैं॥५॥

ग्रहसंवर्तेति। ग्रहशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते। ग्रहसंवर्त एकः। ग्रहसमागमो द्वितीयः। ग्रहसम्मोहस्तृतीयः। ग्रहसमाजश्चतुर्थः। ग्रहसन्निपातः पञ्चमः। ग्रहकोशः षष्ठः। इत्येवंप्रकाराः षड्योगाः। एषां सफलं फलसहितं लक्षणमभिधास्ये कथयिष्ये॥५॥

तच्च लक्षणं सफलमाह—

एकर्क्षे चत्वार: सह पौरैर्यायिनोऽथवा पञ्च।
संवर्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुत: स सम्मोह: ॥६॥

पौर: पौरसमेतो यायी सह यायिना समाजाख्य:।
यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा कोश: ॥७॥

उदित: पश्चादेक: प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्य:।
अविकृततनव: स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्या: ॥८॥

एक नक्षत्र में पौर के साथ पापी ग्रह मिल कर चार या पाँच संख्यक हों तो संवर्त्त, केतु या राहु हो तो सम्मोह, पौरग्रह के साथ पौरग्रह या पापी ग्रह के साथ पापी ग्रह हो तो समाज, शनैश्चर और गुरु के संयोग में कोई दूसरा ग्रह आ जाय तो कोश, एक ग्रह पश्चिम दिशा में और दूसरा पूर्व दिशा में उदित होकर दोनों एक नक्षत्रगत हों तो सन्निपात तथा उक्त पाँचों लक्षणों से भिन्न लक्षणयुक्त होने से समागम होता है। इस समागम में ताराग्रह निर्विकार शरीर वाले, निर्मल और विपुल बिम्ब वाले शुभ होते हैं; अन्यथा अशुभ होते हैं।।६-८।।

एकस्मिन् ऋक्षे नक्षत्रे चत्वारो ग्रहा: स्थिता भवन्ति पञ्च वा, ते यदि यायिन: पौरैश्च सह समेता भवन्ति तदा संवर्तो नाम योगो भवति। तत्रैव यदि शिखी केतू राहुर्वा भवति तदा योग: सम्मोहो नाम भवति।

पौरो ग्रह: पौरेण ग्रहेण समेत: संयुक्तो यदि यायी यायिना वा सह यद्येकस्मिन्नृक्षे भवति तदा स समाजाख्यो योगो भवति। समाजेत्याख्या यस्य। यम: सौरो जीवो गुरु:। अनयो: सङ्गमे संयोगे यद्यन्य: कश्चिद् ग्रह आगच्छेत्तदा कोशाख्यो योग:।

एको ग्रह: पश्चात् पश्चिमायां दिश्युदित:। आदित्यमण्डलान्निर्गत:। अन्यो द्वितीय: प्राक् च पूर्वस्यां दिशि अर्कमण्डलादेवोद्ग‌तस्तौ तथाभूतौ यद्येकर्क्षं गतौ भवतस्तदा स सन्निपाताख्यो योग:। एतेषां पञ्चानां संस्थानानामभावे यो ग्रहसंयोग: समागम इति ज्ञेय:। तत्र च समागमे सर्व एव ताराग्रहा अविकृततनवो निर्विकारशरीरा: स्निग्धा निर्मला विपुला विस्तीर्णाश्च धन्या: शुभा: अन्यथा अशुभा इति। तथा च समाससंहितायाम्—

ग्रहकोशसन्निपातौ संवर्तसमागमौ समाजश्च।
सम्मोहश्चेति तेषां लक्षणमस्तात् समादेश्यम्।।
सूर्यजगुरुसंयोगे द्वावप्येकोऽपर: समागच्छेत्।
स हि भवति कोशसंज्ञो दुर्भिक्षभयावहो लोके।।
एक उदित: प्रतीच्यामपर: प्राच्यां ग्रहोदितो यदि च।
अन्योन्यमथोस्राभिर्विलिखेत् स हि सन्निपाताख्य:।।

सह पौरेण च पौरो यायी सह यायिना ग्रहो यश्च।
दृश्येत समायुक्तः स समाजाख्यः समुद्दिष्टः।।
अथ यायिनागराख्याश्चत्वारः पञ्च वा सह भवेयुः।
एकर्क्षे संवर्तः शिखिराहुयुतः स सम्मोहः।।

अन्यथा समागमो यतः पूर्वमेवोक्तम्—

प्रत्यर्चिषः प्रसन्नाः सम्भृतकिरणाः प्रदक्षिणावर्ताः।
सुस्निग्धामलतनवः क्षेमसुभिक्षावहास्ते स्युः।।६-८।।

अथैतेषां फलान्याह—

समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशौ भयदौ प्रजानाम्।
समाजसंज्ञे सुसमा प्रदिष्टा वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते ॥९॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो विंशः ॥२०॥

सम्मोह और कोश में प्रजाओं को भय, समाज में सुसम (पूर्व से पश्चात् अधिक फल) और सन्निपात में परस्पर द्वेष होता है।।९।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां ग्रहशृङ्गाटकाध्यायो विंशः ॥२०॥

संवर्तसमागमाख्यौ द्वौ योगौ समौ। न शुभं नाप्यशुभं कुर्वाते इत्यर्थः। यादृशा भावाः पूर्वमभूवंस्तादृशा एव संवर्तसमागमयोरिति। सम्मोहकोशौ प्रजानां लोकानां भयदौ भयं ददतः। समाजसंज्ञे समाजाख्ये सुसमा सुशोभना समा प्रदिष्टा उक्ता। तद्वर्षं शोभनं भवतीत्यर्थः। केचिद्बहुवचनं पठन्ति। सुसमाः प्रदिष्टा इति। सुसमा भावाः प्रदिष्टा उक्ताः। यादृशाः पूर्वमभूवन् तदधिका भवन्तीत्यर्थः। सन्निपाते वैरप्रकोपः। लोकानां परस्परं वैरं भवति। खलुशब्द आगमद्योतनार्थः। तथा च काश्यपः—

संवर्तसङ्गमौ मध्यौ सम्मोहो भयदः स्मृतः।
कोशश्चानिष्टफलदः समाजाख्यः सुमध्यमः।
सन्निपाते महावैरमन्योन्यमुपजायते।।

तथा च समाससंहितायाम्—

संवर्तसमागमयोः साम्यं मोहे भयानि कोशे च।
सुसमा समाजसंज्ञे वैराण्यथ सन्निपाताख्ये।।

तथा चात्रायं विशेषः समाससंहितायाम्—

दुर्भिक्षरोगतस्करशस्त्रावृष्टिक्षुधं ग्रहाः कुर्युः।
आनलवीथ्यां ज्ञेया अजवीथ्यां नेत्रपरिहानिः।।
शस्त्रभयं मृगवीथ्यां जारद्गव्यां क्षुधं च रोगांश्च।
पशुनाशं गोवीथ्यामृषभाख्यायां च नृपपीडा।।
सुसुभिक्षमिरावत्यां गजवीथ्यां च क्रतूत्सवामोदाः।
अतिजलमोक्षं कुर्युर्नामाख्यायां च सर्वे तु।।
ग्रहोदये प्रवासे च सोमसूर्यग्रहे तथा।
विचार्य वीथीमार्गांश्च लोके ब्रूयाच्छुभाशुभम्।। इति।।९।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
ग्रहशृङ्गाटकंनाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ गर्भलक्षणाध्यायः

अथ गर्भलक्षणं नामाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनदर्शनार्थमाह—

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥१॥

संसार का प्राण अन्न है, वह अन्न वर्षा ऋतु के अधीन है; अतः यत्नपूर्वक वर्षा ऋतु की परीक्षा करनी चाहिये।।१।।

जगतो विश्वस्यान्नं प्राणा असवः। यतः प्राणिनामन्नैर्विना प्राणा न वर्तन्ते। तच्चान्नं प्रावृट्कालस्य वर्षासमयस्यायत्तमाधीनं यस्मादतोऽस्माद्धेतोः प्रयत्नेनातिशयेन प्रावृट्कालः परीक्ष्यो विचार्य इत्यर्थः।।१।।

अथ तल्लक्षणानि वक्ष्यामीत्याह—

तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निबद्धानि तानि दृष्ट्वेदम्।
क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवज्रादिरचितानि ॥२॥

गर्ग, पराशर, काश्यप, वज्र आदि मुनियों के द्वारा निबद्ध गर्भलक्षण को देखकर मैं वर्षाकाल का लक्षण कर रहा हूँ।।२।।

तस्य प्रावृट्कालस्य यानि लक्षणानि विज्ञानकारणानि मुनिभिर्वसिष्ठादिभिर्निबद्धानि रचितानि तानि दृष्ट्वा अवलोक्य, तथा गर्गपराशरकाश्यपवज्रादिभिर्यानि रचितानि विरचितानि। आदिग्रहणाद्बादरायणाऽसितदेवला गृह्यन्ते। तानि सर्वाणि दृष्ट्वा मयेदं प्रावृट्काललक्षणं क्रियत इति।।२।।

अथ गर्भलक्षणज्ञस्य दैवविदः प्रशंसार्थमाह—

दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥३॥

जो दैवज्ञ रात-दिन गर्भलक्षण में अविक्षिप्त चित्त होकर लगे रहते हैं, मुनि की तरह उनकी वाणी वृष्टि-ज्ञान में मिथ्या नहीं होती है।।३।।

यो दैववित् कालज्ञोऽविहितचित्तोऽविक्षिप्तचित्तः, न विहितं चित्तं यस्य, अनन्यमनाः, तत्पर इत्यर्थः। केचिदवहितचित्त इति पठन्ति। अविक्षिप्तचित्तो द्युनिशमहोरात्रं यो गर्भलक्षणे भवति तस्याम्बुनिर्देशे वृष्टिकथने मुनेर्ऋषेरिव वाणी गीर्मिथ्या निष्फला न भवति; अपि तु सत्यस्वरूपा भवति। यस्मिन् दिने यस्यां वेलायां स वृष्टिमादिशति तत्र सत्यस्वरूपा भवतीत्यर्थः।।३।।

अथ शास्त्रप्रशंसार्थमाह—

किं वातः परमन्यच्छास्त्रज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव।
प्रध्वंसिन्यपि काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति॥४॥

इस ज्योतिषशास्त्र से कौन शास्त्र अच्छा है? अर्थात् कोई नहीं; जिसको जानकर इस विनाशी कलिकाल में भी मनुष्य त्रिकालदर्शी होते हैं॥४॥

अतोऽस्माद् गर्भलक्षणशास्त्राज्ज्योतिःशास्त्राद्वा अन्यदपरं शास्त्रं ज्यायः प्रशस्ततरं किं वास्ति विद्यते। यच्छास्त्रं ग्रन्थं ज्ञात्वा कलौ युगे प्रध्वंसिन्यपि सर्वशास्त्रविनाशकर्तरि सत्यपि। यतः सर्वशास्त्राणां कलौ दिनानुदिनं ध्वंसोऽस्ति। तथाभूतेऽपि त्रिकालदर्शी भूत-भविष्यद्वर्तमानकालस्य वेत्ता भवतीत्यर्थः॥४॥

अथात्रै परमतं स्वमतं चाह—

केचिद्वदन्ति कार्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसा स्युः।
न च तन्मतं बहूनां गर्गादीनां मतं वक्ष्ये॥५॥

किसी का मत है कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। यह सबका मत नहीं है; अतः अब गर्ग आदि आचार्यों का मत कहते हैं॥५॥

केचिदाचार्याः सिद्धसेनप्रभृतयः कार्तिकमासस्य शुक्लान्तं शुक्लपक्षावसानं पौर्णिमान्तं समतीत्यातिक्रम्य गर्भदिवसाः स्युर्भवेयुरिति वदन्ति कथयन्ति। तथा च सिद्धसेनः—

शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत्।
गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम्॥

न च तन्मतं बहूनामिति। यदेतत्प्रागुक्तं कार्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युरिति, तच्च बहूनां प्रभूतानां मुनीनां न मतम्। तस्माद् गर्गादीनां गर्गवसिष्ठपराशरऋषि-पुत्रकश्यपानां मतं वक्ष्ये कथयिष्य इति॥५॥

तच्चाह—

मार्गशिरःसितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम्।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्॥६॥

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में स्थित हो, उस समय से गर्भों का लक्षण जानना चाहिये। (यहाँ पर 'वा' शब्द चार्थक है)॥६॥

मार्गशीर्षमासस्य सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति शुक्लपक्षप्रतिपदारभ्य क्षपाकरे चन्द्रे अषाढां पूर्वां वा समुपगते पूर्वाषाढां प्राप्ते। वाशब्दोऽत्र चार्थे। मार्गशीर्षशुक्लपक्षे यदा पूर्वा-षाढास्थश्चन्द्रमा भवति तदारभ्य गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयं ज्ञातव्यमिति। तथा चात्र गर्गः—

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाव्यवस्थिते।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्॥

कश्यपोऽपि—

सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा।
पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत्।। इति।।६।।

अथ धृतस्य गर्भस्य प्रसवकालज्ञानमाह—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ।।७।।

चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती है, चन्द्र के कारण १९५वें दिन में उसका प्रसव होता है।

विशेष—चान्द्रमान से १९५ दिन ग्रहण करने से उस दिन वह नक्षत्र नहीं आता है; अतः सावन मान से १९५ वाँ दिन ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि सावन मान से १९५ वें दिन में ठीक वही नक्षत्र आता है।।७।।

यो गर्भो यन्नक्षत्रमुपगते यस्मिन्नक्षत्रे व्यवस्थिते चन्द्रे भवेत् स गर्भश्चन्द्रवशाच्चन्द्र-युक्तनक्षत्रवशात् प्रसवमायाति। कियता कालेनेत्याह—

पञ्चनवते दिनशते अतिक्रान्ते। सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गतैस्तत्रैव तस्मिन्नेव नक्षत्रे प्रसवमायाति प्रसूयत इति। एतदुक्तं भवति—यन्नक्षत्रमुपगते चन्द्रे गर्भः सम्भूतस्तस्मात् पञ्चनवते दिनशते अतीते तन्नक्षत्रस्थिते चन्द्रे प्रसवमायाति। नन्वत्र यदुक्तं चन्द्रवशात् प्रसवमायाति तत्किमत्र चान्द्रमानमासे निर्दिष्टम्? चान्द्रमानवशात् पञ्चनवते दिनशते प्रसवं याति। एतन्न। चन्द्र-वशादित्यनेनेदं प्रदर्शयति यन्नक्षत्रे चन्द्रे गर्भः सम्भूतः स सावनमानवशात्तन्नक्षत्रस्थे प्रसवं याति। नन्वत्र चन्द्रवशादित्युक्तं कथं सावनं मानमवगम्यत इति; उच्यते। 'तत्रैव प्रसवमायाति' इतिवचनाद्युगयातदिवसेषु गर्भदिवसात् पञ्चनवतिशतयुक्तेष्वहर्गणे कृते तन्नक्षत्रगतश्चन्द्रमा भवति। अन्यथा पञ्चनवते दिनशते चन्द्रः पुनर्गर्भनक्षत्रे न भवत्येव। तस्मान्निश्चीयते स चन्द्रवशाच्चन्द्रकृतगर्भलक्षणवशात्तत्रैव व्यवस्थिते चन्द्रे गर्भः प्रसवं याति। सावनं मानं प्रागस्माभिर्विशेषेण प्रदर्शितम्। संख्योपदिष्टानि यानि तानि सावनमानेनादेष्टव्यानि। साव-नान्याचार्येण प्रदर्शितानि—'युगवर्षमासपिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रमि'त्यादि। तथा चाचार्येण समाससंहितानिबन्धे स्पष्टतरमुक्तम्—

पौषासितपक्षाद्यैः श्रावणशुक्लादयो विनिर्देश्याः।
सार्द्धैः षड्भिर्मासैर्गर्भविपाकः स नक्षत्रे।।

तस्मादेवं स्थितं सावनमानवशाद् गर्भप्रसव इति।।७।।

अथ पुनरपि गर्भाणां धृतानां प्रसवकालज्ञानमाह—

सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ।
नक्तम्प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम् ।।८।।

यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्ण पक्ष में, कृष्ण पक्ष में हो तो शुक्ल पक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में, पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।। ८।।

सितपक्षभवाः शुक्लपक्षसम्भूता गर्भाः पुरतः पञ्चनवते दिनशते गते कृष्णपक्षे प्रसवमायान्ति। एवं कृष्णपक्षोद्भवाः शुक्लपक्षे। द्युसम्भवा दिनसम्भवा गर्भा रात्रौ प्रसवमायान्ति। नक्तम्प्रभवा रात्रिसम्भवाश्चाहनि दिवसे प्रसवमायान्ति। सन्ध्याजाताः सन्ध्यायामेव व्यत्ययाद्भवन्ति। प्राक्सन्ध्यासम्भूता अपरसन्ध्यायामपरसन्ध्यासम्भूताः प्राक्सन्ध्यायामिति। तथा च गर्गः—

दिवा भवति यो गर्भो रात्रौ स इति पच्यते।
शुक्लपक्षे समुद्भूतः कृष्णे पक्षे च वर्षति।।
पौर्णमास्यामथोत्पन्नः सोऽमावास्यां प्रवर्षति।
अमावास्यां समुद्भूतः पूर्णमास्यां प्रवर्षति।।
पूर्वसन्ध्यासमुद्भूतः पश्चिमायां प्रवर्षति।
पश्चिमायां समुद्भूतः पूर्वसन्ध्यां प्रवर्षति।।
पूर्वाह्णे यः समुद्भूतः पश्चाद्रात्रौ प्रवर्षति।
निशायां पश्चिमे यश्च स पूर्वाह्णे प्रसूयते।।
दिनार्द्धे तु समुत्पन्नः स निशार्द्धे प्रसूयते।। इति।।८।।

अथ गर्भाणां विशेषलक्षणं कालनिर्देशं चाह—

मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च।
पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छ्रावणस्य सितम् ।।९।।

माघसितोत्था गर्भाः श्रावणकृष्णे प्रसूतिमायान्ति।
माघस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेद् भाद्रपदशुक्लम् ।।१०।।

फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः।
तस्यैव कृष्णपक्षोद्भवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले ।।११।।

चैत्रसितपक्षजाताः कृष्णेऽश्वयुजस्य वारिदा गर्भाः।
चैत्रासितसम्भूताः कार्तिकशुक्लेऽभिवर्षन्ति ।।१२।।

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द फल (अल्प वृष्टि) देने वाला होता है। यहाँ पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से मास का ग्रहण करना चाहिये। जैसे चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख कृष्ण अमान्त तक एक मास, वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से ज्येष्ठ कृष्ण अमान्त तक दूसरा मास इत्यादि। यदि पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्र शुक्ल में, फाल्गुन

शुक्ल में गर्भ हो तो भाद्र कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुल्क में प्रसव (वृष्टि) होता है।।९-१२।।

मृगशीर्षी मार्गशीर्षस्तदाद्याः प्रथमपक्षजाता गर्भा मन्दफलाः स्वल्पवर्षदा भवन्ति। प्रथमः पक्षः शुक्लपक्षस्तत्र जाताः सम्भूताः। तथा पौषशुक्लजाताश्च गर्भा मन्दफला एव। अस्मिन् गर्भलक्षणे चैत्रसिताद्या मासा विज्ञातव्याः। यथा चैत्रस्य शुक्लपक्षो वैशाखस्यं कृष्णपक्ष इत्येष चैत्रमासः। एवमन्येषां मासानामपि परिकल्पना कार्या। एवमेतच्चान्द्रमानम्।

पौषस्य कृष्णपक्षेण श्रावणस्य सितं शुक्लपक्षं निर्दिशेद् वदेत्। एतदुक्तं भवति—पौषकृष्णपक्षसम्भूतो गर्भः श्रावणशुक्लपक्षे प्रसूयते इति।

एवं माघसितोत्था गर्भा माघशुक्लपक्षे सम्भूताः श्रावणस्य कृष्णपक्षे प्रसूतिमायान्ति प्राप्नुवन्ति। तथा माघस्य कृष्णपक्षेण भाद्रपदशुक्लपक्षं निर्दिशेत्।

फाल्गुनशुक्लपक्षसम्भूता गर्भा भाद्रपदस्यासिते कृष्णपक्षे विनिर्देश्या वक्तव्याः। तस्यैव फाल्गुनस्य ये तु कृष्णपक्षोद्भवा गर्भास्तेऽश्वयुजः शुक्लपक्षेऽभिवर्षन्ति।

चैत्रसितपक्षजाताश्चैत्रशुक्लपक्षसम्भूता ये गर्भास्तेऽश्वयुजस्य कृष्णपक्षे वारिदा वृष्टिदाः। चैत्रासितसमुद्भूताश्चैत्रकृष्णोद्भवाः कार्तिकशुक्लपक्षेऽभिवर्षन्ति। तथा च गर्गः—

माघेन श्रावणं विन्द्यान्नभस्यं फाल्गुनेन तु।
चैत्रेणाश्वयुजं प्राहुर्वैशाखेन तु कार्तिकम्।।
शुक्लपक्षेण कृष्णं तु कृष्णपक्षेण चेतरम्।
रात्र्यह्नोश्च विपर्यासं कार्यं काले विनिश्चयम्।। इति।

पराशरस्याप्येवं मतम्।।९-१२।।

अथ मेघानां वायोश्च लक्षणमाह—

पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः।
शेषास्वपि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ।।१३।।

यदि गर्भकाल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसव काल में पश्चिम दिशा में, पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में हो तो उत्तर दिशा में, उत्तर दिशा में हो तो दक्षिण दिशा में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैर्ऋत्य कोण में और गर्भकाल में नैर्ऋत्य कोण में मेघ हो तो प्रसव काल में ईशान कोण में मेघ होता है। इसी तरह वायु का भी दिग्वैपरीत्य समझना चाहिये। जैसे गर्भकाल में पूर्व तरफ की वायु हो तो प्रसव काल में पश्चिम तरफ की वायु होगी—इत्यादि समझना चाहिये।।१३।।

जीमूता मेघा गर्भकाले ये पूर्वस्यां दिशि समुद्भूतास्ते प्रसवकाले पश्चात् पश्चिमायां

दिशि सम्भवन्ति। ये चापरोत्था गर्भकाले पश्चिमायां दिशि सम्भूतास्ते प्रवर्षणे प्राक्पूर्वस्यां दिशि सम्भवन्ति। शेषास्वन्यास्वपि दिक्ष्वेवमनेन प्रकारेण विपर्ययो विपरीतो भवति। तद्यथा—दक्षिणा उत्तरस्याम्, उत्तरा दक्षिणस्याम्। आग्नेया वायव्याम्, वायव्या आग्नेय्याम्। ऐशानीसम्भूता नैर्ऋत्याम्, नैर्ऋतीसम्भूता ऐशान्यामिति।

वायोरनिलस्य चाप्येवमेव विपर्ययो विपरीतो वाच्यः। यथा मेघानां दिग्व्यत्यय उक्तस्तथा वायोरपि वाच्यः। यथा पूर्वोद्भूताः पश्चात्तथा पूर्वोद्भूतो गर्भकाले वायुः प्रवर्षणकाले पश्चिमायां दिशि भवतीत्येवं सर्वत्र योज्यम्। तथा च पराशरः—

'अथ माघेन श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वयुजं वैशाखेन तु कार्तिकं शुक्लेन कृष्णं कृष्णेन शुक्लं दिवसेन रात्रिं रात्र्या दिवसं गर्भाः प्रवर्षन्ति' इति।।१३।।

अधुना गर्भसम्भवलक्षणान्याह—

ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुतो वियद्विमलम्।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिममयूखार्कौ ।।१४।।

पृथुबहुलस्निग्धघनं घनसूचीक्षुरकलोहिताभ्रयुतम्।
काकाण्डमेचकाभं वियद्विशुद्धेन्दुनक्षत्रम् ।।१५।।

सुरचापमन्द्रगर्जितविद्युत्प्रतिसूर्यका शुभा सन्ध्या।
शशिशिवशक्राशास्थाः शान्तरवाः पक्षिमृगसङ्घाः ।।१६।।

विपुलाः प्रदक्षिणचराः स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः।
तरवश्च निरुपसृष्टाङ्कुरा नरचतुष्पदा हृष्टाः ।।१७।।

गर्भाणां पुष्टिकराः सर्वेषामेव योऽत्र तु विशेषः।
स्वर्त्तुस्वभावजनितो गर्भविवृद्ध्यै तमभिधास्ये ।।१८।।

गर्भ-स्थितिकाल में आह्लादजनक, सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध श्वेत परिवेष .. व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृत और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुराकार और लोहित मेघों, काक के अण्डे के समान, मयूर के कण्ठ के समान, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनु, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा सन्ध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में स्थित पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग में होकर निर्मल उत्पातरहित ग्रहों का गमन, बाधारहित वृक्षों का अङ्कुर, मनुष्य और पशु हर्षित—इन सब गुणों से युत गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख के अन्त तक गर्भ की परीक्षा करनी चाहिये। गर्भ की वृद्धि के लिये ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों को अब आगे कहता हूँ।।१४-१८।।

गर्भग्रहणकाले ईदृशानि लक्षणानि शुभफलानि भवन्ति। तद्यथा—मारुतो वायुर्ह्लादिरा-

ह्लादकः। मृदुः सुखस्पर्शः। उदगुत्तरा। शिवदिगैशानी। शक्रदिक् पूर्वा। असामन्यतमः सम्भूतः। तथा वियदाकाशं विमलं निर्मलम्। हिममयूखश्चन्द्रः। अर्क आदित्यः। तौ स्निग्धेनारूक्षेण सितेन शुक्लेन बहुलेन घनेन परिवेषेण परिवृतौ व्याप्तौ।

वियदाकाशं पृथुबहुलस्निग्धघनम्। पृथवो विस्तीर्णाः, बहुला घनाः, स्निग्धा अरूक्षा घना मेघा यस्मिन्। तथा घनसूची मेघ एव सूच्याकारः। क्षुरकः क्षुराकारो मेघः। लोहिताभ्राणि लोहितवर्णा मेघास्तैर्युतं संयुक्तम्। वियत्काकाण्डमेचकाभं काकाण्डो वायसाण्डो नीलवर्णः, मेचको बर्हिकण्ठसमवर्णः। काकाण्डमेचकवदाभा कान्तिर्यस्मिन्। विशुद्धो निर्मल इन्दुश्चन्द्रो नक्षत्राणि भानि च यस्मिन्।

तथा सन्ध्या पूर्वापरा वा सुरचापेनेन्द्रधनुषा मन्द्रेण मधुरेण गर्जितेन। गर्जितं मेघ-शब्दः, विद्युत्तडित्, प्रतिसूर्यो द्वितीयोऽर्कः, एतैर्युक्ता शुभा शस्ता। तथा पक्षिणां विहङ्गा-नाम्, मृगाणामारण्यपशूनां च सङ्घाः समूहाः। शशिशिवशक्राशास्थाः। शशिन आशा उत्तरा दिक्, शिवाया ऐशानी, शक्राशा पूर्वा, एतास्वाशासु स्थिताः। ते च शान्तरवा मधुर-स्वनाः, अनर्काभिमुखाश्च।

तथा ग्रहा विपुला विस्तीर्णबिम्बाः। प्रदक्षिणचरा नक्षत्राणामुत्तरेण मार्गेण चरन्ति। एतत्पूर्वमेवोक्तम्।

> भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः।
> प्रदक्षिणं तत् .... ।। इति।

अतः प्रदक्षिणचराः। स्निग्धमयूखा निर्मलरश्मयः। निरुपसर्गा निरुत्पाताः। तथा तरवो वृक्षाः। निरुपसृष्टाङ्कुराः। निरुपसृष्टा निर्बाधा अङ्कुराश्च येषाम्। नरचतुष्पदा हृष्टाः। नरा मनुष्याः। चतुष्पदा गवादयः। एते हृष्टाः प्रमुदिताः।

गर्भाणामिति। एवमनेन प्रकारेण ये गुणा उक्तास्ते सर्वेषामेव गर्भाणां पुष्टिकराः। एते च मार्गशिरःसितपक्षप्रतिपत्प्रभृति वैशाखान्तं यावल्लक्षणीयाः। अत्रास्मिन् गर्भलक्षणे योऽन्यो विशेषः स्वर्तुस्वभावजनितः। स्वेनात्मीयेन ऋतुस्वभावेन जनित उत्पादितस्तं गर्भविवृद्ध्यै गर्भाणां विवृद्धये विशेषमभिधास्ये कथयिष्ये। तथा च पराशरः—

'अथ गर्भसंस्थासु माघादिषु चतुर्षु मासेषु या शुचौ धारणा। नभो नभस्यौ प्रावृट् तस्या अनु वर्षा येषु प्रसवन्ति। तत्र चापाभ्रविद्युत्स्तनयित्नुवर्षाणि गर्भास्तांल्लक्षयेत् प्रशस्तानप्रशस्तांश्च। प्रशस्ताभाश्च यस्मिन् काले सूर्येन्दुनक्षत्राश्रयाणां वर्षालिङ्गानां प्रादुर्भावः। पञ्चरूपता गर्भाणां धारणा मासेन शुद्धिः' इति।।१४-१८।।

अधुना तल्लक्षणमाह—

> **पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः।**
> **नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपातः ।।१९।।**

माघे प्रबलो वायुस्तुषारकलुषद्युती रविशशाङ्कौ।
अतिशीतं सघनस्य च भानोरस्तोदयौ धन्यौ ॥२०॥

फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽभ्रसम्प्लवाः स्निग्धाः।
परिवेषाश्चासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥२१॥

पवनघनवृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेषाः।
घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ॥२२॥

पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्या रक्त और परिवेषयुत मेघ शुभ होता है तथा मार्गशीर्ष में अल्प शीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता है। माघ मास में प्रबल भयङ्कर वायु, सूर्य और चन्द्र हिमयुक्त होकर मलिन कान्ति वाले, अति शीत और मेघरहित सूर्य का उदयास्त शुभ है। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयङ्कर वायु, मेघों का उदय, सूर्य और चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेष, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ है। चैत्र मास में वायु, वृष्टि और परिवेषयुत गर्भ शुभ होता है। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत् और मेघ के गर्जनयुत गर्भ शुभ होता है।।१९-२२।।

पौषे मासे समार्गशीर्षे मार्गशीर्षसहिते। सन्ध्यारागः सन्ध्ययो रक्तत्वम्। अम्बुदा मेघाः सपरिवेषाः परिवेषयुक्ताः। तथा मार्गशीर्षे मासि नार्थं नातिबहु शीतम्। पौषे नातिहिमपातः शुभः।

माघे मासि प्रबलश्चण्डो वायुः। तथा रविशशाङ्कावर्कचन्द्रौ तुषारकलुषद्युती। तुषारद्युतिर्हिमकान्तिः सूर्यः। कलुषद्युतिरनिर्मलकान्तिश्चन्द्र इत्यर्थः। अतिशीतमत्यर्थं शीतम्। भानोरादित्यस्य सघनस्य समेघस्यास्तोदयौ धन्यौ द्वावपि शुभावित्यर्थः।

फाल्गुनमासे पवनो वायू रूक्षः परुषः। चण्डोऽतिवेगः। अभ्राणां मेघानां सम्प्लवा उद्गमाः। स्निग्धाः सूर्याचन्द्रमसोः परिवेषाः। असकला अखण्डाः। रविरादित्यः कपिलः कपिलवर्णस्ताम्रस्ताम्रवर्णश्च शुभः प्रशस्तः।

चैत्रे मासि गर्भाः पवनेन वायुना घनैर्मेघैर्वृष्ट्या वर्षणे च युक्ताः सपरिवेषाः परिवेषसहिताः शुभाः। वैशाखे मासि घनैर्मेघैः। पवनेन वायुना। सलिलेन जलेन। विद्युता तडिता। स्तनितेन गर्जितेन च युक्ता गर्भा हिताय भवन्ति। तथा च कश्यपः—

शीतमभ्रं तथा वायुश्चन्द्रार्कपरिवेषणम्।
माघे मासि परीक्षेत श्रावणे वृष्टिमादिशेत्।।
फाल्गुने चात्र सङ्घातं वृष्टिस्तनितमेव च।
पुरोवाताश्च ये प्रोक्ता मासि भाद्रपदे शुभम्।।
बहुपुष्पफला वृक्षा वाताः शर्करवर्षिणः।
शीतवर्षं तथाभ्राणि चैत्रेणाश्वयुजं वदेत्।।

वहन्ति मृदवो वाता: पुर: शीघ्रं प्रदक्षिणा:।
वैशाखे तानि रूपाणि कार्तिके मासि वर्षति।।

तथा च समाससंहितायाम्—

शस्तानि मृगान्मासाच्छीतहिमवायुमेघकृतानि।
स्तनिततडिज्जलमारुतघनतापान्यतिशयं तु वैशाखे।।
कृष्णेन शुक्लपक्ष: सितेन कृष्णो निशा दिनोत्थेन।
रात्र्याह: सन्ध्यायां सन्ध्यादिग्व्यत्ययाज्जलदा:।। इति।।१९-२२।।

अथ गर्भकाले मेघानां लक्षणमाह—

मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभास: ।
जलचरसत्त्वाकारा गर्भेषु घना: प्रभूतजला: ।।२३।।

तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदा:।
रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भ: प्रसवकाले ।।२४।।

मोती या चाँदी के समान श्वेत अथवा तमाल वृक्ष, नील कमल या अञ्जन के समान अति कृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले गर्भकालिक मेघ हों तो बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अति भयङ्कर सूर्यकिरण से तापित, अल्प वायु से युत गर्भकालिक मेघ १९५वें दिन (प्रसवकाल) में रुष्ट की तरह होकर धाराप्रवाह अतिवृष्टि करते हैं।।२३-२४।।

ये घना मेघा मुक्तारजतनिकाशा मुक्ताफलानां रजतस्य रौप्यस्य निकाशा: सदृशा:। अतिशुक्ला इत्यर्थ:। अथवा तमालनीलोत्पलाञ्जनाभास:। तमालवृक्षस्य नीलोत्पलस्याञ्जनस्य च सदृशवर्णा:। अतिकृष्णा इत्यर्थ:। जलचरसत्त्वाकारा:। जलचरा ये सत्त्वा जलप्राणिन:। झषमकरमत्स्यनक्रकूर्मशिशुमारप्रभृतय:। एवंविधा गर्भेषु घना दृष्टा: प्रभूतजला बहुवर्षदा:।

तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता इति। ये मेघास्तीव्रै: प्रचण्डैर्दिवाकरकिरणैरर्करश्मिभिरभितापिता दग्धदेहा:। मन्दमारुता: स्वल्पपवना जलदा मेघा:। एवंविधा ये गर्भकाले दृश्यन्ते ते प्रसवकाले पञ्चनवते दिवसशते काले अम्भ: पानीयं रुषिता रुष्टा: क्रुद्धा इव धाराभिर्विसृजन्त्युत्सृजन्ति। अतिवृष्टिदा भवन्तीत्यर्थ:। तथा च समाससंहितायाम्—

पृथुघनबहुला जलदा जलचरसत्त्वान्विता: शुभा गर्भा:।
स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिमकरोष्णकरौ।।
नृखगमृगा मुदिता निरुपहतास्तरव:।
स्निग्धतडित्प्रतिसूर्यकमत्स्यशक्रधनु:प्रथमापरमध्ये ।
शान्तरवा मृगपक्षिमनुष्या शक्रशशीश्वरदिक्पवनाश्च।। इति।।२३-२४।।

अधुना गर्भोपघातलक्षणमाह—

गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातदिग्दाहा: ।
क्षितिकम्पखपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाता: ।।२५।।

रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्शनं राहोः।
इत्युत्पातैरेतैस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥२६॥

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत्, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन, भूकम्प, गन्धर्व नगर, नाभस, कीलक आदि केतुओं का दर्शन, ग्रहयुद्ध, निर्घात (शब्द), रुधिर आदि (रुधिर, मांस, वसा, घृत, तैल आदि) की विकारयुत वृष्टि, परिघ (४९वें अध्याय के १९ वें श्लोक में वर्णित परिघ का लक्षण), इन्द्रधनु, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन गर्भ का नाश करने वाले होते हैं।।२५-२६।।

इमानि वक्ष्यमाणानि गर्भाणामुपघातलिङ्गानि विनाशचिह्नानि। एतैर्गर्भो वृतो विनश्यति। तद्यथा—उल्कापातः। अशनिर्विद्युत्। पांशुपातः पांशुवर्षणम्। दिग्दाहो दिशां दाहः। क्षितिकम्पो भूचलनम्। खपुरं गन्धर्वनगरम्। कीलकस्तामसकीलकः। केतुः शिखी। ग्रहयुद्धम्। निर्घातो निर्घातशब्दः।

तथा वृष्टौ वर्षणे। रुधिरादिवैकृतं विकारः। रक्तमांसवसाघृततैलादिवर्षणम्। परिघलक्षणं वक्ष्यति—'परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा' इति। तस्य परिघस्येन्द्रधनुषः सुरचापस्य दर्शनम्। राहोर्दर्शनं चन्द्रार्कग्रहणदर्शनम्। इत्येवं प्रकारैरुत्पातैरन्यैस्त्रिविधैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैरुत्पातैर्गर्भो हतो नष्टो वाच्यः। एतदुक्तं भवति—गर्भे दुष्टे यदि पश्चादुक्तानामुत्पातानामन्यतमो भवति तदा गर्भो हतो यस्य समनन्तरं पश्चादुत्पातसम्भवो नान्य इति। तथा च गर्गः—

अश्ववर्षं तमोवर्षं मांसशोणितवर्षणम्।
उल्कानिर्घातकम्पश्च वज्रपातस्तथैव च।।
परिवेषाः परिधयो वासवस्य धनूंषि च।
अनभ्रस्तनितं वर्षं दिशां दाहस्तथैव च।।
अनार्तवं पुष्पफलं वारणीयेषु वर्षणम्।
ग्रहयुद्धेषु घोरेषु हतान् गर्भान् विनिर्दिशेत्।।

तथा च पराशरः—'तेषां ग्रहाणामुदयास्तमयोल्कानिर्घाताशनिपातगन्धर्वनगरदिग्दाहार्करश्मिवर्णविकारभूचलनप्रादुर्भावो वर्षास्ववर्षाय' इति।।२५-२६।।

पुनरपि विशेषमाह—

स्वर्तुस्वभावजनितैः सामान्यैर्यैश्च लक्षणैर्वृद्धिः।
गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥२७॥

ऋतुओं के स्वभावजनित ('पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः' इत्यादि पद्योक्त) और सामान्य ('ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुत' इत्यादि पद्योक्त) लक्षणों से युत गर्भ की वृद्धि; अन्यथा हानि होती है।।२७।।

'पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः' इति स्वभावजनितानि गर्भाणां

लक्षणानि। तथा—'ह्लादिमृदूदक्शिवशक्रदिग्भवो मारुत:' इत्यादीनि सामान्यलक्षणानि। एवं स्वर्तुस्वभावजनितैर्यैश्च सामान्यैर्लक्षणैर्गर्भाणां वृद्धिरुक्ता तैरेव विपरीतैर्विपर्ययस्थैर्विपर्ययो विपरीतो गर्भाणां हानिरिति। अर्थादेवं मध्यमैर्मध्यमं फलं वक्तव्यमिति।।२७।।

अथ येषु नक्षत्रेषु गर्भ: सम्भूतो बहुतोयदो भवति तान्याह—

भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु ।
सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ।।२८।।

सभी ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, रोहिणी– इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसवकाल में अधिक वृष्टि करता है।। २८।।

भद्रपदाद्वयं पूर्वभद्रपदोत्तरभद्रपदे। विश्वेदेव उत्तराषाढा। अम्बुदेव: पूर्वाषाढा। पैतामहो रोहिणी। एतेषु पञ्चसु नक्षत्रेषु सर्वेष्वप्यृतुषु वृद्धो गर्भ: 'पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदा:' इत्यादिभिर्गुणै: पुष्ट: प्रवर्षणे बहुतोयद: प्रभूतवर्षदो भवति।।२८।।

साम्प्रतं येषु नक्षत्रेषु गर्भ: सम्भूतो बहून्यहानि वर्षति तान्याह—

शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुत: शुभो गर्भ: ।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधै: ।।२९।।

शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती या मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता है तथा उक्त पाँचों नक्षत्रों में बढ़े हुए गर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से हत हों, उतने दिन तक वर्षा नहीं होती है।।२९।।

शतभिषगाश्लेषा आर्द्रा स्वातिर्मघा:। एभ्य: शतभिषगादिभ्य: पञ्चभ्य: सम्भूतो गर्भ:। एतेषां मध्यादेकतमेन नक्षत्रेण शुभ: शुभफलो भवति। स च बहून् दिवसान् पुष्णाति प्रभूतान्यहानि पुष्टिं नयति। पुष्टिनिमित्तान्यभिहितानि—'ह्लादिमृदूदक्' इत्यादीनि। **हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैरिति**। एष्वेव नक्षत्रेषु विवृद्धो गर्भस्त्रिविधैरुत्पातैर्दिव्यान्तरिक्षभौमैर्हतो हन्त्यात्मानं विनाशयतीत्यर्थ:। एतदुक्तं भवति—हतस्तावन्त्येव दिनानि न वर्षति। 'गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांशुपातदिग्दाहा:' इत्याद्युक्तानि। त्रिविधमुत्पातलक्षणमाचार्येण समाससंहितानिबन्धने स्पष्टतरमुक्तम्—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च।
दिग्दाहोल्कामारुतपरिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्।।

तथा च गर्ग:—

प्राजापत्यं मघा श्लेषा रौद्रं चानिलवारुणम्।
आषाढाद्वितयं चैव तथा भद्रपदाद्वयम्।।
नक्षत्रदशकं चैतद्यदि स्याद् ग्रहदूषितम्।
न गर्भा: सम्पदं यान्ति योगक्षेमं न कल्पते।।

उल्कयाभिहतं वापि केतुना वाप्यधिष्ठितम्।
न गर्भाः सम्पदं यान्ति वासवश्च न वर्षति।। इति।।२९।।

अधुनानन्तरोक्ताया दिवससंख्याया नियमं करोति—

मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता।
विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ।।३०।।

उक्त पाँच नक्षत्रों से किसी एक नक्षत्र में मार्गशीर्ष में गर्भ की वृद्धि हो तो प्रसवसमय से ८ दिन, पौष में ६ दिन, माघ में १६ दिन, फाल्गुन में २० दिन, चैत्र में २० दिन और वैशाख में ३ दिन तक वृष्टि होती है।।३०।।

मृगमास आदिर्येषां मासानां ते मृगमासादयस्तेषु मृगमासादिषु प्राक्पठितानां पञ्चानामन्यतमेन नक्षत्रेण यदा गर्भो विवृद्धस्तदा यथासंख्यमेते दिवसा योजनीयाः। यदोक्तनक्षत्राणामन्यतमेन नक्षत्रेण मार्गशीर्षे मासि गर्भः सम्भूतस्तदा पञ्चनवते दिवसशतेऽतिक्रान्ते अष्टौ दिवसान् प्रवर्षति देवः। एवं पौषे षट्। माघे षोडश। फाल्गुने चतुर्युक्ता विंशतिश्चतुर्विंशतिः। चैत्रे विंशतिः। अथानन्तरं वैशाखे दिवसत्रयमिति। एवं शतभिषगादिभ्यः पञ्चभ्यो मध्यादेकतमर्क्षेण वृष्टिप्रमाणम्। अमुमेवार्थमृषिपुत्र आह—

माघे षोडशसंख्यास्तु षोडशाष्टौ च फाल्गुने।
विंशतिश्चैत्रमासे तु त्रयश्चेन्द्राग्निदैवते।।
अष्टौ सौम्येऽथ षट् पौषे संख्यास्तासु च वर्षति।

एवमेतावन्ति दिनानि पञ्चनवते दिवसशते गतेऽतिक्रान्ते प्रवर्षतीत्यर्थः। गर्भो बहुतोयदो भवत्यनेन वातिदिष्टं यथा प्रवर्षणे एतावती पानीयसंख्या अध्वसंख्या वाचार्येण समाससंहितानिबन्धने उक्ता—

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्याऽतः।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद् रूपेणैकेन यो गर्भः।। इति।

निमित्तानि पञ्चाचार्यो वक्ष्यति—

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः।
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः।। इति।

निमित्तान्येकोत्तरवृद्ध्या मार्गशीर्षमासादिषु परिपठितानि। पौषे समार्गशीर्ष इत्यादि। तथा मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफला इत्यनेन ग्रन्थेन मार्गशीर्षजातानां गर्भाणां पौषशुक्लजातानां मन्दफलतोक्ता, तदपवादमाह—

सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवतीति। तेन पञ्चनिमित्तसंयुक्तो गर्भः पुष्टो बहुतोयदो भवति। गर्भाणां पुष्टिनिमित्तान्यभिधाननिमित्तानि च प्राक्प्रदर्शितानि। विशेषनिमित्तैर्युक्तो गर्भो बहुतोयदो भवति।।३०।।

तान्याह—

पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्द्धार्द्धमेकहान्याऽतः ।
वर्षति पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भः ।।३१।।

वक्ष्यमाण पाँच निमित्तों (इसी अध्याय के सैतींसवें श्लोकोक्त निमित्तों) से युत गर्भ प्रसवकाल में सौ योजन तक बरसता है। चार निमित्तों से युत गर्भ पचास योजन तक, तीन निमित्तों से युत गर्भ पच्चीस योजन तक, दो निमित्तों से युत गर्भ साढ़े बारह योजन तक और एक निमित्त से युत गर्भ पाँच योजन तक प्रसवकाल में बरसता है।।३१।।

पञ्चभिर्निमित्तैः संयुक्तो गर्भ आसमन्ताद्योजनशतं वर्षति। तदर्द्धार्द्धम्। तदित्यनेन तस्यैव योजनशतस्य परामर्शं करोति। पञ्चानां निमित्तानामेकैकनिमित्तहानौ सामान्येनैवाशेष-विधिक्रमेणार्द्धमत्र योजनीयम्। चतुर्निमित्तस्तदर्धं शतार्धं पञ्चाशद्योजनानि वर्षति। त्रिनिमित्तो गर्भस्तदर्धं पञ्चविंशतियोजनानि। द्विनिमित्तो गर्भस्तदर्द्धं सार्द्धानि द्वादशयोजनानि वर्षति। **पञ्चनिमित्ताद्रूपेणैकेन यो गर्भ इति**। पञ्चानां निमित्तानामन्यतमरूपेणैकेन यः संयुक्तो गर्भः समन्तात्पञ्चयोजनानि वर्षति। पञ्चसंख्याग्रहणं निर्दिष्टार्द्धक्रमनिर्देशव्युदासार्थमिति।

प्रत्येकनिमित्तसंयुक्तानां गर्भाणां पानीयसंख्यामाह—

द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन ।
षड् विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ।।३२।।

पाँचों निमित्तों से युत गर्भ एक द्रोण बरसता है। वायु से युत गर्भ तीन आढ़क, विद्युत् से युत गर्भ छः आढ़क, मेघों से युत गर्भ नौ आढ़क और मेघों के गर्जन से युत गर्भ प्रसवकाल में बारह आढ़क बरसता है।।३२।।

वृष्टेराढकद्रोणप्रमाणपरिज्ञानं पराशर आह—

आढकांश्चतुरो द्रोणमपां विन्द्यात् प्रमाणतः।
धनुष्प्रमाणं मेदिन्या विन्द्याद् द्रोणातिवर्षणम्।।
समे विंशाङ्गुलानाहे द्विचतुष्काङ्गुलोच्छ्रिते।
भाण्डे वर्षति सम्पूर्णं ज्ञेयमाढकवर्षणम्।।

तथा चाचार्य आह—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम्।। इति।

द्रोणः पञ्चनिमित्तैः पञ्चनिमित्तसंयुक्ते गर्भे द्रोणः प्रवर्षति। षड् विद्युता। आढकानीत्यनु-वर्तते। विद्युता संयुक्ते गर्भे आढकानि षड् वर्षति। नवाभ्रैर्मेघैः संयुक्ते गर्भे नवाढकानि वर्षति। स्तनितेन द्वादश प्रसवे। स्तनितेन गर्जितेन द्वादशाढकानि प्रसवकाले वर्षति। प्रसवकालेऽभिहित एव। पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति। अमुमेवार्थं वृद्धगर्ग आह—

वाते तु आढकं विन्द्यात् स्तनिते द्वादशाढकम्।
नवाढकं तथाभ्रेषु द्योतितेषु षडाढकम्।।
निमित्तपञ्चकोपेते द्रोणं वर्षति वासवः।। इति।।३२।।

अत्रैव विशेषमाह—

क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः।
शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ।।३३।।

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युत हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती है। यदि वहाँ पर (गर्भकालिक नक्षत्र में) चन्द्र या रवि स्थित होकर शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो तो बहुत वर्षा देने वाला गर्भ होता है।

गर्भनक्षत्रे क्रूरग्रहसंयुक्ते पापग्रहाधिष्ठिते गर्भाः करकाशनिमत्स्यवर्षदाः। करका उपलवृष्टिः, अशनिर्विद्युत्, मत्स्या मीनास्तैः संयुक्तं वर्षं ददति। शशिनि चन्द्रे रवावादित्ये वा तत्र स्थिते तस्मिंश्च शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन संयुक्ते ईक्षिते दृष्टे च। संयुतश्चासौ ईक्षितश्च तस्मिंस्तथाभूते भूरिवृष्टिकरा बहुवर्षदा गर्भाः।।३३।।

अथ गर्भसम्भवे सति विशेषलक्षणमाह—

गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता।
द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ।।३४।।

यदि गर्भसमय में निमित्तरहित अति वृष्टि हो तो गर्भ का नाश होता है तथा यदि पच्चीस पल या उससे अधिक वृष्टि हो तो गर्भस्राव हो जाता है।।३४।।

गर्भसमये गर्भग्रहणकाले निर्निमित्तकृता अतिवृष्टिः। निमित्तं कारणं यथा—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चान्द्रौ।। इति।

एवं निमित्तरहिता अतिवृष्टिर्गर्भाभावाय गर्भविनाशाय भवति। द्रोणः पलशतद्वयं तस्याष्टांशः पलानां पञ्चविंशतिः। तदधिके वृष्टे गर्भः स्रुतः परिस्रुतो भवति। न जलप्रद इत्यर्थः।।३४।।

अत्रैव विशेषमाह—

गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः।
आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ।।३५।।

पुष्ट गर्भ ग्रहोपघात आदि (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) कारणों से जलप्रद न हो तो आत्मीय गर्भ (फिर द्वितीय गर्भग्रहण) काल में उपलमिश्रित वृष्टि करता है।।३५।।

यो गर्भो ग्रहणकाले पुष्टः प्रसवे प्रसवकाले पञ्चनवते दिनशते ग्रहोपघातादिभिरुत्पातैः। ग्रहोपघातः कश्चिद्ग्रहस्तत्कालमेव जलप्रदो भवति। यथा भौमः—'प्राजापत्ये श्रवण'

इति। आदिग्रहणाद्दिव्यान्तरिक्षभौमैरुत्पातैर्यदि न वृष्टः स चात्मीयगर्भसमये पुनः पुरस्ताद् द्वितीयगर्भग्रहणकाले। अम्भः पानीयं करकामिश्रमुपलसंयुक्तं ददाति।।३५।।

अत्रैव दृष्टान्तरमाह—

काठिन्यं याति यथा चिरकालधृतं पयः पयस्विन्याः ।
कालातीतं तद्वत् सलिलं काठिन्यमुपयाति ।।३६।।

जिस तरह बहुत समय तक रखा हुआ गौओं का दूध कठिन हो जाता है, उसी तरह बहुत समय बीतने पर जल भी कठिन होकर उपल के रूप में हो जाता है।।३६।।

यथा पयस्विन्याः सक्षीराया धेनोः पयः क्षीरं चिरकालधृतं प्रभूतकालमुषितं काठिन्यं कठिनतां याति गच्छति। तद्वत्तथा कालातीतं सलिलं जलं काठिन्यमुपयाति प्राप्नोति। सलिलं तूपलतां प्रतिपद्यत इति।।३६।।

अथ गर्भस्य पुष्टिलक्षणमाह—

पवनसलिलविद्युद्गर्जिताऽभ्रान्वितो यः
स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः ।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि
प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ।।३७।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
गर्भलक्षणाध्याय एकविंशः ।।२१।।

यदि वायु, जल, विद्युत्, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ हो तो प्रसवकाल में बहुत वृष्टिप्रद होता है। इस तरह के गर्भसमय में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती।।३७।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गर्भलक्षणाध्याय एकविंशः ।।२१।।

पवनो वायुः। सलिलं जलम्। विद्युत् तडित्। गर्जितं मेघशब्दः। अभ्राणि मेघाः। एतैः पञ्चभिर्यो गर्भोऽन्वितो युक्तः स बहुतोयो बहुजलप्रदः, यतः स गर्भः पञ्चरूपाभ्युपेतः। पञ्चभी रूपैः संयुक्तोऽतो बहुतोयदो भवति। एवंविधो गर्भो गर्भकाले यद्यतिभूरि तोयं प्रभूतपानीयं विसृजत्युत्सृजति, तदा प्रसवसमयं मेघवर्षकालमित्वा प्राप्य पञ्चनवते दिनशतेऽतीते शीकराम्भः करोति जलबिन्दून् ददाति। न प्रभूतं वर्षतीत्यर्थः।।३७।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
गर्भलक्षणं नामैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

अथ गर्भधारणाध्यायः

अथ गर्भधारणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तासां लक्षणमाह—

ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याद्याश्चत्वारो वायुधारणा दिवसाः।
मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च ॥१॥

ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक गर्भधारण के दिन होते हैं। इन दिनों में सुखस्पर्श, शुभ (उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न) वायु और निर्मल मेघयुत आकाश शुभ होते हैं।।१।।

ज्यैष्ठसिते ज्येष्ठशुक्लपक्षे अष्टम्याद्याश्चत्वारो ये दिवसास्ते वायुधारणा दिवसाः। वायुर्धारणा येषाम्, ते दिवसा वायुना धार्यन्ते यथा तेषां प्रसवो न भवति। ते च दिवसा मृदुशुभपवनाः शस्ताः। मृदुः सुखसंस्पर्शः। शुभ उदक्शिवशक्रादिसम्भवः। पवनो वायुः। तथा स्निग्धघनस्थगितगगनाश्च शस्ता एव। स्निग्धैररूक्षैः, घनैर्मेघैः स्थगितं छन्नं गगनमाकाशं येषु दिवसेषु।।१।।

अथ तास्वेव विशेषमाह—

तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः ॥२॥

यदि ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती आदि चार नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा) में वृष्टि हो तो क्रम से श्रावण आदि चार मासों (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक) में अवृष्टि होती है। जैसे ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष में स्वाती में वृष्टि हो तो श्रावण में, विशाखा में वृष्टि हो तो भाद्रपद में, अनुराधा में वृष्टि हो तो आश्विन में और ज्येष्ठा में वृष्टि हो तो कार्तिक में वृष्टि का अभाव होता है।।२।।

तत्रैव तस्मिन्नेव ज्यैष्ठसिते स्वात्याद्ये स्वातिपूर्वके भचतुष्टये नक्षत्रचतुष्टये स्वाति-विशाखाऽनुराधाज्येष्ठाख्ये वृष्टे क्रमात् परिपाट्या श्रावणपूर्वाश्चत्वारो मासा ज्ञेयाः। श्रावण-भाद्रपदाश्वयुजकार्तिकाख्याः। ताश्च धारणाः परिस्रुताः स्युर्भवेयुः। न जलप्रदा भवन्ति। एतदुक्तं भवति—स्वातौ वृष्टायां श्रावणे त्ववृष्टिः। विशाखायां भाद्रपदे। अनुराधायामाश्वयुजे। ज्येष्ठायां कार्तिक इति। तथा च काश्यपः—

ज्येष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां तु नक्षत्रे भगदैवते।
चत्वारो धारणाः प्रोक्ता मृदुवातसमीरिताः।।
नीलाञ्जननिभैर्मेघैर्विद्युत्स्थगितमारुतैः।
विस्फुलिङ्गरजोधूम्रैश्छन्नौ शशिदिवाकरौ।।

एकरूपा: शुभा ज्ञेया अशुभा सान्तरा: स्मृता:।
अनार्यैस्तस्करैर्घोरै: पीडा चैव सरीसृपै:।।
तत: स्वात्यादिनक्षत्रैश्चतुर्भि: श्रवणादय:।
परिपूर्णा: शुभास्ता: स्यु: सौम्या: शिवसुभिक्षका:।।
स्वातौ तु श्रावणं हन्याद्वृष्टेऽथेन्द्राग्निदैवते।
भाद्रपदे त्ववृष्टि: स्यान्मैत्रे चाश्वयुजे स्मृता।।
ऐन्द्रे तु कार्तिके त्वेवं वृष्टे वृष्टिं निहन्ति च।
एतेषु यदि नो वृष्टिस्तदा सौभिक्षलक्षणम्।। इति।।२।।

पुनरपि विशेषलक्षणमाह—

यदि ताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय ।
तस्करभयदाश्चोक्ताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ।।३।।

यदि वे चारों गर्भधारण के दिन एक रूप के हों तो शुभ और असमान हों तो चोरों को भय देने वाले होते हैं। आगे इसी अर्थ को पुष्ट करने वाले वसिष्ठ के पद्य लिखते हैं।।३।।

ता धारणा यद्येकरूपाश्चतुर्ष्वपि दिवसेषु सदृशा: स्युर्भवेयुस्तत: शुभा:। सान्तरा: सविशेषा विसदृशा न शिवाय श्रेयसे भवन्ति। ताश्च तस्करभयदाश्चौरभीतिप्रदाश्चोक्ता: कथिता:। अत्रास्मिन्नर्थेऽप्यमी वासिष्ठा: श्लोका: वसिष्ठमहर्षिणा उक्ता: कथिता लिख्यन्ते।

अथ तांश्चाह—

सविद्युतः सपृषतः सपांशूत्करमारुताः ।
सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ।।४।।

यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः शुभाशाः प्रत्युपस्थिताः ।
तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ।।५।।

सपांशुवर्षाः सापश्च शुभा बालक्रिया अपि ।
पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ।।६।।

रविचन्द्रपरीवेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः ।
वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्यार्थसाधिका ।।७।।

मेघाः स्निग्धाः संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रियाः ।
तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्याभिवृद्धये ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
गर्भधारणाध्यायो द्वाविंशः ।।२२।।

यदि विद्युत्, जलकण, धूलियों से युत वायु, मेघाच्छन्न रवि-चन्द्र और उत्तर, ईशान कोण या पूर्व दिशा की विद्युत् युत गर्भधारण के दिन हों तो सभी धान्यों की वृद्धि पण्डितों को कहनी चाहिये। धूलि की वृष्टि, जल, बालकों की सुन्दर चेष्टायें, पक्षियों के मधुर शब्द, धूलि या जल में उनकी क्रीडा और स्निग्ध, विकाररहित, परिवेषसहित रवि-चन्द्रों से युत गर्भधारण के दिन हों तो सभी धान्यों को सिद्ध करने वाली वृष्टि होती है। स्निग्ध, सघन और प्रदक्षिण करके (पूर्व दिशा से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व) में गमन करने वाला मेघ गर्भधारण दिन में हो तो शुभ होता है।।४-८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां गर्भधारणाध्यायो द्वाविंशः ॥२२॥

एवंविधा धारणा शुभा धारणा भवन्ति। कीदृश्य:? सविद्युतो विद्युत्तडित्तया सहिता:। सपृषत: सजलकणा:। सह पांशूत्करेण पांशुसमूहेन यो मारुतो वायुर्वर्तते तेन सहिता:। सहार्कचन्द्राभ्यां परिच्छन्नाभ्यां परिवर्तते, मेघावृतत्वाद्रविचन्द्रौ स्थगितौ यासु।

यदा तु श्रेष्ठा: शोभना विद्युतस्तडितो भवन्ति, ताश्च शुभाशा: प्रत्युपस्थिता:। शुभा या आशा दिश उदक्शिवशक्रदिशस्ताभ्य: प्रत्युपस्थिता उत्पन्नास्तदाऽपि विचक्षण: पण्डित: सर्वसस्यानामशेषधान्यानां वृद्धिं सम्पत्तिं ब्रूयाद् वदेत्।

सपांशुवर्षा इति। सपांशुवर्षेण वर्तन्ते यास्ता: सपांशुवर्षा:। साप: अद्भि: सहिता:। अथवा बालानां शिशूनां शुभा: क्रिया: शोभनाश्चेष्टा:। शुभेन कर्मणा जनशुभप्रदेन क्रीडनेन। पक्षिणां पतत्रिणां सुस्वरा: शोभनशब्दा मधुरं वाक् सम्भाषणम्। तथा पांशुजलादिषु क्रीडा क्रीडनम्। पांशुना जलेन वा। आदिग्रहणाद् गोमयकर्दमादिना।

रविचन्द्राभ्यां सूर्यशशिभ्यां परिवेषा:। स्निग्धा अरूक्षा नात्यन्तदूषिता नातिविकृता:; तथापि सर्वसस्यार्थसाधिका वृष्टिर्विज्ञेया। यया वृष्ट्या सर्वसस्यानामर्थवृद्धिर्भवति। सर्वाणि सस्यानि निष्पद्यन्त इत्यर्थ:।

मेघाः स्निग्धा इति। यद्येवंविधा मेघा घना दृश्यन्ते तदा सर्वसस्याभिवृद्धये नि:शेषसस्यानामभिवर्द्धनाय महती प्रभूता वृष्टि: स्याद्भवेत्। कीदृशा मेघा:? स्निग्धा अरूक्षा:, संहता घना:, प्रदक्षिणगतिक्रिया येषाम्। यथा पूर्वस्यां स्थिता दक्षिणां व्रजन्ति। दक्षिणस्यां पश्चिमाम्। पश्चिमायामुत्तराम्। उत्तरस्यां पूर्वामिति।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
गर्भधारणोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ प्रवर्षणाध्यायः

अथ प्रवर्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्र तावल्लक्षणमाह—

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः ॥१॥

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा बीत जाने पर पूर्वाषाढ़ा आदि सभी नक्षत्रों में वृष्टि हो तो जल का शुभाशुभ परिमाण कहना चाहिये। अर्थात् वृष्टि हो तो शुभ और अवृष्टि हो तो अशुभ कहना चाहिये।।१।।

ज्येष्ठमासस्येयं पौर्णमासी ज्यैष्ठी, तस्यां समतीतायामतिक्रान्तायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन पूर्वाषाढामादितः कृत्वा सर्वेषु नक्षत्रेषु सम्प्रवृष्टेन प्रवर्षितेन तज्ज्ञैः पण्डितैरम्भसो जलस्य परिमाणं शुभमशुभं वा वाच्यं वक्तव्यम्। वृष्टौ शुभमवृष्टावशुभमिति। तथा च गर्गः—

ज्येष्ठे मूलमतिक्रम्य मासि प्रतिपदग्रतः।
वर्षासु वृष्टिज्ञानार्थं निमित्तान्युपलक्षयेत्।। इति।।१।।

अधुना जलप्रमाणार्थमाह—

हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः।
पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥२॥

एक हाथ तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्त्तुलाकार कुण्ड से वृष्टि के जल का मापन करना चाहिये, जल से पूर्ण इस कुण्ड में पचास पल (एक आढ़क) तुल्य जल होता है। पचास पल का एक आढ़क और चार आढ़क का एक द्रोण होता है।।२।।

हस्तविशालं हस्तविस्तीर्णं कुण्डकं समपरिवर्तुलमधिकृत्य कृत्वा अम्बुप्रमाणनिर्देशो जलप्रमाणकथनं कार्यम्। पञ्चाशत्पलमाढकमनेन प्रमाणेन पतितं जलं पानीयं मिनुयान्मापयेत्। एतदुक्तं भवति—हस्तविशालं कुण्डकं वर्षति देवे संस्थाप्य तत्र यज्जलं पतितं तन्मापयेत्। तद्यदि पलशतद्वयं भवति तदा द्रोणो वृष्टः। यत उक्तम्—'पञ्चाशत्पलमाढकं चतुर्भिराढकैर्द्रोणः' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

ज्येष्ठस्य पौर्णमासीमतीत्य भूमुद्रया यथा वृष्टे।
आप्याद्यैर्जलमानं मागधमानेन हस्तमिते।।

यदुक्तम्—

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः।। इति।।२।।

तत्र वर्षप्रमाणमाह—

येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दवस्तृणाग्रेषु।
वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥३॥

जिस वृष्टि से पृथ्वी पर धूलि मिट जाय या तृणाग्र में जलकण दिखाई दें, उससे जल का प्रमाण कहना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस नक्षत्र में वृष्टि हो, उसी नक्षत्र के परिणाम (इसी अध्याय के छठे श्लोक से उक्त) तुल्य वृष्टि कहनी चाहिये।।३।।

येन वृष्टेन धरित्री मुद्रा भूर्मुद्रा जनिता विगतधूली जाता। अथवा तृणानामग्रेषु प्रान्तेषु बिन्दवो जलकणा दृश्यन्ते। तेन वृष्टेन पूर्वाषाढादौ प्रथममादौ वारिणो जलस्य प्रमाणं वाच्यम्। एतदुक्तं भवति—पूर्वाषाढादौ प्रथमं येन नक्षत्रेण वर्षणं भवति तेनैव जलप्रमाणं लोके वक्तव्यम्, नापरेण नक्षत्रेण। वर्षेऽपि सति भवत्स्वपि गर्भेषु धारणास्वपि सत्सु यदि प्रवर्षणकाले न वर्षति तदा प्रसवकाले वृष्टिर्न स्यादित्यतो गर्भेष्विदमुच्यते परिमाणं चाम्भसः प्रसवकाले वाच्यमिति।।३।।

अत्रैव मतान्तरमाह—

केचिद्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये।
गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद् द्वादशात्र परम् ॥४॥

कोई-कोई मुनि (कश्यप आदि) का मत है कि प्रवर्षणकाल (ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर पूर्वाषाढ़ा आदि सत्ताईस नक्षत्रयुत काल) में किसी एक प्रदेश में भी वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है। अन्य (देवल आदि) का मत है कि यदि प्रवर्षणकाल में कम से कम दश योजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है। गर्ग, वसिष्ठ और पराशर का मत है कि प्रवर्षणकाल में बारह योजन तक वृष्टि होने से वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है।।४।।

केचिन्मुनयः कश्यपप्रभृतयो यथाभिवृष्टं यावत्तावन्मात्रं वृष्टं कथयन्ति। प्रवर्षणकाले यथा तथैकस्मिन्नपि प्रदेशे वृष्टे वर्षाकाले शोभनं वर्षं पूर्वाषाढादि ग्राह्यम्। तथा च कश्यपः—

प्रवर्षणे यथा देशं वर्षणं यदि दृश्यते।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति।।

अन्ये देवलादयो दशयोजनमण्डलं वृष्टं वदन्ति। प्रवर्षणकाले योजनदशके वृष्टे वर्षाकाले अम्बुकथनं नास्मादून इति। तथा च देवलः—

प्रवर्षणे यदा वृष्टं दशयोजनमण्डलम्।
वर्षाकालं समासाद्य वासवो बहु वर्षति।।

गर्गवसिष्ठपराशराणामेतन्मतं यथा द्वादशाद्योजनात् परम्। प्रवर्षणकाले योजनद्वादशके वृष्टे वर्षाकाले अम्बुकथनं कार्यं नास्मादून इति। तथा च गर्गः—

आषाढादिषु वृष्टेषु योजनद्वादशात्मके।
प्रवृष्टे शोभनं वर्षं वर्षाकाले विनिर्दिशेत्।। इति।।४।।

पुनरपि विशेषमाह—

येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः।
यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः।।५।।

प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में फिर वृष्टि होती है। यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है।।५।।

येषु च पूर्वाषाढादिषु भेषु नक्षत्रेष्वभिवृष्टं प्रवर्षणकाले भूयः पुनस्तेष्वेव नक्षत्रेषु प्रायो बाहुल्येन वर्षति। प्रसवकाले आप्यादिषु पूर्वाषाढादिषु सप्तविंशेष्वपि नक्षत्रेषु यदि न प्रवृष्टं तदा त्वनावृष्टिः प्रसवकाले भवतीति।।५।।

अधुना नक्षत्राणां वृष्टिप्रमाणमाह—

हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः।
शतभिषगैन्द्रस्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश।।६।।

श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः।
फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः।।७।।

ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे च विंशतिः सार्पभे दश त्र्यधिकाः।
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः।।८।।

पञ्चदशाजे पुष्ये च कीर्तिता वाजिभे दश द्वौ च।
रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेते।।९।।

हस्त, पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्र में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में सोलह द्रोण वृष्टि होती है। इसी तरह शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाती में चार द्रोण; कृत्तिका में दश द्रोण; श्रवणा, मघा, अनुराधा, भरणी और मूल में चौदह द्रोण; पूर्वफाल्गुनी में पच्चीस द्रोण; पुनर्वसु में बीस द्रोण; विशाखा और उत्तराषाढ़ा में बीस द्रोण; आश्लेषा में तेरह द्रोण; उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी और रोहिणी में पच्चीस द्रोण; पूर्वभाद्रपदा और पुष्य में पन्द्रह द्रोण; अश्विनी में बारह द्रोण तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अट्ठारह द्रोण वृष्टि होती है।।६-९।।

विशेष—यदि नक्षत्र निरुपद्रव हों तो उक्त द्रोणतुल्य वृष्टि समझनी चाहिये।

हस्तः, आप्यं पूर्वाषाढा, सौम्यं मृगशिराः, चित्रा, पौष्णं रेवती, धनिष्ठा—एतेष्वेकतमे प्रवर्षणकाले यदि वर्षति तदा प्रसवकाले षोडश द्रोणा वर्षन्ति। एवं शतभिषक्, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, स्वातिः—एतेषु चत्वारो द्रोणा वर्षन्ति। कृत्तिकासु दश द्रोणाः।

श्रवणे, मघा, अनुराधा, भरणी, मूलम्—एतेषु दश चतुर्युक्ताश्चतुर्दश द्रोणाः। फल्गुन्यां पूर्वफल्गुन्यां पञ्चकृतिः पञ्चविंशतिर्द्रोणाः। पुनर्वसौ विंशतिर्द्रोणाः। ऐन्द्राग्न्याख्ये विशाखायाम्, वैश्वे उत्तराषाढायाम् विंशतिर्द्रोणाः। सार्पभे आश्लेषायां दश त्र्यधिकास्त्रयोदश द्रोणाः। आहिर्बुध्न्ये उत्तरभद्रपदायाम्, अर्यम्णे उत्तरफल्गुन्याम्, प्राजापत्ये रोहिण्याम्—एतेषु पञ्चकृतिः पञ्चविंशतिर्द्रोणाः। अजे पूर्वभद्रपदायाम्, पुष्ये च पञ्चदश द्रोणाः कीर्तिता उक्ताः। वाजिभे अश्विन्याम्, दश द्वौ च द्वादश द्रोणाः। रौद्रे आर्द्रायाम्, अष्टादश द्रोणाः कथिता उक्ताः। एते प्रवर्षणकाले द्रोणा नक्षत्रेषूक्तास्ते निरुपद्रवेषूपद्रवरहितेषु वाच्या इति। तथा च समाससंहितायाम्—

दश युक्ता द्विकृतखतिथिरसाष्टदिग्विषयरामजलतिथिभिः।
तिथिरसरसैश्च विरसाः सदशकृताः षड्विहीनाश्च।।
जलषट्कदशकसहिता जलरसयुक्ताः षडूनाश्च।
विषयतिथिषट्कसहिताश्चाश्विन्यादिषु जलद्रोणाः।। इति।।६-९।।

अत्रैव विशेषमाह—

रविरविसुतकेतुपीडिते भे
क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च।
भवति च न शिवं न चापि वृष्टिः
शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणाध्यायस्त्रयोविंशः ॥२३॥

सूर्य, शनैश्चर, केतु, मङ्गल या त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से यदि नक्षत्र पीडित हों तो अमङ्गल और वृष्टि का अभाव होता है। यदि उपद्रवरहित होकर बुध, बृहस्पति या शुक्र से युत नक्षत्र हो तो मङ्गल कृति और वृष्टि होती है।।१०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां प्रवर्षणाध्यायस्त्रयोविंशः ॥२३॥

रविरादित्यः। रविसुतः सौरः। केतुः शिखी। एतेषामन्यतमे भे नक्षत्रे उपहते तत्र स्थित इत्यर्थः। तथा क्षितितनयेनाङ्गारकेणाहतेऽभिघातिते। वक्रातिवक्रमध्यगमनयोगतारकभेदानामन्यतमेन। तथा त्रिविधेनाद्भुतेनोत्पातेन दिव्यान्तरिक्षभौमेन चाहते न शिवं श्रेयो न चापि वृष्टिर्भवति। शुभसहिते बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन संयुक्ते। निरुपद्रवे अन्योत्पातरहिते प्रवर्षणं शिवं श्रेयश्च भवति। तथा च गर्गः—

सूर्यसौराहते वाच्यं नक्षत्रे भौमघातिते। उत्पातैस्त्रिविधैर्वापि राहुणा केतुनापि वा।।
अवृष्टिमशुभं विन्द्याद्विपरीते शुभं वदेत्।। इति।।१०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ प्रवर्षणंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ रोहिणीयोगाध्याय:

अथ रोहिणीयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासङ्गिमधुकरानुरुते ।
बहुविहगकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ॥१॥

सुरनिलयशिखरिशिखरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह ।
गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च यान् शिष्यसङ्घेभ्य: ॥२॥

तानवलोक्य यथावत् प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् ।
अल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ॥३॥

सुवर्ण-पाषाण के समुदाय में उत्पन्न वृक्षों के पुष्पों पर बैठे हुये भ्रमरों के शब्दों से संयुत, नाना प्रकार के पक्षियों के आलाप से मिश्रित विद्याधरियों के गीत से उत्पन्न मधुर शब्दों से युत और सुमेरु पर्वत पर स्थित उपवन में नारद के लिए बृहस्पति तथा अपने शिष्यों के लिये गर्ग, पराशर, काश्यप और मयासुर ने रोहिणी-चन्द्रसमागम के सम्बन्ध में जो कहा है, उसको थोड़े पद्यों के द्वारा कहने के लिये मैं उद्यत हुआ हूँ।।१-३।।

यान् प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान्। प्राजापत्यं रोहिणी तस्या इन्दुना चन्द्रेण सह सम्प्रयोग: समागमस्तत्र यानर्थान् शुभाशुभान् बृहस्पति: सुरगुरुर्नारदायाह। नारदो नाम मुनिस्तस्मै प्रोक्तवान्। कस्मिन् स्थाने? सुरनिलयशिखरिशिखरे, सुरनिलयशिखरी मेरु:, सुरा देवास्तेषां निलय: स्थानम्, सुरनिलयश्चासौ शिखरी पर्वतस्तस्य शिखरे पृष्ठे यदुपवनमुद्यानं तस्मिन्। कीदृशे उपवने? कनकशिला: सुवर्णपाषाणास्तासां क्षय: सञ्चयस्तत्र यानि विवराणि छिद्राणि तेषु ये जातास्तरवो वृक्षास्तेषु यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषु च मधुकराणां भ्रमराणां य आसङ्ग आसक्ति: संश्लेषस्तेनानुरुतं शब्दो यस्मिन्नुपवने, तथा बहवो नानाप्रकारा ये विहगा: पक्षिणस्तेषां कलह आलापस्तेन, तथा सुरयुवतयो देवस्त्रियो विद्याधर्यस्तासां च गायमानानां गीते योऽसौ मन्द्रो मधुर: स्वन: शब्द: स योगानाहोक्तवान्, तान् सर्वानेवावलोक्य विचार्य यथावत्संस्फुटमल्पग्रन्थेनाहं तानेव प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् वक्तुं गदितुमभ्युद्यतोऽस्मीति।।१-३।।

अथ स रोहिणीयोग: कस्मिन् काले विचार्य इत्येतदाह—

प्राजेशमाषाढतमिस्रपक्षे क्षमाकरेणोपगतं समीक्ष्य ।
वक्तव्यमिष्टं जगतोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद् ग्रहचिन्तकेन ॥४॥

योगो यथानागत एव वाच्य: स धिष्ण्ययोग: करणे मयोक्त: ।
चन्द्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गैरुत्पातवातैश्च फलं निगद्यम् ॥५॥

आषाढ के कृष्णपक्ष में रोहिणी-चन्द्र का समागम देखकर ग्रहचिन्तक दैवज्ञों को शास्त्र में कथित प्रकार के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये। भूत के प्रयोजनाभाव होने के कारण आगे का ही रोहिणीयोग कहना चाहिये, यह योग पञ्चसिद्धान्तिका में मैंने (वराह-मिहिर ने) कह दिया है। चन्द्रबिम्बप्रमाण, चन्द्र की कान्ति, चन्द्र का वर्ण, चन्द्र का मार्ग, अनेक तरह के उत्पात और वायु के द्वारा संसार का शुभाशुभ कहना चाहिये।।४-५।।

आषाढमासस्य तमिस्रपक्षे कृष्णपक्षे प्राजेशं रोहिणीं क्षपाकरेण चन्द्रेणोपगतं संयुक्तं समीक्ष्य दृष्ट्वा ग्रहचिन्तकेन दैवज्ञेन शास्त्रोपदेशाद् ग्रन्थागमाज्जगतो जनस्येष्टं शुभम-शुभमनिष्टं वा वक्तव्यं कथनीयम्।

योगो यथेति। यथा येन प्रकारेण योगो रोहिणीयोगोऽनागतो भावी एव वाच्यो वक्तव्योऽत्र स धिष्ण्ययोगो नक्षत्रयोग: करणे पञ्चसिद्धान्तिकायां मयोक्त: कथित:। तथा च पञ्चसिद्धान्तिकायाम्—

बुद्ध्वा शशिविक्षेपं कृत्वा ताराशशाङ्कविवरं च।
संसाध्य च वक्तव्य: पश्चात्तारासमायोग:।।

इत्यादिना ग्रन्थेनेति। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

ध्रुवकादून: पश्चादधिक: प्राग्वत् कृतो यथा योग:।
अन्यद् ग्रहमेलकवत्..।। इति।

चन्द्रप्रमाणेति। चन्द्रस्य प्रमाणेन बिम्बपरिमाणेन। द्युत्या कान्त्या। वर्णेन सितादि-केन। मार्गेण यथा पूर्वाद्यास्वष्टासु दिक्षु संस्थित्या। एतैस्तथोत्पातैस्तत्कालजातैरुल्का-पातादिभिर्वातैश्चानिलै: शुभाशुभफलं निगद्यं वक्तव्यमिति।। ४-५।।

अथ तत्र विधानमाह—

पुरादुदग्यत्पुरतोऽपि वा स्थलं त्र्यहोषितस्तत्र हुताशतत्पर:।
ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत्सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ।।६।।

सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितै: सुपूजितै:।
अकालमूलैर्कलशैरलंकृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद् द्विज: ।।७।।

नगर से उत्तर या पूर्व दिशा में ब्राह्मण हवन करते हुये तीन दिन उपवास करे। बाद में अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ सूर्य आदि नव ग्रहों को लिखकर धूप, पुष्प और बलि से उनका पूजन करे। रत्न, जल और औषधि से पूर्ण, पल्लव से आच्छादित, अनेक तरह से पूजित, अकाल मूल (अग्निपाक के द्वारा श्याम वर्ण से रहित अधोभाग वाले) कलशों से अलंकृत चारों दिशायें और कुशों से आच्छादित स्थण्डिल पर बैठे।।६-७।।

पुरान्नगरादुदगुत्तरस्यां दिशि यत्स्थलं तत्र तस्मिन् स्थले द्विजो ब्राह्मण:, त्र्यहोषितो दिनत्रयं स्थितस्तत्र च कृतोपवासो हुताशतत्पर:, अग्निहवनपर:। तथा च गर्ग:—

नगरादुपनिष्क्रम्य दिशं प्रागुत्तरां शुचिः।
विविक्ते प्रस्थले देशे देवतायतनेऽपि वा।।
राज्ञा नियुक्तो दैवज्ञः कृतशौचो जितेन्द्रियः।
निमित्तकुशलो धीरः शुक्लाम्बरसमावृतः।।
उपवासमथातिष्ठेदष्टमीं संयतव्रतः।
ततोऽष्टम्याः परे यस्मिन् दिने संयुज्यते शशी।।
प्राजापत्येन च ततो निमित्तान्युपलक्षयेत्।।

ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत्। तस्मिन् स्थले ग्रहानादित्यादीन् सनक्षत्रगणान्नक्षत्रसमूहेन सहितान् समालिखेत् सम्यगालिखेत्, तानखिलान् सधूपपुष्पैर्धूपपुष्पसहितैर्बलिभिरुपहारैः पूजयेदर्चयेत्।

तथैवंविधं स्थण्डिलं द्विज आवसेदधिवसेत् सह रत्नैर्मणिभिस्तोयैर्जलैरौषधिभिः सुगन्धद्रव्यैः सह ये वर्तन्ते कलशा उदकुम्भास्तैश्चतुर्दिशमलंकृतं शोभितम्। अन्यैश्च किम्भूतैः? तरुप्रवालापिहितैः, तरूणां वृक्षाणां प्रवालाः पल्लवास्तैरासमन्ताद्ये पिहिता आच्छादितास्तैः। तथा सुपूजितैः शोभनं कृत्वा चन्दनादिभिश्चर्चितैः। अकालमूलैः, अकालानि मूलानि येषाम्, अग्निपाकेन कृष्णवर्णाभासा अधो न सन्ति। कीदृशं स्थण्डिलम्? कुशास्तृतम्, दर्भैराच्छादितमिति।।६-७।।

ततस्तत्र किं कुर्यादित्याह—

आलभ्य मन्त्रेण महाव्रतेन बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे।
प्लाव्यानि चामीकरदर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुणसोममन्त्रैः ।।८।।

बाद में महाव्रत नामक मन्त्र से अभिमन्त्रित सभी चीजों को कलश में डालकर सुवर्ण और कुशायुत जल से परिपूर्ण करे तथा वायु, वरुण और चन्द्र के मन्त्र से हवन करे।।८।।

ततः सर्वाणि बीजानि महाव्रतेन महाव्रतनाम्ना मन्त्रेणाऽऽलभ्याभिमन्त्र्य कुम्भे निधाय विनिक्षिप्य प्लाव्यानि मज्जनीयानि। कैः? तोयैर्जलैः। कीदृशैः? चामीकरं सुवर्णं दर्भाः कुशाश्च विद्यन्ते येषु तैस्तोयैः। तथा होमोऽग्निहोमो मरुद्वारुणसोममन्त्रैः, मरुद्वायुः, वरुणो यादसां पतिः, सोमश्चन्द्रः, एषां मन्त्रैर्होमः कार्यः। केषाञ्चित् पाठे होमश्चरुर्वारुणसौम्यमन्त्रैः। चरुः स्थालीपाको वारुणसौम्यमन्त्रैर्होमो होतव्य इति।।८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रिताञ्च।
आदौ कृते दिग्ग्रहणे नभस्वान् ग्राह्यस्तया योगगते शशाङ्के ।।९।।

बारह हाथ ऊँचे बाँस पर पतली और दण्डप्रमाण (चार हाथ लम्बी) पताका बाँधे। पहले दिग्ज्ञान करके रोहिणीयोग में स्थित चन्द्र के समय में उस पताका द्वारा किस तरफ की वायु है—इसका ज्ञान करना चाहिये।।९।।

श्लक्ष्णां सूक्ष्मतन्तुकृतां पताकां वैजयन्तीमसितां कृष्णवर्णां विदध्यादुच्छ्रयेत्। तां च दण्डप्रमाणां चतुर्हस्तसम्मिताम्। चतुर्हस्तो दण्ड:। तथा च पुराणे—

.... चतुर्हस्तो धनु: स्मृत:।
धनुर्दण्डो युगं नाली तुल्यान्येतान्यथाङ्गुलै:।। इति।

एवं चतुर्हस्तां पताकां त्रिगुणोच्छ्रितां द्वादशहस्तोच्छ्रितामित्यर्थ:। एतदुक्तं भवति— द्वादशहस्तोच्छ्रिते काष्ठे तां निबध्नीयादिति। आदौ प्रथमं दिग्ग्रहणे दिक्साधने कृते तया पताकया नभस्वान् वायु: शशाङ्के चन्द्रे रोहिणीयोगगते ग्राह्यो ग्रहीतव्य इति। कस्यां दिशि वहतीति। तत्र दिक्साधनमाचार्येण पञ्चसिद्धान्तिकायामुक्तम्। तद्यथा—

शङ्कुचतुर्विस्तारे वृत्ते छायाप्रवेशनिर्गमनात्।
अपरैन्द्रीदिक्सिद्धिर्यवाच्च याम्योत्तरे साध्ये।।

सलिलसमीकृतायामवनौ मध्ये चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणेन सूत्रेन कर्कटकेन वा वृत्तमालिखेत्। तस्य वृत्तस्य विष्कम्भोऽष्टाचत्वारिंशदङ्गुलानि भवन्ति, तस्मिन् शङ्कुचतुर्विस्तारे वृत्ते मध्यप्रदेशे शङ्कुर्देय:। तत: पूर्वकपालस्थे सवितरि तस्यैव शङ्कोश्छाया तद्वृत्तपरिधौ यत्र प्रवेशं करोति तत्र बिन्दुर्देय:, सापरा पश्चिमा दिग्भवति। ततो परकपालस्थे सवितरि तस्यैव शङ्कोश्छाया तद्वृत्तपरिधौ यत्र निर्गमं करोति तत्र बिन्दुर्देय:; सा ऐन्द्री पूर्वा दिग्भवति। एवं छायाप्रवेशनिर्गमनादपरैन्द्री दिक्सिद्धिरिति। तत: तयोर्बिन्द्वोर्मस्तकावगाहि सूत्रं प्रसार्य रेखां कुर्यात्; सा प्राच्यपररेखा भवति। यवाच्च याम्योत्तरे साध्ये, याम्योत्तरे दक्षिणोत्तरे च यवात् साध्ये। यवस्य साधनं प्रदर्श्यते—तत्रैकं बिन्दुं मध्ये कृत्वा द्वितीय-बिन्दुं पाटयता सूत्रेण वृत्तमालिखेत्। एवं द्वितीयं बिन्दुं मध्ये कृत्वा परबिन्दुं पाटयता सूत्रेणापरं वृत्तं लिखेत्। एवं वृत्तद्वयस्य परस्परानुप्रवेशान्मध्ये यवाकार उत्पद्यते, तस्य सममध्यगता रेखा कार्या; सा च याम्योत्तरा। एवं दिक्चतुष्टयसिद्धि:। तत: स्वबुद्ध्या विदिश: साध्या:। एवं दिक्साधनं कृत्वा कृते दिग्ग्रहणे तन्मध्ये पताकां निधापयेत्। तया रोहिणीयोगगते शशाङ्के चन्द्रे वायुर्ग्राह्य:, कस्यां दिश्युद्गत: कां च यातीति।।९।।

अथ वातेन शुभाशुभमाह—

तत्रार्द्धमासा: प्रहरैर्विकल्प्या
वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशै: ।
सव्येन गच्छन् शुभद: सदैव
यस्मिन् प्रतिष्ठा बलवान्स वायु: ।।१०।।

वहाँ वर्षा के निमित्त प्रहर से पक्ष और प्रहरांश से दिन की कल्पना करनी चाहिये। जैसे रोहिणीगत चन्द्र के दिन सूर्योदय से लेकर अग्रिम सूर्योदय तक आठ प्रहरों में से प्रथम प्रहर से लेकर स्थापित पताका द्वारा वायु की परीक्षा करे। यदि दिन के प्रथम प्रहर में सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में चले तो श्रावण शुक्ल में, तृतीय

प्रहर में वायु चले तो भाद्र कृष्ण में, चतुर्थ प्रहर में वायु चले तो भाद्र शुक्ल में, रात्रि के प्रथम प्रहर में वायु चले तो आश्विन कृष्ण में, द्वितीय प्रहर में वायु चले तो आश्विन शुक्ल में, तृतीय प्रहर में वायु चले तो कार्तिक कृष्ण में और चतुर्थ प्रहर में सुन्दर वायु चले तो कार्तिक शुक्ल में सुन्दर वृष्टि होती है। यदि सूर्योदय से आधे प्रहर तक सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्णादि के साढ़े सात दिन, उसके आधे काल तक में सवा चार दिन इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये। कोई पक्ष की जगह मास का ग्रहण करते हैं। अतः आधे प्रहर की जगह पक्ष और उसके आधे की जगह साढ़े सात दिन इत्यादि ग्रहण करना चाहिये। यदि पताका सव्य होकर चले तो सदा शुभ करने वाली होती है। जिस वायु में स्थिरता हो, उसी से शुभाशुभ फल कहना चाहिये।।१०।।

तत्र तस्मिन् रोहिणीयोगे प्रहरैरहोरात्राष्टभागैरर्द्धमासाः पक्षा विकल्प्या विकल्प्यानीयाः। किमर्थम्? वर्षानिमित्तं वर्षासमयज्ञानार्थम्। एतदुक्तं भवति—यस्मिन्नहोरात्रे रोहिण्या सह चन्द्रमा युज्यते तत्र सूर्योदयात्प्रभृति प्रथमं प्रहरं यावच्छोभनो वातो वहति तदा श्रावणस्य प्रथमपक्षे देवो वर्षति। अशुभेन वातेनावृष्टिस्तत्र वक्तव्या। एवं द्वितीयप्रहरे शोभनो वातो वहति तदा श्रावणस्य द्वितीयपक्षे देवो वर्षति। तृतीये भाद्रपदस्य प्रथम-पक्षे वर्षति। चतुर्थे भाद्रपदस्य द्वितीयपक्षे वर्षति। तथा रात्रौ प्रथमप्रहरे शोभनवाते आश्व-युजः प्रथमपक्षे वर्षति, द्वितीयप्रहरे द्वितीयपक्षे। तृतीयप्रहरे कार्तिकप्रथमपक्षे चतुर्थे द्वितीय-पक्षे वर्षति। अशुभे वातेऽनावृष्टिः। एवं यथासम्भवं योज्यम्।

दिवसास्तदंशैरिति। तदंशैः प्रहरांशैर्दिवसा वाच्याः। प्रहरेण यदि पक्षं तत्प्रहरार्धेन सप्त सार्धानि दिनानि। प्रहरचतुर्भागेन पादोनानि चत्वार्येवमादि। केचित् 'तेनात्र मासाः प्रहरैर्विकल्प्याः' इति पठन्ति। तेनानन्तरोक्तेन नभस्वता। अत्र योगे प्रहरैर्मासा विकल्प्या विकल्पनीया निश्चयीकर्तव्या इत्यर्थः।

वर्षानिमित्तं वर्षासमयनिमित्तं दिवसास्तदंशैस्तस्य प्रहरस्यांशैर्भागैर्दिवसा विकल्प्या विकल्पनीयाः। प्रहरस्य त्रिंशत्तमो भागो दिवस इति। यदि तत्र दिने सूर्योदयात्प्रभृति प्रहरं यावच्छोभनो वातो वहति तदा श्रावणसमग्रं मासं वर्षति। एवं द्वितीयप्रहरे भाद्रपदम्। तृतीये आश्वयुजम्। चतुर्थे कार्तिकमिति। एवमशोभनवाते नानावृष्टिः।

तदंशैर्दिवसा वाच्याः— इत्येतस्यैतदेव व्याख्यानं शोभनं यस्मादनन्तरमुक्तमाचार्येण गर्गपराशरमतं वच्मि। गर्गादीनां च मतम्—'तेनात्र मासाः प्रहरैर्विकल्प्याः' इति। नार्द्धमासाः प्रहरैः। तथा च गर्गः—

तदहश्चोदयादूर्ध्वं चतुर्धाहो विभज्य च।
हिताहितार्थं मासानां चतुर्णामुपलक्षयेत्।।

आचार्येण च रोहिणीयोगेनैवाषाढीयोगस्यास्यातिदेशः कृतः। गर्गोक्ते च वातचक्रे प्रहरैर्मासाः। तथा च गर्गः—

दिनार्द्धमथवा वायुर्द्वौ मासौ तत्र वर्षति।
चतुर्भागेन मासं तु शक्रोऽत्यर्थं प्रवर्षति।।
पूर्वे चैवार्द्धदिवसे पूर्वौ मासौ तु वर्षति।
अह्नस्तु पश्चिमे भागे पश्चिमौ द्वौ तु वर्षति।।
अथ पूर्वं व्यतिक्रम्य भागं तत्पश्चिमं ततः।
मध्याह्ने वाति चेद्वायुर्मध्यौ मासौ तु वर्षति।।
भाद्रपदोऽश्वयुक् चैव मासावेतौ तु मध्यमौ।
एतयोरपि निर्देश्या वर्षारात्रस्य सम्पदः।।

तथा च ऋषिपुत्रः—

दिनार्द्धं वाति चेद्वायुः पूर्वं पश्चिममेव वा।
मासद्वयं तदा वर्षो विभागः पूर्वपश्चिमे।।
समग्रं दिवसं वायुर्यदि वाति सुलक्षणः।
मासास्तु श्रावणाद्या ये तेषां सम्पद्विनिर्दिशेत्।।

'तस्मात्तेनात्र मासाः' इति शोभनः पाठः।

सव्येन गच्छन्निति। नभस्वान् सव्येन प्राग्दाक्षिण्येन गच्छन् व्रजन् सदैव सर्वकालं शुभदः। यथा पूर्वस्यां स्थित्वा आग्नेयीं याति, ततो दक्षिणाम्, ततो नैर्ऋतीम्, ततः पश्चिमामित्यनेन क्रमेणेति। अर्थादेवापसव्येन गच्छन्न शुभदः।

यस्मिन् प्रतिष्ठेति। यस्मिन् वायौ प्रतिष्ठा स्थैर्यमाधिक्यं भवति स एव बलवांस्तेन शुभाशुभं वदेत्। केचिदेवं व्याचक्षते—आदित्यास्तमये यो वायुः सा प्रतिष्ठेत्येतन्न शोभनम्। तथा च ऋषिपुत्रः—

वायन्तं मारुतं चापि यो वायुः प्रतिवायति।
तत्र यो बलवान् वायुस्तस्यैव फलमादिशेत्।। इति।।१०।।

अन्यच्छुभाशुभमाह—

वृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि यानि सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे।
येषां तु योंऽशोऽङ्कुरितस्तदंशस्तेषां विवृद्धिं समुपैति नान्यः ।।११।।

रोहिणी में स्थित चन्द्र के समय घड़े में दिये हुये बीजों में से जिनके जितने अंश अङ्कुरित हों, उतने की उस वर्ष में वृद्धि होती है।।११।।

रोहिण्या सह शशिनो योगे वृत्ते यानि बीजानि कुम्भे निहितानि प्राक्स्थापितानि तेषां यान्यङ्कुरितानि तान्येवास्मिन् वर्षे सन्ति भवन्ति। हि यस्मादर्थे। येषामपि कुम्भस्थितानां योंऽशो भागोऽङ्कुरितस्तदंशस्तद्भागस्तेषामेव वृद्धिं समुपैति प्राप्नोति नान्य इति।।११।।

अथ रोहिणीयोगे यद्यच्छस्यते तत्तदाह—

शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनिन्दितोऽनिलः।
शस्यते शशिनि रोहिणीगते मेघमारुतफलानि वच्म्यतः ॥१२॥

शान्त, मधुर बोलने वाले पक्षी और जंगली जानवरों से शब्दायमान दिशा, निर्मल आकाश और सुन्दर वायु शुभ है। अब इसके अनन्तर मेघ और वायु का फल कहते हैं।

शशिनि चन्द्रे रोहिणीगते रोहिणीयोगं गते इदमिदं शस्यते स्तूयते शान्तैरनर्काभिमुखैर्मधुरस्वनैश्च पक्षिभिर्विहगैर्मृगैश्चारण्यपशुभिर्दिश आशा राविताः शब्दं कारिताः। वियदाकाशं निर्मलं विमलम्। वायुरनिन्दितोऽकुत्सितः। तथा च गर्गः—

योगे ह्यनुद्धता वाता ह्लादयन्तः सुखप्रदाः।
प्रदक्षिणाः श्रेष्ठतमाः पूर्वपूर्वोत्तरा इति।।

मेघमारुतफलानि वच्म्यत इति। अतोऽस्मादनन्तरं मेघानामभ्राणां मारुतस्य च वायोः फलानि वच्मि कथयामि।।१२।।

अधुना तान्येवाह—

क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः।
वलितजठरपृष्ठमात्रदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥१३॥

विकसितकमलोदरावदातैररुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः।
छुरितमिव वियद्घनैर्विचित्रैर्मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः ॥१४॥

पेट की तरफ से कुण्डलाकार होने के कारण पृष्ठमात्र दिखाई देने वाले सर्पों की तरह; अतः कहीं पर कृष्ण-श्वेत, कहीं-कहीं पर केवल श्वेत, कहीं पर केवल कृष्ण विशाल और चमकती हुई बिजली के समान जीभ वाले, विकसित कमल के अन्दर के समान स्वच्छ कान्ति वाले, प्रान्त भाग में लोहित वर्ण की तरह कान्ति वाले तथा भ्रमर, कुङ्कुम और पुष्प की तरह स्वच्छ कान्ति वाले मेघों से युत आकाश रोहिणी-योग के समय में शुभ होता है।।१३-१४।।

वियदाकाशमम्बुवाहैर्मेघैर्विशालैर्विस्तीर्णैर्वृतं व्याप्तम्। कीदृशैरम्बुवाहैः? भुजगैः सर्पैरिव। किम्भूतैः सर्पैः? वलितजठरपृष्ठमात्रदृश्यैः, वलितानां स्वकायपरिवेष्टितावयवानां जठरपृष्ठमात्रं दृश्यं येषां भुजगानाम्। क्वचिज्जठरैकदेशं क्वचित्पृष्ठैकदेशमित्यसित-सितानामत्रोपमानम्; यतः सर्पाणामुदरं श्वेतवर्णं भवति, पृष्ठं कृष्णवर्णमतः क्वचिदसितसितैः कृष्णैः शुक्लैश्च व्यामिश्रवर्णैः, क्वचिच्च सितैः शुक्लवर्णैरेव क्वचिच्चासितवर्णैः कृष्ण-वर्णैर्वियन्मेघैर्वृतम्। तडितो विद्युतस्ता एव स्फुरिताश्चलिता रसना जिह्वा येषां तैः।

तथा विकसितकमलोदरावदातैः, विकसितं प्रफुल्लं कमलं पद्मं तस्योदरं गर्भस्तद्वद्ये अवदाताः शुद्धास्तैः। तथारुणकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः, अरुणकराणामरुणरश्मीनां लोहित-

कान्तीनां या द्युतिः कान्तिस्तया रञ्जितानि सरागाण्युपकण्ठानि कण्ठसमीपान्तानि येषां तैः। विचित्रैर्नानावर्णैर्मेघैर्घनैर्वियदाकाशं छुरितं रञ्जितमिव। किम्भूतैः मधुकरकुङ्कुमकिंशुकावदातैः, मधुकरा भ्रमराः। कुङ्कुमं प्रसिद्धम्। किंशुकः पुष्पविशेषः। तद्वदवदातैः शुद्धैः, तद्वद्वर्णैरिति।।१३-१४।।

अन्यच्च—

असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम्।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरीतमम्बरम्।।१५।।

बिजली, इन्द्रधनु और कृष्ण वर्ण के मेघों से युत होने के कारण विचित्र वर्ण का आकाश मानो दावाग्नि, हाथी और भैंसों से आकुलित वन की तरह रोहिणी योग के समय में शुभ होता है।।१५।।

अथवाऽम्बरमाकाशं वनमरण्यमिव दावपरीतम्, दावो दावाग्निस्तेन परीतं व्याप्तमिव। यतोऽसितैः कृष्णैर्घनैर्मेघैर्निरुद्धं स्थगितम्, तथा चलिताभिस्तडिद्भिः स्फुरद्विद्युद्भिः सुरचापेनेन्द्रधनुषा विचित्रितं नानावर्णतामुपगतम्। कीदृशम्? उत्प्रेक्ष्यते—द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव, मेघानां तत्सादृश्यं द्विपकुलैर्हस्तिसमूहैर्महिषकुलैश्चाकुलीकृतं सोद्यमं तैः संयुक्तमतो दावपरीतं वनमिवोत्प्रेक्ष्यते।।१५।।

अन्यदप्याह—

अथवाञ्जनशैलशिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम्।
हिममौक्तिकशङ्खशशाङ्ककरद्युतिहारिभिरम्बुधरैरथवा।।१६।।

अथवा अञ्जन पर्वत के काले पत्थरों के समान मेघों से युत या हिम, मोती, शंख और चन्द्र-किरण की कान्ति को हरण करने वाले मेघों (श्वेत वर्ण के मेघों) से युत आकाश रोहिणी योग के समय में शुभ होता है।।१६।।

अथवाञ्जनशैलस्याञ्जनपर्वतस्य शिलानां पाषाणानां यो निचयः समूहस्तत्प्रतिरूपधरैस्तादृशैरम्बुधरैर्मेघैः स्थगितमाच्छादितं गगनमाकाशम्, कृष्णैरित्यर्थः। अथवा हिमस्य तुषारस्य मौक्तिकस्य मुक्ताफलानां शङ्खस्य कम्बुनः। शशाङ्ककराणां चन्द्ररश्मीनां द्युतिहारिभिः कान्तिं चोरयद्भिरम्बुधरैर्मेघैः श्वेतवर्णैः स्थगितमाकाशमित्यर्थः।।१६।।

अन्यच्च—

तडिद्धैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः।
विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः।।१७।।

बिजली रूप मध्यबन्धन (करधनी), हंसपंक्ति रूप आगे के दाँत, गिरते हुये जलरूप मद, चलते हुये अग्रभागरूप हाथ, विचित्र इन्द्रधनु के समान ऊँची ध्वजा वाले, तमाल वृक्ष और भ्रमर की तरह काले हाथी की तरह मेघों से व्याप्त आकाश रोहिणी के समय में शुभ होता है।।१७।।

अब्दा मेघास्त एव नागा हस्तिनस्तैर्वियदाकाशं वृतं व्याप्तम्। तडिता विद्युतस्ता एव हैमकक्ष्या: सौवर्णानि मध्यबन्धनानि येषाम्। बलाका हंसपङ्क्तिविशेषास्ता एवाग्रदन्ता: पुरोवर्तिनो रदा: शुक्लत्वाद्येषाम्। स्रवद्वारि वर्षजलं तदेव दानं मदजलं येषाम्। चलन्ति प्रान्तान्यग्राणि यानि तान्येव हस्ता: करा येषाम्। विचित्रं नानावर्णमिन्द्रचापं सुरेन्द्रधनुस्तदेव ध्वजोच्छ्रायशोभा येषाम्। उच्छ्रितं चोपरि ध्वजं नृपजनानां भवति। तमालो वृक्ष: कृष्ण-वर्ण:। अलिर्भ्रमरस्तद्वन्नीलत्वं येषां तैस्तथाभूतै:।।१७।।

अन्यच्च मेघवर्णनमाह—

सन्ध्यानुरक्ते नभसि स्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम्।
वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य कान्तिं हरेश्चोरयतां यदा वा ।।१८।।

जिस आकाश में सन्ध्याकालिक राग से रंगे, नील कमल के समान मानो पीताम्बर पहने हुए विष्णु भगवान् की कान्ति को चुराने वाले मेघ हैं।। १८।।

घनानां मेघानां नभस्याकाशे सन्ध्यानुरक्ते सन्ध्यारागरञ्जिते लोहिते स्थितानां सन्तिष्ठ-ताम्। कीदृशानाम्? इन्दीवरश्यामरुचाम्, इन्दीवरं नीलोत्पलं तद्वत् श्यामा रुक् कान्तिर्येषां तथाभूतानाम्। वृन्दानि समूहा:। अत एवोत्प्रेक्ष्यते—हरेर्भगवतो नारायणस्य पीताम्बर-वेष्टितस्य पीतवस्त्रप्रावृतशरीरस्य कान्तिं दीप्तिं चोरयतां मुष्णतां यदा यस्मिन्नभसि।।१८।।

अन्यमेघवर्णनमाह—

सशिखिचातकदर्दुरनि:स्वनैर्यदि विमिश्रितमन्द्रपटुस्वना: ।
खमवतत्य दिगन्तविलम्बिन: सलिलदा: सलिलौघमुच: क्षितौ ।।१९।।

मयूर, चातक और मेढक के शब्दों से युत मधुर शब्द वाले, आकाश को व्याप्त कर दिगन्त तक लटके हुये तथा पृथ्वी पर अधिक वृष्टि करने वाले मेघ।।१९।।

एवं यदा सलिलौघमुचो मेघा: सलिलस्य जलस्यौघं समूहं मुञ्चन्ति परित्यजन्ति ये ते क्षितौ भूतौ सलिलदा जलं ददतीत्यर्थ:। अथ चैवंविधा: सलिलदा मेघा: क्षितौ भूमौ सलिलौघमुचो भवन्तीति योजना। कीदृशा:? शिखिनो मयूरा:, चातका: सारङ्गा:, दर्दुरा मण्डूका:, तेषां नि:स्वना: शब्दा:। सशिखिचातकानां दर्दुराणां ये नि:स्वनास्तैर्विमिश्रिता मन्द्रा मधुरा: पटवश्चतुरा: स्वना: शब्दा येषां ते तथाविधा:। तथा खमाकाशमवतत्य व्याप्य यदि दिगन्तविलम्बिनो दिगन्तेष्वाशापर्यन्तेषु ये विलम्बन्ते ते तथाविधा:।।१९।।

अन्यच्चाह—

निगदितरूपैर्जलधरजालैस्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाह: ।
यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भू: ।।२०।।

तीन या दो दिन तक पूर्वोक्त स्वरूप वाले मेघों से युत आकाश हो तो सुभिक्ष, आनन्दयुत मनुष्य और पृथ्वी पर अधिक वृष्टि होती है।।२०।।

यदि वियदाकाशं निगदितरूपैः कथितरूपैर्जलधराणां मेघानां जालैर्वृन्दैस्त्र्यहं दिनत्रय-मवरुद्धं स्थगितम्। द्व्यहं दिनद्वयं वाऽहर्दिनमेकम्। अनेन प्रकारेण सुभिक्षं भवति। तथा भूरवनिर्मुदितजना प्रहृष्टलोका प्रचुरजला भूरितोया च भवति। तथा च गर्गः—

दधिरौप्यामलक्रौञ्चताम्राभारुणसन्निभाः ।
शुककौशेयमाञ्जिष्ठास्तपनीयसमप्रभाः ।।
अच्छिन्नमूलाः सुस्निग्धाः पर्वताकारसन्निभाः।
घना घनाः प्रशस्यन्ते विद्युत्स्तनितसङ्कुलाः।।

तथा च पराशरः—'रोहिणीयोगे पुनः प्रदक्षिणो मृदुर्मारुतः स्नेहवन्ति चाभ्राणि विद्यु-च्छक्रचापालंकृतानि स्वादुसुरभिविमलशिशिरतावृद्धिश्चाम्भसां वृष्टिक्षेमसुभिक्षाय। यावतो दिवसान् निमित्तप्रादुर्भावानुबन्धस्तावद्वर्षाणि सुभिक्षक्षेमम्। आसप्तरात्राद्बिलवासिनां बिलेभ्यो निष्क्रमणं स्त्रीपुरुषबालानां प्रमोदः पक्षिणां क्षीरपुष्पफलवृक्षसेवनं तरूणामच्छिद्रपत्रता पुरपौरहिताय' इति। तथा च समाससंहितायाम्—

आषाढबहुलपक्षे शिशिरकरे रोहिणीसमायुक्ते।
यदि गगनममलमत्यन्ततीक्ष्णरश्मिः सहस्रांशुः।।
सलिलगुरुनम्रजलधरतडिल्लतालोलरञ्जितदिगन्तः ।
अमितमलभेकचातककादम्बविमिश्रमाकाशम् ।।
क्षितितनयरविजरहितः स्फटिकनिभश्चन्द्रमा निरुत्पातः।
मरुतश्च पूर्वपूर्वोत्तरोत्तराः शान्तमृगविहगाः।। इति।।२०।।

अथाशुभानां मेघानां लक्षणमाह—

रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैरुष्ट्रध्वाङ्क्षप्रेतशाखामृगाभैः ।
अन्येषां वा निन्दितानां स्वरूपैर्मूकैश्चाब्दैर्नो शिवं नापि वृष्टिः ॥२१॥

रूक्ष, अल्प, वायु से प्रेरित, ऊँट, कौआ, मुर्दा, वानर या अन्य निन्दित जीवों (कुत्ता, बिल्ली, राक्षस आदि) की तरह कान्ति वाले और शब्दरहित मेघ अशुभ और अवृष्टि करने वाले होते हैं।।२१।।

एवंविधैरब्दैर्मेघैर्नो शिवं श्रेयः, न चापि वृष्टिर्वर्षणं भवति। कीदृशैः? रूक्षैरस्निग्धैः। अल्पैर्लघुभिः। मारुतेन वायुना आसमन्तात्क्षिप्ताः प्रेरिता देहाः शरीराणि येषां तैः। उष्ट्रः करभः। ध्वाङ्क्षः काकः। प्रेतः शवः। शाखामृगो मर्कटः। एतेषां सदृशी आभा सादृश्य-माकृत्या च येषां तैस्तथाभूतैः। अन्येषामपरेषां वा प्राणिनां निन्दितानां कुत्सितानां श्वमा-र्जाररराक्षसानां स्वरूपैः सदृशैर्मूकैर्निःशब्दैश्च। तथा च गर्गः—

छिन्नमूलाश्च वृक्षाश्च शुष्का वाष्पाकुलाकृताः।
पापसत्त्वानुकाराश्च मेघाः पापफलप्रदाः।। इति।।२१।।

अन्यच्छुभलक्षणमाह—

विगतघने वा वियति विवस्वानमृदुमयूखः सलिलकृदेवम्।
सर इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै ॥२२॥

यदि मेघरहित आकाश में सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तथा रात्रि में निर्मल नक्षत्रों से युत आकाश, खिली हुई कुमुदिनियों से युत सरोवर की तरह हो तो सुन्दर वृष्टि होती है।

अथ विवस्वानादित्यो वियत्याकाशे विगतघने मेघरहिते अमृदुमयूखश्चण्डरश्मिर्भवति तदैवमनेन प्रकारेण सलिलकृज्जलं करोति। तथा खमाकाशं निशि रात्रावुडुविशुद्धं निर्मल-नक्षत्रं कुमुदाढ्यं कुमुदबहुलं सर इव फुल्लं विकसितं यदि दृश्यते तदा सुवृष्ट्यै शोभन-वृष्टये भवति।।२२।।

अथ दिग्भागेन मेघफलान्याह—

पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः।
याम्ये सस्यं क्षीयते नैर्ऋतेऽर्द्धं पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥२३॥

वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः।
श्रेष्ठं सस्यं स्थाणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि ॥२४॥

पूर्व दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण में उत्पन्न मेघों से अग्नि का भय, दक्षिण दिशा में उत्पन्न मेघों से धान्य का नाश, नैर्ऋत्य कोण में उत्पन्न मेघों से धान्य की आधी निष्पत्ति, पश्चिम दिशा में उत्पन्न मेघों से सुन्दर वृष्टि, वायव्य कोण में उत्पन्न मेघों से कहीं-कहीं पर वायुयुत वृष्टि (सर्वत्र नहीं), उत्तर दिशा में उत्पन्न मेघों से पूर्ण वृष्टि और ईशान कोण में उत्पन्न मेघों से उत्तम धान्य होता है। दिशाओं के अनुसार वायु का भी इसी तरह फल समझना चाहिये।।२३-२४।।

अब्दैर्मेघैः पूर्वोद्भूतैः पूर्वस्यां दिशि सम्भूतैः सस्यानां निष्पत्तिः सम्पद् भवति। एवमाग्नेयाशासम्भूतैरनलदिक्स्थैरग्निकोपो वह्निकोपः। याम्ये दक्षिणदिगुत्थैः सस्यं क्षीयते क्षयं याति। नैर्ऋते नैर्ऋतदिगुत्थैरब्दैरर्द्धं क्षीयते। अर्द्धनिष्पत्तिं याति। पश्चाज्जातैः पश्चिमायां दिश्युत्पन्नैरब्दैर्मेघैः शोभना वृष्टिर्भवति। वायव्योत्थैर्वातयुक्ता वृष्टिर्भवति, सा क्वचित् क्वचिच्च न सर्वत्र। सौम्यकाष्ठासमुत्थैरुत्तरदिक्सम्भूतैः पुष्टा परिपूर्णा वृष्टिर्भवति। स्थाणु-दिगैशानी। तत्सम्प्रवृद्धैस्तदुत्पन्नैः श्रेष्ठं सस्यं भवति। एवमनेन प्रकारेण यथा मेघाः शुभा-शुभफलप्रदा उक्तास्तथैव वायुर्मारुतः फलानि धत्ते ददाति। एतदुक्तं भवति—यथा पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैरेवं पूर्वोद्भूतेन वायुनापि सस्यनिष्पत्तिर्भवतीत्यादि योज्यम्।।२३-२४।।

अथैषामप्युत्पातानामतिदेशार्थमाह—

उल्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः।
नादा मृगाणां सपतत्रिणाञ्च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥२५॥

रोहिणी योग के समय दिशाओं के अनुसार मेघों के फल (पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्ति-रित्यादि पद्योक्त फल) की तरह दिशाओं के अनुसार उल्कापात, विद्युत्, दिग्दाह, आकाश में शब्द, भूकम्प, पक्षी और वन-जन्तुओं के शब्द का फल कहना चाहिये।।२५।।

उल्कानिपाताः। तडितो विद्युतः प्रघाताः। अशनिपाताः। आसां लक्षणानि पुरस्तादाचार्य एवं वक्ष्यति। दिग्दाहो दिशां दाहः। निर्घातो नभःशब्दा। महीप्रकम्पो भूमिकम्पः। मृगाणा-मरण्यप्राणिनां सपतत्रिणां पक्षिसहितानां नादाः शब्दा यथा येन प्रकारेणाम्बुधरास्तथा तेनैव प्रकारेण ग्राह्या गृहीतव्याः। पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैरिति न्यायेन।।२५।।

अथ ये पूर्वं चतसृषु दिक्षु कुम्भाः स्थापितास्तैः शुभाशुभज्ञानमाह—

नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः ।
पूर्णैः स मासः सलिलस्य दाता स्रुतैरवृष्टिः परिकल्प्यमूनैः ॥२६॥

रोहिणी योग के दिन वृष्टि होने पर उत्तर आदि चारो दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से श्रावण आदि चार मासों का नाम अङ्कित करके चार घड़ों का स्थापन करे। जिस मास का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय, वह मास फल देने वाला, घड़े से बिलकुल जल निकल जाय तो अवृष्टि और थोड़ा जल हो तो अपनी बुद्धि से तारतम्य करके वृष्टि की कल्पना करनी चाहिये। जैसे आधे में आधा, चौथाई में चौथाई इत्यादि वृष्टि कहनी चाहिये।।२६।।

तैः कुम्भैरुदगादिस्थैरुत्तराद्यासु दिक्षु प्रदक्षिणं प्रादक्षिण्येन व्यवस्थितैस्तैश्च श्रावण-मासचतुष्टयपरिकल्पितैः। एतदुक्तं भवति—उदक्कुम्भः श्रावणमासः परिकल्प्यः। प्राग्भाद्र-पदः। दक्षिण आश्वयुजः। पश्चिमस्थः कार्तिकः परिकल्प्य इति। तैः पूर्णैः स मासः सलि-लस्य दाता भवति। तेषां चतुर्णां मध्याद्यः कुम्भः परिपूर्णो यस्मिन् मासे परिकल्पितः स मासः सलिलस्य दाता भवति। तस्मिन् मासे देवो वर्षतीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति—उदक्कुम्भे परिपूर्णे श्रावणे वृष्टिर्वक्तव्या। प्राक्कुम्भे भाद्रपदे। दक्षिणे आश्वयुजे। पश्चिमे कार्तिक इति। सर्वेषु परिपूर्णेषु चतुर्ष्वपि मासेषु वृष्टिर्वक्तव्या। द्वयोर्मासद्वयोरपि। तैरेव कुम्भैः परिस्रुतै रिक्तीभूतैरवृष्टिरवर्षणम्। ऊनैः स्वबुद्ध्या परिकल्पनीयम्। अर्द्धस्रुतैर्मध्यमा वृष्टिरन्तरेऽनुपाताद्वाच्यम्। तथा च गर्गः—

सौम्ये तु श्रावणं विन्द्यात् पूर्वे भाद्रपदं वदेत्।
दक्षिणेऽश्वयुजो ज्ञेयः पश्चिमे कार्तिकं विदुः।।
सर्वे कुम्भाः सुपूर्णाः स्युरभग्नाः कान्तिसंयुताः।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वान् वर्षति वासवः।।
सर्वस्रुतैरवृष्टिः स्यादर्द्धैर्मध्यमवर्षणम्।
द्रवैस्तथाविधा वृष्टिर्वक्तव्या जलमानतः।। इति।।२६।।

अन्यदप्याह—

अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्देशाङ्कितैश्चाप्यपरैस्तथैव ।
भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥२७॥

रोहिणी योग के समय वृष्टि होने पर उत्तर आदि चार दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से उत्तर आदि दिशाओं में स्थित राजा, देश और ब्राह्मण आदि चार वर्णों का नाम अङ्कित करके पूर्ववत् चार घड़ों का स्थापन करे। बाद में जिस दिशा का घड़ा नष्ट हो जाय, उस दिशा के राजा, देश और वर्णों का नाश; जिस दिशा के घड़ा से सब जल बह जाय उस दिशा के राजा आदियों में उपद्रव; जिस दिशा के घड़ा में थोड़ा जल शेष रहे उस दिशा के राजा आदियों को मध्यम फल और जिस दिशा का घड़ा जल से पूर्ण हो जाय उस दिशा के राजा आदियों को अति शुभ फल होता है।।२७।।

अन्यैरपरैरपि कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्नृपाणां राज्ञां नाम्ना संज्ञया चिह्नैरुपलक्षितैस्तथा तेनैव प्रकारेणापरैरन्यैर्देशाङ्कितैर्देशनाम्ना चिह्नितैः। एतदुक्तं भवति—तत्र बहव उदकुम्भा नृपदिग्देशचातुर्वर्ण्यैश्चिह्निताः शुभाशुभज्ञानार्थं स्थाप्याः। तैश्च भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्यथानुरूपं यथासादृश्यं भाग्यानि शुभाशुभानि वाच्यानि वक्तव्यानि। एतदुक्तं भवति—तैः कुम्भैः परिपूर्णैरतिशुभम्। भग्नैर्नष्टैः स्रुतैरुपद्रवाः। ऊनजलैर्मध्यमं फलम्। तथा च काश्यपः—

अन्यदेशाङ्किताः कुम्भा भिद्यन्ते च स्रवन्ति च।
बन्धहीना वितोयाश्च तेऽभियोज्या नृपेण वै।। इति।।२७।।

अथ रोहिण्याश्चन्द्रसंस्थाने विशेषेण शुभाशुभफलमाह—

दूरगो निकटगोऽथवा शशी दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः।
रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा कष्टमेव जगतो विनिर्दिशेत्।।२८।।

यदि दूर स्थित या समीप स्थित चन्द्रमा रोहिणी के दक्षिणगत होकर संयोग करे तो संसार को दुःखी करने वाला होता है।।२८।।

शशी चन्द्रो यथा येन प्रकारेण तथा तेन प्रकारेण दूरगो विप्रकृष्टस्थो निकटगः समीपस्थो वा दक्षिणे पथि दक्षिणस्यां दिशि स्थितो यदि रोहिणीं प्राजापत्यं युनक्ति संयोगं याति तदा जगतो जनपदस्य कष्टमशुभं दुर्भिक्षजनमरकादिकं विनिर्दिशेद् वदेत्।।२८।।

अन्यदप्याह—

स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्कस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गा।
असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः करोति वृष्टिं विपुलां शिवञ्च।।२९।।

यदि रोहिणी के दक्षिण में स्पर्श करते हुये उत्तर तरफ होकर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों में अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं। यदि रोहिणी को स्पर्श नहीं करते हुये उत्तर तरफ होकर चन्द्रमा गमन करे तो सुन्दर वृष्टि और लोगों का शुभ करने वाला होता है।।२९।।

रोहिण्याः स्पृशन्नेव दक्षिणेन स्पर्शं कृत्वा यद्युत्तरेण शशाङ्को याति गच्छति तदा बहुलोपसर्गा प्रभूतोपद्रवा बहुभिर्दोषैर्युक्ता सुवृष्टिः शोभनवृष्टिर्भवति। लोकानामुपद्रवा भवन्ति,

यथा कालोचिता वृष्टिर्भवतीत्यर्थः। अथवा रोहिण्या योगमसंस्पृशन्नादावुदक्समेत उत्तरेण गतस्तदा सुवृष्टिं शोभनवृष्टिं विपुलां विस्तीर्णां करोति। शिवं श्रेयश्च भवति।।२९।।

अथ रोहिण्याः शकटमध्यगते चन्द्रे फलमाह—

रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः।
क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ।।३०।।

यदि रोहिणी शकट (छः तारा होने के कारण रोहिणी शकट कहते हैं) के मध्य स्थित होकर चन्द्रमा गमन करे तो आश्रयरहित, बच्चों के लिये भोजन माँगते हुये, सूर्य किरण से अत्यन्त उष्ण जल पीते हुये लोग (प्रजागण) अनिश्चित स्थान पर गमन करते हैं।।३०।।

शकटभेदलक्षणं गणित उक्तम्। तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते—

विक्षेपोंऽशद्वितयादधिको वृषभस्य सप्तदशभागे।
यस्य ग्रहस्य याम्यो भिनत्ति शकटं स रोहिण्याः।। इति।

चन्द्रमसि रोहिण्याः शकटमध्यसंस्थिते जना लोका अशरणीकृता निःशरणीभूताः क्वापि यान्ति कुत्रापि गच्छन्ति। केचित् प्रजा इति पठन्ति। प्रजाः क्वापि यान्ति। कीदृशाः शिशुयाचिताशनाः, शिशवो बालास्तेषामशनं भोजनं याचमानाः प्रार्थ्यमानाः। तथा सूर्येणाऽऽदित्येन पिठरे भाण्डविशेषे तप्तं परितापितं यदम्बु पानीयं तत्पायिनस्तत्पानशीलाः। अनेन जलाभाव उक्तः। षट्तारकत्वाद्रोहिण्याः शकटः समूहः।।३०।।

अथ रोहिण्याः पश्चिमदिक्स्थे चन्द्रमसि फलमाह—

उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी।
शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामवशेन संस्थिताः ।।३१।।

पहले चन्द्र का उदय होकर पश्चात् चन्द्र के पश्चिम दिशा में रोहिणी उदित होकर गमन करे तो लोगों में अनेक प्रकार के शुभ होते हैं तथा कामातुर स्त्रीगण पति के वश में हो जाती हैं।।३१।।

शीतदीधितिं चन्द्रं प्रथममादौ यद्युदितमभ्युद्गतं तस्य च पृष्ठतः पश्चाद्रोहिणी एत्यागच्छति समुदेति, तदा शुभमेव शोभनं लोके। प्रमदाः स्त्रियः स्मरातुराः कामार्ताः कामवशेन संस्थिताः कामुकानां वशवर्तिन्यो भवन्ति।।३१।।

अथ रोहिण्याः पूर्वस्यां दिशि स्थिते चन्द्रे फलमाह—

अनुगच्छति पृष्ठतः शशी यदि कामी वनितामिव प्रियाम्।
मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः ।।३२।।

जैसे प्रिया स्त्री के पीछे कामी पुरुष गमन करता है, उसी तरह यदि रोहिणी के पीछे चन्द्र गमन करे तो काम के बाण से खेदित होकर मनुष्यगण स्त्री के वश में हो जाते हैं।

रोहिण्या: शशी चन्द्रो यदि पृष्ठत: पश्चादनुगच्छत्युदेति प्रियां वनितां वल्लभां स्त्रियं कामिनीं कामी कामुको यथा अनुगच्छति। तदा प्रमदानां स्त्रीणां तस्मिन् वर्षे नरा: पुरुषा मकरध्वजबाणखेदिता: कामशरपीडिता: सन्तो वशगा भवन्ति।।३२।।

अथ रोहिण्या: शेषासु दिक्षु स्थिते चन्द्रे फलमाह—

आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गो महान्
नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभि: ।
प्राजेशानिलदिक्स्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्रयो
याते स्थाणुदिशं गुणा: सुबहव: सस्यार्घवृष्ट्यादय: ।।३३।।

जिस वर्ष में रोहिणी के आग्नेय कोण में चन्द्रमा स्थित हो, उस वर्ष में बहुत उपद्रव, नैर्ऋत्य कोण में चन्द्रमा स्थित हो तो अति वृष्टि आदि ईतियों से पीड़ित होकर धान्य का नाश, वायव्य कोण में स्थित चन्द्र हो तो मध्यम धान्य और ईशान कोण में स्थित चन्द्र हो तो उस वर्ष धान्यों के मूल्य में अल्पता, सुन्दर वृष्टि आदि बहुत गुण होते हैं।।३३।।

प्राजेशस्य ब्राह्मण इयं प्राजेशी रोहिणी, तस्यामाग्नेय्यां पूर्वदक्षिणस्यां दिशि यदि चन्द्रमा: शशी भवेत् स्यात्तदा तत्र तस्मिन् वर्षे महानतीवोपसर्ग उपद्रवो भवति। तथा नैर्ऋत्यां दक्षिणपश्चिमायां दिशि स्थिते चन्द्रमसि सस्यानि ईतिभिरतिवृष्ट्यादिभिरुपद्रवै: समुपद्रुतानि उपतप्तानि निधनं नाशं यान्ति प्राप्नुवन्ति। हिमकरे चन्द्रेऽनिलदिक्स्थिते वायव्यां पश्चिमोत्तरस्यां दिशि स्थिते समाश्रिते सस्यस्य धान्यादेर्मध्यश्रयो मध्यमं सङ्कटनं भवति। तथा स्थाणुदिशमैशानीमुत्तरपूर्वामाशां याते प्राप्ते चन्द्रे सुबहव: सुप्रभूता गुणा भवन्ति। के ते सस्यार्घवृष्ट्यादय: सस्यानि चार्घवृष्टयश्च ता: सस्यार्घवृष्टय:। आदिग्रहणा-द्योगक्षेमनीरोगता गृहीतव्या:। तथा च समाससंहितायाम्—

उदगपि च तुहिनकिरण: पूर्वोत्तरतोऽथवा स्थित: प्राच्याम्।
यदि भवति तदा वसुधा भवति विवृद्धा प्रहृष्टजना।।
उपसर्गोऽनलदिक्स्थे याम्याशासंस्थिते शकटके च।
किं कष्टैस्तैरुक्तै: श्रुतमात्रैर्यै: कृशो भवति।।
क्रिमिशुकशलभादिभयं नैर्ऋत्यां नातिपुष्टिरपरेण।
वायव्याशासंस्थे मध्यं सस्यं कुमुदनाथे।। इति।।३३।।

अथ योगतारोपतापे छादने च फलमाह—

ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति वपुषा यदापि वा।
ताडने भयमुशन्ति दारुणं छादने नृपबधोऽङ्गनाकृत: ।।३४।।

यदि चन्द्रमा रोहिणी की योगतारा को भेदित (शृङ्ग के एक देश से स्पर्श) करे या अपने बिम्ब से उसको आच्छादित करे तो भेदित करने से कठोर भय और छादित करने से स्त्री के द्वारा राजा का मरण होता है।।३४।।

योगतारकां प्रधानतारकाम्। तथा चोक्तम्—

सतारागणमध्ये तु या तारा दीप्तिमुत्तरा।
योगतारेति सा प्रोक्ता नक्षत्राणां पुरातनैः।।

तां च योगतारकां यदि ताडयेद् भिन्द्यात् शृङ्गैकदेशेन स्पृशतीत्यर्थः। अथवा वपुषा शरीरेणावृणोत्याच्छादयति, तदा ताडने दारुणं तीव्रं भयं भीतिमुशन्ति कथयन्ति। तथा छादने अङ्गनाकृतः स्त्रीकृतो नृपस्य राज्ञो बधः मरणमुशन्ति।।३४।।

अन्यदपि शुभाशुभज्ञानमाह—

गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः।
भूरि वारि शबले तु मध्यमं नो सितेऽम्बुपरिकल्पनापरैः ॥३५॥

यदि गो-प्रवेश (पश्चिम सन्ध्या) समय में वन से आये हुये पशुओं में आगे बैल या काला पशु हो तो उस वर्ष बहुत वृष्टि होती है। यदि शबल (कृष्ण-श्वेत) पशु आगे हो तो मध्यम फल, उसमें कालापन ज्यादा हो तो वृष्टि, सफेदी ज्यादा हो तो थोड़ी वृष्टि और बिलकुल सफेदी हो तो अवृष्टि होती है।।३५।।

गोप्रवेशसमये गवामरण्यादागतानां प्रवेशकाले पश्चिमसन्ध्यायां यद्यग्रतः पुरतो वृषो बलीवर्दो भवति पुरद्वारे, अथवा पुरोऽग्रतः कृष्णोऽसितः पशुश्छागादिको भवति, तदा तद्वर्षं भूरि वारि बहु जलं भवति। शबले तु मध्यमम्। शबलः कृष्णश्वेतः पशु-स्तस्य यदा द्वौ वर्णौ समौ भवतस्तदा मध्यमं फलम्। तस्यैव कार्ष्ण्येऽधिके भूरि वारि, शौक्ल्येऽधिके ऊनम्। सिते श्वेतवर्णे न किञ्चिदम्बु भवति।

अपरैर्वर्णैरम्बुपरिकल्पना स्वबुद्ध्या कार्या। शुक्लवर्णवर्जैरन्यैर्वर्णैः किञ्चित् किञ्चिद् भवतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

प्राक् प्रवेशे तु यूथस्य पुरतो वृषभो यदा।
प्रवेशे कृष्णवर्णो वा पशुर्बहुजलप्रदः।।
कृष्णा तु गौः सुभिक्षाय क्षेमारोग्याय चोच्यते।
गौर्यामथ च नीलायां मध्याः सस्यस्य सम्पदः।।
अनावृष्टिकरी श्वेता वाताय कपिला स्मृता।
पाटला सस्यनाशाय रोगाय करटा स्मृता।।
एकदेशाय शबला चित्रं चित्रा तु वर्षति।
पाण्डुरा मध्यमाङ्गी वा ग्रीष्मधान्यविवर्द्धिनी।।
कपिला पश्चिमं वर्षं शोणा त्वग्रे प्रवर्षति।

तथा च पराशरः—'अथास्तमयवेलायां पुरद्वारमभिगम्य निमित्तान्युपलक्षयेत्। तत्र गोगजाश्वरथप्रथमप्रवेशे पुरविजयो वानरखरोष्ट्रनकुलमार्जारप्रवेशे विद्रवो नेत्राङ्गहीनप्रवेशे त्वशनिभय' इति।।३५।।

अथादर्शने चन्द्रमसः फलमाह—

दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते ।
रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ॥३६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रोहिणी-योगाध्यायश्चतुर्विंशः ॥२४॥

मेघ से ढके हुये आकाश में रोहिणी योग के समय यदि चन्द्र नहीं दिखाई दे तो उस वर्ष में अतिशय रोग का भय होता है तथा पृथ्वी बहुत धान्य और वृष्टि से युत होती है।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रोहिणीयोगाध्यायश्चतुर्विंशः ॥२४॥

यदि नभस्याकाशे तोयदावृते मेघच्छन्ने चन्द्रमा रोहिणीयुतो न दृश्यते लोके तदा तस्मिन् वर्षे महदतीव रुग्भयं रोगभयमुपस्थितं प्राप्तं वदेत्। भूश्च भूमिर्भूरिजलसस्यसंयुता बहुभिस्तोयैः सस्यैश्च युक्ता भवतीति।।३६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ रोहिणी-योगो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ स्वातीयोगाध्याय:

अथ स्वातियोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव रोहिणीयोगोक्तस्य फलस्यातिदेशं कालनिर्देशं चाह—

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावषाढासहिते च चन्द्रे।
आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥१॥

रोहिणी योग में उक्त सभी फलों की तरह आषाढ़ शुक्ल में स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के समस्त फलों का विचार करना चाहिये तथा इस (स्वाती योग) में जो विशेष फल हैं, उन्हें मैं कहता हूँ।।१।।

रोहिणीसहिते चन्द्रे यद्योगफलं प्रागुक्तं तदेव स्वातिसहिते चन्द्रे आषाढासहिते फलं निखिलं नि:शेषं विचिन्त्यं विचारणीयम्। किन्त्वाषाढशुक्ले शुचौ शुक्लपक्ष एतद्योगद्वयं विचार्यम्। एतदुक्तं भवति—मेघानां वायोश्चोत्पातानां च यत्फलं रोहिणीयोग उक्तं तत्सर्वं स्वात्याषाढास्थे चन्द्रमसि ज्ञातव्यम्। तदा दूरगो निकटगोऽथवा शशी इत्यादि। यथासम्भवं समागमफलं यदुक्तं तत्सर्वमत्रैव वेदितव्यम्। तथा गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृष इत्यादिकं सर्वमपि वेदितव्यम्। तथा च पराशर:—'सर्व एते योगा मास्याषाढे भवन्ति। तान् दैवज्ञ: प्रयत: शुचिरवधारयेत्, स्वातिसंयुते चन्द्रमसि घनस्निग्धस्तनितविद्युन्मालैरम्भोदैर्नभसोऽवच्छादनं सुभिक्षक्षेमाय तद्वत्सर्ववातप्रादुर्भाव इति। उल्कानिर्घातकम्पोपघातैश्च विपर्यय:' इति।

योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये इति। अस्मिन् स्वातियोगे रोहिणीयोगाद्यो विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये कथयिष्य इति।।१।।

अथ तत्र रात्रौ दिवसे च वृष्टे शुभाशुभलक्षणमाह—

स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम्।
भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्मं तृतीयेऽस्ति न शारदानि ॥२॥

वृष्टेऽह्निभागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वद् द्वितीये तु सकीटसर्पा।
वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टेनिश्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥३॥

स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के समय रात-दिन दोनों के तीन-तीन भाग करे। यदि रात्रि के प्रथम भाग में वृष्टि हो तो सब धान्यों की वृद्धि, द्वितीय भाग में तिल, मूंग और उड़द की वृद्धि, तृतीय भाग में ग्रीष्म ऋतु के धान्य की उत्पत्ति और शारदीय धान्य का अभाव, दिन के प्रथम भाग में सुन्दर वृष्टि, द्वितीय भाग में कीड़े और साँपों से युत वृष्टि तथा तृतीय भाग में वृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है। यदि सम्पूर्ण दिन और रात में वृष्टि हो तो वर्षाकाल में दोषरहित वृष्टि होती है।।२-३।।

स्वातौ स्वातियोगे प्रथमे निशांशे आद्यरात्रित्रिभागे वृष्टे सर्वाणि निःशेषाणि सस्यानि वृद्धिमुपयान्ति गच्छन्ति। द्वितीये रात्रित्रिभागे वृष्टे तिलमुद्गमाषा वृद्धिमुपयान्ति। तृतीये त्रिभागे वृष्टे ग्रैष्ममस्ति ग्रीष्मधान्यानि भवन्ति। न शारदानि शरत्सस्यानि न भवन्ति।

अह्नि दिवसे प्रथमे आद्ये त्रिभागे वृष्टे सुवृष्टिः शोभना वृष्टिर्भवति। द्वितीये दिनत्रिभागे वृष्टे तद्वत्सुवृष्टिर्भवति, किन्तु सकीटसर्पा कीटैः क्रिमिभिः सर्पैर्भुजङ्गैश्च सहिता वृष्टिर्भवति। अपरभागे तृतीये दिनत्रिभागे वृष्टिर्मध्यमा भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा। द्युनिशं प्रवृष्टे समग्रमहोरात्रं प्रवृष्टे निश्छिद्रा छिद्ररहिता निर्दोषा वृष्टिर्भवति। सर्वत्र कालोचितं वर्षतीत्यर्थः। तथा च गर्गः—

स्वातियोगे यदा युक्ते पूर्वरात्रे प्रवर्षति।
ग्रीष्मशारदसम्पन्नां तां समामभिनिर्दिशेत्।
रात्रेर्द्विभागमाश्रित्य स्वातियोगेऽभिवर्षति।
सम्पदो मुद्गमाषाणां तिलानां चावधारयेत्।।
त्रिभागशेषे शर्वर्याः स्वातियोगेऽभिवर्षति।
ग्रैष्मं सम्पद्यते सस्यं शारदं तु विनश्यति।।
अह्नस्तु प्रथमे भागे वर्षाक्षेमसुवृष्टये।
द्वितीये शोभना वृष्टिर्बहुसस्यसरीसृपाः।।
अह्नस्तृतीये भागे तु मध्यमां कुरुते समाम्।
अहोरात्रं यदा वर्षं स्वातियोगे पुरन्दरः।।
तदा तु चतुरो मासान् सर्वान् वर्षति वासवः।। इति।।२-३।।

अथापांवत्सनिकटस्थे चन्द्रमसि शुभाशुभमाह—

सममुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः।
तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति।।४।।

चित्रा के उत्तर में अपांवत्स नामक तारा है, उसके समीप में यदि स्वाती के साथ चन्द्र का संयोग हो तो शुभ होता है।।४।।

चित्रायाः सममुत्तरेण समं कृत्वा उत्तरेण तिर्यग् या तारा स्थिता सापांवत्स इति कीर्त्यते कथ्यते। तस्यापांवत्सस्याऽऽसन्ने निकटस्थे चन्द्रे स्वातेर्योगश्चन्द्रसंयोगः शिवः श्रेयस्करो भवति।।४।।

अथ स्वातियोगस्य कालयोगमाह—

सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे
वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्रम्।
विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचन्द्रार्कतारं
विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता।।५।।

यदि माघ कृष्ण सप्तमी में स्वाती नक्षत्रगत चन्द्र होने के समय हिम गिरे, भयङ्कर वायु चले, जलयुत मेघ गर्जे, विद्युन्माला से व्याप्त आकाश रहे तथा मेघाच्छन्न होने के कारण चन्द्र, सूर्य और तारा न दिखाई दे तो वर्षाकाल में आनन्दित और सब धान्यों से युक्त जनपद जानना चाहिये।।५।।

माघमासस्यान्धकारे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ स्वातिनक्षत्रयुक्ते चन्द्रे हिमं तुहिनं यदि पतति, वायुर्मारुतो वा चण्डवेग: परुषो महास्वनो वहति अथवा सजलो जलेन पानीयेन सहितो जलधरो मेघोऽजस्रमनवरतं वापि गर्जति शब्दं करोति। अथवा नभ आकाशं विद्युन्मालाभिराकुलं सौदामिनीनां पंक्तिभिर्व्याप्तम्, नष्टचन्द्रार्कतारं नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्र-तारकार्का: सोमतारकसूर्या यत्र मेघच्छन्नमित्यर्थ:, तदैषा प्रावृड् वर्षा मुदितजनपदा प्रहृष्टलोका सर्वैर्नि:शेषै: सस्यैरुपेता संयुक्ता विज्ञेया विज्ञातव्या।।५।।

अन्यदपि शुभाशुभलक्षणमाह—

तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा।
स्वातियोगं विजानीयादाषाढे च विशेषत: ॥६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्वति-
योगाध्याय: पञ्चविंश: ॥२५॥

इसी तरह फाल्गुन, चैत्र और वैशाख के कृष्ण पक्ष में स्वाती योग का विचार करे; किन्तु आषाढ मास में विशेष रूप से इसका विचार करना चाहिये।। ६।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां स्वातियोगाध्याय: पञ्चविंश: ॥२५॥

यथा सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिममित्याद्युक्तं तथैव फाल्गुने मासि स्वातौ भवति। चैत्रे वैशाखमासस्यासिते कृष्णपक्षेऽपि स्वातियोगं विजानीयाद्विन्द्याद्विचारयेत्। विशेषत आषाढस्य य: स्वातियोगस्तं विचारयेदिति। अनार्षोऽयं श्लोक:।।६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
स्वातियोगोनाम पञ्चविंशोऽध्याय: ॥२५॥

अथाषाढीयोगाध्यायः

अथाषाढीयोगाध्यायो व्याख्यायते। तत्र तावद्रोहिणीयोगफलं यदुक्तं तत्सर्वमुत्तराषाढायुक्ते चन्द्रमसि विज्ञातव्यं तथाषाढपौर्णमास्यां विचारयेत्। तथा च पराशरः—

'अतोऽनन्तरमाषाढासंयुक्ते शशिन्यादानविसर्गान्तर्भागेषु निमित्तानि प्रावृष्याद्यन्तमध्येषु फलन्ति। तत्र सुरभिरनुकूलः स्पर्शवान् मारुतः पूर्वपूर्वोत्तरोऽतिवर्षसस्यकरो नैर्ऋताग्नेययाम्यवारुणवायव्या मध्यसस्यकराः। विपर्ययो विपरीतेषु। वैदूर्यरजतमधुहेमप्रभा सन्ध्या स्निग्धाभ्रवृक्षप्रादुर्भावश्च प्रावृड्वृद्धये। प्राङ्मध्यपश्चाद्भागेष्वाषाढानां योगः शशिनो वर्षासु तत्कालमेव वर्षाय। वैश्वदेवादुत्तरतः शशी वर्षकरो न दक्षिणतः। निर्घातोल्काशनिभूचलनदण्डान्यावग्रहोपतापे सस्यवधो भवति। भवति चात्र—

सोदकं सातपं साभ्रं सविद्युत् स्तनयित्नुमत्।
प्रवातं च निवातं च प्रशस्तं तदहः स्मृतम्।। इति।

अथाषाढीयोगे यत्कर्तव्यं तदाह—

आषाढ्यां समतुलिताधिवासिताना-
मन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम्।
तद्वृष्टिर्भवति न जायते यदूनं
मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ।।१।।

आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्तराषाढा नक्षत्रगत चन्द्र के समय बराबर सब धान्यों को अभिमन्त्रित तराजू से अलग-अलग तौल कर रख दे। दूसरे दिन उन सबों को फिर तोले। जो धान्य बढ़ जाय उसकी उस वर्ष में वृद्धि और जो कम हो जाय उसकी हानि होती है। तुला को अभिमन्त्रित करने के लिये समाससंहिता में मन्त्र दिया गया है, जो भट्टोत्पलविवृति में द्रष्टव्य है।।१।।

आषाढस्येयं पौर्णमासी आषाढी। उत्तराषाढायुक्तेत्यर्थः। तथा च गर्गः—

वायव्यवैश्वदेवाभ्यां प्राजापत्यस्य चैव हि।
एषामप्यधिकं चापि रोहिणी नाम याप्यते।। इति।

तस्यामाषाढ्यां सर्वबीजानां समतुलिताधिवासितानां समं कृत्वोनातिरिक्तवर्जं यानि बीजानि धान्यादीनि तुलितानि तुलया परिच्छिन्नानि तेषां तथाभूतानामधिवासितानाम्। अधिवाससा महाव्रतमन्त्रेणाभिमन्त्र्य रात्रिमेकामुषितानि। ततोऽन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि द्वितीयदिवसे यद्बीजं तुलितमधिकतामुपैत्याधिक्यं गच्छति तद्वृद्धिस्तस्य धान्यादेस्तस्मिन् वर्षे वृद्धिर्भवति। यदूनं भवति तन्न जायते नोत्पद्यते। मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय। अस्मिंस्तुलाकर्मणि

तुलाभिमन्त्रणाय मन्त्रो भवति येन तुलाभिमन्त्र्यते इत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

तुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकं भवति बीजम्।
आषाढपौर्णमास्यां तद्वृद्धिस्तत्र मन्त्रोऽयम्।। इति।।१।।

अथ तं मन्त्रमार्षमाह—

स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती।
दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि।।२।।

येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणास्तथा।
उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च।।३।।

यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत्सत्यं ब्रह्मवादिषु।
यत्सत्यं त्रिषु लोकेषु तत्सत्यमिह दृश्यताम्।।४।।

ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता।
काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला।।५।।

मन्त्रयोग से सत्यरूपा सरस्वती देवी की उपासना करनी चाहिये। हे सत्यरूपे सरस्वति! जो परमार्थरूप वस्तु है, उसको तुम ही दिखा सकती हो; क्योंकि तुम सत्य व्रत वाली हो। जिस सत्य से चन्द्र, सूर्य, कुजादि ग्रह और नक्षत्रगण पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम में अस्त होते हैं, जो सत्य सब वेदों में है, जो सत्य ब्रह्मवादियों में है और जो सत्य तीनों लोकों में है, उसको दिखा दो। तुम ब्रह्मा जी की पुत्री हो; पर आदित्या (अदिति की पुत्री) कहलाती हो, गोत्र से कश्यप गोत्र की हो और तुला के नाम से विख्यात हो।।२-५।।

स्तोतव्येति। सा तुला अनेन मन्त्रयोगेन सह स्तोतव्या स्तवनीया। सत्या सत्यरूपा सरस्वती देवी। हे सत्ये सत्यरूपे यत्सत्यं परमार्थं दर्शयिष्यसि यस्मादसि त्वं सत्यव्रता। सत्यमेव व्रतं यस्याः।

चन्द्रार्कौ शशिसूर्यौ ग्रहाश्चान्ये भौमादयः। तथा ज्योतिर्गणाः। ज्योतिषां ताराणां गणाः समूहा येन सत्येन पूर्वेण पूर्वस्यां दिश्युत्तिष्ठन्ति उदयं यान्ति इहास्मिंल्लोके तथा पश्चात्पश्चिमायां दिश्यस्तं व्रजन्ति अस्तमयं यान्ति।

तथा सर्वेषु वेदेषु यत्सत्यं तत्सत्यं ब्रह्मवादिषु परं ब्रह्म ये वदन्ति। त्रिषु लोकेषु भूर्भुवःस्वराख्येषु यत्सत्यं तत्सत्यमिहास्मिंस्तुलाकर्मणि दृश्यताम्।

त्वं ब्रह्मणः कमलजस्य दुहिता तनया असि भवसि, तथा आदित्या अदितेरपत्यमित्येवं प्रकारा प्रकीर्तिता कथिता। गोत्रतः काश्यपी कश्यपगोत्रा। नामतः संज्ञया तुला इति च विश्रुता ख्याता।।२-५।।

अथ तुलाया लक्षणमाह—

क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवस्त्रमस्याः।
सूत्रप्रमाणं च दशाङ्गुलानि षडेव कक्ष्योभयशिक्यमध्ये।।६।।

दश अङ्गुल प्रमाण चार-चार सूत्रों से छः अङ्गुल प्रमाण शिक्यक वस्त्र (दोनों पलड़े के वस्त्रों) को बाँधे और दोनों पलड़ों के बीच में छः अङ्गुल प्रमाण कक्ष्य (डंडी) बाँधे।

अस्यास्तुलाया: शिक्यकवस्त्रं क्षौमं कार्यम्। यत्र स्थितानि द्रव्याणि परिच्छिद्यन्ते तच्छिक्यवस्त्रं तच्चतु:सूत्रकसन्निबद्धम्, चतुर्भि: सूत्रैस्तन्तुभि: सन्निबद्धं संलग्नं कार्यम्। तच्च शिक्यकवस्त्रं षडङ्गुलं षडङ्गुलप्रमाणम्। य: सूत्रैस्तद्बध्यते, तेषां प्रमाणं दशाङ्गुलानि। उभयशिक्यमध्ये शिक्यद्वयस्यान्त: कक्ष्यासूत्रं षडङ्गुलं कार्यम्। कक्ष्यासूत्रेण ग्रहणसूत्रमुच्यते।।६।।

कथं तत्र द्रव्याणि परिच्छेद्यानीत्याह—

याम्ये शिक्ये काञ्चनं सन्निवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैव।
तोयै: कौप्यै: सैन्धवै: सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ।।७।।

दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपा: शिक्थकेन द्विजाद्या: ।
तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ।।८।।

दक्षिण तरफ के पलड़े पर सुवर्ण और उत्तर तरफ के पलड़े पर कूप, नदी या सरोवर के जल के साथ शेष द्रव्य का स्थापन करे। यदि प्रथम दिन की अपेक्षा द्वितीय दिन में कूप का जल बढ़ जाय तो अवृष्टि, नदी का जल बढ़ जाय तो मध्यम वृष्टि और सरोवर का जल बढ़ जाय तो उत्तम वृष्टि होती है। गजदन्त के प्रमाण से हाथी का, गौ, घोड़ा, आदि (गदहा, ऊँट, बकरी और भेड़) के लोम से क्रमशः उन सबों का, सुवर्ण से राजा का, मोम से ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का, देश, वर्ष, मास और दिशाओं का तथा अपने-अपने प्रमाण से शेष द्रव्यों का शुभाशुभ ज्ञान करना चाहिये।।७-८।।

याम्ये दक्षिणशिक्ये काञ्चनं सुवर्णं सन्निवेश्यं स्थापनीयम्। शेषाणि द्रव्याणि तथाम्बूनि पानीयानि उत्तरे शिक्ये सन्निवेश्यानि। एतदुक्तं भवति—सुवर्णं यदा परिच्छिद्यते तदा दक्षिणे शिक्ये विनिवेशयेत्। अन्यानि सर्वाण्युत्तर इति।

तोयैर्जलै: कौप्यै: कूपसम्भवैर्वृद्धिमद्भिर्हीना वृष्टिर्भवति। सैन्धवैर्नदियैर्जलैर्वृद्धिमद्भिर्मध्यमा वृष्टिर्भवति, नातिबह्वी नात्यल्पा। तथा सारसै: सर:सम्भवैर्वृद्धिमद्भिर्जलैरुत्तमा प्रधाना वृष्टिर्भवति। सर्वेषां वृद्धावतिमहती वृष्टि:, सर्वेषां हानाववृष्टिरिति। केचिद्वृद्धिर्हीना मध्यमा चोत्तमा चेति पठन्ति। सस्यानां वृद्धिर्भवत्ति न चैतच्छोभनम्।

दन्तैर्नागा इति। नागा: करिणो दन्तैर्हस्तिदन्तै: परिच्छेद्या:। गोहयाद्याश्च लोम्ना। गाव:, हया अश्वा:, आदिग्रहणात् खरकरभच्छागमेषा:। एते सर्व एव लोम्ना। हेम्ना सुवर्णेन भूपा राजान: परिच्छेद्या:। शिक्थकेन मधूच्छिष्टेन द्विजाद्या ब्राह्मणाद्याश्चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा:। देशा मध्यदेशप्रभृतय:। वर्षाण्येतानि यथेष्टानि। मासा वर्षान्त:स्था:। दिशश्च पूर्वाद्या:। शुभाशुभज्ञानार्थं तद्वत् शिक्थकेनैव परिच्छेद्या:। शेषाण्यन्यान्यनुक्तानि यानि द्रव्याणि तान्यात्मरूपस्थितानि स्वयमेव परिच्छेद्यानि धान्यादीनीत्यर्थ:।।७-८।।

अथ तुलालक्षणमाह—

हैमी प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खदिरेण कार्या।
विद्धः पुमान् येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥९॥

सुवर्ण का तुलादण्ड (डण्डी) श्रेष्ठ, चाँदी का मध्यम और इन दोनों के अलाभ में खैर की लकड़ी का तुलादण्ड बनाना चाहिये अथवा जिस बाण से कोई मनुष्य बेधित हुआ हो, उसका तुलादण्ड बनाना चाहिये। वह तुलादण्ड बारह अङ्गुल प्रमाण का होना चाहिये।

हैमी सुवर्णतुला प्रधानोत्तमा। रजतेन रौप्येण या क्रियते सा मध्यमा, न शुभा नाप्यशुभा। तयो: सुवर्णरौप्ययोरलाभे अभावे सति खदिरेण कार्या। खदिरकाष्टमयी कर्तव्या। अथवा येन शरेणेषुणा पुमान् पुरुष: कश्चिद्विद्धो भिन्न: सा वा तुला कार्या तस्माच्छरादित्यर्थ:। सा च तुला प्रमाणेन वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला भवतीति।।९।।

अथ तुलितानां शुभाशुभफलज्ञानमाह—

हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम्।
एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥१०॥

दूसरे दिन में तोला हुआ द्रव्य अल्प हो तो उस वर्ष में उसका नाश, अधिक हो तो वृद्धि और समान हो तो मध्यम फल होता है। यह परम गोपनीय तुला का रहस्य मैंने कहा है। रोहिणी योगकाल में भी इसका विचार करना चाहिये।।१०।।

तुलायां तुलितस्य परिच्छन्नस्य द्रव्यस्य हीनस्य नाश: क्षयो वक्तव्य:। अभ्यधिकस्य वृद्धि:। तुल्येन समेन तुल्यं समम्। न हानिर्न च वृद्धि:। तथा च गर्ग:—

येषां प्रणमते सारं ते भवन्ति च नासमम्।
येषां तु हीयते सारं तेषां नाशं विनिर्दिशेत्।।
समानि तु समानि स्युस्तुलया तुलितानि तु।।

तथा च पराशर:—

सारसेऽम्भसि सस्यानां राज्ञां च विजयोऽधिके।
नादेये मध्यमा सम्पत्कनीयस्य चलोदके।।
यस्यां दिशि भवेन्माल्यमम्लानं शुचिगन्धिमत्।
तस्यां दिशि विजानीयाद्राज्ञां शिवमनामयम्।। इति।

एतत्तुलाकोशरहस्यं तुलाभाण्डागाररहस्यं परमं गुह्यमुक्तं कथितम्। नरो मनुष्य: प्राजेशयोगेऽपि न केवलमाषाढयोगे तुलाकोशं विदध्यात् कारयेत्, यावत्प्राजेशयोगे रोहिणीयोगेऽपि कारयेत्।।१०।।

अन्यस्मिन् योगत्रयेऽपि पापग्रहा व्यवस्थिता न शुभदा:। अधिमासके सति योगे

विशेषविधानमाह—

स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः ।
ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति ।।११।।

स्वाती, उत्तराषाढा या रोहिणी नक्षत्रगत चन्द्र के साथ यदि पापग्रह (मंगल, शनि, राहु या केतु) का योग हो तो शुभ नहीं होता है।।११।।

स्वातौ स्वातिसंयुक्ते चन्द्रे। अषाढासूत्तराषाढासु युक्तं च। अथ रोहिणीसंयुक्ते चन्द्रे। एतेषु त्रिषु योगेषु पापग्रहा भौमसौरराहुकेतवो योगगतास्तत्र स्थिता न शुभदा न शस्ताः। तथा च गर्गः—

योगैः पापैरुपहतैः प्रजानामशुभं वदेत्।
दुर्भिक्षावृष्टिमरकान् सौम्यैः सौभिक्षमादिशेत्।।

तथा च पराशरः—

शुक्रबुधबृहस्पतिसंयोगे शूकधान्यतिलमुद्गविनाशः, सौरस्य मध्यदेशाभावः, भौमस्य शस्त्रकोपः, केतोर्भयदुर्भिक्षप्रादुर्भावावग्रहः, रोहिणीमध्यगमनमिन्दोः सुभिक्षक्षेमवृष्टिकरम्।

यदा यस्मिन् काले एतेषां योगानामधिमासो द्विगुणीकरोति द्वितीयोऽधिमासोऽषाढाख्यो भवति, तदा तस्मिन् काले योगद्वयं रोहिण्यषाढाख्यमुपोष्य भुक्त्वा ग्राह्यम्। एतदुक्तं भवति—यदा द्वावाषाढौ भवतस्तदोपोष्य मासद्वयेऽपि योगद्वयं ग्राह्यं द्वितीयस्मिन् योगे मलरूपत्वादनादरो न कार्य इत्यत उक्तं—**योगद्वयमपीति**। यदाधिमासो द्विगुणीकरोति द्वावधिमासकेन सह भवत इत्यर्थः। स्वातियोगस्य सामान्यविहितत्वाद्योगद्वयमित्युक्तमन्यथा योगत्रयं भवति।।११।।

अथात्र योगत्रयमध्याद्रोहिणीयोगस्य विशेषमाह—

त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन ।
विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम् ।।१२।।

तीनों (रोहिणी, स्वाती और आषाढी) योगों का फल या दो योगों का फल समान हो तो निःसन्देह वही फल कहना चाहिये। यदि तीनों का अलग-अलग फल हो तो अधिकतर रोहिणी योग का फल ही उस वर्ष में कहना चाहिये।।१२।।

त्रयोऽपि स्वात्यषाढारोहिणीति योगा यदा फलेन सदृशास्तुल्या भवन्ति, तदा शुभं फलमशुभं वा प्रधानत्वाद्योगद्वयजं फलं न बाधत इत्यष्टासु दिक्षु तदा शुभं फलमशुभं वा असंशयेन सन्देहं विहाय वाच्यं वक्तव्यम्। त्रिभिरेव शुभैः शुभमशुभैरत्यशुभमिति। फलानां वैसदृशे विपर्यये फलविपर्ययेऽन्यादृशे भिन्नफले सति यत्तु रोहिणीजं शुभं फलमशुभं वा असंशयेन सन्देहं विहाय तदेव निगद्यं वक्तव्यम्। प्रधानत्वाद्योगद्वयं फलं न बाधत इति।।१२।।

अथाष्टासु दिक्षु वातफलमाह—

निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा ।
बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामाषाढी-
योगाध्यायः षड्विंशः ॥२६॥

उक्त तीनों योगों के समय यदि पूर्व दिशा की हवा चले तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति, आग्नेय कोण की हवा चले तो अग्निकोप, दक्षिण दिशा की हवा चले तो थोड़ी वृष्टि, नैर्ऋत्य कोण की हवा चले तो मध्यम वृष्टि, पश्चिम दिशा की हवा चले तो उत्तम वृष्टि, वायव्य कोण की हवा चले तो अधिक वृष्टि, उत्तर दिशा की हवा चले तो सुन्दर वृष्टि और ईशान कोण की हवा चले तो उत्तम वृष्टि होती है।।१३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामाषाढीयोगाध्यायः षड्विंशः ॥२६॥

पूर्वाद्यासु दिक्ष्वष्टसु पवनैर्वातैः क्रमेणैतानि फलानि। तत्र पूर्वस्यां दिशि यदा वातो वहति तदा निष्पत्तिः सस्यानां भवति। सस्यानि सर्वाणि निष्पद्यन्ते। अग्निकोपोऽग्निभयमाग्नेय्याम्। वृष्टिर्मन्दा अल्पा दक्षिणस्याम्। मध्यमा वृष्टिर्नैर्ऋत्याम्। श्रेष्ठा प्रधाना वृष्टिः पश्चिमायाम्। बहुजलपवना प्रभूतोदका प्रभूतवाता वायव्याम्। पुष्टा परिपूर्णा अतिशोभनोत्तरस्याम्। शुभा अतिश्रेयस्करी ऐशान्यां वृष्टिरिति। रोहिणीयोगे 'वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि' इत्युक्तत्वात्पुनः करणं 'निष्पत्तिरग्निकोप' इत्यादिकं शिष्यं भ्रान्तिनिराशाय कृतमिति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावाषाढी-
योगोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ वातचक्राध्याय:

अथ वातचक्रं व्याख्यायते। अत: परं केचिद्वातचक्रं पठन्ति। तच्च वराहमिहिरकृतं न भवति। यत:—

निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा।
बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभि: पवनै:।।

इत्यनेन पौनरुक्त्यं भवति। बहुष्वादर्शेषु च दृश्यते। अतोऽस्माभि: सरसत्वाद् व्याख्यायते शिष्यहितार्थम्। तत्रादावैशान्यां दिशि स्थितस्य वातस्य लक्षणमाह—

आषाढपौर्णमास्यां तु यद्यैशानोऽनिलो भवेत्।
अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ।।१।।

यदि आषाढ के पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त काल में ईशान कोण की हवा चले तो पृथ्वी पर धान्य उत्तम रूप से होता है।।१।।

आषाढमासस्य पौर्णमास्यां तीक्ष्णांशावर्केऽस्तं गच्छति यद्यैशान ऐशान्यां दिशि अनिलो वातो भवेद्वहति तदा सस्यानां धान्यादीनां सम्पत्तिरुत्तमा प्रधाना भवति।।१।।

अथ पूर्वस्यामाह—

पूर्व: पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णित-
श्चन्द्रार्कांशुसटाकलापकलितो वायुर्यदाकाशत: ।
नैकान्तस्थितनीलमेघपटला शारद्यसंवर्धिता
वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला सर्वा मही शोभते ।।२।।

जिस आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन पूर्वी समुद्र के तरङ्गाग्र भाग से चालित होने के कारण घूमती हुई तथा सूर्य और चन्द्र के किरणरूप जटा से शोभित वायु आकाश से चलती है, उस वर्ष में सब जगह नील वर्ण वाले मेघों से युत, शारदीय धान्यों की समृद्धि से मण्डित और वसन्त ऋतु के अति समृद्धियुत धान्यों से भूषित सारी पृथ्वी शोभित होती है।।२।।

तस्यामेवाषाढपौर्णमास्यां पूर्वो वायु: पूर्वस्यां दिशि यस्मिन् काले आकाशतो नभसो वहतीत्यर्थ:। कीदृशो वायु:? पूर्वसमुद्रस्य प्रागुदधेर्ये वीचय ऊर्मयस्तेषां ये शिखरा अग्राणि तेषां प्रस्फालना चालनं तेन घूर्णितो भ्रमित:। तथा चन्द्रार्कयो: सूर्यशशिनोर्येऽशवो रश्मयस्त एव सटा: स्कन्धावलम्बिन: केशा इव तेषां य: कलापो विस्तारस्तेन कलितो मिश्रित:। तदा मही कीदृशी भवति? **नैकान्तस्थितेति**। नैकान्तमत्यर्थमेव सर्वत्र ये स्थिता नीलवर्णानां मेघानां पटला: समूहास्तै: शोभिता। तथा शारद्यसंवर्धिता। शारद्यै:

सस्यैर्धान्यादिभिः संवर्धिता समृद्धयुक्ता भवति। तथा वासन्तैर्वसन्तसम्भवैरुत्कटैरतिसमृद्धैः सस्यैर्मण्डितं भूषितं तलं पृष्ठं यस्याः सा तथाभूता। सर्वा निःशेषा मही भूः शोभते विराजते।।२।।

अथाग्नेय्यामाह—

यदा वह्नौ वायुर्वहति गगने खण्डिततनुः
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिङ्गिततला
स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ।।३।।

यदि आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन अस्त समय में अप्रतिहत गति वाली आग्नेय कोण की वायु चले तो उस वर्ष में सर्वत्र अग्नि की ज्वाला से व्याप्त पृष्ठ वाली प्रज्वलित पृथ्वी अपने शारीरिक उष्ण उच्छ्वास के द्वारा भस्मों को वमन करती है अर्थात् पृथ्वी पर वृष्टि का अभाव, अग्नि का भय, प्रजाओं का नाश आदि उपद्रव होते हैं।।३।।

यदा यस्मिन् काले वायुः पवनो वह्नावाग्नेय्यां दिशि वहति। गगने आकाशे। कीदृशः? अखण्डिततनुः। अखण्डिता तनुर्यस्य अविहतगतिरित्यर्थः। प्लवति प्रवहति अस्मिन्नाषाढीयोगे। कदा भगवति पतङ्गे सूर्ये प्रवसत्यस्तमेति सति। तदा तस्मिन् वर्षे वसुधा भूर्नित्योद्दीप्ता सर्वकालमुज्ज्वलिता। ज्वलनशिखरालिङ्गिततला ज्वलनस्याग्नेर्ये शिखरा ज्वालाग्राणि तैरालिङ्गितं परिष्वक्तं तलं यस्याः। तथाभूता स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैः स्वगात्रादात्मीयदेहाद्य ऊष्मा स एवोच्छ्वासास्तैस्तथाभूतैर्बहुप्रकारैः स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्भस्मनिकरं भस्मसमूहं वमत्युद्गिरति।।३।।

अथ दक्षिणस्यामाह—

तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्
योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनिः सपरुषो वायुर्यदा दक्षिणः ।
तद्वद्योगसमुत्थितस्तु गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः
कीनाशा इव मन्दवारिकणिका मुञ्चन्ति मेघास्तदा ।।४।।

इस योग में आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में तालपत्र, लताओं की विस्तृति और वृक्षों से वाहनों को नचाते हुये, कठोर शब्द वाले दक्षिण तरफ की हवा चले तो तालरूप अङ्कुश से ताड़ित हस्ती की तरह मेघ कृपण मनुष्य की तरह थोड़ी जलबिन्दु छोड़ता है, अर्थात् उस वर्ष में थोड़ी वृष्टि होती है।।४।।

अस्मिन् योगेऽषाढाख्ये यदा यस्मिन् काले दक्षिणो याम्याशास्थो वायुः पवनः प्लवति वहति। किं कुर्वंस्ताली वृक्षविशेषस्तस्य पत्राणि पर्णानि तथा लतावितानो लतानां विस्तारस्तरवो वृक्षाः। एतैश्चालितैः शाखामृगान् वानरान्नर्तयन् वहति। वातवेगात्तालादयश्चलन्ति तच्चलनात्तान्नर्तयन्निव। तथा तद्वत्तेनैव प्रकारेण योगे पौर्णमास्यां सूर्यास्तमये

समुत्थितो ध्वनिः शब्दः सपरुषोऽतिरूक्षः प्लवति वाति प्रभवति वा तदा तस्मिन् काले मेघा अम्बुदा गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः। यथा गजा इभाः। तालेनाहता अङ्कुशेन च यद्वद् घट्यन्ते रुध्यन्ते तद्वद् घट्टिता। कीनाशाः कदर्या इव मन्दस्य स्वल्पस्य वारिणो जलस्य कणिका बिन्दूनेव मुञ्चन्ति त्यजन्ति न प्रभूतं जलमिति।।४।।

अथ नैर्ऋत्यामाह—

सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे
भानोरस्तमये प्लवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः।
क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा
मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते ।।५।।

इस योग में 'आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में' समुद्र के समीप छोटी इलायची, लवली और लौंग के वृक्षों को घुमाते हुये यदि नैर्ऋत्य तरफ की हवा चले तो भूख, प्यास से मरे हुए मनुष्यों की हड्डियों के टुकड़े की विस्तृति के भार से व्याप्त पृथ्वी उन्मत्त और अति चञ्चल प्रेतवधू की तरह दिखाई देती है।।५।।

तस्यामाषाढपौर्णमास्यां भानोः सूर्यस्यास्तमयेऽस्तमयकाले नैर्ऋतो वायुर्दक्षिणपश्चिमाशास्थः। अविरतः सन्ततः प्लवति वहति। किं कुर्वन्। सूक्ष्मेलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन्। सूक्ष्मैला प्रसिद्धा। लवली प्रसिद्धा। लवङ्गानि प्रसिद्धानि। एतेषां निचयाः समूहास्तान् व्याघूर्णयंश्चालयन्। क्व? सागरे समुद्रसमीपे। तदा तस्मिन् वर्षे भूमिरवनिरेवंविधा लक्ष्यते दृश्यते। कीदृशी? क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा, क्षुद् बुभुक्षा, तृष्णा पिपासा, आभ्यामावृता व्याप्ता ये मानुषा जनास्तेषां मृतानामस्थिशकलैरस्थिखण्डैश्च यः प्रस्तारो विस्तारः स एव भारोऽतिबहुत्वात् स एव शुक्लत्वाच्छद आवरणं वस्त्रं यस्याः अत एव प्रेतवधूः प्रेतस्त्रीवोग्रचपला तीव्रा चापल्ययुक्ता च। मत्ता प्रमत्ता। इवातीव जनमरकत्वात्।।५।।

अथ पश्चिमायामाह—

यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटाटोपचपलः
प्रवातः पश्चाच्चेद्दिनकरकरापातसमये।
तदा सस्योपेता प्रवरनिकराबद्धसमरा
क्षितिः स्थानस्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा ।।६।।

इस योग में (आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) धूलि को उड़ाने से चलित केशर के आक्षेप से चञ्चल और भयङ्कर हवा चले तो उस वर्ष में धान्यों से युत, प्रधानों (राजाओं) के युद्धों से व्याप्त, जगह-जगह पर निरन्तर वसा, मांस और रक्त से व्याप्त पृथ्वी होती है।।६।।

यदा यस्मिन् काले दिनकरकरापातसमये दिनकरस्यादित्यस्य करा ये रश्मयस्तेषामापातो विनाशस्तत्समये। सूर्यास्तमयकाल इत्यर्थः, पश्चाच्चेत् पश्चिमायां दिशि यदि प्रवातश्चण्डानिलो

वहति। कीदृशः? रेणूत्पातैर्धूलिसमुत्क्षेपणैः प्रविचलः। प्रकर्षेण चलमानो यः सटाटोपः सटाक्षेपस्तेन चपलश्चञ्चलः। तदा तस्मिन् वर्षे क्षितिर्भूः कीदृशी भवति सस्योपेता सस्यैर्बहुभिः संयुक्ता। तथा प्रवराणां प्रधानानां ये निकराः समूहास्तैराबद्धा रचिताः समराः संग्रामा यस्याम्। तथा स्थानस्थानेषु प्रदेशप्रदेशेषु। अविरतवसामांसरुधिरा, अविरतं सन्ततं कृत्वा वसामांसरुधिरैर्मेदपलशोणितैर्युक्तेति। अतिबहवो जनाः सङ्ग्रामे बध्यन्त इत्यर्थः।।६।।

अथ वायव्यामाह—

आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ
वायव्यो वृद्धवेगः पवनघनवपुः पन्नगार्द्धानुकारी।
जानीयाद्वारिधाप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठां
ससयोद्धासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ।।७।।

इस योग में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय में) सघन शरीर वाली (धूली के संयोग और सार्वदिक होने के कारण), सर्पों के टुकड़ों का अनुकरण करने वाली यदि वायव्य कोण की हवा चले तो उस वर्ष में जल की धारा से आनन्दित, अति शब्द करने वाले मेढकों से युत, धान्यों की बीजोत्पत्तिरूप चिह्नों से मण्डित पृथ्वी पर सुखों की अधिकता होने के कारण भाग्य सेना की तरह पृथ्वी को जानना चाहिये।।७।।

आषाढी पौर्णमासी सैव पर्व तस्य कालस्तस्मिन् यदि चेत् करणपतेः सूर्यस्यास्तकालोपपत्तावस्तमयसमयप्राप्तौ वायव्यो वातो वृद्धवेगश्चण्डशब्दो यदि वहति। कीदृशः? पवनघनवपुः पवनश्चासौ घनवपुः, घनं समन्ततो वपुः शरीरं यस्य। तथा पन्नगार्द्धानुकारी, पन्नगाः सर्पास्तेषामर्द्धानि खण्डान्यनुकरोति। रेणुसमायोगत्वात् सन्ततत्वाच्चेत्यर्थः। केषाञ्चित् पाठः पन्नगादानुकारी, पन्नगाः सर्पास्तानत्ति भक्षयति गरुडस्तदनुकारी। अतिवेगसमायुक्तत्वाद् गरुडवेग इव स वायुर्लक्ष्यते। तदा तस्मिन् वर्षे उर्वीं भूमिं कीदृशीं जानीयाद्विन्द्यात्। वारिधाराप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठामिति, वारिणो जलस्य या धारास्ताभिः प्रकर्षेणातिशयेन या मुद्धर्षमिता प्राप्ता तया मुदिता हृष्टा मत्ता ये मण्डूका भेकास्तेषामामुक्ता अतिशब्दाः कण्ठा गलाश्च यस्याम्। तथा सस्यानामुद्भासो बीजोत्पत्तिः स एकचिह्नं ललाटे यस्याम्। सुखानां बहुलतया सामग्र्या जनानामतिसुखितत्वाद् भाग्यसेनां भाग्यचमूमिव।।७।।

अथोत्तरस्यामाह—

मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ
वात्यामोदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः।
विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलना मत्तास्तदा तोयदा
उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ।।८।।

ग्रीष्म के अन्त में (आषाढ शुक्ल पूर्णिमा के दिन) मेरु से आच्छादित सूर्य के किरण होने पर (सूर्यास्त समय में) अति सुगन्ध वाले कदम्बपुष्पों के गन्ध से सुगन्धित उत्तर तरफ की हवा चले तो उस वर्ष में बिजली से उत्पन्न सम्पूर्ण कान्तियों का स्वरूप

ज्ञान होने के कारण उद्यम युत तथा उन्मत्त की तरह मेघ मेघों से नष्ट चन्द्रकिरण वाली पृथ्वी को जल से पूर्ण करता है।।८।।

ग्रीष्मावसाने आषाढपौर्णमास्यां रवावादित्ये मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले मेरुणा पर्वतेन ग्रस्तमुपसंहृतं मरीचिमण्डलतलं रश्मिसमूहपर्यन्तं यस्य रवेस्तथाभूते काले यदा वायुरनिल उत्तरः सौम्याशास्थो वाति वहति। कीदृशः? आमोदिनोऽतिसुगन्धा ये कदम्बास्तेषामेव कदम्बानां पुष्पविशेषाणां यो गन्धस्तेन सुरभिः सुवासितः, तदा तस्मिन् वर्षे तोयदा मेघा गां भूमिमम्बुभिर्जलैः पूरयन्ति। कीदृशा मेघाः? विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलनामत्ताः। विद्युत्तडित्तस्या भ्रान्तिः परिभ्रमणं तया समस्ता सकला या कान्तिः प्रभा तस्याः कलनमाकारज्ञानं येषां तस्मान्मत्ताः सोद्यमाः। तथा उन्मत्ता इवातिनादाश्चातिवृष्टिमुचः। कीदृशीं गाम्? नष्टचन्द्रकिरणाम्, नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्रकिरणाः शशिरश्मयो यस्यां तथाभूतामिति।

अथ भद्रपदायोगमाह—

वृत्तायामाषाढ्यां कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्क्षे ।
यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चेन्न तदा ।।९।।

यदि आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में मेघ वृष्टि करे तो उस वर्ष में वर्षा अच्छी होती है। यदि वृष्टि नहीं करे तो अवृष्टि होती है।।९।।

आषाढपौर्णमास्यां वृत्तायामतीतायां पुरतः कृष्णचतुर्थ्यां तिथावजैकपादर्क्षे पूर्वभद्रपदानक्षत्रे यदि पर्जन्यो मेघो वर्षति तदा प्रावृड् वर्षाः शस्ता शुभप्रदा। न चेद्यदि न वर्षति तदा न शुभेति।।९।।

(ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत्
पुन्नागागरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः ।
आपूर्णोदकयौवना वसुमती सम्पन्नसस्याकुला
धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो रक्षन्ति वर्णास्तदा ।।

आषाढ़ शुल्क पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में देवताओं के सेवनयोग्य, शीतल, भयङ्कर शब्द वाले, पुन्नाग, अगुरु और पारिजात के फूलों से सुगन्धित ईशान कोण की हवा चले तो उस वर्ष में पूर्ण जलरूप यौवन से युत और पके हुये धान्यों से व्याप्त पृथ्वी होती है तथा धर्मात्मा और शत्रुओं को वश में करने वाले राजा लोग ब्राह्मण आदि वर्णों की सुचारु रूप से रक्षा करते हैं।)

अन्यदप्याह—

नष्टचन्द्रार्ककिरणं नष्टतारं न चेन्नभः ।
न तां भद्रपदां मन्ये यत्र देवो न वर्षति ।।१०।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वातचक्राध्यायः सप्तविंशः ।।२७।।

यदि चन्द्र और सूर्य के किरणों से तथा ताराओं से रहित आकाश नहीं हुआ तो उसको भाद्रपद नहीं कहना चाहिये क्योंकि; उसमें मेघ वृष्टि नहीं करता है।।१०।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां वातचक्राध्यायः सप्तविंशः ॥२७॥

यस्यां भद्रपदायां नभ आकाशं नष्टचन्द्रार्ककिरणं भवति। नष्टा अदर्शनं गताश्चन्द्रार्कयो: शशिसूर्ययो: किरणा यत्र तत्तथाभूतम्। मेघच्छन्नत्वात्। तथा नष्टतारम्, नष्टा अदर्शनं गतास्तारा नक्षत्राणि यत्र। यस्यां भद्रपदायां देवो न वर्षति न तां भद्रपदामिति मन्ये जाने इति। अनार्षाविमौ श्लोकौ।।१०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ
वातचक्रंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ सद्योवर्षणाध्यायः

अथ सद्योवर्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्षपृच्छायां वर्षज्ञाने प्रश्नमाह—

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे।
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः
प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥१॥

कृष्ण पक्ष में वर्षा-सम्बन्धी प्रश्न करने पर यदि जलचर राशि में स्थित होकर चन्द्रमा लग्न में बैठा हो या शुक्ल पक्ष में जलचर राशि में स्थित होकर केन्द्र (चतुर्थ, सप्तम या दशम) में बैठा हो और इन दोनों योगों में यदि चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट हो तो बहुत जल्दी अधिक वृष्टि और पापग्रह से दृष्ट हो तो थोड़ी वृष्टि होती है।।१।।

वर्षाप्रश्ने वृष्टिपृच्छायां चन्द्रः शशी सलिलनिलयं जलाश्रयं राशिमाश्रित्य कर्कट-मकरमीनानामन्यतमं संश्रित्य लग्नं तात्कालिकं पृच्छालग्नं यातः प्राप्तस्तत्र व्यवस्थितः, एको योगो भवति। यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे प्रश्नकाले न लग्नगश्चन्द्रमा जलराशिस्थो-ऽप्यन्यस्मिन् केन्द्रे चतुर्थसप्तमदशमानामन्यतमे भवति। किं सर्वदा। न हि, शुक्लपक्षे। तेनैतदुक्तं भवति—कृष्णपक्षे वर्षपृच्छायां यदि जलचरराशिव्यवस्थितश्चन्द्रमा लग्ने भवति शुक्ले पुनर्जलराश्याश्रित एव लग्नवर्जमन्यकेन्द्रगतो भवति, तदा द्वितीयो योगः। अस्मिन् योगद्वये प्रावृट्काले वर्षासमये न चिराच्छीघ्रमेवाम्भः पानीयं सृजति ददाति। अत्रैव जलस्याल्पत्वं प्रभूतत्वमाह—**सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमिति**। यथादर्शितयोगस्थः शशी सौम्यैः शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्राणामन्यतमेन दृष्टोऽवलोकितो भवति। तदा प्रचुरं प्रभूतमुदकं जलं सृजति। पापैरादित्यभौमसौराणामन्यतमेन दृष्टोऽल्पं स्तोकमम्भो जलं सृजति। अर्थादेव मिश्रदृष्टो मध्यमं जलं सृजति तदा प्रावृट्काले। प्रावृट्कालग्रहणमन्यकाल-व्युदासार्थम्। सृजति मुञ्चति न चिरात् तस्मिन्नहन्येव। चन्द्रवद्भार्गवोऽपि, भार्गवः शुक्रश्चन्द्र-वज्ज्ञेयः। एतदुक्तं भवति—वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य शुक्रो लग्नयातो भवति कृष्णपक्षे तथा शुक्लपक्षे केन्द्रगस्तत्र च योगद्वयोऽपि सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भो मिश्रदृष्टो मध्यमं जलं सृजति।

नन्वत्र यदुक्तम्—'लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे' इति तत्किमनेन लग्नग्रहणेन, केन्द्रग्रहणेनैव लग्नं परिगृहीतमेव। यस्मात् सञ्ज्ञाध्यायेऽभिहितम्—'कण्टककेन्द्रचतुष्टयसञ्ज्ञा सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम्' तस्माल्लग्नग्रहणमत्रातिरिच्यत इति। अत्रोच्यते—'भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे' इति यदुक्तं तदनेनैव विकल्पेनाचार्येण कृष्णपक्षे वर्षप्रश्नपरिज्ञानं सविकल्पनमभिहितम्, तेन शुक्लपक्षे लग्नादन्यतमे केन्द्रे वा

जलराशिव्यवस्थितश्चन्द्रमा: सौम्यैर्यदि दृश्यते तदा सुप्रभूतं पानीयं मुञ्चति, पापदृष्टोऽल्पम्, मिश्रदृष्टो मध्यमम्। कृष्णपक्षे पुनर्लग्न एव केन्द्रे यदि भवति तत्रस्थ: सौम्यैर्दृश्यते तदा प्रचुरं पानीयं मुञ्चति, पापदृष्टोऽल्पम्, मिश्रदृष्टो मध्यमम्। अन्यकेन्द्रव्यवस्थिते शशिनि सौम्यग्रहदृष्टेऽपि पानीयं नास्त्येव। कुत एतन्निश्चीयते ननु। विकल्पादवगतं भवति। यदि वा केन्द्रग: शुक्लपक्षेऽतोऽर्थादेवावगम्यते। लग्नकेन्द्रमुक्त्वा कृष्णपक्षेऽन्यकेन्द्रचिन्ता नास्त्येव। तस्मान्न लग्नग्रहणमत्रातिरिच्यत इति। तथा च समाससंहितायाम्—

वर्षाप्रश्ने प्रावृषि जलराशौ कण्टके शशी बलवान्।
भृगुजो वा शुभदृष्टो बहुजलकृत् स्वल्पद: पापै:।। इति।।१।।

अथ सामान्येनोक्तम्। अथान्यत्प्रश्नज्ञानमाह—

आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा
तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा।
प्रष्टा वाच्य: सलिलमचिरादस्ति नि:संशयेन
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्द: ।।२।।

यदि वर्षासम्बन्धी प्रश्न में प्रश्नकर्ता गीली वस्तु, जल, जलसंज्ञक वस्तु (क्षीर, अब्ज इत्यादि) का स्पर्श करे, जल के समीप में स्थित हो, जलसम्बन्धी किसी कार्य में लगा हो या किसी अन्य के द्वारा जल शब्द सुनने में आवे तो नि:सन्देह शीघ्र ही वृष्टि होती है।।२।।

अथवा प्रष्टा वर्षप्रश्नपृच्छक:। आर्द्रं द्रव्यं सरसं यत्किञ्चिद्वस्तुविशेषं स्पृशति। यदि वा वारि जलं स्पृशति। तत्संज्ञकं वारिसंज्ञकं यत्किञ्चित् स्पृशति। यथा क्षीरं पय:शब्दवाच्यत्वात्तत्संज्ञम्। अब्जा मुक्ता:। अम्बुबालकमित्येवमादि। अथवा प्रष्टा तोयासन्नो जलसमीपवर्ती यदि भवति। अथवा तोयकार्ये जलकार्ये उन्मुखो गन्तुं प्रवृत्तो भवति। तदा प्रष्टा एव वाच्यो वक्तव्य:, यथा सलिलं जलम्। अचिराच्छीघ्रमेव नि:संशयेन निर्विकल्पेनास्ति विद्यते। अथवा पृच्छाकाले वा प्रश्नसमये सलिलमिति शब्दो वा श्रूयते यत्र तत्र जलं नि:संशयेनास्तीति वक्तव्यम्। तथा च समाससंहितायाम्—

आर्द्रद्रव्यं सलिलं जलसंज्ञश्रवणदर्शनान्यथवा।। इति।।२।।

अथान्यद्वर्षज्ञानमाह—

उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या
द्रुतकनकनिकाश: स्निग्धवैदूर्यकान्ति: ।
तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान्
प्रतपति यदि चोच्चै: खं गतोऽतीव तीक्ष्णम् ।।३।।

वर्षासमय में उदयाचल पर्वत पर स्थित, अत्यन्त तीक्ष्ण किरण होने के कारण बड़ी कठिनता से देखने के लायक, गलित सुवर्ण के समान और निर्मल वैदूर्य मणि की तरह

कान्ति वाला सूर्य जिस दिन दिखाई दे, उसी दिन वृष्टि करता है तथा जिस दिन मध्याह्न काल में अति तीक्ष्ण किरण वाला सूर्य हो, उस दिन भी वर्षा करता है।।३।।

विवस्वानादित्य उदयशिखरिसंस्थः। उदयपर्वतमूर्ध्नि स्थितः। अतिदीप्त्या अतिकान्त्या दुर्निरीक्ष्यो निरीक्षितुं न शक्यते। द्रुतकनकनिकाशः, द्रुतस्य गलितस्य कनकस्य सुवर्णस्य निकाशस्तत्सदृशः। स्निग्धवैदूर्यकान्तिस्तथा स्निग्धस्य निर्मलस्य वैदूर्यस्य मणेः सदृशी कान्तिः। एवंविधो विवस्वान् तदहनि तस्मिन्नेव दिनेऽम्भस्तोयं कुरुते। तोयकाले वर्षा-समये। तोयकालग्रहणमन्यकालव्युदासार्थम्। यदि चोच्चैः खमाकाशं गतो मध्याह्नस्थ इत्यर्थः। प्रतपत्यतितीक्ष्णं तपति तदापि तस्मिन्नहन्यम्भः कुरुते।।३।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो
लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः।
पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो
रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ।।४।।

स्वादरहित जल, गौ के नेत्र के समान या काक के अण्डे के समान आकाश, निर्मल दिशा, नमक में विकार (पानी आदि आ जाना), वायु का निरोध, अतिशय उछल-उछल कर जल से सूखे में मछलियों का आना, मेढकों का बार-बार शब्द करना—ये सब वृष्टि के कारण हैं।।४।।

इमे सर्वे जलागमहेतवः। पानीयागमनकारणानि। उदकं जलं विरसं स्वादुरहितम्। तथा गोनेत्राभं गोनयनसदृशं वियदाकाशम्। दिश आशा विमला निर्मलाः। लवणस्य सैन्धवस्य विकृतिर्विकारः। आर्द्रताप्रस्वेदः। नभ आकाशं च काकाण्डाभं वायसाण्ड-कान्तितुल्यं भवेत् स्यात्, श्वेतनीलमित्यर्थः। पवनविगमो वायोर्निरोधः। झषा मत्स्याः स्थलगामिनः स्थलगमनशीलाः। पोप्लूयन्ते अत्यर्थं प्लवन्ते। मण्डूकानां भेकानामसकृत् पुनः पुना रसनं शब्दः।।४।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो
लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः।
रथ्यायां शिशुरचिताश्च सेतुबन्धाः
सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ।।५।।

यदि बिल्ली बार-बार अपने नाखून से भूमि को खोदे, लोहों में विस्र (कच्चे मांस) की गन्ध से युत मल हो जाय या मार्ग में बालकों से रचित पुल दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होगी—ऐसा कहना चाहिये।।५।।

मार्जारा विडाला भृशमत्यर्थमवनिं भूमिं नखै: करजैर्लिखन्तो विलिखन्त:। तथा लोहानामायसभाण्डानां कांस्यानां वा मलनिचयो मलसमूह:। सविस्रगन्ध: सह विस्रगन्धेन वर्तते। केचिन्मत्स्यसदृशगन्ध इतीच्छन्ति। एवं मलनिचयो विस्रगन्धसहितस्तथा रथ्यायां पथि शिशुरचिता बालविरचिताश्च सेतुबन्धा यदि दृश्यन्ते तदा जलमुदकं सम्प्राप्तमागतमचिराच्छीघ्रमेव निवेदयन्ति कथयन्ति।।५।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा यदि वा बाष्पनिरुद्धकन्दरा: ।
कृकवाकुविलोचनोपमा: परिवेषा: शशिनश्च वृष्टिदा: ।।६।।

यदि अञ्जनचूर्ण के समान पर्वत, वाष्प से भरी हुई गुफा, जल में रहने वाले मुर्गे के नेत्र के समान (अति लोहित) चन्द्रकिरण हो तो शीघ्र वृष्टि होती है।।६।।

गिरय: पर्वता अञ्जनचूर्णसन्निभा: कृष्णवर्णा यदि दृश्यन्ते। बाष्पेणोष्मणा निरुद्धाश्छन्ना: कन्दरा अवटा येषां तथाभूता:। शशिनश्चन्द्रस्य परिवेषा कृकवाकुविलोचनोपमा:। कृकवाकोर्जलकुक्कुटस्य यादृग्विलोचनं नयनं तदुपमास्तत्सदृशा:। अतिलोहिता इत्यर्थ:। एते सर्व एव वृष्टिदा:।।६।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवाय: ।
द्रुमावरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतञ्च ।।७।।

यदि विना कारण चीटियाँ अपने अण्डों को एक जगह से दूसरी जगह ले जायँ, सर्पों का मैथुन हो, सर्प वृक्ष पर चढ़े या गौ विना कारण उछले हो तो शीघ्र वृष्टि होगी।।७।।

पिपीलिकानामुपघातेनोपसर्गेण विना तद्व्यतिरिक्तमण्डानामुपसंक्रान्तिरन्यदेशे नयनम्। तथाऽहीनां सर्पाणां व्यवायो मैथुनम्। भुजङ्गमानां सर्पाणां द्रुमावरोहो वृक्षावरोहणम्। तथा गवां सुरभीणां प्लुतं प्लवनम्। एतानि सर्वाणि वृष्टेर्निमित्तानि कारणानि।।७।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

तरुशिखरोपगता: कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाता: ।
यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण ।।८।।

यदि वृक्ष के शिखर पर स्थित होकर कृकलास (गिरगिट) आकाश की तरफ देखता हो और गायें ऊपर को दृष्टि करके सूर्य को देखती हों तो शीघ्र वृष्टि होती है।।८।।

कृकलासा: प्राणिनस्तरूणां वृक्षाणां शिखरोपगता मूर्द्धनि स्थिता:। तत्र गगनतले आकाशतले स्थितदृष्टिनिपाता नभस्येव निरीक्षन्ते। यदि च गवामुक्षणामूर्ध्वमुपरि रविवीक्षणं सूर्यावलोकनं भवति तदा न चिरेण शीघ्रमेव वारि जलं निपतति वर्षतीत्यर्थ:।।८।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि ।
पशवः पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥९॥

यदि पशु घर से बाहर होने की इच्छा न करें और कान तथा पाँव हिलावें तो वृष्टि कहनी चाहिये अथवा पशु की तरह कुत्ता चेष्टा करे तो भी वृष्टि कहनी चाहिये।।९।।

यदि पशवश्चतुष्पादा गवादयो गृहाद्वेश्मनो विनिर्गमं निष्क्रमणं नेच्छन्ति न वाञ्छन्ति, तथा श्रवणान् कर्णान् पादानपि धुन्वन्ति कम्पयन्ति, तदाम्भो जलं निपततीति निर्दिशेद्वदेत्। पशुवच्च कुक्कुराः। श्वानः पशुवत्। यथा पशवस्तथा कुक्कुरा अपि ज्ञेयाः। एतदुक्तं भवति—नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपीति कुक्कुराणामपि ज्ञेयम्।।९।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यदा स्थिता गृहपटलेषु कुक्कुरा
रुदन्ति वा यदि विततं वियन्मुखाः ।
दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा
तदा क्षमा भवति समैव वारिणा ॥१०॥

जब घर के आच्छादन (छतों पर) पर स्थित होकर आकाश की तरफ देखता हुआ कुत्ता भूंके तथा ईशान कोण में बिजली दिखाई दे तब जल से पृथ्वी समाम हो जाती है अर्थात् अधिक वृष्टि होती है।।१०।।

यदा यस्मिन् काले कुक्कुराः श्वानो गृहपटलेषु स्थिताः। गृहपटलं गृहाच्छादनं तत्र स्थिता यदि वा विततं सततं कृत्वा वियन्मुखमाकाशं निरीक्षन्तो रुदन्ति शब्दं कुर्वन्ति। यदि च दिवा दिवसे तडिद् विद्युत् पिनाकिदिग्भवा ईशानदिगुत्था भवति, तदा क्षमा भूर्वारिणा जलेनैव समा निम्नोन्नता लक्ष्या न भवति। अतिवृष्टिर्भवतीत्यर्थः।।१०।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

शुककपोतविलोचनसन्निभो
मधुनिभश्च यदा हिमदीधितिः ।
प्रतिशशी च यदा दिवि राजते
पतति वारि तदा न चिरेण च ॥११॥

जिस समय तोता या कबूतर के नेत्र के समान या शहद की तरह चन्द्र हो या आकाश में दूसरा चन्द्र दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होती है।।११।।

हिमदीधितिश्चन्द्रो यदा यस्मिन् काले शुककपोतविलोचनसन्निभः। शुककपोतौ प्रसिद्धौ पक्षिणौ तद्विलोचनसन्निभस्तन्नेत्रसदृशाभो लोहितकान्तिरित्यर्थः। मधुनिभश्च माक्षिक-सदृशवर्णो वा पीताभ इत्यर्थः। तथा प्रतिशशी द्वितीयश्चन्द्रो यदा च दिवि नभसि राजते दृश्यते तदा तस्मिन् काले न चिरेण शीघ्रमेव वारि पानीयं पतति वर्षतीत्यर्थः।।११।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि दण्डवत्स्थिताः ।
पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदाऽऽगमो भवेत् ॥१२॥

यदि रात में मेघ का गर्जन हो, दिन में रुधिर के समान दण्डाकार बिजली दिखाई दे तथा पूर्व दिशा की ठण्ढ़ी हवा चले तो वर्षा का आगम होता है।।१२।।

यदि निशि रात्रौ स्तनितं मेघशब्दो भवति तथा विद्युतस्तडितो दिवा दिवसे। कीदृश्यो विद्युतः। रुधिरनिभा अतिलोहितास्ताश्च दण्डवदूर्ध्वाधःस्थित्या स्थिताः। पवनो वायुः परतः पूर्वस्यां दिशि शीतलो वहति तदा सलिलस्य जलस्यागमो वृष्टिपातो भवेत् स्यात्।।१२।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः
स्नायन्ते यदि जलपांशुभिर्विहङ्गाः ।
सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्रा-
ण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः ॥१३॥

यदि लताओं के नये पत्ते ऊर्ध्वमुख के हों, जल या धूलि से पक्षी स्नान करें या सरीसृप (कृमिजाति = सांप आदि) तृण के प्रान्त भाग पर स्थित हों तो शीघ्र वर्षा होती है।।१३।।

वल्यः प्रसिद्धास्तासां प्रवाला अभिनवपत्राणि। गगनतलोन्मुखा ऊर्ध्वगामिनः। यदि च विहङ्गाः पक्षिणो जलपांशुभिर्जलेनोदकेन वा पांशुना धूल्या स्नायन्ते स्नानं कुर्वन्ति। सरीसृपाः कृमिजातयो यदि च तृणाग्राणि तृणप्रान्तानि सेवन्ते। तत्पृष्ठगता भवन्ति। तदा जलस्य पानीयस्य पात आसन्नो निकटो भवति। शीघ्रमेव वर्षतीत्यर्थः।।१३।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

मयूरशुकचाषचातकसमानवर्णा यदा
जपाकुसुमपङ्कजद्युतिमुषश्च सन्ध्याघनाः ।
जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः
प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः ॥१४॥

मयूर, तोता, चाष (नीलकण्ठ), चातक, जपापुष्प या कमल के समान कान्ति वाले तथा जल के आवर्त्त (भँवर), पर्वत, नक्र (नाक), कछुआ, सूअर या मछली के समान आकृति वाले मेघ हों तो शीघ्र वृष्टि करते हैं।।१४।।

एवंविधाः सन्ध्याकाले घना मेघा न तु चिरेण कालेन शीघ्रमेवापो जलं यच्छन्ति ददति। कीदृशाः। मयूरशुकचाषचातकाः सर्व एव पक्षिविशेषाः। एतेषां समानवर्णास्तुल्यभाः, अतिनीलकान्तय इत्यर्थः।

तथा जपाकुसुमुपङ्कजद्युतिमुषः, जपाकुसुमं पुष्पविशेषोऽतिलोहितः। पङ्कजं पद्मम्। पङ्के कर्दमे जायत इति। अनयोर्द्युतिं कान्तिं ये मुष्णन्ति अपहरन्ति, अतिलोहितत्वात्तथाविधाः। तथा जलोर्मिरुदकावर्तः, नगः पर्वतः, नक्रो जलप्राणी, कच्छपः कूर्मः, वराहः सूकरः, मीनो मत्स्यः, एषां सदृशाकृतयः। तथा प्रभूतपुटसञ्चयाः। प्रभूतो बहुप्रकारः पुटसञ्चयो येषाम्। उपर्युपरि स्थिता इत्यर्थः।।१४।।

अथान्यद्वर्षज्ञानमाह—

पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्कधवला मध्येऽञ्जनालित्विषः
स्निग्धा नैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः ।
माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राग् वाम्बुपाशोद्भवा
ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि ।।१५।।

यदि चारो तरफ चूना या चन्द्र के समान श्वेत, मध्य में कज्जल या भ्रमर के समान कान्ति वाले, निर्मल, ऊपर-ऊपर स्थित, जलबिन्दु छोड़ते हुये और सीढ़ी की तरह स्थित मेघ पूर्व दिशा में उत्पन्न होकर पश्चिम की तरफ या पश्चिम में उत्पन्न होकर पूर्व दिशा की तरफ गमन करे तो पृथ्वी पर शीघ्र अधिक वृष्टि करता है।।१५।।

एवंविधा ये वारिमुचो मेघास्ते न चिराच्छीघ्रमेव भुवि भूमावम्भो जलं प्रभूतं सुबहु त्यजन्ति विसृजन्ति। कीदृशाः। पर्यन्तेषु समन्ततः। सुधा मक्कोलः। शशाङ्कश्चन्द्रः। तद्वद्धवलाः शुक्लाः। तथा मध्ये मध्यभागेऽञ्जनालित्विषः। अञ्जनं कज्जलम्। अलिर्भ्रमरः। तद्वत्त्विट् कान्तिर्येषां ते तथाभूताः। तथा स्निग्धा निर्मलाः। नैकपुटा बहुभिः पुटैरुपलक्षिताः। उपर्युपरि स्थिता इत्यर्थः। क्षरज्जलकणाः, क्षरन्तस्त्यजन्तो जलकणा जलबिन्दवो येषां ते। सोपानविच्छेदिनः। सोपानवद्विच्छेदो येषां ते। सोपानपदपङ्क्तिन्यायेन स्थिता इत्यर्थः। माहेन्द्रीप्रभवाः पूर्वस्यां दिशि उत्पन्नाः। अपरतः पश्चिमायां दिशि प्रयान्ति गच्छन्ति। अम्बुपाशोद्भवाः। अम्बुपो वरुणस्तस्याशा वारुणी दिक् पश्चिमेत्यर्थः। तदुद्भवास्तत्सम्भूताः प्राग्वा पूर्वां वा दिशं यान्ति।।१५।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषः ।
उद्गमास्तसमये यदि भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु ।।१६।।

यदि सूर्य के उदय या अस्त समय में इन्द्रधनु, परिघ (४७ वें अध्याय के १९ वें श्लोक में पठित), दूसरा सूर्य, रोहित (४७ अ. २० श्लोक) या सूर्य-चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो शीघ्र अधिक वृष्टि होती है।।१६।।

भानोरादित्ययोद्गमास्तसमये उदयकालेऽस्तमयकाले वा यद्येते दृश्यन्ते तदाशु शीघ्रमेव प्रचुरं प्रभूतमम्बु जलमादिशेद्वदेत्। के ते? शक्रचापपरिघप्रतिसूर्याः, शक्रचापमिन्द्रधनुः। परिघः सूर्योदयास्तमयसमये तिर्यक् स्थिता मेघरेखा, तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'परिघ

इति मेघरेखा'। प्रतिसूर्यो द्वितीयोऽर्कः। रोहितस्तस्य च लक्षणं वक्ष्यति—'सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितम्' इति।

अथशब्दश्चार्थे। अथ तडितो विद्युतः। परिवेषः सूर्यशशिनोः। तस्य लक्षणं वक्ष्यति—'सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः' इति। एते सर्व एव।।१६।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः।
उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना न चिरेण जलम्।।१७।।

यदि उदय या अस्तसमय तित्तिर के पंख के समान आकाश हो और आनन्दित होकर पक्षी गण शब्द करें तो क्रम से दिन और रात्रि में शीघ्र अति वृष्टि होती है। जैसे उदयकाल में उक्त लक्षण हो तो दिन में और अस्तकाल में हो तो रात्रि में अति वृष्टि होती है।।१७।।

यदि गगनमाकाशं तित्तिरपत्रनिभम्, तित्तिरः पक्षी तस्य पत्रं पक्षस्तन्निभमिति तद्वत्। आवृतत्वाद्विचित्रमित्यर्थः। अथ च पक्षिगणा विहङ्गसमूहा मुदिता हृष्टाः प्रवदन्ति शब्दं कुर्वन्ति सवितुः सूर्यस्योदयकालेऽस्तमयकाले वा। ते च यथासङ्ख्यं द्युनिशम्। उदये दिवसे अस्ते च रात्रौ घना मेघा न चिरेण शीघ्रमेव जलं विसृजन्त्युत्सृजन्ति। वर्षन्तीत्यर्थः। उदयकाले दिवा वृष्टिरस्तमयकाले रात्राविति। अनार्षोऽयं श्लोकः।।१७।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः।
भूसमं च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम्।।१८।।

यदि हजार, अमोघ (३० अध्याय ११ वें श्लोक में पठित), अस्ताचल पर्वत के हाथ की तरह उन्नत सूर्य के किरण दिखाई दें और मेघ पृथ्वी के निकट आकर गर्जे तो वर्षा होने का उत्तम योग होता है।।१८।।

सहस्रं गवां रश्मीनां यस्य स सहस्रगुप्तस्य सहस्रगोरादित्यस्य यद्यमोघकिरणाः। अमोघाख्या रश्मयः। तेषां लक्षणं वक्ष्यति—'शुक्राः करा दिनकृतः' इति। एवंविधा अमोघकिरणा अस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः। अस्तभूधरस्यास्तमयपर्वतस्योच्छ्रिता उच्चीकृताः करा हस्ता इव लक्ष्यन्ते। उदयास्तमययोश्चैवंविधा दृश्यन्ते। वक्ष्यत्याचार्यः। उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते। तथाम्बुदो मेघो भूसमं क्षितितुल्यं रसते शिलष्यते यदा तत्तस्मान्महद्वृष्टिलक्षणं भवति। अतिवृष्टिचिह्नं भवतीत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्—

पृच्छाकाले शान्ता वारुणदिक्स्था विहङ्गा वा।
दर्पणलोहकलङ्को लवणक्लेदोऽतितीक्ष्णकिरणोऽर्कः।।
पोप्लूयन्ते मत्स्या दिश्यैशान्यां तडिच्च दिवा।
उत्कर्णपुच्छवदना गावस्तापोऽम्भसां पवननाशः।।

अञ्जनपुञ्जश्यामा गिरयो वाष्पावृता यदि वा।
यदि जलपांशुस्नानं विहगानां मैथुनं द्विजिह्वानाम्।।
वृक्षारोहणमथवा पिपीलिकाण्डोपसङ्क्रान्तिः।
कृकवाकुशुककपोतकलविङ्कविलोचनोऽर्केन्द्वोः ।।
स्निग्धः परिवेषो वा वियदमलं बालकनिमित्तम्।
मधुसदृशः शीतांशुः प्रतिचन्द्रः शीतमारुतः पूर्वः।।
ऊर्ध्वाङ्कुराश्च वल्यः सद्योवर्षाय कीर्त्यन्ते।
स्निग्धाः समसितरेखा यथाभ्रवृन्दानि कल्पितान्येव।।
यच्छन्त्यपो मयूखा यदि चेन्दोर्वा रवेर्दीप्ताः।। इति।

अत्र यानि सद्योवर्षचिह्नानि उक्तानि तेषु बलवत्सु महद्वृष्टिं मध्येषु मध्यमामल्पेष्वत्यल्पां वदेत्। तथा च पराशरः—

बलवत्सु महद्वर्षमल्पेष्वल्पाम्बुशीकरम्।
मध्येषु मध्यमं ब्रूयान्निमित्तेषु निमित्तवत्।।
उल्कानिर्घातभूकम्पपांशुवर्षाणि केतवः।
अपसव्या ग्रहाश्चैव नित्यं वर्षासु वर्षदाः।। इति।।१८।।

अन्यद्वर्षलक्षणमाह—

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः।
सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलाऽऽगमनाय ॥१९॥

यदि वर्षाकाल में शुक्र से सप्तम राशि में स्थित होकर चन्द्रमा शुभग्रह से देखा जाता हो अथवा शनैश्चर से नवम या पञ्चम में स्थित होकर शुभग्रह से देखा जाता हो तो जल के आगमन के लिये होता है।।१९।।

प्रावृड्ग्रहणमन्यकालव्युदासार्थम्। प्रावृषि वर्षाकाले शीतकरश्चन्द्रो भृगुपुत्राच्छुक्रात् सप्तमराशिगतः सप्तमराशौ व्यवस्थितः। तत्र च शुभदृष्टः सौम्यग्रहावलोकितस्तदा जलाऽऽगमनाय वर्षाऽऽगमनाय भवतीति। अथवा सूर्यसुतात् सौरात् स एव चन्द्रो नवमगः पञ्चमगो वा सप्तमगश्च यदि भवति स च शुभदृष्टस्तदा जलाऽऽगमनाय वर्षाऽऽगमनाय भवतीति।।१९।।

अन्यद्वर्षलक्षणमाह—

प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥२०॥

ग्रहों के उदय या अस्तकाल में, चन्द्र के साथ समागम होने पर, मण्डल (शुक्रचारोक्त छः मण्डल) में प्रवेश होने पर, पक्ष के अन्त में, सूर्य के दक्षिणायनान्त और उत्तरायणान्त (कर्क और मकर संक्रान्ति) में तथा सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में स्थित होने पर निश्चय करके वृष्टि होती है।।२०।।

ग्रहाणामुदयकाले सूर्यमण्डलान्निर्गमे। तत्रैवास्तकालेऽस्तमये। एवमुदयास्तमयावत्र अर्कविप्रकर्षसन्निकर्षजौ ज्ञेयौ। तथा समागमे, समागमश्चन्द्रेण सह ताराग्रहाणाम्। मण्डल-सङ्क्रमे वा, मण्डलानि भरणीपूर्वमण्डलमित्यादि षण्मण्डलानि शुक्रचारोक्तानि तेषां संक्रमे प्रवेशे च। पक्षक्षयोऽमावस्यापौर्णमास्यन्तस्तस्मिन्। तीक्ष्णकरस्यादित्यस्यायनान्ते दक्षिणो-त्तरयोरयनयोः समाप्तौ। कर्कटकमकरसंक्रान्तावित्यर्थः। एतेषु सर्वेषु प्रायो बाहुल्येन वृष्टि-र्भवति। तथाऽर्के सूर्ये आर्द्रां गते रौद्रं नक्षत्रं प्राप्ते नियमेन निश्चयेन वृष्टिर्भवति।।२०।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे।
यमारयोः पवनहुताशजं भयं ह्यदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥२१॥

बुध-शुक्र, बुध-गुरु, गुरु-शुक्र और शनि-मंगल की युति हो तथा उस पर शुभग्रह की दृष्टि या योग न हो तो वायु और अग्नि का भय होता है।।२१।।

ज्ञो बुधः। शुक्रो भार्गवः। तयोर्ज्ञशुक्रयोः समागमे संयोगे जलं पानीयं पतति वर्षती-त्यर्थः। तथा ज्ञजीवयोर्बुधबृहस्पत्योः सङ्गमे संयोगे जलं पतति। गुरुसितयोर्जीवशुक्रयोः सङ्गमे जलं पतति। यमारयोः सौराङ्गारकयोः सङ्गमे पवनहुताशजं भयं भवति। पवनो वायुः। हुताशोऽग्निः। तज्जं भयं भवति। किं सर्वदा। न, इत्याह—अदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैरिति। सद्ग्रहा बुधबृहस्पतिशुक्राः। एतेषामन्यतमेनादृष्टयोरनवलोकितयोरसहित-योरसंयुक्तयोः पवनहुताशजं भयं भवति। युक्तदृष्टयोर्नेति।।२१।।

अन्यद्वर्षज्ञानमाह—

अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः।
यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥२२॥

यदि सूर्य से मन्दगति ग्रह आगे और शीघ्रगति ग्रह पीछे हों तो पृथ्वी को जल से समुद्र की तरह कर देते हैं।।२२।।

सूर्यावलम्बिनो ग्रहाः सूर्यावलम्बनशीलाः। अस्तमयाभिलाषिण इत्यर्थः। अग्रतः पृष्ठतो वा भवन्ति। अग्रतः पुरस्तात्। पृष्ठतः पश्चात्। मन्दग्रहा अग्रतोऽस्तमयं यान्ति। शीघ्रग्रहाः पृष्ठतः। सूर्यस्य प्राक्पश्चाद्वा यद्यस्तमयं कुर्वन्ति, यदा यस्मिन् काले, तदा तस्मिन् काले महीं भूमिमेकार्णवां सर्वजलमयीं कुर्वन्तीत्यर्थः। बहुवचननिर्देशादयादयो ग्रहा ज्ञेया इति।।२२।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सद्यो-
वर्षलक्षणन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

प्रविशति यदि खद्योतो जलदसमीपेषु रजनीषु।
केदारपूरमधिकं वर्षति देवस्तदा न चिरात् ॥२३॥

वर्षत्यपि रटति यदा गोमायुश्च प्रदोषवेलायाम्।
सप्ताहं दुर्दिनमपि तदा पयो नात्र सन्देहः[1] ॥२४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां
सद्योवर्षणाध्यायोऽष्टाविंशः ॥२८॥

यदि रात्रि में जुगनू मेघ के समीप तक जाय तो शीघ्र मेघ धान्य के क्षेत्रों को पूर्ण करने वाली वृष्टि करता है।

यदि प्रदोष समय में वर्षा हो या सियार भूंकें तो निश्चय करके सात दिन तक दुर्दिन और वृष्टि होती है।।२३-२४।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सद्योवर्षणाध्यायोऽष्टाविंशः ॥२८॥

१. पद्यद्वयमिदमा[illegible]वृतत्वात्केनचित्प्रक्षिप्तमिति प्रतिभाति।

अथ कुसुमलताध्यायः

अथ कुसुमलताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम्।
सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम्॥१॥

वृक्षों में फल और फूलों की वृद्धि देखकर द्रव्यों की सुलभता तथा धान्यों की निष्पत्ति जाननी चाहिये।।१।।

वनस्पतीनां वृक्षाणां फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं फलानां कुसुमानां च पुष्पाणां सम्यक् प्रवृद्धिं विलोक्य दृष्ट्वा द्रव्याणां सर्वेषां सुलभत्वं सामर्थ्यं विज्ञेयं विज्ञातव्यम्। तथा सस्यानामपि निष्पत्तिः सम्पद् ज्ञेयेति।।१।।

अथ केन कस्य वृद्धिर्ज्ञेयेत्येतदाह—

शालेन कलमशाली रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च।
पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः॥२॥

शाल वृक्ष पर फल और फूलों की वृद्धि से कलम शाली (जड़हन धान्य आदि), रक्त अशोक से रक्त धान्य, दूधी से पाण्डूक और नील अशोक पर फल, फूलों की वृद्धि से सूकरक (धान्यविशेष) की वृद्धि जाननी चाहिये।।२।।

शालो वृक्षविशेषस्तस्य फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं दृष्ट्वा कलमशाल्यादीनां निष्पत्तिः सुलभत्वं च ज्ञेयम्। एवं सर्वत्र। तस्माच्छालेन कलमशाली विज्ञातव्या। तथा रक्ताशोकेन रक्तशालिः। पाण्डूकः शालिविशेषः, स च क्षीरिकया दुग्धिकया ज्ञेयः। सूकरकः शालिविशेषः, स च नीलाशोकेन विज्ञेयः।।२।।

अथान्यत्—

न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति।
अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम्॥३॥

वटवृक्ष से गव, तिन्दुक (तेंदुआ) से साठी धान्य और पीपल से सब धान्यों की वृद्धि देखनी चाहिये।।३।।

यवकः शालिविशेषः, स च न्यग्रोधेन विज्ञेयः। षष्टिकः शालिविशेषः, स च तिन्दुक-वृद्ध्या भवति। अश्वत्थेन सर्वसस्यानां निष्पत्तिर्ज्ञेया ज्ञातव्या।।३।।

अथान्यत्—

जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कङ्गुनिष्पत्तिः।
गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन॥४॥

जामुन से तिल, माष आदि, शिरीष (शिरस) से प्रियङ्गु (ककुनी = कौनी), महुए से गेहूँ और सप्तवर्ण वृक्ष पर फल, फूल की वृद्धि से यव की वृद्धि जाननी चाहिये।

जम्बुवृक्षविशेषस्ताभिर्जम्बूभिस्तिलमाषा ज्ञातव्या:। शिरीषो वृक्षविशेषस्तद्वृद्ध्या कङ्गुनिष्पत्ति:। कङ्गु: प्रियङ्गु:। मधूको वृक्षविशेष:। तैर्मधूकैर्गोधूमा ज्ञेया:। सप्तपर्णो वृक्षविशेषस्तेन यववृद्धिर्भवति।।४।।

अथान्यत्—

अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान् वदेदशनै: ।
बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ।।५।।

वासन्ती लता और कुन्द पुष्पों में फल-पुष्पों की वृद्धि से कपास, असना से सरसों, बेर से कुलथी और करञ्ज में फल-पुष्पों की वृद्धि से मूंग की वृद्धि जाननी चाहिये।।५।।

अतिमुक्तको वृक्षविशेष: कुन्दश्च यत्र कुन्दपुष्पाणि भवन्ति। ताभ्यामतिमुक्तककुन्दाभयां कर्पासं वदेत् ब्रूयात्। अशनो वृक्षविशेषस्तै: सर्षपान् वदेद् ब्रूयात्। बदरीभिश्च कुलत्थान् वदेत्। चिरबिल्वेन करञ्जेन मुद्गानादिशेद् ब्रूयात्।।५।।

अन्यदप्याह—

अतसी वेतसपुष्पै: पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेया: ।
तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेन शणा: ।।६।।

वेतस वृक्ष में फल-पुष्पों की वृद्धि से असली (तीसी), पलास से कोदों, तिलक से शंख, मोती और चाँदी की तथा इङ्गुदी वृक्षों में फल-पुष्पों से सन की वृद्धि जाननी चाहिये।

वेतसो वृक्षविशेषस्तत्पुष्पैरतसी ज्ञेया ज्ञातव्या। पलाशकुसुमै: पलाशवृक्षपुष्पै: कोद्रवा ज्ञेया ज्ञातव्या:। तिलको वृक्षविशेषस्तेन शङ्खमौक्तिकरजतानि शङ्ख: प्रसिद्ध:, मौक्तिकं मुक्ताफलानि, रजतं रूप्यम्, एतानि विज्ञेयानि। अथानन्तरमिङ्गुदेन वृक्षविशेषेण शणा विज्ञेया:।।६।।

अथान्यत्—

करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन ।
गावश्च पाटलाभि: कदलीभिरजाविकं भवति ।।७।।

हस्तिकर्ण वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से हाथी, अश्वकर्ण से घोड़ा, पाटला से गाय और कदली वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से बकरी, भेड़ आदि की वृद्धि होती है।।७।।

हस्तिकर्णै: करिणो गजा आदेश्या वक्तव्या:। वाजिनोऽश्वास्ते चाश्वकर्णेन एतौ द्वावपि सुप्रसिद्धौ। पाटला वृक्षजातिस्ताभिर्गाव:। अजश्छागोऽविर्मेष:। अजाविकं कदलीभी रम्भाभिर्भवति।।७।।

अथान्यदप्याह—

चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन।
कुरवकवृद्धा वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्त्तैः॥८॥

चम्पापुष्प की वृद्धि से सोना, बन्धुजीव से मूंगा, कुरवक से वज्र और नन्दिकावर्त्त से वैदूर्य मणि की वृद्धि होती है।।८।।

कनकं सुवर्णं चम्पकपुष्पैः। बन्धुजीवेन विद्रुमस्य सम्पत् सुलभत्वम्। वज्रं मणि-विशेषस्तत्कुरववृद्ध्या। नन्दिकावर्तैर्वैदूर्यम्।।८।।

अथान्यदप्याह—

विन्द्याच्च सिन्धुवारेण मौक्तिकं कारुकाः कुसुम्भेन।
रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः॥९॥

सिन्धुवास से मोती, कुसुम्भ से केशर, रक्त कमल से राजा और नील कमल से मन्त्री की वृद्धि देखनी चाहिये।।९।।

सिन्धुवारो वृक्षविशेषस्तेन मौक्तिकं विन्द्याज्जानीयात्। कारुकाः शिल्पिनः कुसुम्भेन महारजतेन। राजा नृपो रक्तोत्पलेनोक्तः। नीलोत्पलेन मन्त्री सचिवः।।९।।

अन्यदप्याह—

श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पात् पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः।
सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः॥१०॥

सुवर्ण पुष्प से व्यापारी, कमल से ब्राह्मण, कुमुद से पुरोहित, सुगन्धित वस्तु से सेनापति और आक से सोने की वृद्धि देखनी चाहिये।।१०।।

सुवर्णपुष्पात् श्रेष्ठी ज्ञेयः। पद्मैः कमलैर्विप्रा ब्राह्मणाः। कुमुदैः कैरवैः पुरोहिता नृपा-चार्याः। बलपतिः सेनापतिः सौगन्धिकेन। हिरण्यस्य सुवर्णस्य परिवृद्धिरर्केण।।१०।।

अथान्यत्—

आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम्।
खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः॥११॥

आम की वृद्धि से मनुष्यों को कुशल, भल्लातक से भय, पीलु से आरोग्य, खैर तथा शमी से दुर्भिक्ष और अर्जुन वृक्ष से सुन्दर वृष्टि कहनी चाहिये।।११।।

आम्रैश्चूतैः क्षेमं विन्द्यात्। भल्लातकैर्भयं भीतिम्। पीलुभिस्तथा आरोग्यमरोगित्वम्। खदिरशमीभ्यां प्रवृद्धाभ्यां दुर्भिक्षं भवति। अर्जुनैः शोभना वृष्टिः, सुवृष्टिर्भवतीत्यर्थः।

अन्यदप्याह—

पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन।
निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन॥१२॥

निम्ब और नागकेसर पर पुष्पों की वृद्धि से सुभिक्ष, कपित्थ से वायु, निचुल से अवृष्टि का भय और कुटज से व्याधिभय का ज्ञान करना चाहिये।।१२।।

पिचुमन्दो निम्बवृक्षः, नागो नागकेसर इति प्रसिद्धः,तयोः पुष्पैः सुभिक्षं ज्ञेयम्। अथ कपिथेन मारुतो वायुः। कपित्थो वृक्षविशेषः। निचुलेन वृक्षविशेषेण अवृष्टिभयं भवति। निचुलो जलवेतसवृक्षः। कुटजेन व्याधिभयं भवति।।१२।।

अन्यदप्याह—

दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण।
श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥१३॥

दूब और कुश के पुष्पों की वृद्धि से ईख (गन्ना), कचनार से आग और श्याम लता की वृद्धि से वेश्या, व्यभिचारिणी आदि स्त्री की वृद्धि होती है।।१३।।

दूर्वा शाद्वलम्। कुशो दर्भः। तत्कुसुमाभ्यां तत्पुष्पाभ्यामिक्षुर्भवति। कोविदारेण च वह्नि-रग्निः। श्यामालता लतैव प्रसिद्धा। तदभिवृद्ध्या बन्धक्यो वेश्या वृद्धिमायान्ति प्राप्नुवन्ति।

अथैताभिर्वृष्टिलक्षणमाह—

यस्मिन् काले स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः
सन्दृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च।
तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा
यक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुसुमलतानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

जिस समय वृक्षगुल्म (फैली लता) और लताओं के पत्ते चिकने तथा छिद्ररहित दिखाई दें, उस समय सुन्दर वृष्टि होती है। यदि वे (पत्ते) रूक्ष और छिद्रयुत हों तो थोड़ी वृष्टि होती है।।१४।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंशः ॥२९॥

वृक्षास्तरवः, गुल्म एकमूलो विटपः, लताः प्रसिद्धाः, एते यस्मिन् काले स्निग्धा निर्मला निश्छिद्रपत्राः, छिद्ररहितैः पत्रैः सन्दृश्यन्ते तस्मिन् काले शोभना वृष्टिः प्रदिष्टा उक्ता। तैरेव रूक्षैरस्निग्धैश्छिद्रैश्चाल्पं परिमितमम्भः पानीयं प्रदिष्टमुक्तम्। तथा च पराशरः—

अच्छिद्रपत्राः सुस्निग्धाः फलपुष्पसमन्विताः।
निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः।। इति ।।१४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ कुसुमलता नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ सन्ध्यालक्षणाध्यायः

अथ सन्ध्यालक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तल्लक्षणमाह—

अर्द्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।
तावत् सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन् ॥१॥

अर्द्धास्त सूर्यविम्ब के बाद आकाश में नक्षत्रगण अच्छी तरह नहीं दिखाई देने तक एक सन्ध्या (सायं सन्ध्या) और नक्षत्रों के स्वल्प कान्ति होने के बाद अर्द्धोदित सूर्य विम्ब होने तक दूसरी (सायं सन्ध्या) होती है। लक्षणों के द्वारा इसका फल आगे कहते हैं।

सूर्याद् आदित्यादर्द्धास्तमितादारभ्य यावन्नभ आकाशमस्पष्टभम्। अस्पष्टान्यस्फुटानि भानि नक्षत्राणि यत्र तत्। तावदेका सायंसन्ध्या। तथा स्पष्टभान्नभस आरभ्य प्रभातकाले यस्मिन् समये भानां स्वल्पा कान्तिर्भवति ततः कालाद्यावत्सूर्य अर्धोदितस्तावद् द्वितीया प्रातःसन्ध्या। एवमर्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्तावत्सन्ध्याकालः। तथा च गर्गः—

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता।
द्विनाडिका भवेत् साधुर्यावदाज्योतिदर्शनम्।। इति।

अस्मिन् सन्ध्याकाले एतैर्वक्ष्यमाणैश्चिह्नैर्लक्षणैः शुभाशुभं फलं वाच्यं वक्तव्यम्।।१।।

इत्याह—

मृगशकुनिपवनपरिवेषपरिधिपरिघाभ्रवृक्षसुरचापैः ।
गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः स्नेहवर्णैश्च ॥२॥

अरण्यवासी पशु, पक्षी, वायु, रवि-चन्द्र के परिवेष, प्रतिसूर्य, परिघ, मेघरेखा, वृक्षाकार मेघ, इन्द्रधनु, गन्धर्वनगर, सूर्य की रश्मि, दण्ड (रविकिरण, जल और वायु का संघात), धूली—इन सबों के सन्ध्याकालिक स्नेह और वर्णों से फल कहना चाहिये।।२।।

मृगा अरण्यप्राणिविशेषाः, शकुनिः पक्षी, पवनो वायुः, परिवेषोऽर्कचन्द्रमसोः, परिधिः प्रतिसूर्यः, परिघो भास्करस्योदयेऽस्तमये वा तिर्यक्स्थिता मेघरेखा, अभ्रवृक्षो मेघ एव वृक्षाकारः, सुरचापमिन्द्रधनुः, एतैः तथा गन्धर्वनगरं खपुरम्, रविकराः सूर्यरश्मयः, दण्डो रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातः, रजः प्रसिद्धम्, स्नेहवर्णैः सर्वेषामेव, एतैश्च सन्ध्याकालं वाच्यमिति।।२।।

तत्र मृगचेष्टितमाह—

भैरवमुच्चैर्विरुवन् मृगोऽसकृद् ग्राममघातमाचष्टे ।
रविदीप्तो दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः ॥३॥

बार-बार ऊँचा भयंकर शब्द करने वाला मृग ग्रामों के नाश का सूचक है तथा सेना के दक्षिण भाग में स्थित सूर्याभिमुख होकर भयंकर शब्द करे तो सेनाओं को नष्ट करता है।।३।।

मृग उच्चैः कृत्वा भैरवं विरुवन् भयावहं शब्दं कुर्वन्नसकृदनेकवारं ग्रामघातं ग्रामविनाशमाचष्टे कथयति, तथा सैन्यस्य सेनाया दक्षिणतो दक्षिणस्यां दिशि स्थितस्तत्र च रविदीप्तः सूर्याभिमुखो महास्वनो महाशब्दः सैन्यस्य घातं सेनाविनाशं करोति।।३।।

अन्यदप्याह—

अपसव्ये संग्रामः सव्ये सेनासमागमः शान्ते ।
मृगचक्रे पवने वा सन्ध्यायां मिश्रगे वृष्टिः ।।४।।

यदि सन्ध्याकाल में सेनाओं के वाम भाग में सूर्याभिमुख होकर मृगसमूह या वायु हो तो संग्राम, दक्षिण में सूर्याभिमुख नहीं होकर स्थित हो तो सेनाओं का समागम और दोनों तरफ स्थित हो तो वृष्टि होती है।।४।।

सन्ध्यायां सन्ध्याकाले मृगचक्रे मृगसमूहे पवने वायौ वापसव्ये सैन्यस्य वामभागस्थे दीप्ते सूर्याभिमुखे च संग्रामो भवति। तथा सव्ये दक्षिणे शान्ते शान्तदिक्स्थे मधुरस्वरेऽनर्काभिमुखे च सेनासमागमः। द्वयोः सैन्ययोः संयोगो भवति। तथा तस्मिन्नेव मृगचक्रे मृगसमूहे पवने वायुसमूहे वा सन्ध्यायां मिश्रगे शान्तदीप्तदिगुत्थे वृष्टिर्वर्षणं भवतीति।।४।।

अन्यच्च सन्ध्यालक्षणमाह—

दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्याति ।
दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ।।५।।

सूर्याभिमुख हुये मृग और पक्षियों के शब्दयुत प्रातः सन्ध्या देश का नाश करती है तथा सूर्याभिमुख होकर दक्षिण दिशा में स्थित मृग और पक्षियों के शब्दयुत सन्ध्या शत्रुओं द्वारा नगर को हस्तगत कराती है।।५।।

प्राक् सन्ध्या पूर्वसन्ध्या दीप्तमृगाण्डजविरुता। दीप्तैर्दीप्तदिक्स्थै रूक्षैः स्वनैः सूर्याभिमुखैर्मृगैरारण्यैः। अण्डजैः पक्षिभिश्च विरुता कृतशब्दा देशस्य नाशमाख्याति कथयति। तथा तैरेव मृगाण्डजैर्दीप्तास्यैः सूर्याभिमुखैर्ग्रामस्य पुरस्य वा दक्षिणदिक्स्थैर्याम्याशासमवस्थितैर्विरुता सन्ध्या पुरस्य ग्रहणाय भवति। तत्पुरमन्यैः शत्रुभिर्गृह्यत इति।

अथ सन्ध्याकाले वायोर्लक्षणमाह—

गृहतरुतोरणमथने सपांशुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले ।
भैरवरावे रूक्षे खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ।।६।।

गृह, वृक्ष और तोरण (पुरद्वार) को कम्पित करती हुई, धूली और मृत्खण्डों से युत, प्रबल, भयंकर, रूक्ष तथा आकाश से पक्षियों को गिराती हुई सन्ध्या समय की हवा अशुभ फल देने वाली होती है।।६।।

एवंविधेऽनिले वायौ सन्ध्या अशुभा अनिष्टफला। कीदृशे। गृहतरुतोरणमथने। गृहाणि वेश्मानि। तरून् वृक्षान्। तोरणानि च मथ्नाति यस्तथाभूते। सपांशुलोष्टोत्करे, पांशूनां तथा लोष्टानां मृत्खण्डानां य उत्करः समूहस्तेन संयुते। तथा प्रबले बलवति। भैरवरावेऽतिशब्दे। रूक्षे चाङ्गानामसुखकरे। खगाः पक्षिणस्तान् पातयति नभसस्तथाविधे।

अन्यच्च सन्ध्यालक्षणमाह—

मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा विपवना वा।
मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता पूजिता सन्ध्या ।।७।।

मन्द-मन्द चलती हुई हवा से कम्पित पत्रों से युक्त वृक्ष, वायु से रहित या मधुर शब्द करने वाले, शान्त पक्षी और मृगों से युक्त सन्ध्या शुभ होती है।।७।।

एवंविधा सन्ध्या पूजिता शुभेत्यर्थः। कीदृशी। मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा, मन्देनाल्पेन पवनेन वायुना यदवघट्टितं चालनं तेन चलिताः कम्पिताः पलाशाः पर्णानि येषु द्रुमेषु तथाभूता द्रुमा वृक्षा यस्यां सन्ध्यायाम्। विपवना वा वातरहिता। तथा मधुरस्वरैः कलशब्दैः शान्तैरनर्काभिमुखैर्विहङ्गैः पक्षिभिर्मृगैश्च या रुता कृतशब्दा सापि पूजिता।।७।।

अन्यदप्याह—

सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः।
सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ।।८।।

दण्ड, विद्युत्, मछली की आकृति वाला मेघ, प्रतिसूर्य, परिघ, इन्द्रधनु, ऐरावत (४७ अध्याय २०वाँ श्लोक), सूर्यकिरण—ये सब यदि सन्ध्याकाल में निर्मल हों तो वृष्टि करने वाले होते हैं।।८।।

एते सर्व एव सन्ध्याकाले सन्ध्यासमय आशु क्षिप्रमेव वृष्टिकराः। के ते। दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः, दण्डस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति। तडिद् विद्युत्। मत्स्या मत्स्याकारा एव मेघाः। परिधिः प्रतिसूर्यः। परिवेषस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति। सुरपतिचापमिन्द्रधनुः। ऐरावतस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति—'सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम्' इति।

रविकिरणा अर्करश्मयः। एते सर्व एव स्निग्धा यदि भवन्ति तदाशु वृष्टिकराः।।८।।

अथान्यदप्याह—

विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः।
तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ।।९।।

सन्ध्याकाल में खण्ड, विषम, वर्णरहित, विकृत, कुटिल, अप्रदक्षिणक्रम से परिवेष्टित, सूक्ष्म, छोटा, शक्तिरहित तथा मलिन सूर्य का किरण हो तो मनुष्यों में परस्पर विरोध और वृष्टि को करता है।।९।।

एवंविधाः किरणा रविरश्मयो विग्रहा वृष्टिदाः, विग्रहं विरोधम्, अवृष्टिमवर्षणं च

ददति। कीदृशा:। **विंच्छिन्नविषमेति।** विच्छिन्ना: खण्डशो गता:। विषमा अतुल्या:, विध्वस्ता नष्टवर्णा। विकृता विकारं गता:। कुटिला अस्पष्टा:। अपसव्यमप्रदक्षिणं कृत्वा परिवृत्ता: परिवेष्टिता:। तनव: सूक्ष्मा:। ह्रस्वा अदीर्घा:। विकला: शक्तिरहिता:। कलुषा अप्रसन्ना:।। ९।।

अथैषामेव विशेषलक्षणमाह—

उद्द्योतिनः प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः ।
किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि भानुमतः ।।१०।।

यदि अन्धकाररहित आकाश में तेजयुत, निर्मल, स्पष्ट, दीर्घ और दक्षिणावर्त क्रम से परिवेष्टित सूर्य का किरण हो तो संसार का कल्याण करने वाला होता है।।१०।।

एवंविधा: किरणा रश्मयो भानुमत आदित्यस्य सम्बन्धिनो वितमस्के तमोरहिते नभस्याकाशे दृष्टा जगतो विश्वस्य शिवाय श्रेयसे भवन्ति। कीदृशा:। उद्द्योतिनो दीप्तिमन्त:। प्रसन्ना निर्मला:। ऋजव: स्पष्टा:। दीर्घा आयामिन:। प्रदक्षिणावर्ता: प्रदक्षिणेनावर्तो येषां ते तथाविधा:।।१०।।

पूर्वमुक्तं यद्यमोघकिरण: सहस्रगोरिति तत्र न ज्ञायते। तदर्थममोघकिरणानां लक्षणमाह—

शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः ।
अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते त्वमोघाख्याः ।।११।।

सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करने वाले, निर्मल, अखण्डित और स्पष्ट सूर्य के किरण अमोघ संज्ञक (शुभ फल देने वाले) होते हैं।।११।।

दिनकृत आदित्यस्य शुक्ला: श्वेतवर्णा: करा रश्मयो दिवादिमध्यान्तगामिन:। दिवे नभसि आदौ मध्येऽन्ते च गमनशीला:। सकलनभोव्यापिन इत्यर्थ:। ते च स्निग्धा अरूक्षा:। अव्युच्छिन्ना अखण्डा:। ऋजव: स्पष्टा:। ते त्वमोघाख्या अमोघसंज्ञा रविरश्मय:। ते च दृष्टा वृष्टिकरा:।।११।।

अथान्यद्रश्मिलक्षणमाह—

कल्माषबभ्रुकपिला विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः ।
त्रिदिवानुबन्धिनोऽवृष्टयेऽल्पभयदास्तु सप्ताहात् ।।१२।।

कल्माष (पीला, श्वेत और काला वर्ण मिश्रित), थोड़े पीले, विचित्र, मञ्जीठ (मजीठ) की तरह हरे, काला-श्वेत दोनों मिले हुये और सम्पूर्ण आकाशमण्डल को व्याप्त करके स्थित सूर्य के किरण दिखाई दें तो उसके सात दिन बाद से वृष्टि और थोड़ा भय करते हैं।।१२।।

कल्माषाः पीतगौरकृष्णवर्णाः। बभ्रव ईषत्कपिलाः कपिलवर्णाः। विचित्रा नानावर्णाः। माञ्जिष्ठा मञ्जिष्ठाभाः। हरिताः शुकवर्णाः। शबलाभाः कृष्णश्वेतकान्तयः। केषाञ्चित्पाठः शबला वा। त्रिदिवानुबन्धिनस्त्रिदिवमाकाशं तत्रानुबन्धिनोऽनुबन्धशीलाः, सकलमाकाशं व्याप्य स्थिता इत्यर्थः। ऊर्ध्वगामिनश्च। एते दृष्टा अवृष्टये भवन्ति। तथा सप्ताहाद्दिनसप्तकात् परतोऽल्पमीषद् भयं ददति।। १२।।

अथैतेषामुक्तलक्षणानां फलान्याह—

ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्च तद्व्यसनम्।
हरिताः पशुसस्यबधं धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥१३॥

माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम्।
भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं तनुभावं शबलकल्माषाः ॥१४॥

सूर्यकिरण यदि ताम्रवर्ण की हो तो सेनापति की मृत्यु, पीले और लालरंग के सदृश हो तो सेनापति को कष्ट, हरे रंग के समान हो तो पशु तथा धान्य का नाश, धूमवर्ण की हो तो गायों का नाश, मजीठ वर्ण की हो तो शस्त्र तथा अग्नि से भय, पीले हों तो वायु के झकोरों से युक्त वर्षा, भस्मसमान हो तो अनावृष्टि, सफेद, काले, नीले, पीले इन सब मिले हुये वर्णों की तरह हो तो बहुत ही कम वर्षा होती है।।१३-१४।।

ताम्रस्ताम्रवर्णाभा रविरश्मयो बलपतेश्चमूनाथस्य मृत्युं मरणं ददति। पीतारुणसन्निभाः पीतवर्णा हरिद्राभाः। अरुणसन्निभा लोहितकान्तयश्च तद्व्यसनं तस्यैव सेनापतेर्व्यसनं दुःखं ददति। केचिद्द्रुग्व्यसनमिति पठन्ति। हरिताः शुकवर्णाः पशूनां चतुष्पदानां सस्यानां च बधं विनाशं कुर्वन्ति। धूमसवर्णा धूमाभा गवां नाशं कुर्वन्ति।

माञ्जिष्ठाभा माञ्जिष्ठवर्णाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं शस्त्रेणाग्निना च सम्भ्रममुद्योगं च कुर्वन्ति। बभ्रवः कपिलवर्णाः पवनवृष्टिं पवनेन वायुना संयुक्तां वृष्टिं कुर्वन्ति। भस्मसदृशा भस्मकान्तयः। अवृष्टिमवर्षणं कुर्वन्ति। शबलकल्माषाः सितकृष्णनीलपीतव्यामिश्रवर्णास्तनुभावमेव वृष्टेः कुर्वन्ति।।१४।।

अन्यत्सन्ध्यालक्षणमाह—

बन्धूकपुष्पाञ्जनचूर्णसन्निभं सान्ध्यं रजोऽभ्येति यदा दिवाकरम्।
लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यत शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥१५॥

यदि बन्धूक-पुष्प या अञ्जन की तरह होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोग सैकड़ों रोगों से पीड़ित होते हैं तथा श्वेत वर्ण की होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोगों की वृद्धि और शान्ति के लिये होती है।।१५।।

बन्धूकपुष्पं प्रसिद्धमतिलोहितम्। अञ्जनचूर्णश्च प्रसिद्धोऽतिकृष्ण एव। तत्सन्निभं तत्सदृशं सन्ध्याकाले रजो यदा दिवाकरमभ्येति सम्मुखमुपगच्छति, तदा लोको जनपदो

रोगशतैर्बहुभिर्गदैर्निपीड्यते उपताप्यते। तथा शुक्लं श्वेतवर्णं सन्ध्यारजो लोकानां विवृद्धये संवर्धनाय। शान्तये शिवाय च भवति। तथा च पराशरः—

बन्धूजीवनिकाशेन तपनीयनिभेन वा।
उदये रजसा सूर्यः संवृतः शस्त्रमावहेत्।।
शङ्खचूर्णनिकाशेन रजसा संवृतो रविः।
राज्ञो विजयमाख्याति वृद्धिं जनपदस्य च।। इति।।१५।।

अधुना दण्डलक्षणमाह—

रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातो दण्डवत्स्थितो दण्डः।
स विदिक्स्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजादीनाम् ।।१६।।

सूर्यकिरण, मेघ, वायु—ये तीनों मिलकर दण्ड की तरह स्थित हों तो उसको दण्ड कहते हैं। यह दण्ड कोणों में स्थित हो तो राजाओं का और दिशाओं में स्थित हो तो चारो वर्णों का अशुभ करता है।।१६।।

रविकिरणाः सूर्यरश्मयः, जलदो मेघः, मरुद्वायुः, एषां त्रयाणां सङ्घात एकीभावो यदा दण्डवत्स्थितो भवति तथा दण्डाकृतिसंस्थानाद्दण्ड इत्युच्यते। स च विदिक्स्थितो विदिक्षु स्थितो नृपाणां राज्ञामशुभोऽनिष्टदः। दिक्षूत्तराद्यासु चतसृषु स्थितः क्रमेण द्विजादीनां चतुर्णां वर्णानामशुभः। केचित् सामान्येन दिक्षु द्विजातीनामेवाशुभमिच्छन्ति।।१६।।

अथास्यैव विशेषमाह—

शस्त्रभयातङ्ककरो दृष्टः प्राङ् मध्यसन्धिषु दिनस्य।
शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति दिशम् ।।१७।।

यदि यह दण्ड सूर्योदय, मध्याह्न या सूर्यास्त काल में दिखाई दे तो शस्त्रभय और उपद्रव करता है तथा श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्तवर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। साथ ही यह जिस दिशा के सम्मुख स्थित हो, उस दिशा का नाश करता है। सूर्य के समीप का इसका भाग मूल और दूसरी तरफ मुख होता है।।१७।।

स एव दण्डो दिनस्य प्राङ्मध्यसन्धिषूदयमध्याह्नास्तमयकालेषु दृष्टोऽवलोकितः शस्त्रभयातङ्ककरो भवति, शस्त्रभयमातङ्कमुपद्रवं च करोति। शुक्लाद्यः सितरक्तपीतकृष्णो विप्रादीन् ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रान् निहन्ति घातयति। यस्यां दिश्यभिमुखः सम्मुखः स दण्डस्तां दिशमाशां निहन्ति। अर्कसन्निकृष्टो भागस्तस्य मूलमन्यो मुखमिति।।१७।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

दधिसदृशाग्रो नीलो भानुच्छादी खमध्यगोऽभ्रतरुः।
पीतच्छुरिताश्च घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ।।१८।।

दही के समान अग्र भाग वाले, नील वर्ण के भाग से सूर्य को आच्छादित करने वाले, आकाश के मध्य में स्थित, पीले रङ्ग से रँगे और मूल की तरफ सघन मेघवृक्ष हों तो अधिक वृष्टि करते हैं।।१८।।

अभ्रतरुर्मेघवृक्षः। दधिसदृशाग्रः दधिसदृशमग्रं यस्य। श्वेताग्र इत्यर्थः। तथा नीलो नीलवर्णो भानुच्छादी सूर्यमाच्छायति तच्छीलः। स च खमध्यग आकाशमध्यभागस्थः। तथा घना मेघाः पीतच्छुरिताः पीतेन पीतवर्णेन छुरिता रञ्जितास्ते च घनमूलाः। घनानि सन्ति तानि मूलानि येषाम्। एते सर्व एव भूरिवृष्टिकराः प्रभूतां वृष्टिं कुर्वन्ति।।१८।।

अथाभ्रवृक्षेणैव सियासोः शुभाशुभमाह—

अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे शमं गते यायिनो नृपस्य बधः।
बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥१९॥

शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने वाले विजयेच्छु राजा के पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर यदि मेघवृक्ष नष्ट हो जाय तो उस राजा का मरण होता है। यदि वही मेघवृक्ष बाल (छोटे) वृक्ष की तरह हो तो युवराज और मन्त्री का मरण होता है।।१९।।

अभ्रवृक्षे मेघतरौ यायिनो जिगमिषोर्नृपस्य राज्ञोऽनुलोमगे तत्पश्चाद् गम्यमाने शमं गतेऽकस्मान्नष्टे तस्यैव यायिनो बधो मरणं भवति। तस्मिन्नेवाभ्रतरौ बालतरुप्रतिरूपिणि बालवृक्षसदृशे शमं गते युवराजामात्ययोर्मरणं मृत्युर्भवति अर्धराज्यभाग युवराजः। अमात्यो मन्त्री।।१९।।

अथ पुनरपि सन्ध्यालक्षणमाह—

कुवलयवैदूर्याम्बुजकिञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता।
सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणोद्भासिता सद्यः ॥२०॥

नील कमल, वैदूर्य मणि या कमल के केशर की तरह कान्ति वाली, वायु से रहित और सूर्य के किरणों से प्रकाशित सन्ध्या हो तो उसी दिन वृष्टि करती है।।२०।।

एवंविधा सन्ध्या सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं वर्षणं करोति। कीदृशी। कुवलयं नीलोत्पलम्, वैदूर्यो मणिर्नीलपीतः, अम्बुजकिञ्जल्कं पद्मकेसरम्, एषां सदृशी आभा कान्तिर्यस्याः। तथा प्रभञ्जनोन्मुक्ता प्रभञ्जनेन वातेनोन्मुक्ता रहिता। तथा रविकिरणोद्भासिता प्रकाशीकृता।।२०।।

अन्यल्लक्षणमाह—

अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारधूमपांशुयुता।
प्रावृषि करोत्यवग्रहमन्यतौ शस्त्रकोपकरी ॥२१॥

गन्धर्वनगर, हिम, धूम और धूली से युक्त सन्ध्या वर्षाकाल में अवृष्टि तथा अन्य ऋतु में शस्त्र-कोप करती है।।२१।।

अशुभा अनिष्टा आकृतिर्येषां घनानां मेघानाम्। गर्दभोष्ट्रकबन्धध्वांक्षमार्जाराकृतय इत्यर्थः। तथा गन्धर्वनगरं खपुरम्। नीहारधूमपांशवः प्रसिद्धाः। एतैर्युक्ता या सन्ध्या सा प्रावृषि प्रावृट्काले वर्षाकालेऽवग्रहमवृष्टिं करोति। वर्षावर्जिते चान्यत्र्त्तौ शस्त्रकोपं करोति।।२१।।

अथ षट्सु ऋतुषु लक्षणमाह—

शिशिरादिषु वर्णाः शोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः।
प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वर्तौ शस्ता विकृतिरन्या ॥२२॥

शिशिर ऋतु में लाल, वसन्त ऋतु में पीला, ग्रीष्म ऋतु में श्वेत, वर्षा ऋतु में चित्र, शरद् ऋतु में कमल की तरह और यदि हेमन्त ऋतु में रुधिर की तरह सन्ध्या का वर्ण हो तो शुभ; अन्यथा अशुभ फल होता है।।२२।।

शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु शोणादयो वर्णाः सन्ध्यायां प्रकृतिभवाः सहजाः स्वर्तावात्मीयर्तौ शस्ताः शुभा भवन्ति। तद्यथा—शिशिरे शोणा लोहितवर्णा सन्ध्या शस्ता शुभा। वसन्ते पीता। ग्रीष्मे सिता श्वेतवर्णा। वर्षासु चित्रा नानावर्णा। शरदि पद्मवर्णा रक्तगौरा। हेमन्ते रुधिरनिभा अतिलोहिता। एताः स्वर्तौ आत्मीयर्तौ शस्ताः। अन्या विकृतिर्विकारः। शिशिरादिषु ये वर्णाः क्रमेणोक्तास्त एव यदा विपर्ययेण भवन्ति, तदा विकृतिर्विकारोऽशुभ इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

वसन्ते मधुवर्णाभाऽथवा रुधिरसन्निभा।
ग्रीष्मे श्वेता रजोध्वस्ता पांशुवर्णा च शस्यते।।
नीललोहितशुक्लाभा सन्ध्या वर्षासु वार्षिका।
माञ्जिष्ठवर्णा शरदि पीयूषाभा च शस्यते।।
हेमन्ते बभ्रुवर्णा च पिङ्गला चापि पूजिता।
शिशिरे शोणवर्णा च सन्ध्याक्षेमसुखप्रदा।।
स्निग्धा प्रसन्ना विमला सप्रभा नाकुलापि वा।
सन्ध्या यथर्तुवर्णाभा शान्तद्विजमृगा शुभा।। इति।।२२।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि।
सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥२३॥

यदि सन्ध्याकाल में शस्त्र लिये हुए पुरुष की तरह मेघखण्ड दिखाई दे तो शत्रु का भय, सूर्य से आच्छादित और श्वेत वर्ण का गन्धर्व-नगर दिखाई दे तो पुर का लाभ और सूर्य से भेदित गन्धर्व-नगर हो तो पुर का नाश होता है।।२३।।

छिन्नाभ्रं मेघखण्डमायुधभृन्नररूपं सायुधं पुरुषमिव तच्च रविगामि अर्कसमीपवर्ति

यदि भवति, तदा परभयाय भवति। परेणां शत्रूणां सम्बन्धि भयमुत्पद्यते। सितखपुरे शुक्लवर्णे गन्धर्वनगरेऽर्काक्रान्ते, अर्कः सूर्य आक्रान्तो येन, आच्छादित इत्यर्थः। तस्मिन् पुरलाभः, येन पुरं नगरमाक्रान्तं रुद्धं तस्य लाभो भवति। भेदने नाशः, अर्केण यदि मध्यात् खपुरं भिद्यते तदा पुरस्य नाशः, परैर्लुण्ठनं भवति।।२३।।

अन्यदप्याह—

सितसितान्तघनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः।
यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥२४॥

शुक्ल और शुभ्र (स्वच्छ) किरण वाले या वीरण (गांड़र) के समान कान्ति वाले शान्त दिशा में उत्पन्न मेघ सूर्य के दक्षिण भाग को आच्छादित करे तो वृष्टि करता है।

सिताः शुक्लास्ते च सितान्ताः सितः शुक्लोऽन्तो येषां तैः सितैः सितान्तैर्घनैर्मेघै रवेरादित्यस्य सव्यतो गच्छतो दक्षिणत आवरणमाच्छादनं यदि भवति, तदा वृष्टिकरं भवति। यदि च दिवसभर्तुरादित्यस्य घनैर्मेघैर्वीरणगुल्मनिभैः, वीरणस्तृणविशेषस्तस्य गुल्मः समूहस्तत्सदृशैः। अदीप्तदिगुद्भवैः शान्तदिक्सम्भूतैः सव्यतो दक्षिणेनावरणं भवति तद्वृष्टिकरम्।।२४।।

अथ परिघवशेन शुभाशुभमाह—

नृपविपत्तिकरः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत्।
कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥२५॥

सूर्योदयकाल में उत्पन्न मेघरेखा यदि शुक्ल वर्ण की हो तो राजा का नाश, रक्तवर्ण की हो तो सेना का नाश और सुवर्ण की तरह कान्ति वाली हो तो सेनाओं की वृद्धि करती है।

सवितुरादित्यस्य परिघस्तिर्यक् स्थिता मेघरेखेत्यर्थः। उद्गमकाले उदयसमये समुत्थित उत्पन्नः सितः शुक्लो यदि दृश्यते तदा नृपस्य राज्ञो विपत्तिकरो मृत्युदः। क्षतजतुल्यवपू रक्तवर्णसदृशो बलस्य सेनायाः कोपकृद्द्रङ्गदः। बले स्वामिनो वा कुप्यन्ति। कनकरूपधरः सुर्णसदृशो बलस्य वृद्धिदो भवति।।२५।।

अथ परिधिवशेन शुभाशुभमाह—

उभयपार्श्वगतौ परिधी रवेः
प्रचुरतोयकरौ वपुषान्वितौ।
अथ स मस्तककुप्यरिचारिणः
परिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥२६॥

यदि सूर्य के दोनों तरफ परिधि (प्रतिसूर्य) दिखाई दे तो अधिक वृष्टि होती है तथा यदि परिधि सभी दिशाओं को व्याप्त करके स्थित हो तो जल का एक कण भी नहीं गिरता है अर्थात् अवृष्टि होती है।।२६।।

रवेरादित्यस्य परिधी प्रतिसूर्यावुभयपार्श्वगतौ पार्श्वद्वयस्थौ तौ च वपुषा शरीरेणान्वितौ सूर्यसंयुक्तौ। यतस्तयोः सूर्य एव शरीरम्। तथाभूतौ प्रचुरतोयकरौ बहुजलप्रदौ। अथ परिधयः समस्तककुप्परिचारिणः सकलदिग्व्यापिनो भवन्ति, तदा वारिणो जलस्य कणोऽपि नास्ति। न वर्षतीत्यर्थः।।२६।।

अथ सन्ध्याघनानां लक्षणमाह—

ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः ।
जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्तसन्निभाः ।।२७।।

पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः ।
बलान्यरूक्षमूर्त्तयो विवर्धयन्ति भूभृताम् ।।२८।।

विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः ।
घनाः शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ।।२९।।

यदि सन्ध्याकाल में ध्वज, छत्र, पर्वत, हाथी या घोड़े की तरह रक्त वर्ण का मेघ दिखाई दे तो युद्ध के लिये होता है। यदि पलाल (पुअरा = पुआल = भूस = भूसा), धुयें की तरह निर्मल शरीर वाला मेघ हो तो राजाओं के सेनाओं की वृद्धि करता है। यदि दोनों सन्ध्याओं में लटके हुये, वृक्ष की तरह, अतिलोहित वर्णों से प्रकाशित और पुर की तरह मेघ दिखाई दे तो शुभ करता है।।२७-२९।।

एवंविधा घना मेघाः सन्ध्ययोर्दृष्टा जयाय नृपाणां जनानां च भवन्ति। कीदृशाः? **ध्वजातपत्रेति ।** ध्वजः प्रसिद्धो विविधपटनिर्मितं चिह्नम्। आतपत्रं छत्रम्, पर्वतः शैलः, द्विपो हस्ती, अश्वस्तुरगः, एतेषां सदृशरूपधारिणः, तदाकृतय इत्यर्थः। अथ रक्तसन्निभा अतिलोहिता रणाय संग्रामाय भवन्ति।

पलालधूमेति । एवंविधा बलाहका मेघाः। अरूक्षमूर्तयः स्निग्धशरीराः। भूभृतां राज्ञां बलानि सैन्यानि विवर्धयन्ति वृद्धिं नयन्ति। कीदृशाः? पलालधूमसञ्चयस्थितोपमाः, पलालस्य धूमः पलालधूमस्तस्य सञ्चयः समूहः, पलालधूमसञ्चयस्थिता इव। तदुपमास्तत्सदृशाः।

विलम्बिन इति । एवंविधा घना मेघाः सन्ध्ययोः शिवाय श्रेयसे भवन्ति। कीदृशाः। विलम्बिनो लम्बमानाः। द्रुमोपमा वृक्षाकृतयः। खरारुणप्रकाशिनः खरा अतीव याऽसावरुणता लोहितता तयातिप्रकाशिनो दीप्तिजनकाः, तथा पुरोपमाः पुराकाराः। शुभावहाः शुभमावहन्ति।।२९।।

अथ विशेषलक्षणमाह—

दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजःपरिघादियुता च ।
प्रत्यहमर्कविकारयुता वा देशनरेशसुभिक्षबधाय ।।३०।।

यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित हुये पक्षी, श्रृगाल और मृगों के शब्दों से दण्ड, धूलि, परिघ आदि (इन्द्रधनु, गन्धर्वनगर या हिम) से अथवा प्रतिदिन विकारयुक्त सूर्य से युक्त सन्ध्या हो तो देश, राजा और सुभिक्ष का नाश करती है।।३०।।

एवंविधा सन्ध्या देशस्य जनपदस्य नरेशस्य राज्ञः सुभिक्षस्य च बधाय नाशाय भवति। कीदृशी? दीप्तैः सूर्याभिमुखैर्विहङ्गैः पक्षिभिस्तथा शिवाभिर्दीप्ताभिः। मृगैरारण्य-प्राणिभिर्घुष्टा कृतशब्दा, तथा दण्डेन रजसा परिघेण च युता संयुक्ता। आदिग्रहणात् सुर-चापगन्धर्वनगरनीहारा ज्ञेयाः। प्रत्यहं प्रतिदिनमर्कविकारयुता वा। सविकारार्कसंयुक्ता। स्वरूपान्यत्वं विकारता। तथा च पराशरः—

'अथ सन्ध्यासु द्वियोजनान्तरे देश सद्यः फलमादिशेत्। रश्मिसंयुक्तायां तु सप्त-रात्रनिवाते निर्मलस्निग्धायां शान्तमृगद्विजायां प्रसन्नायामनुपहतायां सन्ध्यायां योगक्षेमं विन्द्याद्विपर्ययं विपरीतायाम्। श्वेतायां वसुवृद्धिं तस्यामेव परिमण्डलायां रक्तायाम्। हरितायां शस्त्रकोपम्। माञ्जिष्ठायामग्निं पीतायां चतुःपाद्रोगं श्यावायां चौरतो भयम्। नीलपीतायामीतिं गवाम्। हरितालवर्णायां प्रथमामात्यस्य शस्त्रेण बधम्। आम्रकोरकवर्णायां वर्षं नील-रक्तायामवग्रहं च कृष्णायामवर्षम्। श्यावकृष्णगौर्य्यां पशुघातं विन्द्यात्। वातं कपिला-यामस्तमितमात्रे सूर्ये यातिमात्रप्रकाशः स्यात् प्रभा सा नाम तस्यां वर्षं विन्द्यात्। प्रत्यूषसि तद्रूपायामेव राज्ञः सेनापतेर्वा बधः स्यात्। महावर्षं रूप्यवर्णायां च तस्यामेव ताम्रमध्यायां कृष्णायामनृतौ वर्षमृतावग्रहम्। तथा पीतमाञ्जिष्ठा अग्निजीविनां बधाय। लोहितश्यावा चौरवृद्धये। सर्वा एव च त्रिगात्राः पञ्चरागा वा युद्धाय यच्चालोहितेनैव लिम्पेत्तस्य बधाय। स्निग्धा तु गौरी योगक्षेमाय'। भवति चात्र—

प्रतिसूर्यः शक्रधनुर्दण्डकः परिवेषणम्।
तथैरावतमत्स्याश्च स्निग्धा ये चार्करश्मयः।।
विद्युतो भूरिकाराश्च वर्णा ये च प्रदक्षिणाः।
सन्ध्यासु यदि दृश्यन्ते सद्यो वर्षणलक्षणम्।। इति।

तथा च काश्यपः—

दिनरात्र्यन्तरं सन्ध्या सूर्यस्यार्द्धं प्रदृश्यते।
यावच्च तावदारभ्य शुभा वाप्यशुभापि वा।।
नभोऽमलं शुभदिशः पद्मारुणसमप्रभाः।
मारुतो वाति सुरभिः सुखदो मृदुशीतलः।।
एषा सन्ध्या शुभा ज्ञेया विपरीताऽशुभा स्मृता।
रूक्षा च सविकारार्का क्रव्यादखरनादिता।।
स्निग्धा दण्डपरीवेषा सुरचापविभूषिता।
क्षिप्रं वर्षप्रदा सन्ध्या जयाऽऽरोग्यविवृद्धिदा।। इति।।३०।।

अथैतेषां सन्ध्यालक्षणोक्तानां फलानां फलकालनियमार्थमाह—

प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं
सप्ताहात् परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत्।
तद्वत् सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिला-
स्तस्मिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥३१॥

पूर्व सन्ध्या अपने फल को उसी समय में देती है। सायं सन्ध्या रात्रि या तीन दिन में, परिवेष, धूलि, परिघ, अमोघ, सूर्य के किरण, इन्द्रधनु, प्रतिसूर्य, मेघ और वायु उसी समय या सात दिन में, पक्षी उसी समय या आठ दिन में और मृग सात दिन में शुभाशुभ फल करते हैं।।३१।।

प्राची पूर्वा सन्ध्या शुभमशुभं वा फलं तत्क्षणं तस्यामेव वेलायां करोति। नक्तमपरा, अपरा पश्चिमा द्वितीया सन्ध्या शुभमशुभं वा फलं नक्तं रात्रौ करोति। **त्र्यहाद्वा फलमिति**। सन्ध्याफलमुक्तकाले यदि न दृश्यते तदा त्र्यहाद्दिनत्रयेण भवति। **सप्ताहादिति**। परीवेषः सूर्यचन्द्रयोः। रेणुर्धूलिः। परिघस्तिर्यक् स्थिता सूर्यस्योदयेऽस्तमये वा मेघरेखा। एते दृष्टाः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि फलं कुर्वन्ति। चेच्छब्दो यद्यर्थे। यदि सद्यो न कुर्वन्ति तदा सप्ताहाद्दिनसप्तकेन शुभमशुभं वा फलं कुर्वन्ति। **तद्वदिति**। सूर्यकराः सूर्यरश्मयः, अमोघादिकाः, इन्द्रकार्मकमिन्द्रधनुः, तडिद्विद्युत्, प्रत्यर्कः प्रतिसूर्यः। मेघा अभ्राणि, अनिलो वातः, एते सर्व एव तद्वत् सद्यः शुभमशुभं वा फलं कुर्वन्ति। यदि सद्यो न कुर्वन्ति तदा सप्ताहात्। **तस्मिन्नेवेति**। विहगाः पक्षिणः शुभमशुभं वा सन्ध्याकृतं फलं तस्मिन्नेव दिने कुर्वन्ति। तत्र यदि न कुर्वन्ति तदाऽष्टमदिने। अथशब्दो विकल्पे। सप्ताहपाका मृगाः, मृगा आरण्यप्राणिनः सप्ताहपाकाः सप्ताहमध्ये पाकं फलं शुभमशुभं वा कुर्वन्ति इति।।३१।।

अन्येष्वप्याह—

एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति।
पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता केचिदुल्कानिपाते ॥३२॥

सन्ध्या अपनी कान्ति से प्रकाश करती है और उतनी ही दूर तक फल देती है तथा विद्युत् छः योजन तक और मेघों का गर्जन पाँच योजन तक प्रकाश करता है और उतनी ही दूर तक फल देता है। किसी-किसी (देवल आदि) आचार्य का मत है कि उल्कापात होने से फल में प्रदेश की इयत्ता नहीं है; अपितु सर्वत्र फल देने वाला होता है।।३२।।

सन्ध्या दीप्त्या कान्त्या एकं योजनं भाति प्रकाशयति, सा च तावन्मात्र एव फलदा, योजनफलप्रदेत्यर्थः। तथा विद्युद्भासा तडिद्दीप्त्या षड् योजनानि प्रकाशीकरोती। षण्णां योजनानां सा फलदेत्यर्थः। अब्दानां मेघानां गर्जितं शब्दः पञ्च योजनानि याति गच्छति। योजनपञ्चके फलद इत्यर्थः। नास्तीयत्तेति, केचिद्देवलादय एवमाहुः। यथोल्कानिपाते इयत्ता परिच्छित्तिर्नास्ति। सर्वत्र सा फलदेत्यर्थः। तथा च देवलः—

सन्ध्या तु योजनं याति विद्युद्भासा षडेव हि।
मेघशब्दस्तु पञ्चानां योजनानां फलप्रदः।।
उल्का सर्वत्र फलदा शुभा वाऽप्यशुभापि वा।। इति।।३२।।

अथान्येषामप्याह—

प्रत्यर्कसंज्ञः परिधिस्तु तस्य त्रियोजनाभः परिघस्य पञ्च।
षट्पञ्चदृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति ।।३३।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्या-
लक्षणाध्यायस्त्रिंशत्तमः ।।३०।।

प्रतिसूर्य नामक परिधि का तीन योजन तक, परिघ का पाँच योजन तक, परिवेषचक्र का पाँच या छः योजन तक और इन्द्रधनुष का दश योजन तक प्रकाश जाता है और उतनी ही दूर तक ये सब फल भी देते हैं।।३३।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सन्ध्यालक्षणाध्यायस्त्रिंशत्तमः ।।३०।।

प्रत्यर्कसंज्ञो यः प्रतिसूर्यस्तस्य परिधिस्त्रियोजनाभः, त्रयाणां योजनानां तस्य कान्तिर्दृश्यते। योजनत्रये फलद इत्यर्थः। परिघस्य पञ्च, पञ्चसु योजनेषु परिघो दृश्यते। तावत्स्वेव फलद इत्यर्थः। परिवेषचक्रं परिवेषमण्डलं षट्पञ्चदृश्यम्, षट्सु पञ्चसु वा योजनेषु दृश्यते। तावन्मात्र एव फलदम्। अमरेशस्येन्द्रस्य धनुरिन्द्रचापं च दशयोजनानि विभाति प्रकटीकरोति। दशानां योजनानां फलप्रदमित्यर्थः।।३३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सन्ध्यालक्षणं
नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।३०।।

अथ दिग्दाहलक्षणाध्यायः

अथ दिग्दाहलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्णभेदनं तस्यैव फलमाह—

दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः।
यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥१॥

यदि दिग्दाह पीत वर्ण का हो तो राजभय के लिये, अग्नि वर्ण का हो तो देशनाश के लिए और बायीं तरफ लोहित वर्ण का वायु दिखाई दे तो धान्यों का नाश करता है।।१।।

दिशां दाहो दिग्दाहः। पीतः पीतवर्णो राजभयाय नृपभीतये भवति। तथा हुताशवर्णोऽग्निसमप्रभो देशस्य जनपदस्य नाशाय क्षयाय भवति। यश्चारुणो लोहितवर्णः स्याद्भवेत् स चापसव्यवायुः, अपसव्यो वामो वायुर्यस्य स दृष्टोऽवलोकितः सस्यस्य नाशं क्षयं करोतीति।।१।।

अथान्यदप्याह—

योऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः।
राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥२॥

जो दिग्दाह अपनी अत्यधिक कान्ति से प्रकाशित होता है और सूर्य की तरह दृश्यमान द्रव्य की छाया को भी प्रकाशित करता है, वह राजा को अधिक भय देता है तथा यदि वह रक्त वर्ण का हो तो शस्त्र का भय करता है।।२।।

यो दिग्दाहाऽतीव दीप्त्या अतिकान्त्या प्रकाशं कुरुते उद्योतं जनयति। तथा योऽर्कवदादित्यवच्छायामपि व्यञ्जयते प्रकाशयति। दृश्यमाना ये भावास्तदीयां छायामुत्पादयतीत्यर्थः। स च राज्ञो नृपस्य महद्भयं वेदयते आख्याति। क्षतजानुरूपो रक्तवर्णोऽतिलोहित इत्यर्थः। स शस्त्रकोपं करोति।।२।।

अथ सर्वासु दिक्षु फलमाह—

प्राक्क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा।
याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥३॥

पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिक्स्थे।
पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाखण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥४॥

यदि पूर्व दिशा में दिग्दाह दिखाई दे तो वह राजा के साथ-साथ सभी क्षत्रियों को पीड़ित करता है। आग्नेय कोण में दिखाई दे तो शिल्पी (लुहार, सोनार आदि) और कुमारों को पीड़ित करता है। दक्षिण में दिखाई दे तो क्रूर मनुष्य, वैश्य, दूत और पुनर्भू स्त्री (जो अक्षतयोनि होकर पुनः शादी करती है) को पीड़ित करता है। पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो शूद्र और किसानों को पीड़ित करता है। वायव्य कोण में दिखाई दे तो घोड़े के साथ चोरों

को भी पीड़ित करता है। उत्तर दिशा में दिखाई दे तो ब्राह्मणों को पीड़ित करता है तथा ईशान कोण में दिग्दाह दिखाई दे तो पाखण्डी और व्यापारियों को पीड़ित करता है।।३-४।।

प्राक् पूर्वस्यां दिशि दिग्दाह दृष्टः क्षत्रियाणां क्षत्रियजातीनां सनरेश्वराणां नरेश्वरेण नृपेण सहितानां पीडां करोति। तथा प्राग्दक्षिणे आग्नेय्यां दिशि शिल्पिनां लोहकार-सुवर्णकारादीनां कुमाराणां च पीडां करोति। याम्ये दक्षिणे वैश्या वैश्यजातयः, उग्रैः क्रूरैः पुरुषैः सह पीडां व्रजन्ति प्राप्नुवन्ति। दूता गमागमिकाः, पुनर्भूप्रमदाश्च पुनर्भूस्त्रियः। कोणे नैर्ऋत्यां दिशि पीडां व्रजन्ति। अक्षतयोनित्वाद्या पुनरुह्यते सा पुनर्भूः। तथा च—

पुनर्भूः सोह्यते भूयो याऽक्षतत्वाद्यथाविधि।

पश्चात्तु शूद्रा इति। शूद्राः शूद्रजातयः, कृषिजीविनः कार्षिकाः पश्चात् पश्चिमायां दिशि पीडां व्रजन्ति। वायुदिक्स्थे वायव्यां दिशि स्थिते दिग्दाहे चौरास्तुरङ्गैरश्वैः सह पीडां व्रजन्ति। उत्तरत उत्तरस्यां दिशि विप्रा ब्राह्मणाः पीडां व्रजन्ति। पाखण्डिनो वेदबाह्या वाणिजकाश्च क्रयविक्रयजीविनः शार्व्यामैशान्यां दिशि पीडां व्रजन्ति। तथा च काश्यपः—

प्राच्यां दिशि प्रदीप्तायां श्रेणीनां भयमादिशेत्।
आग्नेय्यां तु कुमाराणां वैश्यानां दक्षिणे तथा।।
नैर्ऋत्यां च स्त्रियो हन्ति शूद्रान् पश्चिमतस्तथा।
वायव्यायां चौरभयं विप्राणामुत्तरे तथा।।
पाखण्डिवणिजां पीडा ह्यैशानी यदि दीप्यते।। इति ।।३-४।।

अथ शुभलक्षणमाह—

नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च।
दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ।।५।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणाध्याय एकत्रिंशः ।।३१।।

प्रसन्न (निर्मल) आकाश, विमल, (निर्मल) नक्षत्र, दक्षिणावर्त्त क्रम से घूमता हुआ वायु और सुवर्ण की तरह दिग्दाह हो तो राजा के साथ-साथ सब लोगों का हित करने वाला होता है।।५।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां दिग्दाहलक्षणाध्याय एकत्रिंशः ।।३१।।

नभ आकाशं प्रसन्नं निर्मलम्, तथा भानि नक्षत्राणि विमलानि स्निग्धानि। सदागतिर्वायुश्च प्रदक्षिणं वाति प्रदक्षिणेन वहति। दिशां दाहो दिग्दाहः कनकावदातः कनकवत् सुवर्णवद-वदातो निर्मलस्तथाभूतः सपार्थिवस्य सनृपस्य लोकस्य जनपदस्य हिताय श्रेयसे भवति।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

अथ भूकम्पलक्षणाध्याय:

अथ भूकम्पलक्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तन्निमित्तार्थं मुनीनां मतभेदप्रदर्शनार्थमाह—

क्षितिकम्पाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम्।
भूभारखिन्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥१॥

किसी-किसी (काश्यप आदि) का मत है कि जल में रहने वाले बड़े प्राणियों के धक्के से भूकम्प होता है तथा अन्य (गर्ग आदि) आचार्यों का मत है कि पृथ्वी के भार से थके हुये दिग्गजों के विश्राम से भूकम्प होता है।।१।।

एके मुनयो बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतं क्षितिकम्पमाहु: कथयन्ति। बृहन्तो ये य सत्त्वा: प्राणिनो झषमकरमत्स्यकूर्मनक्रशिशुमारप्रभृतयोऽन्तर्जले जलमध्ये निवसन्ति, तत्कृतं क्षितिकम्पं भूचलनमाहु:। तेषां जलसंक्षोभणादुत्पद्यत इत्यर्थ:। तथा च काश्यप:—

वारुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना।
स्थिता जलजसत्त्वाश्च सक्षोभाश्चालयन्ति ताम्।।

भूभारखिन्नेति। तथा अन्ये गर्गादय एवमाहु:। भूभारेण क्षितिभारोद्वहनेन खिन्ना: श्रान्ता ये दिग्गजा दिङ्नागास्तेषां विश्राम उच्छ्वसनं तदुद्भवं तदुत्पन्नं क्षितिकम्पमिति। तथा च गर्ग:—

चत्वार: पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम्।
वर्धमान: सुवृद्धश्चातिवृद्धश्च पृथुश्रवा:।
वर्धमानो दिशं पूर्वां सुवृद्धो दक्षिणां दिशम्।।
पश्चिमामतिवृद्धस्तु सौम्याशां तु पृथुश्रवा:।
नियोगाद् ब्रह्मणो ह्येते धारयन्ति वसुन्धराम्।।
ते श्वसन्ति यदा शान्ता: स वायु: श्वसितो महान्।
वेगान्महीं चालयति भावाभावाय देहिनाम्।। इति।।१।।

अन्यन्मतान्तरमाह—

अनिलोऽनिलेन निहत: क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्यन्ये।
केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्या: ॥२॥

किसी (वसिष्ठ आदि) का मत है कि वायु एक-दूसरे से टकराकर पृथ्वी पर गिरते हुये शब्द के साथ भूकम्प करता है। दूसरे (वृद्धगर्ग आदि) का मत है कि प्रजाओं के अदृष्ट (धर्माधर्म) के द्वारा भूकम्प होता है।।२।।

अन्ये वसिष्ठादय एवमाहुः। अनिलो वायुः स च नभस्थोऽपरेणैवानिलेन निहतस्ताडितः क्षितौ भूमौ पतति, स च पतन् सस्वनं शब्दं भूकम्पं करोति उत्पादयति। तथा च वसिष्ठः—

यदा तु बलवान् वायुरन्तरिक्षानिलाहतः।
पतत्याशु स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः।।
तस्य योगान्निपततश्चलत्यन्याहता क्षितिः।
सोऽभिघातसमुत्थः स्यात् सनिर्घातमहीचलः।। इति।

केचित्त्वदृष्टकारितमिति। केचिद्वृद्धगर्गादय इदं भूकम्पमदृष्टकारितं प्राहुः। अदृष्ट-शब्देन धर्माधर्मौ बुध्येते, ताभ्यां कारितं कृतमित्यर्थः। किल धर्मेण वृद्धेन प्रजानां शुभसं-सूचनाय शुभं भूमिकम्पमुत्पद्यते। अधर्मेणाभिवृद्धेन प्रजानामशुभसंसूचनायाशुभं भूमि-कम्पमुत्पद्यत इति। तथा च वृद्धगर्गः—

प्रजा धर्मरता यत्र तत्र कम्पं शुभं वदेत्।
जनानां श्रेयसे नित्यं विसृजन्ति सुरोत्तमाः।।
विपरीतस्थिता यत्र जनास्तत्राशुभं तथा।
विसृजन्ति प्रजानां तु दुःखशोकाभिवृद्धये।। इति।

अन्ये आचार्याः पराशरादयो मुनय इदं वक्ष्यमाणं प्राहुरुक्तवन्तः।।२।।

किं तदित्याह—

गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च।
आकम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडम्।।३।।

भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा।
क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताहं नास्य खेदस्य।।४।।

तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित् स्फुरिताधरं विनतमीषत्।
साश्रुविलोचनमाननमालोक्य पितामहः प्राह।।५।।

मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय।
शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतीमाह।।६।।

किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम्।
प्राग् द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति।।७।।

पूर्वकाल में आकाश से गिरते हुए और पृथ्वी से उड़ते हुए पंख वाले पर्वतों के द्वारा कम्पित पृथ्वी देवताओं की सभा में लज्जा के साथ ब्रह्माजी से बोली—हे भगवन्! आपने मेरा नाम अचला रखा है; पर चलायमान, भ्रमण करते हुए पर्वतों के द्वारा वह (नाम) वैसा नहीं रहा अर्थात् मैं चलायमान हूँ, इसलिये इस दुःख को सहन करने के लिये मैं

समर्थ नहीं हूँ। उस (पृथ्वी) का गद्गद वाणी वाला, कुछ-कुछ फड़कते हुए अधर वाला, नम्र और अश्रुयुत नेत्र वाला मुख देख कर ब्रह्माजी ने कहा—हे इन्द्र! पृथ्वी की आपत्ति का हरण करो और पर्वतों के पंख का नाश करने के लिये वज्र का प्रहार करो। इन्द्र ने स्वीकार करके पृथ्वी से कहा—भय मत करो। किन्तु शुभाशुभ फल जानने के लिये वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिन और रात के क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग में तुझे कम्पित करेंगे। जैसे कि दिन के पूर्वार्द्ध में वायु, उत्तरार्द्ध में अग्नि, रात्रि के पूर्वार्द्ध में इन्द्र और उत्तरार्द्ध में वरुण तुझे कम्पित करेंगे।।३-७।।

पुरा पूर्वं गिरिभिः पर्वतैः सपक्षैः पक्षसहितैर्वसुधा भूः प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च आकाशाद् भूर्भूम्याश्चाकाशमुत्पतद्भिराकम्पिता चाल्यमाना सती अमरसदसि देवसभायां गत्वा सव्रीडं सलज्जं कृत्वा। केचित् सव्रीडेति पठन्ति। सव्रीडा सलज्जा पितामहं ब्रह्माणमाह उक्तवती।

किं तदित्याह। हे भगवन् पितामह ममैतत्त्वया भगवता नाम कृतं यदचलेति स्थिरा त्वमिति। तन्नाम न तथाऽचलैः पर्वतैश्चलद्भिर्भ्रमद्भिः क्रियते सम्पाद्यते, तस्मादस्य खेदस्य नाहं सोढुं शक्ता न समर्थेति।

तस्या इति । ततस्तस्या वसुमत्याः पितामहो ब्रह्मा आननं मुखमालोक्य दृष्ट्वा इदं प्राहोक्तवान्। कीदृशमाननम्? सगद्गदगिरम्, सह गद्गदया अव्यक्तया गिरा वाचा वर्तते यत्। तथा किञ्चिदीषत्स्फुरिताधरम्, मनाक् स्फुरितौ चलमानावधरावोष्ठौ यस्य तत्। तथा विनतमधोमुखम्। तथा साश्रुविलोचनम्, सहाश्रुणा नयनाम्बुना विलोचने नयने वर्तते यस्मिन् तथाभूतम्।

किं तत्पितामह उवाचेत्याह—**मन्युं हरेति ।** हे इन्द्र शतक्रतो धात्र्या भूम्या मन्युं हर परिभवमपनय। क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय। शैलानां पर्वतानां पक्षभङ्गाय अङ्गरुह-च्छेदनाय कुलिशं वज्रं क्षिप प्रेरय। ततः शक्र इन्द्रः कृतमिति सम्पन्नमित्युक्त्वा वसुमतीं भूमिं मा भैषीरित्याह, मा तव भयं भवतु; अहमपनयामीत्युक्तवान्।

किन्त्विति । अनिलदहनसुरपतिवरुणाः, अनिलो वायुः, दहनोऽग्निः, सुरपतिरिन्द्रः, वरुणोऽपाम्पतिः, एते चत्वारः सदसत्फलानां शुभाशुभफलानामवबोधार्थं संसूचयितुं दिननिशोः, दिनं च निशा च तयोर्दिननिशोः समुदितयोर्न प्रत्येकं प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु त्वां कम्पयिष्यन्ति। दिवसस्य च पूर्वेऽर्द्धे अनिलः कम्पयिष्यति। द्वितीये दिनार्द्धेऽग्निः। तृतीये अहोरात्रभागे प्रथमनिशार्द्धे सुरपतिः। अहोरात्रस्य चतुर्थभागे निशायाश्चार्द्धे वरुणः कम्पयि-ष्यति। एवं प्रथममहोरात्रचतुर्भागो वायोर्वेला द्वितीयाग्नेस्तृतीया इन्द्रस्य चतुर्थी वरुणस्य। द्वौ दिनस्य निशायाश्च द्वावेवं प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु वेलामण्डलान्येतानि। तथा च पराशरः—

'पुरातिवीर्यवेगप्रवृद्धप्रभावाः पक्षिणः पवनपथविचारिणश्चलाः प्रपतन्तः शतशोऽवनिम-सकृदभिकम्पयाम्बभूवुः। तदखिलजगदहितमवनिचलनमभिसमीक्ष्य सुरपतिरविहतगतिमुपरि कुलिशमुपक्षिप्य क्षितिधरपक्षान् क्षणान्निपात्यावनिमुवाच। अद्रिजमतः परं भयमपन-

याम्यनिलानम्बुपतिमदभिसृष्टाः कम्पाः कदाचिज्जगति हिताहितवेदिनो भविष्यन्तीत्यर्कचन्द्र-ग्रहणविकृतचारजांश्च कम्पानाहुः'।

अत्र केचित् प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोरित्यन्यथा व्याख्यानं कुर्वन्ति। प्रत्येकं दिननिशोः प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेष्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः कम्पयिष्यन्ति। तथा च शास्त्रान्तरे पठ्यते—

रात्रौ दिवा च पूर्वाह्णे वायव्यः कम्प उच्यते।
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च हौताशः कम्प उच्यते।।
दिवारात्रौ तृतीयेंऽशे माहेन्द्रश्चाभिगीयते।
चतेर्थे वर्तमानेंऽशे वारुणं निर्दिशेद् बुधः।।

एतन्न शोभनम्; यस्मात् पराशर आह—

'तत्र चतुर्षु चतुर्भागेषु दिवानक्तमनिलानलेन्द्रवरुणजं कम्पक्रमं विन्द्यात्'।

एतत् स्पष्टतरं गर्ग आह—

कृत्वा चतुर्धाहोरात्रं द्विधाहोऽथ द्विधा निशम्।
देवताश्रययोगाच्च चतुर्धा भगणं तथा।।
पूर्वे दिनार्द्धे वायव्ये आग्नेयाऽर्द्धे तु पश्चिमे।
ऐन्द्रः पूर्वे च रात्र्यर्द्धे पश्चिमार्द्धे तु वारुणः।।
चत्वार एवमेते स्युरहोरात्रविकल्पजाः।
निमित्तभूता लोकानामुल्कानिर्घातभूचलाः।। इति।

एवं चतस्रो वेला इति सिद्धम्।।३-७।।

अथ वायव्यस्य कम्पस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि चाह—

चत्वार्यार्यम्णाद्यान्यादित्यं मृगशिरोऽश्वयुक् चेति।
मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि सप्ताहात् ।।८।।

धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम्।
विरुजन् द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ।।९।।

वायव्ये भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधीक्षयोऽभिहितः।
श्वयथुश्वासोन्मादज्वरकासभवो वणिक्पीडा ।।१०।।

रूपायुधभृद्वैद्यास्त्रीकविगान्धर्वपण्यशिल्पिजनाः।
पीड्यन्ते सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ।।११।।

उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी—ये सात नक्षत्र वायव्य मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। धूम से व्याप्त दिशा वाला आकाश होता है, पृथ्वी से धूलि उड़ाती

हुई और वृक्षों को तोड़ती हुई हवा चलती है एवं सूर्य के किरण मन्द हो जाते हैं। वायव्य भूकम्प होने से धान्य, जल और वनौषधियों का नाश होता है तथा व्यापारियों को शोथ, दमा, उन्माद, ज्वर और खाँसी से उत्पन्न पीड़ा होती है। यह वेश्या, शस्त्रजीवी, वैद्य, कवि, गान विद्या जानने वाले, व्यापारी, शिल्पी तथा सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेशवासी मनुष्यों को पीड़ित करता है।।८-११।।

चत्वार्यार्यम्णाद्यानीति। आर्यम्णमुत्तरफल्गुनी तदाद्यानि चत्वारि नक्षत्राणि। उत्तर-फल्गुनी हस्तश्चित्रा स्वातिरिति। आदित्यं पुनर्वसुः। मृगशिरः सौम्यम्। अश्वयुगश्विनीत्येतानि सप्त नक्षत्राणि वायव्यमण्डलम्। एतेषामन्यतमर्क्षे यदि भूकम्पो भवति तदा तद्वायव्यं ज्ञेय-मिति। अस्य रूपाणि सप्ताहात्। अस्य च मण्डलस्य सप्ताहात्पूर्वं वक्ष्यमाणानि रूपाणि पूर्वलिङ्गानि भवन्ति।

तान्याह—**धूमाकुलीकृताश इति**। यदा वायव्यकम्पो भवति, तदा चैतानि प्राक्स्थितानि लिङ्गान्युत्पद्यन्ते। नभस्याकाशे धूमाकुलीकृताशे। धूमेन आकुली कृता आशा दिशो यत्र तथाभूते। नभस्वान् वायुर्भौमं भूमेरुत्थं रजो धूलिं क्षिपन् प्रेरयन् विचरति। तथा द्रुमान् वृक्षान् विरुजन् विभञ्जयन् विचरति। रविरादित्यः। अपटुकरावभासी च भवति। अपटुभिरचतुरैः करै रश्मिभिरवभासनं प्रकाशं करोति तच्छीलः। तथा च गर्गः—

प्रथमेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
सौम्यादित्यार्यम्णहस्तचित्रास्वात्यश्विनीषु च।।
भवन्त्यनिलजाः सर्वे लक्षणान्यवधारय।
धूमव्याप्ता दिशः सर्वा नभस्वान् प्रक्षिपन् रजः।।
द्रुमांश्च भञ्जंश्चरति· रविस्तपति शीतलः।
सप्तमेऽहनि कम्पः स्याद् भूमेरनिलसम्भवः।। इति।

तस्मादस्य रूपाणि सप्ताहादिति यदुक्तं तत्र प्राप्तलिङ्गानीति बोद्धव्यम्। तत्र फला-न्याह—

वायव्ये भूकम्पे सस्यानां शालीनामम्बुनो जलस्य वनानामरण्यानामौषधीनां च क्षयो विनाशोऽभिहित उक्तः। तथा श्वयथुः शोफः। श्वासः। उन्मादो विचित्तता। ज्वरः। कासः। एषां भवः सम्भवः। वणिजां क्रयविक्रयजीविनां च पीडा व्यथा।

तथा रूपायुधभृदिति। रूपभृतो वेश्याजनाः। आयुधभृतः शस्त्रोपजीविनः। वैद्याः कायचिकित्सकाः। स्त्रियो योषितः। कवयः काव्यकर्तारः। गान्धर्वा गायकाः। पण्याः पण्येन ये जीवन्ति जनाः। तथा शिल्पिनो लोहकारप्रभृतयः। अथवा पण्यमेव शिल्पं येषां ते पण्यशिल्पिजनाः। एते सर्वे पीड्यन्ते। तथा सौराष्ट्रका जनाः। कुरवः। मगधाः। दशार्णाः। मत्स्याः। एतेऽपि पीड्यन्ते।

एवमाचार्येण गर्गऋषिपुत्रयोर्मतमङ्गीकृतम्। वृद्धगर्गपराशरकश्यपैः सह मतभेदः। तथा च पराशरः—

'वायव्याभिजिद्वासवाश्वार्यम्णहस्तत्वाष्ट्रेष्वनिलोऽभिकम्पयन् परुषपवननिपातैस्तरुकुसुमशष्पसस्यान्युच्छेदयति। उन्मादश्वासश्वयथुविषमज्वरातङ्ककृद्विशेषतो भिषग्वणिवपण्यस्त्रीशिल्पिशूरचित्रकारकविविद्याविवादशीलधूर्तकुरुसारदण्डकवात्समागधसाल्वसौवर्धनपुलिन्दवैदेहसौराष्ट्रनलदकदम्बदशार्णाङ्गवङ्गवर्तिमालवपौरवत्रिगर्तसौवीरयौधेयक्षुद्रकशिविकानभिहन्ति'।।८-११।।

अथाग्नेयस्य मण्डललक्षणं पूर्वलिङ्गानि चाह—

पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसंज्ञानि ।
वर्गो हौतभुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ।।१२।।

तारोल्कापातावृतमादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम् ।
विचरति मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्तदिवसान्तः ।।१३।।

आग्नेयेऽम्बुदनाशः सलिलाशयसंक्षयो नृपतिवैरम् ।
दद्रूविचर्चिकाज्वरविसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ।।१४।।

दीप्तौजसः प्रचण्डाः पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गबाह्लीकाः ।
तङ्गणकलिङ्गवङ्गद्रविडाः शबरा अनेकविधाः ।।१५।।

पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वभाद्रपदा, पूर्वफाल्गुनी—ये सात नक्षत्र आग्नेय मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। सात दिन के मध्य में दिग्दाह के साथ तारा तथा उल्का के गिरने से व्याप्त; अतः प्रज्वलित की तरह आकाश होता है तथा वायु की सहायता से अग्नि विचरण करती है। आग्नेय भूकम्प में मेघ और जलाशयों (वापी, कूप और तालाब) का नाश, राजाओं में परस्पर द्वेष, दाह, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पाण्डु रोग होता है। यह तेजस्वी, क्रोधी मनुष्य, अश्मक, अङ्ग, बाह्लीक, तङ्गण, कलिङ्ग, वङ्ग, द्रविण और शबर देशवासियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करता है।।१२-१५।।

पुष्यः। आग्नेयं कृत्तिका। विशाखा। भरणी। पित्र्यं मघाः। अजशब्देनैकपादुच्यते। एवमजं पूर्वभद्रपदा। भाग्यसंज्ञा पूर्वफल्गुनी। एतानि सप्त नक्षत्राणि। हौतभुजोऽयं वर्गः। हुतं भुङ्क्ते हुतभुक्, तस्यायं हौतभुजः। आग्नेयं मण्डलम्। अथानन्तरम्। एतानि वक्ष्यमाणानि रूपाणि चिह्नानि सप्ताहात् पूर्वं करोति।

तारोल्कापातावृतमिति । अम्बरमाकाशं तारोल्कापातावृतम्। तारापातैरुल्कापातैश्चावृतं व्याप्तम्। सदिग्दाहं दिग्दाहसहितम्। आदीप्तमिवोज्ज्वलितमिव लक्ष्यते। सप्तदिवसान्तः सप्ताहमध्ये सप्तार्चिरग्निर्मरुत्सहायो वातसहितो विचरति वहन् दृश्यते। तथा च गर्गः—

द्वितीयेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
पित्र्यभाग्याजपुष्याग्निविशाखायमदैवतैः ।।

भवन्त्यनिलजास्ते च लक्षणानि निबोध मे।
तारोल्कापातदिग्दाहैरादीप्तं लक्ष्यते नभः।।
मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्ताहान्तश्चरत्यपि।
सप्तमेऽहनि विज्ञेयः कम्पश्चानलसम्भवः।। इति।

अथ फलान्याह—आग्नेये भूकम्पे अम्बुदानां मेघानां नाशः क्षयः। सलिलाशयानां जलधराणां वापीकूपतडागानां संक्षयः संशोषः। नृपतीनां राज्ञां परस्परं वैरं द्वेषः। दद्रू त्वग्विकारः। विचर्चिका रोगविशेषः पादजस्त्वग्विकारः। ज्वरः। विसर्पिका अङ्गविकारः। पाण्डुरोग उदरामयः। एते सम्भवन्ति।

दीप्तौजस इति। दीप्तमोजो येषां ते दीप्तौजसस्तेजस्विनः। प्रचण्डाः क्रोधिनः। एते पीड्यन्ते पीडां प्राप्नुवन्ति। तथाश्मका जनाः। अङ्गाः। बाह्लीकाः। तङ्गणाः। कलिङ्गाः। वङ्गाः। द्रविणाः। शबराः। एते अनेकविधा बहुप्रकाराः। सर्व एव पीड्यन्ते। अत्रापि पराशरः—

'अग्नीन्द्राग्न्यजयमपितृगुरुभगदैवतेष्वनलोऽभिकम्पयन् वर्षसरित्सरःस्रोतसामपः क्षपयन् सुखानि रोगारोचकपिटकपाण्डुरुग्ज्वरकिटिभदद्रुदाहकृद्विशेषाद्वातपादकाग्निवित्पुलिन्दयवनबाह्लीकवङ्गोष्ट्रसन्त्यश्मकेक्ष्वाकुकुलूततुखारशिबिकत्रिगर्तवैदेहद्रविडसुराष्ट्रमध्यदेशदाशार्णांश्च हिनस्ति' इति।।१२-१५।।

अथेन्द्रस्य मण्डलस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलान्याह—

अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाप्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि।
सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चाप्यस्य रूपाणि ।।१६।।

चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडिद्वन्तः।
गवलालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ।।१७।।

ऐन्द्रं स्तुतकुलजातिख्यातावनिपालगणपविध्वंसि।
अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ।।१८।।

काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः।
अर्बुदसुराष्ट्रमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम् ।।१९।।

अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा—ये सात नक्षत्र इन्द्रमण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो उसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे कि पर्वत के समान शरीर वाले, गम्भीर शब्द करने वाले, बिजली वाले, महिषशृङ्ग, भ्रमरकुल और सर्पों के समान कान्ति वाले मेघ वर्षा करते हैं। ऐन्द्र कम्प में प्रधान कुल में उत्पन्न मनुष्य, यशस्वी, राजा और सङ्घियों में प्रधान का नाश करता है तथा अतिसार, कण्ठरोग, मुखरोग और कफ के रोग होते हैं।

काशी, युगन्धर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुराष्ट्र और मालवदेशवासी मनुष्यों को पीड़ित करता है एवं प्रयोजन के अनुसार वृष्टि करता है।।१६-१९।।

अभिभिच्छ्रवणं धनिष्ठा। प्राजापत्यं रोहिणी। ऐन्द्रं ज्येष्ठा। वैश्वमुत्तराषाढा। मैत्रमनुराधा। एतानि सप्त नक्षत्राणि सुरपतेरिन्द्रस्य मण्डलमेतत्। अस्यापि सप्ताहात् पूर्वं स्वरूपाणि भवन्ति।

पयोवाहा मेघाः पयः पानीयं विसृजन्त्युत्सृजन्ति। कीदृशाः? चलिताचलवर्ष्माणः, चलितानामचलानां पर्वतानामिव वर्ष्म शरीरं येषां ते तथाविधाः। तथा गम्भीरविराविणः, गम्भीरो मधुरो विशेषेण रावः शब्दो येषाम्। तडिद्वन्तः, तडितो विद्युतस्ता विद्यन्ते येषु। गवलं महिषशृङ्गम्। अलिकुलं भ्रमरकुलम्। अहयः सर्पास्तन्निभास्तत्सदृशाः। तथा च गर्गः—

निशार्द्धे तु यदा पूर्वे उल्कानिर्घातभूचलाः।
मैत्रेन्द्रवैश्वश्रवणाभिजिद्रोहिणिवासवैः ।।
स्यादिन्द्रसम्भवः कम्पो लक्षणानि च मे शृणु।
वर्षन्ति बहवो मेघा वराहमहिषोपमाः।।
धुन्वन्तो मधुरान् रावान् विद्युद्भासितभूतलाः।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्यादिन्द्रसम्भवः।। इति।

फलान्याह—**ऐन्द्रमित्यादि**। ऐन्द्रं कम्पम्। स्तुतकुलजातयः। स्तुते स्तुतिसंयुक्ते प्रधानकुले जातिर्जन्म येषां ते। तथा ख्याताः कीर्तियुक्ताः। अवनिपाला राजानः। गणपाः समूहपतयः। एषां विध्वंसि नाशकम्। अतिसारोऽतीसारः। गलग्रहः कण्ठरोगः। वदनरोगो मुखगदः। एतान् करोति। तथा छर्दिकोपाय भवति। छर्दिप्रकोपं करोति।

काशयो जनाः। युगन्धराः। पौरवाः। किराताः। कीराः। अभिसाराः। हलाः। मद्राः। अर्बुदाः। सुराष्ट्राः। मालवाः। एषां पीडाकरम्। तथा इष्टवृष्टिकरम्। इष्टामभिमतां वृष्टिं करोति। अत्रापि पराशरः—

'ऐन्द्रवैश्वदेववैष्णवप्राजापत्यसौम्यादित्यमैत्रेषु सुरपतिरवनिमतिचालयन् प्रवृद्धाम्भोदयज्ञधर्मान्नपानोत्सवो जात्यप्रथितकुलाधिपतिसुवास्तुनीचकाश्मीराभिसारप्राच्यशककिरातपौरवाच्युतवास्वर्णवमालवपह्लवदण्डककाशिकार्षककैलासमल्ललहवहालानुपतापयति' इति।।१६-१९।।

अथ वारुणस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलमाह—

पौष्णाप्यार्द्राश्लेषामूलाहिर्बुध्न्यवरुणदेवानि ।
मण्डलमेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ।।२०।।

नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुररराविणो बहुलाः ।
तडिदुद्भासितदेहा धाराङ्कुरवर्षिणो जलदाः ।।२१।।

वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम्।
गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥२२॥

रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तरभाद्रपदा, शतभिषा—ये सात नक्षत्र वरुणमण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे कि वारुण कम्प में समुद्र और नदी के तट पर रहने वालों का नाश, अतिवृष्टि, परस्पर द्वेषरहित मनुष्य तथा गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और वैदेह देश में रहने वाले मनुष्यों का नाश करता है।।२०-२२।।

पौष्णं रेवती। आप्यं पूर्वाषाढा। आर्द्रा। आश्लेषा। मूलम्। अहिर्बुध्न्यमुत्तरभद्रपदा। वरुणदेवं शतभिषक्। एतानि सप्त नक्षत्राणि। वारुणं मण्डलमस्यापि सप्ताहात् पूर्वं रूपाणि चिह्नानि भवन्ति।

जलदा मेघा धाराङ्कुरवर्षिणः। धारा जलपात एवाङ्कुरो येषां तैर्वर्षन्ति। कीदृशाः? नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषः, नीलोत्पलं कुवलयम्, अलिर्भ्रमरः, भिन्नाञ्जनमिति नीलवर्णं कज्जलम्, एषां सदृशी त्विट् कान्तिर्येषाम्। मधुरराविणः, मधुरो रावः शब्दो येषाम्। बहुलाः प्रभूतास्तडिदुद्भासितदेहाः। तडिद्भिर्विद्युद्भिरुद्भासिताः प्रकटीकृता देहाः शरीराणि येषाम्। तथा च गर्गः—

निशायां पश्चिमे भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
पौष्णाप्यार्द्रोरगा मूलाहिर्बुध्न्यं वरुणं तथा।।
कम्पो वारुण एभिः स्याच्छृणु तस्यैव लक्षणम्।
वर्षन्ति जलदास्तत्र नीलाञ्जनचयोपमाः।।
विद्युद्भासितदेहाश्च मधुरस्वरभूषिताः।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्याद्वारुणस्ततः।। इति।

फलान्याह—वारुणं कम्पमर्णवसरिदाश्रितघ्नम्। अर्णवः समुद्रः। सरितो नद्यः। तत्र ये आश्रितास्तान् हन्ति। अतिवृष्टिदम्, प्रभूतां वृष्टिं ददाति। विगतवैरं नष्टद्वेषम्। गोनर्दा जनाः। चेदयः। कुकुराः। एतान् किरातान् वैदेहांश्च हन्ति नाशयति। अत्रापि पराशरः—

'वारुणाहिर्बुध्न्यपूषारुद्रभुजगनैर्ऋत्यदैवतेषु कम्पोऽबुपतिकृतः प्रततजलधरः। धराभिन्नकेदारपुरनगरप्रबद्धतरुणततजलताक्षुपशष्पसस्यातीसारहिक्काक्षिरोगकृदपि च विशेषतः किरातकाश्मीरापरान्तककौकुरेयशौर्यारकचेदिवत्ससैन्धवोदकयात्रिकोदधिनदनदीसंश्रितांश्च देशानुपहन्ति' इति।।२०-२२।।

अधुना फलकालनियमार्थमाह—

षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः।
अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥२३॥

भूकम्प का फल छः महीने में और निर्घात का फल दो महीने में घटित होता है। गर्ग

आदि मुनियों का मत है कि अन्य (निर्घात, उल्कापात आदि) उत्पातों का फल मण्डल के साथ ही होता है।।२३।।

षड्भिर्मासैः कम्पः पाकं याति फलं ददातीत्यर्थः। निर्घातो द्वाभ्यां मासाभ्यां पाकं याति। अन्ये मुनयो गर्गादयोऽन्यानप्युत्पातान् ग्रहणनिर्घातोल्कापातादीनेतैरेव भूकम्पोक्तैर्मण्डलैर्जगुरुक्तवन्तः। तथा च गर्गः—

निर्घातोल्कामहीकम्पाः स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाः।
मेघाः स्तनितशब्दाश्च सूर्येन्दुग्रहणे तथा।।
परिवेषेन्द्रचापं च गन्धर्वनगरं तथा।
मण्डलैरेव बोद्धव्याः शुभाशुभफलप्रदाः।।

तथा च समाससंहितायामाचार्येणैवोक्तम्—

आर्यम्णपूर्वं भचतुष्टयं च शशाङ्कमादित्यमथाश्विनी च।
वायव्यमेतत्पवनोऽत्र चण्डो मासद्वयेनाशुभदः प्रजानाम्।।
अजैकपादं बहुला भरण्यो भाग्यं विशाखा गुरुभं मघा च।
क्षुदग्निशस्त्रामयकोपकारि पक्षैस्त्रिभिर्मण्डलमग्निसंज्ञम्।।
प्राजापत्यं वैष्णवं मैत्रमैन्द्रं विश्वेशं स्याद्वासवं चाभिजिच्च।
ऐन्द्रं ह्येतन्मण्डलं सप्तरात्रात् कुर्यात्तोयं हृष्टलोकं प्रशान्तम्।।
आहिर्बुध्न्यं वारुणं मूलमाप्यं पौष्णं सार्पं मन्मथारीश्वरं च।
सद्यः पाकं वारुणं नाम शस्तं तोयप्रायं हृष्टलोकं प्रशान्तम्।।
उल्काहरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः।
वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि।।
व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं चातिवृष्टिर्धूमोऽनग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषां वा।
वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा।।
सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादः।
अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगद्यम्।। इति।।२३।।

उल्काद्युत्पातानां फलनियमाः—

(उल्का हरिश्चन्द्रपुर रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः।
वातोऽपिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि।।
व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्धूमोऽनाग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा।
वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकंदृश्यते वा।।
सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादः।
अन्यच्च यत्स्यात्प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगाद्यम्।।

उल्का, गन्धर्वपुर, धूलि, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, भयङ्कर वायु, सूर्य-चन्द्र का

ग्रहण, विकारयुकत नक्षत्र और तारागण, बिना बादल की वर्षा, विकार युत वायु के साथ वृष्टि, अग्नि की चिनगारीदार लपट, वन में रहने वाले पशुओं का गाँव में आना, रात्रि में इन्द्रधनुष दिखाई देना, सन्ध्या में विकार, परिवेषखण्ड, नदियों की गति में वैपरीत्य, आकाश में तुरही का बजना, और भी प्रकृति के विरुद्ध लक्षण होना, इन सबों का फल उसके मण्डल से ही कहना चाहिये।)

अथ वेलामण्डलवशेन कम्पानां निष्फलत्वमाह—

हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योऽन्यम् ।
वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥२४॥

इन्द्र के मण्डल में उत्पन्न कम्प वायव्य कम्प का, वायव्य मण्डल में उत्पन्न कम्प इन्द्रकम्प का, वारुण मण्डल में उत्पन्न कम्प अग्निकम्प का, अग्निमण्डल में उत्पन्न कम्प वारुण कम्प का, वेलाजात कम्प नक्षत्र कम्प का और नक्षत्रजात कम्प वेलाजात कम्प का नाश करता है। यदि वायव्य मण्डलान्तर्गत वायव्य वेला में कम्प हो तो अपने फल को पुष्ट करता है। इसी प्रकार मण्डल का अन्य भी फल जानना चाहिये; अन्यथा नहीं।।२४।।

ऐन्द्रः कम्पो वायव्यं हन्ति। ऐन्द्रमण्डलोत्पन्नो भूकम्पो वायुवेलाजं कम्पं नाशयति। एवं वायुश्चाप्यैन्द्रं हन्ति। एवमनेनैव प्रकारेण। अन्योऽन्यं परस्परं वारुणहौतभुजावपि। वारुणमण्डलमग्निजं हन्ति। अग्निर्वरुणजं हन्ति। वेलाजाता नक्षत्रजाताश्च कम्पाः परस्परं नाशयन्तीत्यर्थः। तस्मान्न फलदाः। वेलामण्डलयोर्भेदा अभेदे त्वतिफलदाः। यथा वायव्ये मण्डले वायव्यां च वेलायां यः कम्पः स स्वफलं पुष्टं ददात्येवमन्येऽपि बोद्धव्या इति।

अथ वेलामण्डलवशेन कम्पोक्तस्य विशेषमाह—

प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः ।
क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥२५॥

यदि आग्नेय मण्डल और वायव्य वेला में या वायव्य मण्डल और आग्नेय वेला में भूकम्प हो तो विख्यात राजाओं को मरण या मरणतुल्य कष्ट होता है तथा मनुष्यगण दुर्भिक्ष, मृत्यु और अवृष्टि से पीड़ित होते हैं।।२५।।

आग्नेयवायुमण्डलयोराग्नेये मण्डले वायव्यां च वेलायाम्। अथवा वायव्यमण्डले आग्नेय्यां वेलायां भूकम्पस्तस्मिन् प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनानि भवन्ति। प्रथिताः प्रख्याता ये नरेश्वरा राजानस्तेषां मरणं व्यसनानि भवन्ति। मृत्युदुःखं च भवतीत्यर्थः। तथा जना लोकाः क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते, क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्, मरको मरणम्, अवृष्टिरवर्षणम्, एतैरुपताप्यन्ते।।२५।।

पुनरप्याह—

वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके ।
गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥२६॥

यदि वारुण मण्डल और ऐन्द्र वेला में या ऐन्द्र वेला और वारुण मण्डल में भूकम्प हो तो लोगों में सुभिक्ष, कुशल, वृष्टि और चित्त में शान्ति होती है तथा गौ अधिक दूध देती है और राजा लोग परस्पर द्वेषरहित होते हैं।।२६।।

वारुणो वरुणकृतः। पौरन्दर ऐन्द्रः। वारुणपौरन्दरयोर्वेलामण्डलयोः सुभिक्षम्। शिवं श्रेयः। वृष्टिर्वर्षणम्। हार्दिश्चित्ततुष्टिः। एते लोके भवन्ति। तथा गावः। अतिभूरिपयसो बहुक्षीराः। तथा भूपाला राजानो निवृत्तवैरा नष्टद्वेषा भवन्ति। तथा च काश्यपः—

ऐन्द्रश्चानिलजं हन्ति वायव्यश्चापि शक्रजम्।
आंप्यो हौतभुजं हन्ति चाग्निर्वारुणसम्भवम्।।
वाय्वग्निमिश्रितो यश्च वेलामण्डलसम्भवः।
दुर्भिक्षव्याधिरोगैस्तु पीड्यन्ते तत्र जन्तवः।।
माहेन्द्रवारुणे यत्र वेलामण्डलसम्भवः।
सुभिक्षक्षेमधर्माणां तत्र वृष्टिः प्रतिष्ठिता।।

एवमुक्तपरिशेषाणां विशेषफलं नास्ति पाराशरे तन्त्रे विशेषतरं पठ्यते। तथा च—

योऽन्यस्मिन्नक्षत्रे भागे चान्यत्र भूचलो भवति।
स भवेद् व्यामिश्रफलस्तन्मे गदतो निबोध त्वम्।।
कुरुशाल्वमत्स्यनैषधपुण्ड्रान्ध्रकलिङ्गविन्ध्यपादस्थान्।
वाय्वाग्नेयः कम्पः सानलजीवान् भजति मैत्र्याम्।।
प्राच्यशकचीनपह्लवयौधेयकपर्दियक्षवद्गोमान् ।
शरदण्डमगधवन्धकिविनाशनः शक्रवायव्यः।।
आवन्तिकाः पुलिन्दा विदेहकाश्मीरदरदवासान्ताः।
बाह्याश्रिताश्च वायव्यवारुणे प्राप्नुयुः पीडाम्।।
ऐक्ष्वाकवाऽश्मरथ्यान् पदच्चराभीरचीनमरुकुत्सान्।
ऐन्द्राग्नेयः कम्पो हिनस्ति राज्ञश्च समुदीर्णान्।।
सरितः सरः समुद्राश्रितांश्च गोनर्दमङ्गनाराज्यम्।
क्षत्रियगणांश्च हन्यात् कम्पो वरुणाग्निदैवत्यः।।
काश्याभिसारकाच्युतकच्छद्वीपार्यदेशजाः पुरुषाः।
गणपूजिताः कुलाग्र्या नृपाश्च वरुणेन्द्रवध्याः स्युः।। इति।।२६।।

अधुना कम्पव्यतिरिक्तानामन्येषामुत्पातानां येषां न कुत्रचित् कालनियमः कृतस्तेषां कालनियमार्थमाह—

पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात्।
सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः ।।२७।।

अङ्गस्फुरण आदि उपद्रवों में जिसका फलकाल नहीं कहा गया है, वह यदि वायव्य

मण्डल में हो तो दो मास में, आग्नेय मण्डल में हो तो तीन पक्ष (डेढ़ मास) में, इन्द्र मण्डल में हो तो सात दिन में और वारुण मण्डल में हो तो उसी दिन फल देता है।।२७।।

येष्वद्भुतेषूत्पातेषु देहस्पन्दनपिटकप्रायेषु कालः समयो नोक्तो न कथितस्ते यद्यनिले वायव्ये मण्डले भवन्ति तदा चतुर्भिः पक्षैर्मासद्वयेन फलन्ति। एवमाग्नेयैस्त्रिभिः पक्षैः। देवराडिन्द्रः सप्ताहात् सप्तभिर्दिनैः। वरुणः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि फलति।।२७।।

अथ येन मण्डलेन यावन्ति योजनानि चलन्ति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम्।
सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽभ्यधिकं च षष्टितः ॥२८॥

यदि वायुमण्डल में भूकम्प हो तो दो सौ योजन तक, अग्निमण्डल में हो तो दश योजन तक, वारुण मण्डल में हो तो एक सौ अस्सी योजन तक और ऐन्द्र मण्डल में भूकम्प हो तो साठ से अधिक योजन तक पृथ्वी को कम्पित करता है।।२८।।

पवनो वायुर्योजनानां शतद्वयं चलयति। एतदुक्तं भवति—वायव्ये मण्डले यो भूकम्पो भवति स योजनानां शतद्वयं कम्पयति। एवमनलोऽग्निर्दशयोजनान्वितं दशाधिकं योजनशतं चलयति। सलिलपतिर्वरुणोऽशीतिसंयुतं योजनशतं चलयति। कुलिशं वज्रं तद्धारयतीति कुलिशधर इन्द्रः षष्टितोऽधिकं योजनशतं चलयति। तथा च काश्यपः—

वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम्।
दशाधिकमथाग्नेय ऐन्द्रे षष्ठ्याधिकं शतम्।।
शतं चाशीतिसंयुक्तं वारुणे मण्डले चलेत्।। इति।।२८।।

अथ भूकम्पे वृत्ते पुनर्यदि भूकम्प आसन्नो भवति तस्य फलप्रदर्शनार्थमाह—

त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च।
यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति ॥२९॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भूकम्प-
लक्षणाध्याय द्वात्रिंशः ॥३२॥

यदि भूकम्प होने के बाद तीसरे, चौथे, सातवें, पन्द्रहवें या पैंतालीसवें दिन में फिर भूकम्प हो तो प्रधान राजा का नाश करता है।।२९।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां भूमिकम्पलक्षणाध्यायो द्वात्रिंशः ॥३२॥

भूकम्पे वृत्ते पुनर्यदि तृतीये दिवसे चतुर्थे वा सप्तमे दिने मासे त्रिंशद्दिने पक्षे पञ्चदशाहे। त्रिपक्षे दिनपञ्चचत्वारिंशता भूकम्पो भवति तदा प्रधाननृपाणां प्रतिष्ठितानां राज्ञां नाशनः क्षयावहो भवति। तथा च गर्गः—

अर्द्धमासे चतुर्थेऽह्नि तृतीये वाथ सप्तमे।
कस्मात् पुनर्यदा कम्पो मासे सार्द्धे यदापि वा।।
उत्पद्यते जने यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

तथा च पराशरः—

'स्निग्धस्वनाः प्रदक्षिणानुयायिनोऽम्बुधरा धाराभिषिक्ताः पर्वसु च सर्व एव प्रशस्यन्ते। तीक्ष्णाम्बुवहोऽवनिपतिविग्रहोच्छ्रयाय। त्रिचतुःसप्तरात्रे पक्षमासत्रिपक्षान्तरे प्रततानुकम्पनः प्रवरनरपतिविनाशाय। अपि च शमयन्त्यासप्ताहात् कम्पादिकृतं निमित्तमाश्वेवातिवर्षणोपवासव्रतदीक्षाजप्यहवनानि' इति।।२९।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ भूकम्पलक्षणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथोल्कालक्षणाध्यायः

अथोल्कालक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव स्वरूपप्रदर्शनार्थमाह—

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः ।
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥१॥

स्वर्ग में शुभ फल भोग कर गिरते हुये प्राणियों का स्वरूप उल्का है। धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली, तारा—ये पाँच उल्का के भेद हैं।

विशेष—गर्ग आदि आचार्यों का मत है कि लोकपाल लोगों की परीक्षा करके शुभाशुभ फल-ज्ञान के लिये जिन अस्त्रों को छोड़ते हैं, उसी का नाम उल्का है।।१।।

दिवि स्वर्गे। भुक्तशुभफलानाम्, शुभानि फलानि भुक्तानि यैः स्वर्गस्थैस्तेषां पततां यानि रूपाणि दृश्यन्ते तान्युल्का इत्युच्यन्ते। गर्गादिभिः पुनरन्यथा कथितम्। यथा लोकपाला लोकानां शुभाशुभफलसूचनायास्त्राणि ज्वलितान्युत्सृजन्ति तान्येवोल्काः। तथा च गर्गः—

स्वास्त्राणि संसृजन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः।
लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु।।

आचार्येण स्वल्पसंहितायामेवोक्तम्—

अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्काः।
केषाञ्चित् पुण्यकृतां तत्रोल्काविच्युतिः स्वर्गात्।। इति।

ताश्चोल्काः पञ्चधा। पञ्चभिः प्रकारैर्भिन्ना भेदिताः। तद्यथा—धिष्ण्या, उल्का, अशनिः, विद्युत्, तारा इति।।१।।

अथ फलकालनियमार्थमाह—

उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः ।
विद्युदहोभिः षड्भिः तद्वत्तारा विपाचयति ॥२॥

उल्का १५ दिन में, धिष्ण्या १५ दिन में, अशनि तीन पक्ष (पैंतालीस दिन) में, बिजली छः दिन में और तारा भी छः दिन में फल देती है।।२।।

उल्का पक्षेण पञ्चदशभिर्दिनैः शुभाशुभफलं विपाचयति सम्पादयतीत्यर्थः। तद्वद्धिष्ण्या तेनैव प्रकारेण पक्षेण फलं विपाचयति। अथाशनिस्त्रिभिः पक्षैर्दिनपञ्चचत्वारिंशता। विद्युदहोभिः षड्भिर्दिनैः। तारा तद्वदेव षड्भिर्दिनैर्विपाचयति। तथा च समाससंहितायाम्—

उल्काथ पञ्चरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा।
धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्त्रिगुणश्चाशनिः षडहिकेऽन्ये।।
फलपादकरी तारा धिष्ण्यार्द्धं पुष्कलं शेषाः।। इति।।२।।

अथ फलनियमार्थमाह—

तारा फलपादकरी फलार्द्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या।
तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ।।३।।

तारा फल का चतुर्थांश, धिष्ण्या फल का आधा तथा विद्युत्, उल्का, अशनि—ये तीनों सम्पूर्ण फल को देती हैं।।३।।

तारा फलपादकरी, फलस्य पादं चतुर्भागं करोतीत्यर्थः। धिष्ण्या फलार्द्धं ददाति। तिस्रो विद्युत्। उल्का। अशनिः। एतास्तिस्रः सम्पूर्णफलाः सम्पूर्णं यथा पठितं फलं प्रयच्छन्ति।।३।।

अथाशन्याः कीदृग्लक्षणमित्येतदाह—

अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु।
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ।।४।।

अशनि अधिक शब्द करती हुई, पृथ्वी को विदारण करती हुई और चक्र की तरह भ्रमण करती हुई मनुष्य, हाथी, घोड़ा, मृग, पत्थर, घर, वृक्ष या पशुओं पर गिरती है।।४।।

अशनिर्महता स्वनेन शब्देन युक्ता निपतति। **नृगजेति**। ना मनुष्यः। गजो हस्ती। अश्वस्तुरगः। मृग आरण्यप्राणी। अश्मा पाषाणः। वेश्म गृहम्। तरुर्वृक्षः। पशुर्गवादिः। एतेषूपरि निपतति। तथा धरातलं भूतलम्। चक्रसंस्थाना चक्रवद्भ्रमन्ती विदारयन्ती च निपतति। तथा च समाससंहितायाम्—

अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दाः।। इति।।४।।

अथ विद्युल्लक्षणमाह—

विद्युत् सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा।
कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ।।५।।

विद्युत् प्राणियों में भय उत्पन्न करती हुई, तट-तट (तर-तर) शब्द करती हुई, कुटिल और विस्तृत शरीर वाली, प्राणियों या काष्ठ राशियों पर प्रज्वलित होकर बहुत जल्दी गिरती है।।५।।

विद्युत् सत्त्वानां प्राणिनां त्रासं भयं जनयन्ती उत्पादयन्ती। तटतटस्वना तटतटेति शब्दं क्रियमाणा। अव्यक्तशब्देति यावत्। तथा कुटिलविशाला कुटिला वक्रा विशाला विस्तीर्णा। जीवेन्धनराशिषु, जीवेषु प्राणिषु, इन्धनराशिषु काष्ठनिचयेषु। ज्वलिता सज्वाला सहसा झटित्येव निपतति। तथा च—

विद्युत्तटतटशब्दा ज्वालामालाकुला पतति।। इति।।५।।

अथ धिष्ण्यालक्षणमाह—

धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम्।
ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ।।६।।

धिष्ण्या पतली और छोटी पूँछ वाली, प्रज्वलित अग्नि के समान, दो हाथ लम्बी तथा दश धनुष प्रमाण प्रदेश के बीच में अधिक दिखाई देती है।।६।।

धिष्ण्या कृशा दुर्बला अल्पपुच्छा स्वल्पलाङ्गूला। ज्वलिताङ्गारनिकाशा प्रज्वलिताङ्गारसदृशी। सा च द्वौ हस्तौ प्रमाणेन दीर्घा। यत उत्पन्ना तत आरभ्य दश धनूंषि। अन्तरे मध्येऽभ्यधिकं दृश्यते। चत्वारिंशद्धस्ता स्फुटतरा दृश्यते इत्यर्थः। तथा च—

धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृशदेहा।। इति।।६।।

अथ तारालक्षणमाह—

तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा।
तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ।।७।।

तारा एक हाथ लम्बी, श्वेत, ताम्र या कमलसूत्र के समान (अति सूक्ष्म) आकाश में आकृष्ट होती हुई, तिरछी, नीचे और ऊपर की तरफ जाती है।।७।।

तारा हस्तं हस्तप्रमाणं दीर्घा। शुक्ला श्वेतवर्णा। ताम्रा वा लोहितवर्णा। अब्जतन्तुरूपा पद्मसूत्रसदृशी। अतिसूक्ष्मेत्यर्थः। सा च वियत्याकाशे उह्यमानेवाकृष्यमाणेव तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति गच्छति। तथा च—

तारा तु हस्तमात्रा यात्यूर्ध्वमधः स्थिता सिता ताम्रा।। इति।।७।।

अथोल्कालक्षणमाह—

उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा।
दीर्घा च भवति पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ।।८।।

उल्का विशाल शिर वाली, पुरुष के प्रमाण तुल्य (साढ़े तीन हाथ) लम्बी और गिरती हुई बढ़ती है। इसके अनेक प्रकार के भेद हैं।।८।।

उल्का शिरसि मूर्धनि विशाला विस्तीर्णा निपतन्ती वर्धते। यथा यथा निपतति तथा तथा वृद्धिं याति। प्रतनुपुच्छा सूक्ष्मलाङ्गूला। दीर्घा चाऽऽयामिनी पुरुषप्रमाणा भवति। हस्तत्रयं सार्द्धमित्यर्थः। अस्या उल्काया बहवो भेदा भवन्ति। प्रभूता भेदा इत्यर्थः। तथा च—

उल्काग्रतो विशाला बहुप्रकारा पुरुषमात्रा।। इति।।८।।

अथ के ते भेदा इत्याह—

प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः ।
गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ।।९।।

यह प्रेत, शस्त्र, गदहा, ऊँट, नाक, बन्दर, दंष्ट्री (सूअर आदि), हल, मृग, गोह, साँप, धूम के समान या दो शिर वाली होती है। ये सब पाप फल देने वाली होती हैं।।९।।

प्रेतः शवः। प्रहरणं खड्गादि। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। नक्रो जलप्राणी। कपि-र्वानरः। दंष्ट्रिणो वराहादयः। लाङ्गलं हलम्। मृग आरण्यप्राणी। एषां सदृश्यः। तथा गोधा प्राणिविशेषः। अहिः सर्पः। धूमः प्रसिद्धः। एषां सदृशरूपाः। एताः सर्वाः पापाः। अनिष्टफला इत्यर्थः। या चोभयशिरस्का द्विशीर्षा सापि पापैव।।९।।

पुनरप्याह—

ध्वजझषगिरिकरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।
श्रीवृक्षवज्रशङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥१०॥

ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, घोड़ा, तपी हुई धूली, हंस, श्रीवृक्ष (नारियल), वज्र (हीरा या शस्त्र), शंख या स्वस्तिक (राजगृह की तरह) रूप वाली उल्का दिखाई दे तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करती है।।१०।।

एवंविधाः सर्वाः शिवसुभिक्षाः, शिवं श्रेयः सुभिक्षं च कुर्वन्ति। कीदृश्यः? ध्वजः पताकाकृतिर्बहुपटविरचितः। झषो मीनः। गिरिः पर्वतः। करी हस्ती। कमलं पद्मम्। इन्दुश्चन्द्र। तुरगोऽश्वः। सन्तप्तरजतं गलितरौप्यम्। हंसः पक्षी। एतदाभाः एषां सदृश्यः। तथा श्रीवृक्षः प्रसिद्धः। वज्रं हीरकं वज्रमायुधं वा। शङ्खः प्रसिद्धः। स्वस्तिकः संस्थानविशेषः। एवंविधाश्चापि शिवसुभिक्षाः। तथा च काश्यपः—

नरेभतुरगाश्वाश्मवृक्षेषु च पतेत् सदा।
ज्वलन्ती चक्रवद् दृश्या त्वशनी रावसंयुता।।
विद्युत्त्रासकरी भीमा शब्दयन्ती तटत्तटा।
बृहच्छीर्षाऽतिसूक्ष्मा च जीवेषु च पतेत्सदा।।
धनूंषि दश या दृश्या सा च धिष्ण्या प्रकीर्तिता।
ज्वलिताङ्गारसदृशी द्वौ हस्तौ सा प्रमाणतः।।
पद्मताम्राकृतिश्चैव हस्तमात्रायता गता।
तिर्यगूर्ध्वमधो याति सोह्यमानेव तारका।।
उल्का मूर्धनि विस्तीर्णा पतन्ती वर्धते तु सा।
तनुपुच्छा नृमात्रा तु बहुभेदसमावृता।।
आयुधप्रेतसदृशी जम्बुकोष्ट्रखराकृतिः।
धूम्रवर्णा तु पापाख्या विशीर्णा या तु मध्यमा।।
ध्वजपद्मेभहंसाभा पर्वताश्वसमप्रभा।
श्रीवृक्षशङ्खसदृशी या चोल्का सा शिवप्रदा।। इति।।१०।।

अन्यदपि लक्षणमाह—

अम्बरमध्याद् बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय।
बम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥११॥

आकाश मध्य में बहुत तरह की होकर गिरती हुई उल्का राजा और राष्ट्र के नाश के लिये होती है तथा जो उल्का आकाश में बार-बार भ्रमण करती है, वह लोगों की विपत्ति को व्यक्त करती है।।११।।

अम्बरमध्यान्नभोऽन्तः। बह्व्यः प्रभूता अपि निपतन्त्यः सम्पतमाना राज्ञो नृपस्य राष्ट्रस्य जनपदस्य च नाशाय भवन्ति। तथा च गगनोपरि आकाशे योल्का बम्भ्रमती अत्यर्थं भ्रमति सा लोकस्य जनपदस्य विभ्रमं सम्भ्रममाकुलतामाख्याति कथयति।।११।।

अन्यदप्याह—

संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च।
परचक्रागमनृपभयदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥१२॥

जो उल्का सूर्य या चन्द्र को स्पर्श करती है अथवा सूर्य या चन्द्र से निकल कर भूकम्प करती हुई गिरती है, वह दूसरे राजा का आगमन, राजभय, दुर्भिक्ष और अवृष्टि करती है।

योल्का चन्द्रार्कौ शशिसूर्यौ संस्पृशती। तौ संस्पृशति। तद्विसृता वा ताभ्यां चन्द्रार्काभ्यां विसृता निर्गता। सभूप्रकम्पा च भूकम्पसहिता। तस्याः पतमानाया भूकम्पमुत्पद्यते। सा तथाभूता परचक्रागमं परचक्रस्यागमनम्। नृपभयं राजभयम्। दुर्भिक्षभयम्। अवृष्टिभयं च जनयत्युत्पादयति।।१२।।

अन्यदप्याह—

पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः।
उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरविनिःसृता यातुः ॥१३॥

यदि उल्का सूर्य और चन्द्रमा के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो क्रम से पुर में रहने वाले और बाहर रहने वाले का नाश करती है। जैसे—सूर्य के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो पुरवासियों का और चन्द्र के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो बाहर रहने वालों का नाश करती है। जो उल्का सूर्यकिरण से निकल कर गमन करने वालों के आगे गिरती है, वह शुभ फल देने वाली होती है।।१३।।

दिवाकरहिमांश्वोरर्कचन्द्रयोः। उल्कापसव्यकरणम्। तयोरेवापसव्येन प्रदक्षिणेन गमनं करोति। तत्पौरेतरघ्नम्, दिवाकरस्यापसव्यकरणं पौरघ्नं पौरान्नागरान् हन्ति। हिमांशोरुल्कापसव्यकरणमितरघ्नम्, इतरे यायिनस्तान् हन्ति। या च दिवाकरविनिःसृता दिवाकरात् सूर्यान्निर्गता सा यातुर्जिगमिषोः पुरतोऽग्रतः पतिता शुभदा शुभं ददाति।।१३।।

अन्यदप्याह—

शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी।
क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोर:पार्श्वपुच्छस्था: ॥१४॥

सफेद, लाल, पीली और काली उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करने वाली होती है। जैसे—सफेद उल्का ब्राह्मणों का, लाल क्षत्रियों का, पीली वैश्यों का और काली शूद्रों का नाश करती है तथा जो शिर से ठहरती है वह ब्राह्मणों का, जो बगल से ठहरती है वह वैश्यों का एवं जो पूँछ से ठहरती है, वह शूद्रों का नाश करती है।।१४।।

शुक्लाद्या उल्का। क्रमश: परिपाट्या द्विजादिवर्णघ्नी द्विजाद्यान् ब्राह्मणाद्यान् वर्णांश्चतुरो हन्ति घातयति। तद्यथा—शुक्ला ब्राह्मणान् हन्ति। रक्ता क्षत्रियान्। पीता वैश्यान्। कृष्णा शूद्रान् इति। तथा मूर्धोर:पार्श्वपुच्छस्था उल्का एतानेव हन्यु:। मूर्ध्ना तिष्ठतीति मूर्धस्था। शिरसा या पतति सा ब्राह्मणान् हन्ति। एवमुरसा तिष्ठतीति उर:स्था वक्षस्था या पतति सा क्षत्रियान्। पार्श्वाभ्यां तिष्ठतीति पार्श्वस्था सा वैश्यान्। पुच्छेन तिष्ठतीति पुच्छस्था सा शूद्रान् हन्ति।।१४।।

अन्यदप्याह—

उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा।
ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ॥१५॥

उत्तर आदि दिशाओं में पतित उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों को अशुभ फल देती है। जैसे— उत्तर दिशा में गिरे तो ब्राह्मणों को, पूर्व में गिरे तो क्षत्रियों को, दक्षिण में गिरे तो वैश्यों को और पश्चिम में गिरे तो शूद्रों को अशुभ फल देती है। यदि वह उल्का सीधी, चिकनी, अखण्ड और आकाश के नीचे भाग में जाने वाली हो तो ब्राह्मण आदि वर्णों की वृद्धि करती है।।१५।।

उत्तरदिगादिपतिता रूक्षा विप्रादीनां ब्राह्मणादीनां वर्णानामनिष्टदा अशुभदा। उत्तरस्यां पतति सा ब्राह्मणानाम्। पूर्वस्यां क्षत्रियाणाम्। दक्षिणस्यां वैश्यानाम्। पश्चिमायां शूद्राणामिति। तथा ऋज्वी या स्पष्टा स्निग्धा निर्मला अखण्डाऽशकला नीचोपगता नभसोऽधोगामिनी। सा तद्वृद्ध्यै, तेषामेव ब्राह्मणादीनामुत्तरदिगादिपतिता वृद्ध्यै वृद्धये भवति।।१५।।

अन्यदप्याह—

श्यावारुणनीलासृग्दहनासितभस्मसन्निभा रूक्षा।
सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥१६॥

श्याव (वानर के समान = 'श्यावः स्यात् कपिश' इत्यमरः), रक्त, नील, रुधिर के समान, अग्नि के समान काली, भस्म की तरह, रूक्ष, सन्ध्याकाल में उत्पन्न, दिन में उत्पन्न वक्र या खण्डित उल्का पुरवासियों को शत्रु के आगमन से भय कराती है।

श्यावा श्याववर्णा। अरुणा रक्ता। नीला नीलवर्णा। असृग्रुधिरं तद्वर्णा। दहनसन्निभा अग्निवर्णा। असितसन्निभा कृष्णा। भस्मसन्निभा भस्मवर्णा। रूक्षा अनिर्मला। सन्ध्यादिनजा सन्ध्याया दिने च जाता। वक्रा कुटिला। दलिता खण्डिता। एवंविधा परागमभयाय भवति। पराणां शत्रूणामागमाद्यद् भयं तत् करोति।।१६।।

अन्यदप्याह—

नक्षत्रग्रहघातैस्तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा।
उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ।।१७।।

यदि उल्का नक्षत्र या ग्रह का उपघात करे तो नक्षत्र व्यूह में उक्त उस नक्षत्र या ग्रह के भक्तियों का नाश करती है। यदि सूर्य या चन्द्र को उदय या अस्त समय में हनन करे तो क्रम से पुरवासियों और बाहर रहने वालों का नाश करती है। जैसे—सूर्य हत हो तो पुरवासियों का और चन्द्र हत हो तो बाहर रहने वालों का नाश करती है।।१७।।

नक्षत्रोपघातैर्ग्रहोपघातैश्च तद्भक्तीनां नक्षत्राणां नक्षत्रव्यूहे ग्रहाणां च या भक्तय उक्तास्तासां क्षयाय विनाशाय निर्दिष्टा कथिता उक्ता। तथा च काश्यपः—

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्काध्वस्तधूमिताः।
तद्देशनाथनाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च।।

तथा च समाससंहितायाम्—

उदगादिषु विप्रादीन् सितलोहितकृष्णवर्णांश्च।
घ्नन्ति ग्रहर्क्षघातैस्तद्भक्तीनां च नाशाय।।

रवीन्दू सूर्याचन्द्रमसौ उदये उदयसमये अस्ते अस्तसमये वा घ्नती पौरेतराणां मृत्यवे भवति। पौरा नागराः। इतरे यायिनः। आदित्ये हते पौराणां चन्द्रे च यायिनामिति।।१७।।

अथ नक्षत्रोपतापेन फलमाह—

भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम्।
विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ।।१८।।

ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम्।
क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ।।१९।।

पूर्वफल्गुनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा या मूल नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो युवती स्त्रियों को पीड़ा होती है। पुष्य, स्वाती या श्रवण नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों को पीड़ा होती है।

उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा या रेवती नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो राजाओं को पीड़ा होती है। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा, भरणी, मघा, आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र की योगतारा

यदि उल्का से हत हो तो चोरों को पीड़ा होती है तथा अश्विनी, हस्त, अभिजित्, कृत्तिका या विशाखा नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो कलाओं को जानने वालों को पीड़ा होती है।।१८-१९।।

भाग्यं पूर्वफल्गुनी। आदित्यं पुनर्वसुः। धनिष्ठा। मूलम्। एतेषु नक्षत्रेषूल्काहतेषूल्कया ताडितेषु। एतेषां योगतारा यद्युल्काहता भवति तदा युवतीनां स्त्रीणां पीडा भवति। तथा पुष्यः। अनिलः स्वातिः। विष्णुदेवः श्रवणम्। एतेषूल्काहतेषु विप्राणां क्षत्रियाणां च पीडा भवति।

रोहिण्युत्तराक्ष्यं ध्रुवाणि। मृगशिरश्चित्रानुराधा रेवतीति सौम्यानि मृदूनीत्यर्थः। एतेषूल्काहतेषु नृपाणां राज्ञां पीडा भवति। पूर्वात्रयं भरणी मघा च उग्राणि। आर्द्राश्लेषा-ज्येष्ठामूलानि दारुणानि। एतेषूल्काहतेषु चौराणां तस्कराणां पीडा भवति। अश्विनी तिष्यं हस्तोऽभिजिदिति क्षिप्राणि कृत्तिका विशाखा साधारणं तेषूल्काहतेषु कलाविदुषां कला-विषये गीतनृत्यचित्रवाद्ये ये पण्डितास्तेषां पीडा भवति।।१८-१९।।

अन्यदप्याह—

कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम्।
शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम्।।२०।।

आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम्।
चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का।।२१।।

द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः।
ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद् गोमिनो गोष्ठे।।२२।।

उल्का यदि देवता की मूर्ति पर गिरे तो राजा और राष्ट्र को भय, इन्द्र के ऊपर गिरे तो राजाओं को भय और घर पर गिरे तो गृहपति को पीड़ित करता है। दिक्पति ग्रह यदि उल्का से हत हों तो उस दिशा में रहने वाले मनुष्यों को, खलिहान में गिरे तो किसानों को और छोटे मन्दिर के पास स्थित वृक्ष पर उल्का गिरे तो पूज्य व्यक्तियों को पीड़ित करता है। पुरद्वार पर यदि उल्का गिरे तो पुर का, द्वार के किवाड़ पर गिरे तो पुरवासियों का, ब्रह्मा के मन्दिर पर गिरे तो ब्राह्मणों का और गोष्ठ (गायों के स्थान = गोठ) पर गिरे तो गायों का पालन करने वालों का नाश करती है।।२०-२२।।

कुर्वन्त्येता इति। एता उल्का देवप्रतिमासु सुरार्चासु पतिता राजभयं नृपभयं राष्ट्रभयं जनपदभयं च कुर्वन्ति। शक्र इन्द्रस्तस्योपरि पतिता नृपतीनां राज्ञां भयं कुर्वन्ति। गृहेषु वेश्मसु पतितास्तत्स्वामिनां गृहपतीनां पीडां कुर्वन्ति।

आशा दिशः। ग्रहाः सूर्यादयः। आशाग्रहा दिक्पतयो ग्रहाः। ते च—'प्रागाद्या रविशुक्ललोहिततमः सौरेन्दुवित्सूरयः' इत्युक्तास्तेषामुपघाते उल्कापीडने तद्देश्यानां तद्दिग्नि-

वासिनां तस्यां दिशि ये जना निवसन्ति तेषां पीडां कुर्वन्ति। अथवा आशा दिशस्तासां यान्ति तद्देश्यानां ग्रहदेशनिवासिनाम्। खले कृषिरतानाम्। खलमुलूखा यत्र धान्यं स्थाप्यते तदुपघाते कृषिरतानां कृषिजीविनां पीडा भवति। चैत्यतरुः प्रधानवृक्षः। तत्र पतितोल्का सत्कृतानां पूजितानां पीडां करोति।

पुरस्य द्वारि पतिता पुरक्षयं पुरविनाशं करोति। अथेन्द्रकीले द्वारार्गले पतिता तदा जनानां क्षयोऽभिहित उक्तः। जननाशो भवति। ब्रह्मायतने पितामहो यत्र देवस्तत्र पतिता विप्रान् ब्राह्मणान् विनिहन्याद् घातयेत्। गोष्ठे गोस्थाने यत्र गावो निवसन्ति तत्र पतिता गोमिनो गावो येषां सन्ति तान् विनिहन्यान्नाशयेदिति।।२०-२२।।

अथान्यद्विशेषमाह—

क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदा।
उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥२३॥

यदि उल्कापात के समय में क्ष्वेडा (वीरों का गर्जन = 'क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्या'दित्यमरः), आस्फोटित (छाती पर एक भुजा रखकर दूसरे हाथ से ताडन का शब्द), वाद्य और गान का उद्घोषित शब्द हो तो राजा और राष्ट्र दोनों को भय के लिये होता है।।२३।।

क्ष्वेडा क्ष्वेडितम्। आस्फोटितं करास्फोटः। वक्षःस्थस्य बाहोर्द्वितीयेन हस्तेन ताडनं करास्फोटः। वादितं वाद्यशब्दः। गीतं प्रसिद्धम्। एषामुत्क्रुष्टा उद्घोषिताः स्वनाः शब्दा यदा भवन्ति, कदा? उल्कानिपातसमये, उल्कानिपातकाले, तदा राष्ट्रस्य सनृपस्य नृपतिसहितस्य भयाय भवन्ति।।२३।।

अन्यदप्याह—

यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय।
या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥२४॥

जिस उल्का की आसक्ति आकाश में अधिक देर तक रहे, जो दण्डाकार दिखाई दे, जो आकाश में डोरी से बँधी हुई की तरह स्थिर रहे, जो इन्द्रधनुष की तरह दिखाई दे वह सब राजभय के लिये होती है।।२४।।

यस्या उल्कायाः खे नभसि। चिरं चिरकालम्। अनुषङ्ग आसक्तिस्तिष्ठति। तथा दण्डाकृतिर्दण्डाकारा च या दृश्यते सा नृपते राज्ञो भयाय भवति। या चोल्का खस्था आकाशस्थिता तन्तुधृतेव, तन्तुना ध्रियमाणेनेवोह्यते धार्यते सापि नृपतेर्भयाय भवति। या च महेन्द्रध्वजस्येन्द्रचिह्नस्य तुल्यरूपा तदाकारा सापि नृपतेर्भयाय भवति।।२४।।

अन्यदप्याह—

श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनानाम्।
हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥२५॥

बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा।
सर्पवत् प्रसर्पती योषितामनिष्टदा॥२६॥

हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम्।
वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी॥२७॥

व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी।
खण्डशोऽथवा गता सस्वना च पापदा॥२८॥

विपरीत (जहाँ से आयी हो वहाँ ही लौट) जाने वाली उल्का सेठों का, तिरछी चलने वाली रानियों का, नीचे मुख वाली राजाओं का और ऊपर जाने वाली उल्का ब्राह्मणों का नाश करती है। जो उल्का मोरपूँछ की तरह हो, वह लोगों का नाश करती है और जो सर्प की तरह चलती है, वह स्त्रियों को अशुभ फल देने वाली होती है। मण्डलाकृति वाली उल्का नगर का और छत्राकृति वाली पुरोहित का नाश करती है तथा वंशगुल्माकारा (बाँस की बीड़ के समान वाली) उल्का राष्ट्रभय करती है। सर्प या सूअर की तरह चिनग़ारियों की माला पहनी हुई (चिनगारियों से व्याप्त शरीर वाली), खण्ड-खण्ड और शब्दसहित उल्का पाप फल देने वाली होती है।।२५-२८।।

या प्रतीपगा यत आगता तत्रैव गता सा श्रेष्ठिनो हन्ति। तिर्यगा तिर्यक्कृत्वा या गता सा नृपाङ्गनां नृपस्त्रियं हन्ति। अधोमुखी अवाग्वदना नृपान् राज्ञो हन्ति। अथानन्तर-मूर्ध्वगा ऊर्ध्वगामिनी ब्राह्मणान् द्विजान् हन्ति।

या चोल्का बर्हिपुच्छरूपिणी मयूरपुच्छाकारा सा लोकसंक्षयावहा, लोकानां जनानां संक्षयं विनाशमावहति करोति। या च सर्पवत् प्रसर्पती उरगवद् गच्छन्ती सा योषितां स्त्रीणामनिष्टदा अशुभप्रदा।

या च पतिता मण्डलाकारा भवति सा पुरं नगरं हन्ति नाशयति। या च छत्रवच्छत्राकारा दृश्यते सा पुरोहितमाचार्यं हन्ति। या च वंशगुल्मवत् स्थिता वंशगुल्माकारा सा राष्ट्रस्य दोषकारिणी भवति।

व्याल: सर्प:। सूकरो वराह:। तदुपमा तत्सदृशी। तथा विस्फुलिङ्गानामग्निकणानां माला विद्यते यस्या:। अग्निकणैर्व्याप्तेत्यर्थ:। अथवा खण्डशो गता बहुविधं विशीर्णा सस्वना सशब्दा या च सा पापदा अशुभफलदा भवति।।२५-२८।।

अन्यदप्याह—

सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति।
पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा॥२९॥

इन्द्रधनुष की तरह तथा आकाश में उत्पन्न होकर शीघ्र विलीन होने वाली उल्का मेघों का नाश करती है तथा वायु के प्रतिकूल टेढ़ी होकर चलने वाली और उत्पन्न होकर नीचे की तरफ नहीं चलने वाली शुभ नहीं होती है।।२९।।

या चोल्का सुरपतिचापप्रतिमा इन्द्रधनुःसदृशी सा राज्यं निहन्ति नाशयति। या च नभस्याकाशे विलीना उत्पन्ना सती तत्रैवादर्शनं गता सा जलदान् मेघान् हन्ति। या च पवनविलोमा सम्मुखवाता कुटिलं याता वक्रं कृत्वा गता सा शस्ता न भवति। विनिवृत्ता वा उत्पन्ना सत्यधो न गता सा न शस्तेति न प्रशस्ता भवति।।२९।।

अत्रापि विशेषमाह—

अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य।
निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥३०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुल्का-
लक्षणाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥

जिस ओर से आकर उल्का पुर या सेना के ऊपर गिरती है, उसी दिशा से राजा को भय होता है और जिस दिशा को प्रकाशित करती हुई गिरती है, उस दिशा में गमन करने वाला राजा शीघ्र ही शत्रुओं का नाश करता है।।३०।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामुल्कालक्षणाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥

यतो यस्यां दिशि पुरं बलं वा अभिभवति तत एव तस्यामेव दिशि पार्थिवस्य राज्ञो भयं भीतिर्भवति। यया च दिशा प्रदीप्ता समुज्ज्वलिता निपतति तया प्रयातो गतो राजा अचिराच्छीघ्रमेव रिपूनरीन् जयति। तथा च काश्यपः—

पार्थिवे प्रस्थिते दीप्ता पतत्युल्का महास्वना।
तां दिशं सिद्ध्यते सिद्धिं विजयं लभते चिरात्।।

अत्र च तात्कालिकलग्नग्रहसंयोगाच्छकुनिरुतश्रवणाच्च फलमूह्यम्। तथा च समाससंहितायाम्—

क्रूरग्रहर्क्षलग्नक्षणतिथिकरणप्रभाञ्जनैर्दीप्तैः।
दीप्ताण्डजमृगविरुतैर्निर्घातक्षितिविमर्दैश्च ।। इति।।३०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावुल्का-
लक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथ परिवेषलक्षणाध्यायः

अथ परिवेषलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव स्वरूपप्रदर्शनार्थमाह—

सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥१॥

वायु के द्वारा मण्डलीभूत सूर्य और चन्द्र के किरणस्वरूप, मेघ वाले आकाश में प्रतिविम्बित होकर ज़ो अनेक वर्ण के दिखाई देते हैं, उसी का नाम परिवेष है।।१।।

रवीन्द्वोरर्कचन्द्रयोः किरणा रश्मयः पवनेन वायुना मण्डलीभूता वृत्ताकाराः कृतास्ते च तन्वभ्रे स्वल्पमेघे व्योम्नि आकाशे सम्मूर्च्छिताः प्रतिफलिता नानावर्णाकृतयो दृश्यन्ते। नानाप्रकारो विचित्रो वर्ण आकृतिः संस्थानं येषां ते परिवेषा इत्युच्यन्ते।।१।।

अथ तेषा संज्ञान्तराण्याह—

ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभ्राभशबलहरितशुक्लाः ।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाम्बुकृताः ॥२॥

वे परिवेष इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, शिव, ब्रह्मा और अग्निकृत क्रम से रक्त, नील, थोड़ा-सा श्वेत, कबूतर के रङ्ग, मेघ वर्ण, शबल (कृष्ण-श्वेत), हरे और श्वेत वर्ण के होते हैं। जैसे—इन्द्रकृत रक्त, यमकृत नील, वरुणकृत थोड़ा श्वेत, निर्ऋतिकृत कबूतर के रङ्ग, वायुकृत मेघ वर्ण, शिवकृत शबल, ब्रह्माकृत हरा और अग्निकृत श्वेत वर्ण का होता है।।२।।

ते परिवेषा रक्तादिवर्णा यथासंख्यमिन्द्रादिकृता भवन्ति। तद्यथा—रक्तवर्णः परिवेष इन्द्रकृतः। नीलवर्णो यमकृतः। पाण्डुर ईषच्छुक्लो वरुणकृतः। कापोतः कपोतवर्णो निर्ऋतिकृतः। अभ्राभो मेघाभः कृष्णवर्णः श्वसनकृतो वायुनोत्पादित इत्यर्थः। शबलः कृष्णश्वेतशारवर्ण ईशकृतः शम्भुकृतः। हरितो नीलपीतः पितामहकृतो ब्रह्मकृतः। शुक्लः श्वेतवर्णोऽम्बुकृतः सोऽपि वरुणकृत एव।।२।।

अन्यदप्याह—

धनदः करोति मेचकमन्योन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये ।
प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ॥३॥

कुबेर मेचक (मयूरकण्ठसदृश नील) वर्ण का परिवेष करता है। अन्य (इन्द्र आदि) मिले हुए रङ्ग के परिवेष करते हैं। जो परिवेष बार-बार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, वह वायुकृत थोड़ा फल देने वाला होता है।।३।।

धनदो वैश्रवणो मेचकं मयूरकण्ठसदृशवर्णं परिवेषं करोति। अन्य इन्द्रादयोऽन्योन्य-गुणाश्रयेण रक्ताद्या ये गुणा उक्तास्तेषां गुणानामन्योन्यं परस्परं समाश्रयेण कुर्वन्ति। अतोऽपि बहुवर्णता दृश्यते। यः पुनर्मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं प्रविलीयते नश्यति सोऽपि परिवेषो वायुकृतोऽनिलोत्पादितोऽल्पफलदश्च भवति। तथा च काश्यपः—

सितपीतेन्द्रनीलाभा रक्ताकापोतबभ्रवः।
शबला बर्हिवर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः।।
ऐन्द्रयाम्याप्यनैर्ऋत्यवारुणाः सौम्यवह्निजाः।
दृश्यादृश्येन भावेन वायव्यः सोऽपि कष्टदः।। इति।।३।।

अथ वस्तुवशेन शुभफलमाह—

चाषशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः।
अविकलवृत्तः स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ।।४।।

नीलकण्ठ, मयूर, चाँदी, तेल, दूध और जल के समान कान्ति वाला परिवेष यदि क्रम से स्वकाल (शिशिर आदि ऋतुओं) में उत्पन्न; जैसे—शिशिर ऋतु में नीलकण्ठ की तरह कान्ति वाला, वसन्त में मयूर की तरह कान्ति वाला, ग्रीष्म में चाँदी की तरह कान्ति वाला, वर्षा ऋतु में तेल की तरह कान्ति वाला, शरद् ऋतु में दूध की तरह कान्ति वाला और हेमन्त ऋतु में जल के समान कान्ति वाला होकर अखण्ड मण्डलाकार और निर्मल हो तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करता है।।४।।

चाषः पक्षी। शिखी मयूरः। रजतं रूप्यम्। तैलं तिलतैलम्। क्षीरं गोक्षीरम्। जलं पानीयम्। एषां सदृशी आभा कान्तिर्यस्य सः। स्वकालसम्भूतः, स्वकाले शिशिरादि ऋतुषट्सु सम्भूत उत्पन्नः। क्रमेण तुल्यवर्णः। एतदुक्तं भवति—चाषवर्णो नीलाभः शिशिरर्तौ शोभनः परिवेषः। मयूरवर्णो विचित्रो वसन्ते। रूप्यवर्णः शुक्लो ग्रीष्मे। तैलवर्णो वर्षासु। क्षीरवर्णः शरदि। जलाभो हेमन्त इति। एवं स्वकालसम्भूतः। तथा अविकलवृत्तोऽखण्डः परिवर्तुलः। स्निग्धो निर्मलः। एवंविधः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः। शिवं श्रेयः सुभिक्षं च करोति। तथा च काश्यपः—

शिशिरे चाषवर्णश्च वसन्ते शिखिसन्निभः।
ग्रीष्मे रजतसङ्काशः प्रावृट्तैलसमप्रभः।।
गोक्षीरसदृशः शस्तः परिवेषः शरत्स्मृतः।
हेमन्ते जलसङ्काशः स्वकाले शुभदः स्मृतः।। इति।।४।।

अन्यदप्याह—

सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतजसन्निभो रूक्षः।
असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ।।५।।

सम्पूर्ण आकाश में गमन करने वाला (उदय से अस्त तक स्थिर रहने वाला),

अनेक वर्ण वाला, रक्त वर्ण वाला, रूक्ष, अखण्डित तथा गाड़ी, धनुष या त्रिभुज की तरह आकृति वाला परिवेष अशुभ फल देने वाला होता है।।५।।

सकलं समग्रं गगनमाकाशमनुचरति गच्छति सकलगगनानुचारी। उदयात्प्रभृत्यस्तं यावत्तिष्ठतीत्यर्थः। नैकाभो विविधकान्तिः। क्षतजसन्निभो रक्तवर्णः। रूक्षो निःस्नेहः। असकलः खण्डः। शकटं प्रसिद्धम्। शरासनं चापम्। शृङ्गाटकं त्र्यस्रम्। तद्वत्स्थित-स्तदाकारः। पापोऽनिष्टफलदः।।५।।

अन्यदप्याह—

शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे।
हरिचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि।।६।।

मयूरकण्ठ की तरह नील वर्ण का परिवेष अतिवृष्टि, अनेक वर्ण का परिवेष राजा का नाश, धूम्र वर्ण का परिवेष भय, इन्द्रधनुष की तरह और अशोकपुष्प की तरह अति लोहित कान्ति वाला परिवेष युद्ध करता है।।६।।

शिखिगलसमे मयूरकण्ठतुल्ये परिवेषे सत्यतिवर्षं प्रभूता वृष्टिर्भवति। बहुवर्णे नानारूपे नृपस्य राज्ञो वधः। धूम्रवर्णे कृष्णश्यावे भयं भीतिर्भवति। हरिचापनिभे इन्द्र-धनुःसदृशे युद्धानि भवन्ति। अशोककुसुमप्रभेऽशोकपुष्पसदृशकान्तौ अतिलोहिते। चशब्दा-द्युद्धान्येव भवन्ति।।६।।

अन्यदप्याह—

वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः।
स्वर्त्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः।।७।।

एक वर्ण वाला, अधिक निर्मल और उस्तरे के समान मेघों से व्याप्त परिवेष अपने ऋतु में दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि करता है। यदि पीले वर्ण का परिवेष हो और उस समय सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तो भी वृष्टि शीघ्र करता है।।७।।

एकेन वर्णेन यदा युक्तो बहुलो घनः। स्निग्धः सस्नेहः। क्षुराभ्रकाकीर्णः क्षुराकारैरभ्रैकैरा-कीर्णो व्याप्तस्तथाभूतः स्वर्तावात्मीयर्तौ दृष्टस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं करोति। एतदुक्तं भवति— चाषादिसदृशवर्णः शिशिरादिष्वृतुषु सम्भूत एकवर्णः क्षुराभ्रकाकीर्णः सद्यो वर्षं करोति। पीतः पीतवर्णो दीप्तस्तीक्ष्णश्चार्कः सूर्यो यस्मिन् सोऽपि चशब्दात् सद्यो वर्षं करोति।

अन्यदप्याह—

दीप्तमृगविहङ्गरुतः कलुषः सन्ध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान्।
भयकृत् तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण।।८।।

यदि सूर्य की तरफ मुख किये हुये मृग और पक्षीगण के शब्दयुत, रूक्ष, तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न और सायं) में उत्पन्न और अतिविस्तृत परिवेष दिखाई दे तो भय करने वाला होता है।।८।।

दीप्तैः सूर्याभिमुखैर्मृगैरारण्यैर्विहङ्गैश्च पक्षिभी रुतः कृतः शब्दः। कलुषोऽनिर्मलः। सन्ध्यात्रयोत्थितो दिनस्य प्राङ्मध्यान्तसन्ध्यासूत्पन्नः। उदयमध्याह्नास्तमयेषु दृश्यत इत्यर्थः। अतिमहानतिविस्तीर्णस्तथाभूतो भयकृद्भयं करोति। तथा च गर्गः—

उदयास्तमयोर्मध्ये सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोः।
परिवेषः प्रदृश्येत तद्राष्ट्रमवसीदति।।

तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण। तडिद् विद्युत्। उल्का प्रसिद्धा। आद्यग्रहणाद्दिव्यान्तरिक्षभौमा उत्पाताः। एतैस्तडिदुल्काद्युत्पातैर्हतो नृपं राजानं शस्त्रेण हन्ति घातयति।

अन्यदप्याह—

प्रतिदिनमर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः।
परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तमयस्थयोस्तद्वत्।।९।।

यदि प्रत्येक दिन सूर्य का और रात्रि में चन्द्र का रक्त वर्ण का परिवेष दिखाई दे तो राजा का नाश करता है तथा सदा उदय या अस्त काल में सूर्य या चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो भी राजा का नाश करता है।।९।।

अर्क आदित्यः। हिमांशुश्चन्द्रः। तयोरर्कहिमांश्वोः प्रतिदिनमहर्निशमहोरात्रं रक्तयोर्लोहितवर्णयोः सूर्यो लोहितवर्णोऽहनि चन्द्रो निशि यदि दृश्यते तदा नरेन्द्रवधो राज्ञो मरणं भवति। परिविष्टयोरभीक्ष्णं तथा लग्नास्तमयस्थयोः। लग्नग्रहणेनोदयकाल उच्यते। अर्कचन्द्रयोरुदयास्तमयस्थयोरभीक्ष्णं पुनः पुनः परिविष्टयोस्तद्वत्तेन प्रकारेण नरेन्द्रवध इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

दिवा सूर्ये परीवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत्।
एकस्मिंश्चेदहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिवः।।
एतेन विधिना नित्यं सप्ताहं परिविष्यते।
सर्वभूतविनाशः स्यात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने।।

अत्र केचिल्लग्नास्तनभःस्थयोरिति पठन्ति। नभःशब्देन मध्याह्नकाल उच्यते। उदयमध्याह्नास्तमयेषु यदि दृश्यते तदा नरेन्द्रवधः। तथा च समाससंहितायाम्—

शृङ्गाटकचापविकारसन्निभः परुषमूर्तिरतिबहुलः।
सकलगगनानुचारी बहुवर्णश्चावलम्बी च।।
द्वित्रिगुणः खण्डो वा सन्ध्यात्रयमुत्थितो ग्रहच्छादी।
परिवेषः पापफलो ग्रहरोधी हन्ति तद्भक्तीः।।
स्निग्धो मधुघृतशिखिचाषपत्रनीलोत्पलाब्जरजतनिभः।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत् परिवेषोऽर्कस्य शशिनो वा।। इति।।९।।

अन्यदप्याह—

सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकरः।
त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम्।।१०।।

दो मण्डल वाला परिवेष सेनापति को भय करने वाला होता है; किन्तु अधिक शस्त्रभय करने वाला नहीं होता। तीन आदि (तीन, चार, पाँच) मण्डल वाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराज को भय और शत्रुओं से नगर का अवरोध कराता है।।१०।।

द्वे मण्डले यस्यासौ द्विमण्डलः परिवेषः सेनापतेश्चमूनाथस्य भयं भीतिं करोति। नातिशस्त्रकोपकरः, अतिशस्त्रकोपं च न करोति; ईषत्करोतीत्यर्थः। त्रिप्रभृति शस्त्रकोप-मिति, त्रिप्रभृतीनि मण्डलानि त्रीणि चत्वारि पञ्चधा शस्त्रकोपम्। युवराजोऽर्धभोगी राजा। युवराजस्य च भयम्। नगरस्य पुरस्य रोधं वेष्टनं च करोति। तथा च गर्गः—

द्विमण्डलपरीवेषः सेनापतिभयङ्करः।
युद्धे सुदारुणं कुर्याद् दृश्यते मण्डलैस्त्रिभिः।। इति।।१०।।

अन्यद्विशेषमाह—

वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे।
होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वांऽशुभो राज्ञः ।।११।।

यदि भौमादि कोई ग्रह, चन्द्र, कोई नक्षत्र—ये तीनों एक परिवेष में गत हों तो तीन दिन में वृष्टि और एक मास में लड़ाई होती है। जिस राजा का जन्मलग्नेश, जन्मराशीश या जन्मनक्षत्र परिवेश में हो, उस राजा को अशुभ फल होता है।।११।।

ग्रहेन्दुभनिरोधे। ग्रहा भौमादयः। इन्दुश्चन्द्रः। भानि नक्षत्राणि। एषां निरोधे परिवेष्टने। एतदुक्तं भवति—चन्द्रपरिवेषमध्यगते ग्रहनक्षत्रे यदा भवतस्तदा त्र्यहेण दिनत्रयेण वृष्टि-र्भवति। मासेन त्रिंशदहोरात्रेण वा विग्रहः कलहो भवति। तथा च गर्गः—

त्रीणि यत्रावरुध्येरन्नक्षत्रं चन्द्रमा ग्रहः।
त्र्यहेण वर्षतीन्द्रश्च मासाद्वा जायते भयम् ।।

होराजन्माधिपयोरिति। राज्ञो नृपस्य होराजन्माधिपयोः, होराधिपो जन्मलग्नपः, जन्माधिपो राश्यधिपः, तयोस्तथा जन्मर्क्षे च जन्मनक्षत्रे निरुद्धे सति राज्ञो नृपस्याशुभः।

ग्रहाणां परिवेषगतानां फलमाह—

परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः।
जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ।।१२।।

भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम्।
जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ।।१३।।

मन्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च।
शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञीपीडा प्रियं चान्नम् ।।१४।।

क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ।
परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृपभयं च ।।१५।।

यदि परिवेष मण्डल में शनि पड़ा हो तो छोटे धान्यों (कौनी आदि) का नाश, वायुयुत वृष्टि, स्थावर (वृक्ष आदि) की हानि और किसानों का नाश करता है। मंगल पड़ा हो तो कुमार, सेनापति और सेनाओं को व्याकुल, अग्निभय और शस्त्रभय करता है। बृहस्पति पड़ा हो तो पुरोहित, मन्त्री और राजाओं को पीड़ा होती है। बुध पड़ा हो तो मन्त्री, स्थावर (वृक्ष आदि) और लेखक की वृद्धि तथा सुन्दर वृष्टि होती है। शुक्र पड़ा हो तो गमन करने वाले क्षत्रियों तथा रानियों को पीड़ा और दुर्भिक्ष होता है। केतु पड़ा हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि, मरण राजा और शस्त्र का भय होता है तथा परिवेष मण्डल में यदि राहु पड़ा हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है।।१२-१५।।

रवितनयः सौरः परिवेषमण्डलमध्यगतः क्षुद्रधान्यानां प्रियङ्ग्वादीनां नाशकरः। तथा वातवृष्टिं वातसंयुक्तां वृष्टिं जनयत्युत्पादयति। स्थावराणां वृक्षादीनां कृषिकराणां च निहन्ता नाशकरो भवति।

भौम इति। भौमे परिवेषमध्यगते कुमाराणां तथा बलपतीनां चमूनाथानां सैन्यानां च विद्रव आकुलता, अग्निभयं शस्त्रभयं च भवति। जीवे बृहस्पतौ परिवेषमध्यगते पुरोहित-स्याऽऽचार्यस्यामात्यानां मन्त्रिणां नृपाणां राज्ञां च पीडा भवति।

चन्द्रजे बुधे परिविष्टे मन्त्रिणां सचिवानां स्थावराणां वृक्षादीनां लेखकानां लिपिकराणां च परिवृद्धिर्भवति। सुवृष्टिः शोभना वृष्टिश्च भवति। शुक्रे परिवेषमण्डलगते यायिनां जिगमि-षूणां क्षत्रियाणां क्षत्रियजातीनां राज्ञ्या नृपमहिष्याश्च पीडा भवति। प्रियं चान्नम्। दुर्भिक्षं भवतीत्यर्थः।

केतौ परिवेषमध्यगते क्षुद् दुर्भिक्षम्। अनलोऽग्निः। मृत्युर्मरणम्। नराधिपो राजा। शस्त्रमायुधम्। एभ्यो भयं भीतिर्जायते उत्पद्यते। राहौ परिविष्टे परिवेषमध्यगते गर्भाणां भयम्। व्याधिः। नृपभयं नृपस्य राज्ञो भयं च भवति। तथा च समाससंहितायाम्—

बलपपुरोहितनरपतिकृषिकृत्पीडा क्रमेण परिविष्टैः।
कुजगुरुसितार्कपुत्रैः सौम्येन तु मन्त्रिपरिवृद्धिः।।
केतोः शस्त्रोद्योगो राहोः परिवेषणेन रोगभयम्।
युद्धक्षुद्भयनृपतेर्नाशं व्याध्यादिभिः क्रमशः।। इति।।१२-१५।।

अथ द्व्यादिषु ग्रहेषु परिवेषमध्यगतेषु फलमाह—

युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः।
दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम्।।१६।।

याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः।
प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु।।१७।।

यदि सूर्य या चन्द्र के परिवेष में दो ताराग्रह स्थित हों तो युद्ध, तीन हों तो दुर्भिक्ष और

अवृष्टि का भय, चार हों तो मन्त्री और पुरोहित के साथ राजा की मृत्यु और सूर्य या चन्द्र के परिवेष में पाँच आदि ग्रह हों तो संसार का प्रलय ही जानना चाहिये।।१६-१७।।

दिवसकृत आदित्यस्य शशिनश्चन्द्रस्य वा द्वयोस्ताराग्रहयोः परिवेषाभ्यन्तरे स्थितयोर्युद्धानि संग्रामान् विजानीयाद् विन्द्यात्। त्रिषु ग्रहेषु परिवेषमध्यगतेषु क्षुद् दुर्भिक्षभयम्। अवृष्टिभयं च प्रोक्तं कथितम्।

यातीति। चतुर्षु ताराग्रहेषु परिवेषमण्डलमध्यगतेषु नरेन्द्रो राजा सामात्यपुरोहितः, अमात्या मन्त्रिणः, पुरोहित आचार्यस्तैः सहितो मृत्योर्वशं याति। म्रियत इत्यर्थः। पञ्चादिषु पञ्चसु षट्सु वा मण्डलस्थेषु परिवेषमध्यवर्तिषु जगतो विश्वस्य प्रलयं संहारमिव विद्धि जानीहि।।१६-१७।।

अधुना ताराग्रहाणां नक्षत्राणां वा पृथक्परिविष्टानां फलमाह—

ताराग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम्।
नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥१८॥

यदि केतु का उदय न हुआ हो तब ताराग्रह या नक्षत्र अलग-अलग परिवेषयुत हों तो राजा का नाश करते हैं।।१८।।

पृथक्ताराग्रहस्य भौमादेः। नक्षत्राणामश्विन्यादीनां वा परिवेषः समुत्थित उत्पन्नो नरेन्द्रस्य राज्ञो वधं मरणं कुर्यात्। अथवा विकल्पे। यदि केतोरुदयो न भवति तदैवम्। केतूदये तु पुरस्तत्फलमेव न ताराग्रहादिपरिवेषकृतम्। तथा च काश्यपः—

परिवेषाभ्यन्तरगौ द्वौ ग्रहौ यायिनागरौ।
युद्धं च भवति क्षिप्रं घोररूपं सुदारुणम्।।
मण्डलान्तरिताः पञ्च जगतः संक्षयावहाः।
अथ ताराग्रहस्यैव नक्षत्राणामथापि वा।।
परिवेषो यदा दृश्यस्तदा नरपतेर्वधः।
यदि केतूदयो न स्यादन्यथा तद्वदेत् फलम्।। इति।।१८।।

अधुना तिथिक्रमेण परिवेषफलान्याह—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः।
श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥१९॥

युवराजस्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः।
पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्याम् ॥२०॥

नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्।
कुर्यात्तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥२१॥

प्रतिपदा आदि चार तिथियों में यदि परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि चार वर्णों का

नाश होता है। जैसे—प्रतिपदा में परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मणों का, द्वितीया में दिखाई दे तो क्षत्रियों का, तृतीया में दिखाई दे तो वैश्यों का और चतुर्थी में दिखाई दे तो शूद्रों का नाश होता है। यदि पञ्चमी में परिवेष दिखाई दे तो श्रेणी (समान जातियों के संघ) का, षष्ठी में दिखाई दे तो नगर का और सप्तमी में दिखाई दे तो कोश का अशुभ करने वाला होता है। यदि अष्टमी में परिवेष दिखाई दे तो युवराज का तथा नवमी, दशमी और एकादशी में दिखाई दे तो राजा का अशुभ करने वाला होता है। द्वादशी में नगर का अवरोध और त्रयोदशी में सेनाओं में आकुलता होती है। यदि चतुर्दशी में दिखाई दे तो रानी को और पूर्णिमा में राजा को पीड़ा होती है।।१९-२१।।

क्रमशः क्रमेण प्रतिपदादिषु चतुर्षु दिवसेषु परिवेषो दृष्टो विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवति। तद्यथा—प्रतिपदि दृष्टो विप्रान् हन्ति। द्वितीयायां क्षत्रियान् हन्ति। तृतीयायां वैश्यान्। चतुर्थ्यां शूद्रान् इति। श्रेणीपुरकोशानामिति, बहूनां समानजातीयानां सङ्घः श्रेणी। पञ्चम्यां दृष्टः श्रेण्या अशुभकारी। षष्ठ्यां पुरस्य नगरस्य। सप्तम्यां कोशस्य गजस्य।

युवराजस्याष्टम्यामिति। अष्टम्यां दृष्टो युवराजस्य दोषकरः। परतोऽनन्तरं त्रिषु दिनेषु नवमीदशम्येकादशीषु पार्थिवस्य राज्ञो दोषकरो न शुभः। द्वादश्यां पुररोधो नगरवेष्टनम्। त्रयोदश्यां सैन्यक्षोभ आकुलता।

चतुर्दश्यामभ्युत्थित उत्पन्नः परिवेषो नरपते राज्ञः पत्न्याः पीडां करोति। पञ्चदश्यां मनुजाधिपस्य राज्ञः पीडां करोति।।१९-२१।।

अधुना परिवेषरेखावशेन शुभाशुभफलमाह—

नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था।
परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ।।२२।।

रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम्।
स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ।।२३।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां परिवेष-
लक्षणाध्यायश्चतुस्त्रिंशः ।।३४।।

यदि परिवेष के अन्दर रेखा दिखाई दे तो नगरवासियों का, बाहर दिखाई दे तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं का और परिवेष के मध्य में रेखा दिखाई दे तो आक्रन्द ('आक्रन्दो दारुणे रणे' इत्यमरः। भयङ्कर युद्ध) की सार वस्तुओं (सेनाओं) का शुभाशुभ करने वाली होती है। जिसके भाग में लाल, काला या रूक्ष वर्ण का परिवेष हो, उसकी पराजय होती है। जैसे—परिवेष के अन्दर लाल, काला, रूक्ष हो तो नगरवासियों की, बाहर में हो तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं की और परिवेष मध्य में लाल,

काला या रूक्ष दिखाई दे तो सेनाओं की पराजय होती है तथा जिनका भाग निर्मल, श्वेत और कान्तियुक्त हो उनकी विजय होती है।।२२-२३।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां परिवेषलक्षणाध्यायश्चतुस्त्रिंशः ।।३४।।

परिवेषे वर्णत्रयेण रेखात्रयं दृश्यते प्रायेण। तत्र द्वे रेखे बहिर्वर्तिन्यावतिक्रम्य या स्थिता रेखा साऽभ्यन्तरस्थिता सा च नागरकाणां नृपाणां शुभाशुभकारी ज्ञेया। तथा बाह्यस्था रेखा यायिनां जिगमिषूणां राज्ञाम्। परिवेषमध्यगता रेखा आक्रन्दसाराणां शुभाशुभकारी विज्ञेया।

कथमित्याह—**रक्त इति** । येषां नागरकादीनां भागो रक्तोऽतिलोहितवर्णः, श्यामः कृष्णवर्णः, रूक्षोऽनिर्मलश्च तेषां पराजयो भवति। येषां भागः स्निग्धो निर्मलः, श्वेतः शुक्लवर्णः, द्युतिमान् दीप्तिमान्। तेषां जयो भवति।।२२-२३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ परिवेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

अथेन्द्रायुधलक्षणाध्यायः

अथेन्द्रायुधलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्सम्भवप्रदर्शनार्थमाह—

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥१॥

मेघयुत आकाश में वायु से सूर्यकिरण टकरा कर अनेक वर्णयुत धनुषाकार जो दिखाई देता है, लोग उसी को इन्द्रधनुष करते हैं।।१।।

सूर्यस्यादित्यस्य करा रश्मयः। साभ्रे समेघे वियत्याकाशे। पवनेन वायुना विघट्टिता रुद्धास्ते च धनुःसंस्थानाश्चापाकारा विविधवर्णा नानारूपा ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुरिति लोके दृश्यते।।१।।

अत्रैव परमतं शुभाशुभं च फलमाह—

केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः ।
तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥२॥

किसी-किसी (काश्यप आदि) आचार्य का मत है कि नागराज के कुल में उत्पन्न सर्पों के निःश्वास से यह (इन्द्रधनुष) उत्पन्न होता है। यदि इसको सम्मुख करके राजा लोग गमन करें तो उनकी पराजय होती है।।२।।

केचिदाचार्याः काश्यपादयोऽनन्तकुले अनन्तस्य नागराजस्य कुले वंशे ये जाता उरगाः सर्पास्तेषां निःश्वास उच्छ्वसनं तदुद्भूतं तदुत्पन्नमाहुरुक्तवन्तः। तथा च काश्यपः—

अनन्तकुलजाता ये पन्नगाः कामरूपिणः।
तेषां निःश्वाससम्भूतमिन्द्रचापं प्रचक्षते।।

तदिन्द्रधनुर्यायिनां नृपाणां राज्ञामभिमुखं सम्मुखमजयावहं पराजयदं भवति इति।।२।।

अन्यदप्याह—

अच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत् स्निग्धं घनं विविधवर्णम् ।
द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ॥३॥

अखण्ड, पृथ्वी में लगा हुआ, उज्ज्वल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्णयुत, दो बार उदित या पश्चिम में स्थित इन्द्रधनुष दिखाई दे तो शुभ फल और बहुत वृष्टि करने वाला होता है।

विशेष—यहाँ पर कोई-कोई अनुलोम का अर्थ दक्षिण दिशा में और दूसरा उत्तर दिशा में—ऐसा कहते हैं।।३।।

अच्छिन्नमखण्डम्। अवनिगाढं भूमौ लग्नम्। भूतलं भित्त्वेवोत्थितमित्यर्थः। द्युतिमदत्युज्ज्वलम्। स्निग्धमरूक्षं सुकान्तिमित्यर्थः। घनमविकलम्। विविधवर्णं नानाप्रकारै रक्तनीलसिताद्यैर्वर्णैर्युक्तम्। द्विरुक्तिं द्विधा स्थितम्। चकारः समुच्चये। न केवलमनन्तरोक्तप्रतिपादितलक्षणसंयुक्तम्। यावद् द्विरुदितमनुलोमं पश्चाद्व्यवस्थितम्। एवंविधं प्रशस्तमिष्टफलसूचकम्। अम्भः प्रयच्छति च पानीयं ददातीति।

अत्र केचित् शक्रचापस्यैवमनुलोमतां वर्णयन्ति। यथैकं दक्षिणदिक्स्थमपरं चोत्तरदिक्स्थं तयोर्यदा प्रतिलोमता तदा द्विरुदितस्यानिष्टं फलम्। यदा त्वेकदिगवस्थितौ तौ तदानुलोमौ। तत्रेष्टफलमिति। तथा च ऋषिपुत्र आह—

द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं महत्।
पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु।।

तथा च नन्दी आह—

बहुवर्णमविच्छिन्नं द्विरुन्नतं स्निग्धममरपतिचापम्।
पश्चात् पार्श्वे वापि प्रयाणकाले रिपुवधाय।।

तथा च बृहस्पतिः—

नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिद्धमायतम्।
पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्।।

तथा च गर्गोक्तमयूरचित्रके पठ्यते—

पूर्वस्यां दिशि संग्रामे भवतीन्द्रधनुर्यदि।
पश्चिमे च प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे पश्चादिन्द्रधनुर्भवेत्।
पूर्वेण तु प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे वामपार्श्वे च पृष्ठतः।
धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं जयस्तेषां न संशयः।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे पुरस्ताद्दक्षिणेन वा।
धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं वधं तेषां विनिर्दिशेत्।।
पश्चिमे तु दिशो भागे भवतीन्द्रधनुर्यदि।
समेघगगनं स्निग्धं वैदूर्यविमलद्युति।।
विद्युच्च निर्मला भाति पूर्वे वायुर्यदा भवेत्।
सप्तरात्रं महावर्षं निर्दिशेद्दैवचिन्तकः।।

यद्येवं तदा द्वितीयं व्याख्यानमशोभनं पूर्वमेव ज्यायः। पश्चात् स्थितमनुलोममिति।।३।।

अन्यदप्याह—

विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मकरकारि।
पाटलपीतकनीलैः शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥४॥

विदिशा (ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य) में यदि इन्द्रधनुष दिखाई दे तो उस दिशा के स्वामी (८६ वें अध्याय के ३४ वें पद्य में उक्त) का नाश होता है। थोड़ा लाल, पीला और नीला इन्द्रधनुष हो तो क्रम से शस्त्रदोष, अग्निदोष और दुर्भिक्ष करता है। जैसे थोड़ा लाल हो तो शस्त्रदोष, पीला हो तो अग्निदोष और नीला हो तो दुर्भिक्ष करता है।

विदिगुद्भूतं विदिक्स्थितमिन्द्रचापं दिक्स्वामिनाशनम्। तस्यां दिशि यः स्वामी स नश्यति। दिगधिपतीन् शाकुने वक्ष्यति—

राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः।
गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम्।। इति।

एवं व्यभ्रजं मरककारि, विगताभ्रे गगने यदुत्पन्नमिन्द्रचापं तन्मरककारि मरकं करोति। पाटलो वर्णः कृष्णलोहितः। पीतकः पीतवर्णः। नीलो नीलवर्णः। एतैर्वर्णैर्यदि युक्त-मिन्द्रधनुर्भवति तदा यथासङ्ख्येन शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषा भवन्ति। पाटलवर्णे शस्त्रकृता दोषाः। पीते अग्निकृता दोषाः। नीले क्षुत्कृता दुर्भिक्षजा इति।।४।।

अन्यदप्याह—

जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः।
वाल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ॥५॥

यदि जल में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो अनावृष्टि, पृथ्वी पर दिखाई दे तो धान्यों का नाश, वृक्ष पर दिखाई दे तो व्याधि, वल्मीक (वमई = दीवड़ा की भीड़) पर दिखाई दे तो शस्त्रभय और रात्रि में दिखाई दे तो मन्त्री का मरण होता है।।५।।

ऐन्द्रं धनुरिन्द्रचापं जलमध्ये यदा दृश्यते तदा अनावृष्टिरवर्षणं भवति। भुवि भूमौ दृश्यते तदा सस्यानां वधो नाशो भवति। तरौ वृक्षे स्थिते इन्द्रचापे व्याधिः पीडा भवति। वाल्मीके वल्मीककृते मृत्स्तूपे शस्त्रभयं भवति। निशि रात्राविन्द्रधनुः सचिवस्य मन्त्रिणो वधाय मरणाय भवति।।५।।

अथ दिग्वशेन फलमाह—

वृष्टिं करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यैन्द्र्याम्।
पश्चात् सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ॥६॥

यदि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो वृष्टि और वृष्टि के समय दिखाई दे तो अनावृष्टि करता है तथा पश्चिम दिशा में स्थित इन्द्रधनुष सदा वृष्टि को करता है।।६।।

कुलिशभृत इन्द्रस्य चापमैन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि दृष्टमवृष्ट्यामनावृष्ट्यां वृष्टिं वर्षणं

करोति, तत्रैव दृष्टे वृष्ट्यां वृष्टिं निवारयति। पश्चात् पश्चिमायां दिशि दृष्टं सदैव सर्व-कालं वृष्टिं वर्षणमाचष्टे कथयति।।६।।

अन्यदप्याह—

चापं मघोनः निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम्।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात् सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ।।७।।

यदि रात्रि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो राजा को पीड़ित करता है तथा दक्षिण दिशा में दिखाई दे तो सेनापति, पश्चिम में प्रधान पुरुष और उत्तर में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो मन्त्री का नाश करता है।।७।।

मघोन इन्द्रस्य चापं धनुः। आखण्डलायामैन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि निशायां रात्रौ दृष्टं भूपस्य राज्ञः पीडां रोगभयं करोति। याम्यापरोदक्प्रभवं यथासङ्ख्यं सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च निहन्यात्। याम्यायां दक्षिणस्यां सेनापतिम्। अपरस्यां पश्चिमायां नायकान् प्रधानपुरुषान्। उत्तरस्यां मन्त्रिणं सचिवं हन्यात्। तथा च काश्यपः—

अवृष्टौ वर्षणं कुर्यादैन्द्रीं दिशमुपाश्रितम्।
पश्चिमायां महद्वर्षं करोतीन्द्रधनुः सदा।।
रात्रौ चेद् दृश्यते पूर्वे भयं नरपतेर्भवेत्।
याम्यायां बलमुख्यश्च विनाशमभिगच्छति।।
पश्चिमायां प्रधानस्य सौम्यायां मन्त्रिणो वधः।
स्निग्धवर्णैर्घनैः शुभ्रैर्वारुण्यां दिशि दृश्यते।।
बहूदकं सुभिक्षं च शिवं सस्यप्रदं भवेत्।। इति।।७।।

अन्यदप्याह—

निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम्।
भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं नचिराद्धन्यात् ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रायुध-
लक्षणाध्यायः पञ्चत्रिंशः ।।३५।।

यदि रात्रि के समय श्वेत आदि (श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण) वर्ण का इन्द्रधनुष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करता है। जैसे श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है तथा जिस दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई देता है, उस दिशा के प्रधान राजा का शीघ्र नाश करता है।।८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामिन्द्रायुधलक्षणाध्यायः पञ्चत्रिंशः ।।३५।।

निशि रात्रौ सुरचापमिन्द्रधनुः सितवर्णाद्यं सितरक्तपीतकृष्णं द्विजपूर्वाणां ब्राह्मणप्रथमानां वर्णानां पीडां जनयत्युत्पादयति। तद्यथा—श्वेतवर्णो ब्राह्मणान् पीडयति। रक्तः क्षत्रियान्। पीतो वैश्यान्। कृष्णः शूद्रानिति। **भवति च यस्यां दिशीति ।** यस्यां च दिशि आशायां भवति दृश्यते तद्देश्यं तद्देशभवं नरपतिमुख्यं नृपप्रधानं नचिराच्छीघ्रं हन्यान्नाशयेत्। तस्यां दिशि यः प्रधाननृपंस्तं विनाशयतीत्यर्थः।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृताविन्द्रायुध-
लक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

अथ गन्धर्वनगरलक्षणाध्याय:

अथ गन्धर्वनगरलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव दिग्वशेन तस्य फलप्रदर्शनार्थमाह—

उदगादिपुरोहितनृपबलपतियुवराजदोषदं खपुरम्।
सितरक्तपीतकृष्णं विप्रादीनामभावाय ॥१॥

यदि उत्तर आदि दिशाओं में गन्धर्वनगर दिखाई दे तो क्रम से पुरोहित, राजा, सेनापति और युवराज का अशुभ करता है। जैसे—उत्तर दिशा में दिखाई दे तो पुरोहित, पूर्व दिशा में राजा, दक्षिण में सेनापति और पश्चिम में दिखाई दे तो युवराज का अशुभ करता है। साथ ही श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है।।१।।

खपुरं गन्धर्वनगरमुदगादिस्थितमुत्तराद्यासु दिक्षु दृष्टं यथाक्रमेण पुरोहितनृपबलपति-युवराजदोषदं भवति। उत्तरस्यां दिशि दृष्टं पुरोहित आचार्यस्तस्य दोषदमशुभप्रदम्। पूर्वस्यां नृपस्य राज्ञ:। दक्षिणस्यां बलपतेश्चमूनाथस्य। पश्चिमायां युवराजस्य। तथा सितरक्तपीत-कृष्णं यथासङ्ख्यं विप्रादीनां ब्राह्मणादीनामभावाय नाशाय भवति। सितं श्वेतवर्णं ब्राह्मणा-नाम्। रक्तं क्षत्रियाणाम्। पीतं वैश्यानाम्। कृष्णं शूद्राणामिति।।१।।

अन्यदप्याह—

नागरनृपतिजयावहमुदग्विदिक्स्थं विवर्णनाशाय।
शान्ताशायां दृष्टं सतोरणं नृपतिविजयाय ॥२॥

यदि उत्तर दिशा में गन्धर्वनगर स्थित हो तो राजाओं को विजय देने वाला होता है। विदिशा (ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैर्ऋत्य) में स्थित हो तो संकर (नीच जाति) का नाश करता है तथा शान्त दिशा में तारायुत दिखाई दे तो राजा के विजय के लिये होता है।।२।।

उदगुत्तरस्यां दिशि दृष्टं खपुरं गन्धर्वनगरं नागराणां राज्ञां विजयावहं जयप्रदम्। विदिक्स्थं विदिक्षु स्थितं विवर्णानां सङ्कराणां विनाशाय भवति। शान्ताशायाम्। तत्कालं या शान्ता दिक् तस्यां दृष्टं सतोरणं तोरणसहितं नृपते राज्ञो विजयाय भवति।।२।।

अन्यदप्याह—

सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं च भयदं नरेन्द्रराष्ट्राणाम्।
चौराटविकान् हन्याद् धूमानलशक्रचापाभम् ॥३॥

यदि प्रतिदिन हर समय गन्धर्वनगर दिखाई दे तो राजा और राष्ट्र दोनों को भय देने वाला होता है तथा यदि धूम, अग्नि या इन्द्रधनुष की तरह कान्ति वाला हो तो चोर और वनवासियों का नाश करता है।।३।।

सर्वदिगुत्थं सर्वासु दिक्षु स्थितं सततोत्थितं च सर्वकालं समुत्पन्नं प्रत्यहं दृश्यते तन्नरेन्द्रस्य राज्ञो राष्ट्रस्य जनपदस्य च भयं भीतिं ददाति। धूमानलशक्रचापाभं धूमस्यानलस्याग्नेः शक्रचापस्येन्द्रधनुषः सदृशी आभा कान्तिर्यस्य तथाभूतम्। चौरास्तस्कराः। आटविका अटव्यां च ये वसन्ति। तान् हन्यान्नाशयेत्।।३।।

अन्यदप्याह—

गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम् ।
दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये ॥४॥

पाण्डुर (श्वेत = 'शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्येत-पाण्डुरा' इत्यमरः) वर्ण का गन्धर्वनगर दिखाई दे तो वज्रपात के साथ वायु करता है। दीप्त दिशा (८६ अध्याय के १२ वें पद्योक्त) में स्थित हो तो उस दिशा में स्थित राजा का मरण होता है तथा वाम में शत्रु का भय और दक्षिण में जय करता है।।४।।

गन्धर्वनगरं खपुरमुत्थितमुत्पन्नमापाण्डुरं पाण्डुरवर्णमशनिपातवातं करोति। दीप्तं दीप्तदिक्स्थे तस्मिन्नरेन्द्रस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं भवति। दीप्तासु दिक्षु लक्षणं वक्ष्यत्याचार्यः शाकुने। तथा च—

मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम्।
अङ्गारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततोऽपराः।। इति।

वामेऽरिभयम्। सैन्यस्य पुरस्य वा वामे भागे दृष्टमरिभयं शत्रुभयं करोति। सव्ये दक्षिणे जयप्रदं भवति।।४।।

अन्यदप्याह—

अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् ।
यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग्भूरि रणे वसुन्धरा ॥५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गन्धर्व-
नगरलक्षणाध्यायः षट्त्रिंशः ॥३६॥

जिस समय आकाश में अनेक वर्णयुत पताका, ध्वजा या पुरद्वार की तरह गन्धर्व नगर दिखाई देता है, उस समय युद्ध में हाथी, मनुष्य और घोड़ों का रक्त पृथ्वी अधिक पान करती है।।५।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः षट्त्रिंशः ॥३६॥

यदा यस्मिन् काले खे आकाशे पुरं गन्धर्वनगरम्। अनेकवर्णाकृति बहुवर्णचित्रसंस्थानं प्रकाशते दृश्यते। तच्च पताकाध्वजतोरणान्वितम्। पताकाभिर्वैजयन्तीभिर्ध्वजैश्चिह्नैर्बहुपट-

विरचितैः, अथवा पताकाध्वजैस्तोरणैश्चान्वितं संयुक्तं तदा तस्मिन् काले। नागानां गजानाम्। मनुष्याणां पुरुषाणाम्। वाजिनामश्वानां च रणे संग्रामे। असृग् रुधिरम्। भूरि प्रभूतम्। वसुन्धरा भूः पिबति। तथा च काश्यपः—

बहुवर्णं पताकाढ्यं गन्धर्वनगरं महत्।
दृष्टं प्रजाक्षयकरं संग्रामे लोमहर्षणम्।। इति।।५।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ गन्धर्वपुर-
लक्षणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

अथ प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः

अथ प्रतिसूर्यलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्णलक्षणं शुभाशुभफलं चाह—

प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो दिवसकृदृतुवर्णसप्रभः स्निग्धः ।
वैदूर्यनिभः स्वच्छः शुक्लश्च क्षेमसौभिक्षः ॥१॥

सूर्य के ऋतु वर्ण (तीसरे अध्याय के तेईसवें पद्य में उक्त) के सदृश वर्ण का प्रतिसूर्य होता है। यदि वह निर्मल, वैदूर्यमणि की तरह स्वच्छ और श्वेत हो तो क्षेम और सुभिक्ष करता है।।१।।

प्रतिसूर्यको द्वितीयोऽर्कः स च दिवसकृत आदित्यस्य ऋतुवर्णसप्रभः आदित्यस्य ये ऋतुवर्णा उक्तास्ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिर इत्यादिकास्तेषां सदृशवर्णः। स्निग्धो निर्मलकान्तिश्च शस्तः प्रशस्तः। तथा वैदूर्यनिभो वैदूर्यमणेः सदृशकान्तिः। नीलपीत इत्यर्थः। स्वच्छो निर्मलः। शुक्लः श्वेतवर्णश्च। क्षेमसौभिक्षः, क्षेमं सौभिक्षं च करोति।।१।।

अन्यदप्याह—

पीतो व्याधिं जनयत्यशोकरूपश्च शस्त्रकोपाय ।
प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातङ्कनृपहन्त्री ॥२॥

पीत वर्ण का प्रतिसूर्य व्याधि करता है। अशोक पुष्प के समान लोहित वर्ण का प्रतिसूर्य शस्त्रकोप के लिये होता है। यदि प्रतिसूर्य की माला दिखाई दे तो चोर का भय तथा उपद्रव और राजा का नाश करता है।।२।।

पीतः पीतवर्णः प्रतिसूर्यो व्याधिं जनयत्युत्पादयति। अशोकरूपोऽशोकपुष्पसदृशवर्णो लोहित इत्यर्थः। तथारूपः शस्त्रकोपाय भवति। शस्त्रकोपं करोति। प्रतिसूर्याणां माला पङ्क्तिर्यदि दृश्यते तदा दस्युभयातङ्कनृपहन्त्री भवति, दस्यवश्चौरास्तेभ्यो भयमातङ्कमुपद्रवं नृपं च राजानं हन्ति।।२।।

अन्यदप्याह—

दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् ।
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रतिसूर्य-
लक्षणाध्यायः सप्तत्रिंशः ॥३७॥

यदि सूर्यमण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई पड़े तो वृष्टि होती है, दक्षिण

दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई दे तो वायु करता है। दोनों तरफ दिखाई दे तो राजा का और नीचे की तरफ दिखाई पड़े तो लोगों का नाश करता है।।३।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः सप्तत्रिंशः ।।३७।।

इयमार्या अर्कचारे व्याख्याता। तथा च काश्यपः—

याम्ये वातप्रदो ज्ञेय उत्तरे वृद्धिदो रवेः।
उभयोः पार्श्वयोर्भाति सलिलं भूरि यच्छति।।

तथा च पराशरः—

दीप्ताग्निवर्णः कनकप्रभो वा सन्ध्यासु चेद्भास्करमावृणोति।
कम्पेत भूः खात्प्रपतेन्महोल्का नृपो विनश्येत्सहितः प्रजाभिः।।
सन्ध्यासमीपे यदि भास्करस्य दृश्येत माला प्रतिसूर्यकाणाम्।
सर्पा भवेयुः प्रचुराश्च चौरा रोगाश्च घोरा विविधप्रकाराः।।
प्रत्यर्कमिन्द्रायुधमत्स्यदण्डाः सविद्युदभ्राशनिवर्षवाताः।
भवन्त्यभीक्ष्णं दिनरात्रिसन्धौ भयं तदा भूमिपतेर्वधः स्यात्।। इति ।।३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ प्रतिसूर्य-लक्षणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

अथ रजोलक्षणाध्यायः[1]

कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन।
अविभाव्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ॥१॥

जब घने अन्धकार की तरह धूलि से पर्वत, पुर, वृक्ष और सब दिशायें व्याप्त हो जाने से कुछ भी नहीं दिखाई देता हो, तो उस समय राजा का नाश कहना चाहिये।।१।।

यस्यां दिशि धूपचयः प्राक्प्रभवति नाशमेति वा यस्याम्।
आगच्छति सप्ताहात्तत्रैव भयं न सन्देहः ॥२॥

पहले जिस दिशा में धूलि की उत्पत्ति हो और जिस दिशा में नाश हो, उन दोनों दिशाओं में सात दिन के अन्दर निःसन्देह भय होता है।।२।।

श्वेते रजोघनौघे पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च।
न चिरात्प्रकोपमुपयाति शस्त्रमतिसङ्कुला सिद्धिः ॥३॥

सघन धूलि का समूह यदि श्वेत वर्ण का हो तो मन्त्री तथा राष्ट्र को पीड़ा, शीघ्र शस्त्र का प्रकोप और अत्यन्त कठिनता से कार्य की सिद्धि होती है।।३।।

अर्कोदये विजृम्भति यदि दिनमेकं दिनद्वयं वाऽपि।
स्थगयन्निव गगनतलं भयमत्युग्रं निवेदयति ॥४॥

यदि सूर्यास्त के समय उत्पन्न होकर धूलि एक या दो दिन तक आकाश को ढकी हुई रहे तो वह आने वाले उग्र भय को अभिव्यक्त करती है।।४।।

अनवरतसञ्चयवहं रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ।
क्षेमाय च शेषाणां विचक्षणानां नरेन्द्राणाम् ॥५॥

यदि बराबर इकट्ठी होकर धूलि एक रात्रि तक स्थित रहे तो प्रधान राजा की मृत्यु और शेष बुद्धिमान् राजाओं को शुभ करती है।।५।।

रजनीद्वयं विसर्पति तस्मिन् राष्ट्रे रजोघनं बहुलम्।
परचक्रस्यागमनं तस्मिन्नपि सन्निबोद्धव्यम् ॥६॥

जिस देश में दो रात्रि तक बराबर घनीभूत धूलि फैलती है, उस देश में निश्चय ही किसी दूसरे राजा का आगमन कहना चाहिये।।६।।

---

१. भट्टोत्पलकृतविवृतावस्याध्यायस्योल्लेख एव नास्ति; अतोऽयं प्रतिभाति यदयमध्याय एव केनचित्प्रक्षिप्त इति।

निपतति रजनीत्रितयं चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय।
राज्ञां सैन्यक्षोभो रजसि भवेत् पञ्चरात्रभवे॥७॥

यदि तीन या चार रात्रि तक बराबर धूलि गिरती रहे तो अन्न और रस के विनाश के लिये होती है। यदि पाँच रात्रि तक लगातार धूलि का वर्षण हो तो राजाओं की सेनाओं में खलबली मचती है।।७।।

केत्वाद्युदयविमुक्तं यदा रजो भवति तीव्रभयदायि।
शिशिरादन्यत्रर्तौ फलमविकलमाहुराचार्याः॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रजो-
लक्षणाध्यायोऽष्टत्रिंशः॥३८॥

यदि केतु आदि के उदय के बाद धूलि गिरे तो तीव्र भय देने वाली होती है। आचार्यों का मत है कि शिशिर ऋतु के अतिरिक्त अन्य समस्त ऋतुओं में ठीक-ठीक फल देती है।।८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां रजोलक्षणाध्यायोऽष्टत्रिंशः॥३८॥

अथ निर्घातलक्षणाध्यायः

अथ निर्घातलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तदुत्पत्तिप्रदर्शनार्थमाह—

पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति।
भवति तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः ॥१॥

जब पवन से टकरा कर पवन आकाश से पृथ्वी पर गिरता है, उस समय उसके गिरने से जो शब्द होता है, उसका नाम 'निर्घात' है। यदि वह सूर्याभिमुख स्थित पक्षियों के शब्द से युत हो तो दुष्ट फल देने वाला होता है।।१।।

पवनो वायुः पवनेन परेण वायुनाऽभिहतः स मारुतो गगनादाकाशादवनौ भूमौ यदा समापतति तदा तस्याभिहतस्य पतमानस्य यः शब्दः स निर्घातो भवतीत्युच्यते। तथा च गर्गः—

यदान्तरिक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः।
पतत्यधः स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः।।

स च पापो दीप्तविहगरुतः। स च निर्घातः शब्दो दीप्तैः सूर्याभिमुखैर्दीप्तस्वरैश्च विहगैः पक्षिभी रुतः कृतः शब्दः पापो भवति। दुष्टफलद इत्यर्थः।।१।।

अथ वेलावशेन फलमाह—

अर्कोदयेऽधिकरणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः।
आप्रहरांशेऽजाविकमुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च ॥२॥

आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो ब्राह्मणांश्च पीडयति।
वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान् प्रहरे चतुर्थे तु ॥३॥

अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि।
रात्रौ द्वितीययामे पिशाचसङ्घान् निपीडयति ॥४॥

तुरगकरिणस्तृतीये विनिहन्याद्यायिनश्चतुर्थे च।
भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति ॥५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां निर्घात-
लक्षणाध्याय एकोनचत्वारिंशः ॥३९॥

यदि सूर्योदय काल में निर्घात हो तो अधिकरणिक, राजा, धनी, शूर, स्त्री, व्यापारी और वेश्याओं का नाश करता है। यदि दिन के प्रथम प्रहर में निर्घात हो तो छाग, आविक

(भेड़ पालने वाले), शूद्र और पुरवासियों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में राजा, सेवक और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। तृतीय प्रहर में व्यापारी और मेघ का नाश करता है। चतुर्थ प्रहर में चोरों को पीड़ित करता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में धान्यों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में पिशाचसमूहों को पीड़ित करता है। तृतीय प्रहर में हाथी और घोड़ों का नाश करता है। यदि रात्रि के चतुर्थ प्रहर में निर्घात हो तो गमन करने वालों का नाश करता है तथा जिस दिशा में भग्न भाण्ड की तरह भयङ्कर शब्द जाता है, उस दिशा का भी नाश करता है।।२-५।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां निर्घातलक्षणाध्याय एकोनचत्वारिंशः ।।३९।।

अर्कोदये सूर्योदयकाले यदि निर्घात उत्पद्यते तदा अधिकरणिकाः। अधिकरणेन युक्तोऽधिकरणिकः। नृपो राजा। धनिन ईश्वराः। योधा युद्धकुशलाः। अङ्गनाः स्त्रियः। वणिजः क्रयविक्रयजीविनः। वेश्या बन्धक्यः। एतान् सर्वानेवोपहन्यान्नाशयेत्। दिनारम्भाद् घटिकाद्वयं यावत् सूर्योदयः।

आप्रहरांश इति। सूर्योदयादारभ्य प्रहरं यावदाप्रहरांशम्। दिनचतुर्थभागे तस्मिन् प्रथमे दिनचतुर्थागे। अजाश्छागाः। आविका अविप्रकाराः। शूद्राः शूद्रजातयः। पौराश्च पौरा जनाः। एतानुपहन्यात्।

आमध्याह्नादिति। प्रहरादूर्ध्वं मध्याह्नं यावत्। राजोपसेविना नृपाराधनतत्परान्। ब्राह्मणान् विप्रांश्च पीडयति उपतापयति। तृतीये प्रहरे वैश्या वैश्यजातीयास्तान्। जलदान् मेघांश्च पीडयति। चतुर्थे प्रहरे चौरांस्तस्करान् पीडयति।

अस्तं यातेऽर्के यदि निर्घात उत्पद्यते तदा नीचानधर्मकर्मकरान्निहन्ति। रात्रेः प्रथमे यामे प्रहरे सस्यानि निहन्ति नाशयति। रात्रेर्द्वितीययामे पिशाचसंघान्। पिशाचा देवयोनयः, तत्समूहान् निपीडयति।

रात्रेस्तृतीयप्रहरे तुरगानश्वान्। करिणो हस्तिनो विनिहन्यात्। चतुर्थे यामे यायिनो जिगमिषून् विनिहन्यात्। यतो यस्यां दिशि भैरवो विकृतो जर्जरो भिन्नभाण्डसमुद्भूतसदृशः शब्दः स्वरो याति गच्छति तां दिशमाशां हन्ति नाशयति। तथा च समाससंहितायाम्—

> निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्।
> तस्करविप्रांश्चार्कोदयाद्दिशं पतति यस्याम्।।

तथा च गर्गः—

> यदा सूर्योदये प्राप्ते निर्घातः श्रूयते भुवि।
> क्षत्रिया योधमुख्याश्च पीड्यन्तेऽत्र न संशयः।।
> प्रहरांशे तथा वैश्यान् हन्याद् गोजीविनस्तथा।
> परिवृत्ते हरौ वैश्या अपराह्णे तु दस्यवः।।

नीचचौरांश्च हन्यात् स अस्तमेति दिवाकरे।
प्रथमे प्रहरे सस्यान्यर्द्धरात्रे तु राक्षसान्।।
रात्रित्रिभागे वैश्यांश्च प्रत्यूषे चाहितो भवेत्।
यां दिशं चाभिहन्येत निर्घातो भैरवः स्वनः।।
तद्देश्यान् हन्ति देशांश्च सर्वदिग्भक्तयस्तथा।। इति।।२-५।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ निर्घातलक्षणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ सस्यजातकाध्यायः

अथ सस्यजातकं व्याख्यायते। तत्रादावेवागमप्रदर्शनार्थमाह—

वृश्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः ।
ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगाः कृतास्त इमे ॥१॥

वृश्चिक और वृष राशि में सूर्य का प्रवेश होने के समय ग्रीष्म और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों के लिये जिन शुभाशुभ फलों को बादरायण मुनि ने कहा है, वे इस प्रकार हैं।।१।।

भानोरादित्यस्य वृश्चिकप्रवेशे ग्रीष्मसस्यानां यवादीनां वृषप्रवेशे शरत्सस्यानां धान्यादीनां बादरायणेनाचार्येण सदसद्योगाः शुभाशुभा ये योगा उक्ताः कथितास्त इमे सर्वे मयाऽत्र कृता इति। एतदुक्तं भवति—यत्र दिने रवेर्वृश्चिकसंक्रमणं भवति तत्र वृश्चिकमेव लग्नं परिकल्प्य वक्ष्यमाणविधिना ग्रीष्मसस्यानां जन्म विचारणीयम्। एवं वृषसंक्रमवेलायां वृषमेव लग्नं परिकल्प्य शरत्सस्यानां जन्म विचारणीयमिति।।१।।

तदत्र योगप्रदर्शनार्थमाह—

भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः ।
बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते ग्रैष्मिकविवृद्धिः ॥२॥

सूर्य के वृश्चिक में प्रवेश होने के समय उससे (सूर्य से) केन्द्र स्थान (वृश्चिक, कुम्भ, वृष और सिंह) में शुभग्रह हों या जहाँ-कहीं पर (केन्द्र से इतर स्थान) स्थित बली शुभग्रहों से वृश्चिकगत सूर्य देखा जाता हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की वृद्धि होती है।।२।।

भानोरादित्यस्यालिप्रवेशे वृश्चिकप्रवेशसमयेऽयं विचारः। केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैर्यो यत्रावधित्वेन निर्दिश्यते तस्माद्यानि केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि तैः शुभग्रहाक्रान्तैः। शुभग्रहा बुधगुरुसिताः। अत्रावधित्वेन वृश्चिकप्रवेशावस्थितिः सवितुर्निर्दिष्टा। तस्मादादित्यात् केन्द्रैः शुभग्रहाक्रान्तैः सौम्यग्रहयुक्तैः। एतदुक्तं भवति—यदा सूर्यस्य वृश्चिकप्रवेशे केन्द्रस्थानानि शुभग्रहाक्रान्तानि भवन्ति तदा ग्रैष्मिकसस्यविवृद्धिर्भवति, विशेषेण वृद्धिर्विवृद्धिः। सुवृद्धिरित्यर्थः। बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते। अथवा भानोः केन्द्रस्थानानि शुभग्रहाक्रान्तानि भवन्ति, बलवद्भिः सौम्यैः केन्द्रवर्जमन्यत्रावस्थितैर्भानौ निरीक्षिते दृष्टे ग्रैष्मिकविवृद्धिर्भवति। अत्र केन्द्रनिर्देशादनन्तरमेव दर्शनशब्दो निर्दिष्टः। तत्केन्द्रगतैरपि ग्रहैर्दृश्यत एव कस्मादाचार्येण दर्शननिर्देशेनैव केवलेन निर्देशः क्रियते। यदादित्यकेन्द्रावस्थितस्य ग्रहस्य कथं प्रदर्शनं घटत इत्युपगम्यापि ब्रूमः। यद्येवं तदा त्वेवं निर्देष्टुं युक्तम्। यथा बलवद्भिः सौम्यैर्दृष्टे भानौ युक्त इति, यस्मादाचार्यसुष्ठुसमासोक्तिप्रियः परिहारः। बलवद्भिः सौम्यैर्निरीक्षित

इत्यस्माद्विकल्पादिदमवगम्यते यदा सौम्यैर्बलिभिरबलिभिर्वा केन्द्रस्थानानि युक्तानि भवन्ति तदा ग्रैष्मिकसस्यविवृद्धिर्भवति। यदा तु पुनस्त्रिकोणरिपुलाभगाः सौम्या बलिनः पश्यन्ति तदा ग्रैष्मिकस्य विवृद्धिर्भवति। मध्यबलैर्याप्यता। बलहीनैर्मनागपि सस्यानां वृद्धिर्भवति। तथा च बादरायणः—

वृश्चिकसंस्थे सूर्ये सौम्यैर्बलिभिर्निरीक्षिते वृद्धिम्।
तैरेव केन्द्रगैर्वा ग्रीष्मजधान्यस्य निर्दिशेन्महतीम्।। इति।।२।।

अथ योगान्तरमाह—

अष्टमराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहसंस्थितयोः।
सिंहघटसंस्थयोर्वा निष्पत्तिर्ग्रीष्मसस्यस्य ।।३।।

सूर्य के आठवीं राशि (वृश्चिक) में गत होने के समय कुम्भ राशि में गुरु और सिंह राशि में चन्द्रमा या सिंह राशि में गुरु और कुम्भ राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति (वृद्धि) होती है।।३।।

अर्के रवावष्टमराशिगते वृश्चिकस्थे इत्यर्थः। गुरुशशिनोर्जीवचन्द्रयोर्यथाक्रमं कुम्भसिंहसंस्थयोः। कुम्भे गुरुः शशी सिंहे। अथवा सिंहघटसंस्थयोः। गुरुः सिंहे शशी घटे। तथापि ग्रीष्मसस्यस्य निष्पत्तिर्वक्तव्येति।।३।।

अथ योगान्तरमाह—

अर्कात् सिते द्वितीये बुधेऽथवा युगपदेव वा स्थितयोः।
व्ययगतयोरपि तद्वन्निष्पत्तिरतीव गुरुदृष्ट्या ।।४।।

यदि सूर्य से द्वितीय या द्वादश में शुक्र या बुध या दोनों एक साथ स्थित हों तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योगों में बृहस्पति की दृष्टि हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है।।४।।

अर्काद्रवेरलिस्थितात् सिते शुक्रे द्वितीये द्वितीयस्थानस्थे बुधेऽथवा द्वितीये। अथवा तयोर्बुधसितयोर्द्वयोरेव युगपद् द्वितीयस्थयोः। व्ययगतयोरपि। तद्वत्तेनैव प्रकारेण व्ययगतयोरादित्याद् द्वादशस्थाने स्थितयोः शक्रे द्वादशगे बुधे वा द्वयोर्वा द्वादशस्थानस्थितयोः सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। अतीव गुरुदृष्ट्या। बृहस्पतिर्यदाऽऽदित्यं पश्यति तदा अतीव सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। तथा च बादरायणः—

सूर्याद् बुधे द्वितीये शुक्रे वा युगपदेव तयोः।
रिष्फगयोरप्येवं निष्पत्तिर्गुरुदृशाऽतीव।। इति।।४।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

शुभमध्येऽलिनि सूर्याद् गुरुशशिनोः सप्तमे परा सम्पत्।
अल्यादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः ।।५।।

दो शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित होकर सूर्य वृश्चिक राशि में स्थित हो और सूर्य से सप्तम में गुरु और चन्द्रमा हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है तथा वृश्चिक के आदि में सूर्य और उससे द्वितीय में गुरु हो तो धान्यों की आधी निष्पत्ति होती है।।५।।

अलिनि वृश्चिके शुभमध्यस्थिते वृश्चिकात् सूर्ययुक्ताद् बुधशुक्रयोरेको द्वितीयस्थाने भवति, अन्यो द्वादशे। वा शुभमध्यगतो भवति। तथाभूतात् सूर्यादादित्याद् गुरुशशिनो-र्बृहस्पतिचन्द्रयो: सप्तमस्थाने स्थितयो: परा प्रकृष्टा सम्पत् सस्यानां भवति। **अल्यादिस्थ इति**। अलिनि आदौ तिष्ठति अल्यादिस्थस्तस्मिन् सवितर्यादित्ये अल्यादिस्थे वृश्चिक-प्रारम्भव्यवस्थिते गुरौ जीवे द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्ति: सस्यानां भवति। अर्द्धं निष्पद्यत इत्यर्थ:।

अन्यद्योगान्तरमाह—

लाभहिबुकार्थयुक्तै: सूर्यादलिगात् सितेन्दुशशिपुत्रै: ।
सस्यस्य परा सम्पत् कर्मणि जीवे गवां चाग्र्या ।।६।।

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से एकादश में शुक्र, चतुर्थ में चन्द्र और द्वितीय में बुध स्थित हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योग में दशम स्थित गुरु हो तो गायों में उत्तम सम्पत्ति (दूध की अधिकता) होती है।।६।।

सूर्यादादित्यादलिगाद् वृश्चिकस्थात् सितेन्दुशशिपुत्रै: शुक्रचन्द्रबुधैर्यथासङ्ख्यं लाभ-हिबुकार्थयुक्तै:। एकादशचतुर्थद्वितीयस्थै:। तत्रैतज्जातम्। एकादशगे शुक्रे चतुर्थे चन्द्रे द्वितीये बुधे सस्यस्य परा प्रकृष्टा सम्पद् भवति। अस्मन्नेव योगे कर्मणि दशमस्थाने स्थिते जीवे गुरौ न केवलं सस्यस्य परा सम्पद् भवति, यावद् गवां चाग्र्य श्रेष्ठा सम्पद् भवति। क्षीरबाहुल्यमित्यर्थ:।।६।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

कुम्भे गुरुर्गवि शशी सूर्योऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे ।
निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्रभयरोगम् ।।७।।

यदि कुम्भ में गुरु, वृष में चन्द्रमा, वृश्चिक के आदि में सूर्य तथा मकर में मङ्गल और शनि स्थित हो तो धान्यों की अधिक निष्पत्ति होती है; किन्तु बाद में परचक्र का आगमन और रोग का भय होता है।।७।।

रविवृश्चिकप्रवेशे कुम्भे गुरुर्जीव: स्थितो भवति। गवि वृषे शशी चन्द्र:। सूर्योऽर्क:। अलिमुखे वृश्चिकप्रारम्भे। कुजार्कजौ भौमसौरौ मकरे। एवंविधे योगे सस्यानां महती निष्पत्तिरस्ति विद्यते, किन्तु पश्चादनन्तरं परचक्रकृतं भयं रोगं च भवति।।७।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

मध्ये पापग्रहयो: सूर्य: सस्यं विनाशयत्यलिग: ।
पाप: सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ।।८।।

यदि वृश्चिक राशि में स्थित होकर सूर्य दो पापग्रहों के मध्य में स्थित हो तो धान्यों का नाश करता है तथा सप्तम राशि (वृष) में पापग्रह बैठा हो तो धान्यों की उत्पत्ति का भी नाश करता है।।८।।

सूर्यो रविरलिगो वृश्चिकस्थः। पापग्रहयोः शनैश्चराङ्गारकयोर्मध्ये स्थितः। एको द्वितीये द्वितीयो द्वादशे यद्यर्काद् भवतीत्यर्थः। तदा सस्यं विनाशयति। तथा वृश्चिकात् सप्तमराशौ स्थितः पापः सौरभौमयोरन्यतरस्तदा जातं सस्यं जातुमुत्पन्नमपि विनाशयति। तथा च बादरायणः—

क्रूरान्तस्थः सूर्यो वृश्चिकसंस्थो विनाशयति सस्यम्।
जातं जातं पापः सप्तमसंस्थो विनाशयति।। इति।।८।।

अन्ययोगान्तरमाह—

अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम्।
सस्यं निहन्ति पश्चादुप्तं निष्पादयेद् व्यक्तम्।।९।।

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से द्वितीय स्थान में पापग्रह स्थित होकर शुभग्रह से नहीं देखा जाता हो तो पहली बोई हुई खेती का नाश करता है, किन्तु बाद की बोई हुई खेती अच्छी तरह उपजती है।।९।।

वृश्चिकादर्थस्थाने द्वितीये क्रूरः पापग्रहो भौमसौरयोरन्यतरः स्थितः। स च सौम्यैरनिरीक्षितो बुधजीवशुक्राणामन्यतमेनानिरीक्षितो न दृष्टः। प्रथमजातं पूर्वोत्पन्नं सस्यं निहन्ति नाशयति। तथा पश्चात् कनीयसमुप्तं तद्व्यक्तं समस्तं निष्पादयेत्। सम्भवतीत्यर्थः।।९।।

जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य।
सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र।।१०।।

वृश्चिक स्थित सूर्य से सप्तम (वृष) में एक और सप्तमभिन्न केन्द्र (कुम्भ या सिंह) में दूसरा पापग्रह (मङ्गल-शनि में से एक) हो तो धान्यों का नाश करता है। यदि वे दोनों पापग्रह (मङ्गल, शनि) शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) से देखे जाते हों तो सर्वत्र नहीं; किन्तु कहीं-कहीं पर धान्यों का नाश करते हैं।।१०।।

सूर्यस्यादित्यस्य वृश्चिकसंस्थस्य क्रूरौ पापग्रहौ भौमसौरौ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ। एको जामित्रे सप्तमस्थाने द्वितीयोऽन्यस्मिन् केन्द्रे लग्नचतुर्थदशमानामन्यतमे स्थितः। तथाविधौ भौमसौरौ सस्यस्य विपत्तिं विनाशं कुरुतो विदधतः। तथा तावेव क्रूरौ तत्रस्थौ सौम्यैः शुभग्रहैर्दृष्टावालोकितौ न सर्वत्र सर्वस्मिन् देशे सस्यविपत्तिं कुरुतः। क्वचिदित्यर्थः।

नन्वत्र केन्द्रग्रहणेन सप्तमस्थानं गृहीतं भवति। तत्किमर्थं जामित्रग्रहणमिति? उच्यते— जामित्रग्रहणेनैतत्प्रतिपादयति। यथैकोऽवश्यमेव जामित्रे। अन्यो यस्मिंस्तस्मिन् केन्द्रे भवतीति तदा योग एषः। तथा च बादरायणः—

सूर्यात् सप्तमसंस्थः पापोऽयः केन्द्रगश्च हानिकरौ।
सौम्यग्रहसन्दृष्टौ न तथा सर्वत्र निर्दिष्टौ।। इति।।१०।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

वृश्चिकसंस्थादर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ।
भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ॥११॥

वृश्चिक-स्थित सूर्य से सप्तम और षष्ठ स्थान में दो पापग्रह मङ्गल और शनि बैठे हों तो धान्यों की निष्पत्ति होती है; किन्तु धान्यों का मूल्य महँगा पड़ता है।।११।।

अर्कादादित्याद्वृश्चिकसंस्थात् क्रूरौ पापौ भौमसौरौ यदा सप्तमषष्ठोपगौ। एकः सप्तमे परः षष्ठे भवति, तदा सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। किन्त्वर्घस्य परिहानिः स्वल्पता। बहुमूल्येनाल्पं लभत इत्यर्थः।।११।।

अथ शारदसस्यानामतिदेशार्थमाह—

विधिनानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम्।
विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ॥१२॥

पूर्व-स्थिति की तरह वृष राशिगत सूर्य के समय शारदीय धान्यों का नाश या निष्पत्ति पण्डितों को जानना चाहिये।।१२।।

अनेनैव निर्दिष्टेन विधिना वृश्चिकप्रवेशोक्तेन रविरादित्यो वृषप्रवेशे वृषसंक्रमणकाले शरत्समुत्थानां शरत्समुद्भूतानां सस्यानां नाशायाभावाय शिवाय निष्पत्तये वा तज्ज्ञैः पण्डितैः सस्यजातकज्ञैर्विज्ञेयो ज्ञातव्यः। तथा च बादरायणः—

य एव योगोऽभिहितो वृश्चिकस्थे दिवाकरे।
वृषेऽपि ते शारदानां चिन्तनीया यथार्थतः।। इति।।१२।।

अधुना रविचारवशेन ग्रैष्मिकसस्यस्य सामर्घ्यं महर्घतां चाह—

त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन्।
ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते समर्घमभयोपयोग्यं च ॥१३॥

मेष आदि तीन राशियों (मेष, वृष, मिथुन) में गमन करता हुआ सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो ग्रीष्म में होने वाले धान्य सस्ते होते हैं तथा लोक-परलोक दोनों के लिये उपयुक्त होते हैं; जैसे कि बहुत सस्ते धान्य होने के कारण बन्धुवर्गों के साथ खूब उपभोग करने से लोक और दानादि धर्मकार्य करने से परलोक—दोनों बन जाते हैं। कहीं-कहीं पर 'अभयोपयोग्यम्' ऐसा पाठ मिलता है; जिसका अर्थ यह है कि ये अभीतिकारक होते हैं अर्थात् ऐसे समय में निर्भय मनुष्य रहते हैं।।१३।।

सूर्य आदित्यः। त्रिषु मेषादिषु मेषवृषमिथुनेषु सौम्यैः शुभग्रहैर्बुधगुरुशुक्रैर्युतः संयुक्तो वीक्षितोऽवलोकितो वा विचरंस्तिष्ठन् ग्रैष्मिकं ग्रीष्मसम्भवं धान्यं समर्घं स्वल्पमूल्यं कुरुते।

अभयोपयोग्यं च महार्घताऽभयोपयोग्यम्। अथवा उभयोपयोग्यमिह लोके परलोके चोपयुज्यते। इस लोके बन्धुवर्गस्य। धर्मार्थं परलोक इति।।१३।।

अथैवं शारदसस्यस्याप्याह—

कार्मुकमृगघटसंस्थः शारदसस्यस्य तद्वदेव रविः।
संग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात्।।१४।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सस्य-
जातकाध्यायश्चत्वारिंशः।।४०।।

इसी तरह धनु, मकर और कुम्भ में स्थित सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो शारदीय धान्यों की समर्घता तथा उभयोपयोग्यता (इहलोक और परलोक के लिये उपयुक्तता) समझनी चाहिये। मेषादि या धनुरादि तीन राशियों में स्थित सूर्य यदि पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो विपरीत फल (महर्घता और नोभयोपयोग्य) समझना चाहिये। अतः संग्रह (विक्रय) काल में यही योग अच्छे होते हैं अर्थात् सूर्य के विपरीत योग में स्थित होने पर विक्रय करना चाहिये।।१४।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सस्यजातकाध्यायश्चत्वारिंशः।।४०।।

रविरादित्यः। कार्मुकमृगघटसंस्थः। कार्मुकं धन्वी। मृगो मकरः। घटः कुम्भः। एतेषु स्थितः शारदसस्यस्य तद्वदेव ज्ञेयः। यथा त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितो वा विचरन् ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते। समर्घमभयोपयोग्यं चैवं कार्मुकमृगघटसंस्थः सूर्यः सौम्ययुक्तो वीक्षितोऽपि वा विचरन् शारदधान्यं कुरुते। समर्घमभयोपयोग्यं चेति। संग्रह-काले संग्रहणसमये क्रूरदृग्योगाद्विपर्ययो ज्ञेयः। क्रूरग्रहदृष्टत्वाद्योगात् संयोगाच्च विपर्ययो विपरीतो विज्ञेयः। क्रूरावत्र भौमसौरौ। एतदुक्तं भवति—यदा मेषादिषु त्रिषु कार्मुकादिषु त्रिषु वा सूर्यः पापयुक्तः पापवीक्षितोऽपि वा विचरति तदा विपर्ययो महार्घताभयोपयोग्यत्वं च भवति। एतत्संग्रहकाले विक्रयकाले विपरीतः शोभनः। विपरीतयोगस्थे सूर्ये विक्रयः कार्य इति।।१४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सस्य-
जातकं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

अथ द्रव्यनिश्चयाध्यायः

अथ द्रव्यनिश्चयाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

ये येषां द्रव्याणामधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः।
मुनिभिः शुभाशुभार्थं तानागमतः प्रवक्ष्यामि ॥१॥

मुनियों ने शुभाशुभ फल जानने के लिये जिन द्रव्यों के जो अधिप राशि कहे हैं, उनको आगम से लेकर मैं यहाँ कहता हूँ।।१।।

येषां द्रव्याणां ये राशयो मेषादयोऽधिपतयो मुनिभिः काश्यपादिभिः समुद्दिष्टाः कथिताः। किमर्थं शुभाशुभार्थं समर्घमहार्घज्ञानार्थं तान् राशीनगमत आगमात् प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामीति।।१।।

तत्र मेषस्य कानि द्रव्याण्येतदाह—

वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालकयवानाम्।
स्थलसम्भवौषधीनां कनकस्य च कीर्तितो मेषः ॥२॥

वस्त्र, भेड़ के रोम से निर्मित वस्त्र, कुतुप (बकरी के रोम से निर्मित वस्त्र), मसूर, गेहूँ, रालक, जौ और स्थल (जल से रहित भूमि) में उत्पन्न औषधियों का स्वामी मेष राशि है।।२।।

वस्त्राण्यम्बराणि। अवयः प्रसिद्धा एव। अवीनामिदमाविकं तत्सम्भूतमित्यर्थः। कुतुपं छागलोमतन्तुकृतं वस्त्रम्। मसूरगोधूमाः प्रसिद्धाः। रालको वृक्षनिर्यासः। यवाः प्रसिद्धाः। एतेषां सर्वेषाम्। तथा स्थलसम्भवौषधीनाम्, स्थले जलरहितायां भूमौ या ओषधयः सम्भवन्ति तासाम्। तथा कनकस्य सुवर्णस्य च मेषराशिरधिपतिः कीर्तित उक्तः। तथा च काश्यपः—

मेषे सुवर्णस्थलजा गोधूमाजाविकास्तथा।
ग्रहवर्णर्क्षसंयोगे शोभने सफलं भवेत्।। इति।।२।।

अथ वृषमिथुनयोराह—

गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः।
मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूककार्पासाः ॥३॥

वस्त्र, पुष्प, गेहूँ, शालिधान्य, जौ, भैंस और बैल का स्वामी वृष है। धान्य, शारदीय लता, शालूक (कुमुदकन्द) और कपास का स्वामी मिथुन है।।३।।

वस्त्राण्यम्बराणि। कुसुमानि पुष्पाणि। गोधूमाः। शालयः षष्टिकादयः। यवाः। महिषाः।

सुरभितनया बलीवर्दाः। एते गवि वृषे स्युर्भवेयुः।

मिथुनेऽपीति। धान्यानि प्रसिद्धानि। शारदं शरत्समुत्पन्नं यत्किञ्चिद् द्राक्षावल्यादि। शालूकं कुमुदकन्दम्। कार्पासाः प्रसिद्धाः। एते सर्व एव मिथुने। तथा च काश्यपः—

वृषे महिषगोवस्त्रशालयः पुष्पसम्भवाः।
मिथुने धान्यशालूकवल्यः कार्पासशारदम्।। इति।।३।।

अथ कर्कटसिंहयोराह—

कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि।
सिंहे तुषधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ।।४।।

कोदो, केला, दूब, सब फल, कन्द (शकरकन्द आदि), पत्र (सुगन्धपत्र) एवं चोच (नारियल) का स्वामी कर्क है। भूसी वाले धान्य, रस (मधुर आदि छः रस), सिंह आदि प्राणी, त्वचा और गुड़ का स्वामी सिंह है।।४।।

कोद्रवाः प्रसिद्धा। कदली रम्भा। दूर्वा शाद्वलम्। फलानि सर्वाणि जातीफलप्रभृतीनि। कन्दं प्रसिद्धम्। मूले बीजं यस्य तत्कन्दम्। पत्रं सुगन्धपत्रम्। चोचं पालेवतं नालिकेरं वा। एतानि सर्वाणि कर्किणि कर्कटे।

तुषधान्यानि प्रसिद्धानि। शालयः। रसा मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः षट्। सिंहादीनां प्राणिनां सिंहद्वीपिमार्जाराणां त्वचश्चर्माणि विचित्ररूपाणि। एते सगुडा गुडेन सहिताः सिंहे। तथा च काश्यपः—

कर्कटे फलदूर्वाश्च कोद्रवः कदली तथा।
सिंहे धान्यं सर्वरसाः सिंहादीनां त्वचो गुडाः।। इति।।३।।

अथ कन्यातुलयोराह—

षष्ठेऽतसीकलायाः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः।
सप्तमराशौ माषा यवगोधूमाः ससर्षपाश्चैव ।।५।।

अतसी (अलसी = तिसी), कलाय (उड़द), कुलथी, गेहूँ, मूँग और निष्पाव (शालिधान्य या शिम्बि धान्य) का स्वामी कन्या है। मसूर, जौ, गेहूँ और सरसों का स्वामी तुला है।।५।।

अतसी प्रसिद्धा। कलायः सस्यम्। कुलत्थाः। गोधूमाः। मुद्गाः। एते प्रसिद्धाः। अनूत्पन्नानि यानि पुनर्जायन्ते ते निष्पावाः। निष्पावाः शालय इति केचित्। शिम्बिधान्यमिति च केचित्। एते षष्ठे कन्यायाम्। **सप्तमराशाविति**। माषाः। यवाः। गोधूमाः। एते किं भूताः। ससर्षपाः सर्षपसहिताः। एते सप्तमराशौ तुलायाम्। तथा च काश्यपः—

कन्यायां मुद्गनीवारकुलत्थाः सकला यवाः।
तुले तु यवगोधूममाषाः सिद्धार्थकास्तथा।। इति।।५।।

अथ वृश्चिकधनुषोराह—

अष्टमराशाविक्षुः सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि।
नवमे तु तुरगलवणाम्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥६॥

ईख (गन्ना), लता के फल, लोहा और छाग तथा भेड़-सम्बन्धी वस्तुओं का स्वामी वृश्चिक है। घोड़ा, नमक, वस्त्र, तिल, धान्य और मूलोत्पन्न धान्यों का स्वामी धनु है।।६।।

इक्षुः प्रसिद्धः। सैक्यं सेकोत्थं वल्लीफलादि। लोहमायसं कांस्यं वा। एतानि। तथा अजश्छागः। अविः प्रसिद्धः। तज्जातमाविकम्। एतत्सर्वमष्टमराशौ वृश्चिके।

नवमे त्विति। तुरगा अश्वाः। लवणं सैन्धवम्। अम्बराणि वस्त्राणि। अस्त्राण्यायुधानि धनुःशरादीनि। तिलः। धान्यम्। मूलानि प्रसिद्धानि। एतानि नवमे धनुषि। तथा च काश्यपः—

अलिनीक्षुरसं सैक्यमाजं लोहं सकांस्यकम्।
धान्यं धनुषि वस्त्राणि लवणं तुरगास्तथा।। इति।।६।।

अथ मकरकुम्भयोराह—

मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि।
कुम्भे सलिलजफलकुसुमरत्नचित्राणि रूपाणि ॥७॥

वृक्ष, गुल्म (सामयिक वृक्ष), आदि (लता-वल्ली), सैक्य (वल्ली फल आदि), ईख (गन्ना), सोना और लोहे का स्वामी मकर है। जल में उत्पन्न वस्तु, फल, फूल, रस और चित्र वस्तु का स्वामी कुम्भ है।।७।।

तरवो वृक्षाः। गुल्माः प्रसिद्धाः। अकाण्डविटपा इत्यर्थः। आदिग्रहणाल्लतावल्यः। सैक्यं सेकोत्थम्। इक्षुः प्रसिद्धः। सुवर्णं काञ्चनम्। कृष्णलोहमायसम्। एतानि सर्वाणि मरके।

कुम्भ इति। सलिलजं यत्किञ्चिज्जलसम्भूतम्। फलानि प्रसिद्धानि। कुसुमानि। रत्नानि चित्राणि नानाप्रकाराणि येषां रूपाणि। एतानि कुम्भे। तथा च काश्यपः—

मकरे सस्यसीसं च सुवर्णगुडधातुजम्।
कुम्भे कुसुमचित्राणि हंसाश्च जलजास्तथा।। इति।।७।।

अथ मीन आह—

मीने कपालसम्भवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि।
स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥८॥

कपाल-सम्भव-रत्न (मुक्ताफल), जल में उत्पन्न वस्तु, हीरा, नाना प्रकार के तेल और मछली से उत्पन्न मुक्ता आदि का स्वामी मीन है।।८।।

कपालसम्भवानि रत्नानि मुक्ताफलानि। अम्बूद्भवानि शुक्तिसम्भवानि। वज्रं हीरकम्। नैकरूपा बहुविधाः स्नेहास्तैलादयः। मत्स्यजातं मत्स्योद्भूतम्। मुक्तादिकमपि। एते सर्व एव मीने व्याख्याता उक्ताः। तथा च काश्यपः—

पद्ममुक्ताफलादीनां द्रव्याणां मीन ईश्वरः।। इति।।८।।

अथैतेषां द्रव्याणां शुभाशुभज्ञानार्थमाह—

राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः।
द्व्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥९॥

षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु।
उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥१०॥

जिस राशि से चतुर्थ, दशम, द्वितीय, एकादश, सप्तम, नवम या पञ्चम में बृहस्पति तथा द्वितीय, एकादश, दशम, पञ्चम या अष्टम में बुध अवस्थित हो उस राशि के कथित द्रव्यों की वृद्धि करता है। जिस राशि से षष्ठ या सप्तम में शुक्र हो, उस राशि के कथित द्रव्यों की हानि और शेष स्थान (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश या द्वादश) में स्थित हो तो उनकी वृद्धि करता है तथा जिस राशि से पापग्रह (रवि, मङ्गल और शनैश्चर) उपचय (तृतीय, षष्ठ या एकादश) में स्थित हो, उसके द्रव्यों की वृद्धि और शेष स्थान (प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम या द्वादश) में स्थित हो तो हानि करता है।।९-१०।।

राशेश्चतुर्दशेति। यस्य कस्य चोद्देशः। चतुश्चतुर्थस्थानम्। दश दशमम्। अर्थस्थानं द्वितीयम्। आयमेकादशम्। सप्तमनवमपञ्चमानि। एतेषां स्थानानामन्यतमस्थानस्थो जीवो बृहस्पतिस्तत्प्रोक्तद्रव्याणां वृद्धिकरः। द्वितीयम्। एकादशम्। दशमम्। पञ्चमम्। अष्टमम्। एतेषां स्थानानामन्यतमस्थाने स्थितः शशिजो बुधो वृद्धिकरः।

षट्सप्तमग इति। शुक्रो भार्गवः षट्सप्तमस्थानगतो हानिं क्षयं करोति। शेषेष्वन्यतमस्थानेषु प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशेषु स्थितो वृद्धिं करोति। क्रूरा आदित्याङ्गारकशनैश्चरा उपचयसंस्थास्त्रिषडेकादशगताः शुभदा वृद्धिकराः। शेषेष्वन्यस्थानेषु प्रथमद्वितीयचतुर्थपञ्चमसप्तमाष्टमनवमद्वादशेषु हानिकराः। तथा च काश्यपः—

चतुःसप्तद्विपञ्चस्थो नवदिगुद्रगो गुरुः।।
यस्य राशेस्तदुक्तानां द्रव्याणां वृद्धिदः स्मृतः।
शुक्रः षट्सप्तमस्थो वा हानिकृद्वृद्धिदोऽन्यगः।।
द्व्येकादशदशार्थाष्टसंस्थितः शशिजः शुभः।
पापास्तूपचयस्थाश्च वृद्धिं कुर्वन्ति नान्यथा।। इति।।९-१०।।

अत्रैव विशेषमाह—

राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः ।
तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥११॥

जिस राशि से पीड़ास्थान (उपचयस्थान) में स्थित होकर पापग्रह (रवि, मङ्गल, शनि) बली (मित्रगृह, स्वगृह, उच्च या स्वनवांश में स्थित या शुभग्रहों से दृष्ट) हो तो उस राशि के कथित द्रव्य अधिक मूल्य वाले और अलभ्य होते हैं।।११।।

यस्य राशेः क्रूराः पापा रविभौमसौराः पीडास्थानेषूपचयस्थानेष्ववस्थितास्ते च बलिनो वीर्यवन्तो मित्रस्वक्षेत्रोच्चस्वनवांशकेषु स्थिताः शुभेक्षिताश्च तत्प्रोक्तद्रव्याणां तस्य राशेर्यानि प्रोक्तानि द्रव्याणि तेषां कथितद्रव्याणां महार्घता बहुमूल्यत्वं दुर्लभत्वं च दुष्प्रापत्वं भवति। तथा च काश्यपः—

राशेरनिष्टस्थानेषु पापाश्च सबलाः स्थिताः।
तद्द्रव्याणां नाशकरा दुर्लभास्ते भवन्ति हि।। इति ।।११।।

अन्यदप्याह—

इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम् ।
तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्घ्यं वल्लभत्वं च ॥१२॥

जिस राशि से इष्ट स्थान (पूर्व कथित वृद्धि स्थान) में बली होकर शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) स्थित हों तो उस राशि के कथित द्रव्य अल्प मूल्य से मिलने वाले और प्रिय होते हैं।।१२।।

येषां राशीनां सौम्याः शुभग्रहा बुधगुरुशुक्रा इष्टस्थानस्थाः। इष्टस्थानानि यथा जीवश्चतुरादिषु स्थितो बुधश्च द्व्यादिषु स्थितः शुक्रः षट्सप्तमरहितेषु। एतेषु स्थानेषु बलिनो ये येषां राशीनां भवन्ति तद्द्रव्याणां तस्य राशेर्यानि द्रव्याणि तेषां सामर्घ्यं समर्घता वल्लभत्वं च भवति। तथा च काश्यपः—

इष्टस्थाने स्थिताः सौम्या बलिनो येषु राशिषु।
भवन्ति तद्भवानां च द्रव्याणां शुभदाः स्मृताः।। इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः ।
पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्रव्यनिश्चयाध्यायैकचत्वारिंशः ॥४१॥

गोचर-पीड़ा में स्थित राशि (बृहस्पति आदि ग्रहों को उक्त चतुर्थ आदि शुभ स्थानों

से भिन्न स्थान में स्थित होने पर राशि गोचर पीड़ा में स्थित रहती है, ऐसी राशि) यदि बली शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) से देखी जाती हो तो पीड़ा नहीं करती है अर्थात् वे द्रव्य सम मूल्य में रहते हैं। यदि पापग्रह (रवि, मंगल और शनि) से देखी जाती हो तो उस राशि के कथित द्रव्य महर्घ और दुर्लभ होते हैं।।१३।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां द्रव्यनिश्चयाध्याय एकचत्वारिंशः ।।४१।।

जीवादीनां चतुरादीनि स्थानानि यान्युक्तानि तद्व्यतिरिक्तेष्वन्येषु स्थानेषु यदा स्थिता भवन्ति तदा गोचरपीडा तस्यां सत्यामपि राशिर्यदा शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैर्बलिभिः सवीर्यैर्दृष्टोऽवलोकितो भवति तदा पीडां न करोति। एतदुक्तं भवति—तद्द्रव्याणि नातिसमर्घाणि भवन्ति। क्रूरैः पापग्रहैरादित्याङ्गारशनैश्चरैर्बलिभिर्गोचरपीडायां यदि राशिर्दृश्यते तदा विपर्यासो विपरीतो भवति। तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च भवति।।१३।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ द्रव्यनिश्चयो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

अथार्घकाण्डाध्यायः

अथातोऽर्घकाण्डाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनसम्प्रदर्शनार्थमाह—

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च।
दृष्ट्वाऽमावास्यायामुत्पातान् पौर्णमास्यां च ॥१॥
ब्रूयादर्घविशेषान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात् सूर्ये।
अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमरार्तये राज्ञाम् ॥२॥

मेषादि राशियों में सूर्य के गमन करने पर प्रति मास की अमावास्या और पूर्णिमा में अतिवृष्टि, उल्का, दण्ड, परिवेष, ग्रहण, परिधि आदि (रजोनिहार, दिग्दाह और गन्धर्वनगर रूप) उत्पातों को देख कर द्रव्यें के विशेष मौल्य का विचार करना चाहिये। अन्य (अमावास्या और पूर्णिमा से भिन्न) तिथि में होने वाले उत्पात राजाओं को शस्त्र-कलह से पीड़ित करते हैं।।१-२।।

अतिवृष्टिरतिवर्षणम्। उल्का। तस्या लक्षणमुक्तम्—'उल्का शिरसि विशाला' इति। दण्डस्तस्य च लक्षणमुक्तम्—'रविकिरणजलदमरुताम्' इति। तथा परिवेषस्तस्य लक्षण-मुक्तम्। ग्रहणमर्केन्द्वोः। परिधिः प्रतिसूर्यस्तस्य लक्षणमुक्तम्। तत्पूर्वांस्तदाद्यान्। आदिग्रहणाद् रजोनीहारदिग्दाहगन्धर्वनगराणि ग्रहीतव्यानि। एतानुत्पातानमावास्यायां पौर्णमास्यां च।

दृष्ट्वाऽवलोक्यार्घविशेषान् सूर्ये आदित्ये राशिषु मेषादिषु प्रतिमासं क्रमात् परिपाट्या तद् ब्रूयाद् वदेत्। अन्यस्मिंस्तिथावमावास्यां पौर्णमासीं च वर्जयित्वा ये उत्पाता अति-वृष्ट्यादयो भवन्ति। ते राज्ञां नृपाणां डमरार्तये भवन्ति। डमरं शस्त्रकलहस्तेनार्तिः पीडा भवति। तथा च काश्यपः—

उल्कातिवृष्टिर्ग्रहणे सूर्येन्द्वोः परिवेषणम्।
प्रतिसूर्यादयो येऽन्ये पक्षमासान्तसंक्षये।।
तिथौ निरीक्ष्य चोत्पातान् ब्रूयाल्लोके शुभाशुभम्।
सुभिक्षदुर्भिक्षकृतान् विशेषोऽत्र विचारतः।।
प्रतिमासं विधानज्ञो नान्यस्मिन् दिवसे वदेत्।
अन्यत्र ये भवन्त्येते ते सर्वे नृपदोषदाः।। इति।।१-२।।

अथोत्पातेऽमावास्यायां पौर्णमास्यां च मेषवृषस्थे सूर्ये किं कुर्यादित्याह—

मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यस्य संग्रहं कृत्वा।
वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥३॥

मेष राशि में स्थित सूर्य के समय में ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का तथा

वृष राशि में स्थित सूर्य के समय में उसमें होने वाले मूल और फलों का संग्रह करे, उन (मेष और वृष) से चतुर्थ मास में उसको विक्रय करने से लाभ होता है।।३।।

सूर्ये रवौ मेषोपगते मेषं प्राप्ते। अमावास्यायां पौर्णमास्यां चोत्पातानुक्तान् दृष्ट्वा ग्रीष्मजस्य ग्रीष्मोत्पन्नस्य धान्यस्य संग्रहं कृत्वा तथा वृषे वृषगतेऽर्के वनमूलफलस्य वन्यानां मूलफलानां संग्रहं कृत्वा तयोर्मेषवृषयोश्चतुर्थे मासि विक्रयाल्लाभो भवति।।३।।

अथ मिथुनस्थ आह—

मिथुनस्थे सर्वरसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय।
षष्ठे मासे विपुलं विक्रेता प्राप्नुयाल्लाभम् ।।४।।

मिथुन राशिगत सूर्य के समय में मधुर आदि सभी रसों का संग्रह करके उससे छठे मास में विक्रय करने से बहुत लाभ होता है।।४।।

मिथुनस्थेऽर्के प्रागुक्तानुत्पातान् दृष्ट्वा। सर्वरसान् मधुरादीन्। धान्यानि च शालीन्। संग्रहं समुपनीय। संग्रहमेषां कृत्वा विक्रेता षष्ठे मासे विपुलं विस्तीर्णं लाभं प्राप्नुयाल्लभेत।

अथ कर्कटस्थ आह—

कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय।
द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ।।५।।

कर्क राशिगत सूर्य के समय में मधु, सुगन्ध, द्रव्य, तेल, घी और शक्कर का संग्रह करके दूसरे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है। दो महीने से कम या अधिक में विक्रय करने से नाश होता है।।५।।

अर्के आदित्ये कर्किणि कर्कटस्थे मधु माक्षिकम्। गन्धः सुगन्धद्रव्याणि। तैलम्। घृतमाज्यम्। फाणितमिक्षुरसक्वाथः क्षुद्रगुडादि। एतानि विनिधाय संस्थाप्य द्वितीयमासे विक्रयाद् द्विगुणा लब्धिर्भवति। हीने कालेऽधिके वा विक्रयाच्छेदो भवति।।५।।

अथ सिंहस्थ आह—

सिंहे सुवर्णमणिचर्मवर्मशस्त्राणि मौक्तिकं रजतम्।
पञ्चममासे लब्धिर्विक्रेतुरतोऽन्यथा छेदः ।।६।।

सिंह राशिगत सूर्य के समय में सोना, मणि, चमड़ा, शस्त्र, मोती और चाँदी का संग्रह करके पाँचवें मास में विक्रय करने से लाभ होता है। न्यूनाधिक काल में विक्रय करने से हानि होती है।।६।।

सिंहस्थेऽर्के सुवर्णम्। मणयः। चर्माणि। वर्म सन्नाहः। शस्त्राण्यायुधानि। मौक्तिकं मुक्ताफलानि। रजतं रौप्यम्। एतानि विनिधाय विक्रेतुः पञ्चमे मासे विक्रयाल्लब्धिर्भवति। अतोऽन्यथा ऊने कालेऽधिके वा छेदो भवति।।६।।

अथ कन्यागते रवावाह—

कन्यागते दिनकरे चामरखरकरभवाजिनां क्रेता।
षष्ठे मासे द्विगुणं लाभमवाप्नोति विक्रीणन्॥७॥

कन्या राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देख कर चामर, गहदा, ऊँट और घोड़ों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।७।।

दिनकरे सूर्ये कन्यागते प्रागुक्तानुत्पातान् दृष्ट्वा चामरं बालव्यजनम्। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। वाजी तरगः। एषां क्रेता षष्ठे मासे विक्रीणन् विक्रेता द्विगुणं लाभमाप्नोति लभते।।७।।

अथ तुलागत आह—

तौलिनि तान्तवभाण्डं मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि।
आदद्याद्धान्यानि च वर्षार्द्धाद् द्विगुणिता वृद्धिः॥८॥

तुला राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देखकर सूती तथा ऊनी वस्त्र, वर्तन, मणि, कम्बल, काँच, पीले वस्त्र, पुष्प और धान्यों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।८।।

तौलिनि तुलागतेऽर्के तान्तवभाण्डं तन्तुकृतं यत्किञ्चित् कर्म कर्पटादि मणयः। कम्बलम्। काचम्। पीतानि पीतवर्णानि कुसुमानि पुष्पाणि। एतान्यादद्याद्ग्राहयेत्। धान्यानि च तथा। वर्षार्द्धात् षड्भिर्मासैर्द्विगुणिता वृद्धिर्द्विगुणत्वं व्रजन्ति। द्विगुणलाभो भवतीत्यर्थः।

अथ वृश्चिकस्थ आह—

वृश्चिकसंस्थे सवितरि फलकन्दकमूलविविधरत्नानि।
वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति॥९॥

वृश्चिक राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर फल, कन्द, मूल और अनेक प्रकार के रत्नों का संग्रह करके दो वर्ष बाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।९।।

सवितरि आदित्ये वृश्चिकसंस्थे। फलानि। कन्दको मूलविशेषः। मूलानि अन्यानि द्रव्याणि। विविधानि नानाकाराणि रत्नानि। एतानि वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ददति।।९।।

अथ धन्विस्थ आह—

चापगते गृह्णीयात् कुङ्कुमशङ्खप्रवालकाचानि।
मुक्ताफलानि च ततो वर्षार्द्धात् द्विगुणतां यान्ति॥१०॥

धनु राशिगत सूर्य के समय में पूर्वोक्त उत्पात होने पर कुंकुम, शङ्ख, मूँगा, काँच और मोतियों का संग्रह करके छः मास बाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।१०।।

चापगते धन्विस्थेऽर्के गृह्णीयात्। कुङ्कुमं काश्मीरम्। शङ्खम्। प्रवालं विद्रुमम्। काचम्।

मुक्ताफलानि च। ततोऽनन्तरं क्रमात् परतः वर्षार्द्धात् षड्भिर्मासैर्द्विगुणतां यान्ति। द्विगुणं लाभं ददति।।१०।।

अथ मकरकुम्भस्थेऽर्क आह—

मृगघटसंस्थे सवितरि गृह्णीयाल्लोहभाण्डधान्यानि।
स्थित्वा मासं दद्याल्लाभार्थी द्विगुणमाप्नोति ।।११।।

मकर या कुम्भ राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर लोहा, बर्तन और धान्यों का संग्रह करके एक मास बाद बेचने से लाभार्थी व्यापारी दूना लाभ प्राप्त करता है।

मृगो मकरः। घटः कुम्भः। सवितर्यादित्ये मृगघटसंस्थे लोहभाण्डधान्यानि गृह्णीयात् स्थापयेत्। लोहमयानि भाण्डानि धान्यानि च मासं स्थित्वा मासं संस्थाप्य ततो दद्याद्विक्रयं कुर्यात्। लाभार्थी द्विगुणं लाभमाप्नोति लभते।।११।।

अथ मीनस्थेऽर्क आह—

सवितरि झषमुपयाते मूलफलं कन्दभाण्डरत्नानि।
संस्थाप्य वत्सरार्द्धं लाभकमिष्टं समाप्नोति ।।१२।।

मीन राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर मूल, फल, कन्द, बर्तन और रत्नों का संग्रह करके छः मास बाद बेचने से मनमाना लाभ होता है।।१२।।

सवितरि आदित्ये झषं मीनमुपयाते प्राप्ते। मूलानि। फलानि। कन्दो मूलविशेषः। भाण्डानि नानाकाराणि। रत्नानि मणयः। एतान् गृहीत्वा वत्सरार्द्धं मासषट्कं संस्थाप्येष्टं यथाभिलषितं लाभं वृद्धिं समाप्नोति लभते।।१२।।

अत्रैव पुनरपि विशेषमाह—

राशौ राशौ यस्मिन् शिशिरमयूखः सहस्रकिरणो वा।
युक्तोऽधिमित्रदृष्टस्तत्रायं लाभको दिष्टः ।।१३।।

जिस-जिस राशि में स्थित चन्द्र या सूर्य अपने तात्कालिक अधिमित्र ग्रह से युत या दृष्ट हों, उसी राशि में पूर्वोक्त लाभ होता है; अन्यत्र नहीं।।१३।।

यस्मिन् राशौ राशौ मेषादिके शिशिरमयूखश्चन्द्रः सहस्रकिरणो वा सूर्यः। अधिमित्रेण तात्कालिकेन दृष्टो विलोकितो मित्रयुक्तश्च भवति। यतस्तत्कालं दशायबन्धुसहजस्वान्तेषु स्थितो ग्रहो मित्रं भवति। तद्युक्तत्वात्तेन मित्रयुक्तोऽधिमित्रदृष्टः। तत्र तस्मिन् राशौ अयं लाभको दिष्टोऽभिहितो नान्यत्र योगासम्भवात्। यतोऽमावास्यापौर्णमास्योरयं विचारः। उत्पातदर्शनात्। अतः शिशिरमयूखसहस्रकिरणग्रहणं कृतम्। तथा च काश्यपः—

राशौ राशौ स्थितः सूर्यः शशी वा मित्रसंयुतः।
अधिमित्रेण सन्दृष्टो यथा लाभप्रदः स्मृतः।। इति।।१३।।

अत्रैव विशेषमाह—

सवितृसहित: सम्पूर्णो वा शुभैर्युतवीक्षित:
शिशिरकिरण: सद्योऽर्घस्य प्रवृद्धिकर: स्मृत:।
अशुभसहित: सन्दृष्टो वा हिनस्त्यथवा रवि:
प्रतिगृहगतान् भावान् बुद्ध्वा वदेत् सदसत्फलम्॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामर्घ-
काण्डाध्यायो द्विचत्वारिंश: ॥४२॥

जिस राशि में सूर्ययुत चन्द्र या पूर्णचन्द्र शुभग्रह (बुध, बृहस्पति और शुक्र) से युत या दृष्ट हो, उस राशिसम्बन्धी द्रव्य में मौल्य की वृद्धि करता है तथा जिस राशि में पापग्रह (मङ्गल और शनि) से युत या दृष्ट हो, उस राशिसम्बन्धी द्रव्यों का नाश करता है। इसी प्रकार प्रत्येक राशिगत द्रव्यों को जानकर शुभाशुभ फल कहना चाहिये।।१४।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामर्घकाण्डाध्यायो द्विचत्वारिंश: ॥४२॥

शिशिरकिरणश्चन्द्र: सवितृसहित: सूर्येण सहावस्थितोऽमावास्यायां शुभग्रहैर्बुध-जीवशुक्रैर्युत: संयुतो वीक्षितो यत्र राशौ भवति तत्र सद्योऽर्घस्य सुवृद्धिकर: स्मृत:।

अथाशुभसहित: पापग्रहाभ्यां भौमसौराभ्यां युक्त: सन्दृष्टो रविर्वा चन्द्रो हिनस्ति नाशयति। अर्घहानिं करोतीर्त्य:। एवं प्रतिगृहगतान् प्रतिराशिव्यवस्थितान् भावान् द्रव्या-ण्युक्तान् बुद्ध्वा ज्ञात्वा सदसच्छुभमशुभं वा फलं वदेद् ब्रूयादिति। तथा च काश्यप:—

अत्रार्कशशिनौ सौम्यै: संयुक्तौ वा निरीक्षितौ।
शुभग्रहस्थानगतौ सद्योऽर्घस्य विवृद्धिदौ।।
विपरीतस्थितावेतौ पापयुक्तौ निरीक्षितौ।
अर्घहानिकरौ प्रोक्तौ मिश्रितौ मध्यमौ स्मृतौ।। इति।।१४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावर्घकाण्डं
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्याय: ॥४२॥

अथेन्द्रध्वजसम्पदाध्याय:

अथेन्द्रध्वजसम्पद्व्याख्यायते। तत्रादावेव तदुत्पत्तिप्रदर्शनार्थमाह—

ब्रह्माणमूचुरमरा भगवन् शक्ताः स्म नासुरान् समरे।
प्रतियोधयितुमतस्त्वां शरण्यशरणं समुपयाताः ॥१॥

सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा, हे भगवन्! राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये हम समर्थ नहीं हैं, अतः आपकी शरण में आये हैं॥१॥

अमरा देवा ब्रह्माणमूचुः पितामहमुक्तवन्तः। किं तदित्याह—हे भगवन् पितामह! वयमसुरान् दैत्यान् समरे संग्रामे प्रतियोधयितुं तैः सह युद्धं कर्तुं न शक्ताः स्मः। अतोऽस्माद्धेतोः शरण्यं त्वां शरणं वयं समुपयाताः प्राप्ता इति॥१॥

ततोऽनन्तरं स तानाह—

देवानुवाच भगवान् क्षीरोदे केशवः स वः केतुम्।
यं दास्यति तं दृष्ट्वा नाजौ स्थास्यन्ति वो दैत्याः ॥२॥

भगवान् ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—क्षीरसागर में भगवान् नारायण विराजमान हैं। वे एक केतु (ध्वज) आपको देंगे, जिसको देखकर राक्षसगण युद्ध में नहीं ठहरेंगे।

भगवान् ब्रह्मा देवानुवाच प्रोक्तवान्। क्षीरोदे क्षीरसमुद्रे यः केशवो नारायणः स वो युष्मभ्यं यं केतुं ध्वजं दास्यति तं दृष्ट्वा अवलोक्य वो युष्माकमाजौ संग्रामे दैत्या न स्थास्यन्ति॥२॥

ततः किमित्याह श्लोकत्रयेण—

लब्धवराः क्षीरोदं गत्वा ते तुष्टुवुः सुराः सेन्द्राः।
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभमणिकिरणोद्भासितोरस्कम् ॥३॥

श्रीपतिमचिन्त्यमसमं समं ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम्।
परमात्मानमनादिं विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम् ॥४॥

तैः संस्तुतः स देवस्तुतोष नारायणो ददौ चैषाम्।
ध्वजमसुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम् ॥५॥

इस तरह वर प्राप्त कर इन्द्र के साथ देवताओं ने क्षीरसागर जाकर भगवान् नारायण की इस प्रकार स्तुति की—श्रीवत्सचिह्न से युत, कौस्तुभ मणि की किरणों से प्रकाशित वक्षःस्थल वाले, लक्ष्मीनाथ, अचिन्त्य, अनौपम्य, सभी प्राणियों में गत होने के कारण सम, सभी प्राणियों के द्वारा बड़ी कठिनता से जानने योग्य होने के कारण सूक्ष्म, परमात्मा,

अनादि (उत्पत्ति-रहित), विष्णु (व्यापक), अज्ञात निधन वाले—इस तरह इन्द्र के साथ देवताओं से संस्तुत उस देव नारायण ने सन्तुष्ट होकर राक्षस और देवताओं के स्त्रियों के मुखरूप कमल-वन में क्रम से चन्द्र और सूर्य के समान (राक्षसों की स्त्रियों के मुखकमल म्लान करने के कारण चन्द्र और देवताओं की स्त्रियों के मुखकमल को प्रफुल्लित करने के कारण सूर्य की तरह) ध्वज देवताओं को दिया।।३-५।।

ते सेन्द्रा इन्द्रसहिताः सुरा देवा लब्धो वरो यैस्ते लब्धवराः क्षीरोदं क्षीरसमुद्रं गत्वा तं भगवन्तं केशवं तुष्टुवुः स्तुतवन्तः। श्रीवत्साङ्कं श्रीवत्समङ्कं चिह्नं यस्य तम्। कौस्तुभो मणिविशेषस्तस्य किरणा रश्मयस्तैरुद्भासितमुरो वक्षो यस्य तम्।

तथाभूतं श्रीपतिं लक्ष्मीनाथम्। अचिन्त्यम्। चिन्तयितुं न शक्यम्। असमम्। असदृशम्। अनौपम्यमित्यर्थः। समं सर्वगतत्वात्तुल्यम्। ततः समत्वात् सर्वदेहिनां सर्व-भूतानां सूक्ष्मं दुर्विज्ञेयम्। परमात्मानम्। परमश्चासौ आत्मा परमात्मा तं तथाभूतम्। अनादिम्। न आदिरुत्पत्तिर्विद्यते यस्य तम्। विष्णुम्। व्यापकम्। अविज्ञातपर्यन्तम्। न विज्ञातः पर्यन्तः सर्गो यस्य तम्। अविज्ञातनिधनमित्यर्थः।

तैः सेन्द्रैर्देवैः संस्तुतः स देवो नारायणस्तुतोष। तुष्टश्चैषां देवानां ध्वजं ददौ। कीदृशं ध्वजम्? असुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम्, असुरा दैत्याः सुरा देवास्तेषां वध्वः स्त्रियस्तासां मुखकमलानि वक्त्रपद्मानि तदेव मुखकमलानां वनं समूहस्तत्र तीक्ष्णांशुः सूर्यः। विकाशकत्वात्। त्रिभिर्विशेषकम्।।३-५।।

कीदृशं ध्वजं ददावित्याह—

तं विष्णुतेजोद्भवमष्टचक्रे रथे स्थितं भास्वति रत्नचित्रे।
देदीप्यमानं शरदीव सूर्यं ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः।।६।।

विष्णु के तेज से उत्पन्न, आठ चक्रों से युत, प्रकाशित तथा मणियों से भूषित रथ पर स्थित और शारदीय सूर्य की तरह प्रकाशमान ध्वज पाकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुये।।६।।

तं ध्वजं विष्णुतेजोभवम्। विष्णुतेजसोद्भव उत्पत्तिर्यस्य तम्। अष्टचक्रे रथे स्थितम्। अष्टभिश्चक्रैर्यो युक्तो रथः स्यन्दनं तत्र स्थितम्। कीदृशे भास्वति। तेजोयुते। रत्नचित्रे मणि-भूषिते। कीदृशं ध्वजम्। देदीप्यमानं शरदीव सूर्यम्। शरदि शरत्काले सूर्यमादित्यमिव देदीप्यमानं ज्वलन्तम्। एवंविधं तं ध्वजं शक्र इन्द्रः समासाद्य प्राप्य मुमोद जहर्ष।।६।।

ततस्तं प्राप्य किं कृतवानिन्द्र इत्याह—

स किङ्किणीजालपरिष्कृतेन स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन।
समुच्छ्रितेनामरराड्ध्वजेन निन्ये विनाशं समरेऽरिसैन्यम्।।७।।

किङ्किणियों (सूक्ष्म घण्टाओं) के समूह से भूषित, माला, छत्र, घण्टा और पिटक (ध्वजा में लगाने का एक प्रकार का भूषण) से युत उन्नत ध्वज के द्वारा युद्ध में शत्रु की सेना का नाश किया।।७।।

अमरराडिन्द्रस्तेन ध्वजेन समुच्छ्रितेनारिसैन्यं शत्रुसैन्यं समरे संग्रामे विनाशं क्षयं निन्ये। कीदृशेन? किङ्किणीजालपरिष्कृतेन। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। तासां जालं समूहः। तेन परिष्कृतेन युक्तेन। स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन, स्रक् माला। छत्रमातपत्रम्। घण्टा प्रसिद्धा। पिटकानि विभूषणानि। तैरन्वितेन युक्तेन। तथा च गर्गः—

असुरास्तं ध्वजं दृष्ट्वा ध्वजतेजःसमाहताः।
विसंज्ञाः समरे भग्नाः पराभूता प्रदुद्रुवुः।।
तान् वज्रेण सहस्राक्षो मासे भाद्रपदेऽसुरान्।
घातयित्वा सज्येष्ठायामेकरात्रेण वाजिना।।
स जित्वा श्रवणे स्वर्गं प्रययौ सद्विजः पथि।। इति।।७।।

ततस्तं ध्वजमिन्द्रो वसुं ददावित्याह—

उपरिचरस्यामरपो वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम्।
यष्टिं तां स नरेन्द्रो विधिवत् सम्पूजयामास ।।८।।

इन्द्र ने ऊपर गमन करने वाले (भूमि पर रहते हुये भी स्वर्ग जाने वाले) चेदि देश के राजा वसु को एक बाँस का दण्ड दिया, जिसका विधिपूर्वक चेदिपति राजा ने पूजन किया।।८।।

ततोऽमरप इन्द्र उपरिचरस्योर्ध्वगामिनो वसुनामचेदिपस्य वेणुमयीं यष्टिं ददौ। चेदिनां जनपदानां राजा वसुपो भूमिष्ठः सन् उपरि चरति स्वर्गं याति। तथा स नरेन्द्रश्चे-दिपो विधिवत्तां यष्टिं सम्पूजयामास पूजितवान्।।८।।

अथ शक्रप्रसादं ध्वजमाहात्म्यं श्लोकद्वयेनाह—

प्रीतो महेन मघवा प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति।
वसुवद्वसुमन्तस्ते भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ।।९।।
मुदिताः प्रजाश्च तेषां भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः।
ध्वज एव चाभिधास्यति जगति निमित्तैः फलं सदसत् ।।१०।।

राजा वसु की पूजा से प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा—राजा वसु की तरह जो राजा उत्सव करेगा, वह अनेक प्रकार के रत्नों से युत पृथ्वी पर आदेश करने वाला राजा होगा। उस राजा के प्रजागंण हर्षयुत, भय-रोग से रहित और बहुत अन्नों से युत होंगे तथा संसार में कारणों के द्वारा ध्वज ही शुभाशुभ फल कहेगा।।९-१०।।

मघवा भगवानिन्द्रो महेन पूजया प्रीतः परितुष्टः प्राह उक्तवान्। एवमनेन प्रकारेण वसुवद्वसुना तुल्यं ये नृपा राजानः करिष्यन्ति ते वसुमन्तः। वसूनि रत्नानि विद्यन्ते येषाम्। तथा भुवि भूमौ सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति। सिद्धा आज्ञा येषां ते विहितादेशाः कृता-देशा इत्यर्थः।

मुदिता इति। तेषां नृपाणां प्रजा जना मुदिता भविष्यन्ति तथा भयरोगैर्विवर्जिता रहिताः। प्रभूतान्नाः। प्रभूतं बह्वन्नं येषां ते। ततो ध्वज एव जगति लोके निमित्तैः कारणैः सदसच्छुभाशुभं फलं दास्यति। एतदुक्तं भवति—य एवं भगवता दत्तं ध्वजं राजा पूजयिष्यति। स एव ध्वजः पूज्यमानो लोके निमित्तैश्चिह्नैः शुभाशुभं दास्यतीत्यर्थः। युगलकम्।।९-१०।।

अथास्य विधानं वक्ष्यामीत्याह—

पूजा तस्य नरेन्द्रैर्बलवृद्धिजयार्थिभिर्यथा पूर्वम्।
शक्राज्ञया प्रयुक्ता तामागमतः प्रवक्ष्यामि ।।११।।

पूर्व काल में इन्द्र की आज्ञा से बल की वृद्धि और जय की इच्छा रखने वाले राजाओं ने जिस तरह उस ध्वज का पूजन किया, शास्त्र से लेकर उसको मैं कहता हूँ।।११।।

तस्य ध्वजस्य नरेन्द्रै राजभिर्बलवृद्धिजयार्थिभिः। बलवृद्धिजयानां येऽर्थिनः प्रार्थनापरास्तैर्यथा येन प्रकारेण पूर्वं पुरा शक्राज्ञया इन्द्राज्ञया प्रयुक्ता कृता तां पूजामागमत आगमात् प्रवक्ष्यामि। यथावदभिधास्यामीत्यर्थः।।११।।

अथ तदभिधानमेवाह—

तस्य विधानं शुभकरणदिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्तैः।
प्रास्थानिकैर्वनमियाद् दैवज्ञः सूत्रधारश्च ।।१२।।

शुभ करण (९९ अध्याय के ४-५ श्लोक में उक्त), शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ शकुन और शुभ मुहूर्त (यात्रा में उक्त मुहूर्त) में ज्योतिषी और बढ़ई को वन में गमन करना चाहिये।।१२।।

तस्येन्द्रध्वजस्य विधानं करणम्। शुभे शुभप्रदे करणे। करणानि बवादीनि। तस्मिन् शुभे विष्टिपरिवर्जिते। आचार्योऽत्र लक्षणं कथयिष्यति। यथा—

बववालवकौलवतैतिलाख्यगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम्।
पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः।।
कृष्णचतुर्दश्यर्द्धाद् ध्रुवाणि शकुनिश्चतुष्पदं नागम्।
किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृषफणिमारुताः पतयः।।

एवंविधे शुभे करणे। दिवसशब्देन तिथिर्वा वार उच्यते—

नन्दा भद्रा रिक्ता पूर्णा च नामसदृशफलाः। इति।

शुभतिथौ। तथैवं शुभे पूर्णचन्द्रबुधजीवशुक्राणामन्यतमयुक्तस्य दिने। शुभनक्षत्रे दारुणोग्रवर्जिते लघूनि साधारणे च पापग्रहवर्जिते। लघुहस्ताश्विनपुष्य इत्यादि निरुपहते नक्षत्रे। शुभे मङ्गले शकुने दध्यक्षतकुसुमादीनां दर्शने। शुभे मुहूर्ते। मुहूर्तानि यात्रायामुक्तानि। तद्यथा—यात्रायां गरवणिजविष्टिपरिवर्जितानि करणानीति करणानां फलमुक्तम्। दिवसगुणा

वारगुणाः। उदरनयनरोगश्वपदारुण्यबाधा इत्युक्ताः। नक्षत्राणाम्। दिशि दिशि बहुलाद्या इति। मङ्गलानि च सिद्धार्थकादर्शमयाऽञ्जनानीति। मुहूर्ताः—

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरञ्चिपङ्कजप्रभवाः।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि ।।
रुद्राजाहिर्बुध्न्याः पूषादस्रान्तकाग्निधातारः।
चन्द्रादितिगुरुहरिरवित्वाष्ट्राण्यनिलाख्यका रात्रौ।।
अह्नः पञ्चदशांशे रात्रेश्चैवं मुहूर्त इति।
संज्ञा स च विज्ञेयश्छायायन्त्राम्बुभिर्युक्त्या।। इति।

एतैः प्रास्थानिकैः। प्रस्थाने गमने भवाः प्रास्थानिकास्तैर्दैवज्ञः कालवित् सूत्रधारश्च तक्षा वनमियाद् गच्छेत्।।१२।।

तत्र वने किं कुर्यादित्यशुभतरुच्छदवर्जं श्लोकद्वयेनाऽऽह—

उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः ।
कुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्लीवन्दाकयुक्ताश्च ।।१३।।

बहुविहगालयकोटरपवनानलपीडिताश्च ये तरवः ।
ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ।।१४।।

उद्यान (फुलवाड़ी), देवालय, श्मशान, वल्मीक (वमई = दिवड़ा भीड़), मार्ग तथा यज्ञभूमि में उत्पन्न, कुबड़ा, खड़े ही सूख गये, काँटेदार, लताओं से युत, वन्दाकवृक्ष से युत, बहुत पक्षियों के घोंसले वाले, वायु से टूटे हुये, आग से जले हुये और स्त्रीलिङ्ग नाम वाले (कदली, वदली आदि) वृक्षों के अतिरिक्त शुभ वृक्ष इन्द्रध्वज के लिये काटे गये।।१३-१४।।

एवंविधास्तरवो वृक्षाः शक्रकेत्वर्थे इन्द्रध्वजार्थे न शुभा न प्रशस्ताः। कीदृशाः? उद्यानमुपवनम्। देवतालयं सुरगृहम्। पितृवनं श्मशानम्। वल्मीकः प्रसिद्धो वल्मीककृतो मृद्यूपः। मार्गः पन्थाः। चितिर्यज्ञभूमिः। एतेषु ये जाताः। तथा कुब्जा अस्पृष्टार्थाः। ऊर्ध्वशुष्काः। तथा कण्टकिनः कण्टकयुक्ता वदरीप्रभृतय इत्यर्थः। वल्लीभिर्युक्ता लतापरिवेष्टिताः। वन्दाकयुक्ताश्च। वन्दाको वृक्षविशेषस्तेन युक्ताः।

तथा प्रभूतानां विहगानां पक्षिणामालयानि गृहाणि यत्र सन्ति। कोटरं छिद्रम्। पवनेन वायुना ये पीड़िता भग्नाः। अनलेन पीड़िता दग्धाः। तथा च ये स्त्रीसंज्ञाः स्त्रीनामानः स्युर्भवेयुः। यथा कदली बदरी द्रेकाण्येवमादि। एतत्प्रतिपादितं यत्तद्वर्जितं शुभतरुछेदनं कार्यम्। तथा च गर्गः—

प्रोष्ठपादे प्रतिपदि ध्वजार्थं पूर्वतो वनम्।
गत्वा वृक्षं परीक्षेत वयःसारगुणान्वितम्।। इति।।१३-१४।।

अथैषां केतुः शोभन इत्याह—

श्रेष्ठोऽर्जुनोऽजकर्णः प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते।
एतेषामेकतमं प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥१५॥

अर्जुन (काहू), अजकर्ण, प्रियक, धव और गूलर—ये पाँच वृक्ष ध्वज के लिये शुभ होते हैं। इनमें एक या अन्य वृक्ष वक्ष्यमाण शुभ लक्षणों से युत हैं।।१५।।

अर्जुनो वृक्षः श्रेष्ठः प्रशस्तः। अजकर्णः। प्रियकः। धवः। उदुम्बरः। एते पञ्च श्रेष्ठाः। एतेषां मध्यादेकतममन्यतमम्। अथवाऽपरमन्यं वृक्षं प्रशस्तं शुभलक्षणमित्यर्थः।।१५।।

तत्कीदृशमित्याह—

गौरासितक्षितिभवं सम्पूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम्।
विजने समेत्य रात्रौ स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मन्त्रम् ॥१६॥

श्वेत या काली भूमि में उत्पन्न (शुभ लक्षणयुत) वृक्ष के पास जाकर ब्राह्मण जन-रहित स्थान में रात्रि के समय विधिपूर्वक पूजन के बाद वृक्ष को स्पर्श करके वक्ष्यमाण मन्त्र बोले।।१६।।

गौरायामसितायां च क्षितौ भूमौ भव उत्पत्तिर्यस्य तं तथाभूतं वृक्षं द्विजो ब्राह्मणः पूर्वं प्रथमसमये रात्रौ निशि विजने जनरहिते समेत्य गत्वा यथाविधि सम्पूज्य समभ्यर्च्य स्पृष्ट्वा च मन्त्रमिमं ब्रूयाद्वदेत्।।१६।।

तमेव मन्त्रं श्लोकद्वयेनाह—

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः।
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः ॥१७॥
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तमम्।
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८॥

इस वृक्ष पर जितने जन्तु हैं, सबके लिये शुभ हो, आप सबों के लिये मैं नमस्कार करता हूँ, इस बलि को ग्रहण करके आप सब दूसरी जगह वास करें। हे प्रधान वृक्ष! आपके लिये शुभ हो, इन्द्रध्वज के लिये राजा आपको पाने की इच्छा कर रहा है। अतः मेरी की हुई पूजा ग्रहण करें।।१७-१८।।

इहास्मिन् वृक्षे तरौ यानि भूतानि च सन्ति तेभ्यो भूतेभ्यः स्वस्ति श्रेयोऽस्तु। वो युष्माकं नमस्कारो भवतु। इममपहारमिमं बलिं गृहीत्वा वासपर्ययः क्रियतामन्यत्र वासं गृहं कल्पयत्विति।

ते तव नगोत्तम वृक्षप्रधान स्वस्त्यस्तु। पार्थिवो राजा देवराजस्येन्द्रस्य ध्वजार्थं वरयते। तस्मादियं मत्प्रयुक्ता पूजा प्रतिगृह्यताम्।।१७-१८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक् प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा।
परशोर्जर्जरशब्दो नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ॥१९॥

बाद में सूर्योदय के समय उत्तर या पूर्व-मुख होकर वृक्ष को काटे। परशु (फरसा = कुल्हार) का जर्जर शब्द निकलना शुभ नहीं है, किन्तु मधुर और घने शब्द का निकलना शुभ है।।१९।।

ततः प्रभातसमये अरुणोदयकाले वृक्षं तरुं छिन्द्यात्। कीदृशो भूत्वा? उदक् प्राङ्-मुखोऽपि वा भूत्वा, उत्तराभिमुखः पूर्वाभिमुखोऽपि वा स्थित्वा। परशोः कुठारस्य जर्जर-शब्दो भिन्नशब्दो नेष्टो न शुभः। स्निग्धो मधुरः, घनः सन्ततश्च हितः प्रशस्तः।।१९।।

अथ पतितस्य शुभाशुभज्ञानमाह—

नृपजयदमविध्वस्तं पतनमनाकुञ्चितं च पूर्वोदक्।
अविलग्नं चान्यतरौ विपरीतमतस्त्यजेत्पतितम् ॥२०॥

अखण्डित या अवक्र होकर और पूर्व या उत्तर दिशा में वृक्ष का गिरना राजा की विजय करने वाला होता है। इनसे भिन्न लक्षणयुत होकर (खण्डित या वक्र होकर आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम या वायव्य कोण में) वृक्ष का गिरना अशुभ है।।२०।।

वृक्षस्य पतनमविध्वस्तं ध्वंसरहितं नृपजयदम्। अभग्नस्य पतनमित्यर्थः। अनाकुञ्चितं पतनं नृपजयदमेव। तथा पूर्वोदक् पूर्वस्यामुत्तरस्यां दिशि यदि पतितं तदापि नृपजयदम्। तथाप्यन्यतरावन्यस्मिन् वृक्षे अविलग्नं पतनं नृपजयदम्। अतोऽस्माद्विपरीतं त्यजेत् परिहरेदित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—वृक्षं कुञ्चितं कुब्जं कृत्वा यत् पतितं तथाग्नेयीदक्षिण-नैर्ऋत्यपश्चिमवायव्यासु पतितमन्यस्मिंस्तरौ च लग्नं तन्न शुभदमित्यर्थः।।२०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

छित्त्वाग्रे चतुरङ्गुलमष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम्।
उद्धृत्य पुरद्वारं शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा ॥२१॥

इस वृक्ष के आगे से चार अङ्गुल और मूल से आठ अङ्गुल काटकर यष्टि (मध्यभाग) को जल में डाल देना चाहिये। बाद में जल से निकाल कर गाड़ी या मनुष्यों के द्वारा पुरद्वार पर उसको लाना चाहिये।।२१।।

ततस्तस्य वृक्षस्याग्रे चतुरङ्गुलं छित्वा तां यष्टिं जले उदकमध्ये [illegible]त्। ततो जलादुद्धृत्य शकटेन मनुष्यैर्नरैर्वा पुरद्वारं नगरगोपुरं नयेत्।।२१।।

अथ तस्य नीयमानस्य लक्षण[illegible]ह—

अरभङ्गे बलभेदो नेम्या नाशो बलस्य विज्ञेयः।
अर्थक्षयोऽक्षभङ्गे तथाणिभङ्गे च वर्द्धकिनः ॥२२॥

लकड़ी लाने के समय गाड़ी का आरा टूट जाय तो सेनाओं में भेद, नेमि (हाल) टूट जाय तो सेनाओं का नाश, अक्ष (धुरा) टूट जाय तो धन का नाश और अणि (कुलावा) टूट जाय तो बढ़ई का नाश होता है।।२२।।

अरं चक्रस्य मध्यवर्ति काष्ठम्। तस्य भङ्गे बलस्य सैन्यस्य भेदो भवति। नेमिश्चक्र-पर्यन्तम्। तस्या भङ्गे बलस्य नाशः क्षयो भवति। अक्षश्चक्रविवरवर्ति काष्ठम्। तस्य भङ्गेऽर्थक्षयो द्रव्यविनाशः। अणिरक्षाग्रे कीलकः। तस्य भङ्गे वर्द्धकिनस्तक्ष्णः क्षयः।।२२।।

अथ कस्मिन् काले प्रवेशयेदित्याह श्लोकद्वयेन—

भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां नागरैर्वृतो राजा।
दैवज्ञसचिवकञ्चुकिविप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः ।।२३।।

अहताम्बरसंवीतां यष्टिं पौरन्दरीं पुरं पौरैः।
स्रग्गन्धधूपयुक्तां प्रवेशयेच्छङ्खतूर्यरवैः ।।२४।।

भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन नगर में रहने वाले मनुष्य, ज्यौतिषी, मन्त्री, कञ्चुकी और सुन्दर वेषधारी प्रधान ब्राह्मणों के साथ होकर राजा पुरवासियों के द्वारा नवीन वस्त्र से ढकी हुई, माला, गन्ध और धूपों से युत यष्टि को शङ्ख और तुरही के शब्दों के साथ पुर में प्रवेश कराना चाहिये।।२३-२४।।

भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां तिथौ राजा नृपो नागरैर्नगरवासिभिर्जनैर्वृतः परिवृतस्तथा दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण। सचिवैर्मन्त्रिभिः। कञ्चुकिभिर्महत्तरकैर्विप्रप्रमुखैर्ब्राह्मणप्रवरैः सुवेषधरैः।

पौरैः स पौरन्दरीमैन्द्रीं यष्टिं प्रवेशयेत् पुरं नगरम्। कीदृशीं यष्टिम्? अहताम्बरसंवीताम्, अहतमक्षतमभिनवमम्बरं वस्त्रं तेन संवीतामावृताम्। तथा स्रग्गन्धधूपयुक्ताम्। स्रग्भिर्मालाभिः, गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः, धूपैश्च संयुक्ताम्। तथा शङ्खरवैः शङ्खशब्दैः, तूर्यरवैः सह प्रवेशयेदिति। युगलकम्। तथा च गर्गः—

प्रोष्ठपादे सिताष्टम्यां ज्येष्ठायोगे स्वलङ्कृताम्।
यष्टिं पौरन्दरीं राजा नगरं सम्प्रवेशयेत्।। इति।।२३-२४।।

कीदृशं नगरमित्याह श्लोकद्वयेन—

रुचिरपताकातोरणवनमालालङ्कृतं प्रहृष्टजनम्।
सम्मार्जितार्चितपथं सुवेषगणिकाजनाकीर्णम् ।।२५।।

अभ्यर्चितापणगृहं प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम्।
नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुष्पथं नगरम् ।।२६।।

मनोहर पताका, तोरण और वनमालाओं से भूषित, हर्षित मनुष्यों से युत, शोधित और सजाये हुये मार्गों से युत, सुन्दर वेष वाली वेश्याओं से व्याप्त, सजी हुई दुकानों से युत, अधिक पुण्याह और वेद के शब्दों से युत, नट, नाचने वाले और गान विद्या जानने

वालों से व्याप्त चतुष्पथ (चौराहे) वाला नगर होना चाहिये।।२५-२६।।

कीदृशं नगरम्? रुचिरपताकातोरणवनमालालङ्कृतम्, रुचिराभिः शोभनाभिः पताका-भिर्वैजयन्तीभिः, रुचिरैश्च तोरणैः, तथा वनमालाभिः पत्रलताभिरलङ्कृतम्। प्रहृष्टा हर्षिता जना लोका यत्र तत्। सम्मार्जितार्चितपथम्, सम्मार्जितः शोधितोऽर्चितः पूजितः पन्था यत्र तत्। तथा सुवेषगणिकाजनाकीर्णम्, सुवेषेण शोभनवेषेण गणिकाजनेन वेश्या-समूहेनाकीर्णं व्याप्तम्।

अभ्यर्चितापणगृहम्, अभ्यर्चितानि पूजितानि आपणगृहाणि पण्यविक्रयस्थानानि यत्र। प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम्, प्रभूता बहवः पुण्याहानां वेदानां च निर्घोषाः शब्दा यत्र। नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुष्पथम्, नटैर्नर्तकैर्गेयज्ञैराकीर्णं संयुक्तं चतुष्पथं यत्र। चत्वारः पन्थानो यस्य तच्चतुष्पथं नगरम्। युगलकम्।।२५-२६।।

कीदृशीभिः पताकाभिः कार्यमित्याह—

तत्र पताकाः श्वेता भवन्ति विजयाय रोगदाः पीताः।
जयदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥२७॥

उस नगर में श्वेत वर्ण की पताका विजय के लिये, पीत वर्ण की रोग देने वाली, अनेक वर्ण की विजय कराने के लिये और रक्त वर्ण की पताका शस्त्रप्रकोप के लिये होती है।

तत्र तस्मिन्नगरे पताकाः श्वेताः शुक्लवर्णा विजयाय भवन्ति। पीताः पीतवर्णा रोगदा भवन्ति। चित्ररूपा नानावर्णा जयदा एव। शत्रुविजयं कुर्वन्तीत्यर्थः। रक्ता रक्तवर्णाः पताकाः शस्त्रप्रकोपाय भवन्ति।।२७।।

तस्यां प्रवेशमानायां शुभाशुभमाह—

यष्टिं प्रवेशयन्तीं निपातयन्तो भयाय नागाद्याः।
बालानां तलशब्दे संग्रामः सत्त्वयुद्धे वा ॥२८॥

नगर में प्रवेश कराती हुई यष्टि को यदि हाथी, घोड़ा आदि कोई जीव गिरा दे तो भय के लिये एवं उस समय बालक तालियाँ बजावें या गायों में परस्पर लड़ाई हो तो युद्ध के लिये होती है।।२८।।

प्रवेशयन्तीं यष्टिं नागाद्याः। नागा हस्तिनः। आदिग्रहणादश्वमहिषगवादयो गृह्यन्ते। एते निपातयन्तो भयाय भवन्ति। तथा बालानां शिशूनाम्। तलशब्देन हस्ततलमुच्यते। तेन करास्फोटेन संग्रामो भवति। सत्त्वानां गवां युद्धे संग्राम एव भवति।।२८।।

ततः किं कुर्यादित्याह श्लोकद्वयेन—

सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा विधिवद्यष्टिं प्ररोपयेद्यन्त्रे।
जागरमेकादश्यां नरेश्वरः कारयेच्चास्याम् ॥२९॥

सितवस्त्रोष्णीषधरः पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः।
जुहुयादग्निं सांवत्सरो निमित्तानि गृह्णीयात् ॥३०॥

फिर बढ़ई विधिपूर्वक यष्टि को छीलकर खराज पर चढ़ावे। राजा आगे आने वाली एकादशी में जागरण करे। श्वेत वस्त्र और पगड़ी बाँधे हुए पुरोहित इन्द्र दैवत और विष्णु दैवत मन्त्रों से अग्नि में हवन करे और सांवत्सर (ज्यौतिषी) अग्नि के शुभाशुभ चिह्नों को ग्रहण करे।।२९-३०।।

तां यष्टिं पुनर्भूयस्तक्षा वर्द्धकी सन्तक्ष्य तनूकृत्य विधिवद्विधानेन यन्त्रे प्ररोपयेत्। आसनस्थाने निवेश्य तिर्यक् स्थितां कुत्रचित् सक्तां स्थापयेत्। तथास्थितायामेकादश्यां नरेश्वरो राजा रात्रिजागरं कारयेत्।

तस्य च राज्ञः पुरोहित आचार्यः शाक्रवैष्णवैरिन्द्रदैवतैर्विष्णुदैवतैश्च मन्त्रैरग्निमनलं जुहुयात्। कीदृशः पुरोहितः? सितवस्त्रोष्णीषधरः, सितानि श्वेतानि वस्त्राणि अम्बराणि, तथोष्णीषं शिरःपट्टविशेषं यो धारयति। सांवत्सरो ज्यौतिषिकः। अग्नेर्निमित्तानि शुभाशुभानि चिह्नानि गृह्णीयात्। युगलकम्।।२९-३०।।

अथ शुभाशुभानि चिह्नान्याह—

इष्टद्रव्याकारः सुरभिः स्निग्धो घनोऽनलोऽर्चिष्मान् ।
शुभकृदतोऽन्योऽनिष्टो यात्रायां विस्तरोऽभिहितः ।।३१।।

अभिलषित द्रव्यों के समान, सुगन्धयुत, निर्मल, घना और लपटदार अग्नि शुभ करने वाली और इससे भिन्न लक्षणयुत अग्नि अशुभ करने वाली होती है। इस सम्बन्ध को लेकर योगयात्रा नामक ग्रन्थ में मैंने विस्तारपूर्वक कहा है।।३१।।

इष्टं द्रव्यं यदभिरुचितं मनसीप्सितमातपत्रादि तदाकारस्तत्सदृशः। सुरभिः सुगन्धः। स्निग्धोऽरूक्षः। घनः सन्ततः। अर्चिष्मान् ज्वालावान्, एवंविधोऽनलो वह्निः शुभकृत् शुभं क्षेमं करोति। अतोऽस्मादन्योऽनिष्टो न शुभः। एतदेव विपर्ययेण यदभिहितं तदनिष्टम्। यथा—अनिष्टद्रव्याकारः, असुरभिः, अस्निग्धः, अघनः, ज्वालारहितः, एतद्विपर्ययमशुभमिति। यात्रायां विस्तरोऽभिहितः। योगयात्रायां विस्तर उक्तो मया तदेह न विस्तृतः। विस्तरेण तदा न कथितः। तथा च योगयात्रायाम्—

कृतेऽपि यत्नेऽपि कृशः कृशानुर्धातव्यकाष्ठाविमुखो नतार्चिः ।
वामे कृतावर्तशिखोऽतिधूमो विच्छिन्नसाकम्पविलीनमूर्तिः ।।
सिमिसिमायति चास्य हविर्हुतं सुरधनुः सदृशः कपिलोऽथवा ।
रुधिरपीतकबभ्रुहरिच्छविः परुषमूर्तिरनिष्टकरोऽनलः ।।
खरकरभकवानरानुरूपो निगडविभीषणशस्त्ररूपभृद्वा ।
शवरुधिरवसास्थिमज्जगन्धो हुतभुगनिष्टफलः स्फुलिङ्गकृच्च ।।
चर्मविपाटनतुल्यनिनादो जर्जरदर्दुररूक्षरवो वा ।
आकुलयंश्च पुरोहितमर्त्यान् धूमलवैर्न शिवाय हुताशः ।।
हारकुन्दकुमुदेन्दुसन्निभः संहतोऽङ्गसुखदो महोदयः ।
अङ्कुशातपनिवारणाकृतिर्हूयतेऽल्प उपमानहव्यभुक् ।।

उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देहसुखप्रदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो घातानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो यातुर्जयं संयति।।
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृति-
र्भेर्यब्दोदधिदुन्दुभीतशकटस्निग्धस्वनैः पूजितः।
नेष्टः प्रोक्तविपर्यये हुतवहः स्निग्धो यथाभीष्टदः
सव्येऽङ्गे नृपतेर्दहन्नतिशुभः शेषं च लोकाद्वदेत्।। इति।।३१।।

अथान्यलक्षणमाह—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः
स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां
धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति ।।३२।।

यदि स्वाहा के अवसान (पूर्णाहुति देने के) समय स्वयं प्रज्वलित शिखा वाली निर्मल और दक्षिणावर्त्त क्रम से चलती हुई शिखा वाली अग्नि हो तो गङ्गा और यमुना के जलरूपी सुन्दर हार वाली, समुद्ररूपी मेखला (तगड़ी) वाली पृथ्वी को राजा अपने वश में करता है, अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा होता है।।३२।।

एवंरूपो हुतभुगग्निर्नृपस्य राज्ञः समुद्ररशनां समुद्रमेखलां धात्रीं भूमिं वशगां करोति। कीदृशीं धात्रीम्? गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहाराम्, गङ्गा जाह्नवी, दिवाकरसुता यमुना, तयोर्यज्जलं सलिलं तदेव चारुर्दर्शनीयो हारो यस्यास्ताम्। कीदृशोऽग्निः? स्वाहावसानसमये पूर्णाहुतिदानकाले स्वयमेवोज्ज्वलार्चिः, स्वयमेवोज्ज्वलोऽर्चिर्यस्याग्नेः। स्निग्धो निर्मलः। प्रदक्षिणशिखः, प्रादक्षिण्येन शिखा ज्वाला यस्येत्यर्थः।।३२।।

अन्यदाह—

चामीकराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ ।
न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ।।३३।।

यदि सुवर्ण, अशोक, कुरण्टक, वैदूर्य मणि या नील कमल के समान कान्ति वाली अग्नि हो तो हवन कराने वाले राजा के भवन में ठहरने के लिये रत्नों की किरणों से नष्ट होकर अन्धकार अवकाश नहीं पाता है।।३३।।

एवंविधेऽग्नौ नृपस्य राज्ञो ध्वान्तमन्धकारम्। अन्तर्भवने गृहमध्ये अवकाशं न करोति। यतो रत्नांशुहतम्, रत्नानामंशवो रत्नांशवस्तैर्हतं नष्टं रत्नांशुहतम्। रत्नांशुहतमित्यनेन रत्नलाभ उक्तः। कीदृशेऽग्नौ? चामीकरं सुवर्णम्, अशोकः पुष्पविशेषः कुरण्टकश्च, अब्जं पद्मम्, वैदूर्यो रत्नविशेषः, नीलोत्पलमिन्दीवरम्, एषां सन्निभे अग्नौ शुभः प्रत्यासन्नो भवति।

अन्यदपि लक्षणमाह—

येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां समस्वनोऽग्निर्यदि वापि दुन्दुभेः ।
तेषां मदान्धेभघटावघट्टिता भवन्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥३४॥

यदि अग्नि में समुद्र, मेघ, हाथी या नगाड़े के समान शब्द हो तो उस राजा के गमन करने के समय मदमत्त हाथियों से व्याप्त दिशायें अन्धकार की तरह हो जाती हैं अर्थात् उस राजा के पास हाथियों की अधिकता होती है।।३४।।

येषां राज्ञां रथौघो गोरथसमूहः। अर्णवः समुद्रः। मेघोऽम्बुदः। दन्ती हस्ती। एषां समस्वनस्तुल्यशब्दोऽग्निर्यदि। वापि दुन्दुभेः, दुन्दुभिर्वाद्यविशेषः तत्समानो वा। तेषां राज्ञां मदान्धा ये इभा हस्तिनः। तेषां या घटास्ताभिरवघट्टिता रुद्धा दिशो याने गमने तिमिरोपमा अन्धकारसदृश्यो भवन्ति। तिमिरोपमा दिश इत्यनेन हस्तिबाहुल्यमुक्तम्।।३४।।

अन्यदपि वह्निलक्षणमाह—

ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम् ।
उदयास्तधराधराऽधरा हिमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥३५॥

पताका, घड़ा, घोड़ा या हाथियों के समान अग्नि हो तो उदयाचल और अस्ताचलरूप ओष्ठ, हिमालय और विन्ध्याचलरूप स्तन वाली पृथ्वी उस राजा के वश में हो जाती है।

ध्वजश्चिह्नं पताकादि। कुम्भो घटः। हयोऽश्वः। इभो हस्ती। भूभृत् पर्वतः। एषामनुरूपे सदृशेऽग्नौ भूभृतां राज्ञां धरा भूर्वशमेति। कीदृशी धरा? उदयधराधरः अस्तमयधराधर उदयास्तधराधरौ तावेवाधरावोष्ठौ यस्याः। हिमवद्विन्ध्यौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः।।३५।।

अथान्यदपि वह्निलक्षणमाह—

द्विरदमदमहीसरोजलाजाघृतमधुना च हुताशने सगन्धे ।
प्रणतनृपशिरोमणिप्रभाभिर्भवति पुरश्छुरितेव भूर्नृपस्य ॥३६॥

यदि अग्नि में हाथियों के मदजल, लाजा (खीलें = लाई = लावा), घी या शहद के समान सुगन्धि हो तो हवन कराने वाले राजा को प्रणाम करते हुये राजाओं के मुकुटों में जड़ी हुई मणियों की कान्ति से आगे की भूमि रँगी हुई-सी दिखाई देती है।।३६।।

द्विरदो हस्ती तस्य मदो मधुजलम्। मही भूः। सरोजं पद्मम्। लाजाः प्रसिद्धाः। घृतमाज्यम्। मधु माक्षिकम्। एषां सगन्धे सदृशगन्धे। हुताशने अग्नौ। नृपस्य राज्ञः। भूर्भूमिः। पुरोऽग्रतः। प्रणतानां प्रह्वाणां नृपाणां राज्ञां शिरोमणयश्चूडारत्नानि। तेषां याः प्रभा दीप्तयस्ताभिः छुरिता रञ्जितेव भाति।।३६।।

अत्र यदुक्तमग्निलक्षणं तदन्यत्रापि चिन्त्यमित्याह—

उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ शुभाशुभं सप्तमरीचिरूपैः ।
तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियात्राविवाहकालेष्वपि चिन्तनीयम् ॥३७॥

इन्द्रध्वज उठाने के समय अग्नि के स्वरूप द्वारा जो शुभाशुभ फल कहे गये हैं, उनका जन्मसमय, यज्ञकाल, ग्रहशान्ति, यात्रा और विवाहकाल में भी विचार करना चाहिये।

शक्रकेताविन्द्रध्वजे उत्तिष्ठति सति यच्छुभाशुभं सदसत्फलं सप्तमरीचिरूपैः, सप्तमरीचिरग्निस्तस्य रूपैर्यदुक्तं यत्कथितं तत्सर्वं जन्मसमये। यज्ञे यज्ञकाले, ग्रहशान्तौ, यात्रायाम्, विवाहकाले च। एवमादिष्वपि चिन्तनीयम्।।३७।।

तत्किं कुर्यादित्याह—

गुडपूपपायसाद्यैर्विप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च।
श्रवणेन द्वादश्यामुत्थाप्योऽन्यत्र वा श्रवणात्।।३८।।

गुड़, पूप (पिट्ठी), पायस और दक्षिणाओं से ब्राह्मणों की पूजा करके श्रवण नक्षत्रयुत द्वादशी तिथि में या श्रवण नक्षत्रयुत अन्य किसी तिथि में ध्वजा को उठाना चाहिये।।३८।।

गुड इक्षुविकारः। पूपो मुद्गकृतो मिश्रितो वा तण्डुलेन सह। पायसं प्रसिद्धम्। आदि-ग्रहणादोदनमोदकलोपिकाश्च गृह्यन्ते। एतैर्विप्रान् ब्राह्मणानभ्यर्च्य सम्पूज्य। न केवलं गुडपूप-पायसाद्यैः, दक्षिणाभिश्च पूजयित्वा द्वादश्यां श्रवणेन नक्षत्रेणोत्थाप्य उत्थापनीयः। श्रवणा-दन्यत्र वा द्वादश्यामुत्थापनीयः। एतदुक्तं भवति—द्वादश्यां श्रवणो भवतु मा वा सर्वत्रोत्थापनं कार्यम्। तथा च गर्गः—

तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थापनं प्रशस्यते।
द्वादश्यां विजये वाश्वमुहूर्त्ते वा दिनेऽथवा।। इति।।३८।।

अधुना शक्रकुमारीणां लक्षणं श्लोकद्वयेनाह—

शक्रकुमार्यः कार्याः प्राह मनुः सप्त पञ्च वा तज्ज्ञैः।
नन्दोपनन्दसंज्ञे पादोनार्द्धे ध्वजोच्छ्रायात्।।३९।।
षोडशभागाभ्यधिके जयविजये द्वे वसुन्धरे चान्ये।
अधिका शक्रजनित्री मध्येऽष्टांशेन चैतासाम्।।४०।।

ध्वजा के ऊपर पाँच या सात शक्र कुमारी बनाना चाहिये—ऐसा मनु ने कहा है। ध्वजा की ऊँचाई से चौथाई कम नन्दा, ध्वजा के आधा तुल्य उपनन्दा, ध्वजा से सोलहवाँ भाग अधिक जय और विजय, जय और विजय से सोलहवाँ भाग अधिक दो वसुन्धरा तथा सबके बीच में वसुन्धरा से आठवाँ भाग अधिक शक्र जनित्री बनानी चाहिये।।३९-४०।।

मनुरेवं प्राह, एवमुक्तवान्। यथा तज्ज्ञैः शक्रध्वजलक्षणज्ञैः सप्त पञ्च वा शक्रकुमार्यः कार्याः। तथा च गर्गः—

दृढकाष्ठकृताः पञ्च सप्त वा लक्षणान्विताः।
इन्द्रध्वजस्य शोभार्थं कुमारीः कारयेद् द्विजः।।

नन्दोपनन्दसंज्ञे इति। नन्दोपनन्दासंज्ञे द्वे ध्वजोच्छ्रायाद्यथासङ्ख्यं पादोनार्द्धे कार्ये।

नन्दा ध्वजप्रमाणचतुर्भागोना कार्या। उपनन्दा ध्वजार्द्धप्रमाणेनेति।

अत्राचार्येणेन्द्रध्वजप्रमाणं सामान्येनोक्तम्। गर्गादिभिर्विशेषेणोक्तम्। तथा च गर्गः—

अष्टाविंशत्करा यष्टिरष्टहस्ता ततोऽपरा।
विष्कम्भश्चाङ्गुलैस्तस्याः षड्भिर्द्विगुणितैः स्मृतः।।
समग्रमनुलोमं वा तक्षं प्राक् शिखयान्वितम्।
कुर्यादिन्द्रध्वजं शुभ्रं सारदारुमयं शुभम्।।

षोडशभागेति। नन्दोपनन्दसंज्ञाभ्यां यथाक्रमं जयविजये द्वे षोडशभागाधिके कार्ये। जयविजयाभ्यां सकाशात् षोडशभागाभ्यधिके अन्ये वसुन्धरासंज्ञे ध्वजे कार्ये। एतासां सर्वासां मध्ये शक्रजनित्री इन्द्रमाताऽष्टांशेनाष्टांशाधिका वसुन्धरातः कार्येति। युगलकम्।।३९-४०।।

अथान्यदपि शक्रकेतुलक्षणमाह—

प्रीतैः कृतानि विबुधैर्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः।
तानि क्रमेण दद्यात् पिटकानि विचित्ररूपाणि ।।४१।।

पूर्व समय में हर्षित देवताओं ने इन्द्रध्वज को जो आभूषण दिये थे, क्रमानुसार उन विचित्र रूपपिटकों (आभूषणों) से इस ध्वज को भूषित करना चाहिये।।४१।।

पुरा पूर्वं सुरकेतोरिन्द्रध्वजस्य प्रीतैः प्रीतिमद्भिर्विबुधैर्देवैर्यानि भूषणानि अलङ्करणानि कृतानि तानि च क्रमेण परिपाट्या विचित्ररूपाणि पिटकानि दद्यात्।।४१।।

तानि सर्वाण्याहाष्टभिः श्लोकैः—

रक्ताशोकनिकाशं चतुरस्रं विश्वकर्मणा प्रथमम्।
रशना स्वयम्भुवा शङ्करेण चानेकवर्णगा दत्ता ।।४२।।

अष्टाश्रि नीलरक्तं तृतीयमिन्द्रेण भूषणं दत्तम्।
असितं यमश्चतुर्थं मसूरकं कान्तिमदयच्छत् ।।४३।।

मञ्जिष्ठाभं वरुणः षडश्रि तत्पञ्चमं जलोर्मिनिभम्।
मायूरं केयूरं षष्ठं वायुर्जलदनीलम् ।।४४।।

स्कन्दः स्वं केयूरं सप्तममददद् ध्वजाय बहुचित्रम्।
अष्टममनलज्वालासङ्काशं हव्यभुग्वृत्तम् ।।४५।।

वैदूर्यसदृशमिन्द्रो नवमं ग्रैवेयकं ददावन्यत्।
रथचक्राभं दशमं सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम् ।।४६।।

एकादशमुद्वंशं विश्वेदेवाः सरोजसङ्काशम्।
द्वादशमपि च निवेशमृषयो नीलोत्पलाभासम् ।।४७।।

किञ्चिदध ऊर्ध्वनिर्मितमुपरि विशालं त्रयोदशं केतोः ।
शिरसि बृहस्पतिशुक्रौ लाक्षारससन्निभं ददतुः ॥४८॥

यद्यद्येन विभूषणममरेण विनिर्मितं ध्वजस्यार्थे ।
तत्तत्तद्दैवत्यं विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः ॥४९॥

विश्वकर्मा ने लाल अशोक के समान कान्ति वाला चौकोर प्रथम आभूषण इन्द्रध्वज को दिया। ब्रह्मा और शंकर ने अनेक रंग वाली दूसरी रशना (तगड़) दी। इन्द्र ने नील और लाल वर्णयुत आठ कोण वाला तृतीय आभूषण दिया। यमराज ने काला, कान्तियुत मसूरक नामक चौथा आभूषण दिया। वरुण ने मञ्जीठ के समान कान्ति वाला, जलावर्त्त की तरह और छः कोण वाला पाँचवाँ आभूषण दिया। वायु ने मयूर के पंख से व्याप्त और मेघ के समान नील वर्ण वाला छठा आभूषण केयूर दिया। कार्त्तिकेय ने अपना अनेक वर्ण का केयूर नामक सातवाँ आभूषण दिया। अग्नि ने अग्निशिखा की तरह कान्ति वाला और गोलाकार आठवाँ आभूषण दिया। इन्द्र ने वैदूर्यमणि के समान कान्ति वाला नवम कण्ठ का भूषण दिया। त्वष्टा नामक सूर्य ने रथ के पहिये की तरह और कान्तियुत दशवाँ भूषण दिया। विश्वदेव ने कमल के समान उद्वंशसंज्ञक ग्यारहवाँ भूषण दिया। मुनियों ने नीलकमल के समान कान्ति वाला निवेश नामक बारहवाँ भूषण दिया। बृहस्पति और शुक्र ने कुछ नीचे-ऊपर बना हुआ, आगे के भाग में विस्तृत और लाक्षारस के समान लोहित वर्ण का तेरहवाँ भूषण शिर में दिया। जिस-जिस देवता ने इन्द्रध्वज के लिये जो-जो भूषण बनाया, वही उस भूषण के देवता हैं, यह पण्डितों को जानना चाहिये।।४२-४९।।

रक्ताशोकनिकाशं रक्ताशोकसदृशप्रभं चतुरस्रं चतस्रोऽश्रयो यस्य तत् तथाभूतं विश्वकर्मणा प्रथमं विभूषणमिन्द्रध्वजाय दत्तम्। स्वयम्भुवा ब्रह्मणा। शङ्करेण महेश्वरेण अनेकवर्णगा नानावर्णा रशना मेखला दत्ता द्वितीया।

अष्टाश्रीति। इन्द्रेण शक्रेण तृतीयं भूषणमलङ्करणम्। अष्टाश्रि, अष्टावश्रयो यस्य अष्टकोणमित्यर्थः। नीलरक्तं नीलवर्णं रक्तवर्णं च दत्तम्। चतुर्थमसितं कृष्णवर्णं मसूरकं कान्तिमत् कान्तियुक्तं यमः प्रेताधिपोऽयच्छत् अदात्।

मञ्जिष्ठाभमिति। वरुणोऽपाम्पतिर्मञ्जिष्ठाभं मञ्जिष्ठवर्णं षडश्रि षडश्रयो यस्य षट्कोणमित्यर्थः। जलोर्मिनिभं उदकावर्तसदृशमदात् तत्पञ्चमम्। षष्ठं मायूरं मयूरपक्षचितं केयूरं बाहुवर्तकं जलदनीलं मेघवत् श्यामं वायुरदात्।

स्कन्दः कुमारः स्वमात्मीयं केयूरं बाहुवर्तकं बहुचित्रं नानावर्णं सप्तमं ध्वजायादात्। अनलज्वालासङ्काशं वह्निशिखासमकान्ति वृत्तं परिवर्तुलं हव्यभुगग्निरष्टममदात्।

वैदूर्येति। अन्यदपरं ग्रैवेयकं ग्रीवाभूषणम्। वैदूर्यसदृशम्। वैदूर्यमणितुल्यप्रभं नवममिन्द्रो ददौ। सूर्य आदित्यो रथचक्राभं रथचक्रसदृशं त्वष्टा नामार्कः प्रभायुक्तं कान्तिसहितं दशमं ददौ।

एकादशेति। विश्वदेव: सरोजसङ्काशं पद्मसदृशमुद्वंशसंज्ञमेकादशं ददौ। ऋषयो मुनयो निवेशं नाम नीलोत्पलाभासमिन्दीवरसदृशकान्ति द्वादशं ददु:।

किञ्चिदिति। किञ्चिदध ऊर्ध्वं निर्मितम्। ईषदधोभागे रचितम्। ईषच्चोर्ध्वभागे रचितमुपर्यग्रतो विशालं विस्तीर्णं लाक्षारससदृशं लोहितकान्ति त्रयोदशं केतोरिन्द्रध्वजस्य शिरसि मूर्ध्नि बृहस्पतिशुक्रौ गुरुभार्गवौ ददतु:।

यद्यद्येनेति। ध्वजस्येन्द्रध्वजस्यार्थे येन येन देवेन यद्यद्विभूषणमलङ्करणं विनिर्मितं रचितं तत्तत्स्माद्दैवत्यम्। स एव देवता अस्येति विपश्चिद्भि: शास्त्रज्ञैर्विज्ञातव्यम्। कुलकम्।।४२-४९।।

अधुना पिटकस्य परिमाणमाह—

ध्वजपरिमाणत्र्यंश: परिधि: प्रथमस्य भवति पिटकस्य।
परत: प्रथमात् प्रथमादष्टांशाष्टांशहीनानि।।५०।।

ध्वजा के तृतीयांश प्रथम पिटक की परिधि, द्वितीय आदि बारह पिटक अपने से पूर्व पिटक से अष्टमांश कम करना चाहिये। जैसे—अष्टमांशोन—प्रथम-द्वितीय, अष्टमांशोन—द्वितीय-तृतीय, अष्टमांशोन—तृतीय-चतुर्थ, अष्टमांशोन—चतुर्थ-पञ्चम, अष्टमांशोन—पञ्चम-षष्ठ, अष्टमांशोन—षष्ठ-सप्तम, अष्टमांशोन—सप्तम-अष्टम, अष्टमांशोन—अष्टम-नवम, अष्टमांशोन—नवम-दशम, अष्टमांशोन—दशम-एकादश, अष्टमांशोन—एकादश-द्वादश और अष्टमांशोन—द्वादश-त्रयोदश पिटक बनाना चाहिये।।५०।।

ध्वजस्येन्द्रध्वजस्य यत्परिमाणमुक्तं तस्माद्यस्तृतीयोंऽशस्तृतीयो भागस्तावत्सूक्ष्मं प्रथमस्य पिटकस्य परिधिर्भवति। तत: प्रथमात् पिटकात्परतोऽन्यानि यानि द्वादशपिटकानि तानि सर्वाण्यष्टांशहीनानि कार्याणि। एतदुक्तं भवति—प्रथमात् पिटकाद् द्वितीयस्याष्टांशहीन: परिधि: कार्य:। द्वितीयातृतीयस्याष्टांशोन इत्यनेन क्रमेण यावत्त्रयोदशं पिटकम्।।५०।।

कस्मिन् दिने पिटकै: पूरणं कार्यमित्याह—

कुर्यादहनि चतुर्थे पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्रज्ञ:।
मनुना चागमगीतान् मन्त्रानेतान् पठेन्नियत:।।५१।।

शास्त्रज्ञ (इन्द्रध्वज-लक्षण को जानने वाले) चौथे (पूर्णिमा के) दिन पिटकों से इन्द्रध्वज को भूषित करें और नियत होकर मनु राजा द्वारा आगम से प्रतिपादित वक्ष्यमाण मन्त्रों को पढ़ें।।५१।।

शास्त्रज्ञ इन्द्रध्वजलक्षणवित् चतुर्थेऽहनि पञ्चदश्यामिन्द्रध्वजस्य पिटकै: पूरणं भरणं कुर्यात्। कीदृश:? नियत: प्रह्व:। एतान् मन्त्रान् वक्ष्यमाणान् पठेत् कीर्तयेत्। कीदृशान्? मनुना नृपेण चागमगीतान्, आगमादुक्तान्।।५१।।

तानाह श्लोकचतुष्टयेन—

हरार्कवैवस्वतशक्रसोमैर्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः ।
महर्षिसंघैः सदिगप्सरोभिः शुक्राङ्गिरःस्कन्दमरुद्गणैश्च ॥५२॥

यथा त्वमूर्जस्करणैकरूपैः समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः ।
तथेह तान्याभरणानि यागे शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण ॥५३॥

अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः ।
त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः सहस्रशीर्षः शतमन्युरीड्यः ॥५४॥

कविं सप्तजिह्वं त्रातारमिन्द्रं स्ववितारं सुरेशम् ।
ह्वयामि शक्रं वृत्रहणं सुषेणमस्माकं वीरा उत्तरा भवन्तु ॥५५॥

महादेव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, अग्नि, वरुण, महर्षिगण, सब दिशायें, अप्सरायें, शुक्र, बृहस्पति, कार्तिकेय और वायुओं के समुदायों के द्वारा जिस तरह प्रकाशमान, अनेक रूप वाले, श्रेष्ठ आभूषणों से पूजित हुये हैं, हे देव! उसी तरह इस यज्ञ में प्रसन्न मन होकर उन सब आभूषणों को ग्रहण करें। अज, अविनाशी, सर्वदा रहने वाले, एक रूप, व्यापक, वराह रूप, प्रधान पुरुष, चिरन्तन, यम स्वरूप, सबका संहार करने वाले, अग्नि, सहस्र शिर वाले, इन्द्र और स्तुति के योग्य तुम हो। विद्वान्, अग्नि, पालन करने वाले, इन्द्र, अच्छी तरह रक्षा करने वाले देवताओं के स्वामी, शक्र, वृत्रासुर को मारने वाले और सुषेण (सुन्दर सेनाओं से युत) तुमको मैं बुला रहा हूँ। हमारी वीर सेनायें संग्राम में विजयी हों।।५२-५५।।

हरो महादेवः। अर्क आदित्यः। वैवस्वतो यमः। शक्र इन्द्रः। सोमश्चन्द्रः। तथा धनेशो वैश्रवणः। वैश्वानरोऽग्निः। पाशभृद्वरुणः। एतैः सुरैर्महर्षिसङ्घैर्महर्षीणां वृन्दैरेतैः किम्भूतैः। सदिगप्सरोभिर्दिग्भिराशाभिः अप्सरोभिः सहितैः। तथा शुक्रो भार्गवः। अङ्गिरा बृहस्पतिः। स्कन्दः कुमारः। मरुद्गणो मरुतां सङ्घः। एतैः सर्वैस्त्वम्।

यथा येन प्रकारेण उदारैः श्रेष्ठैराभरणैः। ऊर्जस्करणैकरूपैः समर्चितः पूजितः। तथा तेनैव प्रकारेणेहास्मिन् यागे शुभानि तान्येवाभरणानि सम्प्रीतमनास्तुष्टचित्तो गृहाण।

अजोऽव्यय इति। त्वमजो नाजायत इति अजः। अव्ययो न व्ययं याति। अक्षय इत्यर्थः। शाश्वतः सार्वदिकः। एकरूपो बहुरूपरहितः। विष्णुर्व्यापकः। वराहो वराहरूपः। पुरुषः प्रधानाख्यः। पुराणश्चिरन्तनः। एवंविधस्त्वम्। तथा अन्तको यमः। सर्वहरः सर्वसंहारकः। कृशानुरग्निः। सहस्रशीर्षः सहस्रवक्त्रः। शतमन्युरिन्द्रः। ईड्यः स्तुत्यः।

कविं विद्वांसम्। सप्तजिह्वमग्निम्। त्रातारं पालयितारम्। इन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तम्। स्ववितारं सुष्ठुरक्षितारम्। सुरेशं देवप्रभुम्। ह्वयामि आह्वयामि। शक्रमिन्द्रं वृत्रहणं वृत्रस्य हन्तारम्। सुषेणं शोभना सेना यस्य। तमस्माकं नः। वीरा बलिनः। उत्तरा भवन्तु। जयिनो भवन्त्वित्यर्थः। कलापम्।।५२-५५।।

कस्मिन् काले एतान्मन्त्रान् पठेदित्याह—

प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे।
पठेदिमान्नृपतिः सोपवासो मन्त्रान् शुभान् पुरुहूतस्य केतोः ॥५६॥

इन्द्रध्वज को पिटकों से भूषित करने के समय, उठाने के समय, नगर में प्रवेश कराने के समय, स्नान कराने के समय, पुष्पमाला पहनाने के समय और विसर्जन के समय व्रती होकर राजा पूर्वोक्त मन्त्रों को पढ़े।।५६।।

प्रपूरणे पिटकाभरणे। उच्छ्रयणे उत्थापने। प्रवेशे नगरप्रवेशे। स्नाने स्नानकाले। तथा माल्यविधौ पुष्पप्रदानकाले। विसर्गे विसर्जने। एतेषु कार्येषु नृपती राजा सोपवास उपोषितः। पुरुहूतस्य केतोरिन्द्रध्वजस्येमानुक्तान् शुभान् मन्त्रान् पठेत् कीर्तयेत्।।५६।।

कीदृशमिन्द्रध्वजमुत्थापयेदित्याह श्लोकद्वयेन—

छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्रैर्विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डैः ।
सव्यालसिंहैः पिटकैर्गवाक्षैरलङ्कृतं दिक्षु च लोकपालैः ॥५७॥
अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं सुश्लिष्टयन्त्रार्गलपादतोरणम्।
उत्थापयेल्लक्ष्म सहस्रचक्षुषः सारद्रुमाभग्नकुमारिकान्वितम् ॥५८॥

छत्र, पतका, दर्पण, फल अर्द्धचन्द्र, अनेक प्रकार की मालायें, केले का वक्ष, ईख और दिक्पालों (इन्द्र, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर और महादेव) से युत— अखण्डित आठ रस्सियों से बँधा हुआ, मजबूत लकड़ी का बना हुआ, दो मातृका वाला, दृढ़ बँधा हुआ, यन्त्रार्गल वाला और सारयुत वृक्षों से बनी हुई कुमारिकाओं से युत इन्द्र के लक्ष्म (ध्वज) को उठावे।।५७-५८।।

एवंविधं सहस्रचक्षुषो दशशतनयनस्येन्द्रस्य लक्ष्म ध्वजमुत्थापयेत्। कीदृशं छत्रमातपत्रम्। ध्वजः पताका। आदर्शो दर्पणम्। फलं लाङ्गलम्। अर्द्धचन्द्रः खण्डेन्दुः। विचित्रमाला नानाविधाः स्रजः। तथा कदली वृक्षविशेषः। इक्षुदण्डः। एतैः सह। तथा दिक्ष्वष्टासु लोकपालैरिन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुवेरेशानैरलंकृतं संयुक्तम्।

तथा अच्छिन्नरज्जुम्, अच्छिन्ना रज्जवो यस्य। इन्द्रध्वजबन्धनार्थमष्टासु दिक्षु अष्टौ रज्जवः कार्याः। तथा च गर्गः—

यथादिशं च रज्ज्वष्टौ मौञ्जीस्रग्दामसंहिताः।
निग्रहार्थं ध्वजे कार्या निबद्धाश्चेन्द्रमण्डले।।

दृढकाष्ठमातृकम्, दृढकाष्ठा मातृका यस्य। इन्द्रध्वजनिष्पीडनार्थं पार्श्वद्वये मातृकाद्वितयं कार्यम्। सुश्लिष्टयन्त्रार्गलपादतोरणम्, सुश्लिष्टं यन्त्रार्गलं पादमूले तोरणं यस्य। अयमर्थः— पादमूलध्वजस्य तोरणं कार्यं तत्र या मातृकाः पार्श्वस्थितानि निरन्तराणि काष्ठानि तासां मातृकाणां तिर्यक्कृत्वा यानि काष्ठानि निक्षिप्यन्ते तान्यर्गलाग्रहणेनोच्यन्ते। ता अर्गलाः

सुश्लिष्टाः सुयोजिता यत्र। तथा कुमारिकाः शक्रकुमार्यः। सारद्रुमोऽन्तःसारो वृक्षः। तस्माद्या अभग्नाः कुमारिकास्ताभिरन्वितम्। एतदुक्तं भवति—यास्ताः शक्रकुमार्यः कथितास्ताः सारवृक्षैः कार्या अभग्नाश्चेति। युगलकम्।।५८।।

कथं केतुमुत्थापयेदित्याह—

अविरतजनरावं मङ्गलाशीःप्रमाणैः
पटुपटहमृदङ्गैः शङ्खभेर्यादिभिश्च।
श्रुतिविहितवचोभिः पापठद्भिश्च विप्रै-
रशुभविहतशब्दं केतुमुत्थापयेच्च।।५९।।

मंगल आशीर्वाद और प्रणामों के द्वारा लगातार हुये मनुष्य के शब्दों से युत, ढोल, मृदङ्ग, शङ्ख और भेरी के शब्दों से युत, वेदविहित वाक्यों को बार-बार पढ़ते हुये ब्राह्मणों से युत तथा मङ्गल शब्दों से युत ध्वज को राजा उठावे।।५९।।

राजा केतुमिन्द्रध्वजमेवमुत्थापयेत्। कीदृशम्? अविरतजनरावम्, मङ्गलैः शब्दैः, आशीर्भिः प्रणामैर्नमस्कारैरेतैरविरतः अविच्छिन्नो जनानां पुरुषाणां रावः शब्दो यस्य। तथा पटवश्चतुराः शब्दयुक्ता ये पटहास्तथा मृदङ्गा वादित्रविशेषास्तैः सह। तथा शङ्ख-भेर्यादिभिः, शङ्खैर्भेरीभिर्ढक्काभिः। आदिग्रहणाद् दुन्दुभिकरटवीणावंशा गृह्यन्ते। एतैरपि सह। तथा विप्रैर्ब्राह्मणैः। पापठद्भिः। अत्यर्थं पुनः पुनर्वा पठद्भिः। कीदृशैः? श्रुतिविहित-वचोभिः, श्रुतिर्वेदस्तद्विहितानि वचांसि येषां तैः। अशुभा अनिष्टा विहता विशेषेण नष्टाः शब्दा यस्य तथाभूतं केतुम्। अथवा परः पाठो यथा। सुशुभसहितशब्दम्, सुष्ठु शुभ-सहितः शब्दो यत्र मङ्गलपाठे तत्केतुमुत्थापयेदिति।।५९।।

कीदृशो राजा केतुमुत्थापयेदित्याह—

फलदधिघृतलाजाक्षौद्रपुष्पाग्रहस्तैः
प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टवद्भिश्च पौरैः।
वृतमनिमिषभर्तुः केतुमीशः प्रजानाम-
रिनगरनताग्रं कारयेद् द्विड्बधाय।।६०।।

फल, दही, घी, लाजा (लाई = खील = लावा), शहद और फूल हाथ में लिये, नत मस्तक वाले तथा मङ्गल शब्द बोलते हुये पुरवासियों के साथ प्रजाओं का स्वामी राजा अनिमिषों (देवताओं) के भर्ता (स्वामी) इन्द्र के ध्वज को शत्रुवध के लिये शत्रु के नगर की तरफ झुकावे।।६०।।

प्रजानामीशो राजा। अनिमिषभर्तुः केतुम्, अनिमिषा देवास्तेषां भर्तुः प्रभोरिन्द्रस्य केतुं ध्वजं द्विषां शत्रूणां बधाय। अरिनगरनताग्रं कारयेत्, अरिनगरे शत्रुपुरे नतमग्रं प्रान्तं यस्य। कीदृशं ध्वजम्? एवंविधैः पौरैः पुरजनैर्वृतं परिवृतम्। कीदृशैः? फलानि श्रीफल-प्रभृतीनि। दधि क्षीरविकारः। घृतमाज्यम्। लाजा प्रसिद्धा। क्षौद्रं माक्षिकम्। पुष्पाणि

कुसुमानि। एतान्यग्रहस्ते दक्षिणपाणौ येषां तैः। तथा प्रणिपतितं शिरो मूर्धा येषां तैः। तुष्टवद्भिः। अत्यर्थं स्तुवद्भिः। नागरैः शुभशब्दं वाच्यमानैरिति।।६०।।

कीदृशं शोभनमुत्थानमित्याह—

नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्प-
मध्वस्तमाल्यपिटकादिविभूषणञ्च ।
उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्या-
त्तच्छान्तिभिर्नरपतेः शमयेत् पुरोधाः ।।६१।।

अनतिशीघ्र, अविलम्ब, कम्पनरहित, अनष्ट माला और पिटक आदि भूषण वाले ध्वज का उठना शुभ है। इनसे भिन्न लक्षणयुत ध्वज का उठना अशुभ है। राजपुरोहित को शान्ति के द्वारा विघ्नों को दूर करना चाहिये।।६१।।

एवंविधमुत्थानमिष्टं शुभमित्यर्थः? कीदृशम्। नातिद्रुतं न त्वरितम्, न च विलम्बितं नातिध्वस्तम्। अप्रकम्पम्, प्रकम्पश्चलनं येन नोत्पद्यते। तथा अध्वस्तानि माल्यानि पिटकादीनि विभूषणानि येन तत्। आदिग्रहणाच्छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्र इत्यादिकानि गृह्यन्ते। एतेषां ध्वंसो नाशो येन न भवति। अतोऽन्यथा यदुत्थानं तन्नरपते राज्ञोऽशुभमनिष्टं स्याद्भवेत्। तच्च पुरोधाः पुरोहितः शान्तिभिरुपघातप्रतीकारैः शमयेत्। तथा च गर्गः—

अविध्वस्तमनाधूतमद्रुताजिह्ममूर्ध्वगम् ।
इन्द्रध्वजसमुत्थानं क्षेमसौभिक्षकारकम्।।
निर्घातोल्कामहीकम्पा दीप्ताश्च मृगपक्षिणः।
उच्छ्रीयमाणे चण्डा वा वायवः स्युर्भयाय ते।। इति।।६१।।

अथोच्छ्रिते च तस्मिन् शुभाशुभज्ञानमाह श्लोकपञ्चकेन—

क्रव्यादकौशिककपोतककाककङ्कैः
केतुस्थितैर्महदुशन्ति भयं नृपस्य।
चाषेण चापि युवराजभयं वदन्ति
श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ।।६२।।

भङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्करान् मधु करोति निलीनम्।
६। चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ।।६३।।
राज्ञी शं पतिता पताकाकरोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः।
मध्याग्र षु च केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ।।६४।।
पावृते शिखिभयं तमसा च मोहो
८ नैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः।

ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्यान्
भङ्गे तु बन्धकिबधः कथितः कुमार्याः ॥६५॥

रज्जूत्सङ्गच्छेदने बालपीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः।
यद्यत्कुर्युश्चारणा बालका वा तत्तत्तादृग्भावि पापं शुभं वा ॥६६॥

यदि इन्द्रध्वज पर मांस खाने वाला पक्षी, उल्लू, कबूतर, काक या उजली चिल्ह बैठे तो राजा को अत्यन्त भय, नीलकण्ठ बैठे तो युवराज को भय और बाज बैठे तो नेत्रभय करता है।

यदि ध्वज का छत्र भङ्ग हो जाय तो राजा की मृत्यु, उस पर मधुमक्खियाँ मुहाल (छत्ता) लगावें तो चोरों का उपद्रव, उल्का गिरे तो पुरोहित का नाश और वज्रपात हो तो राजा की प्रधान रानी का नाश होता है।

ध्वज का पताका गिरे तो रानी का नाश, पिटक गिरे तो अवृष्टि, ध्वज मध्य भाग से टूट जाय तो मन्त्री का नाश, आगे से टूट जाय तो राजा का नाश एवं मूल से टूट जाय तो पुरवासियों का नाश करता है।

ध्वज यदि धुआँ से व्याप्त हो जाय तो अग्निभय, अन्धकार से व्याप्त हो जाय तो विकलता और वहाँ पर सर्प दब कर मर जायँ या गिरें तो मन्त्रियों का नाश होता है।

ध्वज के उत्तर दिशा में कोई उत्पात हो तो ब्राह्मणों को, पूर्व में क्षत्रियों को, दक्षिण में वैश्यों को और पश्चिम में कोई उत्पात हो तो शूद्रों को पीड़ित करता है तथा यदि शक्र-कुमारी टूटे तो वेश्याओं का नाश होता है।

यदि इन्द्र-ध्वज उठाने के समय रस्सी कहीं से टूट जाय तो बालकों को और मातृका (तोरण का पार्श्ववर्त्ती काष्ठ) टूट जाय तो राजमाता को पीड़ा होती है।

इन्द्रध्वज के समीप चारण गण और बालकों की चेष्टा के द्वारा भावी अशुभ या शुभ फल ज्ञात होता है।।६२-६६।।

क्रव्यादा मांसाशिनो विहगाः। कौशिक उलूकः। कपोतः पारावतः। काको वायसः। कङ्कः पक्षिविशेषः। गृध्रो वेति पाठः। एतैः केतुस्थितैरिन्द्रध्वजोपविष्टैर्नृपस्य राज्ञो महद्भय-मुशन्ति कथयन्ति। चाषः पक्षी। तेन ध्वजस्थेन युवराजभयं वदन्ति। श्येनो वाजिको निपतन्नुपविशन् विलोचनभयं चक्षुर्नाशं करोति।

तथा छत्रस्यातपत्रस्य भङ्गे स्फुटने पतने वा नृपस्य राज्ञो मृत्युर्भवति। मधुशब्देन मधुमक्षिकोच्यते। मधु निलीनं संश्लिष्टं तस्करान् करोति। उल्काप्यथ पतिता पुरोहितं हन्ति नाशयति। अशनिः पतिता पार्थिवस्य राज्ञो महिषीं प्रधानां स्त्रियं हन्ति।

पताका पतिता राज्ञ्या विनाशं करोति। पिटकस्य पातः पतनमवृष्टिमवर्षणं करोति।

तथा केतोर्मध्याद् भङ्गो मन्त्रिणो हन्ति। अग्राद्भङ्गः क्षितिपालं राजानं निहन्ति। मूलाद्भङ्गः पौरान् पुरजनान्निहन्ति।

तथा केतौ धूमावृते धूमेन व्याप्ते शिखिभयमग्निभयं भवति। तमसा वृते मोहो वैकल्यं भवति। व्यालैर्व्याडैर्भग्नैः स्फुटितैः पतितैश्चामात्या मन्त्रिणो न भवन्ति। उदक्प्रभृतीत्युत्तरादिदिक्चतुष्टये उत्पातैर्दृष्टैर्द्विजाद्यान् ब्राह्मणाद्यान् ग्लायन्ति पीडयन्तीत्यर्थः। तद्यथा— उत्तरस्यां ब्राह्मणान्। पूर्वस्यां क्षत्रियान्। दक्षिणस्यां वैश्यान्। पश्चिमायां शूद्रान् इति। कुमार्या भङ्गे स्फुटने बन्धकीनां वेश्यानां वधः कथित इति।

तथा रज्जूनां यत्र कुत्रचिच्छेदने च बालानां शिशूनां पीडा भवति। तथा मातृकायास्तोरणपार्श्वस्थस्य काष्ठस्य पीडने राज्ञो मातुर्नृपजनन्याः पीडनं भवति। चारणा विदग्धा रङ्गवरा वा, बालकाः शिशवः, एते यद्यत्पापमनिष्टं शुभं वा कुर्युः, तत्तत्तादृग्भावि। तत्तत्तथाभूतं शुभमशुभं वा लोके भवतीत्यर्थः। कुलकम्। तथा च गर्गः—

प्रहृष्टमनसः सर्वे क्रीडेयुर्मुदिता यदि।
यदा जलेन गन्धैश्च विन्द्यात् सौभिक्षलक्षणम्।।
अमेध्यै रक्तकैः केशैर्भस्मना क्रन्दनेन च।
दुर्भिक्षपीडा विज्ञेया शस्त्रैश्चापि भयं वदेत्।। इति।।६२-६६।।

अथ विसर्जने विधिमाह—

दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे।
प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्बलभिदः स्वबलाभिविवृद्धये ।।६७।।

अपनी बल-वृद्धि के लिये चार दिन (द्वादशी से पूर्णिमा तक) पूजित, खड़े हुये इन्द्र के ध्वज का मन्त्रियों के साथ होकर राजा पाँचवें दिन (प्रतिपदा के दिन) पूजन करके विसर्जन करे।।६७।।

बलभिद इन्द्रस्य लक्ष्म चिह्नं स्वबलाभिविवृद्धये आत्मीयबलविवृद्ध्यर्थं नृपो राजा पञ्चमेऽहनि दिवसे प्रतिपदि समभिपूज्य पूजयित्वा प्रकृतिभिर्मन्त्रिभिः सह विसर्जयेत्। कीदृशं लक्ष्म? दिनचतुष्टयं द्वादशीप्रभृतिदिनचतुष्टयं पौर्णमास्यां यावदुत्थितम्, समुत्थितम्। अर्चितं पूजितम्।।६७।।

इन्द्रध्वजविधानकर्तुः प्रभावमाह—

उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपतिभिरप्यनुसन्ततं कृतम्।
विधिमिममनुमन्य पार्थिवो न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ।।६८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रध्वजसम्पदध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ।।४३।।

उपरिचर वसु द्वारा चलाई हुई और सदा राजाओं से की हुई इस विधि को करके राजा शत्रुकृत भय को नहीं प्राप्त कर पाता है।।६८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामिन्द्रध्वजसम्पदध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ।।४३।।

इमं विधिं पार्थिवो राजा अनुमन्य तमिन्द्रध्वजं सम्पूज्य न क्वचिदपि रिपुकृतं शत्रुकृतं भयं प्राप्नुयात्। कीदृशं विधिम्? उपरिचरवसुप्रवर्तितम्, उपरिचरेणोर्ध्वगामिना वसुना राज्ञा प्रवर्तितम्। तथा नृपतिभी राजभिरप्यनुसन्ततमविच्छिन्नं कृतमिति।।६८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृताविन्द्रध्वज-
सम्पन्नाम त्रिचत्वारिंशोध्यायः ।।४३।।

अथ नीराजनाध्यायः

अथ नीराजनं व्याख्यायते। तत्रादावेव कालनियमप्रदर्शनार्थमाह—

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे कमलनाभे।
उन्मीलयति तुरङ्गमकरिनरनीराजनं कुर्यात् ॥१॥

मेघरूप पलक तथा चन्द्र-सूर्यरूप दोनों नेत्र वाले भगवान् कमलनाभ के नेत्र खोलने पर घोड़ा, हाथी और मनुष्यों को नीराजन (जल का स्पर्श) करना चाहिये।।१।।

भगवति परमैश्वर्ययुक्ते। कमलनाभे नारायणे। जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे, जलधरा मेघास्त एव पक्ष्माण्यक्षिरोमाणि ययोस्ते क्षपाकरार्केक्षणे। क्षपाकरश्चन्द्रः। अर्क आदित्यस्तावेवेक्षणे नेत्रे। उन्मीलयति विकाशयति सति। तुरङ्गमाणामश्वानाम्। करिणां हस्तिनाम्। नराणां मनुष्यणाम्। नीरेण जलेन अजनं स्पर्शनं कुर्यात्। अनेन नीराजनस्य वर्षासु निषेध उक्त इति।।१।।

अथ कालसमयमाह—

द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा।
आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शान्तिम् ॥२॥

कार्तिक या आश्विन के शुक्ल पक्ष की द्वादशी, अष्टमी, पूर्णिमा या अमावास्या के दिन नीराजन नामक शान्ति करनी चाहिये।।२।।

कार्तिकमासशुक्लपक्षद्वादश्यां तिथावष्टम्यां वा पञ्चदश्यां पूर्णिमायाममावस्यायां वा। आश्वयुजशुक्लपक्षे एतास्वेव तिथिषु प्रोक्तासु वा नीराजनसंज्ञितां नीराजनाख्यां शान्तिं कुर्यात्।।२।।

अथ तद्विधानमाह—

नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदारुमयम्।
षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥३॥

नगर के ईशान कोण में उत्तम भूमि पर प्रशस्त वृक्ष से सोलह हाथ ऊँचा और दश हाथ चौड़ा एक तोरण बनाना चाहिये।।३।।

नगरस्य पुरस्योत्तरपूर्वस्यामैशान्यां दिशि, प्रशस्तभूमौ शुभलक्षणसंयुतायां शल्यादिदोषवर्जितायामवनौ, प्रशस्तदारुमयं याज्ञिकवृक्षविनिर्मितम्। षोडशहस्तोच्छ्रायमुच्छ्रितं दशहस्तविपुलं विस्तीर्णं तोरणं कार्यम्।।३।।

अथ शान्तिगृहलक्षणमाह—

सर्जोदुम्बरककुभशाखामयशान्तिसद्म कुशबहुलम्।
वंशविनिर्मितमत्स्यध्वजचक्रालङ्कृतद्वारम् ॥४॥

विजयसार, गूलर या अर्जुन वृक्ष की डालियों से युत तथा बाँसों से रचित मत्स्य ध्वज और चक्रों से अलंकृत शान्तिगृह बनाना चाहिये।।४।।

सर्जः। उदुम्बरः। ककुभः। एते सर्वे वृक्षविशेषाः। एषां शाखामयं लताविनिर्मितं शान्ति-सद्म शान्तिगृहं कार्यम्। कुशबहुलं प्रभूतकक्षमयम्। तथा वंशविनिर्मितानि वेणुरचितानि मत्स्यध्वजचक्राणि, मत्स्यो मीनः, ध्वजश्चिह्नम्, चक्रमायुधम्। एतैरलंकृतं शोभितं द्वारं यस्य तथाभूतम्।।४।।

अथाश्वादीनां दीक्षाविधानमाह—

प्रतिसरया तुरगाणां भल्लातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान्।
कण्ठेषु निबध्नीयात् पुष्ट्यर्थं शान्तिगृहगाणाम् ॥५॥

भिलावा, शाली धान्य, कूठ और श्वेत सरसों को प्रतिसरा (कुङ्कुमरञ्जित या पीले सूत्र) से पुष्टि के लिये शान्ति गृह में स्थित घोड़ों के गले में बाँधना चाहिये।।५।।

तुरगाणामश्वानां प्रतिसरया कुङ्कुमरञ्जितेन सूत्रेणान्येन पीतेन वा कण्ठेषु गलेषु। भल्लातकं प्रसिद्धम्। शालयः प्रसिद्धाः। कुष्ठम्। सिद्धार्था गौरसर्षपाः। एतत्पुष्ट्यर्थं पुष्टिकरणाय। शान्तिगृहगाणां शान्तिसद्मस्थानां निबध्नीयात्। तथा च काश्यपः—

शालिजातकसिद्धार्थान् कुष्ठं भल्लातकं तथा।
अश्वेषु कण्ठे बध्नीयात् सप्ताहं शान्तिमाचरेत्।। इति।।५।।

अथ शान्तिविधानमाह—

रविवरुणविश्वदेवप्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः।
सप्ताहं शान्तिगृहे कुर्याच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥६॥

शान्तिगृह में सूर्य, वरुण, विश्वेदेव, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु के मन्त्रों से सात दिन तक घोड़ों की शान्ति करनी चाहिये।।६।।

रविरादित्यः। वरुणोऽपाम्पतिः। विश्वेदेवा देवविशेषाः। प्रजेशो ब्रह्मा। पुरुहूत इन्द्रः। विष्णुर्नारायणः। एषां सप्तभिर्मन्त्रैस्तुरङ्गाणामश्वानां शान्तिगृहे स्थितानां सप्ताहं सप्तदिनानि शान्तिं कुर्यात्। तथा च काश्यपः—

पौष्टिकैर्विविधैर्मन्त्रैः पुरोधा ज्वलनं हुतेत्।
हुतान्ते भोजयेद्विप्रान् दक्षिणां विपुलां ददेत्।। इति।।६।।

अथाश्वानां किं कुर्यादित्याह—

अभ्यर्चिता न परुषं वक्तव्या नापि ताडनीयास्ते।
पुण्याहशङ्खतूर्यध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः ॥७॥

पुण्याहवाचन, शङ्खध्वनि, भेरी की ध्वनि तथा गीत के शब्दों से भयरहित, पूजित घोड़े को डराना और चाबुक आदि से मारना नहीं चाहिये।।७।।

ते अश्वा अभ्यर्चिता: पूजिता:। परुषमप्रियं न वक्तव्या:। नापि ते ताडनीया:। कषादिभिर्न हन्तव्या:। तथा पुण्याहरवै: शुभवाक्यशब्दै: माङ्गलीयकैर्वचनै: शङ्खध्वनिभि: शङ्खशब्दै:। तूर्यध्वनिभि: तूर्यशब्दै:। गीतरवैर्गीतशब्दैश्च। विमुक्तं परित्यक्तं भयं भीतिर्यैस्ते तथाविधा: कार्या:।।७।।

तत: सप्ताहात् परत: किं कुर्यादित्याह—

प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि कुर्यादुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणत:।
कुशचीरावृतमाश्रममग्निं पुरतोऽस्य वेद्यां च ।।८।।

आठवें दिन तोरण के दक्षिण तरफ आगे स्थित वेदी पर कुशा और वृक्षवल्कल से ढकी हुई अग्नि का स्थापन करना चाहिये।।८।।

प्राप्तेऽष्टम इति। ततोऽष्टमेऽह्नि दिवसे प्राप्ते तोरणस्य प्राङ्निर्दिष्टस्य दक्षिणभागे आश्रममुदङ्मुखमुत्तराभिमुखं कुशचीरावृतं कुशैर्दर्भैश्चीरैर्वृक्षवल्कलैरावृतं छादितं कुर्यात्। अस्य पुरतोऽग्रतो वेद्यामग्निं कुर्यात्। वेदीलक्षणमत्राचार्येणोक्तमस्माभिरन्यशास्त्रात् प्रदर्श्यते—

यज्ञे चतु:षष्टिकरा विवाहे वेदी द्विजानां द्विनरप्रमाणा।
कार्या ततोऽष्टांशशमक्रमेण राजन्यवैश्यवृषलान्त्यजानाम्।।

तथा च—

सप्तहस्ता ब्राह्मणानां वेदी यज्ञे प्रकीर्तिता।
षट्करा क्षत्रियाणां तु वैश्यानां पञ्च कीर्तिता।।
चतुर्हस्ता तु शूद्राणां विवाहेऽपि विनिश्चिता।
अलाभे सर्ववर्णानां चतुर्हस्ता प्रकीतिता।।
व्यन्तराणामतो न्यूना निर्दिष्टा मुनिभि: सदा।
अतो न्यूनाधिका वेदी यजमानस्य मृत्यदा।।

तथा च—

यज्ञे विवाहे वक्ष्यामि वेदिमानं समासत:।
त्रि:सप्तहस्तविस्तारा ब्राह्मणानां शुभावहा।।
क्षत्रियाणां पञ्चदशी वैश्यानां नवसम्मिता।
सप्तहस्ता तु शूद्राणां शिल्पिनां पञ्च कीर्तिता।।
त्रिहस्ता व्यन्तराणां तु वेदी सर्वत्र कीर्तिता।
भुवोऽपरोधे मर्त्यानां चातुर्वर्ण्यै: प्रकीर्तिता।।
पञ्चहस्ता कृता वेदी सर्वमाङ्गल्यदायिका।

एवं प्रमाणं ज्ञात्वा तस्याः शुभाशुभलक्षणमाचार्येणैवोक्तम्—

वेदीशुभाशुभविधानविधौ प्रदिष्टा दिक्स्थानमानाभ्यधिका न हीना।
भ्रष्टा प्रमाणेन करोति भङ्गं दिग्वक्रसंस्था न च सिद्धिदा स्यात्।।
प्राग्भागहीना नगरस्य नेष्टा पुरोधसो दक्षिणभागवक्रा।
नरेन्द्रजायाशुभदा परस्यामुदग्बलेशस्य नृपस्य मध्ये।। इति।

तथा च काश्यपः—

अष्टमेऽह्नि पुरस्कृत्य राजा पौरजनैर्वृतः।
गच्छेच्छान्तिगृहं हृष्टः शङ्खतूर्यरवैः सह।। इति।।८।।

अथ सम्भाराणां लक्षणमाह—

चन्दनकुष्ठसमङ्गाहरितालमनःशिलाप्रियङ्गुवचाः ।
दन्त्यमृताञ्जनरजनीसुवर्णपुष्प्यग्निमन्थाश्च ।।९।।

श्वेतां सपूर्णकोशां कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः ।
नागकुसुमं स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च ।।१०।।

कलशेष्वेताः कृत्वा सम्भारानुपहरेद्बलिं सम्यक् ।
भक्ष्यैर्नानाकारैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः ।।११।।

चन्दन, कूठ, मञ्जीठ, हरिताल, मैनशिल, कंगनी (कौन), वच, गुरुच, अञ्जन, हलदी, सुवर्णपुष्पी, अग्निमन्था (अरणी), श्वेता (गिरिकर्णी = अपराजिता), पूर्णकोशा, महाश्वेता (उजला गंगा फल), त्रायमाण (चिरायते का फल), सहदेवी, नागपुष्प, स्वगुप्ता (क्यवाँच = कवाछ), शतावरी, सोमवल्ली—इन सब ओषधियों को बराबर-बराबर लेकर पूर्ण कलश में शहद, पायस देकर यावकों (कुरथियों) से युत अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के साथ बलि देना चाहिये।।९-११।।

चन्दनं मलयजम्। कुष्ठं प्रसिद्धम्। समङ्गा मञ्जिष्ठा। हरितालं प्रसिद्धम्। मनःशिला प्रसिद्धैव। प्रियङ्गुर्गन्धप्रियङ्गुः। वचा प्रसिद्धैव। दन्ती प्रसिद्धैव। अमृता गुडूची। अञ्जनं स्रोतोञ्जनं प्रसिद्धं सौभाञ्जनं वा। रजनी हरिद्रा। सुवर्णपुष्पी प्रसिद्धैव। अग्निमन्था तर्कारी।

श्वेता गिरिकर्णिका, तां च सपूर्णकोशां पूर्णकोशया सह। कटम्भरां महाश्वेताम्। त्रायमाणं प्रसिद्धम्। सहदेवीं सहगन्धाम्। नागकुसुमं नागपुष्पम्। स्वगुप्तामात्मगुप्तां कपिकच्छुमित्यर्थः। शतावरी प्रसिद्धा। सोमराजी सोमवल्ली।।

एताश्चौषधीः कलशेषु पूर्णघटेष्वभ्यन्तरे कृत्वा संस्थाप्य सम्भारानेतानेव ततः सम्यग्यथाविधानेन बलिमुपहरेत् ढौकयेत्। भक्ष्यैर्मोदकैर्लोपिकापूपादिभिः। नानाकारैर्बहुविधैः। कीदृशैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः। मधु माक्षिकम्। पायसं पयोविकारो यत्किञ्चित्क्षीरसम्भवम्। यावकं यावप्रकारः। एतैः प्रचुराः प्रभूता येषु तैः।।९-११।।

अन्यच्च—

खदिरपलाशोदुम्बंरकाश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः समिधः ।
स्रुक् कनकाद्रजताद्वा कर्तव्या भूतिकामेन ॥१२॥

खैर, ढाक, गूलर, गम्भारी और पीपल की लकड़ी की समिधा बनाकर सम्पत्ति की इच्छा करने वाले राजा को सोना या चाँदी की स्रुवा बनानी चाहिये।।१२।।

खदिरः। पलाशः। उदुम्बरः। काश्मरी। अश्वत्थः। एते सर्व एव वृक्षविशेषा याज्ञिकाः सुप्रसिद्धाः। एभ्यो निर्मिताः सम्भूताः समिधः कार्याः। तथा भूतिकामेन समृद्धिमिच्छता स्रुक् कनकात् सुवर्णात् रजताद्वा कर्तव्या।।१२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

पूर्वाभिमुखः श्रीमान् वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा ।
तिष्ठेदनलसमीपे तुरगभिषग्दैववित्सहितः ॥१३॥

ब्याघ्र के चर्म पर पूर्वाभिमुख होकर अग्नि के समीप में वैद्य और ज्यौतिषी के साथ श्रीमान् राजा बैठे।।१३।।

राजा नृपः। श्रीमान् श्रीर्विद्यते यस्य। त्रिवर्गसमाश्रयः। श्रीमानित्यनेन राज्ञो महिमानं दर्शयति। सकलप्रतिपत्तियुक्तस्तत्रस्थ इत्यर्थः। पूर्वाभिमुखः पूर्वस्यां दिशि निरीक्षमाणो वैयाघ्रे व्याघ्रस्य चर्मणि स्थित उपविष्टः। अनलसमीपेऽग्निसन्निधौ तुरगभिषग्दैववित्सहितः, तुरगभिषजा अश्ववैद्येन दैवविदा सांवत्सरिकेण सहितः संयुक्तस्तत्र तिष्ठेत्।।१३।।

अथ दैवविदा तत्र किं कार्यमित्याह—

यात्रायां यदभिहितं ग्रहयज्ञविधौ महेन्द्रकेतौ च ।
वेदीपुरोहितानललक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥१४॥

यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञविधि में तथा इन्द्रध्वजलक्षणाध्याय में वेदी, पुरोहित और अग्नि के जो लक्षण कहे हैं, वह इस नीराजनाध्याय में भी समझना चाहिये।।१४।।

वेद्या अग्न्यागारस्य। पुरोहितस्य हेतुः। अनलस्याग्नेः। लक्षणं यात्रायामभिहितं कथितम्। क्व ग्रहयज्ञविधौ। ग्रहाणां यज्ञविधाने। तथा महेन्द्रकेताविन्द्रध्वजे च यदुक्तं तदस्मिन्नीराजने अवधार्यं लक्षणीयमिति। तथा च यात्रायां ग्रहयज्ञे—

ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये तत्र निमित्तानि लक्षयेद्वेद्याम्।
भङ्गो मानोनायां दिग्भ्रष्टायामसिद्धिश्च।।
नगरपुरोहितदेवीसेनापतिपार्थिवक्षयं कुरुते।
प्राग्दक्षिणापरोत्तरमध्यमभागेषु या विकला।।

तथा च पुरोहितस्य—

कम्पोच्छ्वासविजृम्भणप्रचलनस्वेदाश्रुपातक्षुधो-
द्गाराद्यं च पुरोधसः स्मृतिविपच्चानिष्टमन्यच्छुभम्।

आज्यं केशपिपीलकामलयुतं सत्त्वावलीढं च य-
त्तन्नेष्टं शुभमन्यथोपकरणं द्रव्याण्यनूनानि च।।

तथा चानललक्षणम्—

उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देवसुखप्रदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो यात्रानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो वह्निः श्रियं यच्छति।।
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृति-
र्भेर्यब्दोदधिदुन्दुभीशकटस्निग्धस्वनैः पूजितः।
नेष्टः प्रोक्तविपर्यये हुतवहः स्निग्धोऽन्यथापीष्टदः
सव्येऽङ्गे नृपतेर्दहन्नतिहितः शेषं च लोकाद्वदेत्।।

तथा महेन्द्रकेताविहैवोक्तम्—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः।। इति।।१४।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदवरं चैव दीक्षितं स्नातम्।
अहतसिताम्बरगन्धस्रग्धूमाभ्यर्चितं कृत्वा ।।१५।।

आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत् सान्त्वयन् शनैर्वाचा।
वादित्रशङ्खपुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम् ।।१६।।

वक्ष्यमाण लक्षणों से युत घोड़ा और हाथी का अक्षत, श्वेत वस्त्र, माला, धूप आदि से पूजन कर अनेक प्रकार के वाद्य और पुण्याह शब्दों से युत अपने आश्रम के समीपस्थित तोरण के पास मधुर वाणियों से सान्त्वना देते हुए धीरे-धीरे लाना चाहिये।।१५-१६।।

तुरगमश्वम्। द्विरदवरं हस्तिप्रधानं च। लक्षणयुक्तं तुरङ्गं वक्ष्यमाणैः शोभनैरश्वलक्षणै-र्दीर्घग्रीवाक्षिकूट इत्यादिलक्षणैश्च युक्तम्। तथा द्विरदवरैर्हस्तिलक्षणैस्ताम्रोष्ठतालुवदना इत्यादिकैश्च युक्तम्। दीक्षितं कृतदीक्षं च स्नातम्। अहतेनाक्षतेन सितेन शुक्लेनाम्बरेण वस्त्रेण स्रग्भिर्मालाभिर्धूपैर्गुग्गुलुप्रभृतिरभ्यर्चितं पूजितं कृत्वा।

तत आश्रमतोरणमूलम् स्वाश्रमसमीपे यत्तोरणं तन्मूलं तत्र वाचा गिरा सान्त्वयन् शान्तिं कुर्वन् शनैः शनैर्मन्दं मन्दं समुपनयेत् प्रापयेत्। कीदृशं तोरणमूलम्? वादित्रशङ्ख-पुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम्। वादित्राणां पटहमृदङ्गानां पुण्याहानां शुभशब्दानां निःस्वनैः शब्दैरापूरिता जडीकृता दिगन्ता यत्र तथाभूतम्।।१५-१६।।

अथाश्वगजयोश्चेष्टितमाह—

यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य।
स जयति तदा नरेन्द्रः शत्रून्नचिराद्दिना यत्नात् ।।१७।।

त्रस्यन्नेष्टो राज्ञः परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम्।
यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्यं यथायुक्ति ॥१८॥

जिस राजा के द्वारा लाया गया घोड़ा दक्षिण चरण उठाकर खड़ा रहे, वह राजा शीघ्र ही विना परिश्रम शत्रु को जीत लेता है। यदि घोड़ा डर जाय तो राजा का शुभ नहीं होता। यहाँ घोड़ा का ग्रहण उपलक्षणमात्र है, अतः घोड़े की जगह हाथी को भी लेना चाहिये। हाथी और घोड़े की शेष चेष्टाओं का फल 'यात्रा' नामक ग्रन्थ में जिस प्रकार मैंने कहा है, उसी प्रकार युक्तिपूर्वक यहाँ पर भी विचार करना चाहिये।।१७-१८।।

यद्यानीत इति। अत्र हयग्रहणमुपलक्षणार्थम्। तेन हयोऽश्वो द्विरदवरो वा हस्ती यद्यानीतस्तत्र दक्षिणचरणं दक्षिणपादं समुत्क्षिप्य तिष्ठेत्, तदा स नरेन्द्रो राजा शत्रून् रिपून्नचिराच्छीघ्रमेव विना यत्नात् प्रयत्नं विना अनुद्यमेनैव जयति।

त्रस्यन्नुद्विजन् राज्ञो नृपस्य नेष्टो न शुभः। परिशेषमन्यच्चेष्टितं शुभाशुभसूचकं द्विपहयानां हस्त्यश्वानां यात्रायां व्याख्यातं कथितम्। तथा च—

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी।
अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते।।

आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषते च।
वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
योऽश्वः स भर्तुरचिरात् प्रतनोति लक्ष्मीम्।। इत्यादि।

तथा च गजस्य—

स्खलितगतिरकस्मात् त्रस्तकर्णोऽतिदीनः
श्वसिति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम्।
द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो
भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक् शकृच्च।।
वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
र्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्रमुन्नाम्य चोच्चैः।
कक्ष्यासन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा
तत्कालं वा मदाप्तिर्जयकृदथ रदं वेष्टयन् दक्षिणं वा।।

एवमादिकं यदुक्तं तदिहास्मिन्नीराजने यथायुक्ति यथासम्भवं विचिन्त्यं विचार्यम्। यत्सम्भवति तच्चिन्तनीयमित्यर्थः।

'प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनम्' इत्यादिकमश्वस्य सम्भवति। तथा गजस्य—

क्षीरवृक्षफलपुष्पपादपेष्वापगातटविघट्टितेन वा।
वाममध्यरदभङ्गखण्डनम्........................।।

इत्यादिना सम्भवति।। इति ।।१७-१८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत् ।
अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीतोऽतोऽन्यथाभिहितः ।।१९।।

पुरोहित अन्न के पिण्ड को अभिमन्त्रित करके घोड़े को दे दे। यदि घोड़ा उस अन्न के पिण्ड को सूँघे या कुछ खा जाय तो राजा की विजय करने वाला, अन्यथा पराजय करने वाला होता है।।१९।।

पुरोहित आचार्यो वाजिने अश्वाय पिण्डमन्नपिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् प्रयच्छेत्। सोऽश्वो यदि तत् पिण्डं जिघ्रेत् किञ्चिदश्नीयाद् भक्षयेद् वा, तदा जयकृत्, राज्ञां जयं करोति। अतोऽन्यथा यदि न जिघ्रन्नपि भक्षयेत्, तदा विपरीतोऽभिहितः पराजयकृदुक्त इति।।१९।।

अथ नीराजनमाह—

कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्यौदुम्बरीं स्पृशेत् तुरगान् ।
शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ।।२०।।

गूलर की एक छोटी-सी डाली को कलशजल में डुबाकर शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों से घोड़ा, राजा, हाथी और सेनाओं को स्पर्श (सिक्त) करे।।२०।।

कलशोदकेषु कलशस्थजलेषु प्राक्स्थापितेष्वौषधिमिश्रितेष्वौदुम्बरीमुदुम्बरवृक्षसम्भवां शाखां लतामाप्लाव्य मज्जयित्वा तया तुरगान् अश्वान् स्पृशेत्। शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैः सह। एवमनेन प्रकारेण सनृपनागां सेनां स्पृशेत्। नृपो राजा। नागा हस्तिनः। तत्संयुक्तां चमूं स्पृशेत्।।२०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

शान्तिं राष्ट्रविवृद्ध्यै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः ।
मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलेनोरःस्थले विप्रः ।।२१।।

फिर ब्राह्मण राष्ट्र की वृद्धि के लिये शान्ति करके अभिचार कर्म में उक्त आथर्वण मन्त्रों को पढ़कर मिट्टी की बनाई हुई शत्रु की मूर्ति के वक्षःस्थल को तीक्ष्ण शूल से फाड़े।।२१।।

भूयः पुना राष्ट्रविवृद्ध्यै राष्ट्रसंवर्धनाय शान्तिं कृत्वा ततोऽभिचारकैर्मन्त्रैः, अभिचारकर्मणि ये मन्त्रा आथर्वणा उक्तास्तैर्मन्त्रैर्मृण्मयं मृत्तिकारचितमरिं शत्रुमुरःस्थले वक्षःप्रदेशे विप्रो ब्राह्मणः शूलेनाग्रतीक्ष्णेन काष्ठेन विभिन्द्याद् विदारयेत्।।२१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

खलिनं हयाय दद्यादभिमन्त्र्य पुरोहितस्ततो राजा ।
आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजितः सबलः ।।२२।।

बाद में पुरोहित खलीन (लगाम) को अभिमन्त्रित करके घोड़े के मुख में दे। फिर उस पर नीराजन किया हुआ राजा बैठकर सेनाओं के साथ ईशान कोण की ओर गमन करे।।२२।।

ततोऽनन्तरं पुरोहितः खलिनं कविकामभिमन्त्र्य मन्त्रयित्वा हयायाश्वाय दद्यात् प्रयच्छेत्। तस्मिन् नृप आरुह्य नीराजितः सबलो बलसहितः सेनासहित उदक्पूर्वामैशानीं यायाद् गच्छेत्।।२२।।

कथं राजा गच्छेदित्याह—

मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धमारुतः ।
शिरोमणिप्रान्तचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन् विवस्वानिव तोयदात्यये ॥२३॥

हंसपङ्क्तिभिरितस्ततोऽद्रिराट् सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः ।
मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥२४॥

नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः ।
भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः शक्रकार्मुकरुचिं समुद्वहन् ॥२५॥

उत्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम् ।
निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः शक्रवत् परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥२६॥

मृदङ्ग और शङ्ख की ध्वनि से हर्षित होकर हाथियों के झरते हुये मदजलों की सुगन्धि से युत वायु वाला (क्योंकि शरद् ऋतु में सुगन्धित वायु चलती है) और मुकुट में जड़ी हुई मणियों के प्रान्त भाग में चलित किरणों से युत शारदीय सूर्य की तरह (क्योंकि शरद् ऋतु में सूर्य तेजस्वी होते हैं) राजा अथवा सुगन्धित वायु को सेवन करने वाले शुक्ल चामरों से कम्पमान सुन्दर माला और वस्त्र वाले मानों हंसपंक्तियों से व्याप्त और सुगन्धियुत वायुओं से युत हिमालय की तरह राजा अथवा अनेक वर्ण वाले रत्न तथा हीराओं से व्याप्त मुकुट, कुण्डल और बाजू से भूषित होने के कारण इन्द्रधनु की कान्ति धारण किया हुआ राजा अथवा उड़ते हुये घोड़े, पृथ्वी को विदारण करते हुये हाथी और शत्रु को जीतने वाले मनुष्यों के साथ मानो देवताओं से घिरे हुये इन्द्र के समान राजा गमन करे।।२३-२६।।

मृदङ्गेति । नृपो राजा नीराजितस्तोयदात्यये शरदि विवस्वानादित्यो ज्वलन् कान्तिमानिव व्रजेत्। तोयदा मेघास्तेषामत्ययो विनाशः शरदित्यर्थः। कीदृशः ? मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धमारुतः, मृदङ्गा वादित्रविशेषाः, शङ्खाः प्रसिद्धाः, मृदङ्गशङ्खानां योऽसौ ध्वनिः शब्दस्तेन हृष्टा मुदिता ये कुञ्जरा हस्तिनस्तेषां स्रवन्मदं मदजलं तस्यामोदः सौरभ्यं तेन सुगन्धीकृतो यो मारुतो वायुस्तेन यो युक्तः स तथोक्तः। यतः शरदि किल सुगन्धो मारुतो वहति। तथा शिरोमणयश्चूडारत्नानि तेषु प्रान्तमग्रं तत्र चलन्तः स्फुरन्तो ये प्रभाचया रश्मिसमूहास्तैर्ज्वलन् देदीप्यमानः। शरदि किल सूर्यस्तेजस्वी भवति।

अथवा अद्रिराट् पर्वतराजो हिमवानिव व्रजेत्। इतस्ततः सर्वतः शुक्लचामरैः सितैर्बालव्यजनैः सम्पद्भिस्तदभिमुखं गच्छद्भिः। धूयमानाश्चाल्यमाना रुचिरा दीप्तिमत्यः स्रजो माला अम्बराणि च वस्त्राणि यस्य स तथोक्तः। कीदृशैश्चामरैः? मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिः। मृष्टं गन्धं सुगन्धं पवनं वातं येऽनुवहन्ति सेवन्ते तैस्तथाभूतैः। अत एवोत्प्रेक्षते—हंसपंक्तिभिरितस्ततः सर्वतः सम्पतद्भिर्मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिः सुगन्धमारुतानुवाहिभिरद्रिराडिव।

अथवा शक्रकार्मुकरुचिमिन्द्रधनुःकान्तिं समुद्वहन् वाहयन् व्रजेत्। मुकुटकुण्डलाङ्गदैर्भूषितः मुकुटं मौलिभूषणम्, कुण्डलं कर्णाभरणम्, अङ्गदाः कटकास्तैर्भूषितोऽलंकृतः। कीदृशैः? नैकवर्णमणिवज्रभूषितैः, नैकवर्णा बहुवर्णा ये मणयो रत्नानि, वज्रं हीरकम्, तैर्भूषिता अलंकृता ये मुकुटकुण्डलाङ्गदास्तैर्भूषितोऽलंकृतः। तथा भूरिरत्नानां बहूनां मणीनां ये किरणा रश्मयस्तैरनुरञ्जितो विच्छुरितस्तदा शक्रकार्मुकरुचिं समुद्वहन्। यतः शक्रकार्मुकस्य कान्तिर्नानावर्णा भवति।

अथवा शक्रवदिन्द्रवत्परिवृत्तः परिवारयुक्तो व्रजेत्। तुरङ्गमैरश्वैः खमाकाशमुत्पतद्भिरिव। यत इन्द्र आकाशे गच्छति। तथा दन्तिभिर्हस्तिभिर्धरां भूमिं धारयद्भिरिव। यतो मत्तदन्तिनो भूमिं विदारयन्ति। नरैर्मनुष्यैर्निर्जितारिभिर्जितशत्रुभिरमरैर्देवैरिव परिवृतः। अतीवोज्ज्वलं वेषधारित्वात्। अत एवोत्प्रेक्षते—**शक्रवदिति**।।२३-२६।।

अन्यदप्याह—

सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः।
धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः ।।२७।।

अथवा हीरा-मोती से युत श्वेत माला, श्वेत पगड़ी, श्वेत चन्दन तथा श्वेत वस्त्रों से युत, छत्रधारी और हाथी पर बैठा हुआ राजा मेघ के ऊपर और चन्द्र के नीचे विराजमान शुक्र की तरह गमन करे। यहाँ मेघ के स्थान पर हाथी, चन्द्र के स्थान पर छत्र और शुक्र के स्थान पर राजा को समझना चाहिये।।२७।।

अथवैवं व्रजेत्। सवज्रमुक्ताफलभूषणः, वज्रं हीरकम्, सवज्राणि वज्रसहितानि मुक्ताफलभूषणानि यस्य। सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः, सिताः शुक्ला याः स्रजो मालाः। सिताश्चोष्णीषाः पट्टविशेषाः। सितानि च विलेपनानि समालम्भनानि। सितान्यम्बराणि वस्त्राणि च यस्य स तथाभूतः। धृतातपत्रः। धृतमातपत्रं छत्रं यस्य। गजपृष्ठं हस्तिपृष्ठं समाश्रितः। अत एवोत्प्रेक्षते—भृगोः सुतः शुक्रो घनोपरि मेघपृष्ठे इन्दोश्चन्द्रस्य तले अधोभागे स्थित इव। मेघसंस्थानीयो गजः। चन्द्रस्य संस्थानीयं छत्रम्। शुक्रसंस्थाने नृप इति।।२७।।

अथ सैन्यचेष्टितमाह—

सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभासुरम्।
निर्विकारमरिपक्षभीषणं यस्य सैन्यमचिरात् स गां जयेत् ।।२८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः ।।४४।।

जिस राजा के हर्षित मनुष्य, घोड़े और हाथियों से युत, निर्मल खड्ग आदि से प्रकाशमान, विकाररहित और शत्रु के लिये भयावह सेनागण हों, वह शीघ्र ही पृथ्वी को जीत लेता है।।२८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां नीराजनाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः ॥४४॥

यस्य राज्ञ ईदृशं सैन्यं स राजा अचिराच्छीघ्रमेव गां भूमिं जयेत् स्वीकरोति। कीदृशम्? सम्प्रहृष्टजनवाजिकुञ्जरम्, सम्प्रहृष्टाः प्रमुदिता नरा मनुष्याः। वाजिनोऽश्वाः, कुञ्जरा यत्र। तथा निर्मलानां प्रहरणानां खड्गादीनां ये अंशवो रश्मयस्तैर्भासुरं देदीप्यमानम्। निर्विकारं विकाररहितम्। निरुत्पातमित्यर्थः। अरिपक्षभीषणं शत्रुपक्षभयावहमिति।।२८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ नीराजन-
विधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अथ खञ्जनकलक्षणाध्यायः

अथ खञ्जनकलक्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवागमप्रदर्शनार्थमाह—

खञ्जनको नामायं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे।
प्रोक्तानि यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥१॥

खञ्जन नामक पक्षी के प्रथम दर्शन होने पर गर्ग आदि मुनियों ने जो फल कहे हैं, उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ।।१।।

अयं खञ्जनकनामा विहगः पक्षी तस्य प्रथमे दर्शने, आदौ यस्मिन् दिने दृश्यते तत्र मुनिभिर्गर्गादिभिर्यानि फलानि कथितानि प्रोक्तानि तानि प्रवक्ष्यामि कथयामीति।

खञ्जनकः श्रावणपूर्वकमासचतुष्टयं न दृश्यत इति स्थितिः। अत उक्तं दर्शने प्रथमे इति।।१।।

तत्र तावच्चत्वारः खञ्जनका भवन्ति, तेषां नामानि फलं चाह—

स्थूलोभ्युन्नतकण्ठः कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः।
आकण्ठमुखात् कृष्णः सम्पूर्णः पूरयत्याशाम् ॥२॥
कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः सितकरटान्तः स रिक्तकृद्रिक्तः।
पीतो गोपीत इति क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ॥३॥

स्थूल शरीर वाला, उन्नत और काले गले वाला खञ्जन पक्षी भद्रसंज्ञक है, यदि यह दिखाई दे तो शुभ होता है। जिसका मुख से लेकर कण्ठ तक काला हो, वह खञ्जन पक्षी सम्पूर्णसंज्ञक है, यह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करता है। जिसके गले में काली बिन्दी तथा श्वेत कपोल हो वह रिक्तसंज्ञक खञ्जन सब शून्य करता है और पीला खञ्जन गोपीत संज्ञक है, यदि यह दिखाई दे तो क्लेश करता है।।२-३।।

स्थूलो बृहत्कायः। अभ्युन्नतकण्ठ उच्चग्रीवः। कृष्णगलः असितकण्ठः। स भद्रो नाम विहगो भद्राख्यः पक्षी। स च दृष्टो भद्रकारकः, भद्रं श्रेयः करोति। भद्रः सम्पूर्णो रिक्तो गोपीत इत्येता अन्वर्थसंज्ञा। आकण्ठमुखात् कृष्णः, मुखाद् वक्त्रादारभ्य कण्ठं गलं यावत्कृष्णोऽसितवर्णः सम्पूर्णनामा स चाशामिच्छां पूरयति परिपूर्णं करोति।

कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुरिति। अस्य विहगस्य गले कण्ठे कृष्णोऽसितो बिन्दुस्तथा सितकरटान्तः शुक्लकपोलः स रिक्तसंज्ञः। स च रिक्तकृद्रिक्तफलः शून्यं सर्वं करोति। यः पीतः पीतवर्णः स च गोपीतनामा खञ्जनको दृष्टः क्लेशकरः क्लेशं करोति। तथा च काश्यपः—

स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठो यो भद्र: कृष्णगल: स्मृत:।
कृष्णमूर्धा गलान्तं य: स सम्पूर्ण इति स्मृत:।।
करटान्तौ सितौ यस्य कृष्णो बिन्दुर्गले तथा।
स रिक्त इति निर्दिष्ट: पीतो गोपीतक: स्मृत:।।
नामानुरूपेण फलं विहगानां विनिर्दिशेत्।। इति।।२-३।।

अथ कस्मिन् स्थाने दृष्ट: कीदृक् फलं करोतीत्याह—

अथ मधुरसुरभिफलकुसुमतरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु।
करितुरगभुजगमूर्ध्नि प्रासादोद्यानहर्म्येषु ।।४।।

गोगोष्ठसत्समागमयज्ञोत्सवपार्थिवद्विजसमीपे ।
हस्तितुरङ्गमशालाच्छत्रध्वजचामराद्येषु ।।५।।

हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु ।
दधिपात्रधान्यकूटेषु च श्रियं खञ्जन: कुरुते ।।६।।

मधुर तथा सुगन्धयुत फल और फूलों से युत वृक्ष पर, पवित्र जलाशय में हाथी, घोड़ा या सर्पों के मस्तक पर, देवालय, फुलवाड़ी या कोठे पर, गाय, गोठ, सज्जनों के समागम स्थान, यज्ञ, विवाह आदि उत्सव स्थान, राजा या ब्राह्मणों के समीप, हाथी, घोड़ा, छत्र, ध्वजा, चामर आदि पर, सुवर्ण के समीप, कमल, नीलकमल, पूजित और लिपे हुये स्थान पर, दही के पात्र या धान्य के ढेर पर खञ्जन पक्षी दिखाई दे तो देखने वाले का शुभ होता है।।४-६।।

अथैतेषु स्थानेषु दृष्ट: खञ्जनक: श्रियं लक्ष्मीं कुरुते विदधाति। केषु, कथम्? **मधुरेति**। अथशब्द: प्रकाराय। मधुराणि स्वादूनि। सुरभीणि सुगन्धानि फलानि, कुसुमानि पुष्पाणि येषु तरुषु वृक्षेषु। तथा पुण्येषु सलिलाशयेषु जलाधारेषु। तथा करिणां हस्तिनाम्, तुरङ्गाणामश्वानाम्, भुजगानां सर्पाणां मूर्धसु मस्तकेषु। तथामरप्रासादेषु देवगृहेषु। उद्यानेषूपवनेषु। हर्म्येषु अट्टालिकासु।

तथा गोरुपरि। गोष्ठे गवां स्थाने। सतां साधूनां यत्र समागम:। यज्ञो याग:। उत्सवो विवाहादि। पार्थिवो राजा। द्विजो ब्राह्मण:। एषां समीपे सन्निधौ। हस्तिशालासु गजशालासु। अश्वशालासु। छत्रमातपत्रम्। ध्वजश्चिह्नविशेष: प्रसिद्ध:। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणाद् भृङ्गारकुम्भतालवृन्तादय:। एतेष्वपि।

तथा हेमसमीपे सुवर्णसन्निधौ। सिताम्बरं श्वेतवस्त्रम्। कमलं पद्मम्। उत्पलं नीलोत्पलम्। पूजितेष्वर्चितेषु। उपलिप्तेषु संस्कृतेषु स्थानेषु। दधिपात्रे दधिभाजने। धान्यकूटे धान्यराशौ। एतेष्विति।।४-६।।

अन्येष्वप्याह—

पङ्के स्वाद्वन्नाप्तिर्गोरससम्पच्च गोमयोपगते।
शाद्वलगे वस्त्राप्ति: शकटस्थे देशविभ्रंश: ।।७।।

गृहपटलेऽर्थभ्रंशो बध्रे बन्धोऽशुचौ भवति रोगः ।
पृष्ठे त्वजाविकानां प्रियसङ्गममावहत्याशु ।।८।।

यदि कीचड़ में बैठा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो स्वादिष्ट भोजन मिलता है। गोबर पर दिखाई दे तो दूध, दही, घृत काफी मिलता है। दूब पर दिखाई दे तो वस्त्रलाभ होता है और गाड़ी पर दिखाई दे तो देश का नाश होता है। घर की छत पर खञ्जन दिखाई दे तो धन का नाश, चमड़े की बनी हुई छेद वाली वस्तु पर दिखाई दे तो बन्धन, अपवित्र स्थान पर दिखाई दे तो रोग, छाग या भेड़ के ऊपर दिखाई दे तो बहुत जल्दी मित्रसमागम होता है।।७-८।।

पङ्कः कर्दमस्तत्र संस्थे खञ्जनके स्वाद्वन्नाप्तिः मृष्टभोजनलाभः। तथा गोमयोपगते गोमयनिचयस्थे गोरससम्पन्मथितबाहुल्यम्। शाद्वलगे दूर्वास्थे वस्त्राप्तिरम्बरलाभः। शकटस्थे शकटारूढे देशस्य विभ्रंशो नाशः।

गृहपटले गृहच्छादने अर्थस्य वित्तस्य भ्रंशो नाशः। बध्रे चर्ममये बन्धो बन्धनम्। अशुचावशुद्धे स्थाने रोगो भवति। अजश्छागः। अविः प्रसिद्धः। अजाविकानां पृष्ठे उपरि स्थिते आशु क्षिप्रमेव प्रियसङ्गमं वल्लभसमायोगमावहति करोति।।७-८।।

अन्यदप्याह—

महिषोष्ट्रगर्दभास्थिश्मशानगृहकोणशर्कराट्टस्थः ।
प्राकारभस्मकेशेषु चाशुभो मरणरुग्भयदः ।।९।।

भैंस, ऊँट, गदहा, श्मशान, घर का कोना, मिट्टी का ढेला, अटारी, घेरे की दीवाल, भस्म और केश पर यदि खञ्जन दिखाई दे तो मरण और रोगभयरूप अशुभ फल होता है।

एतेषु स्थानेषु खञ्जनको दृष्टः स चाशुभः प्राग्लक्षणो न भवति तदा मरणरुग्भयदः। द्रष्टुर्मरणं मृत्युं रुग्भयं च ददाति। केषु स्थानेषु? महिषे। उष्ट्रे करभे। गर्दभे खरे। अस्थि-श्मशाने पितृवने। गृहकोणे वेश्माग्रे। शर्करे मृत्खण्डे। अट्टे अट्टालके। प्राकारभित्तौ। भस्मनि। केशेषु। एतेषु स्थानेषु।।९।।

अन्यदपि लक्षणमाह—

पक्षौ धुन्वन्नशुभः शुभः पिबन् वारि निम्नगासंस्थः ।
सूर्योदये प्रशस्तो नेष्टफलः खञ्जनोऽस्तमये ।।१०।।

दोनों पंखों को हिलाता हुआ खञ्जन दिखाई दे तो शुभ नहीं है। नदी में (कोई-कोई 'वारिवाहस्थः = पानी जाने वाले प्रदेश में' ऐसा पाठ मानते हैं) पानी पीता हुआ दिखाई दे तो शुभ होता है। यदि सूर्योदय काल में खञ्जन दिखाई दे तो शुभ और अस्त काल में दिखाई दे तो अशुभ फल देने वाला होता है।।१०।।

पक्षावङ्गरुहौ धुन्वन् कम्पयन्नशुभोऽनिष्टफलदः। निम्नगा नदी तत्रस्थो वारि जलं

पिबन् शुभ इष्टफलः। केचिद्वारिवाहस्थ इति पठन्ति। वारिवाहे जलगमनप्रदेशे वारि पिबन्। सूर्योदये रव्युदयकाले खञ्जनकः प्रशस्तः शुभफलदः। सूर्यास्तमये नेष्टफलोऽशुभ इति।

अन्यदप्याह—

नीराजने निवृत्ते यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम्।
पश्येत्तया गतस्य क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥११॥

नीराजन करने के बाद राजा जिस दिशा में जाते हुये खञ्जन को देखे, उस दिशा में गमन करने से शत्रु शीघ्र ही वश में हो जाता है।।११।।

निवृत्ते परिसमाप्ते नीराजने नृपो राजा यया दिशा आशया खञ्जनं यान्तं पश्येदवलोकयेत्तया गतस्य राज्ञोऽरातिः शत्रुः। क्षिप्रमाश्वेव वशमुपैति वश्यतां गच्छति।।११।।

अथ प्रत्यप्रदर्शनार्थमाह—

तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्
यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचम्।
अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरीषणेऽस्य
तत्कौतुकापनयनाय खनेद् धरित्रीम् ॥१२॥

जिस स्थान पर खञ्जन मैथुन करता है, उसके नीचे निधि (खजाना), जहाँ पर वमन करता है उसके नीचे कांच और जहाँ पर टट्टी करता है उसके नीचे कोयला होता है। इस कौतुक को हटाने के लिये (परीक्षा के लिए) वहाँ की पृथ्वी खोदे।।१२।।

यस्मिन् स्थाने मैथुनमेति गच्छति तत्र तस्मिन् भूमिप्रदेशे निधिर्निधानं भवति। यस्मिंस्तु छर्दयति वमति तत्र तले काचमस्ति विद्यते। अस्य खञ्जनकस्य पुरीषणे यत्र पुरीषं हदनं करोति तत्र भूमौ तले अङ्गारमप्युपदिशन्ति कथयन्ति। मुनयः काश्यपादयः। तथा च काश्यपः—

मैथुनं कुरुते यत्र तत्र वै निधिमादिशेत्।
भुक्तं छर्दयते यत्र तत्र काचमधो भवेत्।।
पुरीषं यत्र कुरुते तत्राङ्गारं विनिर्दिशेत्।

तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम्। तस्य कौतुकस्य कुतुकस्यापनयनाय निवारणाय धरित्रीं भूमिं खनेत्। येन प्रत्यय उत्पद्यते।।१२।।

अथान्यच्छुभाशुभमाह—

मृतविकलविभिन्नरोगितः स्वतनुसमानफलप्रदः खगः।
धनकृदभिनिलीयमानको वियति च बन्धुसमागमप्रदः॥१३॥

यदि मरा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो देखने वाले की मृत्यु, विकल दिखाई दे तो देखने वाले को वैकल्य और रुग्ण दिखाई दे तो देखने वाले को रोग होता है। यदि

सम्मुख में होकर घर में प्रवेश करता हुआ दिखाई दे तो धन करने वाला और आकाश में उड़ता हुआ दिखाई दे तो बन्धु-समागम होता है।।१३।।

खग: पक्षी खञ्जनको मृतविकलविभिन्नरोगित: स्वतनुसमानमात्मीयशरीरतुल्यं फलं ददाति। तद्यथा—मृतो यदि दृश्यते तदा द्रष्टुर्मरणमेव ददाति। एवं विकलोऽङ्गवैकल्यम्। विभिन्नशरीरो भेदनम्। रोगित: सञ्जातरोगो रोगमेव ददाति। **धनकृदभिनिलीयमानक इति**। अभिमुख्येन निलीयमान आलयं प्रविशन् धनकृत् धनसंश्लेषं कुरुते। वियत्याकाशे उड्डीनमाने बन्धुसमागमप्रदो बन्धुभि: सह संयोगं ददाति।।१३।।

अथ खञ्जनदृष्टे विधानमाह—

नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे खगमवलोक्य महीतले विदध्यात्।
सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम्॥१४॥

राजा शुभ प्रदेश में शुभ लक्षणयुत खञ्जन पक्षी को भी देखकर सुगन्धयुत पुष्प और धूपयुत अर्घ देवे। इस तरह करने से सम्मानित शुभ फल की वृद्धि होती है।।१४।।

नृपती राजा शुभे प्रदेशे शुभं प्रशस्तलक्षणमपि खगं पक्षिणमवलोक्य दृष्ट्वा महीतले भूपृष्ठे सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घम्, सुरभीणि सुगन्धीनि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तथा सुगन्धा ये धूपास्तै: संयुक्तमर्घं विदध्याद् दापयेत्। एवमनेन प्रकारेण शुभं फलमभिनन्दितं सम्मानितं वृद्धिमेति वृद्धिं गच्छति।।१४।।

अथाशुभे खञ्जनके दृष्टे विधानमाह—

अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं द्विजकुरुसाधुसुरार्चने रत:।
न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक्॥१५॥

अशुभ फल देने वाले खञ्जन को देख कर भी राजा यदि ब्राह्मण, गुरु, सज्जन और देवताओं के पूजन में निरत हो जाय एवं सात दिन तक यदि मांस-भक्षण न करे तो उसे किसी प्रकार का अशुभ फल प्राप्त नहीं होता।।१५।।

नृपती राजा अशुभमपि अनिष्टफलमपि खञ्जनं विलोक्य दृष्ट्वा यदि द्विजानां ब्राह्मणानाम्, गुरूणामुपदेशकर्तॄणाम्, साधूनां सज्जनानाम्, सुराणां देवानाम्, अर्चने रत: सक्तो भवति, तदा नाशुभमनिष्टफलं समाप्नुयात् प्राप्नोति। यदि सप्त दिनानि सप्ताहं मांसभुग् न भवति। मांसं यदि न भुङ्क्ते नाश्नाति।।१५।।

तथा कालप्रदर्शनार्थमाह—

आवर्षात् प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषात्।
दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्षशान्तदिप्तादिभिश्चोह्यम् ॥१६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितयां खञ्जनकलक्षणाध्याय: पञ्चचत्वारिंश: ॥४५॥

खञ्जन के प्रथम दर्शन का फल एक वर्ष में होता है। बाद में प्रति दिन दर्शन का फल उसी दिन प्राप्त होता है। दिशा, स्थान, शरीराकृति, लग्न, नक्षत्र, शान्त और दीप्त दिशा आदि के अनुसार शुभाशुभ देखकर अपनी बुद्धि से फल कहना चाहिये'।।१६।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां खञ्जनकलक्षणाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः ॥४५॥

प्रथमं खञ्जनकस्य दर्शने आदावेव यस्मिन्नहनि दृश्यते तत्र यत्फलं शुभमशुभं वा तदाऽऽवर्षाद्वर्षं यावत्। वर्षमध्ये भवतीत्यर्थः। प्रतिदिनं तु यद्दर्शनफलं तद्दिनशेषात्तस्मिन्नेव दिनमध्ये भवति। तथा च काश्यपः—

प्रथमे दर्शने पाकमावर्षात् प्रवदेद् बुधः।
प्रतिदैवसिके वाच्यं दर्शनेऽस्तमये फलम्।। इति।

दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्षशान्तदीप्तादिभिश्चोह्यम्, दिक् कस्यां दिशि स्थितः शुभायामशुभायां वा। तत्र पूर्वोत्तरैशान्यः स्वभावादेव शुभाः। शेषा अशुभाः। स्थानं यत्र स्थितः। 'अथ मधुरसुरभिः' इत्यादिना प्रदर्शितम्। मूर्तिः शरीराकारः—'स्थूलाऽभ्युन्नतकण्ठः' इत्यादि, 'मृतविकलविभिन्नरोगितः' इति च। लग्नं तत्काले कीदृशं शुभराशिशुभग्रहयुतं दृष्टं वा पापलग्नं पापयुतमवलोकितं वा। ऋक्षं नक्षत्रं ध्रुवमृदुदारुणोग्रक्षिप्रचरसाधारणादि। तत्र ध्रुवाणि मृदूनि च शस्तानि, क्षिप्रचरसाधारणानि मध्यानि, दारुणोग्राणि अशोभनानीति। तथा शान्तदीप्तादिभिः। स पक्षी किं शान्तायां दिशि स्थितः शान्तरवश्च, किं वा दीप्तायां दिशि स्थितो दीप्तरवश्च। आदिग्रहणादङ्गारिताभिधूमिता च दिग् ज्ञेया। एवमादिभिः शुभमशुभं व्यामिश्रं वा फलमूह्यम्। स्वबुद्ध्या तर्कणीयम्। एतदाचार्यः सविस्तरं शाकुने वक्ष्यति। वयमपि तत्रैव विशेषं व्याख्यास्याम इति।।१६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ खञ्जनकलक्षणं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथोत्पाताध्यायः

अथोत्पाताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवागमवस्तुप्रदर्शनार्थमाह—

यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये।
तेषां संक्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ॥१॥

महर्षि गर्ग ने जिन उत्पातों का वर्णन महामुनि अत्रि जी के समक्ष किया था, उन्हीं का संक्षेप रूप यहाँ है।।१।।

अत्रेर्मुनिप्रधानस्य यानुत्पातानद्भुतान् गर्गः प्रोवाचोक्तवान्, तानहं वक्ष्ये कथयिष्ये। तेषामुत्पातानामयं संक्षेपः समासः। **प्रकृतेरन्यत्वमुत्पात इति।** प्रकृतेः स्वभावादन्यत्वं वैपरीत्यं स एवोत्पात इति। तथा च समाससंहितायाम्—

य: प्रकृतिविपर्यासः सर्वः संक्षेपतः स उत्पातः।
क्षितिगगनदिव्यजातो यथोत्तरं गुरुतरो भवति।। इति।।१।।

कथमुत्पाता उत्पद्यन्त इत्याह—

अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः ॥२॥

मनुष्यों के अविनय से पाप इकट्ठे होते हैं, उन पापों से उपद्रव होते हैं। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम उत्पात उन उपद्रवों को सूचित करते हैं।।२।।

नराणां पुरुषाणामपचारेणाविनयेन पापसञ्चयो भवति, पापसञ्चयादुपसर्गा उपद्रवाः। तथा च गर्गः—

अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः।
नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते।। इति।

ततो दिव्यान्तरिक्षभौमा उत्पाताः तानुपसर्गान् संसूचयन्ति। दिवि आकाशे भवा दिव्याः। अन्तरिक्षे भवा आन्तरिक्षाः। भूमौ भवा भौमा इति।।२।।

कथमुत्पाता उत्पद्यन्त इत्याह—

मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्।
तत्प्रतिघाताय नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत ॥३॥

मनुष्यों के अविनय से अप्रसन्न देवता गण उन उत्पातों को उत्पन्न करते हैं। उनके निवारण के लिये राजा को शान्ति करानी चाहिये।।३।।

मनुजानां मनुष्याणामपचारादविनयाद्देवताः सुरा अपरक्ता विरक्ता एतानुत्पातान्

सृजन्त्युत्पादयन्ति। तत्प्रतिघाताय तेषामुत्पातानां प्रतिघाताय निवारणाय नृपो राजा राष्ट्रे जनपदे शान्तिमुत्पातप्रतीकारं प्रयुञ्जीत कारयेदिति। तथा च गर्गः—

ततोऽपचारो मर्त्यानामपरज्यन्ति देवताः।
ते सृजन्त्यद्भुतान् भावान् दिव्यभूम्यन्तरिक्षजान्।।
त एव सर्वलोकानामुत्पाता देवनिर्मिताः।
विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च।।
तान् शास्त्रनिर्गमाद्विप्राः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।
प्रवदन्ति तु मर्त्येषु हितार्थं श्रद्धयान्विताः।
ते तु सम्बोधिता विप्रैः शान्तये मङ्गलानि च।
श्रद्दधानाः प्रकुर्वन्ति न ते यान्ति पराभवम्।।
ये तु न प्रतिकुर्वन्ति क्रियामश्रद्धयान्विताः।
नास्तिक्यादथवा कोपाद्विनश्यन्त्यथवाऽचिरात्।। इति।।३।।

अधुना दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां प्रविभागमाह—

दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।
गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत्।।४।।

भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति।
नाभसमुपैति मृदुतां शाम्यति नो दिव्यमित्येके।।५।।

सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों के विकारयुत होने का नाम दिव्य; उल्का, निर्घात, विकारयुत वायु, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि (रोहत, ऐरावत, दण्ड और परिघ) से हुये उत्पातों का नाम आन्तरिक्ष एवं चलायमान वस्तु के स्थिर और स्थिर के चलायमान होने का नाम भौम उत्पात है। यह भौम उत्पात शान्ति से आहत होकर नष्ट हो जाता है, आन्तरिक्ष उत्पात शान्ति से कम हो जाता है और दिव्य उत्पात शान्ति से भी नष्ट नहीं होता। यह किसी-किसी आचार्य का मत है।।४-५।।

ग्रहाणामादित्यादीनामृक्षाणामश्विन्यादीनां च यद्वैकृतं विकारस्तद्दिव्यमुत्पातम्, यश्चोल्का-निर्घातः पवनो विकृतो वायुः, परिवेषः सूर्याचन्द्रमसोः, गन्धर्वपुरं गन्धर्वनगरम्, पुरन्दरचाप-मिन्द्रधनुः, आदिग्रहणाद्रोहितैरावतदण्डपरिघा गृह्यन्ते। एवमादि यत्तदान्तरिक्षमुत्पातम्।

भौमं चरस्थिरभवमिति। चराणां वस्तूनां स्थैर्यं स्थिराणां चरत्वं तदुद्भवं तदुत्पन्नं यत्तद्भौममुत्पातम्। तथा च गर्गः—

स्वर्भानुकेतुनक्षत्रग्रहतारार्कजेन्द्रजम्।
दिवि चोत्पद्यते यच्च तद्दिव्यमिति कीर्तितम्।।
वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमांसि च।
खपुरं चेन्द्रचापं च तद्विन्द्यादन्तरिक्षजम्।।

भूमावुत्पद्यते यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्।
तदेकदैशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च।
दिग्दाहोल्कापतनं परिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्।। इति।

तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति। तच्च भौमं शान्तिभिराहतं निवारितं शममुपैति शान्तिमुपगच्छति। नाभसमान्तरिक्षं शान्तिभिराहतं मृदुतामुपैति मन्दत्वं गच्छति। शाम्यति नो दिव्यमित्येके। दिव्यं शान्तिभिराहतं नो शाम्यति न शान्तिं यात्येवमित्येके केचिद्वदन्ति। तथा च काश्यपः—

भौमं शान्तिहतं नाशमुपगच्छति मार्दवम्।
नाभसं न शमं याति दिव्यमुत्पातदर्शनम्।। इति।।४-५।।

अथात्र स्वमतमाह—

दिव्यमपि शममुपैति प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः।
रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च ।।६।।

अधिक सुवर्ण, अन्न, गाय और पृथ्वी का दान करने से दिव्य उत्पात भी शान्त हो जाता है, फिर आन्तरिक्ष और भौम की तो बात ही क्या? अर्थात् वे दोनों तो शान्त होते ही हैं। शिवालय में भूमि पर गोदोहन और कोटिसंख्यक हवन से दिव्य उत्पात शान्त हो जाता है।।६।।

अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैर्दिव्यमपि शममुपैति। कनकं सुवर्णम्। अन्नं भोज्यम्। गावो धेनवः। मही भूः। एषां प्रभूतैर्बहुभिः प्रदानैर्दिव्यमुत्पातं शममुपैति। अपि ग्रहणान्नाभसं भौमं च। तथा रुद्रायतने शिवगृहे। भूमाववनौ। गोदोहाद् गवां दोहनात्। कोटिहोमाच्च दिव्यमपि शममुपैति।।६।।

दैवमुत्पातं नृपतेः कतिविधं परिपाकमायातीत्याह—

आत्मसुतकोशवाहनपुरदारपुरोहितेषु लोके च।
पाकमुपयाति दैवं परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ।।७।।

अपना शरीर, पुत्र, खजाना, वाहन, नगर, स्त्री, पुरोहित, जनपद—इन आठों में राजा दैव-कल्पित उत्पातों का फल प्राप्त करता है।।७।।

दैवमुत्पातं नृपते राज्ञोऽष्टधा परिकल्पितमष्टभिः प्रकारैः पाकमुपयाति फलं ददाति। तद्यथा—आत्मनि। सुते पुत्रे। कोशे भाण्डागारे। वाहनेष्वश्वादिषु। पुरे नगरे। दारेषु भार्यासु। पुरोहिते आचार्ये। एतेषु तथा लोके जनपदे। एवमष्टप्रकारम्। तथा च गर्गः—

पुरे जनपदे कोशे वाहनेऽथ पुरोहिते।
पुत्रेष्वात्मनि भृत्येषु पश्यते दैवमष्टधा।। इति।।७।।

अधुनोत्पातान् प्रदर्शयितुमाह—

अनिमित्तभङ्गचलनस्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि ।
लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम् ॥८॥

शिवलिङ्ग, देवमूर्ति और देवस्थानों का विना कारण फटना, कम्पन होना, उनमें पसीना आना, उनका रोना, गिरना, उनमें शब्द होना आदि (उनका वमन करना और खिसकना) राजा और देश के नाश के लिये होता है।।८।।

लिङ्गं माहेश्वरम्। अर्चा सुरप्रतिमा। आयतनं देवनिर्मितं पुण्यस्थानम्। एषां लिङ्गार्चायतनानामनिमित्तं विना कारणं भङ्गः स्फोटनम्। चलनं कम्पनम्। स्वेदः प्रस्वेदः। अश्रु रोदनम्। निपातः पातनम्। जल्पनं सम्भाषणम्। आद्यग्रहणाद्वमनं प्रसर्पणं च। तथा च गर्गः—

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा।
मुहुर्नृत्यन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति वा।।
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति पतन्ति वा।
कूजन्ति विक्षिपन्ते च गात्रप्रहरणध्वजान्।।
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं व्रजन्ति वा।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्।।
प्रसर्पन्ति च जल्पन्ति वा चेष्टन्ते श्वसन्ति वा।
समन्ताद्यत्र दृश्यन्ते गात्रैर्वापि विचेष्टितैः।। इति।

एतानि सर्वाणि यथोक्तानि नरेशदेशानाम्। नरेशस्य राज्ञः। देशस्य जनपदस्य च नाशाय भवन्ति।।८।।

अथान्यदप्याह—

दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि ।
सम्पर्यासनसादनसङ्गश्च न देशनृपशुभदाः ॥९॥

देवस्थानों में यात्रा के समय गाड़ी की धुरी, पहिया, युग (जुआ) या ध्वजा का भङ्ग होना, गिरना, उलटना, सादन या कहीं पर चिपट जाना देश और राजा के लिये शुभकारी नहीं हैं।।९।।

दैवतयात्रायां देवतोत्सवे। केचित् सुरयात्रायामिति पठन्ति। शकटस्याक्षस्य चक्रमध्यवर्तिनः काष्ठस्य चक्रस्य युगस्य केतोर्ध्वजस्य चैषां भङ्गः स्फोटनं पतनं वा। एतानि। तथा एतेषामेव सम्पर्यासनं परिवर्तनम्। सादनं सज्जनम्। सङ्ग आसक्तिः। यत्र कुत्रचिदेते सर्व एव न देशनृपशुभदाः। देशस्य जनपदस्य। नृपस्य च राज्ञो नु शुभप्रदा इति।।९।।

अधुना यद्वैकृतं येष्वशुभदं तत्प्रदर्शयितुमाह—

ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रोद्भूतं वैकृतं द्विजातीनाम् ।
यद्रुद्रलोकपालोद्भवं पशूनामनिष्टं तत् ॥१०॥

गुरुसितशनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम् ।
स्कन्दविशाखसमुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ॥११॥

वेदव्यासे मन्त्रिणि विनायके वैकृतं चमूनाथे ।
धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय निर्दिष्टम् ॥१२॥

देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत् स्यात् ।
तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ॥१३॥

रक्षः पिशाचगुह्यकनागानामेवमेव निर्दिष्टम् ।
मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वेषामेव फलपाकः ॥१४॥

मुनि, धर्म, पिता और ब्रह्मा में उत्पन्न विकृति ब्राह्मणों को; महादेव और लोकपालों (इन्द्र आदि) में उत्पन्न विकृति पशुओं को; बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर में उत्पन्न विकृति पुरोहितों को; विष्णु में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को; कार्तिकेय और विशाख देव में उत्पन्न विकृति मण्डलाधिप राजाओं को; वेदव्यास में उत्पन्न विकृति मन्त्री को; गणेश में उत्पन्न विकृति सेनापति को; ब्रह्मा और विश्वकर्मा में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को; देवकुमारों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को; देवकुमारी में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को; देवाङ्गनाओं में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को एवं देवताओं के दास में उत्पन्न विकृति राजाओं के सेवकों को अशुभ फल प्रदान करने वाली होती है। इसी प्रकार राक्षसों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, पिशाचों में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, यक्षों में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को और नागों में उत्पन्न विकृति राजसेवकों को अशुभ फल देने वाली होती है। इन सभी उत्पातों का फल आठ महीने में घटित होता है।।१०-१४।।

ऋषयो मुनयः। धर्मो देवविशेषः। पितरः प्रसिद्धा भूतजना लेपमयाः कुत्रचित् क्रियन्ते। ब्रह्मा पितामहः। एतेषु यत्प्रोद्भूतमुत्पन्नं वैकृतं विकारस्तद् द्विजातीनां ब्राह्मणानामनिष्ट-मशुभप्रदमित्यर्थः।

यच्च रुद्रस्य महादेवस्य वैकृतं लोकपालादीनामिन्द्रादीनां च यद्वैकृतं तदुत्पन्नं तत्पशूनां चतुष्पदानामनिष्टमशुभम्।

गुरुर्जीवः। सितः शुक्रः। शनैश्चर आर्किः। तदुत्थं तत्सम्भवमनिष्टं पुरोधसां पुरोहिता-नाम्। विष्णुजं नारायणोद्भूतं वैकृतं लोकानां जनानामनिष्टम्। स्कन्दः कुमारः। विशाखो देवविशेषः। तत्समुत्थं तदुद्भूतं माण्डलिकानां मण्डलाधिपानां नरेन्द्राणां राज्ञामनिष्टम्।

वेदव्यासो व्यास एव। वेदव्यासे यद्वैकृतं तन्मन्त्रिणि सचिवे अनिष्टम्। विनायके गणपतौ वैकृतं तच्चमूनाथे सेनापतावनिष्टम्। धातरि प्रजापतौ सविश्वकर्मणि विश्वकर्मसहिते यद्वैकृतं तल्लोकानां जनानामभावाय विनाशाय निर्दिष्टं कथितम्।

देवकुमाराणां यद्वैकृतं तन्नरपतेः कुमाराणामनिष्टम्। एवं देवकुमारीणां यद्वैकृतं

तद्राजकुमारीणामनिष्टम्। देववनितानां सुरस्त्रीणां यद्वैकृतं तन्नृपस्त्रीणामनिष्टम्। देवप्रेष्याणां देवदासानां यद्वैकृतं भवेत्तद्राजदासानामनिष्टमिति।

रक्षो राक्षसः। पिशाचा देवयोनयः। गुह्यका यक्षाः। नागाः प्रसिद्धाः। एषां वैकृतमेवमेव वानेन प्रकारेण निर्दिष्टं कथितम्। एतदुक्तं भवति—रक्षःपिशाचगुह्यकनागानां ये कुमारकुमारीवनिताप्रेष्यास्तेषु यद्वैकृतं तन्नरपतेः कुमारकुमारिकास्त्रीपरिजनानामनिष्टम्। एषामुक्तानामुत्पातानां सर्वेषामष्टाभिर्मासैरतीतैः फलपाकः।।१०-१४।।

अथैतेषामुत्पातानां शान्त्यर्थमाह—

बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः पुरोधास्त्र्यहोषितः स्नातः।
स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत् प्रतिमाम् ॥१५॥
मधुपर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत्।
स्थालीपाकं जुहुयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः ॥१६॥

देवता में विकृति को जानकर पवित्र, संयत, स्नान किया हुआ, तीन दिन तक व्रती पुरोहित को विकारयुक्त देवताओं को स्नान, पुष्प, चन्दन, वस्त्र, दही मिला हुआ भोजन पदार्थ और बलि आदि से विधिपूर्वक पूजन तथा स्थालीपाक (चरु) से तत्तद् देवता का मन्त्र पढ़ते हुये अग्नि में हवन करना चाहिये।।१५-१६।।

देवविकारं सुरवैकृतं बुद्ध्वा ज्ञात्वा। पुरोहितः। शुचिः शौचयुक्तः। समाहितः संयतः। स्नातश्च कृतस्नानः। त्र्यहोषितो दिनत्रयं कृतोपवासः। स्नानैः। कुसुमैश्च पुष्पैः। अनुलेपनैः समालम्भनैः। वस्त्रैरम्बरैः प्रतिमामुत्पन्नविकारामभ्यर्चयेत् पूजयेत्।

पुरोधाः पुरोहितो मधुपर्केण दध्ना संयुक्तेन भक्ष्यैर्मोदकैर्लोपिकापूपादिभिर्बलिभिरुपहारैश्च विधिवद्विधानेनोपतिष्ठेत् पूजयेत् स्थालीपाकं चरुं तल्लिङ्गैस्तदीयैर्मन्त्रैर्विधिवद्विधानेनाग्नीं जुहुयात्।।१५-१६।।

अथ कालप्रमाणं शान्तिप्रभावं चाह—

इति विबुधविकारे शान्तयः सप्तरात्रं
द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च।
विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां
भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥१७॥

पूर्वोक्त देवविकार होने पर राजा सात रात्रि तक ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, गीत, नृत्य, रात्रि-जागरण आदि उत्सव करे। इस प्रकार जिन राजाओं द्वारा किया जाता है, उनको पूर्वोक्त शान्ति और दक्षिणा से रुद्ध उत्पात का अनिष्ट फल नहीं होता।।१७।।

इत्यनेन विधानेन विबुधविकारे सुरविकृतौ सप्तरात्रं सप्ताहं शान्तयः कर्तव्याः। द्विजातीनां ब्राह्मणानां विबुधानां देवानां गणानां गजवक्त्रप्रभृतीनाम्। अथवा द्विजगणानां

ब्राह्मणानां समूहानां विबुधगणानां देववृन्दानामर्चा पूजा: तथा गीतं नृत्यमुत्सवाश्च रात्रि-जागरणं कार्यम्। एते यैरवनिपालै राजभिर्विधिवत्सम्यग्विधानेन प्रयुक्ताः कारिताः तेषां राज्ञां दुरितपाक उत्पातानिष्टफलं न भवति। यतो दक्षिणाभिश्च रुद्धो निवारित इति।।१७।।

इति लिङ्गवैकृतम्

●

अथान्यानुत्पातानाह—

राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।
मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य च राष्ट्रस्य विज्ञेया ॥१८॥

जिस राजा के राज्य में विना अग्नि की ज्वाला दिखाई दे और काष्ठयुत अग्नि प्रज्ज्वलित न हो तो उस राजा और देश को पीड़ा होती है।।१८।।

यस्य मनुजेश्वरस्य राज्ञो राष्ट्रे जनपदे अनग्निः प्रदीप्यते विनाग्निना ज्वाला दृश्यते। तथेन्धनवान् काष्ठयुक्तोऽग्निर्न दीप्यते न ज्वलति। यत्रैवं तत्र मनुजेश्वरस्य राज्ञस्तस्य च राष्ट्रस्य देशस्य पीडा विज्ञेया ज्ञातव्या।।१८।।

अन्यदाह—

जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिवधः प्रहरणे रणो रौद्रः।
सैन्यग्रामपुरेषु च नाशो वह्नेर्भयं कुरुते ॥१९॥

जल, मांस और गीली वस्तु में अकारण जलन उत्पन्न हो तो राजा की मृत्यु, खड्ग आदि में जलन उत्पन्न हो तो भयंकर युद्ध और सेनाओं या नगर में अग्नि नहीं मिले तो अग्नि का भय होता है।।१९।।

जलमुदकम्। मांसमामिषम्। आर्द्रमशुष्कं यत्किञ्चित्। एषां ज्वलने नृपतिवधो राज्ञो मरणम्। प्रहरणे आयुधे खड्गादौ ज्वलिते रौद्रो घोरो रणः सङ्ग्रामः। सैन्ये सेनायाम्। ग्रामे। पुरे च नगरे। एतेषु वह्नेरग्नेर्नाशोऽनुपलब्धिः। वह्निभयमग्निभीतिं कुरुते।।१९।।

अथान्यत्—

प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वननलेन दग्धेषु।
तडिता वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात् ॥२०॥

प्रासाद (देवगृह), घर, तोरण या ध्वज अग्नि के विना या बिजली से दग्ध हो जायँ तो छः मास बाद निश्चय ही दूसरे राजा की सेनाओं का आगमन होता है।।२०।।

प्रासादो देवगृहम्। भवनं वेश्म। तोरणं प्रसिद्धम्। केतुर्ध्वजः। आदिग्रहणात् कोष्ठा-गारकुशूलादयः। एतेष्वननलेन विनाऽग्निना दग्धेषु। तडिता वा विद्युता वा दग्धेषु सत्सु षण्मासात् षड्भिर्मासैः परतो नियमान्निश्चयात् परचक्रस्यान्यनृपसैन्यस्याऽऽगमो भवति।।२०।।

अथान्यत्—

धूमोऽनग्निसमुत्थो रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम्।
व्यभ्रे निश्युडुनाशो दर्शनमपि चाह्नि दोषकरम्॥२१॥

अग्नि के विना धूम अथवा दिन में धूली या अन्धकार दिखाई दे तो अधिक भय होता है तथा रात्रि के समय मेघरहित आकाश में नक्षत्रों का अदर्शन और दिन में दर्शन हो तो अधिक भयकारी होता है।।२१।।

अनग्निसमुत्थो धूमो विनाग्निना यत्र धूमो दृश्यते। तथा अह्निजं दिनसम्भवं रजो धूलिस्तमोऽन्धकारश्च तन्महाभयदं महद्भयं ददाति। तथा च गर्ग:—

अनिशानि तमांसि स्युर्यदि वा पांशवो रज:।
धूमश्चानग्निना यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

व्यभ्रे निश्युडुनाश:। निशायां रात्रौ व्यभ्रे विगतमेघे उडूनां नक्षत्राणां नाशोऽदर्शनम्। तथा सत्यादित्ये दिने नक्षत्राणां दर्शनम्। एतद्दोषकरम्। दोषान् करोति महाभयमित्यर्थ:।।२१।।

अथान्यदाह—

नगरचतुष्पादण्डजमनुजानां भयकरं ज्वलनमाहु:।
धूमाग्निविस्फुलिङ्गै: शय्याम्बरकेशगैर्मृत्यु:॥२२॥

नगर, पशु, पक्षी या मनुष्यों में अग्नि के विना जलन पैदा हो तो अधिक भयकारी होता है। शय्या, वस्त्र या केशों में धूम, अग्नि की ज्वाला या अग्नि की चिनगारियाँ दिखाई दें तो स्वामी की मृत्यु होती है।। २२।।

नगराणां पुराणाम्। चतुष्पदानां गवादीनाम्। अण्डजानां पक्षिणाम्। मनुष्याणां मनुजानाम्। ज्वलनं सज्वालत्वं महाभयकरमित्याहुरुक्तवन्तो मुनय:। शय्या आस्तरणम्। अम्बरं वस्त्रम्। केशा मूर्धजा:। शय्याम्बरकेशगैर्धूमाग्निविस्फुलिङ्गै:, धूम: प्रसिद्ध:। अग्निर्ज्वालारूप:, विस्फुलिङ्गा अग्निकणा:, एतैर्दृष्टैस्तत्स्वामिनो मृत्युर्भवति। तथा च गर्ग:—

शयनासनयानेषु केशप्रावरणेषु च।
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा वा धूमो वा मरणाय तत्।। इति।।२२।।

यथान्यत्—

आयुधज्वलनसर्पणस्वना: कोशनिर्गमनवेपनानि वा।
वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसङ्कुलं वदेत्॥२३॥

खड्ग आदियों में जलन उत्पन्न होना, उनका चलायमान होना, उनमें शब्द होना, उनका म्यान से निकल आना अथवा शस्त्र में अन्य किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होना—ये सब शीघ्र ही राज्य में भयङ्कर संग्राम कराते हैं।।२३।।

आयुधानां खड्गादीनां ज्वलनम्। सर्पणं गमनम्। स्वना: शब्दा:। एते यदि भवन्ति।

कोश: परिधारकस्तस्मान्निर्गमनं निष्क्रमणम्। वेपनं कम्पनम्। एतानि वा भवन्ति। अथवायुधेऽपराण्यन्यानि वैकृतानि विकाराणि जल्पितहसितरुदितानि भवन्ति। तदाऽऽशु क्षिप्रमेव रौद्रं रणसङ्कुलं क्रूरं युद्धं निकटवर्ति वदेद् ब्रूयात्। भयावह: सङ्ग्रामो भवतीत्यर्थ:। ननु—'जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिबध: प्रहरणे रौद्र:' इत्यस्य निदेशस्य—

आयुधज्वलनसर्पणस्वना: केशनिर्गमनवेपनानि वा।
वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसङ्कुलं वदेत्।।

इत्यनेन सह केचिद् द्विरुक्तिं चोदयन्ति, यथा यत्प्रहरणज्वलने फलमुक्तं तदेवायुधज्वलने, न च प्रहरणानामायुधानां च भेदोऽस्तीति।

अत्रोच्यते, नग्नजिता चित्रलक्षणे आयुधानां त्रयो भेदा अभिहिता:—प्रहरणानि, पाणिमुक्तानि, यन्त्रमुक्तानि चेति। तत्र प्रहरणानि खड्गादीनि, पाणिमुक्तानि चक्रादीनि, यन्त्रमुक्तानि अश्मशरास्त्रदण्डाश्चेति। योऽयमायुध इति संज्ञा सर्वव्यापिनी। यस्मादायुधानामेते प्रहरणादयो भेदा:। यद्यायुधनिर्देशेन प्राक् फलमभिधाय पश्चात् प्रहरणनिर्देशेन तदेव फलनिर्देशं करोति तदा गतार्थत्वाद् द्विरुक्तिदोष: स्यात्। अथ पुन: प्राक् प्रहरणनिर्देशेन फलमुक्तं पश्चादायुधनिर्देशेन प्रहरणनिर्देशेन च खड्गादीनामेव ग्रहणं स्यान्न पाणिमुक्तादीनामायुधभेदानामेतदाशङ्क्याऽऽचार्येण पुनरायुधज्वलनस्य फलमुक्तम्। तस्माद् द्विरुक्तिदोषो नात्रावगन्तव्य इति।

नन्वायुधसंज्ञा सर्वव्यापिनी। यदायुधग्रहणेनैव प्रहरणादीनि परिगृहीतानि। एवं च फलभेदोऽस्ति तस्मात् प्रहरणनिर्देशोऽतीव विरुध्यत इत्युच्यते। अयमाचार्यस्याभिप्रायो यथा पृथक् प्रहरणायुधनिर्देशाद् भेदो मया प्रदर्शितो भेदप्रज्ञापनार्थं प्रहरणनिर्देश इति।।२३।।

एषामुत्पातानां शान्तिमाह—

मन्त्रैराग्नेयै: क्षीरवृक्षात् समिद्भिर्होतव्योऽग्नि: सर्षपै: सर्पिषा च।
अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्य: ।।२४।।

(इसी अध्याय के १८ वें श्लोक से लेकर यहाँ तक अग्निविकारजनित जो अशुभ फल कहे गये हैं, उनकी शान्ति के लिये) आक की लकड़ी, सरसों और घृत से अग्नि में हवन करना चाहिये। इस तरह करने से अशुभ फल की शान्ति होती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सुवर्ण-दक्षिणा देनी चाहिये।।२४।।

'राष्ट्रे यस्याग्नि: प्रदीप्यते' इत्यत आरभ्य ये उत्पाता: कथितास्ते अग्न्यादय:। तेषामग्न्यादीनां वैकृते विकारे आग्नेयैरग्निदैवत्यैर्मन्त्रै: क्षीरवृक्षादर्कादिकात्समिद्भि:। सर्षपै: सिद्धार्थकै:। सर्पिषा च घृतेनाग्निर्हुताशनो होतव्य:। एवमनेन प्रकारेण शान्ति:। अस्मिन्नुत्पाते ब्राह्मणेभ्यो विप्रेभ्य: काञ्चनं सुवर्णं दक्षिणार्थं देयम्।।२४।।

इत्यग्निवैकृतम्

•

अथान्यानुत्पातानाह—

शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम्।
हसने देशभ्रंशं रुदिते च व्याधिबाहुल्यम्॥२५॥

अचानक वृक्ष की शाखा टूट जाने से युद्ध की तैयारियाँ, वृक्षों के हँसने से देश का नाश और वृक्षों के रोने से व्याधि की अधिकता होती है।।२५।।

अकस्माद्वृक्षाणां शाखाभङ्गे शाखास्फोटने रणोद्योगं सङ्ग्रामविभ्रमं निर्दिशेद्वदेत्। तथा वृक्षाणामेव हसने देशभ्रंशं देशविनाशम्। रुदिते च रोदने वृक्षाणामेव व्याधिबाहुल्यं रोगप्राचुर्यम्।।२५।।

अथान्यदप्याह—

राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले।
वृक्षात् क्षीरस्त्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति॥२६॥

ऋतुवर्जित काल में वृक्षों में पुष्प और फलों की उत्पत्ति होने से राज्य में विभेद, छोटे वृक्ष में बहुत पुष्प आने से बालकों का नाश और वृक्षों से दूध निकलने पर द्रव्यों का नाश होता है।।२६।।

वृक्षाणामनृतावृतुवर्जिते काले पुष्पफलोद्गमे सम्भवे राष्ट्रस्य विभेदो भवति। बाले बालवृक्षे अतीव कुसुमिते सजातपुष्पे बालानां शिशूनां वधो मरणम्। तथा च गर्गः—

स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्तवम्।
बालानां मरणं कुर्याद्बालानां फलपुष्पजम्।। इति।

तथा वृक्षात् द्रुमात्क्षीरस्त्रावे दुग्धे स्त्रुते सर्वद्रव्याणां क्षयो विनाशो भवति।।२६।।

अन्यदप्याह—

मद्ये वाहननाशः संग्रामः शोणिते मधुनि रोगः।
स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःस्त्रुते सलिले॥२७॥

वृक्ष से मद्य निकलने पर वाहनों (अश्वादिकों) का नाश, रक्त निकलने पर युद्ध, शहद निकलने पर रोग, तेल निकलने पर दुर्भिक्ष का भय और वृक्ष से जल निकलने पर अधिक भय होता है।।२७।।

वृक्षान्मद्ये निःस्त्रुते निर्गते वाहनानामश्वादीनां नाशः क्षयः। शोणिते रक्ते निःस्त्रुते संग्रामो युद्धं भवति। मधुनि माक्षिके निःस्त्रुते रोगो भवति। स्नेहे तैलादिके निःस्त्रुते दुर्भिक्ष-भयं भवति। सलिले जले निःस्त्रुते महदतुलं भयं भवति।।२७।।

अन्यदप्याह—

शुष्कविरोहे वीर्यान्नसंक्षयः शोषणे च विरुजानाम्।
पतितानामुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च॥२८॥

सूखे हुये वृक्षों में विरोह (पुनः अङ्कुर) होने से बल और अन्न का नाश तथा गिरे हुये वृक्षों के अपने-आप उठने से दैवजनित भय होता है।।२८।।

शुष्कविरोहे शुष्काणां नीरसानां वृक्षाणां विरोहे वीर्यान्नसंक्षय एव। पतितानां वृक्षाणां स्वयमात्मनैवोत्थाने ऊर्ध्वस्थितौ दैवजनितं दैवोत्पन्नं भयं भवति। चशब्दः समुच्चये।

अन्यदप्याह—

पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपवधाय निर्दिष्टम्।
धूमस्तस्मिन् ज्वालाऽथवा भवेन्नृपवधायैव ॥२९॥

प्रधान वृक्ष में पुष्प और फलों की उत्पत्ति राजा के नाश के लिए और उस (प्रधान वृक्ष) पर धूप या अग्नि की ज्वाला भी राजा के नाश के लिये ही होती है।।२९।।

पूजितवृक्षे प्रधानतरौ अनृतौ कुसुमफलं कुसुमानां फलानां चोद्गमो नृपस्य राज्ञो वधाय नाशाय निर्दिष्टं कथितम्। अथवा तस्मिन् वृक्षे धूमो ज्वाला अथवा भवेत्तदा नृपवधायैव राजमृत्यवे भवति।।२९।।

अन्यदप्याह—

सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसंक्षयो विनिर्दिष्टः।
वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासैः फलविपाकः ॥३०॥

वृक्षों के चलने या उनसे किसी प्रकार के शब्द निकलने पर मनुष्यों का नाश होता है। सभी वृक्षों के विकारजन्य फल दश मास में घटित होते हैं।।३०।।

तरुषु वृक्षेषु सर्पत्सु गच्छत्सु जल्पत्सु व्याहरत्सु वा जनानां लोकानां क्षयो विनाशो विनिर्दिष्टः कथितः। वृक्षाणां सर्वेषां वैकृत्ये विकारे दशभिर्मासैर्गतैः फलस्य विपाको भवति।।३०।।

अत्र शान्तिमाह—

स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य छत्रं विधायोपरि पादपस्य।
कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडेव होमाः ॥३१॥

पायसेन मधुनापि भोजयेद् ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः।
मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते हितार्थिभिः ॥३२॥

इस उत्पात में सुगन्ध द्रव्य, धूप और वस्त्रों से पूजित विकारयुत वृक्ष के ऊपर छत्र रखकर एकादश रुद्रों के मन्त्रों का जप करे। 'रुद्रेभ्यः स्वाहा' इस मन्त्र से केवल छः बार हवन करे, घृतयुत पायस से ब्राह्मणों को भोजन करावे; साथ ही इस वृक्षविकारजन्य उत्पात में प्राणियों के हितचिन्तक मुनियों ने दक्षिणा में पृथ्वी देने को कहा है।।३१-३२।।

पादपस्य वृक्षस्य स्रग्भिर्मालाभिः। गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः। धूपैर्गुग्गुलप्रभृतिभिः। अम्बरै-

र्द्धः पूजितस्यार्चितस्योपरि मूर्द्धनि छत्रमातपत्रं विधाय दत्वा अत्रास्मिन्नुत्पातविषये रुद्राणां मन्त्राणामेकादशरुद्राणामनुवाकानां जप: कार्य:। रुद्रेभ्य: स्वाहा इत्यत्र षडेव होमा: कार्या:।

एवं कृत्वा शिवं श्रेयो भवति। भूपती राजा पायसेन क्षीरिण्या आज्यमिश्रेण ब्राह्मणान् द्विजान् भोजयेत्। अत्रास्मिंस्तरुकृते वृक्षजे वैकृते विकारे मधुना माक्षिकेण च घृतयुतेन हितार्थिभिर्मुनिभिर्मेदिनी भूर्दक्षिणा निगदिता उक्ता।।३१-३२।।

इति वृक्षवैकृतम्

अथान्यानप्युत्पातानाह—

नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम्।
कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं च कुसुमफलम्॥३३॥

कमल, जौ आदि (गेहूँ और कौनी) के एक नाल में दो या तीन बाल की उत्पत्ति हो तो क्षेत्र के अधिपति का मरण होता है तथा यमल पुष्प या फलों की उत्पत्ति हो तो भी उसके अधिपति का मरण होता है।।३३।।

अब्जानि पद्मादीनि। यवा: प्रसिद्धा:। आदिग्रहणाद् गोधूमप्रियङ्गुधान्यानि। एतेषामन्यतमस्यैकस्मिन्नाले द्वित्रिसम्भवो द्वौ त्रयो वा भवन्ति, तदा तदधिपतीनां तेषां यवादीनामधिपतय: स्वामिनस्तेषां मरणं कथयत्याचष्टे। तथा यमलं द्विगुणितम्। द्विपुटादिवर्जं पद्मं कुसुमं पुष्पं फलं च जातम् तदा तदधिपतीनां मरणमेव कथयति।।३३।।

अन्यदप्याह—

अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफलकुसुमसम्भवो वृक्षे।
भवति हि यद्येकस्मिन् परचक्रस्यागमो नियमात्॥३४॥

यदि धान्यों की अधिक वृद्धि तथा एक वृक्ष में अनेक प्रकार के फल और पुष्पों की उत्पत्ति हो तो निश्चय ही परचक्र का आगम होता है।।३४।।

सस्यानामतीवात्यर्थं वृद्धिर्बाहुल्यम्। एकस्मिन् वृक्षे तरौ नानाविधानां बहुप्रकाराणां फलानां कुसुमानां पुष्पाणां च सम्भव उत्पत्तिर्यद्येवं भवति, तदा नियमान्निश्चयात् परचक्रस्याऽऽगमो भवति।।३४।।

अन्यदप्याह—

अर्धेन यदा तैलं भवति तिलानामतैलता वा स्यात्।
अन्नस्य च वैरस्यं तदा तु विन्द्याद् भयं सुमहत्॥३५॥

यदि तिल के परिमाण से आधे तेल का परिमाण हो या तिल से बिलकुल तेल नहीं निकलता हो और अन्न में विरसता मालूम हो तो अति भय होता है।।३५।।

तिलानामर्धेन यदा तैलं भवति यावत्प्रमाणं तैलं प्राप्तं तदर्धं भवतीत्यर्थ:। अथवा

अतैलता तैलाभावः स्याद् भवेत्। अन्नस्य भोज्यस्य च वैरस्यं विरसत्वं तदा सुमहद्भयं विन्द्याज्जानीयात्। अतीव भवतीत्यर्थः।।३५।।

अथैषामुत्पातानां शान्तिमाह—

विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामादथवा पुराद्बहिः कार्यम्।
सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा पशुः शान्त्यै ।।३६।।

सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं प्रदेयं तत्क्षेत्रमेव प्रथमं द्विजेभ्यः।
तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषं समुपैति तज्जम् ।।३७।।

विकारयुत पुष्प और फलों को गाँव से बाहर कर देना चाहिये तथा सोम देव की चरु बनानी चाहिये और शान्ति के लिये बकरा भी दान करना चाहिये। धान्यों में पूर्वोक्त विकार देखकर पहले उस क्षेत्र को ही ब्राह्मण के लिए दे देना चाहिये और उसी क्षेत्र के मध्य में पार्थिव चरु बनाने से भूमि से उत्पन्न दोष स्वामी को नहीं प्राप्त होता है।।३६-३७।।

विकृतं सविकारं कुसुमं पुष्पं फलं वा ग्रामात् पुराद् नगराद्वा बहिः कार्यम्। गृहीत्वा वा त्यजेत्। अत्रास्मिन् उत्पाते सौम्यः सोमदैवत्यश्चरुः कार्यः। तथा पशुश्छागः शान्त्यै शान्त्यर्थे निर्वाप्यो देयः। वाशब्दोऽत्र समुच्चये।

सस्ये च विकृतिं विकारं दृष्ट्वा विलोक्य तत्क्षेत्रं प्रथममादौ द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो देयम्। अत्रास्मिन्नुपसर्गे तस्यैव क्षेत्रस्यैव मध्ये भौमं भूमिदैवतं पार्थिवं चरुं कृत्वा तज्जं भूमिजं दोषं स्वामी न समुपैति न प्राप्नोति।।३६-३७।।

इति सस्यवैकृतम्

●

अथान्यानुत्पातानाह—

दुर्भिक्षमनावृष्टावतिवृष्टौ क्षुद्भयं परभयं च।
रोगो ह्यनृतुभवायां नृपतिवधोऽनभ्रजातायाम् ।।३८।।

अनावृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि हो तो दुर्भिक्ष तथा शत्रुभय, वर्षा ऋतु से भिन्न ऋतु में वृष्टि हो तो रोग और विना मेघ की वृष्टि हो तो राजा की मृत्यु होती है।।३८।।

अनावृष्टौ दुर्भिक्षं भवति। अतिवृष्टावतिवर्षणे क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं परभयं च भवति। अनृतुभवायां वर्षाकालं वर्जयित्वा अन्यस्मिन्नृतौ वृष्टौ रोगो भवति। अनभ्रजातायां मेघं विनोत्पन्नायां वृष्टौ नृपतिवधो राज्ञो मरणं भवति।।३८।।

अथान्यानप्याह—

शीतोष्णविपर्यासो नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु।
षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च ।।३९।।

शीत और उष्ण में व्यत्यय होने पर अर्थात् गर्मी के समय में ठण्ढी और ठण्ढ के समय में गर्मी पड़ने पर तथा जिस ऋतु का जो धर्म है वह ठीक-ठीक नहीं होने से छः मास बाद राष्ट्र-भय और दैव-जनित (पूर्व-जन्मार्जित पाप के द्वारा) रोग-भय होता है।

ऋतुषु शिशिरादिषु सम्यक् च न प्रवृत्तेषु। गणितदृष्ट्या न प्रवर्तितेषु शीतोष्णविपर्यासो व्यत्ययः। उष्णकाले शीतत्वं शीतकाले उष्णत्वम्। षण्मासादनन्तरं राष्ट्रभयं भवति। तथा दैवजनितं प्राक्कर्मार्जितं रोगभयं भवति।।३९।।

अन्यदप्याह—

अन्यर्त्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम्।
रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥४०॥

धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विन्द्यात्।
अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥४१॥

वर्षा से भिन्न ऋतु में लगातार एक सप्ताह तक वृष्टि होने पर प्रधान राजा का मरण, रक्त की वृष्टि होने पर युद्ध और मांस, हड्डी, वसा आदि (घृत और तेल) की वृष्टि होने पर मरी (मरकी) पड़ती है। धान्य, सोना, वृक्ष की छाल, फल, पुष्प, आदि (पत्र आदि) की वृष्टि हो तो भय एवं कोयले और धूली की वृष्टि हो तो नगर का नाश होता है।।४०-४१।।

वर्षाकालं वर्जयित्वा अन्यस्मिन्नृतौ सप्ताहं सप्तदिनानि प्रबन्धवर्षे सततायां वृष्टौ प्रधानस्य नृपस्य राज्ञो मरणं भवति। रक्तं वृष्टे शस्त्रोद्योगः सङ्ग्रामो भवति। मांसास्थिव-सादिभिः, मांसमामिषम्, अस्थि प्रसिद्धम्, वसा मज्जा, आदिग्रहणात् घृततैलं गृह्यते। एतै-र्वृष्टैर्मरको भवति जनानां मरणम्।

धान्यं शालयः। हिरण्यं सुवर्णादि। त्वग्वृक्षसम्भवैव। फलं प्रसिद्धमेव। कुसुमं पुष्पम्। आदिग्रहणात् पर्णादि। एतैर्वर्षितैर्भयं विन्द्याज्जानीयात्। अङ्गारवर्षे पांशुवर्षे च तन्नगरं यत्र वर्षति नाशमायाति विनाशं प्राप्नोति।।४०-४१।।

अन्यदप्याह—

उपला विना जलधरैर्विकृता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः।
छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥४२॥

यदि मेघ के विना ओलों की वृष्टि, विकारयुत प्राणियों की वृष्टि या अतिवृष्टि होने पर भी कहीं-कहीं पर छिद्र (अवृष्टि) हो तो धान्यों को ईति (अतिवृष्टि आदि) का भय होता है।।४२।।

विना जलदैर्मेघैरुपलाः पाषाणा वृष्टाः। अथवा विकृताः सविकाराः प्राणिनः खरोष्ट्रा-ऽश्वमार्जारश्रृगालप्रभृतयो वृष्टाः। अतिवृष्टौ वापि छिद्रं मध्ये कुत्रचिदवृष्टिरित्यर्थः। तच्च सस्यानामीतिसञ्जननमुपद्रवोत्पादकम्।।४२।।

(क्षीरघृतक्षौद्राणां दध्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे ।
देशविनाशो ज्ञेयोऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम् ।।[१]

दूध, घी, शहद, रुधिर अथवा गर्म जल की वृष्टि होने पर देश का नाश एवं रक्त की वृष्टि होने पर राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।।)

अन्यानप्याह—

यद्यमलेऽर्के छाया न दृश्यते प्रतीपा वा ।
देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्देश्यम् ।।४३।।

निर्मल सूर्यकिरण होने पर भी यदि वृक्ष आदि द्रव्यों की छाया नहीं दिखाई दे या उल्टी दिखाई दे तो देश में अति भय उत्पन्न होता है।।४३।।

अमले निर्मले अर्के सूर्ये सति यदि वृक्षादीनां छाया प्रतिविम्बं न दृश्यते, अथवा प्रतीपा विपर्ययस्था दृश्यते सूर्याभिमुखी, तदा देशस्य जनस्य सुमहदतिप्रभूतं भयमायातं प्राप्तं विनिर्देश्यं वक्तव्यमिति।।४३।।

अन्यदप्याह—

व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ ।
प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत्क्षुद्भवं सुमहत् ।।४४।।

मेघरहित आकाश में दिन या रात्रि में इन्द्रधनुष पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो अत्यन्त दुर्भिक्ष होता है।।४४।।

व्यभ्रे विगताभ्रे नभस्याकाश इन्द्रधनुरिन्द्रचापं तच्च दिवा दिवसे यदि दृश्यते, अथवा रात्रौ निशि दृश्यते। प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि। अपरस्यां पश्चिमायां वा। तदा सुमहदतिप्रभूतं क्षुद्भयं दुर्भिक्षं भवति।।४४।।

अथैतेषामुत्पातानां शान्तिमाह—

सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागः स्मृतो वृष्टिविकारकाले ।
धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ।।४५।।

सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायु के विकार-जन्य उत्पात के समय यज्ञ करना चाहिये तथा शाली धान्य, भोज्यान्न, गाय और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को देनी चाहिये। ऐसा करने से पाप की शान्ति होती है।।४६।।

सूर्य आदित्यः। इन्दुश्चन्द्रः। पर्जन्यो मेघः। समीरणो वायुः। एषां वृष्टिविकारकाले वर्षणविकृतिसमये यागः स्मृत उक्तः। तथा धान्यानि शालयः। अन्नं भोज्यम्। गावो धेनवः। काञ्चनं सुवर्णम्। एता दक्षिणा ब्राह्मणेभ्यो देयाः। ततोऽनन्तरं पापमनिष्टं शान्तिमुपैति गच्छति।।४५।।

इति वृष्टिवैकृतम्

●

---

१. श्लोकोऽयं बृहत्संहिताया अन्यसंस्करणे नोपलभ्यते।

अथान्यानुत्पातानाह—

अपसर्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते।
शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादीनाम् ॥४६॥

स्नेहासृङ्मांसवहाः सङ्कुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि।
परचक्रस्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥४७॥

यदि नगर के मध्य या पास में बहती हुई नदियाँ दूर चली जायँ या नहीं सूखने वाले ह्रद आदि सूख जायँ तो शीघ्र ही नगर प्राणियों से शून्य हो जाता है। यदि नदियों में तेल, रुधिर या मांस बहने लगें या जल स्वल्प और मलिन हो जाय तो छः मास बाद परचक्र का आगमन होता है।।४६-४७।।

नदीनां सरितां नगरात् पुरादपसर्पणं गमनं दूरतोऽचिरेण शीघ्रमेव नगरस्य शून्यतामुत्सादनं कुरुते। तथा अशोष्याणां बहुलजलानां स्थानानां शोषो जलाभावः। अन्येषां वा ह्रदादीनाम्। ह्रदो यत्र पातालादुदकमागच्छति स्वयमेव। आदिग्रहणात् स्रोतसामपि शोषः शून्यतामेव कुरुते।

स्नेहासृगिति। नद्यः सरितः। स्नेहासृङ्मांसवहाः, स्नेहं तैलादि। असृग्रक्तम्, मांसामामिषम्, यदा वहन्ति; तथा सङ्कुलाः स्वल्पाः। कलुषा अनिर्मलाः। प्रतीपगा यत आगतास्तत्रैव यान्ति। एवंविधा नद्यः षण्मासात्षड्भिर्मासैः परतः परचक्रस्यागमनं कथयन्ति प्रवदन्ति।।४६-४७।।

अन्यदप्याह—

ज्वालाधूमक्वाथारुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम्।
गीतप्रजल्पितानि च जनमरकायोपदिष्टानि ॥४८॥

कूप में अग्नि की ज्वाला, धूआँ, जल का खौलना, रोने का शब्द, गीत या और किसी प्रकार के शब्द लोगों की मृत्यु के सूचक होते हैं।।४८।।

कूपानां ज्वाला प्रज्वलनम्, धूमः, क्वाथः फेनः, आरुदितम्, उत्क्रुष्टमुद्घोषितम्, एतानि यदि भवन्ति; तथा गीतम्, प्रजल्पितं व्याहरणमेतानि सर्वाणि जनानां लोकानां मरकाय मृत्यवे उपदिष्टान्युक्तानि।।४८।।

अन्यदप्याह—

सलिलोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम्।
सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिमिमाम् ॥४९॥

विना खोदी हुई जमीन में जल निकलना, जल के गन्ध और रसों में विपर्यय होना तथा जलाशयों में विकार उत्पन्न होना अग्निभय करने वाला होता है। इसकी शान्ति का प्रकार आगे कहते हैं।।४९।।

अखाते प्रदेशे सलिलस्य जलस्योत्पत्तिः सम्भवः। तोयानां जलानां गन्धरसविपर्यये। गन्धस्य सौगन्धस्य रसस्य स्वादुताया विपर्यये अन्यत्वे। सलिलाशयानामुदकाधाराणां विकृतौ विकारे स्वरूपान्यत्वे महदतीव भयं भवति। तत्र चेमां वक्ष्यमाणां शान्तिमाह।।४९।।

तां चाह—

सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः।
तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ।।५०।।

जल में विकार होने पर वरुण के मन्त्रों से पूजा, जप और हवन करना चाहिये। ऐसा करने से भावी अशुभ फल का निवारण हो जाता है।।५०।।

सलिलविकारे जलविकृतौ वरुणस्यापाम्पतेर्वारुणैर्मन्त्रैः पूजामर्चां कुर्यात्, तैरेव वारुणैर्मन्त्रैर्जपं होमं चाग्नौ कुर्यात्। एवमनेन प्रकारेण पापमनिष्टं शमं शान्तिमुपयाति प्राप्नोति।।५०।।

इति जलवैकृतम्

●

अथान्यानुत्पातानाह—

प्रसविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ वा।
हीनातिरिक्तकाले च देशकुलसंक्षयो भवति ।।५१।।

स्त्रियों को किसी प्रकार का प्रसवविकार (घोड़ा, हाथी, बैल, सर्प आदि जन्तु की तरह जातक) होने पर अथवा एक साथ दो, तीन, चार आदि बच्चे होने पर अथवा प्रसवकाल ('तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको य' इत्यादि से निर्णीत काल) से पहले या बाद में प्रसव होने पर देश और कुल का नाश होता है।।५१।।

स्त्रीणां योषितां प्रसवविकारे प्रसूतिविकृतौ। प्रसवविकारः श्वाद्यङ्गसादृश्यम्। अथवा द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ। द्वित्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टनवदश वा जायन्ते। हीनातिरिक्तकाले, हीने अपरिपूर्णे। अतिरिक्ते चाधिके प्रसवे देशसङ्क्षयो देशविनाशः। कुलसंक्षयो वंशविच्छेदश्च भवति।।५१।।

वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु यमलोद्भवे रणमरणमेषाम्।
षण्मासात् सूतिफलं शान्तौ श्लोकौ च गर्गोक्तौ ।।५२।।

घोड़ी, ऊँटनी, भैंस, गाय और हथिनी को एक साथ दो बच्चे हों तो उन (घोड़ा आदि) का नाश होता है। छः मास बाद प्रसवविकार का फल प्राप्त होता है। इसकी शान्ति संस्कृत व्याख्या में पठित दो श्लोकों द्वारा करानी चाहिये।।५२।।

वडवा अश्वतरी। उष्ट्रा करभी। महिषी। गौः। हस्तिनी करिणी। एतासु यमलोद्भवे द्वाभ्यां जनने एषामेवाश्वादीनां मरणं भवति। तथा च गर्गः—

अकाले प्रसवे चैव कालातीतेऽथवा पुन:।
असङ्ख्याजनने चैव युग्मस्य प्रसवे तथा।।
अमानुषाणि काण्डानि सञ्जातव्यञ्जनानि वा।
अनङ्गा ह्यधिकाङ्गा वा हीनाङ्गा: सम्भवन्ति वा।।
विमुखा: पक्षिसदृशास्तथार्धपुरुषाश्च वा।
विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्।।
अप्राप्तवयसे गर्भे द्वौ चतुष्पात् त्रयोऽपि वा।
अत्युच्चा विनताश्चापि प्रजायन्तेऽनयो भवेत्।।
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते।
विजन्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैर्नृपक्षय:।। इति।

षण्मासादिति। सूतिफलं प्रसूतिफलं षण्मासात् परतो भवति। अत्र शान्तौ गर्गोक्तौ गर्गमहर्षिकथितौ श्लोकौ द्वाविमौ वक्ष्यमाणौ।।५२।।

एतौ चाह—

नार्य: परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिना।
तर्पयेच्च द्विजान् कामै: शान्तिं चैवात्र कारयेत्।।५३।।

चतुष्पदा: स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्या: परभूमिषु।
नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा तु विनाशयेत्।।५४।।

अपना हित चाहने वाले मनुष्य को विकारयुत स्त्रियों को अन्य देश में ले जाकर परित्याग कर देना चाहिये; साथ ही इच्छानुसार ब्राह्मणों को प्रसन्न कर इस उत्पात की शान्ति करनी चाहिये। इसी प्रकार विकारयुत चतुष्पदों को भी समूह से अलग कर अन्य स्थान पर ले जाकर त्याग देना चाहिये; अन्यथा वे विकारयुक्त चतुष्पद सम्बद्ध नगर, नगर के स्वामी और समूह का नाश कर देते हैं।।५३-५४।।

ता नार्यो योषित: सञ्जातविकारा हितार्थिना हितमिच्छता परस्यान्यस्य विषये देशे त्यक्तव्या:। द्विजान् ब्राह्मणान् कामैरिच्छाभिस्तर्पयेत् पूजयेत्, तथाऽत्रास्मिन्नुत्पाते शान्तिं च कारयेत्।

चतुष्पदा वडवादय: स्वयूथेभ्य आत्मीयवृन्देभ्य: परभूमिष्वन्यदेशेषु त्यक्तव्या:। एवं कृते श्रेयो भवति। अन्यथाऽपरित्यागान्नगरं पुरं स्वामिनमधिपतिं यूथं तु विनाशयेत् क्षयं नयति।।५३-५४।।

इति प्रसववैकृतम्

अथान्यानुत्पातानाह—

परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चामसाधु धेनूनाम्।
उक्षाणो वान्योन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम्।।५५।।

मासत्रयेण विन्द्यात्तस्मिन्निःसंशयं परागमनम्।
तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ।।५६।।

एक जाति के पशु दूसरी जाति के पशु के साथ मैथुन करें, गाय या बैल परस्पर एक-दूसरे का स्तनपान करें तो तीन मास बाद निःसंशय परचक्र का आगमन होता है। इसके निवारण के लिये संस्कृत टीका में पठित गर्गोक्त दो श्लोक द्रष्टव्य हैं।।५५-५६।।

तिरश्चां तिर्यग्जातीनां चतुष्पदप्रायाणां परयोनावन्ययोनावभिगमनं यदि भवति, तदाऽसाधु अशोभनम्। तथा धेनूनां गवामन्योन्यं परस्परं स्तनपाने सति, तथोक्षाणो वृषभा वा अन्योन्यं स्तनं पिबन्ति वत्सांश्च वर्जयित्वा, अथवा सुरभिपुत्रं गोस्तनं श्वा सारमेयः पिबति।

तस्मिन्नुत्पाते मासत्रयेण परागमनं निःसंशयमसन्देहं विन्द्याज्जानीयात्। तथा च गर्गः—

वियोनिषु यदा यान्ति मिश्रीभावः प्रजायते।
खरोष्ट्रहयमातङ्गा मनुष्या वा न साधु तत्।।
अकालसक्ता दृश्यन्ते काले च विमदा यदि।
मातङ्गोष्ट्रहयश्वानः पक्षिणो वा न साधु तत्।।
धेनुं धेनुः पिबेद्यत्रानुड्वानं ह्यनुडुत्तथा।
श्वा वा पिबेद्धेनुमथ धेनुः श्वानमथापि वा।।
प्राप्तेषु त्रिषु मासेषु परचक्रागमं वदेत्।। इति।

एतेषामुत्पातानां प्रतिघाताय विनाशाय श्लोकौ द्वावेतौ गर्गेण निर्दिष्टौ कथितौ।।

तावेवाह—

त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत्।
तर्पयेद् ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ।।५७।।

स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः।
प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बह्वन्नदक्षिणम् ।।५८।।

विकारयुत पशुओं को छोड़ देने से या दूसरी जगह कर देने से शीघ्र ही चतुष्पदजन्य उत्पातों की शान्ति हो जाती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट, जप और हवन करना चाहिये तथा चरु, पशु एवं प्राजापत्य मन्त्रों से ब्रह्मा का यज्ञ सम्पन्न कर प्रभूत अन्न की दक्षिणा देनी चाहिये।।५७-५८।।

त्यागस्त्यजनम्। विवासनमन्यत्र स्थानम्। दानमन्यस्य ब्राह्मणादेः प्रतिपादनं यत्तस्य चतुष्पदस्याशु क्षिप्रमेव शुभं भवेत् स्यात्। अत्रास्मिन्नुपसर्गे ब्राह्मणान् द्विजांस्तर्पयेत् पूजयेत्। जपं मन्त्राणामद्भुतं होमानग्नौ च कारयेत्।

पुरोहितः स्थालीपाकेन चरुणा पशुना च छागादिना धातारं प्रजापतिं प्राजापत्येन मन्त्रेण बह्वन्नं प्रभूतान्नं बहुदक्षिणं च यजेत्।।५७-५८।।

इति चतुष्पदवैकृतम्

अथान्यानप्युत्पातानाह—

यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच्च वाहयुतम्।
राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां सादभङ्गे च ॥५९॥

यदि अश्व आदि वाहन, वाह (सवार) से अलग होकर भागे, सवार के साथ नहीं चले और रथ का पहिया जमीन में गढ़ जाय या टूट जाय तो राष्ट्र को भय होता है।।५९।।

यानमश्वादिकं वाहेन पुरुषेण वियुक्तं यदि गच्छेद् व्रजेत्। वाहेन युतं न व्रजेत्। तदा राष्ट्रस्य भयं भवति। तथा चक्राणां रथचक्राणां सादे मज्जने भङ्गे च स्फोटने राष्ट्रभयमेव भवति।।५९।।

अन्यानप्याह—

गीतरवतूर्यशब्दा नभसि यदा वा चरस्थिरान्यत्वम्।
मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराभिभवः ॥६०॥

यदि आकाश में गीत या तुरही का शब्द सुनाई पड़े या स्थिर पदार्थ चर और चर पदार्थ स्थिर दिखाई दे तो मरण और रोग होता है। अथवा तुरही बजने से विकारयुत शब्द हो तो शत्रुओं से पराजय होती है।।६०।।

नभस्याकाशे गीतरवा गीतशब्दास्तूर्यशब्दा वा श्रूयन्ते। अथवा चरस्थिरान्यत्वम्, अस्थिरस्य शकटादेः स्थिरता, स्थिरस्य वृक्षादेश्चरत्वम्, तदा मृत्युर्मरणम्, गदा रोगा भवन्ति। तथा विस्वरतूर्ये तूर्याणामाहतानां यद्यन्यादृशः सविकारः शब्द उत्पद्यते तदा पराभिभवो भवति, परैः शत्रुभिरभिभवः पराजयः।।६०।।

अन्यानप्याह—

अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात्।
व्युत्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥६१॥

यदि विना बजाये तुरही से शब्द हो और बजाने पर शब्द न निकले या अनेक प्रकार के शब्द निकलें तो शत्रु सेनाओं का आगमन और राजा का मरण होता है।।६१।।

अनभिहतानामताडितानां तूर्याणां नादः शब्दो यदि वा ताडितेष्वाहतेषु शब्दो रवो न स्यान्न भवेत्। तथा तूर्याणां व्युत्पत्तौ वा। विविधा उत्पत्तिर्व्युत्पत्तिर्नानाशब्दकृत्। परागमः परचक्रस्यागमो भवति नृपते राज्ञो मरणं वा।।६१।।

अन्यदप्याह—

गोलाङ्गलयोः सङ्गे दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे।
क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ॥६२॥

बैल और हल का अचानक संयोग हो जाने, दर्वी (चमचा = करौछ), शूर्प (सूप = छाज) आदि गृह-सामग्री में विकार उत्पन्न होने और शृगाल (गीदड़) के

विकारयुत शब्द होने से भय होता है, यह मुनि का वचन है।।६२।।

लाङ्गलं हलम्। गोलाङ्गलयोः सङ्गः परस्परं श्लेषः। गौर्यत्र हललग्ना दृश्यते इति तस्मिंस्तथा दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे, दर्वी प्रसिद्धा, शूर्पमपि प्रसिद्धमेव। दर्वीशूर्पविकारे। उपस्करभाण्डानां विकारे वैकृते। आदिग्रहणान्मुशले उलूखलादि गृह्यते। एषां विकारे स्वरूपान्यत्वे। हसने गायने रोदने वा। क्रोष्टुकः शृगालस्तत्सदृशे तेषामेव नादे शब्दे शस्त्रभयं भवति। इदं वक्ष्यमाणमत्रास्मिन्नुत्पाते शान्त्यर्थं मुनिवचः ऋषिवाक्यमिति।।६२।।

तच्चाह—

वायव्येष्वेषु नृपतिर्वायुं शक्तुभिरर्चयेत्।
आवायोरिति पञ्चर्चो जप्तव्याः प्रयतैर्द्विजैः ।।६३।।

ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत्।
बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ।।६४।।

इन पूर्वोक्त वायव्य विकारों में सत्तू (सतुआ) से वायु देवता की पूजा करे। नियमयुत होकर ब्राह्मण 'आवायोः' इत्यादि पाँच ऋचाओं का जप करे। पायस से ब्राह्मणों को तृप्त करे और प्रयत्नपूर्वक बहुत अन्न की दक्षिणा देकर हवन करे।।६३-६४।।

एषु वायव्येषूत्पातेषु नृपती राजा वायुमनिलं शक्तुभिरर्चयेत् पूजयेत्, तथा प्रयतैः संयतैर्द्विजैर्ब्राह्मणैरावायोरित्यादिकाः पञ्चर्चो जप्तव्या इति। पञ्च ऋचो जप्तव्यो इति।

परमान्नेन पायसेन दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांस्तर्पयेत् तथा होमा बह्वन्नदक्षिणाः प्रभूतभोज्याः प्रभूतदक्षिणाः प्रयत्नतश्च कर्तव्या इति।।६३-६४।।

इति वायव्यवैकृतम्

•

अथान्यानप्युत्पातानाह—

पुरपक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम्।
नक्तं वा दिसचराः क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ।।६५।।

सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमाबध्नन्तो मृगा विहङ्गा वा।
दीप्तायां दिश्यथवा क्रोशन्तः संहता भयदाः ।।६६।।

यदि नगर में रहने वाले पक्षी वन में और वन में रहने वाले पक्षी निर्भय होकर नगर में प्रवेश करें या दिन में चलने वाले पक्षी रात्रि में और रात्रि में चलने वाले पक्षी दिन में चलें एवं सूर्य के उदय और अस्त समय में वन में रहने वाले पशु और पक्षी सूर्याभि-मुख होकर मण्डल बाँधकर बैठें या सब इकट्ठे होकर अधिक शब्द करते हुये दिखाई दें तो भय देने वाले होते हैं।।६५-६६।।

पुरपक्षिणो ग्राम्यविहगा यदि वनचरा भवन्ति। वनेऽरण्ये चरन्ति, तथा वन्याः पक्षिणो निर्भया विगतभीतयो वा पुरं नगरं प्रविशन्ति। अथवा दिवसचराः पक्षिणः काकादयो नक्तं रात्रौ चरन्ति। क्षपाचरा रात्रिचारिणः कौशिकादयोऽहनि दिवसे चरन्ति।

अन्यानप्याह—मृगा अरण्यप्राणिनः, विहङ्गा पक्षिणो वा सन्ध्याद्वयेऽपि सूर्योदयास्त-समययोर्मण्डलं चक्राकारमाबध्नन्तो रचयन्तः अथवा संहताः समेता बहवोऽतीव क्रोशन्तो वाच्यमाना दृश्यन्ते। दीप्तायां दिशि तत्कालं रवेर्वशेन या दीप्ता तस्याम्। तदा भयदा इति। यस्यां रविस्तिष्ठति सा दीप्तेति तल्लक्षणम्।।६५-६६।।

अन्यानप्याह—

श्येनाः प्ररुदन्त इव द्वारे क्रोशन्ति जम्बुका दीप्ताः।
प्रविशेन्नरेन्द्रभवने कपोतकः कौशिको यदि वा।।६७।।

यदि श्येन (बाज) अधिक रोते हुये की तरह दिखाई दे, सूर्य की तरफ मुख करके श्रृगाल (गीदड़) पुरद्वार पर शब्द करे तथा राजभवन में कबूतर या उल्लू प्रवेश करे तो भय देने वाला होता है। कहीं-कहीं पर 'श्यानः' की जगह 'श्वानः' पाठ मिलता है।।६७।।

श्येनाः प्राचिकाः पक्षिणः प्रकर्षेण रुदन्तो रोदमाना इव भवन्ति तथा जम्बुकाः शृगाला दीप्ताः सूर्याभिमुखाः क्रूरशब्दाश्च द्वारे पुरद्वारे क्रोशन्ति शब्दं कुर्वते, नरेन्द्रभवने राजगृहे, कपोतकः पक्षी कौशिक उलूको यदि वा प्रविशेत्। तथा च गर्गः—

श्येनगृध्रबलाकाश्च वामना मुण्डचारिणः।
शब्दायन्त इवात्यर्थं प्रदीप्ताः सङ्घशो यदि।।
रुदन्ति विविधं यत्र तदेवाशु विनश्यति।
यद्यभीक्ष्णं कपोता वा प्रविशन्ति वसन्ति वा।।
राजवेश्मन्युलूका वा तच्छून्यमचिराद् भवेत्।। इति।।६७।।

अथान्यानुत्पातानाह—

कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः।
प्रतिलोममण्डलचराः श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः।।६८।।

गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षिसङ्घसम्पातः।
मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवश्चापि नाशाय।।६९।।

यदि प्रदोष समय में मुर्गा और हेमन्त ऋतु के आदि में कोयल बोलें तथा आकाश में बाज आदि मांस भक्षण करने वाले पक्षी वृत्ताकार मार्ग में प्रदक्षिण क्रम से चलें तो भय देने वाले होते हैं। घर, प्रधान वृक्ष, तोरण (पुरद्वार) या गृहद्वार पर पक्षियों के समुदायों का गिरना तथा इन्हीं घर आदि पर मधु (शहद) का छत्ता, वल्मीक (वमई) और कमलों की उत्पत्ति नाश के लिये होती है।।६८-६९।।

प्रदोषे रात्रिमुखे कुक्कुटरुतं तथा हेमन्तादौ हेमन्तप्रमुखे कोकिलालापाः परभृतां

शब्दाः। श्येनाद्याः सर्वपक्षिणो मांसाशिनः। आदिग्रहणात् काकवकप्लवकङ्का गृह्यन्ते। एते अम्बरे आकाशे प्रतिलोममण्डलचराः, अप्रदक्षिणेन मण्डलेन चरन्तस्तथाभूता भयदा भयं जनयन्ति।

गृहं वेश्म। चैत्यं प्रधानवृक्षः। तोरणं प्रसिद्धम्। एतेषु गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु पक्षि-सङ्घानां खगवृन्दानां सम्पातः श्लेषो यत्र, तथैतेष्वेव गृहादिषु मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवः, मधूनां माक्षिकानाम्, वल्मीकस्य च सरीसृपकृतमृत्स्तूपस्य। अम्भोरुहस्य पद्मादेः समुद्भव उत्पत्तिश्चापि नाशाय भवति।।६८-६९।।

अन्यानप्याह—

श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय।
पशुशस्त्रव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम् ।।७०।।

यदि कुत्ते हड्डी या शव के कोई अंग घर में ले आवें तो मरी पड़ती है तथा पशु या शस्त्र मनुष्य की तरह बोलें तो राजा की मृत्यु होती है, ऐसा मुनियों का वचन है।।७०।।

श्वभिः सारमेयैर्मन्दिरेषु गृहेष्वस्थिशवावयवानां प्रवेशनम्। अस्थ्नः शवावयवस्य मृतपुरुषाङ्गस्य प्रवेशनं मरकाय भवति। पशूनां च चतुष्पदानां शस्त्राणां च व्याहारे पुंवत्सम्भाषमाणे नृपस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं भवति। इदं च वक्ष्यमाणं शान्त्यर्थं मुनिवचः ऋषिवाक्यम्।।७०।।

तच्चाह—

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमान् सदक्षिणान्।
देवाः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ।।७१।।

सुदेवा इति चैकेन देया गावः सदक्षिणाः।
जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनो वेदशिरांसि च ।।७२।।

मृग और पक्षियों में पूर्वोक्त विकार होने पर दक्षिणा के साथ हवन करे, पाँच ब्राह्मणों के द्वारा 'देवाः कपोत' इत्यादि मन्त्र का तथा एक ब्राह्मण के द्वारा 'सुदेवा' इत्यादि मन्त्र का जप करावे, दक्षिणा के साथ गोदान करे और शाकुन सूक्त या 'वेदशिरांसि' इत्यादि मन्त्र का जप करे।।७१-७२।।

मृगाणां पक्षिणां विकारेषु वैकृतेषु सदक्षिणान् दक्षिणाभिः सहितान् होमान् कुर्यात्। पञ्चभिर्द्विजैर्ब्राह्मणैर्देवाः कपोत इति जप्तव्याः।

सुदेवा एतत्पदं यस्य मन्त्रस्यादि स चैकेन द्विजेन जप्तव्यः। तेषां ब्राह्मणानां गावो धेनवः सदक्षिणा देयाः। शाकुनसूक्तं च मन्त्रं जपेत्पठेत्। वा मनो मन्त्रम्। वेदशिरांस्यथर्वशिरः-प्रभृतीनि जपेत्।।७१-७२।।

इति मृगपक्ष्यादिवैकृतम्

अथान्यानुत्पातानाह—

शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु ।
तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ।।७३।।

इन्द्रध्वज, इन्द्रकील और स्तम्भद्वार के गिरने या टूटने से तथा कपाट, तोरण और ध्वज के गिरने या टूटने से राजा का मरण होता है।।७३।।

शक्रध्वज इन्द्रध्वजः। इन्द्रकीलो द्वारार्गलः। स्तम्भद्वारे प्रसिद्धे। एषामन्यतमस्य प्रतातः पतनं भङ्गः स्फोटनं वा तेषु दृष्टेषु। कपाटं द्वारापिधानम्। तोरणं प्रसिद्धम्। केतुर्ध्वजः। एतेषामपि तद्वत्प्रपातो भङ्गो दृश्यते, तदा नरपते राज्ञो मरणं विनिर्दिशेद्वदेत्।।७३।।

अन्यानप्याह—

सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनग्नौ ।
छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी ।।७४।।

दोनों सन्ध्याओं में तेज का होना, वन या अग्निरहित स्थान में धूम की उत्पत्ति होना, छिद्राभाव वाली भूमि का फट जाना या कम्पन होना भयकारी होता है।।७४।।

सन्ध्याद्वयस्य सूर्योदयास्तमययोर्दीप्तिस्तेजः। कानने वने चानग्नौ अग्निरहिते धूमोत्पत्तिर्धूमसम्भवः तथा छिद्राभावे व्रणं विना भूमेरवनेर्दरणं स्फोटनं कम्पश्चलनं च भयकारी भयं करोति।।७४।।

पाखण्डानां नास्तिकानां च भक्तः साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः ।
ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ।।७५।।

जिस देश में पाखण्डी और नास्तिक मनुष्यों का भक्त, सज्जनों के आचरणों से रहित, क्रोधी, परछिद्रान्वेषी, खल तथा सदा युद्ध की इच्छा रखने वाला राजा हो, उस देश का नाश होता है।।७५।।

यस्मिन् देशे ईदृशो राजा नृपतिस्तस्य देशस्य नाशो भवति। कीदृशो राजा? पाखण्डानां वेदबाह्यानां नास्तिकानां च लौकायतिकानां भक्तस्तत्परः, तथा साध्वाचारप्रोज्झितः, साधूनां सज्जनानां सम्बन्ध्याचारः प्रोज्झितस्त्यक्तो येन। क्रोधशीलः क्रोधपरः। ईर्ष्युः परमत्सरः। क्रूरः खलः। विग्रहासक्तचेताः, विग्रहे सर्वकालमकालेऽपि आसक्तं चेतो यस्य।।७५।।

अन्यानप्याह—

प्रहर हर छिन्धि भिन्धीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः ।
निगदन्तः प्रहरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ।।७६।।

जिस स्थान पर शस्त्र, काठ (छड़ी आदि) और पत्थर हाथ में लेकर 'मारो, छीन लो, काटो, तोड़ डालो' इत्यादि कहते हुये बालक गण एक-दूसरे के ऊपर प्रहार करें; वहाँ शीघ्र भय होता है।।७६।।

बाला: शिशवः। आयुधकाष्ठाश्मपाणयः, आयुधानि खड्गादीनि कृत्रिमरूपाणि, काष्ठानि लगुडानि, अश्मनः पाषाणाः, पाणिषु हस्तेषु येषां ते तथाभूताः, प्रहर हर छिन्धि भिन्धि इति निगदन्तः प्रवदन्तः परस्परमन्योन्यं प्रहरन्ते घ्नन्ति यत्र तत्राप्याशु क्षिप्रमेव भयं भवति। तथा च पराशरः—

यदि धनुरसिकाष्ठलोष्टहस्ताः पुरशिशवो रणवत्समाचरन्ति।
प्रहर हर जहीत्युदाहरन्ते भयमचिरात्तुमुलं निवेदयन्ति।। इति।।७६।।

अन्यानप्याह—

अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतप्रेताभिलेखनं यस्मिन्।
नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण।।७७।।

जिस घर की दीवाल पर कोयले, गेरू आदि (पीले और नीले) रङ्गों से विकृत मृत पुरुषों के चित्र बनाये जायँ या कोयले आदि से बनाये हुये गृहस्वामी के चित्र दिखाई दें तो वह घर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।७७।।

यस्मिन् क्षये गृहे अङ्गारगैरिकाद्यैर्विदग्धकाष्ठेन गैरिकेण वा। आदिग्रहणादन्यैः पीतनीलै रङ्गैर्विकृतानां विरूपाणां प्रेतानां मृतपुरुषाणां चाभिलेखनमालेखनम्, अथवा नायको गृहस्वामी अङ्गारगैरिकाद्यैश्चित्रित आलेखितोऽपि कृतो यत्र दृश्यते गृहे तद्गृहं न चिरेण शीघ्रमेव क्षयं नाशं याति।।७७।।

अन्यानप्याह—

लूतापटाङ्गशबलं न सन्ध्ययोः पूजितं कलहयुक्तम्।
नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च यद् गृहं तत्क्षयं याति।।७८।।

जो घर मकरियों के जाल से व्याप्त हो, दोनों सन्ध्याओं में देवादि के पूजन से रहित हो, प्रतिदिन कलहयुत हो और अपवित्र स्त्रियों से युत हो, उसका नाश हो जाता है।

लूताशब्देन जालकरा उच्यन्ते, तदीयैस्तन्तुभिर्ये पटा अङ्गान्यवयवाश्च तदीयान्येव, तैर्गृहं शबलं व्यामिश्रितम् तथा सन्ध्ययोर्द्वयोः सूर्योदयास्तमययोर्यत्र पूजितं नार्चितम्, तथा नित्यं कलहयुक्तं प्रतिदिनं यत्र कलहः क्रियते तथा यद्गृहं नित्योच्छिष्टस्त्रीकं नित्यं सर्वकालमुच्छिष्टाः स्त्रियो यत्र तत्क्षयं नाशं याति।।७८।।

अन्यानप्याह—

दृष्टेषु यातुधानेषु निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम्।
प्रतिघातायैतेषां गर्गः शान्तिं चकारेमाम्।।७९।।

यदि प्रत्यक्ष में राक्षस दिखाई दे तो बहुत शीघ्र मरी पड़ती है। इन पूर्वोक्त उत्पातों के नाश के लिये गर्ग मुनि ने आगे कथित प्रकार की तरह शान्ति कही है।।७९।।

यातुधानेषु यक्षेषु प्रत्यक्षमवलोकितेषु आशु क्षिप्रमेव मरकं सम्प्राप्तं निकटवर्तिनं

निर्दिशेद्वदेत्। एतेषामुत्पातानां प्रतिघाताय नाशायेमां वक्ष्यमाणां शान्तिं गर्गश्चकार कृतवान्।

तां चाह—

महाशान्त्योऽथ बलयो भोज्यानि सुमहान्ति च।
कारयेत महेन्द्रं च माहेन्द्रीं च समर्चयेत् ॥८०॥

पूर्वोक्त उत्पातों की अधिक शान्ति करनी चाहिये। बलि और अधिक भोज्य करना चाहिये तथा इन्द्र और इन्द्राणी का अधिक पूजन करना चाहिये।।८०।।

महाशान्त्यो महत्योऽतिप्रभूताः शान्त्यः। अथ बलयमुपहाराः तथा सुमहान्त्यपि प्रभूतानि भोज्यानि च कारयेत। महेन्द्रमिन्द्रं च कारयेत। माहेन्द्रीमिन्द्राणीं च समर्चयेत् पूजयेत्।।८०।।

इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम्

अथ यत्र कालेषूत्पाता दृष्टा विफला भवन्ति तानाह—

नरपतिदेशविनाशे केतोरुदयेऽथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः।
उत्पातानां प्रभवः स्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥८१॥

राजा के विनाश, देश के ऊपर आपत्ति, केतु के उदय और सूर्य, चन्द्र के ग्रहण के समय उत्पन्न उत्पात तथा आगे कथित की तरह अपने ऋतु में उत्पन्न उत्पात दोष के लिये नहीं होते है।।८१।।

नरपतिविनाशे राजमरणे, तथा देशविनाशे परदेशलुण्ठनं यदा क्रियते, तथा केतोरुदये शिखिनो दर्शने अथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः सूर्याचन्द्रमसोरुपप्लवे। एतेषु कालेषु उत्पातानां प्रभव उत्पत्तिः तथा स्वर्तुभवः। स्वर्तावात्मीय ऋतौ वक्ष्यमाणानामुत्पातानां प्रभव उत्पत्तिर-दोषाय भवति। यत्र यदनिष्टं फलयुक्तं तत्र भवति।।८१।।

अथ स्वर्तुस्वभावकृतानुत्पातान् वक्ष्यामीत्याह—

ये च न दोषान् जनयन्त्युत्पातानृतुस्वभावकृतान्।
ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तैः ॥८२॥

जो उत्पात ऋतु-स्वभावजनित दोष को नहीं उत्पन्न करता है, उनको संक्षेप में कहे गये ऋषिपुत्रकृत आगे कथित पद्यों के द्वारा जानना चाहिये।।८२।।

ये चोत्पाता ऋतुस्वभावकृता ऋतुस्वभावेनोत्पद्यन्ते दोषाननिष्टफलं न जनयन्ति नोत्पादयन्ति। तानृतुस्वभावकृतानृषिपुत्रकृतैः ऋषिपुत्रो नामाचार्यस्तत्कृतैः श्लोकैरिमैः समासोक्तैः समासेन सङ्क्षेपेण य उक्तास्तैर्विद्याज्जानीयात्।।८२।।

तत्र वसन्ते प्राकृतानुत्पातानाह—

वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः।
परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः ॥८३॥

द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः ।
गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥८४॥

वज्र (बिजली), अशनि (पत्थरों की वर्षा या उल्कापात), भूकम्प, दीप्ता, सन्ध्या, निर्घात, शब्द, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, धूली, धूम, रक्त वर्ण के रवि का उदयास्त, वृक्षों से भोजन, मधुरादि रस और तेल आदि की उत्पत्ति, गाय और पक्षियों में काम की वृद्धि— ये सब उत्पात चैत्र और वैशाख मास में कल्याण के लिये होते हैं।।८३-८४।।

एत उत्पाता मधौ माधवे च वैशाखे मासि शिवाय श्रेयसे भवन्ति। के तानित्याह— **वज्राशनीत्यादि।** वज्रं विद्युत्, अशनिरश्मवर्षणमुल्काभेदो वा। महीकम्पो भूकम्पः। सन्ध्या प्रसिद्धा दीप्ता। यतस्तस्या लक्षणमुक्तम्। निर्घातनिःस्वना निर्घातशब्दाः अथवा निर्घाताः केवलाः, निःस्वनाश्च शब्दा यथा तथोच्चरिताः। परिवेषः सूर्याचन्द्रमसोः। रजो धूलिर्नभसि। धूमः काननेषु। तथा रक्तस्य लोहितवर्णस्यार्कस्य सूर्यस्यास्तमयोदयौ।

द्रुमेभ्यो वृक्षेभ्योऽन्नस्य भोजनस्य। रसानां मधुरादीनाम्। स्नेहस्य तैलादेः। बहूनां पुष्पाणां फलानां चोद्गमः सम्भवः। गवां धेनूनां पक्षिणां च मदवृद्धिः कामानुसेवनम्।।८३-८४।।

अथ ग्रीष्मे आह—

तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।
अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥८५॥

रक्तपद्मारुणा सन्ध्या नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ।
सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥८६॥

सदा उल्कापात से मलिन आकाश, सूर्य-चन्द्र के पीले मण्डल, अग्नि के विना ज्वाला का शब्द, धूप, धूली और वायु से आहत रक्तकमल की तरह लोहित वर्ण की सन्ध्या, तरङ्गयुत समुद्र की तरह आकाश, नदियों में जल का सूखना—ये सब उत्पात ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ़) में शुभ होते हैं।।८५-८६।।

एतानुत्पातान् ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढयोर्दृष्ट्वा विलोक्य शुभं वदेत् ब्रूयात्। नभ आकाशं तारापातेनोल्कापातेन च कलुषमनिर्मलमनवरतपतनात्, तथा कपिलवर्णे अर्केन्द्वोः सूर्या-चन्द्रमसोर्मण्डले बिम्बे यत्र। अनग्निज्वलनं विनाऽग्निना ज्वलनं ज्वाला स्फोटस्तेनैव शब्दः, अथवा नभसः स्फोटः शब्दः धूमः। रेणुर्धूलिः। अनिलो वायुः। एतैराहतमुप-हतम्।।८५-८६।।

तथा सन्ध्या रक्तपद्मारुणा रक्तपद्मवदरुणा लोहिता। नभ आकाशं क्षुब्धार्णवोपमं क्षुब्धसमुद्रसदृशम्। जलवीचिभिरिव व्याप्तम्। सरितां नदीनामम्बुसंशोषणं जलाभावः।

अथ वर्षास्वाह—

शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् ।
कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ॥८७॥

सरोनद्युदपानानां वृद्ध्यूर्ध्वतरणप्लवाः ।
सरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥८९॥

इन्द्रधनुष, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, बिजली और सूखे वृक्षों में अङ्कुर निकलना, पृथ्वी का काँपना, उलटना, स्वरूप बदलना, शब्द करना, फटना, सरोवरों का बढ़ जाना, नदियों का ऊपर आना, वापी, कूप, तालाब आदि में अधिक जल होना, पर्वत और गृहों का चलायमान होना—ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में शुभ हैं।।८७-८८।।

वर्षास्वेतन्न भयावहं न भयप्रदम्। शुभमित्यर्थः। शक्रायुधमिन्द्रचापम्। परिवेषः। सूर्याचन्द्रमसोः। विद्युत्तडित्। शुष्कविरोहणं शुष्काणां तरूणां पुनर्विरोहणं सरसत्वम्। क्षितेर्भूमेः कम्पश्चलनम्। उद्वर्त्तनं परिवर्त्तनम्। वैकृत्यं विकृतता विकारः स्वरूपान्यत्वम्। क्षितेर्भूमे रसनं शब्दः श्लेषणं वा। दरणं निःसरणं स्फोटनमित्यर्थः।

सरोनद्युदपानानां यथाक्रमं वृद्ध्युर्ध्वतरणप्लवाः, सरसां वृद्धिर्वर्द्धनम्। नदीनामूर्ध्वतरणमूर्ध्वगमनम्, उदपानानां वापीकूपतडागानां प्लवो जलप्लवः। अद्रीणां पर्वतानां गेहानां गृहाणां सरणं लुण्ठनमिति।।८७-८८।।

अथ शरद्याह—

दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ।
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाऽम्बरे ॥८९॥
गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु ।
सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥९०॥

दिव्य स्त्री, गन्धर्व, रथ तथा आश्चर्य करने वाली वस्तुओं का दर्शन, दिन के समय ग्रह-नक्षत्र आदि का दर्शन, वन तथा पर्वतों में गीत और वाद्यों की ध्वनि, धान्य की वृद्धि और जल की हानि—ये सब शरद् ऋतु में अपाप (शुभ) हैं।।८९-९०।।

एत उत्पाताः शरदि शरत्काले अपापाः शुभफलदाः स्मृता उक्ताः। दिव्यस्त्रीणामप्सर आदीनाम्। भूतानां गन्धर्वाणां देवयोनीनाम्। विमानानां रथानाम्। अद्भुतानामाश्चर्योत्पादकानां च दर्शनम्। तथा अम्बरे आकाशे दिवा दिवसे ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनम्।

वनेष्वरण्येषु पर्वतसानुष्वद्रिसमभागेषु। गीतस्य वादित्राणां च निर्घोषाः शब्दाः श्रूयन्ते। सस्यानां वृद्धिरभ्यधिकता। अपां जलानां च हानिरल्पत्वम्।।८९-९०।।

अथ हेमन्ते आह—

शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ।
रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥९१॥

दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ।
उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥९२॥

वायु तथा तुषार (बर्फ) में ठण्ढापन, मृग और पक्षियों का शब्द, राक्षस, यक्ष आदि प्राणियों का दर्शन, मनुष्य के विना वाणी, अन्धकारयुत आकाश, वन, पर्वत और दिशा तथा उच्च में सूर्य का उदयास्त होना—ये सब हेमन्त में शुभ हैं।।९१-९२।।

एत उत्पाताः शोभना इष्टफला हेमन्ते स्मृता उक्ताः। शीतस्यानिलस्य वायोस्तुषारस्य च भावः। मृगाणां पक्षिणां च नर्दनं शब्दः। रक्षसां यक्षाणां सत्त्वानां च प्राणिनामदृश्यानां दर्शनम्। आदिग्रहणाद् भूतप्रेतपिशाचवेतालानां च दर्शनम्। अमानुषी मानुषेण विना वाक्।

दिश आशा धूमान्धकारा धूमेनान्धकारीकृताः। कीदृश्यो दिशः? सनभोवनपर्वताः, सह नभसा आकाशेन वनैररण्यैः पर्वतैश्च सहिताः, तथा सूर्यस्यादित्यस्योदयास्तमयावुच्चैरुच्चतरौ स्थानात्।। ९१-९२।।

अथ शिशिरे आह—

हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम्।
कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्।।९३।।

चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः।।९४।।

हिमपात, वायुसम्बन्धी उत्पात, भयानक प्राणियों का आश्चर्य करने वाला दर्शन, काले अञ्जन की तरह रात और उल्कापात से पीला आकाश, स्त्रियों के गर्भ से नाना प्रकार के (घोड़ा आदि के अङ्गसदृश) प्राणियों की उत्पत्ति, गाय, बकरी, घोड़ा, मृग और पक्षियों के गर्भ से विजातीय प्राणियों की उत्पत्ति, पत्र-लता और अङ्कुरों में विकार—ये सब शिशिर ऋतु में शुभ होते हैं।।९३-९४।।

एत उत्पाताः शिशिरे शुभा इष्टफलदाः। हिमस्य तुहिनस्य पातः पतनम्। अनिलोत्पाता वाय्वपस्पर्शाः। विरूपाणां भीषणीयानां सत्त्वानामद्भुतानामाश्चर्योत्पादकानां च दर्शनम्। दिव्यपुरुषादीनाम्। आकाशं नभः कृष्णाञ्जनाभम्, कृष्णाञ्जनवदाभा कान्तिर्यस्य। तारापातैरुल्कापातैः पिञ्जरं चित्रितम्।

स्त्रीषु योषित्सु चित्रा नानाप्रकाराः श्वाद्यङ्गसदृशाः गर्भोद्भवाः गर्भाणां सम्भवाः तथा गोषु, अजेषु छागेषु, अश्वेषु तुरगेषु, मृगेषु, पक्षिषु च विचित्रगर्भोद्भवाः। गोऽजाश्वानां मृगपक्षिणां प्रकृतेर्विपर्यासः। पत्राणां पर्णानामङ्कुराणां लतानां विकारा विकृतय इति।।९३-९४।।

अत्रैव विशेषमाह—

ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्त्तौ शुभप्रदाः।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते चातिदारुणाः।।९५।।

ये ऋतु-स्वभावजनित उत्पात अपने ऋतु में शुभ फल देने वाले होते हैं; पर अन्य ऋतु में दिखाई दें तो अति कष्ट देने वाले होते हैं।।९५।।

एते यथोक्ता उत्पाता ऋतुस्वभावेन जायन्ते उत्पद्यन्ते स्वर्तावात्मीयर्तौ दृष्टा अवलोकिताः शुभप्रदा भवन्ति। ऋतोरन्यत्राऽस्मिन् काले दृष्टास्त उत्पाताश्चातिदारुणा अतिकष्टफला भवन्ति।।९५।।

यद्यद्विशेषफलप्रदं भवति तत्तदाह—

उन्मत्तानां च या गाथाः शिशूनां यच्च भाषितम्।
स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥९६॥

पागलों की गाथा (गीत आदि), बालकों का वचन और स्त्रियों की वाणी का उल्लंघन नहीं होता अर्थात् जो बोलते हैं, सब सत्य होते हैं।।९६।।

उन्मत्तानां विचित्राणां या गाथाः प्राकृतकाव्यम्। शिशूनां बालानां यच्च भाषितं व्याहृतम्, यच्च स्त्रियो योषितः प्रभाषन्ते व्याहरन्ति। तस्य व्यतिक्रमोऽन्यथात्वं नास्ति न विद्यते। सर्वथा तद्भवतीत्यर्थः। येन कारणेनैतत्सत्यरूपं भवति।।९६।।

तत्प्रदर्शनार्थमाह—

पूर्वं चरति देवेषु पश्चाच्चरति मानुषान्।
नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥९७॥

विना प्रेरणा के नहीं बोलने वाली यह सत्यरूप सरस्वती पहले देवताओं में विचरण करती थी, बाद में मनुष्यों को प्राप्त हुई।।९७।।

एषा भगवती सरस्वती सत्या सत्यरूपा अचोदिता अप्रेरिता न वदति न ब्रवीति। यतः प्रथमं पूर्वं देवेषु चरति देवलोकं याति। देवप्रेरिता पश्चादनन्तरं मानुषान् गच्छति।।९७।।

अथोत्पातशास्त्रज्ञस्य प्रभावमाह—

उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बुद्ध्वा
विख्यातो भवति नरेन्द्रवल्लभश्च।
एतत्तन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं
यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी ॥९८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पात-
लक्षणाध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥

गणित को नहीं जानने वाले मनुष्य भी पूर्वोक्त उत्पातों को जान कर यशस्वी और राजा के प्रिय होते हैं। यह मुनि का वचन गोपनीय कहा गया है, जिसको जान कर मनुष्य त्रिकालदर्शी होता है।।९८।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायामुत्पाताध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥

गणितविवर्जितो ग्रहगणितरहितोऽप्युत्पातान् बुद्ध्वा ज्ञात्वा विख्यातः कीर्तियुक्तो नरेन्द्रवल्लभो नृपप्रियश्च भवति। एतत्तद्रहस्यं परमार्थं मुनिवचनमृषिवाक्यमुक्तं कथितम्। यज्ज्ञात्वा बुद्ध्वा नरः पुरुषस्त्रिकालदर्शी त्रिकालं पश्यति। अतीतानागतवर्तमानकालज्ञो भवतीत्यर्थः।।९८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृता-
वुत्पाताध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥

अथ मयूरचित्रकाध्यायः

अथ मयूरचित्रकं व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रदर्शनार्थमाह—

दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ मया फलं शस्तमशोभनं च ।
प्रायेण चारेषु समागमेषु युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण ॥१॥

भूयो वराहमिहिरस्य न युक्तमेतत्
कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः ।
तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदमुक्तफलानुगीति
यद्बर्हिचित्रकमिति प्रथितं वराङ्गम् ॥२॥

स्वरूपमेव तस्य तत्प्रकीर्तितानुकीर्तनम् ।
ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथाऽपि मेऽत्र वाच्यता ॥३॥

पहले चार (चन्द्रग्रह समागम), युद्ध, मार्ग (शुक्रचार) और आदि (मण्डल) में दिव्य तथा आन्तरिक्ष के आश्रयवश शुभाशुभ फल विस्तारपूर्वक मैंने (वराहमिहिर ने) कहे हैं; फिर उसी फलप्रसङ्ग को लेकर यहाँ कहना संक्षेप करने वाले वराहमिहिर के लिये ठीक नहीं है; क्योंकि विस्तार करना उनका दोष है। पर यहाँ पुनरुक्त दोष है, ऐसा पण्डितों को नहीं कहना चाहिये। यतः यह बर्हिचित्रक नामक प्रकरण संहिता का प्रसिद्ध अङ्ग है। पुनरुक्त फल होने से ही इस मयूरचित्रक का निश्चित स्वरूप ज्ञान होगा अर्थात् पूर्व फल-कथन के अतिरिक्त पुनः यहाँ पर मयूरचित्रक का सम्बन्ध लेकर उसी फल का वर्णन कर देना ही उसका स्वरूप है; अतः फिर नहीं कहने से भी मेरी निन्दा होगी।।१-३।।

मया आदौ प्रथमं दिव्यान्तरिक्षाश्रयं फलम्। ग्रहाश्च नक्षत्राण्याश्रयो यस्य तद्दिव्यम्। उल्कानिर्घातपवनपरिवेषगन्धर्वनगरेन्द्रचापाद्याश्रयो यस्य तदान्तरिक्षम्। तच्च शस्तं शुभम-शोभनं चाशस्तं प्रायेण बाहुल्येन चारेषु समागमेषु चन्द्रग्रहसंयोगेषु। युद्धेषु। मार्गादिषु मार्गेषु शुक्रचारोक्तेषु। आदिग्रहणान्मण्डलेषु सर्वं विस्तरेणोक्तं कथितम्।

एतत्सर्वं पूर्वोक्तं भूयः पुनर्वराहमिहिरस्य वक्तुं न युक्तं नोपपन्नम्। यतोऽसौ वराहमिहिरः समासकृदिति संक्षेपकृदिति तस्य वराहमिहिरस्य दोषो व्यासकृतः। पुनरुक्तं कर्तुं न युज्यते। यस्माद्यतो बर्हिचित्रकं मयूरचित्रकं वराङ्गं संहितायाः प्रधानमङ्गं प्रथितं प्रसिद्धम्। अतोऽत्रोक्त-फलानुगीति तज्ज्ञैर्न वाच्यम्। उक्तानां कथितानां फलानामनुगीति पुनः कीर्तनं पण्डितैर्न वक्तव्यम्।

स्वरूपमेवेति । तस्य मयूरचित्रकस्य च तदेव स्वरूपं चरितं यत्प्रकीर्तितानामनुकीर्तनं

पुनःकरणम्। अहं यदीदं मयूरचित्रकं न ब्रवीमि न वच्मि तथाऽप्यत्र मे वाच्यता भवति, यथा किमिति वराहमिहिरेण नोक्तम्।।१-३।।

तदत्र ग्रहणचारोक्तफलमाह—

उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः क्षेमसुभिक्षशिवाय समस्ताः ।
दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः क्षुद्भयतस्करमृत्युकरास्ते ।।४।।

यदि प्रकाशयुत होकर ग्रह उत्तर वीथियों (नाग, गज और ऐरावतसंज्ञक वीथी) में गमन करें तो क्षेम, सुभिक्ष और कल्याण के लिये होते हैं। यदि प्रकाशहीन होकर दक्षिण मार्ग (मृग, अज और दहनसंज्ञक वीथी) में गमन करें तो दुर्भिक्ष, चोरभय और मृत्यु को करते हैं।।४।।

उत्तरवीथयो नागगजैरावताः तासु सर्व एव भौमादयस्ताराग्रहा गता ये च द्युतिमन्तस्तेजस्विनः क्षेमसुभिक्षशिवाय भवन्ति। तथा त एव ग्रहा दक्षिणमार्गगता मृगाजदहनाख्यासु वीथिषु स्थिताः। द्युतिहीनाः कान्तिरहिताः। क्षुद्भयतस्करमृत्युकराः, क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्, तस्करांश्चौरान्, मृत्युं मरणं च कुर्वन्ति। अर्थादेव मध्यवीथिषु गता मध्यफलाः। तथा च गर्गः—

वर्णवन्तः स्वमार्गस्था नागवीथीविचारिणः।
यदि ताराग्रहाः सन्ति सर्वलोकहितावहाः।।
वैश्वानरपथप्राप्ता एकनक्षत्रचारिणः।
पञ्च ताराग्रहाश्चेत् स्युर्विन्द्याल्लोकस्य संक्षयम्।। इति।।४।।

अन्यदप्याह—

कोष्ठागारगते भृगुपुत्रे पुष्यस्थे च गिराम्प्रभविष्णौ ।
निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः संहृष्टाश्च जना गतरोगाः ।।५।।

यदि कोष्ठागार (मघा नक्षत्र) में शुक्र और पुष्य नक्षत्र में बृहस्पति स्थित हो तो राजा लोग पारस्परिक द्वेषरहित और सुखी होते हैं तथा प्रजागण प्रसन्न और रोगरहित होते हैं।।५।।

कोष्ठागारं मघा तत्र गते तत्रस्थे भृगुपुत्रे शुक्रे गिराम्प्रभविष्णौ वाचां स्वामिनि बृहस्पतौ पुष्यस्थे च क्षितिपा राजानो निर्वैरा विगतद्वेषाः सुखभाजश्च भवन्ति। तथा जना लोकाः संहृष्टाः प्रमुदिता गतरोगाः स्वस्थदेहाश्च भवन्ति। तथा च गर्गः—

कोष्ठागारगते शुक्रे पुष्यस्थे च बृहस्पतौ।
विन्द्यात्तदा सुखं लोके शान्तशस्त्रमनामयम्।। इति ।।५।।

अन्यदप्याह—

पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव वा ।
प्रोज्झ्य सूर्यमपरे ग्रहास्तदा पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ।।६।।

यदि सूर्य को छोड़ कर अन्य (चन्द्रादि) ग्रह कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवणा या ज्येष्ठा नक्षत्र को पीड़ित (दक्षिण मार्ग में गमन या योगतारा के भेदन से पीड़ित) करते हों तो अन्याय से पश्चिम दिशा पीड़ित होती है।।६।।

सूर्यमादित्यं प्रोज्झ्य वर्जयित्वा अपरे सर्वे चन्द्रादयो ग्रहा यदा कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवणम्, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, एतानि नक्षत्राणि पीडयन्ति दक्षिणमार्गगमनेन योगतारकाच्छादनेन भेदनेन वा। तदा पश्चिमा दिग् अपराशा अनयेनानीत्या पीड्यते। तथा च गर्गेणोच्यते—

वैष्णवं पित्रमाग्नेयं ज्येष्ठामपि च रोहिणीम्।
पीडयन्ति यदैतानि राहुषष्ठानुचारिणः।।
दुर्भिक्षं जायते लोके सस्यमत्र न रोहति।
शुष्यन्ति सरितः सर्वाः पर्जन्यश्च न वर्षति।। इति।।६।।

अन्यदप्याह—

प्राच्यां चेद् ध्वजवदवस्थिता दिनान्ते
प्राच्यानां भवति हि विग्रहो नृपाणाम्।
मध्ये चेद् भवति हि मध्यदेशपीडा
रूक्षैस्तैर्न तु रुचिमन्मयूखवद्भिः ।।७।।

यदि सन्ध्या समय में चन्द्र आदि ग्रह ध्वज की तरह पूर्व दिशा में दिखाई दें तो पूर्व दिशा में स्थित राजाओं में परस्पर विग्रह होता है तथा आकाश-मध्य में स्थित हों तो मध्य देश में पीडा होती है। पर इन चन्द्र आदि ग्रहों के रूखे रहने पर ही यह फल प्राप्त होता है। यदि निर्मल सुन्दर किरण वाले हों तो नहीं अर्थात् पूर्व दिशा या मध्य देश को पीड़ित नहीं करते हैं।।७।।

एत एव चन्द्रादयो ग्रहा दिनान्ते अस्तमयकाले प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि ध्वजवत्पताकासंस्थानेनावस्थिता यदि भवन्ति, तदा प्राच्यानां प्राग्देशवर्तिनां नृपाणां राज्ञां विग्रहो भवति परस्परं द्वेषः। अथ यदि मध्ये नभोमध्ये ध्वजवदवस्थिता भवन्ति, तदा मध्यदेशपीडा भवति। किं सर्वदा? न, इत्याह—**रूक्षैस्तैः**। तैर्ग्रहै रूक्षैः कलुषैः स्वल्पविम्बैर्यदुक्तं तदेव भवति प्राच्यानां नृपाणां विग्रहस्तथा मध्यदेशपीडा, न तु रुचिमन्मयूखवद्भिः, रुचिमद्भिर्दीप्तिमद्भिर्मयूखवद्भिः स्फुटरश्मिवद्भिश्च न भवति।।७।।

अन्यदप्याह—

दक्षिणां ककुभमाश्रितस्तु तैर्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः।
हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ।।८।।

यदि चन्द्र आदि ग्रह दक्षिण दिशा में स्थित हों तो दक्षिण दिशा में मेघों का नाश करते हैं। यदि ये ग्रह अल्प विम्ब वाले और रूक्ष हों तो विग्रह तथा स्थूल बिम्ब वाले किरणयुक्त हों तो शुभ होता है।।८।।

तैर्ग्रहैर्दक्षिणां ककुभं याम्यां दिश।माश्रितैर्दक्षिणापथपयोमुचां दक्षिणस्यां दिशि पयोमुचां मेघानां क्षयो विनाशो भवति। तथा तैरेव दक्षिणां ककुभमाश्रितैर्हीनरूक्षतनुभिः, हीना अल्पा रूक्षा कलुषा तनुः शरीरं येषां तैस्तथाभूतैर्विग्रहैस्तैरेव स्थूलदेहैर्बृहद्बिम्बैः किरणान्वितै रश्मिवद्भिः शुभं तत्रैव वाच्यम्।।८।।

अन्यदप्याह—

उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते तन्नृपतीनाम्।
ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ।।९।।

यदि चन्द्र आदि ग्रह स्पष्ट किरण वाले होकर उत्तर मार्ग में स्थित हों तो उत्तर दिशा में स्थित राजाओं में शान्ति करने वाले होते हैं। यदि अल्प बिम्ब वाले या भस्म के समान वर्ण वाले हों तो उस दिशा में स्थित राजाओं में दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं।।९।।

त एव ग्रहा उत्तरमार्गे उत्तरस्यां दिशि उत्तरवीथिषु व्यवस्थिताः स्पष्टमयूखा विपुलरश्मयः। तन्नृपतीनामुत्तरपथराजानां शान्तिकराः शिवप्रदाः। तथा त एव ग्रहा ह्रस्वशरीराः स्वल्पविम्बा भस्मवर्णा विगतकान्तयः कलुषाश्च तद्देशनृपाणामुत्तरपथराजानां दोषकराः। तथा च गर्गः—

उत्तरोत्तरमार्गस्था रश्मिमालाधरा ग्रहाः।
विष्पन्दन्त इवात्यर्थं जयमाहुरुपस्थितम्।। इति।।९।।

अन्यदप्याह—

नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत्।
आलोकं वा निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ।।१०।।

यदि ग्रह और नक्षत्रों के तारे धूमज्वाला या अग्निकणों से व्याप्त या विना कारण प्रकाशरहित दिखाई दें तो उस देश में (ग्रहभक्ति या कूर्म विभाग में कथित उस ग्रह या नक्षत्र के देश में) स्थित राजा के साथ-साथ सब प्रजाओं का भी नाश होता है।।१०।।

येषां देशानां सम्बन्धिनां कूर्मविभागोक्तानां नक्षत्राणामश्विन्यादीनां यास्तारकास्ताश्च सधूमज्वालाविस्फुलिङ्गा धूमयुक्ता ज्वालायुक्ता वा विस्फुलिङ्गयुक्ता दृश्यन्ते यासु धूमेन ज्वालया विस्फुलिङ्गैरग्निकणैर्व्याप्ताः। केचित् पठन्ति धूमज्वालाविस्फुलिङ्गावृताश्च। अथवा निर्निमित्तं कारणं विना रजोनीहारमेघान्विता आलोकं दर्शनं न यान्ति। देशानां नक्षत्रोक्तानां ग्रहभक्तिकथितानां वा सभूपो नृपतिसहितः सर्वलोको निःशेषो जनो ध्वंसं नाशं याति गच्छति।।१०।।

अन्यदप्याह—

दिवि भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा।
तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुष्प्रभृति ।।११।।

जिस समय आकाश में दो चन्द्रमा दिखाई दें, उस समय शीघ्र ब्राह्मणों की वृद्धि और शुभ होता है। यदि दो सूर्य दिखाई दें तो क्षत्रियों में संग्राम होता है तथा तीन-चार आदि सूर्य दिखाई दें तो संसार का नाश होता है।।११।।

दिव्याकाशे यदा यस्मिन् काले तुहिनांशुयुगं चन्द्रयुग्मं भाति दृश्यते, तदा तस्मिन् काले आशु क्षिप्रं शुभा शोभना अतीवात्यर्थं द्विजानां ब्राह्मणानां वृद्धिर्भवति। तथा अर्कयुगे सूर्ययुग्मे दृष्टे तदनन्तरवर्णस्य ब्राह्मणात् परस्य क्षत्रियाख्यस्य रणः संग्रामो भवति। तथा त्रिषु चतुर्षु पञ्चसु वा सूर्येषु दृष्टेषु जगतो जनस्य प्रलयः संहार इति। तथा च गर्गः—

द्विचन्द्रं गगनं दृष्ट्वा विन्द्याद् ब्रह्मसमुत्थितम्।
द्वौ वा सूर्यौ यदा स्यातां तदा क्षत्रं विरुद्ध्यति।।
दृष्ट्वा त्रिचतुरः सूर्यानुदितान् सर्वतो दिशम्।
शस्त्रेण जनमारेण तद्युगान्तरदर्शनम्।। इति।।११।।

अन्यदप्याह—

मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन्
शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकदः।
भुजङ्गमथ संस्पृशेद् भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं
क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥१२॥

यदि केतु सप्तर्षि मण्डल, अभिजित् नक्षत्र, ध्रुवतारा या ज्येष्ठा नक्षत्र को स्पर्श करे तो मेघों का नाश, अमङ्गल, कर्मों की हानि और शोक देने वाला होता है। यदि आश्लेषा नक्षत्र को स्पर्श करे तो निश्चय ही वृष्टि का नाश और क्षुधा-पिपासा आदि से पीड़ित बालकों को साथ लेकर लोग वहाँ से चल कर नष्ट होते हैं।।१२।।

शिखी केतुर्मुनीन् सप्तर्षीन्। अभिजिदभिजित्तारकं ध्रुवं ध्रुवतारकं मघवत इन्द्रस्य भं ज्येष्ठा। एतानि यदि संस्पृशेत् स्पर्शयति तदा घनानां मेघानां विनाशकृद्विनाशं करोति। कुशलकर्महा कुशलमारोग्यं कर्माणि च यानि क्रियन्ते तानि हन्ति। शोकदः शोकं च ददाति। अथ भुजङ्गमाश्लेषां यदि स्पृशेत्तदा ध्रुवं निश्चितं वृष्टिनाशो भवति, अवृष्टिर्जायते। तथा जनपदो लोको बालाकुलः शिशुभिराकुलीकृतश्चलितश्च क्षयं विनाशं व्रजति गच्छति।।१२।।

अन्यदप्याह—

प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम्।
दुर्भिक्षं कुरुते महदुग्रं मित्राणां च विरोधमवृष्टिम् ॥१३॥

यदि शनि प्राग्द्वार (कृत्तिका आदि सात नक्षत्रों) में विचरण करते हुये वक्री हो जाय तो दुर्भिक्ष, मित्रों में अत्यधिक विरोध और अवृष्टि करता है।।१३।।

यात्रायां यानि प्राग्द्वारिकाणि कृत्तिकाद्यानि सप्त नक्षत्राणि उक्तानि तेषु च सप्तसु

नक्षत्रेषु रविपुत्रः शनैश्चरस्तिष्ठेद्यदा च वक्रं करोति प्रतीपगमनमाश्रयति। तदा महदुग्रमतीव कष्टं दुर्भिक्षं कुरुते। येषु देशेषु भानि नक्षत्राणि तेषु विशेषतः। तथा मित्राणां सुहृदां च परस्परं विरोधं द्वेषमवृष्टिं च करोति। तथा च गर्गः—

विलम्बितगतिः सौरः प्राग्द्वारेषु यदा भवेत्।
महाभयानि चत्वारि विजानीयात् समन्ततः।।
अनावृष्टिभयं घोरं दुर्भिक्षं मित्रविग्रहम्।। इति।।१३।।

अन्यदप्याह—

रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शिखी।
किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ।।१४।।

यदि रोहिणी शकट को शनि, मंगल या केतु भेदन करे तो अधिक क्या कहा जाय, सम्पूर्ण विश्व ही अनिष्ट सागर में पड़ कर नष्ट हो जाता है, अर्थात् उस समय अमंगल ही अमङ्गल चारो तरफ दिखाई देते हैं।।१४।।

अर्कनन्दनः सौरो यदि रोहिणीशकटं भिनत्ति विदारयति रुधिरोऽङ्गारको वा शिखी केतुरथवा, तदा अनिष्टसागरे अनिष्टसमुद्रे अशेषं सर्वं जगद्विश्वं संक्षयं विनाशं याति। किमन्यदपरं वदामि कथयामि यदनिष्टं न भवति। तथा च गर्गः—

रोहिणीशकटं भौमो भिनत्त्यर्कसुतोऽथवा।
केतुर्वा जगतो ब्रूयात् प्रलयं समुपस्थितम्।। इति।।१४।।

अन्यदप्याह—

उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा।
अनुभवति पुराकृतं तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ।।१५।।

जिस समय केतु सदा दिखाई दे या सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल में विचरण करे, उस समय चराचर के साथ सम्पूर्ण जगत् बराबर किये हुये पूर्वार्जित अशुभ फलों का अनुभव करता है।।१५।।

शिखी केतुर्यदा सततं सर्वकालमुदयति दर्शनं गच्छति, अशेषं समग्रं भचक्रं नक्षत्र-मण्डलमेव वा चरति विचरति, तदा सचराचरं जङ्गमस्थावराख्यं जगद्विश्वं पुराकृतमन्य-जन्मार्जितं फलमशुभमनिष्टमनुभवत्युपभुंक्ते इत्यर्थः।।१५।।

अधुना चन्द्रचारोक्तफलमाह—

धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृशः क्षुद्भयकरो
बलोद्योगं चन्द्रः कथयति जयं ज्याऽस्य च यतः।
गवां शृङ्गी गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते
ज्वलन् धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ।।१६।।

यदि चन्द्र धनुषाकार होकर रूक्ष और रक्त वर्ण का दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और सेनाओं में परस्पर युद्ध का भय करता है तथा इस चन्द्र की ज्या जिस तरफ रहती है, उस तरफ के राजाओं की विजय होती है। गौ के शृङ्ग की तरह शृङ्ग हो तो गौ और धान्यों का नाश करता है तथा प्रज्ज्वलित या धूम की तरह दिखाई दे तो राजाओं के मरण के लिये होता है।।१६।।

चन्द्र इन्दुः। धनुःस्थायी चापसंस्थानः। रूक्षः कलुषः। रुधिरसदृशो लोहितवर्ण-स्तथाभूतः। क्षुद्भयकरो दुर्भिक्षभयं करोति। तथा बलानां सैन्यानामुद्योगं युद्धं कथयत्याचष्टे। अस्य चन्द्रमसो यतो यस्यां दिशि ज्या गुणः स्थिता, तत्र ये नृपाः स्थितास्तेषां जयम्। गवां शृङ्गो गोविषाणो गोघ्नो गवां नाशकरः सस्यस्यापि निधनं विनाशं कुरुते। अथ ज्वलन् ज्वालामुद्वहन्। धूमायन् वा धूमं समुद्वहन् वा। नृपते राज्ञो मरणाय मृत्यव एव भवति।।१६।।

अन्यदप्याह—

स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम्।
दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रगुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽतीव चन्द्रः ॥१७॥

यदि स्निग्ध, स्थूल, समान शृङ्ग वाला, विशाल और उन्नत होकर उत्तर तरफ नागवीथी में स्थित चन्द्र शुभ ग्रह से देखा जाता हो और पापग्रह से युत न हो तो मनुष्यों को अतिशय आनन्द देता है।।१७।।

एवंविधश्चन्दः शशी दृष्टोऽतीवात्यर्थं लोकानां जनानामानन्दं तुष्टिं कुरुते। कीदृशः? स्निग्धो निर्मलः, स्थूलो घनः, समशृङ्गस्तुल्यविषाणः, विशालो विस्तीर्णः, तुङ्ग उच्चस्थः, उदगुत्तरशृङ्गः, उत्तरशृङ्गोन्नत इत्यर्थः। नागवीथ्याम् 'नागा तु पवनयाम्यानलानि'त्युक्ता तस्यां विचरंस्तिष्ठन् सौम्यैः शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैर्दृष्टो विलोकितः। अशुभैः पापैरादित्य-भौमसौरैर्विप्रयुक्तो विरहितः।।१७।।

अन्यदप्याह—

पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्कः।
दक्षिणेन न शुभः शुभकृत्स्याद्यद्युदक्चरति मध्यगतो वा ॥१८॥

यदि चन्द्रमा मघा, अनुराधा, ज्येष्ठा, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में जाकर दक्षिण मार्ग में होकर गमन करे तो अशुभ और उत्तर मार्ग या मध्य में होकर गमन करे तो शुभ करने वाला होता है।।१८।।

पित्र्यं मघा। मैत्रमनुराधा। पुरुहूतो ज्येष्ठा। विशाखा। त्वाष्ट्रं चित्रा। एतानि नक्षत्राणि शशाङ्कश्चन्द्रः समेत्य प्राप्य दक्षिणेन याम्येन भागेन यदि युनक्ति संयोगं करोति, तदा न शुभोऽनिष्टफलदः। यद्युदगुत्तरेण चरति गच्छति प्रागुक्तेषु नक्षत्रेषु मध्यगतो वा मध्येन गच्छति, तदा शुभकृच्छुभफलं करोति।।१८।।

अथ परिघपरिधिदण्डामोघरश्मिरोहितैरावतानां लक्षणमाह—

परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा।
परिधिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥१९॥

उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते।
सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥२०॥

सूर्य के उदय या अस्त समय में तिरछी मेघ की रेखा 'परिघ' संज्ञक, प्रतिसूर्य 'परिधि' संज्ञक और स्पष्ट इन्द्रधनुष के समान रेखा 'दण्ड' संज्ञक होंती है तथा उदय या अस्त समय में सूर्य के लम्बे किरण 'अमोघ' संज्ञक, स्पष्ट इन्द्रधनुष के खण्ड 'रोहित' संज्ञक और लम्बे सीधे इन्द्रधनुष 'ऐरावत' संज्ञक होते हैं।।१९-२०।।

भास्करस्यादित्यस्योदये अस्तमये वा तिर्यग् या स्थिता मेघरेखा भवति, स परिघ इति परिघसंज्ञः। तथा प्रतिसूर्यः परिधिसंज्ञः। इन्द्रचापनिभः शक्रधनुःसदृशः ऋजुः स्पष्टो दण्डसंज्ञः।

उदयेऽस्ते वेति। भानोरादित्यस्योदयेऽस्तमये वा ये दीर्घा आयामिनो रश्मयः किरणास्ते त्वमोघाख्या अमोघसंज्ञाः। सुरचापखण्डमिन्द्रधनुःखण्डं यदृजु स्पष्टं तद्रोहितसंज्ञम्। तदेव यदि दीर्घं भवति तदैरावतसंज्ञं ज्ञेयम्।।१९-२०।।

अथ सन्ध्यालक्षणमाह—

अर्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्।
तेजःपरिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयो यावत् ॥२१॥

तस्मिन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम्।
सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्यो वर्षं भयं रूक्षैः ॥२२॥

अर्धास्त सूर्यबिम्ब के अनन्तर स्पष्ट रूप से ताराओं को दिखाई देने तक पश्चिमा सन्ध्या और ताराओं के प्रकाशहानि के समय से अर्धोदित सूर्यबिम्ब काल तक प्राक् सन्ध्या होती है। इस सन्ध्या समय में वक्ष्यमाण चिह्नों के द्वारा शुभाशुभ फल कहना चाहिये, जैसे कि समस्त आकाशस्थित बिम्बगण स्निग्ध हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय उत्पन्न होता है।।२१-२२।।

भानोरादित्यस्यार्धास्तमयादारभ्य यावत्तारका नभसि न व्यक्तीभूता न परिस्फुटाः, तावदपरा सन्ध्या। तथा तारकाणां तेजःपरिहानिमुखादीप्तिनिवृत्तेरारभ्य यावद् भानोरर्कस्यार्धोदयस्तावत् पूर्वा सन्ध्या।

तस्मिन् यथोद्दिष्टे सन्ध्यासमये एतैः प्रागुक्तैश्चिह्नैर्वक्ष्यमाणैश्च शुभाशुभं फलं वाच्यं वक्तव्यम्। एतैस्तथा वक्ष्यमाणैश्च चिह्नैः सर्वैः स्निग्धैः सस्नेहैः सद्यस्तस्मिन्नहनि वर्षं ज्ञेयम्। तस्मिन्नेवाहनि वर्षति। तैरेव रूक्षैः सद्यो भयमिति।।२१-२२।।

अथ वृष्टिज्ञानमाह—

अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः
स्निग्धा दीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा।
स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदा
वृष्टिः स्याद्यदि वाऽर्कमस्तसमये मेघो महान् छादयेत् ॥२३॥

अखण्डित परिघ, निर्मल आकाश, सूर्य की श्याम वर्ण किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेत वर्ण के इन्द्रधनुष, पूर्वोत्तरा विद्युत् और स्निग्ध या सूर्य के किरणों से व्याप्त मेघवृक्ष हो तो वर्षा होती है अथवा यदि सायंकाल में बहुत बड़ा मेघ सूर्यबिम्ब को आच्छादित करे तो भी वृष्टि होती है।।२३।।

परिघोऽच्छिन्नोऽखण्डः। सकल इत्यर्थः। वियदाकाशं विमलं निर्मलम्। रवेरादित्यस्य मयूखा रश्मयः श्यामाः श्यामवर्णाः। ते च मेघाख्याः। तथा दीधितयः सामान्यरश्मयो येऽन्ये अमोघवर्जितास्ते स्निग्धाः। सुरधनुरिन्द्रचापं सितं श्वेतम्। पूर्वोत्तरा चैशानी विद्युत्तडिद् दृश्यते। मेघतरुर्मेघ एव वृक्षाकारः, स च स्निग्धो निर्मलः। अथवा सर्व एव मेघतरुर्दिवाकरकरैः सूर्यरश्मिभिरालिङ्गितो व्याप्तः समन्ततस्तदा वृष्टिर्वर्षणं स्याद् भवेत्। यदि वाऽस्तसमये सूर्यास्तमयवेलायामर्कं रविं महान् मेघो बृहद् घनः छादयेत् स्थगयेत्तथापि वृष्टिः स्यात्।।२३।।

अधुनार्कचारोक्तं फलमाह—

खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्धः।
यस्मिन् देशे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो राज्ञः ॥२४॥

जिस देश में खण्डित, कुटिल, कृष्ण, स्वल्प, काक आदि पक्षियों के चिह्नों से व्याप्त या रूक्ष सूर्यविम्ब दिखाई दे तो प्रायः उस देश के राजा का नाश होता है।।२४।।

अर्क आदित्यो यस्मिंन् देशे खण्डोऽसकलः। वक्रः कुटिलो दीर्घश्च। कृष्णोऽसितवर्णः। ह्रस्वः स्वल्पविम्बः। अथवा काकाद्यैश्चिह्नैर्विद्धः। आदिग्रहणाद् ध्वांक्षकबन्धप्रहरणा ग्रहीतव्याः। तैर्विद्धः। तथा रूक्षो न निर्मलः। एवंविधो दृश्यते। तस्मिन् देशे यो राजा तस्य राज्ञः प्रायो बाहुल्येनाभावो विनाश इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

खण्डो वा कृष्णवर्णो वा ह्रस्वः पिङ्गलकोऽथवा।
यत्रार्को दृश्यते तत्र राज्ञो मृत्युं विनिर्दिशेत्।। इति।।२४।।

अथ युद्धकाले जयपराजयज्ञानमाह—

वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक् खगगणो युयुत्सतः।
यस्य तस्य बलविद्रवो महानग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥२५॥

युद्ध की इच्छा करने वाले जिस राजा की सेनाओं के पीछे होकर मांस खाने वाले पक्षीसमूह गमन करें, उस राजा की सेनाओं को युद्ध से भागना पड़ता है एवं यदि पक्षी

गण सेनाओं के आगे होकर गमन करें तो विजय होती है।।२५।।

यस्य राज्ञो युयुत्सतो योद्धुमिच्छतो वाहिनीं सेनां मांसभुगामिषादः खगगणः पक्षि-समूहः पृष्ठतः पश्चात् समुपयाति गच्छति तस्य महानतीव बलविद्रवः सेनापलायनं भवति। अग्रगैषः पुरोगैर्विहङ्गमैः पाक्षिभिर्विजयो भवति।।२५।।

अथ गन्धर्वपुरलक्षणमाह—

भानोरुदये यदि वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी।
विम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः प्राप्तं समरं सभयं प्रवदेत्॥२६॥

सूर्य के उदय या अस्त समय में पताकायुत गन्धर्व नगर की प्रतिमा सूर्यबिम्ब को छादित करे तो राजा को भयङ्कर युद्ध की प्राप्ति होगी—ऐसा कहना चाहिये।।२६।।

भानोरादित्यस्योदये अस्तमये वा यदि गन्धर्वपुरप्रतिमा गन्धर्वनगरतुल्या ध्वजिनी सेना यदा विम्बं मण्डलं निरुणद्धि छादयति, तदा नृपते राज्ञः समरं संग्रामं सभयं भय-सहितं प्राप्तमायातमिति प्रवदेद् ब्रूयात्। तथा च गर्गः—

आदित्ये सरथा सेना सन्ध्याकाले यदा भवेत्।
प्रत्यासन्नं विजानीयाद् भूमिपस्य पराजयम्।। इति।।२६।।

अथ सन्ध्यालक्षणमाह—

शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा सन्ध्या स्निग्धा मृदुपवना च।
पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा॥२७॥

यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के विरुद्ध दिशा में मुख करके पक्षीगण और जङ्गली पशु-गण मधुर शब्द करें तथा निर्मल थोड़ी वायु चले तो शुभ होता है। यदि धूलियों से व्याप्त, रूक्ष और लोहित वर्ण की सन्ध्या दिखाई दे तो देशों का नाश होता है।।२७।।

सन्ध्या शान्तैरनर्काभिमुखैर्मधुरस्वरैर्द्विजैः पक्षिभिर्मृगैरारण्यपशुभिश्च घुष्टा कृतशब्दा शस्ता शुभदा, तथा स्निग्धा निर्मला, मृदुपवना अल्पवाता च शस्ता, पांशुध्वस्ता रजसा कलुषीकृता, रूक्षा निःस्नेहा, रुधिरनिभा वा लोहितवर्णा जनपदानां नाशं संक्षयं धत्ते ददाति।।२७।।

अथात्मनः पेशलत्वं प्रदर्शयितुमाह—

यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिस्तदस्मिन्
सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम्।
श्रुत्वाऽपि कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति
यत्तत् स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम्॥२८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूरचित्रकाध्यायः सप्तचत्वारिंशः॥४७॥

गर्ग आदि मुनियों ने विस्तारपूर्वक जिन विषयों को कहा है, पुनरुक्त दोष रहते उन सब विषयों को इस मयूरचित्र नामक अध्याय में मैंने कहा है। इतने पर भी यदि दुर्जन गण बोलते ही रहें तो मेरी क्या हानि है? क्योंकि कोयल के शब्द सुनकर भी जो काक शब्द करता है, वह स्वाभाविक शब्द होता है, न कि कोयल को जीतने की इच्छा से।।२८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां मयूरचित्रका-
ध्यायः सप्तचत्वारिंशः ॥४७॥

मुनिभिर्गर्गादिभिर्यन्मयूरचित्रकं विस्तरेण व्यासेन कथितमुक्तं तत्सर्वमस्मिन् मयूरचित्रके मया पुनरुक्तवर्जं निगदितमुक्तम्। आदौ तावन्मयूरचित्रकं पुनरुक्तं तत्रापि मुनिभिः पुनरुक्तं कृतं तन्मया नोक्तम्। यद्यप्येवं तथापि कोकिलस्य परभृतस्य रुतं शब्दितं श्रुत्वा आकर्ण्य बलिभुक्काकस्तदनुसारेण विरौति यत्तदस्य काकस्य स्वभावकृतं प्राकृतं प्रकृतिभवमेवायाति, न पिकं कोकिलं जेतुं शक्नोति। अनेनात्मनः पेशलत्वं प्रदर्शितं भवति।।२८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ मयूरचित्रकं
नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथ पुष्यस्नानाध्यायः

अथ पुष्यस्नानं व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

मूलं मनुजाधिपतिः प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात्।
अशुभं शुभं च लोके भवति यतोऽतो नृपतिचिन्ता ।।१।।

इस संसार में प्रजारूप वृक्ष का मूल स्वरूप राजा है। यतः उस राजा का विघात होने से प्रजाओं का अशुभ और संस्कार से शुभ होता है; अतः राजा के शुभवृद्धि के लिये चिन्ता करनी चाहिये।।१।।

प्रजातरोः प्रजावृक्षस्य मनुजाधिपतिः राजा मूलं यथा वृक्षस्य शाखिनो मूलवर्धने वृद्धिः सर्वत्रावयवेषु भवति। एवं राजनि विवृद्धे प्रजाः सुस्थिताः। तदुपघातात्तस्य प्रजातरोर्मूलविघाताद्विनाशो जनपदस्यानिष्टमशुभं भवति। तत्संस्काराच्छुभमिष्टं भवति। वृक्षवद्यतो यस्मादतोऽस्माद्धेतोर्नृपतिचिन्ता राज्ञः शुभवृद्ध्यर्थे चिन्ता कार्या। यत्नो विधेय इति। यतो मूलात् फलसम्भवः फलसम्भवात् प्रजावृद्धिस्तदुपजीवनात्।।१।।

अत्राऽऽगमप्रर्दनार्थमाह—

या व्याख्याता शान्तिः स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे।
तां प्राप्य वृद्धगर्गः प्राह यथा भागुरेः शृणुत ।।२।।

जो शान्ति इन्द्र के लिये ब्रह्माजी ने बृहस्पति से कही थी, उसी को पाकर वृद्धगर्गाचार्य ने भागुरि से जिस तरह कही, उसी तरह उस शान्ति को सुनो।।२।।

या शान्तिः स्वयम्भुवा ब्रह्मणा महेन्द्रस्य सुराधिपस्यार्थे सुरगुरोर्बृहस्पतेर्व्याख्याता कथिता तां शान्तिं वृद्धगर्गः प्राप्य लब्ध्वा यथा येन प्रकारेण भागुरेर्मुनिप्रधानस्य शिष्यस्य प्राहोक्तवान् तथा तां शान्तिं शृणुताऽऽकर्णयत। तथा च वृद्धगर्गः—

देवाश्चादितिजैः सार्धं स्पर्धमाना हि मानिनः।
परस्परं महद्युद्धं चक्रुः सर्वे सुरासुराः।।
ततो दैत्यगणैः क्रुद्धैर्देवाः सर्वे विनिर्जिताः।
ततोऽङ्गिराः सुरगुरुर्ध्यानसक्तोऽभवत्पुरा।।
पुरन्दराभिषेकार्थं बृहस्पतिरकल्पयत्।
तिष्यमात्मीयनक्षत्रं यस्य देवो बृहस्पतिः।।
तेन चैवाभिषिक्तश्च देवराजः पुरन्दरः।
ततो बलसमारूढो नाशयामास दानवान्।।
देवाश्च हृष्टमनसः पुरीं प्राप्यामरावतीम्।
पुष्यस्नानं बलतरं तदारभ्य प्रवर्तितम्।। इति।।२।।

अथ पुष्यस्नानविधिमाह—

पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं दैववित्पुरोधाभ्याम्।
नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥३॥

ज्यौतिषि और पुरोहित के द्वारा राजा को पुष्य स्नान कराना चाहिये। इससे अधिक पवित्र और सभी उत्पातों को नाश करने वाला दूसरा कोई उपाय नहीं है।।३।।

नृपते राज्ञः पुष्यस्नानं पुष्येण नक्षत्रेण स्नपनम्। दैववित्पुरोधाभ्याम्। दैववित्सांवत्सरः, पुरोधा आचार्यः, एताभ्यां कर्तव्यम्। अतोऽस्मात् पुष्यस्नानात् परं प्रकृष्टं परमं पवित्रं पावनं तथा सर्वेषां निःशेषाणामुत्पातानामुपसर्गाणामन्तकरं नाशकरमन्यदपरं नास्ति न विद्यते।।३।।

कस्मिन् स्थाने पुष्यस्नानं नृपतिः कुर्यादित्याह—

श्लेष्मातकाक्षकण्टकिकटुतिक्तविगन्धिपादपविहीने ।
कौशिकगृध्रप्रभृतिभिरनिष्टविहगैः परित्यक्ते ॥४॥

तरुणतरुगुल्मवल्लीलताप्रतानान्विते वनोद्देशे ।
निरुपहतपत्रपल्लवमनोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥५॥

श्लेष्मातक (लसौड़ा), अक्ष (बहेड़ा), कण्टक (खैर आदि), कटु, तिक्त (निम्बू आदि) और दुर्गन्धियुत वृक्षों से रहित, उल्लू, गिद्ध आदि अशुभकारक पक्षियों से रहित, नूतन वृक्ष, गुल्मलताओं के समुदाय से युत, पत्र, पल्लव, सुन्दर, मधुर (स्वादुयुत) वृक्षों के समूह से युत वन के समीप में राजा को पुष्य स्नान करना चाहिये।।४-५।।

एवंविधे वनोद्देशे वनभूमौ पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशे? **श्लेष्मातकेति**। श्लेष्मातको वृक्षविशेषः। अक्षो विभीतकः। कण्टकिनः सकण्टका वृक्षाः खदिरप्रभृतयः कटुस्तीक्ष्णो निम्बो वा। तिक्तास्तिक्तस्वादा निम्बाद्याः। विगन्धिनो विगतगन्धा दुर्गन्धा ये पादपा वृक्षास्तैर्विहीने वर्जिते। तथा कौशिका उलूकाः। गृध्रप्रभृतयो गृध्राद्याः काकाद्याः काककङ्कप्लवश्येनकपोताः। अनिष्टा अप्रशस्ता ये विहगाः पक्षिणस्तैः परित्यक्ते वर्जिते।

तरुणैरभिनवैस्तरुभिर्वृक्षैः। गुल्मैरेकमूलजैः शाखासमूहैः सूक्ष्मैः। वल्लीभिः प्रसिद्धाभिः। लताप्रतानो लतानां समूहो विस्तारस्तेनान्वितः संयुक्तो योऽसौ वनोद्देशस्तस्मिन्। तथा निरुपहतानि निरुपसृष्टानि पत्राणि पर्णानि पल्लवा अभिनवा अङ्कुरा येषां मनोज्ञानां चित्ताह्लादकानां मधुराणां स्वादूनां द्रुमाणां वृक्षाणां प्रायो बाहुल्यं यत्र तत्रेति।।४-५।।

अन्यत्कीदृश इत्याह—

कृकवाकुजीवजीवकशुकशिखिशतपत्रचाषहारीतैः ।
क्रकरचकोरकपिञ्जलवञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥६॥

कुसुमरसपानमत्तद्विरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः ।
विरुते वनोपकण्ठे क्षेत्रागारे शुचावथवा ॥७॥

मुर्गा, तीतर, तोता, मयूर, शतपत्र (कठफोरवा), चाष (नीलकण्ठ), हारीत (हारिल), क्रकर (करील, चकोर, कपिञ्जल, वञ्जुल, कबूतर, श्रीकण्ठ)—इन पक्षियों के शब्दों से युक्त पुष्पों के रसास्वादन से मत्त भ्रमर, श्रेष्ठ कोकिल आदि और अन्य सुन्दर पक्षियों के शब्दों से युत वन के समीप शुद्ध पुण्यभूमि में पुष्यस्नान करना चाहिये।।६-७।।

अथवैदृशे वनोपकण्ठे वनसमीपे पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशे? कृकवाकुः कुक्कुटः। जीवजीवकौ पक्षिविशेषौ प्रसिद्धौ। शुकः कीरः। शिखी मयूरः। शतपत्रो दार्वाघाटः पक्षी। चाषहारीतावपि पक्षिविशेषौ। एतैर्विरुते कृतशब्दे। तथा क्रकरः। चकोरः। कपिञ्जलः। वञ्जुलः। पारावतः। श्रीकः श्रीकण्ठः। एतैरपि पक्षिविशेषैर्विरुते।

तथा कुसुमानां पुष्पाणां रसपानेन रसास्वादनेन ये मत्ताः प्रहृष्टा द्विरेफा भ्रमराः। तथान्ये वा ये पुंस्कोकिलादयः। पुंस्कोकिलः प्रधानकोकिकः। आदिग्रहणाच्चक्रवाकसारसहंसा गृह्यन्ते। तैरपि विरुते। अथवा शुचौ शुद्धे क्षेत्रागारे क्षेत्रे पुण्यस्थाने यदागारं गृहं तत्र। क्षेत्रागारमपि कदाचिद्रुधिरमेध्यसम्पर्कान्न शुचि भवत्यत उक्तं क्षेत्रागारे शुचाविति।।६-७।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने पुष्यस्नानं कुर्यादित्याह—

ह्रदिनीविलासिनीनां जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु।
पुलिनजघनेषु कुर्याद् दृङ्मनसोः प्रीतिजननेषु ।।८।।

जलचर पक्षी रूप नखों से क्षत, दृष्टि और मन को आनन्ददायक नदी रूप कामिनियों के तटरूप सुन्दर जंघाओं पर (सुन्दर नदीतट पर) पुष्यस्नान करना चाहिये।।८।।

ह्रदिन्यो नद्यस्ता एव विलासिन्यो वारयोषितस्तासां यानि पुलिनानि तीराणि तान्येव जघनानि नितम्बप्रदेशास्तेषु कुर्यात्। कीदृशेषु? जलखगनखविक्षतेषु, जलखगा उदकचराः पक्षिणस्तैर्नखविक्षतेषु करप्रहतेषु, तथा रम्येषु रमणीयेषु, दृङ्मनसोः प्रीतिजननेषु, दृशोश्चक्षुषोः, मनसश्चित्तस्य यानि प्रीतिं तुष्टिं जनयन्त्युत्पादयन्ति तथाभूतेषु। अत एव विलासिनीनां जघनेषु सादृश्यम्।।८।।

अन्यत्कीदृशेषु कुर्यादित्याह—

प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते।
फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ।।९।।

उड़ते हुये हंसरूप छत्र वाले कारण्डव, कुरर और सारस पक्षियों के ध्वनिरूप गाने से युत, खिले हुये नीलकमलरूप नेत्रों से युत; अत एव इन्द्र के समान कान्ति वाले सरोवर के तीर पर स्नान करना चाहिये।।९।।

अथवा सरसि कुर्यात्। कीदृशे? सहस्राक्षकान्तिधरे, सहस्राक्ष इन्द्रस्तस्य सम्बन्धिनीं कान्तिं रुचिं यो धारयति विभर्ति तस्मिन्। किम्भूते? प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे, प्रोत्प्लुता उड्डीयमाना ये हंसाः पक्षिविशेषाः, त एव छत्रमातपत्रं यत्र। तथा कारण्डवैः कुररैः सारसैश्च पक्षिविशेषैरुद्गीतं गानं क्रियते यत्र। फुल्लानि विकसितानि इन्दीवराणि नीलोत्पलानि नयनानि नेत्राणि यत्र। अत एव सहस्राक्षस्य सादृश्यम्।।९।।

अन्यत्कीदृशे कुर्यादित्याह—

प्रोत्फुल्लकमलवदना: कलहंसकलप्रभाषिण्य: ।
प्रोत्तुङ्गकुड्मलकुचा यस्मिन्नलिनीविलासिन्य: ॥१०॥

खिले हुए कमलरूप मुख वाली, राजहंस के मधुर शब्दरूप वाक्य वाली और कमल के कली रूप ऊँचे स्तन वाली पुष्करिणी रूप स्त्री के जंघा (तट) पर पुष्य-स्नान करना चाहिये।।१०।।

अथवा यस्मिन् स्थाने नलिनीविलासिन्य: पुष्करिण्य एव विलासिन्य: वारयोषितस्तत्र कुर्यात्। कीदृश:? प्रोत्फुल्लकमलवदना:, प्रोत्फुल्लानि प्रविकसितानि कमलानि यानि पद्मानि तान्येव वदनानि मुखानि यासाम् तथा कलहंसा राजहंसास्तेषां कलं मधुरं यत् क्वणं शब्दस्तदेव प्रभाषणं वचनं यासाम् तथा प्रोत्तुङ्गानि उच्चानि यानि कुड्मलानि कर्णि-कास्तान्येव कुचा: स्तना यासाम्। केचित् प्रोद्बद्धकुड्मलकुचा इति पठन्ति। प्रकर्षेणोद्बद्धानि अतिकठिनानि यानीति। अत एव विलासिनीनां सादृश्यम्।।१०।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने कुर्यादित्याह—

कुर्याद् गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचिते ।
अचिरप्रसूतहुङ्कृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥११॥

गायों के जुगाली करने से गिरे हुये फेन और गोबर खुरों से ताडित जहाँ पर हो तथा उत्पन्न हुए बछड़ों के हुङ्कार और कूदना-फाँदना रूप उत्सवयुत गोष्ठ स्थान में पुष्यस्नान करना चाहिये।।११।।

अथवा गोष्ठे गोस्थाने कुर्यात्। कीदृशे? गोरोमन्थजफेनलवशकृत् खुरक्षतोपचिते गो रोमन्थो गोरोमन्थ:। गवां चर्वितचर्वणम्। तस्माज्जातो योऽसौ फेनलवो लालाबिन्दु:। तथा शकृद्गोमयस्तु खुरै: शफैर्यानि क्षतानि छिद्राणि तैरुपचिते संयुक्ते। तथा अचिरप्रसूता: सद्य एव जाता ये वत्सास्तर्णकास्तेषां हुङ्कृतो हुङ्कारशब्द:। तथा वल्गितं क्रीडितं तदेवोत्सवो महो यत्र।।११।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने कुर्यादित्याह—

अथवा समुद्रतीरे कुशलागतरत्नपोतसम्बाधे ।
घननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥१२॥

अथवा सकुशल आये हुये रत्नयुत नावों से व्याप्त तथा घने निचुल (समुद्रफल) वृक्षों के ऊपर लीन जलचर और सफेद पक्षियों से चित्रित समीप भाग है जिसका, ऐसे समुद्र के तीर में पुष्यस्नान करना चाहिये।।१२।।

अथवा समुद्रतीरे सागरकुले कुर्यात्। कीदृशे? कुशलागतरत्नपोतसम्बाधे, कुशले-नाविघ्नेनाऽऽगता: प्राप्ता ये रत्नानां मणीनां पोतास्तेषां सम्बाध: सङ्कट्टो यत्र। सङ्कट

इत्यर्थः। तथा घनाः सन्तता ये निचुला वृक्षविशेषास्तेषु ये लीनाः श्लिष्टा जलचरा जलप्राणिनः, तथा सिताः श्वेता ये खगाः पक्षिणः, तैः शबलीकृताश्चित्रिता उपान्ताः समीपा यत्र।।१२।।

अन्यत्कीदृशे कुर्यादित्याह—

क्षमया क्रोध इव जितः सिंहो मृग्याभिभूयते येषु।
दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ।।१३।।

अथवा जहाँ पर शान्ति से क्रोध की तरह हरिणियों से सिंह जीत लिया गया हो अर्थात् हरिणी और सिंह साथ-साथ रहते हों तथा अभयदान पाकर पक्षी और मृग के बच्चे निर्भय घूमते हैं, ऐसे मुनियों के आश्रम में पुष्यस्नान करना चाहिये।।१३।।

अथवा आश्रमेषु मुनिनिवासेषु कुर्यात्। कीदृशेषु? येषु सिंहो हरिः, मृग्या एण्या अभिभूयते कृतपरिभवः सम्पाद्यते। कथम्? क्षमया क्रोध इव जितः। यथा क्षमया क्षान्त्या क्रोधः कोपो जितः। तथा खगानां पक्षिणां मृगाणामेणानां च सम्बन्धिनो ये शावकाः पोतकास्तेषु अभया दत्तो येषु। येषु गतेषु हिंसां न कश्चित् करोतीत्यर्थः।।१३।।

अन्यत्कीदृशेषु कुर्यादित्याह—

काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः ।
श्रीमति मृगेक्षणाभिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ।।१४।।

अथवा करधनी, पायजेब और भारी जंघाओं के भार से मन्द गति वाली तथा कोयल की तरह मधुर बोलने वाली मृगनयना स्त्रियों से शोभित गृह में पुष्यस्नान करना चाहिये।

अथवा गृहे वेश्मनि कुर्यात्। कीदृशे? श्रीमति। श्रीर्विद्यते यस्मिन्। तथा एवंविधाभिः स्त्रीभिर्युक्ते? किम्भूताभिः? काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः, काञ्ची मेखला तस्या यः कलापो विस्तारस्तस्योद्वहनेन विघ्नितौ मन्दगामिनौ पादौ चरणौ यासां ताभिः। मृगेक्षणाभिः, हरिणसदृशनेत्राभिः। अन्यभृतवल्गुवचनाभिः, अन्यभृतः कोकिलस्तद्वद्वल्गु रम्यं मधुरं वचनं यासां ताभिर्युक्ते।।१४।।

अन्यत्कीदृशेषु स्थानेषु कुर्यादित्याह—

पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थेषूद्यानरम्यदेशेषु।
पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ।।१५।।

अथवा पवित्र देवस्थान, तीर्थ, जलाशय, उपवन, सुन्दर देश, पूर्व या उत्तर तरफ नीची भूमि पर प्रदक्षिण क्रम से जहाँ जल बहता हो, ऐसे स्थान में पुष्यस्नान कराना चाहिये।।१५।।

पुण्येषु पवित्रेष्वायतनेषु च देवस्थानेषु च कुर्यात्। पुण्येषु तीर्थेषु सलिलाशयेषु। उद्यानेषूपवनेषु। रम्येषु रमणीयेषु देशेषु स्थानेषु। तथा पूर्वोदक्प्लवभूमौ, पूर्वस्यां दिश्युत्त-

रस्यां वा यस्यां भूमौ प्लवो निम्नता। तथा प्रदक्षिणाम्भोवहायाम् प्रादक्षिण्येन यस्यामम्भः पानीयं वहति। तथा च वृद्धगर्गः—

समुद्रतीरे उद्याने नदीनां सङ्गमे शुभे।
महाह्रदेऽथवा तीर्थे देवतायतने तथा।।
सर्वर्तुकुसुमोपेते वने द्विजवरैर्युते।
गृहे रम्ये विविक्ते वा पुष्यस्नानं समाचरेत्।। इति।।१५।।

अथ भूलक्षणमाह—

भस्माङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः ।
श्वाविधमूषकविवरैर्वल्मीकैर्या च सन्त्यक्ता ।।१६।।

धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय ।
सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ।।१७।।

राख, कोयला, हड्डी, ऊषर, भूसी, केश, गड्ढा हो तथा केंकड़ा, बिल में रहने वाला जन्तु, चूहा और दीमक आदि से रहित, अन्तःसार वाली, सुगन्धयुत, निर्मल, मधुर और समभूमि विजय के लिए होती है। सेनाओं के निवास के लिए भी पूर्वोक्त भूमि युक्तिपूर्वक प्रयोग करनी चाहिये।।१६-१७।।

या धात्री भूरेवंविधा तस्यां पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशी? भस्मना भूतिना। अङ्गारैर्दग्धकाष्ठैः। अस्थिभिः। ऊषराः ससिकताश्च ताभिः। तुषैः शालिचर्मभिः। केशैः। श्वभ्रैः खातैः। कर्कटाः प्राणिनो मृगजातयस्तेषामावासा गृहाणि विद्यन्ते येषां तैः सन्त्यक्ता रहिता। तथा श्वाविधैर्विलवासिभिः प्राणिभिः। मूषकविवरैराखुविलैः। वल्मीकैश्च या सन्त्यक्ता वल्मीककृतैर्मृत्स्तूपै रहिता सा शुभा। चशब्दः समुच्चये। न केवलं भस्माङ्गारादिदोषै रहिता यावच्छ्वाविधादिभिर्दोषैश्च रहितेति।

तथा च धात्री घना अन्तःसारा। सुगन्धा शोभनसुरभिः। स्निग्धा सस्नेहा। मधुरा सस्वादा। समा च तुल्या निम्नोन्नतरहिता। एवंविधा विजयाय भवति। न केवलं स्नाने यावत्सेनावासे सैन्यनिवासनेऽप्येषा भूर्यथायोगं यथायुक्ति सैन्यनिवेशे विभागेन योजयितव्या प्रयोज्या ग्राह्येति।।१६-१७।।

अथ तत्र विधानमाह—

निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम् ।
कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं दिशीशाधिपायां वा ।।१८।।

लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् ।
आवाहनमथ मन्त्रस्तस्मिन् मुनिभिः समुद्दिष्टः ।।१९।।

दैवज्ञ, मन्त्री और याजक लोग रात में पुर से निकल कर पूर्वोक्त स्थान के पूर्व, उत्तर

या ईशान कोण में नम्र होकर पुरोहित को खीर, अक्षत, दधि और पुष्पों के द्वारा बलि देनी चाहिये इसके बाद मुनियों द्वारा कथित आवाहन-मन्त्र पढ़ना चाहिये।।१८-१९।।

दैवज्ञः सांवत्सरिकः। अमात्यो मन्त्री। याजकः पुरोधाः। एते दैवज्ञामात्ययाजकाः पुरान्नगरात्रक्तं रात्रौ निष्क्रम्य निर्गत्य प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि कौबेर्यामुत्तरस्यां दिशि ईशाधिपायामैशान्यां दिशि आशायां बलिमुपहारं कुर्युः।

लाजाक्षतेति। प्रयतः संयुतः। प्रणतः प्रह्वः। पुरोहितो लाजाभिरक्षतैर्यवैर्दध्ना क्षीरविकारेण कुसुमैः पुष्पैरावाहनमामन्त्रणं कुर्यात्। तस्मिन्नावाहने मुनिभिर्गर्गादिभिरयं वक्ष्यमाणो मन्त्रः समुद्दिष्ट उक्तः।।१८-१९।।

अधुना तमेवाह—

आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः।
दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चाप्यन्येंऽशभागिनः ।।२०।।

आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः।
श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शान्तिं महीपतेः ।।२१।।

जो देवता इसमें पूजा के इच्छुक हैं, वे दिशा, नाग, ब्राह्मण और अन्य अंश भोगी गण सभी यहाँ आगमन करें। इस तरह पुरोहित सबका आवाहन करके वक्ष्यमाण रूप से प्रार्थनापूर्वक बोले—'आप सब आगामी प्रातःकाल में पूजा पाकर राजा को शान्ति प्रदान करके जायँगे'।।२०-२१।।

सर्वे सुरा ये चात्रास्मिन् पूजाभिलाषिणोऽर्चार्थिनस्ते सर्वः एव निःशेषा आगच्छन्तु आयान्तु। तथा दिश आशाः। नागाः पन्नगाः। द्विजा मुनयः। ये चाप्यन्ये परे चानुकीर्तिताः। अंशभागिनो भागभाजस्ते आयान्तु।

एवमनेन प्रकारेण सर्वानशेषानावाह्य परिमन्त्र्य ततः पश्चादनन्तरं पुरोहित आचार्य एवमनेन प्रकारेण ब्रूयाद्वदेत्। येऽत्र सुरा आगतास्ते श्वः प्रातः पूजामर्चां प्राप्य लब्ध्वा महीपते राज्ञः शान्तिं श्रेयो दत्वा यास्यन्ति गमिष्यन्ति।।२०-२१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते।
सदसत्स्वप्ननिमित्तं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ।।२२।।

आवाहित देवता आदि की पूजा करके सभी (दैवज्ञ, मन्त्री, याजक) वह रात्रि वहीं व्यतीत करें। बाद में रात्रि में जो स्वप्न दिखाई दे, तदनुसार ही शुभाशुभ फल जानना चाहिये, इसको जानने की विधि यात्रा नामक ग्रन्थ में कही गई है।।२२।।

तेष्वावाहितेषु सुरेषु पूजामर्चां विधाय तां शर्वरीं रात्रिं ते दैवज्ञामात्ययाजका वसेयुस्तिष्ठेयुः। किमर्थम्? सदसत्स्वप्ननिमित्तम्, शुभाशुभसन्दर्शनार्थम्। यात्रायां यज्ञेष्वश्वमे-

धीयायां स्वप्नविधिः स्वप्नपरीक्षणविधिरुक्तः कथितः। तथा च यात्रायाम्—

दुकूलमुक्तामणिभृन्नरेन्द्रः समन्त्रिदैवज्ञपुरोहितोऽतः।
स्वदेवतागारमनुप्रविश्य निवेशयेत्तत्र दिगीश्वरार्चाम्।।
अभ्यर्च मन्त्रैस्तु पुरोहितस्तामधश्च तस्यां भुवि संस्कृतायाम्।
दर्भैश्च कृत्वा स्तरमक्षतैस्तां लिखेत् समन्तात्सितसर्षपैश्च।।
ब्राह्मीं सदूर्वामथ नागपुष्पीं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः।
पूजार्घजान् पुष्पफलाभिधानानाशासु दध्याच्चतुरः क्रमेण।।
यज्जाग्रते दूरमुदैति दैवमावर्त्य मन्त्रं प्रयतस्त्रिरेतम्।
लब्ध्वेकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्।।
नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।।
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टानिष्टं समाचक्ष्व स्वप्ने स्वप्नस्य शाश्वतम्।।
इष्टमन्त्रान् ततः स्मृत्वा शिवशक्तिपुरोगमान्।
अभ्यर्थनं ततस्तस्य कृत्वा सुप्रयतो नृपः।।
एकवस्त्रे कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः।
निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।। इति।।२२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान्।
गत्वाऽवनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥२३॥

दूसरे दिन प्रातःकाल उस पृथ्वी प्रदेश में जाकर उक्त गुणों से युत सामान एकत्रित करें। यहाँ पर मुनि (वृद्ध गर्ग) से कथित ये वक्ष्यमाण श्लोक हैं।।२३।।

अपरेऽहनि द्वितीयदिने प्रभाते प्रभातसमये तस्मिन्नेवावनिप्रदेशे भूस्थाने गत्वा यथोक्तगुणान् यथोपयोज्यान् सम्भारानुपहरेत् ढौकयेत्। अत्राप्यस्मिन्नर्थे श्लोका मुनिगीताः, मुनिना महर्षिणा वृद्धगर्गेण गीताः कथिताः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्।।२३।।

तांश्चाह—

तस्मिन् मण्डलमालिख्य कल्पयेत्तत्र मेदिनीम्।
नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥२४॥

पुरोहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् सुरान् पितॄन्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥२५॥

ग्रहांश्च सर्वनक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः।
स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥२६॥

वर्णकैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ।
यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२७॥

भक्ष्यैरन्नैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा ।
पानैश्च विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥२८॥

पूर्वोक्त शुभ लक्षणयुत भूप्रदेश में एक मण्डल बनाकर अनेक प्रकार के रत्नों के समुदाय से युत पृथ्वी की और बहुत तरह के स्थानों की कल्पना करे। बाद में पुरोहित प्राधान्य क्रम से नाग, यक्ष, देव, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि और सिद्धों की स्थापना करे तथा अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ ग्रह, ब्राह्मी आदि माताओं के साथ रुद्र, कार्तिकेय, विष्णु, विशाखा, लोकपाल और देवताओं की स्त्री (इन्द्राणी, गौरी, लक्ष्मी आदि) को मन को प्रसन्न करने वाली सुगन्धियों से युत नाना प्रकार के वर्णों से बना कर विद्वान् सुगन्धित द्रव्य, माला, चन्दन, भोज्यान्न, नाना प्रकार के फल, मूल, मांस, नाना प्रकार के चित्ताह्लादक पान वस्तु, मद्य, दुग्ध, आसव आदि से पूजा करे।।२४-२८।।

तस्मिन् भूप्रदेशे यत्र पुष्यस्नानं क्रियते पूर्वोद्दिष्टलक्षणश्लेष्मातकाक्षकण्टकीत्यादिके मण्डलमालिख्य विरचय्य तस्मिन् स्थाने मेदिनीं भूमिं नानारत्नाकरवतीं नानाप्रकाराणां रत्नानामाकर उत्पत्तिस्थानं तद्विद्यते यस्यां तां तथाभूताम्। बहूनि रत्नानि तत्र स्थापयेदित्यर्थः। तथा विविधानि नानाप्रकाराणि स्थानानि सन्निवेशस्थानानि च कल्पयेत् कारयेत्।

ततः पुरोहित आचार्यो नागान् पन्नगान्। यक्षान् गुह्यकान्। सुरान् देवान्। पितॄन् देवविशेषांश्च यथास्थानं यथाप्राधान्यानुसारेण समालिखेत्। गन्धर्वान् देवयोनीन्। अप्सरसो देवयोषितः। मुनीनृषीन्। सिद्धान् देवयोनींश्च विन्यसेत्।

ग्रहानादित्यादीन् सर्वनक्षत्रैरश्विन्यादिभिः सह। तथा रुद्रान् देवविशेषान् मातृभिर्देवताभिर्ब्राह्म्यादिभिः सह लिखेत्। स्कन्दं कुमारम्। विष्णुं नारायणम्। विशाखं स्कन्दग्रहम्। लोकपाला इन्द्राग्नियमनिर्ऋतिपाशिवायुकुबेरैशानास्तान्। सुरस्त्रियो देवस्त्रियः। यथा इन्द्राणी गौरी लक्ष्मीः।

विविधैर्नानाप्रकारैर्धातुविशेषैः सितरक्तपीतकृष्णव्यामिश्रैः। हृद्यैश्चित्ताह्लादकैर्गन्धगुणान्वितैर्गन्धगुणसंयुक्तैः सुगन्धैरित्यर्थः। तथाभूतैः कृत्वा ततो विद्वान् पण्डितो गन्धैः सुगन्धद्रव्यैर्माल्यैः स्रग्भिरनुलेपनैः समालम्भनैर्यथास्वं पूजयेदर्चयेत्। एतदुक्तं भवति—यो यस्मिन् स्थाने लिखितो वर्णकानुसारेण तं तत्रैव गन्धमाल्यानुलेपनैर्यथार्हैः पूजयेदर्चयेत्।

तथा भक्ष्यैर्विविधैर्नानाकारैर्मोदकलोपिकापूपादिभिः। अन्नैश्च नानाप्रकारैरोदनपायसादिभिः। नानाप्रकारैः फलैः श्रीफलादिभिः। मूलैः प्रसिद्धैः। आमिषैर्मांसैः। विविधैर्नानाप्रकारैर्हृद्यैर्हृदयचोदकैः पानैर्मदकरैः। तथा सुरया मद्येन क्षीरेण दुग्धेन। आसवेन मध्वासवेन। आदिग्रहणाल्लेह्यपेयचोष्यादिभिरन्यैश्च पानविशेषैः पूजयेत्।।२४-२८।।

अतः परं पूजां कथयामीत्याह—

कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन् यथाभिलिखितानाम्।
ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥२९॥

मांसौदनमद्याद्यैः पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः पितरो मांसौदनैश्चापि ॥३०॥

सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः।
अश्लेषकवर्णैस्त्रिमधुरेण चाभ्यर्चयेद् नागान् ॥३१॥

धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च।
गन्धर्वानप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥३२॥

शेषांस्तु सार्ववर्णिकबलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम्।
प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥३३॥

इसके बाद इस यज्ञ में अभीष्ट देवताओं की पूजन-विधि बताते हैं। यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञ प्रकरण में ग्रहों की पूजन विधि जो बताई गई है, उसी तरह यहाँ पर भी ग्रहों की पूजा करनी चाहिये। मांस, भात, मद्य आदि से पिशाच, दैत्य और दानवों की पूजा करनी चाहिये। अभ्यञ्जन (स्निग्ध पदार्थ), कज्जल, तिल, मांस और भात से पितरों की; साम तथा यजुर्वेदों के मन्त्र, सुगन्ध द्रव्य, धूप और मालाओं से मुनियों की; अश्लेषक (अमिश्रित) वर्ण और त्रिमधुर (मधु, घृत और शर्करा) से सर्पों की; धूप, घृत, हवन, माला, रत्न, स्तोत्र और प्रणामों से देवताओं की; सुगन्ध द्रव्य, माला और सुन्दर गन्धों से गन्धर्व तथा अप्सराओं की एवं समस्त वर्णयुत वलियों से शेष (यज्ञ आदि) की पूजा करनी चाहिये। पूजन के बीच-बीच में सबको कुङ्कुम से रक्त किया हुआ सूत्र, वस्त्र, ध्वजा, भूषण और यज्ञोपवीत देना चाहिये।।२९-३३।।

कथयामीति। अतोऽस्मात्परमहमाचार्योऽस्मिन् मण्डले यथाभिलिखितानां विन्यस्तानां पूजामर्चां कथयामि वक्ष्यामि। ग्रहाणामादित्यादीनां यात्रायां ग्रहयज्ञे योऽयं विधिः प्रोक्तः कथितः स एवात्र कर्तव्यः। तद्यथा—

यात्रायां ग्रहयज्ञे तत्रार्चा ताम्रमयसवितुः।
पालाशिकी समिद् वैकङ्कतजाता तथा स्रुक् च।
आकृष्णेति च मन्त्रो रक्ता गन्धाः सहागुरुणा।।
माषाऽतसीतिलाल्वकमुद्गान् चणकान् विहाय भोज्यविधिः।
वकुलार्कागस्त्यपलाशशल्यकीकुसुमपूजा च।।
अष्टशतसस्मितेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणा हिताग्निभ्यः।
देया वृषकनकमही सहस्रकिरणं समुद्दिश्य।। इत्यादि।

मांसौदनमद्याद्यैरिति । पिशाचा देवयोनयः। दितितनया दैत्याः। दानवा दनुपुत्राश्च। मांसेनामिषेणौदनेन भक्तेन मद्येन मधुना न पूज्या अर्चनीयाः। आदिग्रहणात् सुरासवैः। तथा पितरोऽभ्यञ्जनेन स्नेहदानेन। अञ्जनेन तिलतैलाभ्यञ्जनेन कज्जलेन च तिलैर्मांसौदनेन च। एतैः पूज्याः।

सामयजुर्भिरिति । मुनयः ऋषयः सामभिर्यजुर्भिः ऋग्भिश्च। तथा गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः धूपमाल्ययुतैः। धूपैर्गुग्गुलप्रभृतिभिर्माल्यैश्च स्रग्भिः सहितैः। तथा नागान् पन्नगान्। अश्लेषकवर्णैः। यत्र बहूनां वर्णानामश्लेषस्संयोगो नास्ति तैः। तथा त्रिमधुरेण च, मधुना घृतेन शर्करया चेत्यर्थः। एतैः पूजयेत्।

धूपाज्याहुतिमाल्यैरिति । विबुधान् देवान् धूपैराज्येन घृतेनाहुतिभिर्होमैर्माल्यैः स्रग्भिः रत्नैर्मणिभिः स्तुतिभिस्तोत्रैः प्रणामैर्नमस्कारैश्च पूजयेत्। गन्धर्वानप्सरसश्च गन्धैः सुगन्धद्रव्यैर्माल्यैश्च स्रग्भिः पूजयेत्। सुसुगन्धैः शोभनगन्धैः।

शेषान् यक्षान् सार्ववर्णिकबलिभिः पूजयेत्। सार्ववर्णिकैर्बहुवर्णकैश्च बलिभिरुपहारैर्बहुद्रव्यमितैश्च पूजयेत्। सर्वेषां मण्डले यथाभिलिखितानां विरचितानां पूजामर्चां न्यसेत् कारयेत्। तथा प्रतिसरमन्तरान्तरात् कुङ्कुमेन रक्तं सूत्रम्। वस्त्रमम्बरम्। पताका ध्वजः। भूषणमलङ्करणम्। यज्ञोपवीतं सुप्रसिद्धम्। एतानि च सर्वेषां न्यसेत्।।२९-३३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

मण्डलपश्चिमभागे कृत्वाग्निं दक्षिणेऽथवा वेद्याम् ।
आदद्यात् सम्भारान् दर्भान् दीर्घानगर्भांश्च ।।३४।।

मण्डल के पश्चिम या दक्षिण भाग में वेदी बना कर उस पर अग्निस्थापन करके सामग्रियों को एकत्रित करे। लम्बे, अच्छिन्न और गर्भरहित कुशाओं को लावे।।३४।।

मण्डलस्य पश्चिमभागे पश्चिमायां दिशि दक्षिणेऽथवा दक्षिणभागे वेदिं कुर्यात्। वेदीलक्षणमस्माभिः प्रागुक्तं नीराजने। तस्यां वेद्यामग्निं हुताशनं कृत्वा प्रज्वाल्य ततः सम्भारानौपयोगिनादद्यात् ढौकयेत्। दर्भान् दीर्घानच्छिन्नानगर्भान् गर्भरहितांश्चाऽऽहरेत्।।३४।।

अन्यत्किमित्याह—

लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपः ।
गोरोचनाञ्जनतिलाः स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ।।३५।।

सघृतस्य पायसस्य च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः ।
पश्चिमवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा वेदी ।।३६।।

खीर, घृत, अक्षत, दधि, मधु, सरसों, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, धूप, गोरोचन, कज्जल, तिल, स्व ऋतु के उत्पन्न मधुर फल—यह सामग्री है। इस सामग्री में प्रत्येक के साथ-साथ घृत और खीर का शराव (मिट्टी का पात्र) देवे। इनसे वेदी के पश्चिम भाग में

पूजा करे, क्योंकि वह पुष्यस्नान की वेदी होती है।।३५-३६।।

लाजाः प्रसिद्धाः। आज्यं घृतम्। अक्षता यवाः। दधि क्षीरविकारः। मधु माक्षिकम्। सिद्धार्था गौरसर्षपाः। गन्धाः सुगन्धद्रव्याणि। सुमनसः पुष्पाणि। धूपः प्रसिद्धः। गोरोचना गोपित्तसम्भवा। अञ्जनं प्रसिद्धम्। तिलास्तथा। स्वर्तुजानि स्वर्तावात्मीयर्तौ जातानि उत्पन्नानि यानि मधुराणि फलानि।

तथा तस्मिन् मण्डले सघृतस्य घृतसहितस्य च पायसस्य शरावाणि मृन्मयानि पात्राणि सुपरिपूर्णानि दातव्यानि। तैश्च सम्भारैः पूर्वोक्तैः पश्चिमायां वेद्यां पूजां कुर्यात्। यतः सा वेदी स्नातस्य। तस्यां पुष्यस्नानं कार्यमित्यर्थः।।३५-३६।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

तस्याः कोणेषु दृढ़ान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान्।
साक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान् व्यवस्थाप्य ।।३७।।
पुष्यस्नानविमिश्रेणापूर्णानम्भसा सरत्नांश्च।
पुष्यस्नानद्रव्याण्यादद्याद् गर्गगीतानि ।।३८।।

इसके चारों कोणों में दृढ़, सफेद सूत्र से वेष्टित गले वाले, दूध वाले, वृक्ष के पल्लव फलों से ढके चार कलशों को स्थापित करे। उनको पुष्यस्नान की ओषधियों से मिश्रित जल से, रत्नों से और गर्ग महर्षि के द्वारा प्रतिपादित पुष्यस्नान के द्रव्यों से परिपूर्ण करे।।३७-३८।।

तस्या वेद्याः कोणेष्वस्रेषु चतुर्षु दृढ़ानभग्नान् कलशान् घटान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान्। सितेन श्वेतवर्णेन सूत्रेण तन्तुना वेष्टिता ग्रीवा कण्ठो येषां तान्। तथाभूतान् व्यवस्थाप्य स्थापयित्वा। कीदृशान्? सक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान्, सक्षीरा वृक्षा अर्कादयस्तेषां ये पल्लवा अभिनवपत्राणि तथान्यानि च फलानि तान्येव समन्तादपिधानमाच्छादनं येषाम्।

पुनः कीदृशान्? पुष्यस्नानौषधिविमिश्रेणाम्भसा जलेनाऽऽपूर्णान् सुभरितान्। सरत्नान् रत्नसहितांश्च। गर्गगीतानि गर्गमहर्षिणा कथितानि पुष्यस्नानार्थं द्रव्याण्यादद्यात् ढौकयेदिति। तथा च गर्गः—

कलशैर्हैमताम्रैश्च राजतैर्मृन्मयैस्तथा।
सूत्रसंवेष्टितग्रीवैश्चन्दनागुरुचर्चितैः ।।
प्रशस्तवृक्षपत्रैश्च फलपुष्पसमन्वितैः।
पुण्यतोयेन सम्पूर्णै रत्नगर्भैर्मनोहरैः।। इति।।३७-३८।।

अथ पुष्यस्नानद्रव्याण्याह—

ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयामपराजिताम्।
जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गां विजयां तथा ।।३९।।

सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम्।
अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥४०॥

ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनीम्।
मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वौषध्यो रसास्तथा ॥४१॥

रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वं च सविकङ्कतम्।
प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥४२॥

ज्यौतिष्मती (कंगनी = मालकाकणी), त्रायमाणा (चिरायते का फल), अभया (हर्रे = हरीर), अपराजिता (विष्णुक्रान्ता), जीवा (जीवन्ती = डोढी), विश्वेशरी (सोंठ), पाठा (पाढ़ = पाढ़रि), समङ्गा (रक्तमञ्जिष्ठा = पसरन), विजया (भंग), सहा (मुद्गपर्णी = वनमूड़), सहदेवी (सहदेई), पूर्णकोशा (नागरमोथा), शतावरी, अरिष्टिका (रीठा), शिवा (शमी), भद्रा (बला)—इन ओषधियों को पूर्व स्थापित चारो कलशों में डाल दे। ब्राह्मी, क्षेमा (काष्ठगुग्गुल), अजा (औषधिविशेष), सब प्रकार के बीज, काञ्चनी (हलदी = हरदी, 'निशाह्वा काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णनी'त्यमरः), अन्य मङ्गल द्रव्य (दधि, अक्षत, पुष्प आदि)—इन द्रव्यों में जितने की प्राप्ति हो, उतने ही लेना चाहिये। सब ओषधि, सब रस, रत्न, सब सुगन्धद्रव्य, बेल, विकङ्कत (कंटाप = कंघी), प्रशस्त ओषधि (जया, जयन्ती, जीवन्ती, जीवपुत्रिका, पुनर्नवा, विष्णुक्रान्ता, चक्राङ्गा, वाराही और लक्षणा), सुवर्ण आदि धातु, माङ्गलिक ओषधि (गोरोचन, सरसों, दूर्वा, हस्तिमद आदि) सब द्रव्यों को पूर्वस्थापित कलशों में डाल दे।।३९-४२।।

ज्योतिष्मतीं सुसत्रद्धाम्। त्रायमाणां प्रसिद्धाम्। अभयां हरीतकीम्। अपराजितां शमीम्। जीवां जीवन्तीम्। विश्वेश्वरीं पद्मचारिणीम्। पाठां प्रसिद्धाम्। समङ्गां रक्तमञ्जिष्ठाम्। विजयां वचाम्। सहां मुद्गपर्णीम्। सहदेवीं प्रसिद्धाम्। पूर्णकोशां प्रसिद्धाम्। शतावरीं प्रसिद्धामेव। अरिष्टिकां प्रसिद्धाम्। शिवां प्रसिद्धाम्। भद्रां बलाम्। एता ओषधीस्तेषु प्रागुद्दिष्टेषु कुम्भेषु विन्यसेत् क्षिपेत्।

ब्राह्मीं प्रसिद्धाम्। क्षेमां काष्ठगुग्गुलम्। चोरकमिति प्रसिद्धम्। अजां प्रसिद्धाम्। केचिदेडिकाक्षीमिच्छन्ति। सर्वाणि च बीजानि। काञ्चनीं सुप्रसिद्धाम्। अन्यानि मङ्गल्यानि द्रव्याणि दध्यक्षतकुसुमादीनि। यथालाभमेतानि द्रव्याणि यावन्ति प्राप्यन्ते तावन्त्येव ग्राह्याणि नान्येषां विकल्पः। सर्वा ओषधयः। रसाश्च सर्व एव मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः।

रत्नानि मणिविशेषाः। सर्वगन्धाश्च निःशेषसुगन्धद्रव्याणि। बिल्वं फलम्। सविकङ्कतं विकङ्कतफलेन सह। प्रशस्तनाम्न्यो या ओषधयः। यथा—जया। जयन्ती। जीवन्ती। जीवपुत्रिका। पुनर्नवा। विष्णुक्रान्ता। चक्राङ्का। वाराही। लक्षणा। हिरण्यं सुवर्णादयो धातवः। मङ्गलानि च मङ्गलवन्त्यौषधानि। यथा—गोरोचना। सर्षपः। दूर्वाहस्तिमदमिति। एवमादि।।३९-४२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

आदावनडुहश्चर्म जरया संहृतायुषः ।
प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥४३॥

ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् ।
सिंहस्याथ तृतीयं स्याद् व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥४४॥

चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत् ।
शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥४५॥

पहले वृद्ध होकर मरे हुये, प्रशस्त लक्षणों (६१ वें अध्याय में कथित लक्षणों) से युत बैल का चर्म लेकर पूर्वाभिमुख करके बिछावे। इसके बाद लोहित वर्ण वाले योद्धा बैल का छिद्ररहित चर्म बिछावे, बाद में तृतीय सिंह का चर्म और इसके बाद चतुर्थ व्याघ्र का चर्म बिछावे। पुष्य नक्षत्रगत चन्द्र के समय शुभ मुहूर्त में वेदी के ऊपर इन चारो चमड़ों को बिछावे।।४३-४५।।

आदौ प्रथममनडुहो बलीवर्दस्य चर्म। कीदृशस्य? जरया वार्द्धकेन संहृतायुषो मृतस्य। पुनः कीदृशस्य? प्रशस्तलक्षणभृतः, प्रशस्तानि गोलक्षणोक्तानि लक्षणानि विभर्ति धारयति तस्य। ततश्च प्राचीनग्रीवं पूर्वाभिमुखकण्ठमास्तरेत् प्रसारयेत्।

ततोऽनन्तरं योधस्य वृषस्य रोहितं लोहितवर्णं चर्म। अक्षतमच्छिद्रमास्तरेत्। द्वितीयम्। अनन्तरं सिंहस्य चर्म तृतीयं चाऽऽस्तरेत्। ततः परं चतुर्थं व्याघ्रस्य चर्माऽऽस्तरेत्।

एतानि चत्वारि चर्माणि तस्यां प्रागुक्तायां वेद्यामुपास्तरेत्। कस्मिन् काले? निशाकरे चन्द्रे पुष्ययुक्ते पुष्यस्य योगतारकसमीपस्थे, शुभे च मुहूर्ते सम्प्राप्ते।।४३-४५।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

भद्रासनमेकतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम् ।
क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्यं चर्मणामुपरि ॥४६॥

त्रिविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पादाधिकोऽर्धयुक्तश्च ।
माण्डलिकानन्तरजित्समस्तराज्यार्थिनां शुभदः ॥४७॥

चमड़े के ऊपर सोना, चाँदी, ताँबा या दुधैले वृक्ष का बना हुआ सुन्दर आसन बिछावे। इस भद्रासन की ऊँचाई तीन प्रकार (एक हाथ पादाधिक हस्त = तीस अंगुल और डेढ हाथ) की होनी चाहिये। प्रथम माण्डलिक राजा का शुभ करने वाला, द्वितीय विजयेच्छु राजा का हित करने वाला और तृतीय चक्रवर्ती राजा बनने की इच्छा रखने वाले राजा का शुभकारी होता है।।४६-४७।।

कनकं सुवर्णम्। रजतं रूप्यम्। ताम्रं प्रसिद्धम्। एषां कनकरजतताम्राणामेकतमेनान्यतमेन भद्रासनं भद्रपीठं कारितं निर्मितम्। अथवा क्षीरतरवः क्षीरवृक्षा अर्कपिप्पलौ-

दुम्बरादयस्तन्निर्मितं तन्मयम्। तथाभूतं तेषां प्राक्तनानां चर्मणामुपर्युपरि स्थितानामुपरि विन्यस्यं स्थाप्यम्।

त्रिविधस्तस्योच्छ्राय इति। तस्य भद्रासनस्य त्रिविधस्त्रिप्रकार उच्छ्राय औच्च्यम्। हस्त: शयो माण्डलिकानां राज्ञां शुभद: शर्मद:। पादाधिको हस्त:, त्रिंशदङ्गुलानीत्यर्थ:। अनन्तरजितां विजिगीषूणां राज्ञां शुभद:। अर्धयुक्तो हस्त:। सार्धशय: समस्तराज्यार्थिनां राजाधिराजैषिणां राज्ञां शुभद:।।४६-४७।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

अन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वर: सुमना:।
सचिवाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृत: ।।४८।।

उस भद्रासन के मध्य में सुवर्ण देकर मन्त्री, विश्वस्त बन्धु, पुरोहित, दैवज्ञ और शुभ (जयराज, सिंहराज, बन्धुराज, व्याघ्रराज आदि) नामों से युत पुरवासियों के साथ प्रसन्न चित्त होकर राजा बैठे।।४८।।

तत्र तस्मिन् भद्रासने हिरण्यं सुवर्णमन्तर्धायाभ्यन्तरे क्षिप्त्वा नरेश्वरो राजा सुमना: शोभनचित्त:। उपविशेदध्यारोहेत्। सचिवैर्मन्त्रिभि:। आप्तैर्जनैर्विश्वस्तैर्बन्धुभि:। पुरोहितेनाचार्येण। दैवशब्देन दैवज्ञ:। सांवत्सरिक उच्यते। एतैर्वृत: समायुक्त:। तथा अन्यैश्च पौरैर्जनै: कल्याणनामभिर्वृत: परिवृत:। कल्याणनामान: शुभनामान:। यथा—जयराज:, सिंहराज:, बन्धुराज:, व्याघ्रराज: इत्येवमादि।।४८।।

किम्भूतो राजेत्याह—

वन्दिजनपौरविप्रै: प्रघुष्टपुण्याहवेदनिर्घोषै:।
समृदङ्गशङ्खतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हतानिष्ट: ।।४९।।

बन्दिजन, पुरवासी तथा ब्राह्मणों के द्वारा उद्घोषित पुण्याह शब्द, वेदध्वनि, मृदङ्ग, शङ्ख और तुरही के मङ्गल शब्दों से नष्ट हो गया है अनिष्ट जिसका, ऐसा राजा उस आसन पर बैठे।।४९।।

वन्दिनश्चाटुकारिणस्तैर्वन्दिजनै:। तथा पौरैश्च नागरै:। विप्रैर्ब्राह्मणै:। एतै: कीदृशै:? प्रघुष्टपुण्याहवेदनिर्घोषै:। प्रकर्षेण घुष्ट उद्घोषित: पुण्याहशब्दो वेदशब्दश्च यै:। एतै:। तथा समृदङ्गशंखतूर्यैर्मङ्गलशब्दै:, सह मृदङ्गशब्दै:, शङ्खशब्दै:, तूर्यशब्दैर्ये मङ्गलशब्दा वर्तन्ते तैर्हतो विनाशितोऽनिष्टोऽशुभ: शब्दो यस्य स तथोक्त:।।४९।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

अहतक्षौमनिवसनं पुरोहित: कम्बलेन सञ्छाद्य।
कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत् सर्पिषा पूर्णै: ।।५०।।

नवीन रेशमी वस्त्र पहने हुये और कर लिया है बलि और पूजा जिसने, ऐसे राजा को कम्बल से आच्छादित करके पुरोहित घृतपूर्ण कलश से अभिषेक करे।।५०।।

ततः पुरोहितो राजानमभिषिञ्चेत्। कीदृशं राजानम्? अहतक्षौमनिवसनम्, अहतं नवं क्षौमं क्षुभाकृतं निसवनं यस्य। तथा कृतबलिपूजम्, कृतो बलिरुपहारः। पूजा अर्चा च येन तम्। कथमभिषिञ्चेत्? कम्बलेनौर्णिकेन सञ्छाद्य छादयित्वा। कैरभिषिञ्चेत्? कलशैः सर्पिषा पूर्णैः, घृतपरिपूर्णैः कुम्भैरित्यर्थः।।५०।।

तथा कलशप्रमाणमाह—

अष्टावष्टाविंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम्।
अधिकेऽधिके गुणोत्तरमयं च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥५१॥

आठ, अट्ठाईस, एक सौ आठ या आठ सौ कलश का प्रमाण है। अधिक-अधिक प्रमाण के कलश अधिक-अधिक गुण देते हैं। इस घृत के अभिषेक में मुनि (वृद्धगर्ग) के द्वारा प्रतिपादित आगे मन्त्र हैं।।५१।।

अष्टौ कलशाः, अष्टाविंशतिर्वा, अष्टशतमष्टाधिकं शतं वा। एतत्कलशानां परिमाणम्। अधिकेऽधिके कलशपरिमाणे गुणोत्तरं गुणाधिक्यम्। अत्र घृताभिषेके मन्त्रोऽयं मुनिगीतो मुनिना वृद्धगर्गेण उक्तः।।५१।।

तमेवाह—

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।
आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥५२॥

भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतम्।
सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥५३॥

घृत तेज है, घृत प्रकृष्ट पाप का नाश करने वाला है। घृत देवताओं का आहार है। घृत में लोक (भूः आदि) स्थापित हैं, भौम (चराचरोद्भव), आन्तरिक्ष (उल्का, निर्घात, पवन, परिवेश, गन्धर्वपुर, इन्द्रचाप आदि से उत्पन्न), दिव्य (ग्रहनक्षत्रोद्भव) जो पाप तुम्हारे ऊपर आये हों, वे सब घी के स्पर्श से नाश को प्राप्त हों।।५२-५३।।

आज्यं घृतं तदेव तेजः समुद्दिष्टं कथितम्। तथा आज्यं परं प्रकृष्टं पापहरं कल्मषनाशनम्। आज्यं सुराणां देवानामाहारो भोजनम्। आज्ये लोका भूर्लोकादयः प्रतिष्ठिताः स्थापिताः।

ते तव कल्मषं यत्पापं दिव्यं ग्रहनक्षत्रविकारजम्। आन्तरिक्षमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषगन्धर्वपुरपुरन्दरचापादिजातम्। भौमं वा चरस्थिरोद्भवम्। आगतं प्राप्तम्। तत्सर्वमाज्यसंस्पर्शात् घृतसंस्पर्शमात्रादेव प्रणाशं क्षयमुपगच्छतु प्रयातु।।५२-५३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

कम्बलमपनीय ततः पुष्यस्नानाम्बुधिः सफलपुष्पैः।
अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥५४॥

इसके बाद पुरोहित राजा के शरीर पर से कम्बल उतार कर फल-फूलों के साथ पुष्यस्थानीय जल से आगे कथित मन्त्र के द्वारा अभिषेक करे।।५४।।

ततोऽनन्तरं कम्बलमपनीयापास्य। ततः सफलपुष्पैः फलपुष्पसहितैः। पुष्यस्नानाम्बुभिः पुष्यस्नानद्रव्ययुक्तैर्जलैः। पुरोहित आचार्यो मनुजेन्द्रं राजानमनेन मन्त्रेणाभिषिञ्चेदभिषेकं कुर्यादिति।।५४।।

अथ तमेव स्नानमन्त्रमाह—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ।।५५।।

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ।।५६।।

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा।
दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ।।५७।।

देवपत्न्यश्च सा नोक्ता देवमातर एव च।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ।।५८।।

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ।।५९।।

सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः।
एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ।।६०।।

सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ।।६१।।

सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ।।६२।।

सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।।६३।।

भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्दरः ।।६४।।

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।।६५।।

मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेपो विदूरथः।
ऊर्ध्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ।।६६।।

द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजः सहानुजः ।
पर्वतास्तरवो वल्ल्यः पुण्यान्यायतनानि च ॥६७॥

प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥६८॥

अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् ।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्तनाः शुभैः ॥६९॥

तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः ।
यथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥७०॥

सभी देवता तुम्हारा अभिषेक करें—सिद्ध, पुरातन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव), साध्य, वायु के समुदाय, आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, अदिति, देवमाता, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली (दृश्यचन्द्रा), कुहू (अदृश्यचन्द्रा अमावस्या), दनु, सुरसा, विनता, कद्रू, देवपत्नी, देवमाता, दिव्य अप्सरायें—ये सब तुम्हारा अभिषेक करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, अहोरात्र की सन्धि, संवत्सर, सूर्यादि सात ग्रह, कला, काष्ठा, क्षण, लव—ये सब काल के शुभ अवयव तुम्हारा अभिषक करें। ये सब तथा अन्य भी वेदव्रतपरायण, शिष्य और स्त्रियों के साथ तपस्वीगण तुम्हारा अभिषेक करें। विमान पर चलने वाले देवतागण, मनु, समुद्र, नदी, प्रधान नाग, किन्नर, वैखानस, श्रेष्ठ ब्राह्मण, आकाशमार्ग से गमन करने वाले, स्त्रियों के साथ सप्तर्षि गण, सभी ध्रुवस्थान, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भगन्दर, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतप, शुनःशेप, विदूरथ, ऊर्व, संवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन (व्यास), यवक्रीत, भाइयों के साथ देवराज (इन्द्र), पर्वत, वृक्ष, लता, पुण्यगृह, प्रजापति, दिति, गौ, विश्व की मातायें, दिव्य वाहन, चराचर समस्त लोक, अग्नि, पितर, तारा, मेघ, आकाश, दिशा, जल—ये सब तथा अन्य भी पवित्र कीर्ति वाले, सभी उत्पातों का नाश करने वाले, पवित्र जल से जिस तरह प्रसन्न चित्त होकर इन्द्र का अभिषेक किया गया था, उसी तरह तुम्हारा अभिषेक करें।।५५-७०।।

अथ पयोऽभिषेकमन्त्रः सुबोधस्तथापि मन्दबुद्धिव्युत्पादनाय किञ्चिद् व्याख्यायते। सुरा देवास्त्वां नृपमभिषिञ्चन्तु। ये च सिद्धा देवयोनयः। पुरातनाः ब्रह्माद्याः सुराः। साध्याः समरुद्गणाः, मरुतां गणैर्वायुसमूहैः सहिताः। भिषग्वरौ वैद्यप्रधानावश्विनौ। अदिति-र्देवमाता सुरजननी। स्वाहाद्या देवताः। सिनीवाली दृश्यचन्द्रा अमावास्या यस्यां प्रभाते शशी दृश्यते, नष्टक्षपाकरा अमावास्या कुहूः, यस्यां प्रभाते चन्द्रमा न दृश्यते। दनु-प्रभृतयः कश्यपपत्न्यः। देवपत्न्यः सुरदाराः। देवमातरः सुरजनन्यः। एताः सर्वास्त्वाम-

भिषिञ्चन्तु। दिवि भवा दिव्याः। अप्सरसां गणाः समूहाः। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि सप्तविंशतिः। मुहूर्ताः क्षणाः। पक्षाहोरात्राणि। तेषां ये च सन्धयः। संवत्सरा वर्षाणि। दिनेशाः सूर्योदयः सप्तग्रहाः। कलाद्याः कालावयवाः। कालस्याङ्गानि। एत उक्ता अन्ये परे च मुनयः ऋषयो वेदव्रतपरायणा वेदासक्ताः। सशिष्याः शिष्यसहिताः। सदाराः सकलत्राः। तपोधनास्तपःप्रधानाः तपस्विनः। वैमानिका विमानेन ये यान्ति। मनवः। सागरैः समुद्रैः सहिताः। सरितो नद्यः। महाभागाः प्रधानाः। नागाः। किम्पुरुषाः किन्नराः। वैखानसा वैहायसा इति संज्ञाविकृताः। महाभागा द्विजानां मुनीनाम्। सप्तर्षयो मरीच्यादयो मुनयः। इहैव सप्तर्षिचारे उक्ताः। सदाराः सपत्नीकाः ध्रुवस्थानानि ध्रुवप्रदेशाः। दीर्घतपा मुनिविशेषः। द्वैपायनो व्यासः। देवराज इन्द्रः। सहानुजैर्भ्रातृभिः सह। जीमूता मेघाः। खं नभः। दिश आशाः। जलमुदकम्। एते ये उक्तास्तथा अन्येऽपरे बहवः प्रभूताः। पुण्य-सङ्कीर्तनाः। पुण्यं पवित्रं सङ्कीर्तनं येषां ते तथाभूताः। शुभैः पवित्रैः। तोयैर्जलैस्त्वाम-भिषिञ्चन्तु। किम्भूतैः? सर्वोत्पातनिबर्हणैः, सर्वेषामुत्पातानां यानि निबर्हणानि नाशकर्तॄणि तैः। निःशेषानिष्टनिवारणैः। यथा येन प्रकारेणैतैः पूर्वोक्तैर्दैवतामुनिभिः। मुदितमानसैः संहृष्टचित्तैः। मघवानिन्द्रः पूर्वमभिषिक्तस्तथा ते अभिषिञ्चन्त्विति।।५५-७०।।

अथान्यान्मन्त्रानप्याह—

इत्येतैश्चान्यैश्चाप्यथर्वकल्पाहितैः सरुद्रगणैः।
कौष्माण्डमहारौहिणकुबेरहृद्यैः समृद्ध्या च ।।७१।।

इन मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्वकल्प में कथित मन्त्रों से, रुद्रगण ('एकदशानुवाका रुद्राः'), कौष्माण्ड ('षडनुवाका मरुद्गणाः'), महारोहिण और कुबेरहृदय नामक ऋचा से अभिषेक करें।।७१।।

इत्येवंप्रकारैरेतैर्मन्त्रैस्तथान्यैरपरैरप्यथर्वकल्पाहितैरथर्वकल्पनिर्दिष्टैः। सरुद्रगणै रुद्रगणसहितैः। एकादशानुवाका रुद्राः। कौष्माण्डैः, षडनुवाकाः कौष्माण्डाः महारौहिणेन मन्त्रेण। कुबेरहृदयेन समृद्ध्या ऋचा।।७१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

आपोहिष्ठातिसृभिर्हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्जप्तम्।
कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयात् स्नातो नराधिपतिः ।।७२।।

स्नान करके राजा आपोहिष्ठा इत्यादि तीन ऋचाओं और हिरण्यवर्णां इत्यादि चार ऋचाओं से अभिमन्त्रित वस्त्र पहने।।७२।।

ततो नराधिपती राजा स्नातः कृतस्नानः कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयाद्धारयेत्। कार्पासिकेत्यनेनान्यवस्त्राणां परिहारः। कीदृशम्? आपोहिष्ठेति तिसृभिर्ऋग्भिर्जप्तं तथा हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्ऋग्भिर्जप्तम्। आपोहिष्ठा हिरण्यवर्णेत्याद्यपदग्रहणम्।।७२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

पुण्याहशङ्खशब्दैराचान्तोऽभ्यर्च्य देवगुरुविप्रान्।
छत्रध्वजायुधानि च ततः स्वपूजां प्रयुञ्जीत ॥७३॥

इसके बाद पवित्र होकर राजा देवता, गुरु और ब्राह्मणों की पूजा करके छत्र, ध्वज और खड्ग की पूजा करे; तत्पश्चात् अभीष्ट देवता की पूजा करे।।७३।।

ततो नृप: पुण्याहशङ्खशब्दैश्च सहाऽऽचान्त: शुद्धकायो देवान् सुरान्। गुरूनुपाध्यायान्। विप्रान् ब्राह्मणान्। अभ्यर्च्य सम्पूज्य। तथा छत्रध्वजायुधानि, छत्रमातपत्रम्, ध्वजं चिह्नम्, आयुधं खड्गादि। एतानि सम्पूज्य ततोऽनन्तरं स्वपूजामात्मीयेष्टदेवतार्चां प्रयुञ्जीत कारये-दिति।।७३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषाभिर्ऋग्भिरेताभिः।
परिजप्तं वैजयिकं नवं विदध्यादलङ्कारम्॥७४॥

आयुष्यं, वर्चस्यं, रायस्पोष आदि छः ऋचाओं से अभिमन्त्रित विजय करने वाला नवीन आभूषण राजा पहने।।७४।।

ततोऽनन्तरं नवमभिनवमलङ्कारं विभूषणादि वैजयिकं विजयावहं विदध्याद्धारयेत्। कीदृशम्? आयुष्यं वर्चस्यम्। रायस्पोषाभिरेताभि: षड्भिर्ऋग्भि: परिजप्तमभिमन्त्रितम्।

ततः किं कुर्यादित्याह—

गत्वा द्वितीयवेदीं समुपविशेच्चर्मणामुपरि राजा।
देयानि चैव चर्माण्युपर्यपर्येवमेतानि॥७५॥

वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च।
तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम्॥७६॥

बाद में द्वितीय वेदी पर जाकर राजा चमड़े के ऊपर बैठे, चमड़ों को आगे दी गई विधि के अनुसार ऊपर-ऊपर रक्खे। जैसे सबसे पहले बैल का, बाद में बिल्ली का, इसके बाद काले मृग का, इसके बाद हरिण का, इसके बाद सिंह का और अन्त में व्याघ्र का चमड़ा रक्खे।।७५-७६।।

ततो द्वितीयवेदीं दक्षिणां गत्वा प्राप्य तत्र च राजा नृपश्चर्मणामुपरि समुपविशेत्तिष्ठेत्। तथोपर्युपरि चर्माण्यनेकप्रकारेणैतानि स्थाप्यानि यानि तानीत्याह।

वृषस्येति। तद्यथा—वृषस्य बलीवर्दस्य सम्बन्धि प्रथमं दद्यात्। तत्रोपरि वृषदंशस्य मार्जारस्य। तस्योपरि रुरोर्मृगजातेः। तस्योपरि पृषतस्य च मृगजातेरेव। तेषामुपरि सिंहस्य हरे:। ततः परं तस्योपरि व्याघ्रस्येति।।७५-७६।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

मुख्यस्थाने जुहुयात् पुरोहितोऽग्निं समित्तिलघृताद्यैः ।
त्रिनयनशक्रबृहस्पतिनारायणनित्यगतिऋग्भिः ॥७७॥

पुरोहित मुख्य स्थान (दक्षिण स्थान) में लकड़ी, तिल, घृत आदि से रुद्र, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु और वायुसम्बन्धी ऋचा पढ़ कर अग्नि में आहुति दे।।७७।।

पुरोहित आचार्यः। मुख्यस्थानं प्रधानस्थानं दक्षिणस्थानमित्यर्थः। समित्तिलघृताद्यैः, समिद्भिः, तिलैः घृतेनाज्येन च। आदिग्रहणादन्यैः शान्तिकैः श्रीफलादिभिरग्निं जुहुयात्। त्रिनयनो रुद्रः। शक्र इन्द्रः। बृहस्पतिर्देवगुरुः। नारायणो विष्णुः। नित्यगतिर्वायुः। एतत्सम्बन्धिन्य ऋचस्ताभिः।।७७।।

अन्यच्च—

इन्द्रध्वजनिर्दिष्टान्यग्निनिमित्तानि दैवविद् ब्रूयात् ।
कृत्वाऽशेषसमाप्तिं पुरोहितः प्राञ्जलिर्ब्रूयात् ॥७८॥

दैवज्ञ इन्द्रध्वज में कथित अग्नि के लक्षण को बोले, सबकी समाप्ति के अनन्तर पुरोहित हाथ जोड़ कर बोले।।७८।।

दैववित् सांवत्सरिकः। इन्द्रध्वजनिर्दिष्टानीन्द्रध्वजोक्तानि। अग्निनिमित्तानि अग्निलक्षणानि ब्रूयाद् वदेत्। तद्यथा—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति।।

एतत्सर्व विचार्यम्। अशेषसमाप्तिं सर्वकर्मणां परिसमाप्तिं कृत्वा ततः प्राञ्जलिः पुरोहितः। अञ्जलिं कृत्वा आचार्य इदं ब्रूयाद्वदेत्।।७८।।

किं तदित्याह—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।
सिद्धिं दत्त्वा तु विपुलां पुनरागमनाय च ॥७९॥

हे देवगण! आप सब राजा द्वारा प्रदत्त पूजा को प्राप्त कर उनको महान् सिद्धि देकर फिर आगमन के लिये गमन करें।।७९।।

सर्वे देवगणाः सुरसमूहाः पार्थिवाद्राज्ञः पूजामर्चामादाय गृहीत्वा तस्य च विपुलां विस्तीर्णां सिद्धिं दत्वा पुनर्भूयः। आगमनाय च प्रयान्तु व्रजन्तु।।७९।।

ततो राज्ञा किं कर्तव्यमित्याह—

नृपतिरतो दैवज्ञं पुरोहितं चार्चयेद्धनैर्बहुभिः ।
अन्यांश्च दक्षिणीयान् यथोचितं श्रोत्रियप्रभृतीन् ॥८०॥

इसके बाद राजा बहुत प्रकार के धनों से दैवज्ञ और पुरोहित की पूजा करे तथा अन्य दक्षिणा देने के लायक श्रोत्रिय आदि की भी यथोचित पूजा करे।।८०।।

अतोऽनन्तरं नृपती राजा दैवज्ञं सांवत्सरं पुरोहितं चाचार्यं बहुभिः प्रभूतैर्धनैर्वित्तैरर्चयेत्। तथा अन्यान् दक्षिणीयान् दक्षिणार्हान् यथोचितं कुलशीलपाठश्रुतानुसारेण श्रोत्रियप्रभृतीन् यजमानाग्निहोतृंश्चार्चयेत्। तथा च गर्गः—

दत्वा वित्तं ब्राह्मणेभ्यो गावो हेमपरिष्कृताः।
वास्तु युग्यं मही रूप्यं तेभ्यश्च बहुभोजनम्।।
शङ्खभेरीस्वनैर्दिव्यैर्गीतैश्चैव मनोहरैः।
सम्प्रविश्य ततो राजा सचिवैः परिवारितः।।
श्वेतकुञ्जरमारूढः श्वेतमश्वमथापि वा।
श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गः श्वेताम्बरधरः शुभः।।
पुरस्ताद्विकरेद्वित्तमाशीर्वादैश्च पूजितः।। इति।।८०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

दत्त्वाऽभयं प्रजानामाघातस्थानगान् विसृज्य पशून्।
बन्धनमोक्षं कुर्यादभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम्।।८१।।

प्रजाओं को अभयदान देकर बध्य स्थानगत पशु (छाग) आदि को छोड़कर अभ्यन्तर (राजा के शरीर या अन्तःपुर) में जिन्होंने अपराध किया है, उनके सिवाय समस्त बन्धन स्थानस्थित पुरुषों को मुक्त करे।।८१।।

ततः प्रजानां लोकानामभयं दत्वा आघातस्थानगान् वध्यस्थानप्राप्तान् पशून् छागादीन् विसृज्य विमुच्य ततो बन्धनमोक्षं कुर्यात्। बन्धनस्थान् पुरुषान् परित्यजेत्। किं त्वभ्यन्तर-दोषकृद्वर्जम्। अभ्यन्तरे नृपशरीरे अन्तःपुरे वा यैर्दोषः कृतस्तान् वर्जयित्वेत्यर्थः।।८१।।

अथ पुष्यस्नानमाहात्म्यमाह—

एतत्प्रयुज्यमानं प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम्।
पुष्याद्विनार्धफलदा पौषी शान्तिः परा प्रोक्ता।।८२।।

प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में किया हुआ यह स्नान सुख, यश और धन की वृद्धि करने वाला होता है। पुष्य नक्षत्र को छोड़कर अन्य नक्षत्र में यथाविधि यह स्नान करने से आधा फल देने वाला होता है। पर पुष्य नक्षत्रयुत पूर्णिमा के दिन का यह स्नान सर्वोत्कृष्ट है।।८२।।

एतत् स्नानं प्रतिपुष्यं पुष्यं पुष्यं प्रति प्रयुज्यमानं क्रियमाणं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरं सुखस्य यशसेऽर्थस्य वृद्धिकरं भवति। पुष्याद्विना अन्यत्र क्रियमाणमर्धफलं यथोक्तात् फलादर्धं ददाति। पौषी शान्तिः। पुष्यनक्षत्रेण युता पौषी पौर्णमासी च परा प्रकृष्टा प्रोक्ता कथिता।।८२।।

अथ केषु कालेषु पुष्यस्नानं कुर्यादित्याह—

राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने।
ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥८३॥

राज्य में किसी प्रकार का उत्पात या उपसर्ग (उपद्रव) होने पर तथा केतु का दर्शन होने पर पुष्यस्नान करना चाहिये।।८३।।

राष्ट्रे राज्ये। उत्पातेषु दिव्यान्तरिक्षभौमेषु। तथोपसर्गेषूपद्रवेषु। अन्येषु व्याध्यादिषु। राहोर्दर्शने रविचन्द्रग्रहणे। केतोर्दर्शने केतूदये। ग्रहावमर्दने ग्रहयुद्धे चैवमनेन प्रकारेण स यथा पुष्यस्नानं समाचरेत् कारयेत्।।८३।।

अन्यच्चाह—

नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति।
मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ॥८४॥

इस लोक में इस तरह का कोई उत्पात नहीं है, जो इस स्नान से नष्ट न हो और ऐसा कोई माङ्गलिक कार्य नहीं है, जो इससे अधिक फल देने वाला हो।।८४।।

लोके स उत्पातो नास्ति न विद्यते यो ह्यनेन पुष्यस्नानेन न शाम्यति न शमं याति; अति तु सर्व एव शाम्यतीत्यर्थः। हिर्यस्मादर्थे। अस्मात् पुष्यस्नानाद्यदतिरिच्यते श्रेष्ठतरं तदपरमन्यन्मङ्गलं नास्ति न विद्यते। तथा च गर्गः—

प्रतिपुष्येण यो राजा स्नायीत विधिपूर्वकम्।
तस्य राष्ट्रे न सीदन्ति मर्त्या ये जन्तवो भुवि।। इति।।८४।।

अन्यत् पुष्यस्नानमाहात्म्यमाह—

अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च काङ्क्षतः।
तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥८५॥

महाराजाधिराज पद की और पुत्र की इच्छा करने वाले राजा को उसके प्रथम अभिषेक में भी यही विधि प्रशस्त है।।८५।।

राज्ञो नृपस्याधिराज्यार्थिनोऽधिराज्यमिच्छतस्तथा पुत्रजन्म सुतसम्भवं च कांक्षतः समभिलषितः। तत्पूर्वं तत्प्रथमं योऽभिषेकस्तस्मिन्नप्यभिषेके एष एव विधिः प्रशस्यते स्तूयत इष्यत इति। अतोऽभीष्टमभिलाषी किल्विषक्षयार्थं माङ्गलिकं स्नानं कुर्वीतेति स्थितिः।।८५।।

अन्यदप्याह—

महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः।
स्नानमायुष्प्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम् ॥८६॥

बहुत बड़ी कीर्ति वाले बृहस्पति ने इन्द्र के लिये यह स्नान कहा था। यह स्नान आयु और प्रजा की वृद्धि करने वाला तथा सौभाग्य प्रदान करने वाला है।।८६।।

इदं स्नानं बृहस्पतिः सुरगुरुर्बृहत्कीर्तिर्विपुलकीर्तिः, महेन्द्रार्थं देवराजहितार्थमुवाचोक्तवान्। कीदृशम्? आयुष्प्रजावृद्धिसौभाग्यकरणम्, आयुषो जीवितस्य प्रजानां सुतानां च वृद्धिं करोति। सौभाग्यकरणं परं प्रकृष्टम्।।८६।।

अन्यदप्याह—

अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयेत्ततः।
तस्यामयविनिर्मुक्तं परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुष्य-
स्नानाध्यायाष्टचत्वारिंशः ॥४८॥

जो राजा इस पूर्वोक्त विधि से हाथी और घोड़ों को भी अभिषेक कराता है, रोग से मुक्त होकर उसके वे हाथी-घोड़े परम सिद्धि प्राप्त करते हैं।।८७।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायां पुष्यस्नानाध्यायोऽष्टचत्वारिंशः ॥४८॥

यो राजा अनेनैव पूर्वोक्तेन विधानेन हस्त्यश्वं गजतुरगं स्नापयेत् तस्य राज्ञस्तद्धस्त्यश्वमामयविनिर्मुक्तं रोगरहितं परां प्रकृष्टां सिद्धिमाप्नुयाल्लभत इति।।८७।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पुष्यस्नानं
नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

अथ पट्टलक्षणाध्यायः

अथ पट्टलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

विस्तरशो निर्दिष्टं पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः ।
तत्संक्षेपः क्रियते मयाऽत्र सकलार्थसम्पन्नः ॥१॥

प्राचीन आचार्यों ने विस्तारपूर्वक जो पट्टों (नरेन्द्र-मुकुटों) का लक्षण कहा है, यहाँ पर सकल अर्थ से युत उसी को संक्षेप करके कहते हैं।।१।।

आचार्यैः काश्यपादिभिर्यत्पट्टानां नरेन्द्रमुकुटानां लक्षणं विस्तरशो विस्तरेण निर्दिष्टमुक्तम्। तस्य मया सकलार्थसम्पन्नः परिपूर्णार्थसमासः संक्षेपः क्रियते विरच्यत इति।।१।।

अधुना तदेवाह—

पट्टः शुभदो राज्ञां मध्येऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः ।
सप्त नरेन्द्रमहिष्याः षड् युवराजस्य निर्दिष्टः ॥२॥

चतुरङ्गुलविस्तारः पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये ।
द्वे च प्रसादपट्टः पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ॥३॥

मध्य में आठ अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट राजा का, सात अङ्गुल विस्तार वाला रानी का, छः अङ्गुल विस्तार वाला युवराज का और चार अङ्गुल विस्तार वाला सेनापति का शुभ करने वाला होता है तथा दो अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट प्रसादपट्ट कहलाता है, यह मुकुट राजा किसी को भी पहना सकता है। इस तरह ये पाँच मुकुट कहे गये हैं।।२-३।।

राज्ञां नृपाणां पट्टो मुकुटो मध्ये मध्यभागे अष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः कार्यः। नरेन्द्रमहिष्या राजपत्न्याः सप्ताङ्गुलानि मध्ये विस्तीर्णः। षडङ्गुलानि युवराजस्य निर्दिष्टः कथितः।

सेनापतेश्चमूनाथस्य मध्ये चतुरङ्गुलविस्तीर्णः कार्यः। द्वे चाङ्गुले प्रसादपट्टो विस्तीर्णः कार्यः। प्रसादपट्टं राजा कस्यचिद्बध्नाति। एवमेते पञ्च पट्टाः कीर्तिता उक्ताः।।२-३।।

अन्यदप्याह—

सर्वे द्विगुणायामा मध्यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः ।
सर्वे च शुद्धकाञ्चनविनिर्मिताः श्रेयसो वृद्ध्यै ॥४॥

सब पूर्वोक्त मुकुट के विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य और विस्तार का आधा पार्श्व का विस्तार होना चाहिये। ये शुद्ध सुवर्ण के बने हों तो श्रेयवृद्धिकारक होते हैं।।४।।

सर्वे पञ्चैव पट्टा द्विगुणायामाः। विस्ताराद् द्विगुणायामा द्विगुणा दीर्घाः कर्तव्याः।

यस्य पट्टस्य यो विस्तार उक्तस्तस्य दैर्घ्यं विस्तारद्विगुणं कार्यम्। यथा नृपपट्टोऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः स च षोडशाङ्गुलायामः कार्यः। एवमन्येषामप्यायामप्रमाणं ज्ञेयम्। तथा पट्टस्य मध्ये यो विस्तार उक्तस्तस्यार्धेन पार्श्वयोर्विस्तारः कार्यः। यथा नृपपट्टोऽष्टावङ्गुलानि मध्याद्विस्तीर्णः, स च पार्श्वयोश्चतुरङ्गुलविस्तारः कार्य इति। एवमन्येषामपि। सर्वे च पट्टाः शुद्धेन शुभेन काञ्चनेन सुवर्णेन विनिर्मिता रचिताः श्रेयसो वृद्ध्यै वृद्धये भवन्ति। आरोग्यस्य वृद्धिं कुर्वन्ति।।४।।

अन्यल्लक्षणमप्याह—

पञ्चशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपार्थिवमहिष्योः ।
एकशिखः सैन्यपतेः प्रसादपट्टो विना शिखया ।।५।।

पाँच शिखा वाला राजा के लिये, तीन शिखा वाला युवराज तथा रानी के लिये और एक शिखा वाला मुकुट सेनापति के लिये शुभकारी होता है। प्रसादपट्ट विना शिखा का बनाना चाहिये।।५।।

भूमिपते राज्ञः पञ्च शिखः पट्टः कार्यः। पञ्चशिखा यस्य स तथाभूतः। युवराजस्य तथा पार्थिवमहिष्या नृपपत्न्यास्त्रिशिखः कार्यः। सैन्यपतेश्चमूनाथस्यैकशिखः। प्रसादपट्टः शिखया विना शिखावर्जितः कार्यः।।५।।

अत्रैव शुभाशुभज्ञानमाह—

क्रियमाणं यदि पत्रं सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य ।
वृद्धिजयौ भूमिपतेस्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ।।६।।

यदि मुकुट के बनाये हुये पत्र अनायास फैल जायँ तो राजा की वृद्धि और विजय होती है तथा प्रजा को सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है।।६।।

पट्टस्य सम्बन्धि पत्रं क्रियमाणं यदि सुखेनाक्लेशेन विस्तारमेत्यायाति तदा भूमिपते राज्ञो वृद्धिजयौ भवतः। तथा प्रजानां लोकानां च सुखसम्पत् सौख्यवृद्धिर्भवति।।६।।

अन्यदप्याह—

जीवितराज्यविनाशं करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः ।
मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो विघ्नकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ।।७।।

यदि बनाते हुये मुकुट के मध्य में छिद्र हो जाय तो प्राण-राज्य दोनों का नाश करता है। मध्य में फट जाय तो उसका त्याग कर देना चाहिये तथा दोनों पार्श्व में फटा हो तो विघ्नकारी होता है।।७।।

पट्टस्य क्रियमाणस्य मध्ये व्रणश्छिद्रः समुत्पन्नो जीवितस्यायुषो राज्यस्य च विनाशं करोति। तथा मध्ये यः स्फुटितः स त्याज्यः। पार्श्वयोः स्फुटितः स विघ्नकरः विघ्नं करोति। तथा च काश्यपः—

क्रियमाणं यदा पत्रं मध्ये स्फुटति भिद्यते।
तदा नृपभयं प्रोक्तं यस्यार्थे वा प्रकल्पितम्।।
सुलक्षणं प्रमाणस्थं सुकरं च हितावहम्।
सुरूपं दर्शनीयं च प्रजानां वृद्धिदं स्मृतम्।। इति।।७।।

अथाशुभे लक्षणे दृष्टे किं कुर्यादित्याह—

अशुभनिमित्तोत्पत्तौ शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः।
शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये भवति ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पट्ट-लक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः।।४९।।

यदि मुकुट में अशुभ लक्षण दिखाई दे तो शास्त्र को जानने वाले पण्डित राजा को शान्ति कराने का आदेश करें तथा शुभ लक्षणयुत मुकुट राजा-राज्य दोनों की वृद्धि के लिये होता है।।८।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पट्टलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः ।।४९।।

अशुभनिमित्तस्याशुभलक्षणस्योत्पत्तौ सत्यां शास्त्रज्ञः पट्टलक्षणज्ञो राज्ञो नृपस्य शान्तिमादिशेद्वदेत्। यः पट्टः शस्तनिमित्तः शुभलक्षणसंयुक्तः स नृपस्य राज्ञो राष्ट्रस्य च विवृद्धये भवति।।८।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पट्टलक्षणं नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।।४९।।

अथ खड्गलक्षणाध्यायः

अथ खड्गलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव खड्गस्य प्रमाणं व्रणानां च शुभाशुभ-ज्ञानार्थमाह—

अङ्गुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात् पञ्चविंशतिः खड्गः ।
अङ्गुलमानाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ।।१।।

पचास अङ्गुल प्रमाण वाला खड्ग उत्तम, पच्चीस अङ्गुल का अधम और पच्चीस अङ्गुल से पचास अङ्गुल के भीतर का खड्ग मध्यम होता है। अङ्गुलमान को लेकर विषम पर्व पर स्थित व्रण अशुभ है, जैसे—प्रथम, तृतीय, पञ्चम आदि विषम अङ्गुल पर आगे कथित लक्षणयुत व्रण हो तो अशुभ होता है।।१।।

उत्तमः प्रधानखड्गः। अङ्गुलशतार्धं पञ्चाशदङ्गुलानि दीर्घ इत्यर्थः। पञ्चविंशतिरङ्गुलानि च ऊनः कनीयान् खड्गः स्याद्भवेत्। अनयोः प्रमाणयोर्मध्ये स्थितः पञ्चाशत् ऊनः पञ्चविंशतेरधिकः स मध्यम एव। अङ्गुलमानाद्यो व्रणो विषमपर्वस्थः। अङ्गुलगणनया विषमाङ्गुले स्थितः। प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमादिष्वङ्गुलेषु स्थितः सोऽशुभोऽनिष्टफलदः। अर्थादिव समाङ्गुलेषु द्वितीयचतुर्थषष्ठमादिषु यः स्थितः स शुभः। मिश्रेष्वङ्गुलेषु मध्यम इति।।१।।

अथ व्रणानामाकृतिलक्षणमाह—

श्रीवृक्षवर्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् ।
सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ।।२।।

बेल, वर्धमान, छत्र, शिवलिङ्ग, कुण्डल, कमल, पताका, खड्ग और शुभ वस्तुओं का व्रण (चिह्न) प्रशस्त होता है।।२।।

श्रीवृक्षो बिल्वः। वर्धमानं चिह्नविशेषो वर्धमानवास्तुनः सदृशम्। केचिच्छरावक-मितीच्छन्ति। आतपत्रं छत्रम्। शिवलिङ्गं प्रसिद्धम्। कुण्डलं कर्णाभरणम्। अब्जं पद्मम्। एषां सदृशास्तुल्या आकृत्या ये व्रणास्ते खड्गे प्रशस्ताः शुभदाः। तथा ध्वजस्य चिह्नस्य पताकारूपस्य। आयुधस्य खड्गादेः। स्वस्तिकस्य चिह्नस्य स्वस्तिकवास्तुनः सदृशाश्च व्रणाः प्रशस्ता एव।।२।।

अथाशुभलक्षणान्याह—

कृकलासकाककङ्कक्रव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः ।
खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगताः प्रभूताश्च ।।३।।

गिरगिट, काक, गिद्ध, मांसभोजी पक्षी, विना शिर के पुरुष और बिच्छू की आकृति

का व्रण शुभ नहीं होता है तथा वंश (खड्ग के उच्च भाग में) अनुगत (स्थित) नाना आकृति वाले व्रण भी शुभ नहीं होते हैं।।३।।

कृकलासः प्राणिविशेषः। काककङ्कौ प्रसिद्धौ। क्रव्यादा मांसाशिनो विहङ्गाः श्येन-गृध्रप्रभृतयः। कबन्धच्छिन्नशिराः पुमान्। वृश्चिकः कीटजातिः। एतेषां सदृशी आकृतिर्येषां ते व्रणाः खड्गे अशोभना अशुभदाः, तथा वंशानुगताः, वंशशब्देन खड्गमध्य उच्चभाग उच्यते। तत्र ये अनुगताः स्थिताः प्रभूताश्च बहवोऽपि श्वाकृतयस्तेऽप्यशुभा एव।।३।।

अन्यल्लक्षणमाह—

स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः।
अस्वन इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ।।४।।

फटा हुआ, छोटा, टूटा हुआ, वंशप्रदेश से कटा हुआ, दृष्टि और मन से अप्रिय तथा शब्दरहित खड्ग अशुभकारी और इसके विपरीत लक्षणयुत खड्ग शुभकारी होता है।

स्फुटितः क्वचित् क्वचिदुच्चाटित इव दृश्यते। ह्रस्वः प्रमाणहीनः। कुण्ठो भग्नः। वंशच्छिन्नो वंशप्रदेशाद्विच्छिन्न इव दृश्यते, न च दृङ्मनोऽनुगतः। दृशोश्चक्षुषोर्मनसश्चित्तस्य यो नानुगतो न प्रियः। अस्वनो निःशब्दो यस्याऽऽहतस्य शब्दो नोत्पद्यत इति। एवंविधोऽनिष्टो न शुभः। प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः। उक्तदोषलक्षणेभ्यो विपर्यस्तो विपरीतलक्षणस्य इष्ट-फलः शुभफलः। अस्फुटितो दीर्घस्तीक्ष्णो वंशप्रदेशादविच्छिन्नो दृङ्मनोऽनुगतः सस्वन इति शुभलक्षणानि। एतैर्युक्त इष्टफलः।।४।।

अथ खड्गचेष्टितमाह—

क्वणितं मरणायोक्तं पराजयाय प्रवर्तनं कोशात्।
स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ।।५।।

खड्ग से अचानक शब्द हो तो मरण, म्यान से नहीं निकलता हो तो पराजय, म्यान से अपने-आप निकल जाय तो युद्ध और अनायास खड्ग प्रज्ज्वलित हो जाय तो विजय होती है।।५।।

स्वयमेव खड्गस्य क्वणितं शब्दो मरणायोक्तम्। खड्गस्वामिनो मृत्यवे कथितम्। कोशात् परीवारादप्रवर्तनमनिर्गमनं युद्धकाले पराजयाय भवति। स्वयमुद्गीर्णे परीवारात् स्वयमेव निर्गते खड्गे युद्धं संग्रामो भवति। संग्रामकाले ज्वलिते सज्वाले खड्गे विजयो भवति।।५।।

अथ परिभाषार्थमाह—

नाकारणं विवृणुयान्न विघट्टयेच्च
पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम्।
देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेन्न
नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम् ।।६।।

राजा अकारण खड्ग को म्यान से न निकाले, न चलाये, उसमें अपना मुख न देखे, उसकी कीमत न बतावे, उसका उत्पत्तिस्थान न बतावे, अङ्गुलियों से न नापे और असंयत होकर उसको स्पर्श न करे।।६।।

नृपती राजा असियष्टिं खड्गयष्टिमकारणं निष्प्रयोजनं न विवृणुयाद् विगतावरणं न कुर्यात्, नोद्घाटयेदित्यर्थः, तथा अकारणं न विघट्टयेद् न चालयेत्। तत्र तस्यां खड्गयष्टौ वदनं मुखं न पश्येद् न निरीक्षयेत्, तथा अकारणं मूल्यं न वदेद् न ब्रूयात्। तथा खड्गस्य देशं जातिं न कथयेत्। अमुकदेशजोऽयं खड्ग इति। न प्रतिमानयेद् नाङ्गुलैर्मिनुयात्, तथा अप्रयतोऽसमाहितोऽपि यष्टिं न स्पृशेत्।।६।।

अन्यल्लक्षणमाह—

गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च।
करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ।।७।।

गाय के जीभ के समान आकृति वाला, नीलकमलदल के सदृश, बाँस के पत्रसदृश, करवीर फूल के पत्रसदृश, शूल की तरह अग्र भाग वाला और वर्त्तुलाकार अग्र भाग वाला खड्ग प्रशस्त होता है।।७।।

एते खड्गाः प्रशस्ताः स्युर्भवेयुः। के? ते, गोजिह्वासंस्थानः। यत्र गोजिह्वासदृशी आकृतिः तथा नीलोत्पलवंशपत्रसदृशः, कुवलयदलाकृतिः। वंशपत्रसदृशश्च यः, करवीरपत्रसदृशो वा, तथा शूलाग्रः शूलाकारमयं यस्य। मण्डलाग्रो मण्डलाकारमयं परिवर्तुलं यस्य यथाभूत इति।।७।।

अन्यच्चाह—

निष्पन्नो न छेद्यो निकषैः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः।
मूले म्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ।।८।।

यदि खड्ग प्रमाण से अधिक हो जाय तो उसको काटना नहीं चाहिये, किन्तु घिसकर प्रमाणतुल्य करना चाहिये। यदि खड्ग को मूल भाग से काटे तो राजा और अग्रभाग से काटे तो उसकी माता की मृत्यु होती है।।८।।

खड्गो निष्पन्नः कदाचित् प्रमाणादधिको भवति, तदा न छेद्यो न कल्पनीयः। स खड्गो निकषैर्निघर्षणैः प्रमाणयुक्तः कार्यः। कल्पिते तत्र दोषमाह—**मूले म्रियते स्वामीति।** तस्य खड्गस्य मूले छिन्ने स्वामी प्रभुर्म्रियते विपद्यते। अग्रतश्छिन्ने जननी, तस्य स्वामिनो माता म्रियते। तथा च काश्यपः—

उत्पन्नो न पुनश्छेद्यो निष्पन्नो यः प्रमाणतः।
मुष्ट्या भङ्गे म्रियेत् स्वामी तदग्रे तस्य मातरम्।।
तस्मान्न छेदयेत् खड्गमात्मनोऽशुभदं यतः।
निघर्षणैः प्रमाणस्थः कार्यो येन शुभो भवेत्।। इति।।८।।

अथ खड्गमुष्टौ दृष्टायां व्रणज्ञानमाह—

यस्मिन् त्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत् तद्वदेव खड्गस्य।
वनितानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥९॥

जिस तरह स्त्रियों के मुख पर तिल देखकर गुह्य स्थानीय तिल बताया जाता है, उसी तरह खड्ग की मूठ में दाग देखकर उसके मध्य में व्रण (छेद) कहना चाहिये।।९।।

खड्गस्य या शिखा मुष्टावन्तः प्रविशति स प्रदेशः त्सरुशब्दवाच्यः। यस्मिन् त्सरुप्रदेशे ग्रहणविभागे मूले मध्ये यो वा व्रणश्छिद्रं भवेत् स्यात्, तद्वत्तेनैव प्रकारेण खड्गस्य मूले मध्ये अग्रे वा भवेत्। एतदुक्तं भवति—यदि मुष्टिमूले व्रणो दृश्यते तदा खड्गस्यापि मूले व्रणो वाच्यः। अनेनानुसारेणान्तरालेऽपि योज्यम्। अत्र दृष्टान्तमाह—**वनितानामिव तिलक इति।** वनितानां स्त्रीणां यथा तिलकं मुखे दृष्ट्वा अवलोक्य स एव गुह्येऽपि वाच्यो वक्तव्यः। एवं यस्मिन् खड्गे मुष्टौ व्रणो भवति तस्मिन्निश्चयान्मध्ये व्रणोऽग्रे च वाच्यः।।९।।

अत्र व्रणज्ञानोपायमाह—

अथवा स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निस्त्रिंशभृत्तदवधार्य।
कोशस्थस्यादेश्यो व्रणोऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥१०॥

यदि कोई खड्गधारी पुरुष आकर प्रश्न करे कि 'इस खड्ग में व्रण है या नहीं' तो उस समय वह प्रश्नकर्ता जिस अङ्ग का स्पर्श करता हो, उसको निश्चय करके वक्ष्यमाण शास्त्र को जान कर कोशस्थित खड्ग में व्रण कहना चाहिये।।१०।।

वाशब्दः प्रकारे। अथवा निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा खड्गे गृहीते ससंशयः पृच्छति, यथा अस्मिन् खड्गे व्रणोऽस्ति न वेति। तत्रायमुपायः—तस्मिन् काले यल्लग्नं वर्तते तस्य यदि केन्द्रस्थः पापग्रहो भवति, तदा निश्चयात्तस्मिन् खड्गे व्रणो भवति। एवं व्रणे ज्ञाते सति स निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा यदङ्गं स्वावयवं स्पृशति तदङ्गं समवधार्यावलोक्य कोशस्थस्यैव खड्गस्य व्रण आदेश्यो वक्तव्यः। इदं वक्ष्यमाणमपि शास्त्रं विदित्वा ज्ञात्वा।।१०।।

तच्चाह—

शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे।
भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥११॥

यदि प्रश्नकर्ता शिर को स्पर्श करे तो खड्ग मूल से प्रथम अङ्गुल में, ललाट का स्पर्श करे तो द्वितीय अङ्गुल में, भ्रूमध्य का स्पर्श करे तो तृतीय अङ्गुल में और नेत्र का स्पर्श करे तो चतुर्थ अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।११।।

निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा पृच्छाकाले यद्यात्मीयं शिरः स्पृशति, तदा खड्गस्य मूलादेव प्रथमेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। एवं ललाटसंस्पर्शे द्वितीयेऽङ्गुले, भ्रूमध्ये स्पृष्टे तृतीयेऽङ्गुले, नेत्रे नयने दक्षिणे वामे वा स्पृष्टे चतुर्थेऽङ्गुले वाच्यः।।११।।

अन्यदप्याह—

नासौष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसके च पञ्चाद्याः ।
उरसि द्वादशसंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥१२॥

नासिका का स्पर्श करे तो पञ्चम अङ्गुल में, ओठ का स्पर्श करे तो छठे अङ्गुल में, गाल का स्पर्श करे तो सप्तम अङ्गुल में, ठोढ़ी का स्पर्श करे तो अष्टम अङ्गुल में, कान का स्पर्श करे तो नवम अङ्गुल में, गरदन का स्पर्श करे तो दशम अङ्गुल में, कन्धे का स्पर्श करे तो एकादश अङ्गुल में, छाती का स्पर्श करे तो बारहवें अङ्गुल में और कोखों का स्पर्श करे तो तेरहवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१२।।

नासायां स्पृष्टायां पञ्चमेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। ओष्ठयोः स्पर्शने षष्ठेऽङ्गुले। कपोलौ मुखगण्डौ, तयोः स्पर्शने सप्तमेऽङ्गुले। हनुस्पर्शेऽष्टमेऽङ्गुले। श्रवणौ कर्णौ, तयोः स्पर्शने नवमे। ग्रीवा शिरोधरा, तस्याः स्पर्शने दशमे। अंसौ स्कन्धौ, तयोः स्पर्शने एकादशे। एवं पञ्चाद्याः, पञ्चादित आरभ्य। उरसि वक्षसि स्पृष्टे द्वादशसंस्थो द्वादशेऽङ्गुले व्रणो वक्तव्यः। कक्षयोः स्पृष्टयोस्त्रयोदशेऽङ्गुले व्रणो वाच्य इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

स्तनहृदयोदरकुक्षिनाभौ तु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः ।
नाभीमूले कट्यां गुह्ये चैकोनविंशतितः ॥१३॥

स्तन का स्पर्श करे तो चौदहवें अङ्गुल में, हृदय का स्पर्श करे तो पन्द्रहवें अङ्गुल में, पेट का स्पर्श करे तो सोलहवें अङ्गुल में, कुक्षि का स्पर्श करे तो सत्रहवें अङ्गुल में, नाभि का स्पर्श करे तो अट्ठारहवें अङ्गुल में, नाभि के मूल का स्पर्श करे तो उन्नीसवें अङ्गुल में, कटिप्रदेश का स्पर्श करे तो बीसवें अङ्गुल में और गुह्य स्थान का स्पर्श करे तो इक्कीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१३।।

स्तनस्पर्शे चतुर्दशेऽङ्गुले व्रणो वक्तव्यः। हृदयस्पर्शने पञ्चदशे। उदरसंस्पर्शे षोडशे। कुक्षिस्पर्शने सप्तदशे। नाभिसंस्पर्शने अष्टादशे। एवं चतुर्दशादयो ज्ञेया ज्ञातव्याः। नाभिमूलं नाभेरधोभागः, तत्स्पर्शने एकोनविंशे। कटिस्पर्शने विंशे। गुह्यस्पर्शने एकविंशे। एवमेकोनविंशतितस्तदारभ्य।।१३।।

अन्यदप्याह—

ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे ।
जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥१४॥

ऊरू का स्पर्श करे तो बाईसवें अङ्गुल में, ऊरूद्वय के मध्य भाग का स्पर्श करे तो तेईसवें अङ्गुल में, जानु का स्पर्श करे तो चौबीसवें अङ्गुल में और जङ्घा का स्पर्श करे तो पच्चीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१४।।

ऊर्वोः स्पर्शने द्वाविंशेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। ऊर्वोर्मध्यभागस्पर्शने त्रयोविंशे। जानुनि च जानुनोः स्पर्शने चतुर्विंशे। जङ्घायां स्पर्शने च पञ्चविंशे व्रणो वाच्यः।।१४।।

अन्यदप्याह—

जङ्घामध्ये गुल्फे पार्ष्ण्यां पादे तदङ्गुलीष्वपि च।
षड्विंशतिकाद् यावत्त्रिंशदिति मतेन गर्गस्य ।।१५।।

जङ्घाओं के मध्य भाग का स्पर्श करे तो छब्बीसवें अङ्गुल में, गुल्फ (टखना = पाँव की गांठी) का स्पर्श करे तो सत्ताईसवें अङ्गुल में, एड़ी का स्पर्श करे तो अट्ठाइसवें अङ्गुल में, पाँव का स्पर्श करे तो उन्तीसवें अङ्गुल में और पाँव की अङ्गुली का स्पर्श करे तो तीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये। यह गर्गाचार्य के मत से कहे गये हैं।।१५।।

जङ्घयोर्मध्यभागस्पर्शने षड्विंशेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। गुल्फस्पर्शने सप्तविंशे। पार्ष्णिस्पर्शनेऽष्टाविंशे। पादस्पर्शने एकोनत्रिंशे। पादाङ्गुलीस्पर्शने त्रिंशे। एवं षड्विंशादङ्गुलात् प्रभृति यावत्त्रिंशदङ्गुलानि तावद्वाच्यम्। इत्यनेन प्रकारेण गर्गस्य मुनेर्मतेनेति। तथा च गर्गः—

शिरो ललाटं भ्रूमध्यं नेत्रघ्राणकपोलकम्।
हनुश्रोत्रं तथा ग्रीवा स्कन्धो वक्षश्च कक्षकम्।।
स्तनौ हृत् क्रोडकुक्षी च नाभिस्तन्मूलमेव च।
कटिगुह्योरुमध्यं च जानुजङ्घे तयोरधः।।
गुल्फं पार्ष्णिस्तथा पादमङ्गुलिस्पर्शने ध्रुवम्।
मूलात् प्रभृति खड्गेऽपि व्रणं त्रिंशाङ्गुलं वदेत्।। इति।।१५।।

अथैतेषां व्रणानां फलान्याह—

पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बन्धश्च।
एकाद्यङ्गुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ।।१६।।

एक आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से पुत्रमरण आदि फल कहना चाहिये। जैसे प्रथम अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्र का मरण, द्वितीय में धन की प्राप्ति, तृतीय में धनहानि, चतुर्थ में सम्पत्ति और पञ्चम में बन्धन कहना चाहिये।।१६।।

मूलात् प्रभृति प्रथमेऽङ्गुले यदि व्रणो दृश्यते, तदा पुत्रमरणं सुतमृत्युः स्वामिनो भवति। द्वितीये धनाप्तिर्वित्तलाभः। तृतीये धनहानिरर्थनाशः। चतुर्थे सर्वार्थानां सम्पदः। पञ्चमे बन्धो बन्धनम्। एवमेकाद्यङ्गुलसंस्थैर्व्रणैः क्रमशः क्रमेण पारिपाट्या फलं निर्दिशेद् वदेत्।।१६।।

अन्येष्वाह—

सुतलाभः कलहो हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ।
क्रमशो विनाशवनिताप्तिचित्तदुःखानि षट्प्रभृति ।।१७।।

षष्ठ आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से सुतलाभ आदि फल कहना चाहिये। जैसे छठे अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्रलाभ, सातवें में कलह, आठवें में हाथी का लाभ, नवें में पुत्रमरण, दशवें में धनलाभ, ग्यारहवें में विनाश, बारहवें में स्त्री की प्राप्ति और तेरहवें अङ्गुल में व्रण हो तो मन में दुःख होता है।।१७।।

सुतलाभः पुत्राप्तिः षष्ठेऽङ्गुले। कलहः सप्तमे। हस्तिलब्धिर्गजलाभोऽष्टमे। पुत्रमरणं सुतविनाशो नवमे। धनलाभो वित्तागमो दशमे। विनाशो मरणमेकादशे। वनिताप्तिः स्त्रीलाभो द्वादशे। चित्तदुःखं त्रयोदशे। एवं षट्प्रभृति षडादिष्वङ्गुलेषु क्रमशः क्रमेण विनिर्दिशेत् फलम्।।१७।।

अन्येष्वप्याह—

लब्धिर्हानिः स्त्रीलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः।
ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात्॥१८॥

यदि चौदहवें अङ्गुल में व्रण हो तो लाभ, पन्द्रहवें में हानि, सोलहवें में स्त्रीलाभ, सत्रहवें में वध, अट्ठारहवें में वृद्धि, उन्नीसवें में मरण और बीसवें अंगुल में व्रण हो तो प्रसन्नता होती है तथा इक्कीसवें अंगुल में व्रण हो तो धनहानि होती है।।१८।।

लब्धिरर्थलाभश्चतुर्दशेऽङ्गुले। हानिरर्थनाशः पञ्चदशे। स्त्रीलब्धिर्योषित्प्राप्तिः षोडशे। वधो मरणं सप्तदशे। वृद्धिरर्थादीनामष्टादशे। मरणमेकोनविंशे। परितोषश्चित्ततुष्टिर्विंशे। एवं चतुर्दशादिष्वङ्गुलेषु फलक्षयो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एकविंशे धनहानिर्वित्तनाशः स्याद् भवेत्।।१८।।

अन्येष्वाह—

वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युसम्पदोऽस्वत्वम्।
ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात् त्रिंशदिति यावत्॥१९॥

बाईसवें अंगुल में व्रण हो तो धन का लाभ, तेईसवें में मृत्यु, चौबीसवें में धनलाभ, पच्चीसवें में मरण, छब्बीसवें में सम्पत्ति, सत्ताईसवें में निर्धनता, अट्ठाईसवें में ऐश्वर्य, उनतीसवें में मरण और तीसवें अंगुल में व्रण हो तो राज्यलाभ होता है।।१९।।

वित्ताप्तिर्धनागमो द्वाविंशे। अनिर्वाणं मृत्युस्त्रयोविंशे। धनागमो वित्तलाभश्चतुर्विंशे। मृत्युर्मरणं पञ्चविंशे। सम्पदोऽर्थादीनां षड्विंशे। अस्वत्वं निर्धनत्वं सप्तविंशे। ऐश्वर्य-मष्टाविंशे। मृत्युर्मरणमेकोनत्रिंशे। राज्यं त्रिंशे। एवं क्रमात् परिपाट्या त्रिंशद्यावत्फलानि वक्तव्यानीति।।१९।।

अतः परमाह—

परतो न विशेषफलं विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः।
कैश्चिदफलाः प्रदिष्टास्त्रिंशत्परतोऽग्रमिति यावत्॥२०॥

तीस अंगुल के बाद विशेष फल नहीं होता, किन्तु सामान्य रूप से विषम अंगुल में व्रण हो तो अशुभ और सम में शुभ फल कहना चाहिये। कोई-कोई (पराशर आदि आचार्य) तीस अंगुल के बाद अग्रभाग तक फलरहित बताते हैं।।२०।।

अतोऽस्मात् त्रिंशतः परतो न विशेषफलं भवति, सामान्याद्विषमसमस्थाश्च पापशुभफलदाः। ये विषमाङ्गुलस्था व्रणास्ते पापफलदा अनिष्टफलदाः, ये च समाङ्गुलस्थास्ते शुभफलदाः। तथा च गर्गः—

अङ्गुलानि च पञ्चाशत्प्रधानः खड्ग उच्यते।
तदर्धको निकृष्टः स्यात्तन्मध्ये मध्यमः स्मृतः।।
विषमाङ्गुलसंस्थो यो व्रणः सोऽनिष्टदः स्मृतः।
शुभः समाङ्गुलस्थस्तु मध्यगो मध्यमः स्मृतः।।
त्रिंशद्यावद्विनिर्दिष्टमङ्गुलानां फलं ततः।
षोडशाङ्गुलगो ज्ञेयो व्रणो मध्यफलप्रदः।। इति।

कैश्चिदफला इति कैश्चिन्मुनिभिः पराशरादिभिस्त्रिंशत्परतोऽग्रं यावदफला निष्फला प्रदिष्टा उक्ताः। तथा च पराशरः—

'तेषां प्रमाणानि। जघन्यमङ्गुलानि पञ्चविंशतिः। मध्यमं त्रिंशत्। उत्तमं चत्वारिंशत्। अतो हीनमतिरिक्तं वा न धारयेत्। पूर्णात् प्रत्यङ्गुलान्तरितेषु व्रणेष्वनाकृतिषु यावत्त्रिंशदङ्गुलं तावत्क्रमात् फलनियमः। पुत्रनाशोऽर्थागमोऽर्थनाशोऽर्थसञ्चयो गृहदाहो मित्रलाभो व्याधिभयं सुखाप्तिर्ज्ञातिबन्ध आज्ञाप्राधान्यं विपक्षोत्पत्तिर्वाहनलाभः शोकः प्रव्रज्यासुतज्ञातिकुलच्छेदो माहात्म्यबललाभः सन्तापः क्लेशः पुत्रलाभो धनागमः शोकः प्रामाण्यमाधिपत्यमुपभोगो भयं दौर्भाग्यमैश्वर्यं राजपूजेति। परतः सर्वप्रशस्तं विन्द्यात्'।। इति।।२०।।

अथ गन्धलक्षणमाह—

करवीरोत्पलगजमदघृतकुङ्कुमकुन्दचम्पकसगन्धः ।
शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदःसदृशगन्धः ।।२१।।
कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः ।
वैदूर्यकनकविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः ।।२२।।

करवीर, कमल, हाथी के मद, घृत, कुङ्कुम, कुन्द या चम्पापुष्प के समान सुगन्धि हो तो शुभदायी होता है। गोमूत्र, पङ्क या मेद (हड्डी के अन्तर्गत तैल भाग) की तरह गन्ध हो तो अशुभ फलदायी होता है। कछुआ, मज्जा, रक्त या क्षार की तरह गन्ध हो तो भय और दुःख देने वाला होता है। वैदूर्यमणि, सुवर्ण या बिजली के समान खड्ग में कान्ति हो तो जय, आरोग्य और उन्नतिकारक होता है।।२१-२२।।

करवीरं प्रसिद्धम्। उत्पलं नीलोत्पलम्। गजमदं हस्तिमदम्। घृतमाज्यम्। कुङ्कुमं प्रसिद्धम्। कुन्दः पुष्पविशेषः। चम्पकं पुष्पजातिः। एषां सगन्धः सदृशगन्धः खड्गः

शुभद:। गोमूत्रं प्रसिद्धम्। पङ्कः कर्दमः। मेदः प्रसिद्धम्, अस्थ्यन्तरगतः स्नेहभागः। एषां सदृशगन्धोऽनिष्टोऽशुभदः खड्गः।

कूर्मः प्राणी। वसा मज्जा। असृग्रक्तम्। क्षारं प्रसिद्धम्। एषामुपमः सदृशो गन्धो भयदुःखदो भवति, भयं दुःखं च ददाति। तथा वैदूर्यो मणिविशेषः। कनकं सुवर्णम्। विद्युत्तडित्। एषां सदृशप्रभः तुल्यकान्तिः खड्गो जयारोग्यवृद्धिकरः, जयमारोग्यं वृद्धिं च करोति।।२१-२२।।

अथ शस्त्रपानमाह—

इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम्।
हविषा गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥२३॥

वडवोष्ट्रकरेणुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम्।
झषपित्तमृगाश्वबस्तदुग्धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥२४॥

उत्कृष्ट लक्ष्मी की इच्छा करने वाला अपने शस्त्र को रुधिर से पान देवे, गुणवान् पुत्रों की इच्छा करने वाले घृत से, अपरिमित धन की इच्छा करने वाले जल से, पाप (बधादि) से अर्थसिद्धि चाहने वाले घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी के दूध से और हाथी के शुण्ड काटने की इच्छा वाले ताड़ के रस (ताड़ी) से मिश्रित मछली के पित्त तथा हरिणी, घोड़ी या छाग के दूध से शस्त्र को पान देवे।।२३-२४।।

इदं वक्ष्यमाणं शस्त्रपानमौशनसम्, उशनसा शुक्रेणोक्तम्। प्रदीप्तामुत्कृष्टां श्रियं लक्ष्मीमिच्छतः प्रार्थयतो रुधिरेण रक्तेन। गुणवत्सुताभिलिप्सोर्गुणवतः सुतान् पुत्रान् लब्धुमिच्छति यस्तस्य हविषा घृतेन पानम्। अक्षयमपरिमितं वित्तं धनमिच्छतः सलिलेन पानम्।

यदि पापेन बधादिना अर्थसिद्धिं समीहते प्रार्थयति, तदा वडवोष्ट्ररेणुदुग्धपानम्, वडवा अश्वतरी, उष्ट्रा करभी, करेणुर्हस्तिनी, आसां दुग्धेन क्षीरेण पानम्। करिणां हस्तिनां हस्तच्छिदये करच्छेदनाय खड्गं य इच्छति तस्य झषपित्तेन मत्स्यपित्तेन। मृगो हरिणः। अश्वस्तुरगः। बस्तश्छागः। एषां दुग्धैः क्षीरैः। तैः किम्भूतैः? सतालगर्भैः, सह तालगर्भेण ये वर्तन्ते। तालो वृक्षस्तस्य गर्भो निर्यासः। तथा च पराशरः—

'अथ पायनानि क्षीरपायितमरिबधार्थी धारयेत्। तिलतैलारालाभ्यामर्थार्थी। पुत्रार्थी उदकेन। सर्पिषा श्रीकामः। साहसिकः शोणितेन। हस्त्यश्वोष्ट्रक्षीरैः शिलासारच्छेदकामः। अजाक्षीरेण तालवसया मत्स्यवडवाहरिणपित्तेन द्विरदस्कन्धच्छेदकामः। नित्यं चैनं धूपपुष्पगन्धोपहारैरर्चयित्वा शिरस्यपशायिनं कुर्यात्। नावमन्येत न चोच्छिष्टः संस्पृशेत्। नादर्शकी कुर्यात्। नानिमित्तं विवृणुयात्। न क्रीडनायास्य मुलं विवृणुयात्' इति।।२४।।

अन्यत्पानमाह—

आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः।

शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥२५॥

शस्त्र पर तिल का तेल मलने के बाद आक के वृक्ष के गोंद और मेष के सींग के भस्म से मिली हुई कबूतर और चूहे की बीट को उसके ऊपर लेप करे, बाद में तेज करके उससे पत्थर पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है।।२५।।

आर्कं पयोऽर्कक्षीरम्। हुडुविषाणं मेषशृङ्गः। तस्मान्मषी तया समेतं सहितम्। पारावतः पक्षी। आखुर्मूषिकः। अनयोः शकृता विष्ठया च युतः संयुक्त एष प्रलेपः। शस्त्रस्य तैलमथितस्य खड्गादेस्तिलतैलेन मर्दितस्य एष प्रलेप उपरि देयः। ततस्तत्सहितमग्नौ क्षिप्त्वा तत्र सुतप्तस्य तदपास्य पूर्वोक्तं पानं देयम्। उक्तद्रव्याणां मध्यादेकतमम्, पश्चादनन्तरं शितस्य श्लक्ष्णीकृतस्य शिलासु पाषाणेषु विघातो न भवेत्, तासु न भज्यत इति।।२५।।

अथान्यत्पानमाह—

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
दिनोषिते पायितमायसं यत्।
सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भङ्गं
न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥२६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खड्गलक्षणाध्यायः पञ्चाशत्तमः ॥५०॥

केले की राख में मठ्ठा मिलाकर उसमें एक अहोरात्र तक लोहे को छोड़ दे, बाद में उसको निकाल कर तेज बनावे; फिर उससे पत्थर या अन्य लोहे पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है।।२६।।

इति 'विमला'हिन्दीटीकायाङ्खड्गलक्षणाध्यायः पञ्चाशः ॥५०॥

कदली वृक्षविशेषः प्रसिद्धो रम्भाख्यः। तां दग्ध्वा क्षारं यद्भवति, तस्मिन् क्षारे मथितेन तक्रेण युक्ते सहिते दिनोषिते अहोरात्रमेकीकृत्य स्थापिते यदाऽऽयासं लोहं पायितं दत्तपानं सम्यक् शितं तीक्ष्णीकृतमश्मनि पाषाणे भङ्गं नैति न याति, न च तस्यान्यलोहेष्वपरशस्त्रेष्वपि कौण्ठ्यं कुण्ठत्वं भवति।।२६।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ खड्गलक्षणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथाङ्गविद्याध्यायः

अतः परं केचिदङ्गविद्यां पठन्ति। आचार्येण प्रागेवोक्तं वास्तुविद्याङ्गविद्येति। तस्माद-स्माभिर्व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदितस्थानाहृतानीक्षता
वाच्यं प्रष्टृनिजापराङ्गघटनां चालोक्य कालं धिया।
सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयाऽसौ सर्वदर्शी विभु-
श्चेष्टाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम्॥१॥

प्रश्नकर्त्ता की दिशा, उसकी वाणी, उसका स्थान और उससे लाई हुई वस्तु को देखते हुये, प्रश्नकर्ता के अपने और वहाँ पर स्थित दूसरे के अंग की घटना देखकर तथा समय को अपनी बुद्धि से विचार कर दैवज्ञ को शुभाशुभ फल कहना चाहिये; क्योंकि वह काल चराचर सब प्राणियों का आत्मस्वरूप होने के कारण विभु और सबको देखने वाला होता है। वही चेष्टा और वचनों के द्वारा प्रश्नकर्ता को शुभाशुभ फल दिखाता है।।१।।

दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण इमानि च वस्तूनि ईक्षता विचारयता प्रष्टुः शुभाशुभफलं वाच्यं वक्तव्यम्। कानीत्याह—दिगाशा पूर्वादिका। उदितं व्याहृतमुक्तं प्रच्छकेन। स्थानं प्रदेशो यत्र स्थितः। आहृतं तत्कालं केनचिद्यत्किञ्चिदानीतम्। एतानीक्षता। तथा प्रष्टृनिजा-पराङ्गघटनां चालोक्य, प्रष्टुः प्रच्छकस्य निजाङ्गानामात्मीयावयवानामपराङ्गानामन्यावयवानां च घटनां स्थितिं स्पर्शनादिकां कालं च तत्काले दिनगतशेषं च धिया बुद्ध्या आलोक्य वीक्ष्य वाच्यम्। **सर्वज्ञो हीति**। यतोऽसौ कालश्चराचरात्मकतया चराणां जन्तूनाम्। अचराणां स्थावराणां स एवात्मा जीवभूतस्तेन चराचरात्मकत्वेन स एव विभुः प्रभुः। सर्वदर्शी सर्वमशेषं पश्यति तच्छीलः। हि यस्मादर्थे। चेष्टाव्याहृतिभिः, चेष्टाः स्पर्शनादिकाः क्रियाः। व्याहृतिर्व्याहरणं सम्भाषणम्। एताभिः शुभाशुभफलं सदसत्फलमर्थिनां पृच्छतां सन्दर्शयति प्रकटयति। तथा च पराशरः—

'इह खलु चराचराणां भूतानां कालोऽन्तरात्मा सर्वदा सर्वदर्शी शुभाशुभैर्यः फलसूचकः स विशेषेण प्राणिनां स्वपराङ्गेषु स्पर्शव्याहारेङ्गितचेष्टादिभिर्निमित्तैः फलमभिदर्शयति। तत्प्रयतो दैवज्ञोऽनुपहतमतिरवधार्य स्वशास्त्रार्थमनुस्मृत्य यशोधर्मानुग्रहार्थमर्थिनां शुभा-शुभानामर्थानां भावाभावमभिनिर्दिशेत्' इति।

तत्र देशे दिशः कालं व्याहारं द्रव्यदर्शनम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंस्पर्शं समीक्ष्य फलमादिशेत्।। इति।।१।।

अधुना स्थाननिर्देशार्थमाह—

स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदा-
सत्पक्षिच्युतशस्तसञ्ज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम्।
देवर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं
सत्स्वादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छाद्वलम्॥२॥

जहाँ पुष्परूप सुन्दर मुसुकानयुत, बहुत से फलों से भरा हुआ, निर्मल छाल और पत्ते वाले, अशुभ पक्षियों से रहित और प्रशस्त संज्ञा वाले वृक्ष की छाया से आच्छादित तथा सम (बराबर) भूमि हो; देवता, ऋषि, ब्राह्मण, साधु या सिद्धों का स्थान हो; सुन्दर पुष्प और धान्यों से व्याप्त स्थान हो या सुन्दर, स्वादिष्ट, निर्मल जल से उत्पन्न, प्रसन्नता से युत सुन्दर दूर्वाओं से व्याप्त स्थान हो, वहाँ प्रश्न करना शुभ होता है।।२।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां सच्छुभदमित्यर्थः। कीदृशम्? एवविधानां तरूणां वृक्षाणां छाययोपगूढं छन्नम्। कीदृशानाम्? पुष्पाणि कुसुमानि तान्येव शोभनो हासो हसनं येषां ते पुष्पसुहासिनः। तथा भूरीणि प्रभूतानि फलानि धारयन्ति ये ते भूरिफलभृतः। तथा सुस्निग्धा कृत्तिस्त्वक् छदाः पर्णानि च येषां ते सुस्निग्धकृत्तिच्छदाः। तथाऽसत्पक्षिभिर-निष्टविहगैः काकोलूकादिभिश्च्युता रहितास्तथा शस्त्रसंज्ञिताः प्रशस्तनामानो ये च पलाश-पिप्पलन्यग्रोधप्रभृतयस्तेषाम्। समं निम्नोन्नतत्वरहितम्। देवाः सुराः। ऋषयो मुनयः। द्विजा ब्राह्मणाः। साधवः सज्जनाः। सिद्धा देवयोनयः। एषां निलयं स्थानम्। तथा सत्पुष्पैः सुगन्धकुसुमैः सस्यैश्च धान्यादिभिरुक्षितं अन्तःसेचितं तच्छुभम्। तथा स्वादूदकनिर्मल-त्वजनिताह्लादं च। स्वादु मृष्टं यदुदकं जलं निर्मलं प्रसन्नं तद्भावेन जनितमुत्पादितमाह्लादं चित्तसुखं येन तथाभूतेनोदकेन युक्तं सच्छाद्वलं शोभनदूर्वासंयुक्तं च सदिति। तथा च पराशरः—

'अथ पुष्पितफलितहरितस्निग्धत्वक्पत्रप्रशस्तनामाङ्कितसौम्यद्विजनिषेविततरुच्छा-योपगूढे सस्यकुसुमहरितमृदुशाद्वलसक्तमृष्टहृद्यप्रसन्नसलिलावकाशे देवर्षिसिद्धसाधुद्विजा-वासे प्राङ्मुखोत्तरोत्तरपूर्वाभिमुखो वा यः पृच्छेत्तस्य प्रार्थितार्थोपपत्तिमभिनिर्दिशेत्' इति।।२।।

अथाशुभस्थानप्रदर्शनार्थमाह—

छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत्कुजैः।
क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णचर्मभिः॥३॥

जहाँ कटा-फटा, कीड़ों से खाये, काँटेदार, जले, रूखे और कुटिल वृक्ष हों तथा अशुभ पक्षियों (काक, गृद्ध, बक आदि) से युत, बहुत पत्र और खालों से रहित वृक्ष हो, वहाँ प्रश्न करना अशुभ होता है।।३।।

एवंविधैः कुजैर्वृक्षैर्युक्ते स्थाने न सद् शुभं प्रष्टुर्वदेत्? कीदृशैः? छिन्नैः कल्पितैः। भिन्नैः स्फटितैः। कृमिखातैः कीटभक्षितैः। सकण्टकिभिः सकण्टकैः। प्लुष्टैर्दग्धैः। रूक्षै-

रस्निग्धै:। कुटिलैरस्पष्टै:। न शोभनम्। कौ भूमौ जायन्त इति कुजा:। तथा क्रूरैरनिष्टै: पक्षिभिर्विहगै: काकगृध्रबकाद्यैर्युक्तै:। निन्द्यनामभि: कुत्सितसंज्ञैर्विभीतकवेतसप्रभृतिभि:। शुष्कैर्नीरसै:। तथा शीर्णानि च्युतानि बहूनि प्रभूतानि पर्णानि पत्राणि चर्माणि त्वचो येषां तै:।।३।।

तथान्यदप्याह—

श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं तथाऽमनोज्ञं विषमं सदोषर ।
अवस्कराङ्गारकपालभस्मभिश्चितं तुषै: शुष्कतृणैर्न शोभनम्।।४।।

श्मशान, शून्य देवगृह, चौराहा, चित्त में ग्लानि उत्पन्न करने वाला, विषम (निम्नोन्नत), सदा ऊषर रहने वाला, अशुद्ध फूटे भाण्ड, कोयला, आदमी की खोपड़ी, भस्म, तुष और सूखे घास से व्याप्त स्थान में प्रश्न करना अशुभ होता है।।४।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां न शोभनं न शुभदम्। कीदृशम्? श्मशानं शवशयनप्रदेशम्। शून्यायतनं उद्वसितदेवगृहम्। चतुष्पथं चत्वार: पन्थानो यत्र। तथा अमनोज्ञमचित्ताह्लादकम्। विषमं निम्नोन्नतम्। सदा सर्वकालमूषरं सिकतासंयुक्तम्। अवस्करैर्गृहच्युतैरशुचिभिरनुपयोग्यैर्भाण्डैश्चितं व्याप्तम्। तथा अङ्गारैर्दग्धकाष्ठै: कपालैरस्थिशकलैर्भस्मना च चितं संयुक्तम्। तथा तुषै: शालिचर्मभि: शुष्कैर्नीरसैस्तृणैश्च चितं न शोभनमिति।।४।।

अन्यदप्याह—

प्रव्रजितनग्ननापितरिपुबन्धनसौनिकैस्तथा श्वपचै: ।
कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ।।५।।

जहाँ पर संन्यासी, नंगे आदमी, नाई (हजाम), शत्रु, बन्धनशाला, कसाई, चाण्डाल, धूर्त, यति—ये सभी रहते हों, वहाँ प्रश्न नहीं करना चाहिये तथा शस्त्र और मद्य के विक्रयस्थान में भी प्रश्न करना अशुभ होता है।।५।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां न शुभम्। कीदृशम्? प्रव्रजितस्तापसो लिङ्गी। नग्नो विवस्त्र:। नापित: प्रसिद्ध: शिल्पी। रिपु: शत्रु:। बन्धनं बन्धनशाला। सौनिक: पशुघातक:। एतैर्युक्तं यत्स्थानम्। तथा श्वपचै: प्रसिद्धै:। कितवो द्यूतकर:। यतिस्त्रिदण्डी। पीडितो व्याध्यर्दित:। एतैर्युतं यत्स्थानम्। तथा आयुधशाला यत्र। माध्वीकं मधु तच्छाला यत्र। विक्रयशाला यत्राऽऽकल्पपालगृहसमीपमेतैर्न शुभमिति।।५।।

अथ दिक्काललक्षणमाह—

प्रागुत्तरेशाश्च दिश: प्रशस्ता: प्रष्टुर्न वाय्वम्बुयमाग्निरक्ष: ।
पूर्वाह्णकालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ।।६।।

पूर्व, उत्तर या ईशान कोण की तरफ मुंह करके प्रश्न करना शुभ और वायव्य, पश्चिम, दक्षिण, आग्नेय या नैर्ऋत्य कोण की तरफ मुख करके प्रश्न करना अशुभ होता है; साथ ही पूर्वाह्ण समय में शुभ और रात्रि, दोनों सन्ध्याओं या अपराह्ण में प्रश्न करना अशुभ होता है।।६।।

दिश आशाः। प्रागुत्तरेशाः, पूर्वा उत्तरा ऐशानी, इन्द्रकुबेरशिवदिशः। पृच्छायां प्रशस्ताः शुभाः। प्रष्टुः प्रच्छकस्य तदभिमुखः शुभ इत्यर्थः। न वाय्वम्बुयमाग्निरक्षः, वायवीवारुणदक्षिणाग्नेयीनैर्ऋताश्च न शुभाः। एता दिशः प्रष्टुः पूर्वाह्णकाले दिनस्य प्राग्भाग-समये प्रश्नकृतः प्रच्छकस्य शुभं शोभनफलमस्ति विद्यते। रात्रौ निशि सन्ध्याद्वये सायं प्रातरपराह्णे च न शोभनमिति। तथा च पराशरः—

'छिन्नभिन्नशुष्करूक्षवक्रजन्तुजग्धदग्धकण्टकिक्रव्याददिजनिषेविताप्रशस्तनामाङ्कित-पादपच्छाये श्मशानशून्यायतनचत्वरोषररिपुनापितायुधमद्यविक्रयशालासु नैर्ऋताग्नेययाम्य-वारुणवायव्याशाभिमुखः प्रचोदयेत्तस्येष्टमर्थमनर्थाय विन्द्यात्'।। इति। अपि च—

वेलाः सर्वाः प्रशस्यन्ते पूर्वाह्णे परिपृच्छताम्।
सन्ध्ययोरपराह्णे तु क्षपायां तु विगर्हिताः।। इति।।६।।

अथान्यच्छुभाशुभलक्षणमाह—

यात्राविधाने हि शुभाशुभं यत्प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम्।
दृष्ट्वा पुरो वा जनताहृतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ।।७।।

यात्रा के विधान में जो शुभाशुभ निमित्त कहे गये हैं, उन निमित्तों को सम्मुख, किसी मनुष्य से लाये हुए, प्रश्नकर्ता के हस्त में या वस्त्र में देखकर शुभाशुभ फल कहना चाहिये। जैसे सरसों, शीशा, जल और कागज देख कर शुभ तथा कपाल, औषध और काले धान्य देख कर अशुभ कहना चाहिए।।७।।

यात्राविधाने यच्छुभाशुभं कथितं प्रोक्तम्—'सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि' इति शुभदम्। 'कार्पासौषधकृष्णधान्यम्' इत्यशुभदम्। तथा तत्र शाकुनं यन्निमित्तं प्रोक्तं तदिहापि प्रश्न-समये वाच्यं वक्तव्यम्। पुरोऽग्रतो वा दृष्ट्वाऽवलोक्य जनतया जनसमूहेन वा आहृतमानीतं प्रष्टुः प्रच्छकस्य पाणितले हस्ते वस्त्रे वा स्थितं दृष्ट्वा शुभमादिशेत्। तथा च पराशरः—

यात्राविधाने निर्दिष्टं निमित्तं यच्छुभाशुभम्।
तदेव दृष्ट्वा दैवज्ञो वाञ्छासिद्धिं विनिर्दिशेत्।। इति।।७।।

अधुना अङ्गानि पुंसंज्ञकान्याह—

अथाङ्गान्यूर्वोष्ठस्तनवृषणपादं च दशना
भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखाङ्गुष्ठमपि यत्।
सशङ्खं कक्षांसं श्रवणगुदसन्धीति पुरुषे

ऊरु, ओठ, स्तन, अण्डकोश, पाँव, दाँत, बाहु, हाथ, गाल, केश, कण्ठ, नख, अंगूठा, शंख, काँख, कन्धा, कान, गुप्तेन्द्रिय, दो अंगों के सन्धि स्थान—ये सब पुरुष-संज्ञक कहे गये हैं।

अथानन्तरं पुंसञ्ज्ञकान्यङ्गानि भवन्ति। ऊरू। ओष्ठौ दन्तच्छदौ। स्तनौ प्रसिद्धौ।

वृषणौ मुष्कौ। पादौ चरणौ। दशना दन्ताः। भुजौ बाहू। हस्तौ करौ। गण्डौ मुखकपोलौ। कचाः केशाः। गलं कण्ठम्। नखाः कररुहाः। अङ्गुष्ठौ हस्तपादाङ्गुष्ठौ। सशङ्खं कक्षांसम्, सह शङ्खाभ्यां वर्तते यत्कक्षांसम्। शङ्खौ प्रसिद्धौ। कक्षौ बाहुमूलतलौ। अंसौ स्कन्धौ। श्रवणौ कर्णौ। गुदं पायुस्थानम्। सन्धिग्रहणेन सर्वाङ्गसन्धय उच्यन्ते। इत्येवं प्रकाराः सर्व एव पुरुषे पुंसि ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अङ्गानि मुष्कस्तनपादोरुगुह्यभुजहस्तसमस्तकर्णांसशङ्खदन्तौष्ठाङ्गुष्ठनखगलगण्ड-केशसन्धयः पुरुषाख्यानि' इति।।

अथ स्त्रीसंज्ञकान्याह—

स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखाङ्गुलिचयम् ।।८।।
जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णियुग्मं जङ्घे नाभिः कर्णपाली कृकाटी ।

भौंह, नाक, स्फिक् (नितम्ब), त्रिवली, कमर, करमध्य की सुन्दर रेखा, अंगुली, जीभ, गर्दन, दोनों जंघाओं के पृष्ठ भाग, एड़ी, जंघा, नाभि, कर्णपाली, कृकाटी (गर्दन का पृष्ठ-भाग)—ये सब स्त्रीसंज्ञक अंग हैं।।८।।

एतान्यङ्गानि स्त्रियो भवन्ति। भ्रूः प्रसिद्धा। नासा घ्राणम्। स्फिजौ प्रसिद्धौ। वलीलेखा यथा त्रिवली। कटिः प्रसिद्धा। सुलेखा शोभनलेखा करमध्यस्था। अङ्गुलिचयोऽङ्गुलिसमूहः। जिह्वा रसना। ग्रीवा शिरोधरा। पिण्डिके जङ्घयोः पश्चिमभागौ। पार्ष्णियुग्मं प्रसिद्धम्। जङ्घे प्रसिद्धे। नाभिस्तुन्दिः। कर्णपाली प्रसिद्धा। कृकाटी ग्रीवापश्चिमभागः। एतानि स्त्रीसंज्ञानि। तथा च पराशरः—'भ्रुवौ नासाग्रीवावलयोऽङ्गुलयो लेखा श्रोणिनाभी रसना जङ्घे पिण्डिके पालिस्फिजौ पार्ष्णिः कृकाटिकेति स्त्रीसञ्ज्ञानि' इति।।८।।

अथ नपुंसकाख्यान्याह—

वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ।।९।।
नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटमाश्वाद्यसंज्ञैरपरैश्चिरेण ।
सिद्धिर्भवेज्जातु नपुंसकैर्नो रूक्षक्षतैर्भग्नकृशैश्च पूर्वैः ।।१०।।

मुख, पृष्ठ, काँखों की सन्धि, जानु, हड्डी, बगल, हृदय, तालु, नेत्र, लिङ्ग, छाती, त्रिक (कटि का पश्चिम भाग), शिर, ललाट—ये सब नपुंसक अंग हैं।

आद्य (पुरुष) संज्ञक अंगस्पर्श करते हुये प्रश्न करे तो शीघ्र सिद्धि होती है। अपर (स्त्रीसंज्ञक) अंग से देर में और नपुंसक संज्ञक अंग स्पर्श करते हुये प्रश्न करे तो कदापि सिद्धि नहीं होती है। यदि पुरुष संज्ञक या स्त्री संज्ञक अंग रूखा, क्षत, भग्न या कृश हो तो कदापि सिद्धि नहीं होती है।।९-१०।।

एतानि नपुंसकाख्यानि। वक्त्रं मुखम्। पृष्ठं शरीरपश्चिमभागः। जत्रुरुरःकक्षयोः सन्धिः। जानुनी प्रसिद्धे। अस्थीनि प्रसिद्धानि। पार्श्वे प्रसिद्धे। हृद्धृदयम्। तालुरास्यपृष्ठ-भागम्। अक्षिणी नेत्रे। मेहनं लिङ्गम्। उरो वक्षः। त्रिकं कटिपश्चिमभागो वलिप्रदेशाः।

शिरो मूर्धा। ललाटं मुखपृष्ठम्। एतत्सर्वं नपुंसकाख्यं स्याद्भवेदिति। तथा च पराशरः—

'शिरोललाटमुखचिबुकपृष्ठजठरजत्रुजान्वस्थिपार्श्वहृदयकर्णपीठाक्षिमेहनोरस्त्रिकतात्वििति नपुंसकाख्यानि' इति।

आश्वाद्यसंज्ञैरिति। आद्यसंज्ञैः प्रथमोक्तैः पुन्नामभिः स्पृष्टैराशु क्षिप्रमेव सिद्धिः स्याद् भवेत्। अपरैस्तदनन्तरोक्तैः स्त्रीनामभिः। चिरेण सिद्धिर्भवेत्। नपुंसकैः स्पृष्टैर्नो जातु न कदाचिदपि सिद्धिः स्यात्।

रूक्षक्षतैरिति। नेत्यनुवर्तते। पूर्वैः पुन्नामभिः स्त्रीनामभिर्वा रूक्षैरस्निग्धैः। क्षतैः सम्प्रहारैः। भग्नैः स्फुटितैः। कृशैरल्पमांसैः। न जातु न कदाचिदपि सिद्धिर्भवेदिति। तथा च पराशरः—

'तत्र पुन्नाम स्निग्धमुचितमनुपहतमक्षतमरोगमङ्गं स्पृष्टं दिग्देशकालव्याहारेष्टदर्शनैरुपपन्नं प्रष्टुः पृच्छार्थं सकलफलमभिनिवर्तयति। स्त्रीसञ्ज्ञमपि पूर्वोक्तलक्षणयुक्तं यत्नात् कालान्तरेण सफलम्। नपुंसकाख्यमकार्यसिद्धिमनर्थानां वाऽऽगमनं कुर्यात्' इति। अपि च—

पुंसंज्ञेष्वाशु सिद्धिः स्यात् स्त्रीसंज्ञेषु चिराद्भवेत्।
अशुभं त्वेव निर्दिष्टं नपुंसकसनामसु।।
पुरुषाख्ये नु संस्पृष्टे बाह्ये रूक्षेऽबले क्षते।
नार्थसिद्धिमतो ब्रूयादङ्गविद्याविशारदः।। इति।।९-१०।।

अथ पृथक् फलनिर्देशार्थमाह—

स्पृष्टे वा चालिते वापि पादाङ्गुष्ठेऽक्षिरुग्भवेत्।
अङ्गुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाद् भयम् ।।११।।

यदि प्रश्नकर्ता पाँव के अंगूठे का स्पर्श करते हुये या उसको हिलाते हुये प्रश्न करे तो नेत्ररोग, अंगुली का स्पर्श करते हुये या हिलाते हुये प्रश्न करे तो कन्या को शोक और शिर पर आघात करते हुए प्रश्न करे तो राजा से भय होता है।।११।।

तत्र पृच्छायां पादाङ्गुष्ठे स्पृष्टे चालिते वा प्रष्टुरक्षिरुग् नेत्रपीडा भवेत् स्यादिति वदेत्। अङ्गुल्यां स्पृष्टायां दुहितृशोकं वदेत्। शिरोघाते शिरोऽभिहन्यमानं पृच्छेत्तदा नृपाद्राजतो भयमिति। तथा च पराशरः—

'अथ पृथक् पृथक् फलनिर्देशः। तत्र पादाङ्गुष्ठे प्रचलयन् स्पृष्ट्वा वा पृच्छेत् प्रष्टुश्चक्षुरोगं विनिर्दिशेत्। अङ्गुलिं स्पृष्ट्वा दुहितृशोकं शिरोऽभिहन्यमानं राजतो भयम्' इति।।११।।

अन्यदप्याह—

विप्रयोगमुरसि स्वगात्रतः कर्पटाहतिरनर्थदा भवेत्।
स्यात् प्रियाप्तिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणपादयोजितुः ।।१२।।

यदि प्रश्न करने वाला छाती को छूते हुए प्रश्न करे तो विप्रयोग (किसी स्नेही से वियोग) होता है। अपने शरीर से कोई वस्त्र उतारते हुए प्रश्न करे तो अनर्थ होता है और वस्त्र को पकड़ कर एक पाँव को दूसरे पाँव पर रखते हुए प्रश्न करे तो प्रिय का लाभ होता है।।१२।।

उरसि वक्षसि स्पृष्टे प्रष्टुः केनचित् सह विप्रयोगं वदेत्। स्वगात्रत आत्मीयशरीरात् कर्पटाहतिः वस्त्रत्यागः, अनर्थदा अनिष्टदा भवेत् स्यात्। कर्पटं वसनमभिगृह्य प्राप्य चरणं पादं द्वितीयचरणे योजयति तस्य पृच्छतः प्रष्टुः प्रियाप्तिः प्रियलाभः स्याद्भवेत्। तथा च पराशरः—

उरः स्पृष्ट्वा विप्रयोगं स्वगात्राद्वस्त्रमुत्सृजेत्।
तस्यानर्थागमं पादं पादेन संस्प्रशेत् पटम्।।
तमभिगृह्य वा पृच्छेद्विन्द्यात् प्रियसमागमम्।। इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

पादाङ्गुष्ठेन विलिखेद् भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया।
हस्तेन पादौ कण्डूयेत्तस्य दासीमयी च सा ।।१३।।

यदि प्रश्नकर्त्ता पाँव के अंगूठे से भूमि पर लिखे तो खेत की चिन्ता और दोनों हाथों से दोनों पाँवों को खुजलावे तो दासी की चिन्ता कहनी चाहिये।।१३।।

प्रष्टा क्षेत्रोत्थचिन्तया पादाङ्गुष्ठेन भूमिमवनिं विलिखेत्। हस्तेन करेण पादौ चरणौ कण्डूयेत्तदा चित्तस्य सा च चिन्ता दासीमयी दासीकृता। तथा च पराशरः—

अङ्गुष्ठेन लिखेद् भूमिं क्षेत्रचिन्तां विचिन्तयेत्।
हस्तेन पादौ कण्डूयेत् कुर्याद्दासीकृतां स ताम्।। इति ।।१३।।

अन्यदप्याह—

तालभूर्जपटदर्शनेंऽशुकं चिन्तयेत् कचतुषास्थिभस्मगम्।
व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं वल्कलं च समवेक्ष्य बन्धनम् ।।१४।।

यदि प्रश्न करने के समय ताड़ के वृक्ष के पत्ते, भोजपत्र या वस्त्र का दर्शन हो तो वस्त्र की चिन्ता कहनी चाहिये। केश, तुष (धान्यों की भूसी), हड्डी या भस्म पर बैठा हुआ प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो व्याधि होती है तथा प्रश्नकाल में रस्सी का जाल और वृक्ष का खाल देखने से बन्धन होता है।।१४।।

तालवृक्षपत्रदर्शने भूर्जपटदर्शने वा प्रष्टा अंशुकं वस्त्रं चिन्तयेत्। कचतुषास्थिभस्मगं व्याधिराश्रयति। कचाः केशाः। तुषं शालिचर्म। अस्थि प्रसिद्धम्। भस्म प्रसिद्धमेव। एषामन्यतम उपगतं प्रष्टारं व्याधिः पीडा। आश्रयति आवृणोति। रज्जुः प्रसिद्धा। जालकं यत्र पक्षिणो बध्यन्ते। वल्कलं त्वक्। एषामन्यतमे स्थितं तं वा समवेक्ष्यावलोक्य गृहीत्वा वा पृच्छेत् तदा बन्धनं वदेत्। तथा च पराशरः—

तालभूर्जपत्रदर्शने वस्त्रार्थं केशास्थि-
भस्मान्याक्रम्य व्याधिभयं ब्रूयात्।
निगडजालरज्ज्वाश्रित्य वल्कला-
न्यधिष्ठाय दर्शने वा बन्धनभयम्।। इति।।१४।।

अन्यदप्याह—

पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः।
गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत्पृच्छतस्तगरकेण चिन्तयेत्।।१५।।

स्त्रीपुरुषदोषपीडितसर्वार्थसुतार्थधान्यतनयानाम्।
द्विचतुष्पदक्षितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः।।१६।।

यदि प्रश्नकाल में पीपल, मिर्च, सोंठ, मुस्ता (नागरमोथा), लोध्र, कूट, वस्त्र, नेत्रबाला, जीरा, गन्धमांसि (बाल छड़), सोंफ और तगर के फूल का दर्शन हो तो क्रम से स्त्री के दोष, पुरुष के दोष, रोगी, सर्वनाश, अर्थनाश, पुत्रनाश, अर्थनाश, धान्यनाश, पुत्रनाश, द्विपदनाश, चतुष्पदनाश और भूमिनाश की चिन्ता कहनी चाहिए। जैसे पीपल के दर्शन से स्त्रीदोष की, मिर्च के दर्शन से पुरुषदोष की, सोंठ के दर्शन से रोगी इत्यादि की चिन्ता कहनी चाहिये।।१५-१६।।

पिल्पल्यादिदर्शने स्त्र्यधिकृतां चिन्तां क्रमशो वदेत्। तत्र पिप्पलीदर्शने या स्त्री दोषसंयुता सदोषा तत्कृतां चिन्तां प्रवदेत्। मरिचदर्शने पुरुषस्य दोषसंयुतस्य सपापस्य चिन्तां वदेत्। शुण्ठिदर्शने पीडितस्य व्याधितस्य मृतस्य वा चिन्ताम्। वारिदा मुस्तास्तेषां दर्शने सर्वनाशकृताम्। रोध्रदर्शने अर्थनाशकृताम्। कुष्ठदर्शने सुतनाशकृतां पुत्रविनाशजाम्। वसनं वस्त्रं तद्दर्शने अर्थनाशकृताम्। अम्बुनो बालकस्य दर्शने धान्यनाशकृताम्। जीरकमजाजी तद्दर्शने तनयस्य पुत्रस्य नाशकृताम्। गन्धमांस्या द्विपदानां द्विशफानां नाशकृताम्। शतपुष्पया चतुष्पदानां चतुःशफानां नाशकृताम्। तगरकेण क्षितेर्भूमेर्नाशकृतां चिन्ताम्। एतैः कीर्तितैरुच्चारितैर्वा दृष्टैरवलोकितैर्वा विनाशतो विनाशहेतोः पृच्छा भवति। तथा च पराशरः—

'पिप्पलीनां दर्शने प्रदुष्टस्त्रीकृतां चिन्तां मरिचस्य पापपुरुषकृतां शृङ्गवेरस्य मृतचिन्ताम्। अजाज्याः सुतनाशकृतां रोध्रस्यार्थनाशकृतां मुस्तस्य सर्वनाशकृतां कुष्ठस्य सुतनाशकृतां वस्त्रस्यार्थनाशकृतां ह्रीवेरस्य धान्यनाशकृतां तगरस्य भूमिनाशकृतां शतपुष्पया चतुष्पन्नाशाय मांस्या द्विपदनाशकृताम्' इति।।१५-१६।।

अन्यदप्याह—

न्यग्रोधमधुकतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरजातिफलैः।
धनकनकपुरुषलोहांशुकरूप्यौदुम्बराप्तिरपि करगैः।।१७।।

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता के हाथ में बड़, महुआ, तिन्दू, जामुन, पाकड़, आम

और बैर का फल हो तो क्रम से धन, सुवर्ण, द्विपद, लोहा, वस्त्र, चाँदी और औदुम्बर (ताँबा) की प्राप्ति कहनी चाहिए। जैसे बड़ का फल हाथ में हो तो धन की प्राप्ति, महुआ का फल हाथ में हो तो सुवर्ण की प्राप्ति इत्यादि कहनी चाहिये।।१७।।

न्यग्रोधादिजातीफलैस्तत्सम्भवैः फलैः करगैर्हस्तगैर्धनाद्याप्तिर्भवति। तत्र न्यग्रोधजातीफलैः प्रष्टुर्हस्तस्थैर्धनाप्तिर्वित्तलाभो भवेत्। मधुकफलैः कनकस्य प्राप्तिः। तिन्दुकफलैः पुरुषस्य द्विपदस्य प्राप्तिः। जम्बूफलैर्लोहस्य। प्लक्षफलैरंशुकस्य वस्त्रस्य। आम्रफलै रूप्यस्य। बदरफलैरौदुम्बरस्य ताम्रस्येति। तथा च पराशरः—

'अश्वत्थन्यग्रोधफलैर्हस्तस्थैः पृच्छेद्धनागममादिशेत्। मधुकौदुम्बरफलैः काञ्चनागमम्। द्विपदागमं तिन्दुकैः। वस्त्रागमं प्लक्षजैः। रूप्यस्यागममाम्रैः। ताम्रस्यागमं बदरैः। लोहस्यागमं जम्बूकैरिति वा' इति।।१७।।

अन्यदप्याह—

धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरौ।
गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरम् ॥१८॥

यदि प्रश्नकाल में धान्यों से परिपूर्ण पात्र या पूर्ण घट दिखाई दे तो कुटुम्बों की वृद्धि होती है। यदि हाथी की लीद, गाय का गोबर और कुत्ते की विष्ठा दिखाई दे तो क्रम से धन का विनाश, युवती स्त्री का विनाश और मित्रों का विनाश कहना चाहिये।।१८।।

धान्येन परिपूर्णं पात्रं भाजनं कुम्भः पूर्णश्च तौ दृष्टौ कुटुम्बवृद्धिकरौ गजगोशुनां पुरीषं यथासंख्यं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरं भवति। गजस्य हस्तिन पुरीषं दृष्टं धनस्यैश्वर्यस्य विनाशकरम्। गोपुरीषं गोमयं युवतीनां स्त्रीणां विनाशकरम्। शुनः पुरीषं सुहृदां मित्राणां विनाशकरमिति। तथा च पराशरः—

'धान्यपात्रपूर्णोदकुम्भदर्शने कुटुम्बवृद्धिं जानीयात्। हस्तिना द्रव्यागमम्। हस्तिशकृतो भ्रंशमैश्वर्यस्य वा। गोमयस्य स्त्रीव्यभिचारम्। शुनः सुहृद्विनाशम्' इति।।१८।।

अन्यदप्याह—

पशुहस्तिमहिषपङ्कजरजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टैः।
अविधननिवसनमलयजकौशेयाभरणसङ्घातम् ॥१९॥

यदि प्रश्नकाल में पशु, हाथी, भैंस, कमल, चाँदी और बाघ दिखाई दे तो क्रम से कम्बल आदि ऊनी वस्त्र, धन, रेशमी वस्त्र, चन्दन, रेशमी वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है।।१९।।

पश्वादिभिः पृच्छासमये सन्दृष्टैरवलोकितैरव्याद्याभरणानां सङ्घातं समूहं प्रष्टा लभते। तत्र पशुदर्शने आविकस्यौर्णिकस्य कम्बलादेर्लाभः। हस्तिनः करिणो दर्शने धनागमः। महिषस्य दर्शने निवसनस्य क्षौमवस्त्रस्य। पङ्कजस्य पद्मस्य दर्शने मलयजस्य चन्दनस्य।

रजतस्य रूप्यस्य दर्शने कौशेयवस्त्रस्य। व्याघ्रस्य सन्दर्शने आभरणागमः। तथा च पराशरः—

'महिषस्य क्षौमवस्त्रागमम्। मणिभाण्डस्य गजवाजिनामौर्णिकानाम्। व्याघ्रस्याभरणागमम्। पङ्कजस्य रक्तवस्त्रचन्दनलाभम्। रूप्यस्य कौशेयवस्त्राणाम्' इति।।१९।।

अन्यदप्याह—

पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिव्राड्दर्शने नृभिर्विहिता।
मित्रद्यूतार्थभवा गणिकानृपसूतिकार्थकृता ।।२०।।

यदि प्रश्नकाल में वृद्ध श्रावक (कापालिक) का दर्शन हो तो मित्र, द्यूत और धनसम्बन्धी चिन्ता तथा उत्तम संन्यासी का दर्शन हो तो वेश्या, राजा और प्रसूता स्त्री के लिये चिन्ता कहनी चाहिये।।२०।।

वृद्धश्रावकः कापालिकस्तद्दर्शने तदालोकने नृभिः पुम्भिर्मित्रद्यूतार्थभवा पृच्छा विहिता कृता मित्रार्थं द्यूतार्थं वा कृता। सुपरिव्राड्दर्शने यत्याद्यवलोकने लिङ्गिनो वा गणिकानृपसूतिकार्थकृता पृच्छा। गणिका वेश्या। नृपो राजा। सूतिका प्रसूता स्त्री। तत्कृता।।२०।।

अन्यदप्याह—

शाक्योपाध्यायार्हन्निर्ग्रन्थिनिमित्तनिगमकैवर्तैः ।
चौरचमूपतिवणिजां दासीयोधापणस्थवध्यानाम् ।।२१।।

यदि प्रश्नकाल में बौद्धमतानुयायी, उपाध्याय, अर्हत्, निर्ग्रन्थी, दैवज्ञ, निगम और धीवर दिखाई दे तो क्रम से चोर, सेनापति, बनियाँ, दासी, योद्धा, दुकानदार और वध-सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२१।।

शाक्यादीनां दर्शने चौरादीनां पृच्छा। शाक्यदर्शने चौरकृता। उपाध्यायदर्शने चमूपतिकृता सेनापतिकृता। अर्हद्दर्शने वणिक्कृता। निर्ग्रन्थिदर्शने दासीकृता। नैमित्तिकस्य दैवविदो दर्शने योधकृता। निगमदर्शने आपणस्थस्य श्रेष्ठिनः कृता। कैवर्तस्य धीवरस्य दर्शने वध्यकृता चिन्ता इति।।२१।।

अन्यदप्याह—

तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितं पशुपालनम्।
हृद्गतं प्रच्छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ।।२२।।

यदि प्रश्नकाल में तापस (तपस्वी) का दर्शन हो तो प्रवासी की और कलाल (मद्य बेचने वाले) का दर्शन हो तो पशुओं की रक्षासम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। यदि उञ्छ वृत्ति (गिरे हुये एक-एक दाने को इकट्ठा करने वाले) का दर्शन हो तो विपत्ति की चिन्ता कहनी चाहिए।।२२।।

तापसे दृष्टेऽवलोकिते प्रच्छकस्य प्रष्टुर्हृद्गतं चित्तस्थम्। प्रोषितः प्रवासी यः कश्चित् स्थितः। तं प्रवासिनम्। शौण्डिके मद्यासक्ते दृष्टे पशुपालनं चित्तस्थम्। उञ्छवृत्तौ शिलोञ्छवृत्तौ दृष्टे विपन्नतार्था चिन्ता। तथा च पराशरः—

'निर्ग्रन्थिदर्शने दासीपृच्छा। वृद्धश्रावकदर्शने मित्रद्यूतकृता वा। शाक्यस्य चौरकृता। परिव्राजकस्य नृपसूतिकागणिकार्था वा। उपाध्यायस्य चमूपतिकृता। नैगमस्य श्रेष्ठिकृता। नैमित्तिकस्य योधार्था। अर्हतो वाणिजिकार्था। उञ्छवृत्तिनो विपन्नार्था। तापसस्य प्रोषितार्था। शौण्डिकस्य पशुपालनार्था। कैवर्तस्य वध्यघातकृता' इति।।२२।।

अन्यदप्याह—

इच्छामि प्रष्टुं भण पश्यत्वार्यः समादिशेत्युक्ते।
संयोगकुटुम्बोत्था लाभैश्वर्योद्गता चिन्ता ।।२३।।

यदि प्रश्न करने के समय प्रश्नकर्त्ता के मुख से पहले-पहल 'मैं पूछना चाहता हूँ आप कहिए' इस तरह का शब्द निकले तो सन्धि या कुटुम्बसम्बन्धी, 'आप देखिये' इस तरह का शब्द निकले तो लाभसम्बन्धी और 'आप आज्ञा दें' इस तरह का शब्द निकले तो ऐश्वर्यसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२३।।

इच्छामीत्याद्युक्ते यथासङ्ख्यं संयोगादिकृता चिन्ता ज्ञेया। इच्छामि प्रष्टुमिति भणेति उक्ते संयोगकुटुम्बकृतां चिन्तां वदेत्। पश्यत्वार्य इत्युक्ते लाभोद्गतां लाभार्थकृतां चिन्तां समादिशेत्। समादिशेत्युक्ते ऐश्वर्योद्गतां चिन्तामिति।।२३।।

अन्यदप्याह—

निर्दिशेति गदिते जयाध्वजा प्रत्यवेक्ष्य मम चिन्तितं वद।
आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति च बन्धुचौरजा ।।२४।।

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता के मुख से पहले-पहल 'बताइये' ऐसा शब्द निकले तो जय या मार्गसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। 'देख कर मेरे हृदयगत बात को बताइये' ऐसा निकले तो बन्धुकृत और 'आप शीघ्र देखिये' ऐसा शब्द निकले तो सब लोगों के मध्यगत प्रश्नकर्त्ता को चोरसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२४।।

निर्दिशेति गदिते उक्ते पृच्छा जयाध्वजा। जयार्थं जाता कृता। अध्वजा वा। प्रत्यवेक्ष्य वेति विचार्य मम चिन्तितं हृद्गतं वदेत्युक्ते बन्धुकृता। सर्वजनमध्यगं प्रष्टारमेवं वक्ति। आशु क्षिप्रमेव त्वया च दृश्यतामिति चौरजा तस्करकृता चिन्ता। तथा च पराशरः—

'आदिशार्येत्येवं पृच्छेदैश्वर्यचिन्ताम्। भणेत्युक्ते कुटुम्बकृताम्। इच्छामि प्रष्टुमिति संयोगकृताम्। पश्यत्वार्य इति लाभकृताम्। निर्दिशेत्यध्वकृताम्। जयपृच्छां वा। पृच्छामि तावदाचार्येति वा सम्यक् मां प्रत्यवेक्षस्वेति बन्धुकृताम्। अथ काले निःश्वसनान्तः सहसा बहुजनमध्यगतं दृश्यतामिति पृच्छेदिति चौरचिन्तां जानीयात्' इति।।२४।।

अथ चौरविज्ञानमाह—

अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एव
पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया दासदासीजनः स्यात्।
जङ्घे प्रेष्यो भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या
पाण्यङ्गुष्ठाङ्गुलिचयकृतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥२५॥

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता भीतर के अंग का स्पर्श करे तो अपना मनुष्य, बाहर के अंग का स्पर्श करे तो बाहर के मनुष्य, पाँव के अंगूठे का स्पर्श करे तो दास, पाँव की अंगुली का स्पर्श करे तो दासी, जङ्घा का स्पर्श करे तो प्रेष्य (दूत), नाभि का स्पर्श करे तो बहन, हृदय का स्पर्श करे तो अपनी स्त्री, हाथ के अंगूठे का स्पर्श करे तो अपना पुत्र और हाथ की अंगुली का स्पर्श करे तो अपनी कन्या को चोर कहना चाहिये।।२५।।

अन्तःस्थे अभ्यन्तरस्थितेऽङ्गे अवयवे स्पृष्टे पृच्छायां चौरः स्वजन आत्मीय एव उदित उक्तः। बाह्यजेऽङ्गे स्पृष्टे बाह्य एवोदितश्चौरः। पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया पादाङ्गुष्ठे स्पृष्टे दासश्चौरः। अङ्गुलीषु पादस्थास्वेव स्पृष्टासु दासीजनः स्याद्भवेत्। जङ्घस्पर्शने प्रेष्यः कर्मकरो भवति। नाभितो भगिनी। हृदि स्वभार्या आत्मीया जाया। पाणिर्हस्तः। तदङ्गुष्ठस्पर्शने पुत्रः। अङ्गुलिचयस्पर्शने कन्या आत्मीया तनया चौरी। एवं कृतस्पर्शने चौरज्ञानम्।।२५।।

अन्यदप्याह—

मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ।
बाहू भ्राताऽथ तत्पत्नी स्पृष्ट्वैवं चौरमादिशेत् ॥२६॥

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता पेट का स्पर्श करे तो माता, शिर का स्पर्श करे तो गुरु, दक्षिण भुजा का स्पर्श करे तो भाई और वाम भुजा का स्पर्श करे तो भाभी को चोर कहना चाहिये।।२६।।

जठरे उदरे स्पृष्टे मातरं स्वजननीं चौरीम्। मूर्ध्नि शिरसि स्पृष्टे गुरुम्। दक्षिणवामकौ बाहू तत्स्पर्शने यथासङ्ख्यं भ्राता तत्पत्नी। दक्षिणबाहुस्पर्शने। भ्राता वामे तत्पत्नी। एवमङ्गस्पर्शने चौरं तस्करमादिशेद्वदेत्। तथा च पराशरः—

'बाह्याङ्गस्पर्शने बाह्यचौरम्। अन्तः स्वकृतम्। तत्र पादाङ्गुष्ठे दासम्। अङ्गुलीषु दासीम्। जङ्घयोः प्रेष्यम्। जठरे मातरम्। हस्ताङ्गुलिषु दुहितरम्। अङ्गुष्ठे सुतम्। नाभ्यां भगिनीम्। गुरुं शिरसि। हृदि भार्याम्। दक्षिणबाहौ भ्रातरम्। वामे भ्रातृभार्याम्' इति।।२६।।

अथापहृतस्य लाभज्ञानमाह—

अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः।
श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजत्यथो पातयेत् करतलस्थवस्तु चेत् ॥२७॥
भृशमवनामिताङ्गपरिमोटनतोऽप्यथवा
जनधृतरिक्तभाण्डमवलोक्य च चौरजनम्।

हृतपतितक्षतास्मृतविनष्टविभग्नगतो-
न्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥२८॥

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता भीतर के अंगों को छोड़ कर बाहर के अंगों का स्पर्श करे, कफ फेंके, मूत्रोत्सर्ग या मलोत्सर्ग करे, अपने हाथ की वस्तु को गिरावे, अपने शरीर को झुकावे या अपने अंग को तोड़े तो चोरी गई वस्तु पुनः नहीं प्राप्त करता है तथा किसी के हाथ में खाली पात्र या चोर को देख कर भी चोरी गई वस्तु नहीं प्राप्त करता है। अथवा प्रश्न के समय 'हर लिया, गिर गया, कट गया, भूल गया, नष्ट हो गया, टूट गया, चोरी गया, मर गया आदि अनिष्ट शब्द उत्पन्न हों तो भी चोरी गई वस्तु' पुनः प्राप्त नहीं होती है।।२७-२८।।

एवंविधैर्निमित्तैः प्रष्टा हृतं न लभते। कैरित्याह—अन्तरङ्गमभ्यन्तरस्थितमवयवमवमुच्य परित्यज्य बाह्यगावयवस्पर्शनं यदि पृच्छकः करोति, अथवा श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजति तत्कालं परित्यजति, अथवा करतलस्थं पाणितले स्थितं यत्किञ्चिद्वस्तु पातयेत्।

अथवा भृशमत्यर्थमवनामिताङ्ग अवनामितावयवाङ्गानामेव परिमोटनं चटचटाशब्द-मुत्पादयति। तथा तत्कालं जनधृतं लोकगृहीतं रिक्तभाण्डमवलोक्य दृष्ट्वा। तथा चौरजनं तस्करजनमवलोक्य, अथवा हृतः पतितः क्षतः अस्मृतो विनष्टो विभग्नो गत उन्मुषितो मृतः। एषामनिष्टरवतः शब्दश्रवणात्। आदिग्रहणात् कष्टदुष्टानिष्टशीर्णशब्दश्रवणाद् हृतं प्रहृतं न लभत इति। तथा च पराशरः—

'अभ्यन्तरगं स्पृष्ट्वा बाह्यं स्पृशेन्निर्हरणं वा श्लेष्मपुरीषमूत्रत्यागं कुर्याद्धस्ताद्वा किञ्चित् पातयेत्। गात्राणि वा स्फोटयेत्। क्षतहृतपतितमुषितविस्मृतनष्टकष्टदुष्टानिष्ट-भग्नगतजीर्णशब्दप्रादुर्भावो वा स्यात्। रिक्तभाण्डतस्कराणां दर्शने न प्रष्टा लाभं विन्द्यात्' इति।।२८।।

अथ पीडार्तानां मरणज्ञानमाह—

निगदितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः
सह मृतिकरं पीडार्तानां समं रुदितक्षतैः ।

नष्ट चिन्ता में प्रतिपादित पूर्वोक्त (अन्तरङ्ग इत्यादि) स्थिति यदि तुष (धान्यों की भूसी), हड्डी, विष आदि देखने के साथ अथवा रोने या छींक के साथ हो तो रोगियों की मृत्यु होती है।

अन्तरङ्गवमुच्येति आरभ्य यदिदं नष्टचिन्तायां निगदितमुक्तम्। तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः सह साकं तथा रुदितक्षतैः सह समं पीडार्तानां रोगिणां मृतिकरं मरणं करोति। आदि-ग्रहणाच्छिन्नमृतिजग्धपाटितशब्दैरिति। तथा च पराशरः—

'अथ रोगाभिघातच्छर्दमूत्रपुरीषोत्सर्गे केशास्थिभस्मतुषविषादीनामशुभानां दर्शने तथा

छिन्नभिन्नव्यापन्नहतमृतावक्षतजग्धदग्धबद्धपाटितरुदितशब्दश्रवणे वा रोगिणां मरणमादिशेत्' इति।

अथ भोजनज्ञानमाह—

अवयवमपि स्पृष्ट्वाऽन्तःस्थं दृढं मरुदाहरे-
दतिबहु तदा भुक्त्वाऽन्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥२९॥

यदि भीतर के दृढ अंगों को स्पर्श करके श्वास निकालते हुये प्रश्न करे तो प्रश्नकर्ता अधिक अन्न खाकर प्रसन्न बैठा है—ऐसा दैवज्ञ को कहना चाहिए।।२९।।

अन्तःस्थमभ्यन्तरस्थितमवयवं स्पृष्ट्वा मरुद्वायुमाहरेदुद्गिरन् पृच्छेत्तदा प्रच्छकोऽतिबहु अतिप्रभूतमन्नं भुक्त्वा सुहितोऽग्नितृप्तः स्थित इति वदेत्।।२९।।

अन्यदप्याह—

ललाटस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् ।
उरःस्पर्शात् षष्टिकाख्यं ग्रीवास्पर्शे च यावकम् ॥३०॥

यदि प्रश्नकर्ता ललाट का स्पर्श करे या शूक धान्य (यव आदि) का दर्शन करे तो साठी का चावल, छाती का स्पर्श करे तो षष्टिक (साठ रात में होने वाला) धान्य एवं गर्दन का स्पर्श करे तो यव इसने खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३०।।

ललाटस्पर्शनात् शूकधान्यानां वा दर्शनाच्छालिजौदनं प्रच्छकेन भुक्तमिति वदेत्। उरःस्पर्शात् षष्टिकाख्यं धान्यविशेषान्नं ग्रीवास्पर्शे च ग्रावकं यवान्नम्।।३०।।

अन्यदप्याह—

कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः पयस्तिलयवाग्वः ।
आस्वादयते चोष्ठौ लिहते मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥३१॥

यदि प्रश्न के समय कोख, स्तन, पेट और जानु का स्पर्श करे तो क्रम से प्रश्नकर्त्ता माष (उड़द), जल और यव खाकर आया है तथा ओठ को चबावे या चाटे तो मधुर रस खाकर आया है—ऐसा कहना चाहिए।।३१।।

कुक्षिस्पर्शने माषा मुक्ताः। कुचौ स्तनौ। तत्स्पर्शने पयः क्षीरौदनम्। जठरमुदरम्। तत्स्पर्शने तिलौदनम्। जानुस्पर्शने यवागूः यावकम्। ओष्ठावास्वादयते लिहते वा प्रष्टा पृच्छति तदा तेन मधुरं रसं भुक्तमिति ज्ञेयम्।।३१।।

अन्यदप्याह—

विसृक्के स्फोटयेज्जिह्वामाम्ले वक्त्रं विकूणयेत् ।
कटुकेऽथ कषायेऽथ हिक्केत् ष्ठीवेच्च सैन्धवे ॥३२॥

यदि प्रश्न के समय में सृक्क (ओष्ठप्रान्त) में जिह्वा मारे तो प्रश्नकर्ता खट्टा, मुख

खुजलावे तो कड़ुआ, हिचकी करे तो कषैला और थूके तो नमक खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३२।।

जिह्वां रसनां विसृक्के स्फोटयेत् प्रष्टा तदा तेनाम्लं भुक्तम्। वक्त्रं मुखं विकूणयेत् कटुके भुक्ते। असौ प्रच्छक: कषाये भुक्ते हिक्केत्। सैन्धवे लवणे भुक्ते ष्ठीवेत्।।३२।।

अन्यदप्याह—

श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं
श्रुत्वा क्रव्यादं वा प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम्।
भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं तद्
भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ।।३३।।

यदि प्रश्नकाल में कफ फेंके तो थोड़ी सूखी तीती वस्तु और मांसभोजी पक्षी को सुने या देखे तो मांसमिश्रित वस्तु तथा भ्रू, गाल या ओठ का स्पर्श करे तो प्रश्नकर्ता ने पक्षी का मांस खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३३।।

श्लेष्मपरित्यक्ते शुष्कं नीरसं तिक्तं तदल्पं स्तोकं च भुक्तम्। क्रव्यादं मांसाशिनं प्राणिनं श्रुत्वा प्रेक्ष्य दृष्ट्वा तन्मांसमिश्रं भुक्तम्। भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं मांसम्। तेन प्रष्ट्रा तद्भुक्तम्। इत्युक्तमेतत्कथितं निमित्तं चिह्नम्।।३३।।

अन्यदप्याह—

मूर्धगलकेशहनुशङ्खकर्णजङ्घं बस्तिं च स्पृष्ट्वा।
गजमहिषमेषशूकरगोशशमृगमहिषमांसयुग्भुक्तम् ।।३४।।

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता शिर, कण्ठ, ठोढ़ी, केश, कनपटी, कान, जंघा और बस्ति (नाभि और लिंग के बीच का स्थान) का स्पर्श करे तो क्रम से हाथी, भैंस, शूकर, मेष, गौ, खरगोश, मृग और भैंस के मांस से मिश्रित भोजन किया है—ऐसा कहना चाहिये।।३४।।

मूर्धादिस्पर्शने यथाक्रमं गजादिमांसं भुक्तं वक्तव्यम्। मूर्धा शिरस्तत्स्पर्शने गजमांसं कौञ्जरम्। गलस्पर्शने माहिषम्। केशस्पर्शने मेषमांसमौरभ्रम्। हनुस्पर्शने शूकरमांसम्। शङ्खस्पर्शने गोमांसम्। कर्णस्पर्शने शशमांसम्। जङ्घास्पर्शने मृगमांसम्। बस्तिस्पर्शने महिषमांसयुतमेव भुक्तम्।।३४।।

अन्यदप्याह—

दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम्।
गर्भिण्या गर्भस्य च निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ।।३५।।

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता अशकुन देखे या सुने तो गोह या मछली का मांस खाकर आया है—ऐसा कहना चाहिये। इसी तरह गर्भिणी के प्रश्न में गर्भस्राव की

कल्पना करनी चाहिये, जैसे गर्भिणी के प्रश्नकाल में अशकुन देखे या सुने तो गर्भस्राव कहना चाहिए।

अशकुने दृष्टे अवलोकिते वा दुर्निमित्ते गोधामिषं मत्स्यामिषं वा भुक्तं वदेद् ब्रूयात्। एवमेव गर्भपृच्छायामशकुने दुर्निमित्ते श्रुते दृष्टे वा गर्भिण्याः स्त्रियो गर्भनिपतनं प्रकल्पयेद् निर्दिशेदिति। तथा च पराशरः—

'अथ स्निग्धं दृढमभ्यन्तराङ्गं स्पृष्ट्वोद्गिरन् पृच्छेद् भुक्तमन्नं विन्द्यात्। तत्र ललाटस्पर्शे शूकानां वा शाल्योदनम्। उरसि संस्पृष्टे षष्टिकौदनम्। ग्रीवायां यवान्नम्। जठरे तिलौदनम्। कुक्षौ माषौदनम्। स्तनयोः क्षीरौदनम्। जानुनोर्यावकम्। स्वादयेदोष्ठौ वा परिलिहेत मधुरम्। आविसृक्के जिह्वामपि स्फोटयेदाम्लम्। विकूणयेत् कटुकम्। हिक्केत् कषायम्। निष्ठीवेत्तिक्तम्। शुष्कमल्पं श्लेष्माणमुत्सृजेदतिलवणम्। क्रव्यादानां दर्शने मांसप्रायम्। तत्र भ्रूगण्डजिह्वौष्ठसंस्पर्शने शाकुनम्। हन्वोर्वाराहम्। कर्णयोः पार्षदम्। जङ्घयोर्मार्गम्। केशानामौरभ्रम्। शङ्खयोर्गव्यम्। बस्तिगलयोर्माहिषम्। मूर्ध्नि कौञ्जरम्। पाटितच्छिन्नभिन्नानां स्पर्शने श्रवणे गोधामत्स्यमांसम्' इति।।३५।।

अथ गर्भिण्या जन्मज्ञानमाह—

पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते स्पृष्टे।
तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने च शुभम्।।३६।।

यदि गर्भिणी के प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता पुरुष, स्त्री या नपुंसक को देखे, उसकी चिन्ता करे, उसको सम्मुख स्थित देखे या उनका स्पर्श करे तो क्रम से उसी का जन्म कहना चाहिये अर्थात् पुरुष के दर्शन आदि से पुरुष का, स्त्री से स्त्री का और नपुंसक से नपुंसक का जन्म कहना चाहिये। इस समय आसव, अन्न, पुष्प, फल का दर्शन शुभ होता है।

गर्भस्थायां स्त्रियां किं जनयिष्यतीति पृच्छायां पुरुषे दृष्टेऽवलोकितेऽनुमिते वा चिन्तिते पुरोऽग्रतः स्थिते वा स्पृष्टे वा तस्मिंस्तज्जन्म पुंसो जन्म भवति। एवं स्त्रियां दृष्टायामनुमितायां वा पुरतः स्थितायां वा पृष्टायां स्त्रीजन्म भवति। नपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते वा पुरतः स्थिते स्पृष्टे वा नपुंसकजन्म भवति। पानान्नपुष्पफलदर्शने च शुभमिति। पानस्याऽऽसवस्य अन्नस्य भोजनादेः पुष्पाणां कुसुमानां फलानां च दर्शने शुभं जन्म सुखप्रसवो भवतीत्यर्थः।।३६।।

अन्यदप्याह—

अङ्गुष्ठेन भ्रूदरं वाङ्गुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात्।
मध्वाज्याद्यैर्हेमरत्नप्रवालैरग्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च।।३७।।

यदि स्त्री अपने अंगूठे से भ्रूयुगल, पेट या अगुलियों का स्पर्श करके प्रश्न करे या प्रश्नकाल में मधु, घृत आदि (शोभन फल आदि), सुवर्ण, रत्न, मूँगा, मोती, धाई या पुत्र सम्मुख दिखाई दे तो गर्भ की चिन्ता कहनी चाहिये।।३७।।

स्त्री स्वाङ्गुष्ठेन भ्रूयुगमुदरमङ्गुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेत्तदा गर्भः स्याद्भवेत्। अथवा अग्रस्थैः पुरोऽवस्थितैः। मध्वाज्याद्यैः। मधु माक्षिकम्। आज्यं घृतम्। आदिग्रहणात् पुंनामभिः शोभनफलैश्च तथा हेमरत्नप्रवालैः हेम सुवर्णम्, रत्नानि मणयः, प्रवालं विद्रुमम्। तथा मातृधात्र्यात्मजैश्च माता जननी, धात्री स्तनदायिनी, आत्मजः पुत्रः। एतैरप्यग्रस्थैर्गर्भ-पृच्छामेव जानीयात्। तथा च पराशरः—

'अथ स्त्री भ्रुवौ जठरमङ्गुष्ठेन वाऽङ्गुलिं स्पृष्ट्वा पृच्छेद् गर्भपृच्छां जानीयात्। तथा फलच्छायावृक्षप्रवालाङ्कुरमधुघृतहेमगर्भप्राजापत्ये वा मातृधात्रीपुत्रनिदर्शनशब्दप्रादुर्भावे गर्भपृच्छामेव' इति।।३०।।

अन्यदप्याह—

गर्भयुता जठरे करगे स्याद् दुष्टनिमित्तबशात्तदुदासः।
कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करगे च करेऽपि ।।३८।।

यदि प्रश्नकाल में स्त्री पेट पर हाथ रखकर प्रश्न करे तो गर्भ कहना चाहिये। यदि उस समय अशकुन दिखाई दे, प्रश्न करने वाली पीठ को मल कर पेट को खुजलावे या हाथ देकर प्रश्न करे तो गर्भपात कहना चाहिये।।३८।।

जठरे उदरे करगे हस्तेन स्पृष्टे स्त्रीगर्भयुता स्याद्भवेत्। तस्मिन्नेव पृच्छासमये दुष्टनिमित्तवशाद् दुष्टनिमित्तदर्शनात्। क्षतक्षुभितभग्नविनष्टदग्धक्षीरादिदर्शने श्रवणात्तदुदासो गर्भपतनं भवति। अथवा तज्जठरं पीठोत्पीडनतः पीठमर्दनं कृत्वा कर्षति कण्डूयेत्। करगे च करेऽपि हस्तं हस्तेन वा अवलम्ब्य पृच्छति तदापि तदुदास इति।।३८।।

अथ गर्भग्रहणकालज्ञानमाह—

घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत्।
वामेऽब्दौ कर्ण एवं मा द्विचतुर्घ्नः श्रुतिस्तने ।।३९।।

'गर्भ होगा या नहीं' इस तरह के प्रश्नकाल में स्त्री यदि नासिका के दक्षिण द्वार (पिङ्गला नाड़ी) का स्पर्श करे तो एक मास बाद, वाम द्वार (इडा नाडी) का स्पर्श करे तो दो वर्ष में, दक्षिण कर्ण का स्पर्श करे तो दो मास बाद, वाम कर्ण का स्पर्श करे तो दो वर्ष बाद, दक्षिण स्तन का स्पर्श करे तो चार साल बाद और वाम स्तन का स्पर्श करे तो दो वर्ष में गर्भस्थिति होगी—ऐसा कहना चाहिये।।३९।।

अङ्गुष्ठेनेत्यनुवर्तते घ्राणाया नासिकाया दक्षिणे द्वारे स्रोतसि अङ्गुष्ठेन स्पृष्टे गर्भग्रहणं मासोत्तरं वदेद् ब्रूयात्। मासेन गर्भग्रहणं भविष्यतीति। वामे स्रोतसि स्पृष्टे अब्दौ अब्दद्वयेन गर्भग्रहणं भवति। एवं वामे कर्णे वर्षद्वयेनैव। माःशब्देन मास उच्यते। मासो द्विचतुर्घ्नः श्रुतिस्तन इति। श्रुतिः कर्णः। दक्षिणे कर्णच्छिद्रे स्पृष्टे मासो द्विघ्नो द्विगुणितः। मासद्वयेन गर्भग्रहणं भवति। वामे वर्षद्वयेन। स्तनस्पर्शने मासश्चतुर्घ्नश्चतुर्भिर्मासैः। स्तनद्वयस्पर्शने-नेति।।३९।।

अन्यदप्याह—

वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च।
अङ्गुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादाङ्गुष्ठे पार्ष्णियुग्मेऽपि कन्याम् ॥४०॥

यदि 'मुझे कितनी सन्तान होगी' इस तरह के प्रश्नकाल में स्त्री केशपाश का स्पर्श करे तो तीन लड़के और दो लड़कियाँ, कान का स्पर्श करे तो पाँच लड़के, हाथ का स्पर्श करे तो तीन लड़के, कनिष्ठा अंगुलि का स्पर्श करे तो एक लड़का, अनामिका का स्पर्श करे तो दो लड़के, मध्यमा का स्पर्श करे तो तीन लड़के, तर्जनी का स्पर्श करे तो चार लड़के, अगूठे का स्पर्श करे तो पाँच लड़के और पाँव के अंगूठे का या दोनों एड़ियों का स्पर्श करे तो केवल एक कन्या कहनी चाहिये।।४०।।

वेणी केशकलापः। तन्मूले पृच्छायां स्पृष्टे त्रीन् सुतान् द्वे कन्यके जनयिष्यसीति वक्तव्यम्। कर्णे कर्णयुग्मे पुत्रान् पञ्च। हस्ते हस्युगमे त्रयम्। कनिष्ठाङ्गुलेनाऽऽरभ्याङ्गुष्ठान्तं यावदानुपूर्व्या क्रमेण पुत्रपञ्चकं सूते। तत्र कनिष्ठास्पर्शने एकं पुत्रम्। सुतद्वयमनामास्पर्शने। मध्यमायां त्रीन्। तर्जन्यां चतुरः। अङ्गुष्ठे पञ्च। पादाङ्गुष्ठस्पर्शे पार्ष्णियुग्मेऽपि स्पृष्टे कन्यामेकां सूत इति।।४०।।

अन्यदप्याह—

सव्यासव्योरुसंस्पर्शे सूते कन्यासुतद्वयम्।
स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥४१॥

यदि पूर्वोक्त प्रश्नकाल में स्त्री दक्षिण ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़कियाँ, वाम ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़के, ललाट के मध्य का स्पर्श करे तो चार लड़कियाँ औ:र ललाट के अन्त का स्पर्श करे तो तीन लड़कियाँ होती हैं।।४१।।

सव्यं दक्षिणमूरु, तत्संस्पर्शे कन्याद्वयं सुतद्वयं च जनयति। अपसव्ये वामेऽप्येवमेव। ललाटमध्यान्ते स्पृष्टे यथासंख्यम्। ललाटमध्ये स्पृष्टे चतुस्तनया चतुष्पुत्रा। ललाटान्ते स्पृष्टे त्रितनया भवेत् स्यादिति। तथा च पराशरः—

'तत्र जठरस्पर्शे गर्भिणीमेवमेव ब्रूयात्। अङ्गुष्ठेन नासास्रोतसि दक्षिणे कुर्याद् मासान्तरेण गर्भग्रहणम्। वामाद् द्विवर्षान्तरेण। कर्णच्छिद्रे मासद्वयेन। वामे वर्षद्वयेन। स्तनयोरङ्गुष्ठेनैव स्पर्शे चतुर्भिर्मासैः। पीठमर्दकं कृत्वा चानन्तरमुदरं कण्डूयेदग्रहस्तं हस्तेनाभिगृह्य वा पृच्छेद् भग्नलौहिकपिठरकुद्दालककुठारस्रुतिचलितपतितभग्नदर्शनशब्दे प्रादुर्भावे वा गर्भपतनं विन्द्यात्; तथान्नपानपुष्पफलपक्षिद्विचतुष्पदानामन्यद्रव्याणां पुंसंज्ञकानां दर्शनशब्दप्रादुर्भावे पुंजन्म विद्यात्। स्त्रीसंज्ञानां स्त्रीजन्म। नपुंसकाख्ये नपुंसकानाम्। पुंसंज्ञमङ्गं संस्पृश्य गर्भिणी पृच्छेत् पुञ्जन्म विन्द्यात्। स्त्रीसंज्ञानां स्त्रीजन्म। नपुंसकाख्येषु नपुंसकानाम्'।

अथ विशेषः—'वेणीमूलमभिगृह्य पृच्छेत्तदा द्वे कन्यके त्रीन् पुत्रान् जनयिष्यसीति

ब्रूयात्। ललाटमध्यं स्पृशन्ती चत्वार्यपत्यानि। ललाटान्तं त्रीणि। कर्णयोः संस्पर्शे पञ्चापत्यानि। दक्षिणोरुसंस्पर्शे द्वौ पुत्रौ द्वे च कन्यके जनयिष्यसीति। वामस्य तिस्रः कन्या द्वौ पुत्रौ। पादाङ्गुष्ठस्य कन्यकैका। पार्ष्ण्योः कन्यकैकैवेति' इति।।४१।।

अथ गर्भिण्याः कस्मिन्नक्षत्रे जन्तुर्जन्म भविष्यतीति ज्ञानार्थमाह—

शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डं हनुरदा गलम्।
सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ।।४२।।

उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च।
स्फिक्पायुसन्ध्यूरुयुगञ्च जानू जङ्घेऽथ पादाविति कृत्तिकादौ ।।४३।।

'सन्तान किस नक्षत्र में उत्पन्न होगी' इस तरह के प्रश्नकाल में यदि स्त्री शिर, ललाट, भौं, कान, गाल, कनपटी, दाँत, गर्दन, दक्षिण स्कन्ध, वाम स्कन्ध, दोनों हाथ, ठोढ़ी, कण्ठ, छाती, दक्षिण स्तन, वाम स्तन, हृदय, दक्षिण बगल, वाम बगल, पेट, कमर, स्फिक् (कुल्ला) और गुदा की सन्धि, दक्षिण ऊरु, वाम ऊरु, जानु, जंघा और पाँव का स्पर्श करे तो क्रम से कृत्तिका आदि नक्षत्र में जन्म कहना चाहिये। जैसे शिर का स्पर्श करे तो कृत्तिका, ललाट का स्पर्श करे तो रोहिणी, भौं का स्पर्श करे तो मृगशिरा इत्यादि में जन्म कहना चाहिये।।४२-४३।।

सूत इत्यनुवर्तते। पृच्छासमये गर्भिण्याः शिरःप्रभृतिसंस्पर्शे कृत्तिकादौ नक्षत्रे जन्म विन्द्यात्। तत्र शिरो मूर्धा तत्संस्पर्शे कृत्तिकानक्षत्रे जन्म भवति गर्भिणी सूते। एवं ललाटे रोहिण्याम्। भ्रुवौ मृगशिरसि। कर्णयोरार्द्रायाम्। गण्डयोः पुनर्वसौ। हन्वोस्तिष्ये। रदा दन्तास्तेष्वाश्लेषायाम्। गले ग्रीवायां मघासु। सव्ये दक्षिणस्कन्धस्पर्शे पूर्वफल्गुन्याम्। अपसव्ये वामस्कन्धसंस्पर्शे उत्तरफल्गुन्याम्। हस्तयोः संस्पर्शे हस्ते। चिबुके आस्याधः चित्रायाम्। नालके कण्ठे स्वातौ। उरसि वक्षसि विशाखायाम्। कुचौ स्तनौ तत्र दक्षिणस्तनसंस्पर्शने अनुराधायाम्, अपसव्ये वामे ज्येष्ठासु। हृदि मूले। पार्श्वद्वयमेवं प्राग्वत्। तेन दक्षिणे पार्श्वे पूर्वाषाढायाम्। वाम उत्तराषाढायाम्। जठरे श्रवणे। कट्यां धनिष्ठायाम्। स्फिग्गुदयोः सन्धिस्पर्शने शतभिषजि। दक्षिणोरुस्पर्शने पूर्वभद्रपदायाम्। वामोरुस्पर्शने उत्तरभद्रपदायाम्। जान्वो रेवत्याम्। जङ्घयोरश्विन्याम्। पादयोर्भरण्यामिति। तथा च पराशरः—

'शिरसि संस्पृष्टे कृत्तिकासु जन्म विन्द्यात्। ललाटे रोहिण्याम्। भ्रुवोर्मृगशिरसि। कर्णयोरार्द्रायाम्। गण्डयोः पुनर्वसौ। हन्वोस्तिष्ये। दन्तयोराश्लेषासु। ग्रीवायां मघासु। दक्षिणांसे प्राक्फल्गुन्याम्। वामांसे उत्तरफल्गुन्याम्। हस्ते हस्तयोः। चिबुके चित्रायाम्। स्वातौ नालके। उरसि विशाखायाम्। दक्षिणस्तेऽनुराधासु। ज्येष्ठासु वामे। हृदि मूले। दक्षिणपार्श्वे प्रागषाढासु। उत्तराषाढासु परपार्श्वे। जठरे श्रवणे। श्रोण्यां धनिष्ठासु। स्फिग्गुदयोर्वारुणे। दक्षिणोरुणा प्रा॰ ठपदायाम्। वामेनोत्तरपदायाम्। जानुभ्यां पौष्णे। जङ्घयोरश्विन्याम्। पादयोर्भरण्यामिति'।।४२-४३।।

अथोपसंहारार्थमाह—

इति निगदितमेतद् गात्रसंस्पर्शलक्ष्म
प्रकटमभिमताप्त्यै वीक्ष्ये शास्त्राणि सम्यक् ।
विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेत-
न्नरपतिजनताभिः पूज्यतेऽसौ सदैव ॥४४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्ग-
विद्याध्याय एकपञ्चाशत्तमः ॥५१॥

सब शास्त्रों को अच्छी तरह देख कर अभीष्ट-सिद्धि के लिये यह अति स्पष्ट 'अवयव-स्पर्शन-लक्षण' कहा गया है। जो अतिशय बुद्धिमान् उदार दैवज्ञ इसको पूर्ण रूप से जान लेता है, वह सदा राजा और प्रजा से पूजित होता रहता है।।४४।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायामङ्गविद्याध्याय एकपञ्चाशत्तमः ॥५१॥

इतिशब्द उपसंहारे प्रकारे वा। एतद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्म अवयवस्पर्शनलक्षणं प्रकटमतिस्फुटं विरचितम्। किं कृत्वा सम्यगागमतः शास्त्राणि गर्गपराशरादिभिर्विरचितानि वीक्ष्य दृष्ट्वा। किमर्थम्? अभिमताप्त्यै अभीष्टार्थसिद्धये। यो विपुलमतिर्विस्तीर्णबुद्धिरुदारो ह्यलब्धं सर्वं निरवशेषमेतद्वेत्ति जानाति असौ नरपतिभिर्नृपैर्जनताभिर्जनसमूहैर्दैवज्ञः सर्वदैव सर्वकालं पूज्यते अभ्यर्च्यत इति।।४४।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावङ्गविद्या
नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथ पिटकलक्षणाध्यायः

अतः परमपि केचित् पिटकलक्षणं पठन्ति। तदप्यस्माभिर्व्याख्यायते। तत्र ब्राह्मणादीनां वर्णानां पिटकलक्षणमाह—

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये।
ते क्रमशः प्रोक्तफला वर्णानां नाग्रजातानाम् ॥१॥

ब्राह्मण आदि चार वर्णों को क्रम से सफेद, लाल, पीली और काली फुन्सी आगे कथित फल देने वाली होती है, किन्तु ब्राह्मणों को छोड़ कर अर्थात् केवल सफेद फुन्सी ब्राह्मणों को; सफेद और लाल क्षत्रियों को; सफेद, लाल और पीली वैश्यों को तथा सफेद लाल, पीली और काली फुन्सी शूद्रों को फल देने वाली होती है।।१।।

विप्रादीनां ब्राह्मणादीनां चतुर्णां वर्णानां क्रमेण परिपाट्या पिटकाः सितरक्तपीतकृष्णाः श्वेतलोहितहारिद्रकृष्णाः। ब्राह्मणानां सिताः, क्षत्रियाणां रक्ताः, वैश्यानां पीताः, शूद्राणां कृष्णा इति। एवं क्रमेण ये पिटका उक्तास्ते क्रमशोऽनुक्रमेण वर्णानां प्रोक्तफलाः कथितफलाः, किन्तु नाग्रजातानां ब्राह्मणवर्जितानाम्। एतदुक्तं भवति—सिता ब्राह्मणानां फलदा नान्ये। सितरक्ताः क्षत्रियाणां नान्ये। सितरक्तपीता वैश्यानां नान्ये। सितरक्तपीतकृष्णाः शूद्राणामिति।।१।।

अधुना विशेषेण फलमाह—

सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्यमारा-
द्दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनघटनामाशु दुःशीलतां च।
तन्मध्योत्थाश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं
प्रव्रज्यां शङ्खदेशेऽश्रुजलनिपतनस्थानगा रान्ति चिन्ताम् ॥२॥

यदि सुन्दर, निर्मल और स्पष्ट कान्ति वाली फुन्सी शिर में हो तो धनसञ्चय, मस्तक में हो तो शीघ्र सौभाग्य, भ्रूयुगल में हो तो दौर्भाग्य, भ्रूमध्य में हो तो शीघ्र इष्ट बन्धुओं का संयोग और दुःशीलता, नेत्रपुट में हो तो शोक, दोनों नेत्रों में हो तो इष्टदर्शन, शंखस्थान में हो तो प्रव्रज्या (संन्यास) तथा अश्रुपात के स्थान में हो तो चिन्ता प्रदान करती है।।२।।

शिरसि मूर्धनि पिटकाः सुस्निग्धा अरूक्षास्तथा व्यक्तशोभा व्यक्ता स्फुटा शोभा कान्तिर्येषां ते तथाभूता धनचयं वित्तसमूहं कुर्वन्ति। मूर्ध्नि मुखपृष्ठे केशान्ते आराच्छीघ्रमेव सौभाग्यम्। भ्रूयुगोत्था भ्रूयुगलोत्पन्ना दौर्भाग्यं दुर्भाग्यत्वम्। तन्मध्योत्था भ्रूसङ्गमजनिता प्रियजनघटनामिष्टबन्धुसंयोगं दुःशीलतां दुष्टशीलत्वं चाशु शीघ्रमेव कुर्वन्ति। नयनपुटगता अक्षिकोशजाताः शोकं ददति। नेत्रयोश्चक्षुषोरिष्टदृष्टिमिष्टदर्शनम्। शङ्खदेशे शङ्खस्थाने

प्रव्रज्याम्। अश्रुजलनिपतनस्थानगा अश्रुजलं यत्र निपतति तत्र गताश्चिन्तां रान्ति ददति। तथा च पराशरः—

'अथ पिटकाः सितरक्तपीतकृष्णा द्विजादीनां वर्णानां क्रमात् स्थानवर्णविशेषणोत्तरोत्तरफलदा भवन्ति। तत्र मूर्ध्नि सुव्यक्तः सुस्निग्धः सुवर्णोऽभिषेकागमनं कुर्यात्। शिरसि धनागमम्। केशान्ते सौभाग्यम्। ललाटे धनसञ्चयम्। भ्रुवोर्दौर्भाग्यम्। सङ्गमे दौःशील्यमिष्टसङ्गमं च। नेत्रपुटयोः शोकम्। नेत्रयोरिष्टदर्शनम्। शङ्खदेशे प्रव्रज्याम्। चिन्तामश्रुपाते' इति।।२।।

अन्यदप्याह—

घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चौष्ठयोरन्नलाभं
कुर्युस्तद्वच्चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे।
हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषणान्यन्नपाने
श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम्।।३।।

यदि नासिका में फुन्सी हो तो वस्त्रलाभ, गाल में हो तो पुत्रलाभ, ओंठ और ठोढ़ी में हो तो अन्नलाभ, ललाट तथा हनु में हो तो अधिक धनलाभ, कण्ठ में हो तो भूषण, अन्न और पान वस्तु का लाभ तथा कान में हो तो कान के आभूषणों का लाभ और अध्यात्म ज्ञान होता है।।३।।

घ्राणागण्डे यथाक्रमं वसनसुतदाः। तेन घ्राणायां नासादेशे वसनदा वस्त्रलाभप्रदाः पिटकाः। गण्डे सुतदाः पुत्रदाः। ओष्ठयोरन्नलाभमन्नागमं भोजनावाप्तिं कुर्युः। चिबुकतलमास्याधोभागः। तत्र गताः स्थितास्तद्वदन्नदा एव। ललाटे भूरि वित्तं प्रभूतं धनम्। हन्वोरेवं तत्र स्थिताः प्रभूतधनदा एव। गलकृतपदा गले कण्ठे कृतं पदं यैः। तत्र स्थिता इत्यर्थः। भूषणानि आभरणानि अन्नपाने च शोभने ददति। श्रोत्रे कर्णप्रदेशे। तद्भूषणगणमपि। तदिति कर्णपरामर्शस्तद्भूषणगणस्य कर्णालङ्कारसमूहस्यागमं तथा आत्मस्वरूपमध्यात्मज्ञानं प्राप्नोतीति। तथा च पराशरः—

'गण्डे सुतलाभम्। नासावंशे वस्त्रलाभम्। चिबुकाधरेष्वोष्ठाधरेष्वन्नम्। अभिहन्वोर्धनागमम्। गले चान्नपानमाभरणं च। शिरः सन्धौ ग्रीवायां चोपघातं शस्त्रेण कर्णयोस्तद्भूषणमात्मश्रवणं च' इति।।३।।

अन्यदप्याह—

शिरःसन्धिग्रीवाहृदयकुचपार्श्वोरसि गता
अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि।
प्रियप्राप्तिं स्कन्धेऽप्यटनमथ भिक्षार्थमसकृ-
द्विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां बहुमुखम्।।४।।

यदि शिर की सन्धि, गर्दन, हृदय, स्तन, बगल और छाती में फुन्सी हो तो क्रम से

शस्त्रपीड़ा, आघात, पुत्रलाभ, शोक और प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है तथा कन्धे में हो तो भिक्षा के लिये बार-बार भ्रमण एवं कोख में हो तो धनों का अनेक तरह से नाश होता है।।४।।

शिर:सन्ध्यादिषु गता: पिटका यथाक्रममयोघातादिकं कुर्वन्ति। तेन शिर:सन्धावयोघातं शस्त्रपीडाम्। ग्रीवायां घातमुपतापम्। हृदये सुतलाभम्। कुचयो: स्तनयोश्च तनयलाभं पुत्रप्राप्तिम्। पार्श्वयो: शुचमपि शोकम्। उरसि वक्षसि गता: प्रियप्राप्तिमिष्टलाभम्। स्कन्धे अंसेऽपि असकृत् पुन: पुन: भिक्षार्थमटनं परिभ्रमणम्। अथशब्दश्चार्थे। कक्षोत्था: कक्षयो: सम्भूता धनानां वित्तानां बहुमुखमनेकप्रकारं विनाशं क्षयम्। विदधति कुर्वन्ति।।४।।

अन्यदप्याह—

दुःखशत्रुनिचयस्य विनाशं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति।
संयमं च मणिबन्धनजाता भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्था: ।।५।।

यदि पीठ में फुन्सी हो तो दुःखसमूह का और बाँह में हो तो शत्रुसमुदाय का नाश करती है। मणिबन्ध में हो तो हाथों का बन्धन और दोनों बाहु के समीप हो तो भूषण आदि (अन्न, वस्त्र) का लाभ कराती है।।५।।

पृष्ठबाहुयुगजा यथाक्रमं दु:खशत्रुनिचयस्य विनाशं रचयन्ति कुर्वन्ति। तत्र पृष्ठजाता दु:खनिचयस्य दु:खसमूहस्य विनाशं कुर्वन्ति। बाहुयुगजा: शत्रुनिचयस्यारिसमूहस्य विनाशम्। मणिबन्धनजाता: प्रकोष्ठस्थानोत्पन्ना: संयमं हस्तबन्धं कुर्वन्ति। उपबाहुयुगोत्था: प्रबाह्वोर्जाता भूषणाद्यमाभरणवस्त्रान्नदानं कुर्वन्ति। तथा च पराशर:—

'पार्श्वयो: शोकम्। उरसीष्टसङ्गमम्। स्कन्धयोर्भैक्ष्यचर्याम्। कक्षयोरर्थक्षयम्। हृत्स्तनयो: पुत्रलाभम्। पृष्ठे दु:खशमनम्। अरिविनाशं बाह्वो:। प्रबाह्वोराभरणम्। मणिबन्धने नियमनम्' इति।।५।।

अन्यदप्याह—

धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि कराङ्गुल्युदरगाः
सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम्।
धनं धान्यं बस्तौ युवतिमथ मेढ्रे सुतनयान्
धनु सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधति ।।६।।

यदि हाथ में फुन्सी हो तो धनलाभ, अंगुलियों में हो तो सौभाग्य, पेट में हो तो शोक, नाभि में हो तो सुन्दर अन्न-जल का लाभ, नाभि के नीचे हो तो चोरों से धन का हरण, बस्ति (नाभि और लिंग के मध्य) में हो तो धन-धान्य का लाभ, लिंग में हो तो स्त्री और सुन्दर पुत्रों की प्राप्ति, गुदा में हो तो धनलाभ तथा अण्डकोश में हो तो सौभाग्य प्रदान करती है।।६।।

कराङ्गुल्युदरगा: पिटका यथाक्रमं धनाप्त्यादिकं विदधति कुर्वन्ति। तत्र करगता

धनाप्तिं वित्तागमम्। अङ्गुलिगताः सौभाग्यम्। उदरगताः शुचं शोकम्। नाभौ सुपानान्नं शोभनमन्नपानम्। तदधो नाभेरधोभागे इहास्मिन् पिटकलक्षणे चौरैस्तस्करैर्धनहतिं वित्तहरणम्। बस्तौ धनं धान्यम्। मेढ्रे शिश्ने। युवतिं स्त्रियम्। सुतनयान् शोभनपुत्रान् विदधति। धनं सौभाग्यं वा गुदवृषणजाताः, गुदजाता अपानस्थानोद्भवा धनं वित्तम्। वृषणजाताः सौभाग्यमिति। तथा च पराशरः—

'पाणौ धनागमम्। सौभाग्यमङ्गुलिषु। शोकमुदरे। अन्नपानावाप्तिं च नाभौ। चौरैरर्थहरणं तदधरे। धनधान्यावाप्तिं बस्तौ। सौभाग्यमर्थलाभं च वृषणयोः। पुत्रजन्म स्त्रीलाभं मेहने। गुदे सौभाग्यम्' इति।।६।।

अन्यदप्याह—

ऊर्वोर्यानाङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात् क्षतिम्।
शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फेऽध्वबन्धक्लेशदायिनः ।।७।।

यदि ऊरु में फुन्सी हो तो वाहन और स्त्री का लाभ, जानु में हो तो शत्रुओं से क्षति, जांघ में हो तो शस्त्र से विनाश तथा गुल्फ (टखना = पाँव की गांठी) में हो तो मार्ग और बन्धन में कष्ट देती है।।७।।

ऊर्वोर्यानलाभं वाहनाप्तिम्, अङ्गनालाभं स्त्रीप्राप्तिं च ददति। जान्वोः शत्रुजनादरिलोकात् क्षतिं विनाशम्। जङ्घयोः शस्त्रेण विनाशम्। गुल्फे स्थिता अध्वनि पथि बन्धने च क्लेशदायिनः कष्टप्रदा भवन्ति। तथा च पराशरः—

'यानाङ्गनालाभमूर्वोः। जान्वोरुपरि रिपुघातम्। शस्त्रेण विनाशम्। जङ्घयोर्गुल्फयोरध्व-बन्धपरिक्लेशागमः' इति।।७।।

अन्यदप्याह—

स्फिक्पार्ष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम्।
बन्धनमङ्गुलिनिचयेऽङ्गुष्ठे च ज्ञातिलोकतः पूजाम् ।।८।।

यदि स्फिक् (कुल्ला) में फुन्सी हो तो धननाश, एड़ी में हो तो अगम्य स्थान में गमन, पाँव में हो तो भ्रमण, अंगुलियों में बन्धन और अंगूठे में हो तो बन्धुओं से पूजा-सत्कार की प्राप्ति कराती है।।८।।

स्फिक्पार्ष्णिपादजाताः पिटका यथासङ्ख्यं धननाशागम्यगमनमध्वानं कुर्वन्ति। तत्र स्फिक्पार्ष्णिजाता धननाशागम्यगमनम्। पादजाता अध्वानम्। अङ्गुलिनिचयेऽङ्गुलिसमूहे बन्धनम्। अङ्गुष्ठे ज्ञातिलोकतो बन्धुजनात् पूजामाप्नोति लभते। तथा च पराशरः—

'स्पिजोरर्थहरणम्। पार्ष्ण्योरगम्यगमनम्। पादयोरध्वगमनम्। नियमनमङ्गुल्याम्। अङ्गुष्ठेन जातिपूजाम्' इति।।८।।

अत्रैव विशेषफलमाह—

उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्वभीघाताः।
धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीताश्च नारीणाम् ।।९।।

उत्पात (अंगस्पन्दन), गण्ड (एक प्रकार की फुन्सी) और फुन्सी दक्षिण में आघात तथा वाम में पुरुषों के शुभ होते हैं। इसके विपरीत स्त्रियों के; जैसे—उत्पात, गण्ड और पिटक वाम में आघात तथा दक्षिण में शुभ होते हैं।।९।।

अङ्गस्पन्दनमुत्पातः। गण्डपिटकौ प्रसिद्धौ। एते पुंसां पुरुषाणां दक्षिणतो धन्याः शुभा भवन्ति। दक्षिणशरीरार्धभाग इत्यर्थः। अभीघाताः प्रहारा वामतो धन्याः। नारीणां स्त्रीणां तद्विपरीताश्च धन्याः। उत्पातगण्डपिटका वामतो दक्षिणतोऽभीघाता इति।।९।।

अथान्येषामतिदेशार्थमाह—

इति पिटकविभागः प्रोक्त आमूर्धतोऽयं
व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यः।
भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्व-
न्निगदितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं नामाध्यायो द्विपञ्चाशत्तमः ॥५२॥

इस तरह शिर से लेकर प्रत्येक अंग की फुन्सियों के फल कहे गये हैं। इसी तरह व्रण और तिल के फल की भी कल्पना करनी चाहिये तथा प्राणियों के शरीर में मशक, चिह्न और रोमावर्त्तजन्य फल भी पूर्वोक्तानुसार ही प्राप्त होते हैं।।१०।।

इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पिटकलक्षणाध्यायः द्विपञ्चाशत्तमः ॥५२॥

इत्येवं प्रकारः पिटकानां विभागो मया आमूर्धत आमस्तकात् प्रोक्तः कथितः। व्रणानां तिलकानां च विभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यश्चिन्तनीयः। येष्वङ्गेषु यत्फलं पिटकानां प्रोक्तं तदेव व्रणतिलकविभागे ज्ञेयम्। मशकः कृष्णो बिन्दुः। लक्ष्म प्रसिद्धम्। स्थाने लोमनिचय आवर्तो लोमावर्तः। मशकलक्ष्मावर्तसम्भवमपि प्राणिनां सत्त्वानां देहसंस्थं शरीरेऽवसंस्थं तद्वत्तेनैव प्रकारेण निगदितफलकारि भवति। पिटकोक्तं फलं प्रयच्छतीत्यर्थः।।१०।।

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पिटकलक्षणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥५२॥

इति पूर्वार्द्धा

श्लोकानुक्रमणी

श्लोकांशाः	पृष्ठाङ्काः

श्लोकांशा:	पृष्ठाङ्का:

श्लोकांशाः	पृष्ठाङ्काः

वस्तुनिष्ठप्रश्नाः

१. सूर्यादिग्रहाः कतिसङ्ख्याकाः?

(अ) नवसङ्ख्याकाः (स) अष्टौ सङ्ख्याकाः

(ब) द्वादशसङ्ख्याकाः (द) दशसङ्ख्याकाः

२. बृहत्संहितायाः रचयिता क आसीत्?

(अ) आर्यभट्टः (स) वराहमिहिरः

(ब) भट्टोत्पलः (द) लल्लः

३. प्रथमुनिः कः?

(अ) वाल्मीकिः (स) नारदः

(ब) वसिष्ठः (द) ब्रह्मा

४. ग्रहेषु आत्मा कः?

(अ) गुरुः (स) बुधः

(ब) सूर्यः (द) भौमः

५. जगदुत्पत्तेः कारणं किम्?

(अ) मूलप्रकृतिः (स) विष्णुः

(ब) कपिलः (द) ब्रह्मा

६. कति स्कन्धाः ज्यौतिषशास्त्रस्य?

(अ) त्रयः (स) पञ्च

(ब) चत्वारः (द) सप्त

७. दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि किं श्रवणेन नाशं प्रयान्ति?

(अ) शशिनः भसंवादम् (स) गुरोः भसंवादम्

(ब) भास्करस्य भसंवादम् (द) भृगोः भसंवादम्

८. बृहत्संहितायाः पूर्वभागे कतिसङ्ख्याकाः अध्यायाः सन्ति?

(अ) द्विपञ्चाशत्तमाः (स) पञ्चाशत्तमाः

(ब) त्रिपञ्चाशत्तमाः (द) एकपञ्चाशत्तमाः

९. बृहत्संहितायाः पूर्वभागस्य चरमाध्यायस्य किन्नाम?

(अ) पिटकलक्षणाध्यायः (स) ग्रहचाराध्यायः

(ब) वास्तुविद्याध्यायः (द) अङ्गविद्याध्यायः

१०. बृहत्संहितायाः पूर्वभागे द्वितीयाध्यायस्य नाम किमस्ति?

(अ) आदित्यचाराध्याय: (स) चन्द्रचाराध्याय:

(ब) सांवत्सरसूत्राध्याय: (द) राहुचाराध्याय:

११. बृहत्संहितायां किन्नामाध्यायः आदित्यचाराध्यायः?

(अ) तृतीय: (स) पञ्चम:

(ब) चतुर्थ: (द) द्वितीय:

१२. कस्यां ऋतौ सूर्यस्य किरणाः हरितवर्णाः भवन्ति?

(अ) वसन्तर्तौ (स) ग्रीष्मर्तौ

(ब) वर्षर्तौ (द) हेमन्तर्तौ

१३. सूर्यस्य किरणाः पीतवर्णाः कस्यां ऋतौ भवन्ति?

(अ) शिशिरर्तौ (स) वर्षर्तौ

(ब) हेमन्तर्तौ (ब) वसन्तर्तौ

१४. वर्षर्तौ किंवर्णाः रविकिरणाः?

(अ) श्वेतवर्णा: (स) हरितवर्णा:

(ब) पीतवर्णा: (द) कमलगर्भसमानवर्णा:

१५. चन्द्रः कदा अनावृष्टिकरो भवति?

(अ) बुधवेधिते सति (स) शनिवेधिते सति

(ब) गुरुवेधिते सति (द) भौमवेधिते सति

१६. केन वेधितश्चन्द्रः सर्वमङ्गलकरो भवति?

(अ) केतुवेधित: (स) बुधवेधित:

(ब) राहुवेधित: (द) गुरुवेधित:

१७. अश्वादिवाहनद्वारा योद्धानां विनाशः कदा भवति?

(अ) मङ्गलवेधितचन्द्रे (स) बुधवेधितचन्द्रे

(ब) सूर्यवेधितचन्द्रे (स) राहुवेधितचन्द्रे

१८. कीदृशचन्द्रस्य दर्शनेन मङ्गलं भवति जनानाम्?

(अ) स्वच्छचन्द्रदर्शनेन (स) कृष्णचन्द्रदर्शनेन

(ब) पीतवर्णचन्द्रदर्शनेन (द) रक्तचन्द्रदर्शनेन

१९. राहोः स्वरूपं कीदृग् विद्यते?

(अ) अन्धकारमयं (स) मुखपुच्छाभ्यां विभक्तराहुरूपम्

(ब) सर्पाकाररूपम् (द) ग्रहवद्रूपम्

२०. मनुष्याणां विजयलाभार्थं किदृशः चन्द्रः प्रशस्तः?

(अ) विकाररहितकिरणवान् (स) मुक्ताहारसमानवर्ण:

(ब) तिथिनियमात्क्षयमेति वर्द्धते च (द) अविकृतगति:

२१. पञ्चसु ग्रहेषु कस्यानुपस्थितौ ग्रहणं न वदेत्?

(अ) बुधस्यानुपस्थितौ (स) भौमस्यानुपस्थितौ
(ब) गुरोरनुपस्थितौ (द) चन्द्रस्यानुपस्थितौ

२२. कस्मिन् पर्वणि ग्रहणे सस्यसम्पद्वृद्धिर्भवति?

(अ) ब्राह्मपर्वणि (स) ऐन्द्रपर्वणि
(ब) चान्द्रपर्वणि (द) आग्नेयपर्वणि

२३. कस्मिन् पर्वणि ग्रहणे दुर्भिक्षं धान्यनाशश्च भवति?

(अ) याम्यपर्वणि (स) ऐन्द्रपर्वणि
(ब) आग्नेयपर्वणि (द) ब्राह्मपर्वणि

२४. कौवेरपर्वणि ग्रहणे सति किं भवति फलम्?

(अ) धनक्षतिः (स) धान्यनाशः
(ब) दुर्भिक्षम् (द) राज्यनाशः

२५. मेषराशौ सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहणे कुत्रत्यजनानां पीडा जायते?

(अ) पञ्चाल-कलिङ्गदेशजनानां (स) मगध-पञ्चालदेशजनानां
(ब) कलिङ्ग-मगधदेशजनानां (द) कोशल-मगधदेशजनानां

२६. सूर्यचन्द्रमसोः कतिविधाः ग्रासाः भवन्ति?

(अ) पञ्चविधाः (स) दशविधाः
(ब) सप्तविधाः (द) अष्टौ विधाः

२७. निरोधनामको ग्रासः कतिसङ्ख्यकः?

(अ) चतुर्थसङ्ख्यकः (स) तृतीयसङ्ख्यकः
(ब) पञ्चमसङ्ख्यकः (द) सप्तमसङ्ख्यकः

२८. सप्तमसङ्ख्यकः ग्रासः किन्नामकोऽस्ति?

(अ) आरोहः (स) मध्यतमः
(ब) आघ्रातः (द) निरोधः

२९. अपसव्यनामको ग्रासः कतिसङ्ख्यकः?

(अ) चतुःसङ्ख्यकः (स) द्वितीयसङ्ख्यकः
(ब) पञ्चसङ्ख्यकः (द) षट्सङ्ख्यकः

३०. तृतीयसङ्ख्यकः ग्रासः किन्नामकः?

(अ) ग्रसननामकः (स) अवमर्दननामकः
(ब) निरोधनामकः (द) लेहनामकः

३१. अन्तर्वेधनेपालदेशयोर्नाशः कस्य ग्रस्ते भवति?

(अ) गुरुग्रस्ते (स) भौमग्रस्ते
(ब) बुधग्रस्ते (द) शुक्रग्रस्ते

३२. कस्मिन् मासे सूर्यचन्द्रमसो रागे तपस्वीनां पीडा जायते?
(अ) मार्गशीर्षे (स) माघे
(ब) पौषे (द) फाल्गुने

३३. कलिङ्गदेशे कदा जायते उपद्रवः?
(अ) वैशाखे ग्रहणे सति (स) माघे ग्रहणे सति
(ब) चैत्रे ग्रहणे सति (द) ज्येष्ठे ग्रहणे सति

३४. सूर्यचन्द्रमसो मोक्षाः कतिधा भवन्ति?
(अ) पञ्चधा (स) सप्तधा
(ब) चतुर्धा (द) दशधा

३५. दशविधमोक्षेषु दक्षिणकुक्षिनामकः मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?
(अ) द्विसङ्ख्यकः (स) पञ्चसङ्ख्यकः
(ब) त्रिसङ्ख्यकः (द) सप्तसङ्ख्यकः

३६. मध्यविदरणनामकः मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?
(अ) सप्तसङ्ख्यकः (स) पञ्चसङ्ख्यकः
(ब) नवसङ्ख्यकः (द) एकादशसङ्ख्यकः

३७. अन्त्यविदरणनामको मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?
(अ) पञ्चसङ्ख्यकः (स) नवसङ्ख्यकः
(ब) सप्तसङ्ख्यकः (द) दशसङ्ख्यकः

३८. दशविधमोक्षाणामुपयोगः कुत्र भवति?
(अ) चन्द्रग्रहणे (स) पूर्वस्यां दिशि
(ब) सूर्यग्रहणे (द) पश्चिमायां दिशि

३९. मङ्गलस्य कियन्ति मुखानि भवन्ति?
(ब) पञ्च मुखानि (स) अष्टौ मुखानि
(ब) सप्त मुखानि (द) चत्वारि मुखानि

४०. मङ्गलस्य बालमुखः कतिसङ्ख्यकः?
(अ) तृतीयसङ्ख्यकः (स) चतुर्थसङ्ख्यकः
(ब) द्वितीयसङ्ख्यकः (द) पञ्चसङ्ख्यकः

४१. अश्रुमुखो मङ्गलः किं करोति?
(अ) रसान् दूषयति (स) अनावृष्टिं करोति
(ब) रोगान् वर्द्धयति (द) प्रलयङ्करोति

४२. कस्मिन्नक्षत्रे सञ्चरन् मङ्गलः मेघान् नाशयति?

(अ) अश्विन्यां (स) रोहिण्याम्
(ब) मृगशिरसि (द) मूले

४३. धनिष्ठायां सञ्चरतः बुधस्य किं फलं भवति?

(अ) अनावृष्टिः (स) रोगवृद्धिः
(ब) महोत्पाताः (द) भयम्

४४. किन्नाम नक्षत्रे सञ्चरन् बुधः जलजद्रव्यान् घोटकांश्च नाशयति?

(अ) मृदुसंज्ञकनक्षत्रे (स) उग्रसंज्ञकनक्षत्रे
(ब) ध्रुवसंज्ञकनक्षत्रे (द) क्रूरसंज्ञकनक्षत्रे

४५. कस्मिन् मासे समुदितो बुधः भयं करोति?

(अ) आषाढे (स) वैशाखे
(ब) श्रावणे (द) फाल्गुने

४६. कदा अस्तङ्गतो बुधः शुभं करोति?

(अ) माघे (स) फाल्गुने
(ब) श्रावणे (द) पौषे

४७. कतिसङ्ख्यकेऽध्याये बृहस्पतेश्चारो वर्णितः?

(अ) अष्टमेऽध्याये (स) सप्तमेऽध्याये
(ब) पञ्चमेऽध्याये (द) नवमेऽध्याये

४८. बृहस्पतेः कस्मिन्मासे रूपवतां पीडा जायते?

(अ) चैत्रमासे (स) वैशाखमासे
(ब) फाल्गुनमासे (द) ज्येष्ठमासे

४९. बार्हस्पत्यवर्षः कदाऽऽरभ्यते?

(अ) यस्मिन्नृक्षे समुदेति गुरुस्तस्मिन्नक्षत्रे वर्षो भवति।
(ब) यस्मिन् राशौ समुदेति गुरुस्तदा वर्षो भवति।
(स) यस्मिन् योगे समुदेति गुरुस्ततः वर्षो भवति।
(द) यस्मिन् करणे समुदेति अङ्गिरसस्ततः वर्षो भवति।

५०. कतमे वर्षे त्रीणि नक्षत्राणि भुनक्ति गुरुः?

(अ) पञ्चमे वर्षे (स) अष्टमे वर्षे
(ब) सप्तमे वर्षे (द) नवमे वर्षे

५१. द्वादशतमो वर्षः कियतां नक्षत्राणां भवति गुरोः?

(अ) त्रयाणां नक्षत्राणाम् (स) चतुर्ण्णां नक्षत्राणाम्
(ब) पञ्चानां नक्षत्राणाम् (द) सप्तानां नक्षत्राणाम्

५२. पञ्चमो वर्षः कतीनां नक्षत्राणां भवति?

(अ) त्रयाणाम् (स) द्वयोः
(ब) चतुर्णाम् (द) पञ्चानाम्

५३. पौष्टिककर्मणः सिद्धिः गुरोः कस्मिन् वर्षे सिद्ध्यति?

(अ) कार्तिके वर्षे (स) पौषे वर्षे
(ब) माघे वर्षे (द) भाद्रे वर्षे

५४. पितॄणां पूजावृद्धिः गुरोः कस्मिन् वर्षे भवति?

(अ) माघे वर्षे (स) कार्तिके वर्षे
(ब) मार्गशीर्षे वर्षे (द) पौषे वर्षे

५५. अलब्धस्य लाभः लब्धस्य परिरक्षणं गुरोः कस्मिन् वर्षे भवति?

(अ) श्रावणे वर्षे (स) भाद्रवर्षे
(ब) आषाढे वर्षे (द) आश्वयुजि वर्षे

५६. प्राणिपुण्यवृद्धिः वृष्टिश्च गुरोः कस्मिन् वर्षे जायते?

(अ) श्रावणे वर्षे (स) ज्येष्ठवर्षे
(ब) आश्विने वर्षे (द) भाद्रे वर्षे

५७. गुरोः कस्मिन् वर्णे व्याधिभयं जायते?

(अ) अग्निवर्णे (स) हरितवर्णे
(ब) पीतवर्णे (द) श्यामवर्णे

५८. ईश्वरादयो पञ्च संवत्सराः कतमे युगे प्रवर्तन्ते?

(अ) चतुर्थे (स) द्वितीये
(ब) पञ्चमे (द) तृतीये

५९. को नामा तृतीयो युगः?

(अ) ऐन्द्रनामा (स) प्रोष्ठपदनामा
(ब) हुताशनामा (द) पितृसंज्ञकनामा

६०. विलम्बीसंवत्सरः कतमे युगे समायाति?

(अ) पञ्चमे (स) तृतीये
(ब) चतुर्थे (द) सप्तमे

६१. पितृसंज्ञकः युगः कतमः सङ्ख्यकः?

(अ) पञ्चमसङ्ख्यकः (स) चतुर्थसङ्ख्यकः
(ब) सप्तमसङ्ख्यकः (द) षष्ठसङ्ख्यकः

६२. क्रोधी नामा संवत्सरः कतमे युगे समायाति?

(अ) पञ्चमे (स) अष्टमे
(ब) सप्तमे (द) चतुर्थे

६३. अष्टमयुगस्य नाम किमस्ति?
(अ) वैश्व: (स) प्रोष्ठपद:
(ब) पितृ (द) त्वाष्ट्र:

६४. चित्रभानुवर्ष: कस्मिन् युगे समायाति?
(अ) हुताशनामके युगे (स) प्रोष्ठपदनामके युगे
(ब) पितृसंज्ञकयुगे (द) हुताशनामके युगे

६५: ऐन्द्रे युगे कति वत्सरा: भवन्ति?
(अ) चत्वार: (स) त्रय:
(ब) पञ्च (द) षट्

६६. विक्रमनामक: संवत्सर: कतमे युगे समायाति?
(अ) दशमे (स) अष्टमे
(ब) सप्तमे (द) द्वादशतमे

६७. कतमो युग: सौम्यनामा?
(अ) दशमो युग: (स) सप्तमो युग:
(ब) नवमो युग: (द) अष्टमो युग:

६८. समेषां विनाश: किन्नामके संवत्सरे भवति?
(अ) अनलनामके संवत्सरे (स) प्रमाथीनामके संवत्सरे
(ब) क्षयनामके संवत्सरे (द) परिधावीनामके संवत्सरे

६९. क्षयनामा संवत्सर: कतमे युगे समायाति?
(अ) दशमे (स) अष्टमे
(ब) एकादशतमे (द) द्वादशतमे

७०. शुक्राचार्यस्य कति वीथयो भवन्ति?
(अ) षष्ठ (स) अष्टौ
(ब) सप्त (द) नव

७१. कियन्ति मण्डलानि शुक्रस्य भवन्ति?
(अ) पञ्चमण्डलानि (स) सप्तमण्डलानि
(ब) षण्मण्डलानि (द) अष्टौ मण्डलानि

७२. स्वाती-भरणी-कृत्तिकानक्षत्राणि कस्यां वीथौ समायान्ति?
(अ) नागवीथ्याम् (स) गोवीथ्याम्
(ब) गजवीथौ (द) मृगवीथ्याम्

७३. अजनामा वीथि कतिसङ्ख्यका?

(अ) अष्टमी (स) पञ्चमी

(ब) सप्तमी (द) नवमी

७४. नाग-गज-ऐरावतवीथयः कस्मिन् दिङ्मार्गे भवन्ति शुक्रस्य?

(अ) दक्षिणमार्गे (स) उत्तरस्यां दिशि मार्गे

(ब) पूर्वदिङ्मार्गे (द) मध्यमार्गे

७५. ऐरावतः वीथिः कस्मिन् दिङ्मार्गे?

(अ) दक्षिणदिङ्मार्गे (स) मध्यमार्गे

(ब) उत्तरमार्गे (द) मध्यमोत्तरमार्गे

७६. कं दिशमाश्रितः समुदितो शुक्रः सुभिक्षं करोति?

(अ) दक्षिणदिशमाश्रितः (स) मध्यमदिशमाश्रितः

(ब) उत्तरदिशमाश्रितः (द) पूर्वदिशमाश्रितः

७७. शुक्रस्य कियन्ति मण्डलानि भवन्ति?

(अ) चत्वारि (स) षट्

(ब) पञ्च (द) त्रीणि

७८. भरण्यादीनि चत्वारि नक्षत्राणि कियतः मण्डलस्य?

(अ) प्रथममण्डलस्य (स) तृतीयमण्डलस्य

(ब) द्वितीयमण्डलस्य (द) चतुर्थमण्डलस्य

७९. मघादीनि पञ्च नक्षत्राणि कियन्मण्डलस्य?

(अ) तृतीयमण्डलस्य (स) चतुर्थमण्डलस्य

(ब) प्रथममण्डलस्य (द) द्वितीयमण्डलस्य

८०. कियन्ति नक्षत्राणि भवन्ति?

(अ) सप्तविंशतिः (स) चतुर्विंशतिः

(ब) पञ्चविंशतिः (द) अष्टाविंशतिः

८१. चतुर्थ-पञ्चममण्डलगतानि नक्षत्राणि कस्यां दिशि शुभकृतानि?

(अ) पूर्वस्याम् (स) पश्चिमस्याम्

(ब) दक्षिणस्याम् (द) उत्तरस्याम्

८२. कस्मिन् मण्डले समुदीयमानः शुक्रः ब्राह्मणक्षत्रियाणां शुभं करोति?

(अ) तृतीयमण्डले (स) पञ्चममण्डले

(ब) चतुर्थमण्डले (द) द्वितीयमण्डले

८३. कस्मिन् ऋतौ स्थितः शनैश्चरः मध्यदेशीयान् पीडयति?

(अ) भरणीनक्षत्रे (स) मृगशिरसिस्थः
(ब) रोहिणीनक्षत्रे (द) अश्विनीनक्षत्रे

८४. कस्मिन्नक्षत्रे सञ्चरन् शनैश्चरः कोशलदेशीयान् पीडयति?
(अ) हस्तनक्षत्रे (स) मघानक्षत्रे
(ब) आश्लेषानक्षत्रे (द) पूर्वफल्गुनीनक्षत्रे

८५. कस्मिन्नक्षत्रे स्थितः शनैश्चरः कुसुम्भपुष्पाणि नाशयति?
(अ) अनुराधानक्षत्रे (स) मूलनक्षत्रे
(ब) विशाखानक्षत्रे (द) भरणीनक्षत्रे

८६. शवर-यवनानां कदा पीडयति शनिः?
(अ) रेवत्यां गतः (स) ज्येष्ठायाङ्गतः
(ब) मूले गतः (द) उत्तरभद्रपदायाङ्गतः

८७. प्रजासु कदा अनीतिः समुदेति?
(अ) कृत्तिकागतो गुरुः (स) स्वात्याङ्गतो गुरुः
(ब) भरणीगतो गुरुः (द) चित्रायाङ्गतो गुरुः

८८. कतिधा शनैश्चरपुत्रकेतवः?
(अ) षड्विधा (स) चत्वारिंशद्विधा
(ब) पञ्चाशद्विधा (द) अशीतिविधा

८९. गुरुपुत्राः केतवः कियन्तः सङ्ख्यकाः?
(अ) पञ्चषष्टि (स) एकोनसप्तति
(ब) चतुःषष्टि (द) पञ्चपञ्चाशत्

९०. बुधपुत्राः केतवः कियन्तः सङ्ख्यकाः?
(अ) चत्वारिंशत् (स) पञ्चचत्वारिंशत्
(ब) पञ्चाशत् (द) अष्टचत्वारिंशत्

९१. मङ्गलपुत्राः केतवः कतिविधाः?
(अ) षड्विधाः (स) पञ्चविधाः
(ब) सप्तविधाः (द) चतुर्विधाः

९२. राहुपुत्राः केतवः कतिविधाः?
(अ) दशविधाः (स) त्रयस्त्रिंशद्विधाः
(ब) विंशतिविधाः (द) पञ्चविंशतिविधाः

९३. अग्निपुत्राः केतवः कतिविधाः?
(अ) शतविधाः (स) नवविधाः
(ब) विंशतित्युत्तरशतविधाः (द) अशीतिविधाः

९४. वरुणपुत्राः केतवः कतिविधाः?

(अ) त्रिंशद्विधाः
(ब) द्वात्रिंशद्विधाः
(स) पञ्चत्रिंशद्विधाः
(द) चतुस्त्रिंशद्विधाः

९५. कालपुत्राः केतवः कतिविधाः सन्ति?

(अ) नवविधाः
(ब) अशीतिविधाः
(स) पञ्चनवतिविधाः
(द) षण्णवतिविधाः

९६. विदिशः पुत्राः केतवः कतिविधाः?

(अ) पञ्चविधाः
(ब) सप्तविधाः
(स) अष्टविधाः
(द) नवविधाः

९७. सप्तर्षयः कस्यां दिशि दृश्यन्ते?

(अ) पूर्वस्याम्
(ब) पश्चिमायाम्
(स) दक्षिणस्याम्
(द) उत्तरस्याम्

९८. सप्तर्षयः एकस्मिन् नक्षत्रे कियन्ति वर्षाणि निवसन्ति?

(अ) पञ्चाशद्वर्षाणि
(ब) अशीतिवर्षाणि
(स) शतं वर्षाणि
(द) नवतिवर्षाणि

९९. युधिष्ठिरशासनकाले कस्मिन्नक्षत्रे सप्तर्षय आसन् ?

(अ) भरण्याम्
(ब) आश्लेषायाम्
(स) मघायाम्
(द) पूर्वाषाढायाम्

१००. महर्षिर्मरीचिः कस्यां दिशि निवसति?

(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) पश्चिमायां दिशि
(स) उत्तरस्यां दिशि
(द) दक्षिणस्यां दिशि

१०१. मरीचेः पश्चिमभागे कस्तिष्ठति?

(अ) अत्रिः
(ब) अङ्गिरा
(स) वसिष्ठः
(द) क्रतुः

१०२. वसिष्ठस्य पश्चिमे कस्यर्षेः स्थानम्?

(अ) अङ्गिरसः
(ब) अत्रेः
(स) पुलस्त्यस्य
(द) पुलहस्य

१०३. सप्तर्षीणां मध्यभागे कस्तिष्ठति?

(अ) अरुन्धती
(ब) वसिष्ठः
(स) क्रतुः
(द) अङ्गिरा

१०४. कस्याश्रये स्थिता अरुन्धती?

(अ) वसिष्ठस्य (स) अङ्गिरसः
(ब) केतोः (द) पुलहस्य

१०५. कृत्तिकादित्रिषु मध्यवर्गे कति देशाः सन्ति?
(अ) पञ्चदश (स) चतुस्त्रिंशत्
(ब) चतुर्विंशतिः (द) अष्टत्रिंशत्

१०६. पूर्वस्यां दिशि कति देशाः सन्ति?
(अ) त्रयस्त्रिंशत् (स) षट्त्रिंशत्
(ब) पञ्चत्रिंशत् (द) चत्वारिंशत्

१०७. आश्लेषादिवर्गे आग्नेय्यां दिशि कति देशाः सन्ति?
(अ) सप्तविंशतिः (स) एकोनविंशतिः
(ब) अष्टाविंशतिः (द) विंशतिः

१०८. दक्षिणस्यां दिशि कतिसङ्ख्यकाः देशाः सन्ति?
(अ) पञ्चाशत्तमाः (स) पञ्चपञ्चाशत्तमाः
(ब) त्रिषष्टितमाः (द) षट्पञ्चाशत्तमाः

१०९. नैर्ऋत्यकोणे कतिसङ्ख्याकाः देशाः सन्ति?
(अ) पञ्चविंशतिः (स) सप्तविंशतिः
(ब) एकोनत्रिंशत् (द) अष्टाविंशतिः

११०. पश्चिमायां दिशि कति देशाः विद्यन्ते?
(अ) चतुर्विंशतिः (स) अष्टादश
(ब) त्रयोविंशतिः (द) विंशतिः

१११. वायव्यकोणे कतिसङ्ख्याकाः देशाः सन्ति?
(अ) विंशतिः (स) षोडश
(ब) अष्टादश (द) चतुर्विंशतिः

११२. उत्तरस्यां दिशि कति देशाः सन्ति?
(अ) पञ्चत्रिंशत् (स) द्वात्रिंशत्
(ब) द्वाविंशतिः (द) पञ्चाशत्

११३. ईशानकोणे कतिसङ्ख्याकाः देशाः सन्ति?
(अ) सप्तविंशतिः (स) अष्टादश
(ब) त्रयोविंशतिः (द) त्रयस्त्रिंशत्

११४. पूर्वादीनि त्रीणि नक्षत्राणि केषामधीनानि?
(अ) विप्राणाम् (स) वैश्यानाम्
(ब) क्षत्रियाणाम् (द) शूद्राणाम्

११५. सितकुसुमाहिताग्निं मन्त्रज्ञसूत्रभाष्याज्ञा: आकरिकनामितद्विजघटकार-पुरोहिताब्दज्ञा: पदार्था: किन्नक्षत्रगता:?

(अ) कृत्तिकानक्षत्रगता: (स) मृगशिरानक्षत्रगता:
(ब) रोहिणीनक्षत्रगता: (द) आर्द्रानक्षत्रगता:

११६. सुव्रतादय: पदार्था: किन्नक्षत्रगता:?

(अ) भरणीनक्षत्रगता: (स) अश्विनीनक्षत्रगता:
(ब) कृत्तिकानक्षत्रगता: (द) रोहिणीनक्षत्रगता:

११७. पत्रवाहका: किन्नक्षत्रगता:?

(अ) आर्द्रानक्षत्रगता: (स) पुनर्वसुनक्षत्रगता:
(ब) मृगशिरानक्षत्रगता: (द) पुष्यनक्षत्रगता:

११८. सत्यवादिन: कस्मिन्नक्षत्रे समुत्पन्ना: भवन्ति?

(अ) पुनर्वसुनक्षत्रे (स) आश्लेषानक्षत्रे
(ब) पुष्यनक्षत्रे (द) मघानक्षत्रे

११९. भगवद्भक्त: सत्यभाषी च किन्नक्षत्रगत: पदार्थ:?

(अ) श्रवणनक्षत्रगतपदार्थ: (स) शततारकानक्षत्रगतपदार्थ:
(ब) धनिष्ठानक्षत्रगतपदार्थ: (द) विशाखानक्षत्रगतपदार्थ:

१२०. फलाहार-औषधादयो किन्नक्षत्रगतपदार्था:?

(अ) अनुराधानक्षत्रगतपदार्था: (स) मूलनक्षत्रगतपदार्था:
(ब) ज्येष्ठानक्षत्रगतपदार्था: (द) पूर्वाषाढानक्षत्रगतपदार्था:

१२१. द्रव्यक्रेतारो विक्रेतारश्च किन्नक्षत्रगता:?

(अ) रेवतीनक्षत्रगता: (स) भरणीनक्षत्रगता:
(ब) अश्विनीनक्षत्रगता: (द) मृगशिरानक्षत्रगता:

१२२. क्रूरा: मांसभक्षका: नीचकुलोत्पन्ना: किन्नक्षत्रगता:?

(अ) कृत्तिकानक्षत्रगता: (स) मघानक्षत्रगता:
(ब) रोहिणीनक्षत्रगता: (द) भरणीनक्षत्रगता:

१२३. सूर्य: कियतां देशानां स्वामी?

(अ) पञ्चाशत् (स) त्रिपञ्चाशत्
(ब) पञ्चपञ्चाशत् (द) चतु:पञ्चाशत्

१२४. कृषक-याज्ञिक-ओषधीनां स्वामी क:?

(अ) सूर्य: (स) भौम:
(ब) शुक्र: (द) चन्द्र:

१२५. **शोणस्य पश्चिमदेशीयानां स्वामी क:?**

(अ) भौम: (स) बुध:

(ब) चन्द्र: (द) गुरु:

१२६. **ऐन्द्रजालिकानां नर्तकानाञ्च स्वामी क:?**

(अ) बुध: (स) शुक्र:

(ब) बृहस्पति: (द) शनि:

१२७. **औदिच्यस्थजनानां वस्तूनाञ्च स्वामी क:?**

(अ) बुध: (स) भार्गव:

(ब) गुरु: (द) भौम:

१२८. **तक्षशिलादिदेशानां चन्दनादिवनस्पतीनाञ्च स्वामी क:?**

(अ) शुक्र: (स) बुध:

(ब) शनि: (द) राहु:

१२९. **आनर्तार्बुद-सौराष्ट्रादिदेशानां स्वामी क:?**

(अ) शनैश्चर: (स) बुध:

(ब) शुक्र: (द) गुरु:

१३०. **पर्वतशिखरवासिनां जनानां तिलमाषादिवनस्पतीनाञ्च स्वामी क:?**

(अ) राहु: (स) शनि:

(ब) केतु: (द) भौम:

१३१. **अधार्मिकाणां विजिगीषूणाञ्च स्वामी क:?**

(अ) केतु: (स) बुध:

(ब) राहु: (द) सूर्य:

१३२. **ग्रहाणां युद्ध: कतिधा भवति?**

(अ) एकधा (स) त्रिधा

(ब) द्विधा (द) चतुर्धा

१३३. **ग्रहाणां कतिधा संज्ञा भवति?**

(अ) एकधा (स) त्रिधा

(ब) द्विधा (द) चतुर्धा

१३४. **दक्षिणदिक्स्थग्रह: किन्नामक:?**

(अ) पराजित: (स) विवर्ण:

(ब) वेपथु: (द) सूक्ष्मबिम्बक:

१३५. **विपुलो द्युतिमान् ग्रह: किंसंज्ञको भवति?**

(अ) पराजितः (स) मन्दः
(ब) विजयी (द) उत्तरदिक्स्थः

१३६. ग्रहाणां कति योगाः भवन्ति?

(अ) चतुर्योगाः (स) त्रियोगाः
(ब) पञ्चयोगाः (द) षड्योगाः

१३७. क्षेत्राधिपतेः मरणं कदा भविष्यति?

(अ) वृक्षे यमलपुष्पोत्पत्तौ (द) वृक्षे अनेकफलोत्पत्तौ
(ब) वृक्षे यमलफलोत्पत्तौ (द) वृक्षे फलपुष्पानुत्पत्तौ

१३८. कदा उत्पातभयं जायते?

(अ) यस्यां दिशि मङ्गलबुधौ दृश्येते।
(ब) यस्यां दिशि बुधभौमशनयो दृश्यन्ते।
(स) यस्यां दिशि गुरुशुक्रशनयो दृश्यन्ते।
(द) यस्यां दिशि गुरुभौमशुक्रशनयो दृश्यन्ते।

१३९. अल्पशीतः कदा भवति?

(अ) मार्गशीर्षे (स) पौषे
(ब) कार्तिके (द) माघे

१४०. कदा वृद्धिङ्गतः गर्भः प्रसवकाले समधिका वृष्टिङ्करोति?

(अ) पञ्चसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः (स) दशसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः
(ब) सप्तसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः (द) षट्सु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः

१४१. कदा समुत्पन्नः गर्भः बहूनि दिनानि वृष्टिङ्करोति?

(अ) शतभिषानक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः (स) आश्लेषानक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः
(ब) स्वातीनक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः (द) आर्द्रानक्षत्रे समुत्पन्नो गर्भः

१४२. कीदृशो गर्भः बहुवृष्टिप्रदो भवति?

(अ) वायोः शब्दश्चेत् (स) मेघस्य शब्दश्चेत्
(ब) विद्युच्छब्दश्चेत् (द) मेघयुतो गर्भः

१४३. गर्भधारणकालः कदा भवति?

(अ) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः चत्वारि दिनानि।
(ब) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः त्रीणि दिनानि।
(स) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः सप्त दिनानि।
(द) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः अष्टौ दिनानि।

१४४. कदा प्रभृति चत्वारि दिनानि?

(अ) ज्येष्ठशुक्लाष्टमी (स) श्रावणशुक्लाष्टमी
(ब) आषाढशुक्लाष्टमी (द) भाद्रशुक्लाष्टमी

१४५. संसारस्य शुभाशुभं कथं ज्ञायते?

(अ) आषाढकृष्णपक्षे रोहिणी-चन्द्रयोर्योगं विलोक्य।
(ब) श्रावणकृष्णपक्षे रोहिणी-चन्द्रयो: योगं विलोक्य।
(स) भाद्रकृष्णपक्षे चन्द्र-रोहिण्यो: समागमं विलोक्य।
(द) आश्विनकृष्णपक्षे चन्द्र-रोहिण्यो: समागमं विलोक्य।

१४६. सुवृष्टि: कदा जायते?

(अ) मेघरहिते गगने सूर्यरश्मय: यदा तीक्ष्णा: भवेयु:।
(ब) रात्रौ निर्मलनक्षत्रयुतं गगनं यदा भवेत्।
(स) विकसिता कुमुदिनीव यदा भवेत्।
(द) शीतलसमीर: यदा प्रवहेत्।

१४७. धान्यस्योत्तमा निष्पत्ति: कदा भवति?

(अ) यदा पूर्वस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(ब) यदा दक्षिणस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(स) यदा नैर्ऋत्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(द) यदा उत्तरस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।

१४८. जनानां शुभं कदा भविता?

(अ) यदा पूर्वमुदीयमानश्चन्द्र: स्यात् पश्चाद्रोहिणी भवेत्।
(ब) यदा पूर्वं रोहिणी स्यात् पश्चात् चन्द्रमा भवेत्।
(स) यदा रोहिणी चन्द्रमसो: सहैवोदय: लभेत्।
(द) यदा रोहिणीत: पूर्वं चन्द्रोदय: भवेत्।

१४९. कस्मिन् वर्षे मनुष्या: स्त्रीवशे भवन्ति?

(अ) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: पूर्वस्यां दिशि चन्द्र: सञ्चरति।
(ब) यदा रोहिण्या: आग्नेय्यां दिशि चन्द्र: भवति।
(स) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: नैर्ऋत्यां दिशि चन्द्रो भवति।
(द) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: प्रतीच्यां दिशि चन्द्रो भवति।

१५०. कदा सुवृष्टिर्जायते?

(अ) रोहिण्या: वायुकोणे चन्द्रसञ्चारे सति
(ब) रोहिण्या उत्तरे चन्द्रसञ्चारे सति
(स) रोहिण्या: पूर्वे चन्द्रसञ्चारे सति
(द) रोहिण्या: ईशानकोणे चन्द्रसञ्चारे सति

१५१. अनावृष्टिः कदा भवति?

(अ) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले रक्तवर्णः पशुरग्रे भवेत्।

(ब) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले कर्बूरवर्णः वृषभोऽग्रे भवेत्।

(स) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले ईषत् श्वेतः पशुरग्रे भवेत्।

(द) पशूनां वनाद्गोष्ठं प्रति प्रत्यावर्तनकाले यदि सर्वश्वेतः पशुरग्रे स्यात्।

१५२. कदा तुलया धान्यपरीक्षणम् ?

(अ) श्रावणपौर्णमास्याम् (स) भाद्रपौर्णमास्याम्

(ब) आषाढी पौर्णमास्याम् (द) ज्येष्ठपौर्णमास्याम्

१५३. तुलितानां धान्यानां किङ्कर्तव्यम् ?

(अ) अन्येद्युः तोलनम् (स) पुनस्तोलनम्

(ब) परेद्युः तोलनम् (द) द्वितीयदिने तोलनम्

१५४. तुलदण्डः प्रधाना कीदृशी?

(अ) हैमी (स) लौही

(ब) रजतनिर्मिता (द) खदिरनिर्मिता

१५५. उत्तमं धान्यं कदा जायते?

(अ) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा ऐशानोऽनिलः स्यात्?

(ब) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा उत्तरस्यानिलः स्यात्।

(स) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा पश्चिमायाः अनिलः स्यात्।

(द) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा पूर्वस्याः समीरः स्यात्।

१५६. पृथिवी कदा सुशोभिता भवति?

(अ) आषाढी पौर्णमास्यां यदा पूर्वीयसमुद्राद्वायुः प्रचलेत्।

(ब) आषाढी पौर्णमास्यां यदा दक्षिणसमुद्राद्वायुः प्रचलेत्।

(स) आषाढी पौर्णमास्यां यदा समुद्रस्य दक्षिणभागाद्वायुः प्रचलेत्।

(द) आषाढी पौर्णमास्यां यदा समुद्रस्योत्तरभागाद्वायुः प्रचलेत्।

१५७. पृथिवी कदा रक्तरञ्जिता जायते?

(अ) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा चक्रवातः प्रचलेत्।

(ब) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले भयङ्करो वायुर्वातिश्चेत्।

(स) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले वर्षा भवति चेत्।

(द) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले विद्युत् विद्योतते चेत्।

१५८. कदा वर्षा भविता?

(अ) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा लग्ने जलचरराशौ भवेत्।

(ब) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा लग्ने स्थिरराशौ स्यात्।

(स) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा चरराशिगतो भवेत्।
(द) चन्द्रमा प्रश्नकाले यदा द्विस्वभावराशौ स्यात्।

१५९. वर्षा कदा भविष्यति?
(अ) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा तीक्ष्णकिरणमयः स्यात्।
(ब) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा मणिकान्तिमयः भवेत्।
(स) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा गलितसुवर्णकान्तिमान् भवेत्।
(द) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा मध्याह्ने तीक्ष्णकिरणमयः स्यात्।

१६०. शीघ्रं वृष्टिः कदा ज्ञेया?
(अ) पिपीलिकानां अण्डोपसङ्क्रान्तिर्यदा भवति।
(ब) मार्गे बालकाः यदा सेतुबन्धं कुर्युः।
(स) वाष्पनिरुद्धकन्दराः यदा भवेयुः।
(द) लोहितचन्द्रकिरणाश्चेत्।

१६१. कृकलासवृक्षाग्रयोगे समारूह्य उपरि निरीक्षणं करोति चेत् किं भवति?
(अ) शीघ्रं वर्षा भवति
(ब) विलम्बेन वर्षा भवति
(स) सप्ताहैर्भविता वृष्टिः
(द) कदापि भविता वृष्टिः

१६२. कदाऽतिवृष्टिर्जायते?
(अ) यदा गृहपटलेषु स्थितः श्वा रुदति।
(ब) यदा गृहपटलेषु कपोताः कूजन्ति।
(स) यदा गृहपटलेषु स्थित्वा काकः शब्दायते।
(द) यदा गृहपटलेषु स्थित्वा मार्जारः शब्दायते।

१६३. कीदृशः दिग्दाहः क्षत्रियान् पीडयति?
(अ) कृष्णवर्णः
(ब) हरितवर्णः
(स) धूम्रवर्णः
(द) रक्तवर्णः

१६४. कस्यां दिशि स्थितः दिग्दाहः क्षत्रियान् पीडयति?
(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) दक्षिणस्यां दिशि
(स) प्रतीच्यां दिशि
(द) उदीच्यां दिशि

१६५. कस्यां दिग्गतदिग्दाहः क्रूरान् पुनर्भ्वां च पीडयति?
(अ) पूर्वस्याम्
(ब) प्रतीच्याम्
(स) दक्षिणस्याम्
(द) उत्तरस्याम्

१६६. चौरान् पीडयति क्व गतः दिग्दाहः?
(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) उत्तरस्यां दिशि
(स) पश्चिमायां दिशि
(द) वायव्यकोणगतः

१६७. कुत्रस्थः दिग्दाहः ब्राह्मणान् पीडयति?

(अ) ईशानस्थः (स) पूर्वस्थः

(ब) उत्तरस्थः (द) पश्चिमस्थः

१६८. वरुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना।
स्थिता जलजसत्त्वाश्च सक्षोभा चालयन्ति गाम्॥
इति कस्य मतम् ?

(अ) गर्गस्य (स) वशिष्ठस्य

(ब) कश्यपस्य (द) पराशरस्य

१६९. 'चत्वारो दिङ्नागाः पृथिवीं धारयन्ती'ति कस्य मतम् ?

(अ) कश्यपस्य (स) गर्गस्य

(ब) वशिष्ठस्य (द) पराशरस्य

१७०. 'दिङ्नागानां श्वास-प्रश्वासकारणाद्भूकम्पो जायत' इति कस्य मतम्?

(अ) वशिष्ठस्य (स) गोभिलस्य

(ब) गर्गाचार्यस्य (द) पराशरस्य

१७१. 'अनिलसङ्घर्षकारणाद्भूकम्पो जायत' इति कस्य मतम् ?

(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य

(ब) कश्यपस्य (द) गोभिलस्य

१७२. 'प्रजानामधर्मकारणात् पृथ्वी कम्पत' इति कस्य मतम्?

(अ) वशिष्ठस्य (स) कश्यपस्य

(ब) वृद्धगर्गस्य (द) भारद्वाजस्य

१७३. कस्मिन् मण्डले सम्भूतः भूकम्पः शतयोजनं प्रभावयति?

(अ) वरुणमण्डले (स) ऐन्द्रमण्डले

(ब) वायुमण्डले (द) अग्निमण्डले

१७४. दशयोजनपर्यन्तां पृथिवीं किम्मण्डलगतभूकम्पः कम्पयति?

(अ) ऐन्द्रमण्डलगतः (स) वारुणमण्डलगतः

(ब) वायुमण्डलगतः (द) अग्निमण्डलगतः

१७५. वायुमण्डलगतः भूकम्पः कियद्योजनपर्यन्तां पृथिवीं कम्पयति?

(अ) दशयोजनपर्यन्ताम् (स) शतयोजनपर्यन्ताम्

(ब) षष्टियोजनपर्यन्ताम् (द) शतद्वययोजनपर्यन्ताम्

१७६. वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम्।
दशाधिकमथाग्नेय ऐन्द्रे षष्ठाधिकं शतम्।
शतं चाशीतिसंयुक्तं वारुणे मण्डले चलेत्॥
इति कस्य वचनम्?

(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) कश्यपस्य

१७७. दिवि भुक्तशुभफलानां पतता प्राणिनां किंस्वरूपम् ?
(अ) धिष्ण्या (स) उल्का
(ब) अशनि (द) विद्युत्

१७८. स्वास्त्राणि संसृज्यन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः ।
लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु ॥
इति कस्य वचनम्?
(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) वृद्धगर्गस्य

१७९. अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्काः ।
केषाञ्चित्पुण्यकृतां तत्रोल्का विच्युतिः स्वर्गात् ॥
इति वाक्यं कुत्रत्यः?
(अ) स्वल्पसंहितातः (स) गर्गसंहितातः
(ब) सूतसंहितातः (द) बृहत्संहितातः

१८०. उल्कापातस्य फलं कियद्भिर्दिवसैः भवति?
(अ) दशभिर्दिवसैः (स) द्वादशभिर्दिवसैः
(ब) पञ्चदशदिवसैः (द) षोडशदिवसैः

१८१. का नाम उल्का?
(अ) क्षीणे पुण्ये स्वर्गात् समागताः जीवाः।
(ब) लोकपालानां परीक्षणाय प्रक्षिप्तान्यस्त्राणि।
(स) इन्द्रस्य वज्रम्।
(द) अशुभसूचकं नभोमण्डलम्।

१८२. उल्का कतिधा?
(अ) चतुर्धा (स) द्विधा
(ब) त्रिधा (द) पञ्चधा

१८३. धिष्ण्याफलं कतिभिः दिवसैः भवति?
(अ) दशदिवसैः (स) चतुर्दशदिवसैः
(ब) द्वादशदिवसैः (द) पञ्चदशदिवसैः

१८४. उल्काऽथ पञ्चरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा ।
धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्रिगुणाश्चाशनिः षडधिकेऽन्ये ॥
इति पद्यं कुतः गृहीतमस्ति?

(अ) भृगुसंहितात: (स) अगस्त्यसंहितात:
(ब) वशिष्ठसंहितात: (द) समाससंहितात:

१८५. कस्य फलमर्धं भवति?
(अ) धिष्ण्याफलम् (स) विद्युत्फलम्
(ब) ताराफलम् (द) अशनिफलम्

१८६. 'अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दा' इति पद्यं कुत्रास्ति?
(अ) समाससंहितायाम् (स) वसिष्ठसंहितायाम्
(ब) गर्गसंहितायाम् (द) अगस्त्यसंहितायाम्

१८७. धिष्ण्या उल्का कियत्परिमाणा दीर्घा?
(अ) द्विहस्तपरिमिता (स) पञ्चहस्तपरिमिता
(ब) त्रिहस्तपरिमिता (द) चतुर्हस्तपरिमिता

१८८. विद्युत् कुत्र पतति?
(अ) प्राणिषु (स) गृहेषु
(ब) वृक्षेषु (द) क्षेत्रेषु

१८९. कया गत्या विद्युत्पतति?
(अ) सहसा पतति (स) त्वरितं वतति
(ब) शनैः पतति (द) द्रुतं पतति

१९०. 'धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृष्णदेहा' इति पद्यं कुत्राऽस्ति?
(अ) समाससंहितायाम् (स) गर्गमनोरमायाम्
(ब) अगस्त्यसंहितायाम् (द) बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे

१९१. तारा कति हस्तपरिमिता दीर्घा भवति?
(अ) द्विहस्तपरिमिता दीर्घा (स) चतुर्हस्तपरिमिता दीर्घा
(ब) त्रिहस्तपरिमिता दीर्घा (द) एकहस्तपरिमिता दीर्घा

१९२. उल्का कान् विपत्तीं सूचयति?
(अ) राज्ञां विपत्तीं सूचयति (स) लोकान् विपत्तीं सूचयति
(ब) जनान् विपत्तीं सूचयति (द) सर्वान् विपत्तीं सूचयति

१९३. किंरूपा उल्का भवति?
(अ) प्रेतरूपा (स) कपिरूपा
(ब) गर्दभरूपा (द) मृगरूपा

१९४. कति शिरा उल्का भवति?
(अ) द्विशिरा (स) चतुःशिरा
(ब) त्रिशिरा (द) पञ्चशिरा

१९५. किंरूपा उल्का कुशलं सुभिक्षञ्च करोति लोकान्?

(अ) स्वस्तिकरूपा (स) नारिकेलरूपा

(ब) शङ्खरूपा (द) राजभवनरूपा

१९६. किंरूपा उल्का द्विजान्नाशयति?

(अ) शुक्लरूपा (स) रक्तरूपा

(ब) कृष्णरूपा (द) पीतरूपा

१९७. पुच्छस्था उल्का कान्नाशयति?

(अ) द्विजान् (स) वैश्यान्

(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

१९८. कुतः समुद्भूता उल्का शुभफलदा भवति?

(अ) सूर्यकिरणात्समुद्भूता:

(ब) चन्द्रप्रदक्षिणक्रमेण समागता

(स) सूर्यप्रदक्षिणक्रमेण समागता

(द) सूर्यचन्द्रमसोः प्रदक्षिणक्रमेण समागता

१९९. आकाशे भ्रममाणा उल्का किं करोति?

(अ) राज्ञः नाशयति (स) नागरिकान् नाशयति

(ब) लोकान् नाशयति (द) ग्रामीणान् नाशयति

२००. नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्का ध्वस्तधूमिता।
तद्देशनाथनाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च ॥
इति वचनं कस्य?

(अ) कश्यपस्य (स) भारद्वाजस्य

(ब) वशिष्ठस्य (द) विश्वामित्रस्य

२०१. राजभीतिका उल्का कीदृशी भवति?

(अ) यस्यानुसङ्गः खे चिरं तिष्ठति (स) या गगने रज्जुबद्धेव विलोक्यते

(ब) या दण्डाकारा विलोक्यते (द) या महेन्द्रध्वजतुल्या दृश्यते

२०२. कीदृशी उल्का श्रेष्ठिनः विनाशयति?

(अ) प्रतीपगा (स) तिर्यगा

(ब) ऋजुगा (द) अधोगा

२०३. ऊर्ध्वगा उल्का कान् पीडयति?

(अ) ब्राह्मणान् (स) वैश्यान्

(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

२०४. कोल्का राष्ट्रदोषकारिणी भवति?

(अ) मण्डलाकृतिः (स) व्यालशूकरोपमा
(ब) वंशगुल्मवत् (द) विस्फुलिङ्गमालिनी

२०५. सुरपतिचापप्रतिमोल्का कन्नाशयति?
(अ) राज्यम् (स) जनपदम्
(ब) ग्रामम् (द) मण्डलम्

२०६. पार्थिवे प्रस्थिते दीप्ता पतत्युल्का महास्वनाः ।
तां दिशं सिद्ध्यते सिद्धिं विजयं लभतेऽचिरात् ॥
इति कस्य कथनम् ?
(अ) कश्यपस्य सत्र. अत्रेः
(ब) वशिष्ठस्य (द) विश्वामित्रस्य

२०७. इन्द्रकृतः परिवेषः किंवर्णकः?
(अ) रक्तवर्णकः (स) हरितवर्णकः
(ब) पीतवर्णकः (द) कृष्णवर्णकः

२०८. वरुणकृतः परिवेषः किंवर्णकः?
(अ) श्वेतवर्णकः (स) हरितवर्णकः
(ब) कपोतवर्णकः (द) श्यामवर्णकः

२०९. कुवेरकृतः परिवेषः किंवर्णकः?
(अ) मयूरकण्ठसदृशः नीलवर्णकः (स) रक्तवर्णकः
(ब) पीतवर्णकः (द) श्वेतवर्णकः

२१०. सितपीतेन्द्रनीलाभरक्तकापोतबभ्रवः ।
शबला बर्हिवर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः ॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) वशिष्ठस्य (स) यमस्य
(ब) विश्वामित्रस्य (द) कश्यपस्य

२११. दिवा सूर्ये परिवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत् ।
एकस्मिंश्चेदहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिवः ॥
इति कस्य वचनम्?
(अ) गर्गस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य (द) विश्वामित्रस्य

२१२. मयूरकण्ठसदृशनीलवर्णपरिवेषः कः करोति?
(अ) कुवेरः (स) वायुः
(ब) वरुणः (द) यमः

२१३. **प्रतिपदि दृष्टः परिवेषः कन्नाशयति?**

(अ) ब्राह्मणान् (स) वैश्यान्
(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

२१४. **कस्यान्तिथौ दृष्टः परिवेषः नृपान्नाशयति?**

(अ) दशम्याम् (स) नवम्याम्
(ब) एकादश्याम् (द) अष्टम्याम्

२१५. **कस्यान्तिथौ समवलोकितः परिवेषः वैश्यान्नाशयति?**

(अ) द्वितीयायाम् (स) पञ्चम्याम्
(ब) तृतीयायाम् (द) चतुर्थ्याम्

२१६. **क्व गता रेखाः नगरवासिनः पीडयति?**

(अ) परिवेषमध्यगताः (स) परिवेषोपरिगताः
(ब) परिवेषबहिर्गताः (द) परिवेषनीचैः गताः

२१७. **अनन्तकुलजाता ये पन्नगाः कामरूपिणः।**
तेषां विश्वाससम्भूतं इन्द्रचापं प्रचक्षते॥
इति कस्य वचनम्?

(अ) कश्यपस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) गालवस्य (द) विश्वामित्रस्य

२१८. **कुत्रत्य इन्द्रधनुः शुभफलदो भवति?**

(अ) अवनिगतः (स) विविधवर्णः
(ब) द्युतिमत् (द) प्रतीचिस्थम्

२१९. **किंवर्णमिन्द्रायुधं वृष्टिकरम्?**

(अ) अविकलम् (स) द्विरुदितम्
(ब) विविधवर्णयुतम् (द) अनुलोमम्

२२०. **द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं महत्।**
पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु॥
इति कस्य कथनम्?

(अ) ऋषिपुत्रस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य (द) नारदस्य

२२१. **नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिद्धमायतम्।**
पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्॥
इति कस्योक्तिः?

(अ) कश्यपस्य (स) नारदस्य
(ब) बृहस्पतेः (द) गालवस्य

२२२. पीतवर्णमिन्द्रधनुः किं करोति?

(अ) शत्रुदोषं करोति (स) वायुदोषं जनयति
(ब) अग्निदोषं जनयति (द) जलदोषं जनयति

२२३. कस्यां दिशि गतमिन्द्रायुधं वृष्टिं करोति?

(अ) पूर्वस्याम् (स) दक्षिणगतम्
(ब) प्रतीच्याम् (द) अग्निकोणगतम्

२२४. 'बहूदकं सुभिक्षञ्च शिवं सस्यप्रदं भवेत्' इति कस्य वाक्यम्?

(अ) वसिष्ठस्य (स) गर्गस्य
(ब) कश्यपस्य (द) नारदस्य

२२५. कुत्र विलोकितं गन्धर्वनगरं पुरोहितं विनाशयति?

(अ) उदीच्याम् (स) प्राच्याम्
(ब) प्रतीच्याम् (द) दक्षिणस्याम्

२२६. कदा नृपं विनाशयति गन्धर्वनगरम्?

(अ) पूर्वस्याम् (स) दक्षिणस्याम्
(ब) उत्तरस्याम् (द) पश्चिमायाम्

**२२७. बहुवर्णपताकाढ्यं गन्धर्वनगरं महत्।
दृष्टं प्रजाक्षयकरं संग्रामे लोमहर्षणम्॥
इति कस्य वचनम्?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) गर्गस्य
(ब) कश्यपस्य (द) बृहस्पतेः

२२८. कुत्रावलोकितः प्रतिसूर्यः वृष्टिं करोति?

(अ) पूर्वस्यां दिशि (स) प्रतीच्यां दिशि
(ब) दक्षिणस्यां दिशि (द) उदीच्यां दिशि

**२२९. याम्ये वातप्रदो ज्ञेय उत्तरे वृद्धिदो रवेः।
उभयोः पार्श्वयोर्भाति सलिलं भूरि यच्छति॥
इति वाक्यं कस्य?**

(अ) कश्यपस्य (स) पराशरस्य
(ब) वशिष्ठस्य (द) गर्गस्य

**२३०. यदान्तरिक्षे बलवान् मरुतो मरुतावृतः।
पतत्यधः सनिर्घातो भवेदनिलसम्भवः॥
इति केनोक्तम्?**

(अ) वसिष्ठेन (स) गर्गेण
(ब) अत्रिणा (द) पराशरेण

२३१. निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्।
तस्करविप्राश्चार्कोदयाद्दिशं पतति यस्याम्॥
इति वाक्यं कुत्रास्ति ?
(अ) गर्गसंहितायाम् (स) समाससंहितायाम्
(ब) कश्यपसंहितायाम् (द) बृहत्संहितायाम्

२३२. भानोः वृश्चिक-वृषप्रवेशे ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगा केन प्रोक्ताः?
(अ) पराशरेण (स) वादरायणेन
(ब) वसिष्ठेन (द) अगस्त्येन

२३३. सूर्याद् बुधे द्वितीये शुक्रे वा युगपदेन तयोः।
रिष्फगयोरप्येवं निष्पत्तिर्गुरुदृशाऽतीव॥
इति वचनं केन प्रोक्तम्?
(अ) कश्यपेन (स) गालवेन
(ब) वादरायणेन (द) नारदेन

२३४. क्व गतः सूर्यः धान्यं नाशयति?
(अ) पापमध्यगतः (स) कुम्भराशिगतः
(ब) वृश्चिकराशिगतः (द) शनिमङ्गलयोरेकः स्यात्

२३५. सूर्यात् सप्तमस्थः पापोऽन्यः केन्द्रगतश्च हानिकरौ।
सौम्यग्रहनिर्दिष्टौ न तथा.......................................॥
इति कस्य वाक्यम्?
(अ) वादरायणस्य (स) विश्वामित्रस्य
(ब) वसिष्ठस्य (द) नारदस्य

२३६. वृषे महिषगोवस्त्रशालयः पुष्पसम्भवाः।
मिथुने धान्यशालूकवल्यः कार्पासशारदम्॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) वसिष्ठस्य (स) नारदस्य
(ब) कश्यपस्य (द) धौम्यस्य

२३७. 'पद्ममुक्ताफलादीनां द्रव्याणां मीन ईश्वर' इति कस्य कथनम्?
(अ) वसिष्ठस्य (स) कश्यपस्य
(ब) विश्वामित्रस्य (द) नारदस्य

२३८. सिंहराशिगते सूर्ये संगृहीतानि रत्नानि कतिमासानन्तरं विक्रेतव्यानि?
(अ) चतुर्मासानन्तरम् (स) षण्मासानन्तरम्
(ब) पञ्चमासानन्तरम् (द) सप्तमासानन्तरम्

२३९. राशौ राशौ स्थितः सूर्यः शशी वा मित्रसंयुतः?
अधिमित्रेण सन्दृष्टो यथालाभप्रदः स्मृतः ॥
इति कस्य वचनम्?

(अ) कश्यपस्य (स) विश्वामित्रस्य
(ब) नारदस्य (द) गौतमस्य

२४०. क्षीरोदे देवान् कः केतुं दास्यति?

(अ) रामः (स) विष्णुः
(ब) कृष्णः (द) केशवः

२४१. केतुं देवान् स्यतीति क आह?

(अ) ब्रह्मा (स) शिवः
(ब) विष्णुः (द) नारदः

२४२. असुरास्तं ध्वजं दृष्ट्वा ध्वजस्तेजःसमाहताः ।
विसंज्ञाः समरे भग्नाः पराभूता प्रदुद्रुवुः ॥
इति केनोक्तम्?

(अ) गर्गेण (स) नारदेन
(ब) वसिष्ठेन (द) गौतमेन

२४३. प्रोष्ठपादे प्रतिपदि ध्वजार्थं पूर्वतो वनम् ।
गत्वा वृक्षं परीक्षेत वयःसारगुणान्वितम् ॥
इति कस्य महर्षेः वाक्यम्?

(अ) गर्गस्य (स) अत्रेः
(ब) वसिष्ठस्य (द) पराशरस्य

२४४. ध्वजार्थं को वृक्षः शुभः?

(अ) अर्जुनवृक्षः (स) प्रियकः
(ब) उदुम्बरवृक्षः (द) धवः

२४५. ध्वजार्थं काष्ठं राजा कदा नगरे प्रवेशयेत्?

(अ) भाद्रशुक्लाष्टम्याम् (स) आषाढशुक्लाष्टम्याम्
(ब) श्रावणशुक्लाष्टम्याम् (द) आश्विनशुक्लाष्टम्याम्

२४६. प्रोष्ठपादे सिताष्टम्यां ज्येष्ठायोगे स्वलंकृताम् ।
यष्टिं पौरन्दरीं राजा नगरं सम्प्रवेशयेत् ॥
इति कस्य कथनम्?

(अ) वसिष्ठस्य (स) नारदस्य
(ब) कश्यपस्य (द) गर्गस्य

२४७. नगरे किंवर्णिका पताका शुभा?
(अ) श्वेता (स) हरिता
(ब) रक्ता (द) कृष्णा

२४८. राजा कदा जागरणं कुर्यात्?
(अ) एकादश्याम् (स) त्रयोदश्याम्
(ब) दशम्याम् (द) नवम्याम्

२४९. तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थानं प्रशस्यते।
द्वादश्यां विजये वाश्वमुहूर्ते वा दिनेऽथ वा॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) गर्गस्य (स) गौतमस्य
(ब) गालवस्य (द) अत्रे:

२५०. ध्वजोपरि शक्रकुमार्यः विधातव्या कति?
(अ) पञ्च (स) अष्टौ
(ब) सप्त (द) दश

२५१. ध्वजाय प्रथमाभूषणं केन प्रदत्तम् ?
(अ) ब्रह्मणा (स) शिवेन
(ब) विश्वकर्मणा (द) विष्णुना

२५२. नीराजनशान्तिः कदा कर्तव्या?
(अ) कार्तिकशुक्लाष्टम्याम् (स) कार्तिकशुक्लद्वादश्याम्
(ब) आश्विनशुक्लाष्टम्याम् (द) कार्तिकशुक्लपौर्णमास्याम्

२५३. शालिजातकसिद्धार्थान् कुष्ठं भल्लातकं तथा।
अश्वेषु कण्ठे बध्नीयात् सप्ताहं शान्तिमाचरेत्॥
इति वचनं केन भणितम्?
(अ) कश्यपेन (स) पराशरेण
(ब) वसिष्ठेन (द) विश्वामित्रेण

२५४. कति हस्तपरिमिता वेदी ब्राह्मणानां यज्ञे विधातव्या?
(अ) सप्तहस्ता (स) दशहस्ता
(ब) पञ्चहस्ता (द) अष्टहस्ता

२५५. यज्ञे विवाहे ब्राह्मणानां वेदिमानं किम्?
(अ) त्रिसप्त हस्ता (स) अष्टौ हस्ता
(ब) दश हस्ता (द) नव हस्ता

२५६. त्रिसप्तहस्तविस्तारा वेदी केषां कृते?

(अ) ब्राह्मणानां कृते (स) वैश्यानां कृते
(ब) क्षत्रियाणां कृते (द) शूद्राणां कृते

२५७. अश्वं समारूह्य राजा कस्यां दिशि प्रस्थानं कुर्यात्?
(अ) ऐशान्याम् (स) प्रतीच्याम्
(ब) पूर्वस्याम् (द) उदीच्याम्

२५८. 'नामानुरूपेण फलं विहगानां विनिर्दिशेत्' कति कस्य कथनम्?
(अ) कश्यपस्य (स) गालवस्य
(ब) गौतमस्य (द) विश्वामित्रस्य

२५९. मैथुनं कुरुते यत्र तत्र वै निधिमादिशेत्।
भुक्तं छर्दयते यत्र तत्र काचमधो भवेत्॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) वसिष्ठस्य (स) कश्यपस्य
(ब) गौतमस्य (द) नारदस्य

२६०. राजानं पुष्यस्नानं कः कारयति?
(अ) पुरोहितः (स) प्रजा
(ब) ज्योतिषी (द) मन्त्रिणः

२६१. पुष्यस्नानं कुत्र कर्तव्यम्?
(अ) शोभने कानने (स) नूतनलतायुते वने
(ब) दुर्गन्धवृक्षरहिते स्थाने (द) अशुभकारकै पक्षिभिः रहिते स्थाने

२३२. समुद्रतीरे सोद्याने नदीनां सङ्गमे शुभे।
महाह्रदेऽथवा तीर्थे देवतायतने तथा॥
सर्वर्तुकुसुमोपेते वने द्विजवरैर्युते।
गृहे रम्ये विविक्ते वा पुष्यस्नानं समाचरेत्॥
इति कस्य वाक्यम्?
(अ) वसिष्ठस्य (स) वृद्धगर्गस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

२६३. पुष्यस्नानविधौ पुरोहितः किं कुर्यात् ?
(अ) दध्यक्षतबलिं चरेत् (स) पुण्यक्षेत्रे पुष्पबलिं चरेत्
(ब) पायसबलिं दद्यात् (द) पायसदधिपुष्पयुतं बलिं दद्यात्

२६४. कस्यां दिशि बलिं चरेत् ?
(अ) पूर्वस्यां दिशि (स) वायव्यकोणे
(ब) उत्तरस्यां दिशि (द) ऐशान्यां दिशि

२६५. बलिप्रदानानन्तरं पुरोधा किं कुर्यात् ?

(अ) आवाहनं कुर्यात् (स) प्रार्थनां कुर्यात्
(ब) मन्त्रान् पठेत् (द) आवाहनसामग्रीं निरीक्षेत्

२६६. आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाऽभिलाषिणः।
दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चाऽप्यन्येंऽशभागिनः ॥
अनेन मन्त्रेण किं कुर्यात् ?

(अ) आवाहनम् (स) वन्दनम्
(ब) पूजनम् (द) विसर्जनम्

२६७. 'पूजां प्राप्य प्रयास्यन्ति दत्वा शान्तिं महीपतेः' इदं वाक्य कः कथयति?

(अ) पुरोहितः (स) आचार्यः
(ब) सचिवः (द) अङ्गरक्षकः

२६८. आवाहनानन्तरं तदानीं पुरोहितादयः किं कुर्युः?

(अ) तां रात्रिं तत्रैव व्यतीयुः।
(ब) गच्छन्तु।
(स) केवलं पुरोहितः तां रात्रीं तत्रैव तिष्ठेत्।
(द) सर्वे तत्रैव निवसन्तु।

२६९. द्वितीयेऽह्नि कस्य वचनं पठितव्यम् ?

(अ) वसिष्ठस्य (स) शौनकस्य
(ब) पराशरस्य (द) वृद्धगर्गस्य

२७०. यात्राप्रस्थानकाले कस्य ग्रन्थानुसारं पूजा विधातव्या?

(अ) यात्रानां पुस्तकानुसारम् (स) कर्मकाण्डप्रदीपानुसारम्
(ब) ग्रहशान्त्यनुसारम् (द) पूजापारिजातानुसारम्

२७१. नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
अयं मन्त्रः कदा पठितव्यः?

(अ) यात्रायाः पूर्वसन्ध्यायां (स) उत्थाय
(ब) यात्राकाले (द) यात्रातः पूर्वम्

२७२. ग्रहयज्ञे मण्डलं विधाय कस्य पूजा विधातव्या?

(अ) देवतानाम् (स) मातृकानाम्
(ब) पितॄणाम् (द) लोकपालानाम्

२७३. यात्राकालिके ग्रहयज्ञे कतिसङ्ख्याकाः कलशाः भवन्ति?

(अ) चत्वारः कलशाः (स) सप्त कलशाः
(ब) पञ्च कलशाः (द) अष्टौ कलशाः

२७४. बृहत् रूपे कति कलशाः?

(अ) अष्टोत्तरशतकलशा: (स) अष्टाविंशतिकलशा:

(ब) अष्टौ कलशा: (द) चतुर्विंशति कलशा:

२७५. मण्डलस्य कस्यां दिशि वेदी भवेत्?

(अ) मण्डलस्य पूर्वभागे (स) मण्डलस्य दक्षिणभागे

(ब) मण्डलस्योत्तरभागे (द) मण्डलस्य पश्चिमभागे

२७६. चतुर्षु कलशेषु कतिविधा औषधयः प्रक्षेपणीयाः?

(अ) षोडश (स) चतुर्दश

(ब) पञ्चदश (द) सप्तदश

२७७. अन्यानि मङ्गलद्रव्याणि कियन्ति?

(अ) त्रीणि (स) चत्वारि

(ब) पञ्च (द) सप्त

२७८. आसने प्रथमं किं स्तरणीयम् ?

(अ) वृद्धवृषभचर्म (स) मृगचर्म

(ब) युवावृषभचर्म (द) गजचर्म

२७९. गोचर्मोपरि किं भवेत् ?

(अ) युवावृषभचर्म (स) अजाचर्म

(ब) वत्सचर्म (द) सिंहचर्म

२८०. वृषभचर्मोपरि किं स्तरणीयम् ?

(अ) सिंहचर्म (स) गजचर्म

(ब) अजाचर्म (द) व्याघ्रचर्म

२८१. सिंहचर्मोपरि आसने किं स्यात् ?

(अ) मृगचर्म (स) गजचर्म

(ब) व्याघ्रचर्म (द) अजाचर्म

२८२. नृपस्यासने कतिविधानि चर्माणि?

(अ) चतुर्विधानि (स) त्रिविधानि

(ब) पञ्चविधानि (द) षड्विधानि

२८३. नृपासने चर्मोपरि किं स्तरणीयं भवति?

(अ) सुवर्णासनम् (स) ताम्रासनम्

(ब) रजतासनम् (द) लौहासनम्

२८४. राज्ञ आसनं कियद्विस्तृतं भवेत्?

(अ) सपादहस्तपरिमितम्
(स) द्विहस्तपरिमितम्
(ब) सार्धहस्तपरिमितम्
(द) सार्धद्विहस्तपरिमितम्

२८५. नृपासनं कस्योपरि समाच्छदनीयम्?
(अ) व्याघ्रचर्मोपरि
(स) सिंहचर्मोपरि
(ब) गजचर्मोपरि
(द) वृषभचर्मोपरि

२८६. नृपः स्वासने केन सह तिष्ठेत्?
(अ) मन्त्रिणा सह
(स) प्रजाभिः साकम्
(ब) सचिवेन साकम्
(द) पुरोधासमम्

२८७. पुरोधा स्वासनस्थं राजानं केन वस्तुना समभिषिञ्चेत्?
(अ) घृतेन
(स) पयसा
(ब) जलेन
(द) पञ्चगव्येन

२८८. आज्यं तेजःसमुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।
आज्यं सुराणामाहारं सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम्॥
केन पठितोऽयं मन्त्रः?
(अ) वसिष्ठेन
(स) गौतमेन
(ब) गर्गेण
(द) वृद्धगर्गेण

२८९. घृताभिषेककाले केनाच्छादयति राजानम्?
(अ) कम्बलेन
(स) कार्पासवस्त्रेण
(ब) पट्टवस्त्रेण
(द) सामान्यवस्त्रेण

२९०. कियद्भिर्मन्त्रैरभिषिक्तो भवति नृपः?
(अ) अष्टभिर्मन्त्रैः
(स) पञ्चदशमन्त्रैः
(ब) द्वादशमन्त्रैः
(द) षोडशमन्त्रैः

२९१. द्वितीयवेद्यां कीदृगाशनं समास्तीर्यते?
(अ) वृषभचर्मणः
(स) व्याघ्रचर्मणः
(ब) गजचर्मणः
(द) सिंहचर्मणः

२९२. द्वितीयायां वेद्यां वृषभचर्मोपरि किं समास्तीर्यते?
(अ) गजचर्म
(स) कृष्णमृगचर्म
(ब) मार्जारचर्म
(द) हरिणचर्म

२९३. स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः
स्निग्धप्रदक्षिणशिखो हुतभुग्नृपस्य।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारं
भूमिं समुद्रवसनां वशगां करोति॥
केनोच्चरितोऽयं मन्त्रः?

(अ) पुरोहितेन (स) प्रजावर्गेण
(ब) सचिवेन (द) निजसचिवेन

२९४. दत्वा वित्तं ब्राह्मणेभ्यो गावो हेमपरिष्कृता।
वास्तुयुग्मं महीं रूप्यं तेभ्यश्च बहुभोजनम्॥
कस्येदं वाक्यम्?

(अ) वृद्धगर्गस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

२९५. पुष्यस्नानेन किं फलं प्राप्नोति राजा?

(अ) सुखं प्राप्नोति (स) यशः प्राप्नोति
(ब) शुभं लभते (द) धनानि लभते

२९६. पुष्यस्नानमिन्द्राय केनोक्तम्?

(अ) वसिष्ठेन (स) गर्गेण
(ब) सुराचार्येण (द) विश्वामित्रेण

२९७. पुष्यस्नानं किं फलं ददाति राजानम्?

(अ) सौभाग्यं करोति (स) धनं ददाति
(ब) पूजावृद्धिं करोति (द) आयुर्वृद्धिं करोति

२९८. प्रतिपुष्येण यो राजा स्नायति विधिपूर्वकम्।
तस्य राष्ट्रे न सीदन्ति मर्त्या ये जन्तवो मुनिः॥
इदं वचनं कस्यास्ति?

(अ) वसिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) बृहस्पतेः

२९९. अनेन विधिना केषामन्येषामभिषेको भवति?

(अ) गजस्य (स) वृषभस्य
(ब) अश्वस्य (द) प्रजावर्गस्य

३००. कियदङ्गुलपरिमितं मुकुटं राजा अन्यान् परिधापयितुं शक्नोति?

(अ) द्व्यङ्गुलपरिमितम् (स) चतुरङ्गुलपरिमितम्
(ब) त्र्यङ्गुलपरिमितम् (द) पञ्चाङ्गुलपरिमितम्

३०१. राजा कियदङ्गुलपरिमितं मुकुटं परिदधाति?

(अ) अष्टाङ्गुलपरिमितम् (स) पञ्चदशाङ्गुलपरिमितम्
(ब) द्वादशाङ्गुलपरिमितम् (द) नवाङ्गुलपरिमितम्

३०२. कियत्परिमितं दैर्घ्यं भवति राज्ञः मुकुटम्?

(अ) षोडशाङ्गुलपरिमितम्
(ब) दशाङ्गुलपरिमितम्
(स) चतुर्विंशत्यङ्गुलपरिमितम्
(द) विंशत्यङ्गुलपरिमितम्

३०३. महिष्याः मुकुटस्य कियदङ्गुलपरिमितो विस्तारो भवेत्?
(अ) सप्ताङ्गुलपरिमितम्
(ब) दशाङ्गुलपरिमितम्
(स) अष्टाङ्गुलपरिमितम्
(द) एकादशाङ्गुलपरिमितम्

३०४. राज्ञ्याः मुकुटस्य दैर्घ्यं भवेत्—
(अ) चतुर्दशाङ्गुलम्
(ब) द्वादशाङ्गुलम्
(स) सप्तदशाङ्गुलम्
(द) अष्टादशाङ्गुलम्

३०५. युवराजस्य मुकुटविस्तारो भवेत्—
(अ) षडङ्गुलम्
(ब) सप्ताङ्गुलम्
(स) अष्टाङ्गुलम्
(द) दशाङ्गुलम्

३०६. युवराजस्य मुकुटस्य दैर्घ्यं कियत् परिमितम्भवेत्?
(अ) दशाङ्गुलम्
(ब) द्वादशाङ्गुलम्
(स) त्रयोदशाङ्गुलम्
(द) पञ्चदशाङ्गुलम्

३०७. राज्ञां प्रजाभ्य दीयमानस्य मुकुटस्य विस्तारो भवति?
(अ) द्व्यङ्गुलम्
(ब) चतुरङ्गुलम्
(स) पञ्चाङ्गुलम्
(द) त्र्यङ्गुलम्

३०८. पञ्चशिखं मुकुटं कस्य कृते भवति?
(अ) राज्ञः
(ब) महिष्याः
(स) राजकुमारस्य
(द) राजकुमार्याः

३०९. क्रियमात्रं यदा पत्रं मध्ये स्फुटति भिद्यते।
तदा नृपभयं प्रोक्तं यत्स्थाने वा प्रकल्पितम्॥
इति कस्य वचनम्?
(अ) कश्यपस्य
(ब) गर्गस्य
(स) वसिष्ठस्य
(द) पराशरस्य

३१०. एकशिखायुतं मुकुटं कस्य कृते?
(अ) सेनापतेः
(ब) युवराजस्य
(स) महिष्याः
(द) प्रजायाः

३११. उत्तमखड्गः कियदङ्गुलपरिमितं भवति?
(अ) पञ्चाशदङ्गुलपरिमितम्
(ब) चत्वारिंशदङ्गुलपरिमितम्
(स) त्रिंशदङ्गुलपरिमितम्
(द) चतुश्चत्वारिंशदङ्गुलपरिमितम्

३१२. मृत्योः सूचकं भवति?

(अ) खड्गात् शब्दनि:सरणम् (स) खड्गस्य पतनम्
(ब) खड्गस्य कम्पनम् (द) खड्गस्य कुटिलम्

३१३. खड्गस्य प्रमाणाधिक्यात् किं कर्तव्यम्?

(अ) कर्तितव्यम् (स) घर्षणीयम्
(ब) वक्रीकर्तव्यम् (द) तापनीयम्

३१४. तत्र देशे दिशः कालं व्याहारं द्रव्यदर्शनम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंस्पर्शं समीक्ष्य फलमादिशेत्॥
कस्य वाक्यमिदम्?

(अ) पराशरस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) गौतमस्य (द) धौम्यस्य

३१५. प्रश्नः कुत्र कर्तव्यः?

(अ) जलपूर्णभूमौ (स) फलितवृक्षभूमौ
(ब) अङ्कुरितदूर्वाभूमौ (द) सुगन्धभरितभूमौ

३१६. वेलाः सर्वाः प्रशस्यन्ते पूर्वाह्णे परिपृच्छताम्।
सन्ध्ययोरपराह्णे तु क्षपायान्तु विगर्हिता॥
कस्य वाक्यमिदम्?

(अ) वसिष्ठस्य (स) गर्गस्य
(ब) पराशरस्य (द) शौनकस्य

३१७. कियन्ति पुरुषसंज्ञकाङ्गानि?

(अ) एकोनविंशतिः (स) एकविंशतिः
(ब) विंशतिः (द) द्वाविंशतिः

३१८. पुत्रेच्छुः राजा केन वस्तुना शस्त्रस्नानं कारयेत्?

(अ) घृतेन (स) जलेन
(ब) दुग्धेन (द) पयसा

३१९. शस्त्रं राजा जलेन किमर्थं स्नापयति?

(अ) धनार्थम् (स) विजयार्थम्
(ब) पुत्रार्थम् (द) ऐश्वर्यार्थम्

३२१. अङ्गुष्ठेन लिखेद् भूमिं क्षेत्रचिन्तां विचिन्तयेत्।
हस्तेन पादौ कण्डूयेत् कुर्याद्दाशीकृतां सताम्॥
इति कस्य वाक्यम्?

(अ) पराशरस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

३२२. कुटुम्बस्य वृद्धि: कदा भवति?
(अ) प्रश्नकाले धान्यपूर्णपात्रदर्शनात् (स) पय:पूर्णपात्रदर्शनात्
(ब) जलपूर्णकुम्भदर्शनात् (द) घृतपूर्णपात्रदर्शनात्

३२३. प्रश्नकाले पादाङ्गुष्ठस्पर्शने कश्चौर:?
(अ) दासश्चौर: (स) दूतश्चौर:
(ब) दासी चौर: (द) भगिनी चौर:

३२४. हस्ताङ्गुलीस्पर्शने कश्चौर:?
(अ) निजकन्या (स) निजभार्या
(ब) निजपुत्र: (द) निजमित्रम्

३२५. प्रश्नकाले दक्षिणोरुस्पर्शने किं फलम्?
(अ) द्वे कन्यके (स) चतस्र: कन्यका:
(ब) तिस्र: कन्यका: (द) षट् कन्यका:

३२६. प्रश्नकाले शिर:स्पर्शे कस्मिन् नक्षत्रे बालकस्य जन्म?
(अ) अश्विनीनक्षत्रे (स) मूलनक्षत्रे
(ब) उत्तराषाढानक्षत्रे (द) हस्तनक्षत्रे

३२७. प्रश्नकाले केशस्पर्शनात् का सन्ततिसङ्ख्या?
(अ) त्रय: पुत्रा: (स) द्वौ पुत्रौ
(ब) चतस्र: कन्यका: (द) तिस्र: कन्या:

३२८. केवलैका कन्यका किं स्पर्शने भवति?
(अ) पादाङ्गुष्ठस्पर्शने (स) अङ्गुष्ठस्पर्शने
(ब) पार्ष्णियुग्मस्पर्शने (द) तर्जनीस्पर्शने

३२९. प्रश्नकाले दक्षिणोरुस्पर्शने कति सन्तत्य:?
(अ) चतस्र: कन्यका: (स) द्वौ पुत्रौ
(ब) पञ्च कन्यका: (द) त्रय: पुत्रा:

३३०. इदं सम्यग् विजानाति चेत् स: किं लभते?
(अ) राज्ञ: समादरं लभते (स) समाजत: समादरं लभते
(ब) प्रजाभ्य: समादरं लभते (द) सर्वत: समादरं लभते

३३१. प्रश्नकाले कर्णस्पर्शात् कति पुत्रा: जायन्ते?
(अ) पञ्च पुत्रा: (स) षट् पुत्रा:
(ब) चत्वार: पुत्रा: (द) सप्त पुत्रा:

३३२. हस्तस्पर्शने कति पुत्राः जायन्ते?

(अ) त्रयः पुत्राः (स) पञ्च पुत्राः

(ब) चत्वारः पुत्राः (द) द्वौ पुत्रौ

३३३. ललाटमध्ये स्पर्शने कति कन्यकाः जायन्ते?

(अ) चतस्रः कन्यके (स) पञ्च कन्यके

(ब) तिस्रः कन्यके (द) द्वे कन्यके

३३४. स्त्रियाः शिरःस्पर्शने कस्मिन्नक्षत्रे सन्ततिर्जायते?

(अ) कृत्तिकानक्षत्रे (स) मृगशिरानक्षत्रे

(ब) रोहिणीनक्षत्रे (द) आर्द्रानक्षत्रे

३३५. श्वेतपिटकं कस्य कृते शुभम्?

(अ) विप्रस्य कृते (स) वैश्यस्य कृते

(ब) क्षत्रियस्य कृते (द) शूद्रस्य कृते

३३६. क्षत्रियस्य कृते किंवर्णकं पिटकं शुभम्भवति?

(अ) रक्तवर्णकम् (स) धूम्रवर्णकम्

(ब) श्वेतवर्णकम् (द) कृष्णवर्णकम्

३३७. अन्त्यजस्य कृते किंवर्णकं पिटकं शुभम्?

(अ) कृष्णवर्णकम् (स) धूम्रवर्णकम्

(ब) रक्तवर्णकम् (द) सर्ववर्णकम्

३३८. क्व गतं पिटकं धनलाभाय भवति?

(अ) हस्तगतम् (स) शिरोगतम्

(ब) पादगतम् (द) ऊरुगतम्

३३९. नासिकायां पिटकः स्यात्तदा किं लभते?

(अ) वस्त्रलाभः (स) भोजनलाभः

(ब) धनलाभः (द) मानलाभः

३४०. यदि गण्डस्थले पिटकः स्यात्तदा को लाभः?

(अ) पुत्रलाभः (स) कन्यालाभः

(ब) राज्यलाभः (द) धनलाभः

३४१. नेत्रपुटस्थपिटकः किं ददाति?

(अ) शोकम् (स) दैन्यम्

(ब) दुःखम् (द) क्लेशम्

३४२. कराङ्गुलिगतः पिटकः किं ददाति?

(अ) सौभाग्यम्
(ब) धनम्
(स) अन्नम्
(द) फलानि

३४३. बाहुगतः पिटकः किं करोति?

(अ) शोकं ददाति
(ब) सौभाग्यं करोति
(स) शत्रून्नाशयति
(द) मैत्रीं विस्तारयति

३४४. मणिबन्धगः पिटकः किं करोति?

(अ) अन्नवस्त्रादिलाभं करोति
(ब) भूषणलाभं करोति
(स) हस्तबन्धनं करोति
(द) शत्रून्नाशयति

३४५. हृद्गतः पिटकः किं करोति?

(अ) धनलाभं करोति
(ब) पुत्रलाभं करोति
(स) सौख्यलाभं करोति
(द) मित्रलाभं करोति

३४६. क्व गतः पिटकः शस्त्रपीडां करोति?

(अ) शिरोगतः
(ब) हस्तगतः
(स) गलगतः
(द) बाहुगतः

३४७. नाभिगतः पिटकः किं ददाति?

(अ) धनधान्यम्
(ब) सौभाग्यम्
(स) विद्याम्
(द) सर्वसौख्यम्

३४८. क्व गतः पिटकः वनितां ददाति?

(अ) गलङ्गतः
(ब) नाभिगतः
(स) हस्तगतः
(द) पादगतः

३४९. जानुगतः पिटकः किं करोति?

(अ) शत्रुबाधां करोति
(ब) चौरभयं करोति
(स) दस्युभयङ्करोति
(द) राजभयङ्करोति

३५०. मार्गे क्व गतः पिटकः कष्टं प्रापयति?

(अ) गुल्फगतः
(ब) पादतलगतः
(स) पार्ष्णिगतः
(द) करगतः

३५१. पादगतः पिटकः किं करोति?

(अ) भ्रामयति
(ब) पर्यटनं कारयति
(स) परदेशं गमयति
(द) देशान्तरं प्रापयति

३५२. अगुष्ठस्थः पिटकः किं करोति?

(अ) बन्धुभिः पूजयति
(ब) सर्वैः सत्कारयति
(स) सम्मानं ददाति
(द) सर्वत्र पूजां ददाति

३५३. दक्षिणाङ्गगताः पिटकाः केषां कृते शुभावहाः?

(अ) स्त्रीणां कृते
(स) वैश्यानां कृते
(ब) पुरुषाणां कृते
(द) कन्यकानां कृते

३५४. वामाङ्गे गताः पिटकाः केषां कृते दुःखदा?

(अ) नारीणां कृते
(स) कुमारीणां कृते
(ब) वृद्धानां कृते
(द) बालानां कृते

वस्तुनिष्ठप्रश्नोत्तराणि

१. अ
२. स
३. द
४. ब
५. अ
६. अ
७. अ
८. अ
९. अ
१०. ब
११. अ
१२. अ
१३. अ
१४. अ
१५. अ
१६. अ
१७. अ
१८. अ
१९. द
२०. अ
२१. अ
२२. अ
२३. अ
२४. अ
२५. अ
२६. स
२७. ब
२८. अ
२९. स
३०. द
३१. ब
३२. द
३३. अ
३४. द
३५. ब
३६. ब
३७. द
३८. ब
३९. अ
४०. अ
४१. अ
४२. द
४३. अ + द
४४. ब
४५. अ
४६. अ
४७. अ
४८. अ
४९. अ
५०. अ
५१. अ
५२. अ
५३. स
५४. अ
५५. ब
५६. ब
५७. ब
५८. द
५९. अ
६०. द
६१. ब
६२. स
६३. अ
६४. अ
६५. ब
६६. अ
६७. ब
६८. अ
६९. द
७०. द
७१. ब
७२. अ
७३. अ
७४. स
७५. अ
७६. ब
७७. स
७८. अ
७९. अ
८०. अ
८१. स
८२. ब
८३. स
८४. अ
८५. ब
८६. अ
८७. अ
८८. अ
८९. अ
९०. ब
९१. अ
९२. स
९३. ब
९४. ब
९५. द
९६. द
९७. द
९८. स
९९. स
१००. अ
१०१. स
१०२. अ
१०३. अ
१०४. अ
१०५. स
१०६. अ
१०७. अ
१०८. ब
१०९. ब
११०. स
१११. अ
११२. द
११३. अ
११४. अ
११५. अ
११६. ब
११७. ब
११८. अ
११९. अ
१२०. स
१२१. अ
१२२. द
१२३. स
१२४. द
१२५. अ
१२६. अ
१२७. ब
१२८. अ
१२९. अ
१३०. अ

१३१. अ
१३२. द
१३३. स
१३४. अ
१३५. ब
१३६. द
१३७. अ
१३८. द
१३९. अ
१४०. अ ब स द
१४१. द
१४२. द
१४३. अ
१४४. अ
१४५. अ ब स
१४६. अ
१४७. अ
१४८. अ
१४९. अ
१५०. द
१५१. द
१५२. ब
१५३. अ
१५४. अ
१५५. अ
१५६. अ
१५७. अ

१५८. अ
१५९. द
१६०. अ
१६१. अ
१६२. अ
१६३. द
१६४. अ
१६५. स
१६६. द
१६७. ब
१६८. ब
१६९. स
१७०. ब
१७१. अ
१७२. ब
१७३. ब
१७४. द
१७५. द
१७६. द
१७७. स
१७८. ब
१७९. अ
१८०. ब
१८१. अ
१८२. द
१८३. द
१८४. द
१८५. अ
१८६. अ

१८७. अ
१८८. अ
१८९. अ
१९०. अ
१९१. द
१९२. स
१९३. द
१९४. अ
१९५. अ
१९६. अ
१९७. अ
१९८. अ
१९९. अ
२००. अ
२०१. द
२०२. अ
२०३. अ
२०४. ब
२०५. अ
२०६. अ
२०७. अ
२०८. अ
२०९. अ
२१०. द
२११. अ
२१२. अ
२१३. अ
२१४. अ
२१५. ब

२१६. अ
२१७. अ
२१८. द
२१९. स
२२०. अ
२२१. ब
२२२. अ
२२३. अ
२२४. ब
२२५. अ
२२६. अ
२२७. ब
२२८. अ
२२९. अ
२३०. स
२३१. स
२३२. स
२३३. ब
२३४. अ
२३५. अ
२३६. ब
२३७. स
२३८. स
२३९. अ
२४०. द
२४१. अ
२४२. अ
२४३. अ
२४४. द

२४५. अ
२४६. द
२४७. अ
२४८. अ
२४९. अ
२५०. ब
२५१. ब
२५२. द
२५३. अ
२५४. अ
२५५. अ
२५६. अ
२५७. अ
२५८. अ
२५९. स
२६०. अ ब
२६१. अ
२६२. स
२६३. द
२६४. द
२६५. ब
२६६. अ
२६७. अ
२६८. अ
२६९. द
२७०. अ
२७१. द
२७२. अ
२७३. अ

२७४. अ	२९१. अ	३०७. अ	३२३. अ	३३९. अ
२७५. स	२९२. स	३०८. अ	३२४. अ	३४०. अ
२७६. अ	२९३. अ	३०९. अ	३२५. अ	३४१. अ
२७७. अ	२९४. ब	३१०. अ	३२६. अ	३४२. अ
२७८. अ	२९५. अ	३११. अ	३२७. अ	३४३. ब
२७९. अ	२९६. ब	३१२. अ	३२८. ब	३४४. स
२८०. अ	२९७. ब	३१३. अ	३२९. अ	३४५. ब
२८१. ब	२९८. ब	३१४. अ	३३०. अ	३४६. अ
२८२. द	२९९. अ	३१५. ब	३३१. अ	३४७. अ
२८३. अ	३००. अ	३१६. ब	३३२. अ	३४८. अ
२८४. अ	३०१. अ	३१७. अ	३३३. अ	३४९. अ
२८५. अ	३०२. अ	३१८. अ	३३४. अ	३५०. अ
२८६. अ	३०३. अ	३१९. अ	३३५. अ	३५१. अ
२८७. अ	३०४. अ	३२०. अ	३३६. अ	३५२. अ
२८८. द	३०५. अ	३२१. अ	३३७. द	३५३. अ
२८९. अ	३०६. ब	३२२. अ	३३८. अ	३५४. अ
२९०. द				

महत्वपूर्ण ग्रन्थ

- **कर्मविपाक संहिता** । 'सरलाख्य' भाषाटीका सहित । पं० श्री लालजी उपाध्याय
- **खेटकौतुकम्** । खानखाना विरचित । श्री नारायणदासकृत हिन्दी व्याख्या सहित
- **जातकालङ्कार** । सान्वय 'हरभानु' संस्कृत टीका एवं 'प्रज्ञावर्द्धिनी' हिन्दी टीका सहित । डॉ० सत्येन्द्रमिश्र
- **जैमिनीसूत्र** । संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । पं० सीताराम झा
- **ज्योतिषरत्नमाला** । हिन्दी टीका सहित । पं० सीताराम झा
- **ज्योतिष कल्पद्रुम** (मुहूर्त परिजात) । पं० सोहनलाल व्यास
- **ज्योतिष प्रश्नफलगणना** । 'विमला' हिन्दी व्याख्योपेता । श्री दयाशङ्कर उपायाय
- **ताजिकनीलकण्ठी** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या साहित्य । पं० सीताराम झा
- **फलितप्रकाश** । डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय
- **बीजगणित** । श्रीभास्कराचार्यकृत । व्यांख्याकार—विशुद्धानन्द गौड
- **बृहज्ज्योतिषसार** । हिन्दी टीका, विशेष विवरण, विविध प्रकार के चक्र, सारणी आदि से सुसज्जित फलित का अभिनव ग्रन्थ । सम्पा०—श्रीवासुदेव गुप्त
- **बृहत्संहिता** । वराहमिहिरकृत । 'विमला' हिन्दी टीका सहित । पं० अच्युतानन्द झा
- **बृहत्संहिता** । 'भट्टोत्पल्लविवृत्ति' समन्वित 'विमला' हिन्दी टीका सहित । पं० अच्युतानन्द झा । १-२ भाग
- **भार्गवनाडिका** । हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार—महर्षि अभय कात्यायन
- मानसागरी । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या, प्रपपत्ति, विशेष विवरण सहित । सम्पा०—पं० मधुकान्त झा
- **मुहूर्तपारिजात** (ज्योतिष कल्पद्रुम) । पं० सोहनलाल व्यास । सम्पा०—पं० सीताराम झा
- **मुहूर्तमार्तण्ड** । 'प्रभा' संस्कृत 'तत्त्वप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या, उपपत्ति, उदाहरण एवं परिशिष्ट सहित । पं० लषणलाल झा
- **वेदाङ्गज्योतिष** । लगधमुनिकृत । दुर्लभ सोमाकर भाष्य एवं आचार्य शिवराज कौण्डिन्न्यायनकृत हिन्दी व्याख्या, विशेष टिप्पणी सहित

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

चौखम्बा इण्डोवेस्टर्न पब्लिशर्स
वाराणसी
email: vvbhawan@yahoo.co.in
www.indowesternpublishers.com

ISBN : 978-93-85098-30-7 [HB], 978-93-85098-43-0 [HB, Set of 2 Vol.]